

सचित्र महाभारत

७ भाषा-टीका

दशम अङ्क ।

[भीष्मपर्व अ० १४-१२२ तक सम्पूर्ण और द्रोणपर्व अ० १-१२० तक]

जिसका-संग्रह

महामहोपाध्याय श्री माधव शास्त्री भाण्डारी प्रधानाध्यापक ओरियण्टल
कालेज, लाहौर ने अत्यन्त सावधानी के साथ प्रामाणिक और
प्राचीन प्रतियों के आधार पर किया है ।

और

जिसकी टीका

कांशी निवासी विद्वद् श्रीराम शास्त्री तैलंग
ने

388Km
V. 4. 11 E. 4. 4

यह पत्रिका मे अन्यन्त सरल हिन्दी-भाषा में की है ।

प्रकाशक—

लक्ष्मणदास प्यारेलाल जैन,
अध्यक्ष—संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर ।

पथप्रसार]

प० कन्हाराम शर्मा के प्रबन्ध से संस्कृत प्रिंटिंग प्रेस लाहौर में छपा ।

❀ विषयानुक्रमणिका ❀

भीष्मपर्व ।

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
९४.	घटोत्कच का युद्ध	४४५९	१०८.	शिवण्डी और भीष्म का संवाद	४५३९
९५.	भगदत्त का पराक्रम	४४६३	१०९.	भीष्म और दुर्योधन की मात-चीत	४५४५
९६.	आठवें दिन के युद्ध की समाप्ति	४४७२	११०.	अर्जुन और दुःशामन का युद्ध	४५४९
९७.	पाण्डवों को परास्त करने की सम्मति	४४७७	१११.	दृष्टद्युद्ध का वर्णन	४५५४
९८.	भीष्म विलास और दुर्योधन का संवाद	४४८४	११२.	द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा का संवाद	४५५९
९९.	मर्वतोभद्र ब्यूह की रचना और अनेक उपातों का देय पड़ना	४४८९	११३.	भीमसेन और अर्जुन का पराक्रम	४५६४
१००.	अभिमन्यु और अलम्बुष का युद्ध	४४९२	११४.	भीमसेन और अर्जुन का पराक्रम	४५६९
१०१.	अभिमन्यु का अलम्बुष को हराना	४४९७	११५.	संभाम से भीष्म का जी ऊबना	४५७३
१०२.	द्रोणाचार्य के साथ अर्जुन का युद्ध	४५०३	११६.	संकुल युद्ध का वर्णन	४५७८
१०३.	भीष्म के पराक्रम का वर्णन	४५०७	११७.	दुःशामन का पराक्रम	४५८६
१०४.	साल्विक के साथ भीष्म का युद्ध	४५१२	११८.	भीष्म के पराक्रम का वर्णन	४५९२
१०५.	शल्य और युधिष्ठिर का युद्ध	४५१६	११९.	भीष्म का गिला	४५९८
१०६.	नवम दिन के युद्ध की समाप्ति	४५१९	१२०.	दोनों पक्ष के वीरों का भीष्म के समीप आना और उनको तकिया देना	४६१०
१०७.	पाण्डवों का भीष्म के समीप जाकर उनसे उनके वध का उपाय पूछना	४५२८	१२१.	अर्जुन का भीष्म को जल पिलाना	४६१७
			१२२.	भीष्म और कर्ण की भेंट	४६२३

— • —

द्रोणपर्व ।

(द्रोणाभिषेकपर्व)

१. राजा जनमेजय का प्रश्न। वैशम्पायन का धृतराष्ट्र के पुत्रों की दशा का वर्णन करना ४६२९
२. कर्ण की प्रतिज्ञा और युद्ध के निमित्त यात्रा का वर्णन ४६३४

३. कर्ण का भीष्म के समीप जाकर उनसे युद्ध के लिए आज्ञा माँगना ४६३९
४. भीष्म की आज्ञा पाकर कर्ण की युद्ध-यात्रा करना ४६४२
५. दुर्योधन के पूछने पर कर्ण का द्रोणाचार्य को सेनापति बनाने का

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
	प्रस्ताव करना	४६४४	२७.	संशतक-वध का वर्णन	४७५६
६.	दुर्योधन का द्रोणाचार्य से सेना-पत्ति स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करना	४६४६	२८.	भगदत्त और अर्जुन के युद्ध का वर्णन	४७६०
७.	सेनापति के पद पर द्रोणाचार्य का अभियेक	४६४८	२९.	हाथी सहित भगदत्त का मारा जाना	४७६३
८.	सञ्जय का द्रोणाचार्य के पराक्रम का वर्णन करके उनकी मृत्यु का समाचार कहना	४६५३	३०.	शकुनि का युद्ध भूमि से भागना	४७६८
९.	धृतराष्ट्र का शोककुल होना	४६५७	३१.	अश्वत्थामा का राजा नील को मारना	४७७३
१०.	धृतराष्ट्र का सचेत होकर फिर सञ्जय से द्रोण के मारे जाने का वृत्तान्त पृष्ठना	४६६२	३२.	घमामान युद्ध का वर्णन	४७७६
११.	धृतराष्ट्रकृत श्रीकृष्ण-गुण-वर्णन	४६७०	(अभिमन्यु वध-पर्व)		
१२.	दुर्योधन का द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जति पकड़ लाने का वरदान मांगना	४६७६			
१३.	द्रोणाचार्य से युधिष्ठिर को वचाने के लिए अर्जुन का प्रतिज्ञा करना	४६७९	३३.	द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा । अभिमन्यु के मारे जाने का संक्षिप्त वर्णन	४७८५
१४.	युद्ध का वर्णन	४६८२	३४.	चक्रव्यूह-निर्माण का वर्णन	४७८८
१५.	शाल्य का युद्ध से हट जाना	४६९१	३५.	युधिष्ठिर का अभिमन्यु से चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए कहना	४७९१
१६.	अर्जुन के युद्ध का वर्णन	४६९५	३६.	अभिमन्यु के युद्ध का वर्णन	४७९४
१७.	संशतकरण से युद्ध करने के लिए अर्जुन का जाना	४७०१	३७.	दुर्योधन आदि से हुए अभिमन्यु के युद्ध का वर्णन	४७९९
१८.	अर्जुन और संशतकरण का युद्ध	४७०६	३८.	अभिमन्यु के पराक्रम का वर्णन	४८०३
१९.	अर्जुन के घोर युद्ध का वर्णन	४७०९	३९.	दुःशासन और अभिमन्यु का युद्ध	४८०५
२०.	सकुल युद्ध का वर्णन	४७१३	४०.	अभिमन्यु के द्वारा कर्ण और दुःशासन की पराजय	४८०९
२१.	द्रोणाचार्य के युद्ध का वर्णन	४७२०	४१.	अभिमन्यु के पराक्रम का वर्णन	४८१३
२२.	दुर्योधन और कर्ण की बातचीत	४७२७	४२.	जयद्रथ की तपस्या और शङ्कर से वरदान प्राप्त करने का वृत्तान्त	४८१५
२३.	वीरों के घोड़ों का वर्णन	४७३०	४३.	जयद्रथ के युद्ध का वर्णन	४८१८
२४.	धृतराष्ट्र का अपने पुत्रों के लिए शोक करके सञ्जय से युद्ध का वर्णन करने के लिए कहना	४७४०	४४.	अभिमन्यु के पराक्रम का वर्णन	४८२०
२५.	द्रुपदयुद्ध का वर्णन	४७४२	४५.	अभिमन्यु के पराक्रम से राजा दुर्योधन की पराजय	४८२२
२६.	भगदत्त के पराक्रम का वर्णन	४७४९	४६.	राजकुमार लक्ष्मण की मृत्यु होना	४८२५
			४७.	कोशलेश्वर बृहद्रथ का मारा जाना	४८२८
			४८.	अभिमन्यु के अद्भुत पराक्रम का वर्णन	४८३१

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
४९.	अभिमान्यु के मोरे जाने का वर्णन	४८३६		के वध की प्रतिज्ञा करना	४९०८
५०.	युद्धभूमि का पुनर्वर्णन	४८४०	७४.	अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर जयद्रथ का 'याकुत्र' होना और द्रोणाचार्य का उमंग पैदा करना	४९१३
५१.	अभिमान्यु के पिण्ड युधिष्ठिर का शोक और विलाप करना	४८४२	७५.	अर्जुन और श्रीकृष्ण का बातचीत	४९१७
५२.	वेद-याज्ञ का आगमन	४८४४	७६.	अर्जुन का श्रीकृष्ण से अपनी शक्ति का वर्णन करना	४९२१
५३.	ब्रह्मा और रुद्र का मराद आर		७७.	श्रीकृष्ण का अपनी बहन सुभद्रा का समझाना	४९२४
५४.	मृत्यु देवी की उत्पत्ति होना	४८४०	७८.	सुभद्रा का विलाप और श्रीकृष्ण का उन्हें फिर समझाना सुझाना	४९२६
५५.	अस्त्रमोक्षायान की समाप्ति	४८५०	७९.	श्रीकृष्ण और दारुकी का मराद	४९३१
५५.	षोडश राजनीय उपायान का प्रारम्भ । सुवर्णप्रीवी की कथा और राजा मरुत्त के चरित्र का वर्णन	४८५८	८०.	अर्जुन का समझाना में श्रीकृष्ण के साथ 'राम' पत्र पर जाना	४९३६
५६.	सुरोत का उपायान	४८६४	८१.	समझाना में ही रुद्र से पाशुपत अस्त्र प्राप्तकर अर्जुन का श्रीकृष्ण के साथ अपने गिरि की लौट आना	४९४३
५७.	महाराज अर्जुन का उपायान	४८६५	८२.	कृष्णचन्द्र का युधिष्ठिर के समीप आना	४९४५
५८.	महाराज शिबि का उपायान	४८६७	८३.	युधिष्ठिर की प्रार्थना और श्रीकृष्ण चन्द्र का आशमन देना	४९४९
५९.	रामचन्द्र की का उपायान	४८६८	८४.	अर्जुन का युधिष्ठिर के समीप आना	४९५२
६०.	राजा भीमार्जुन का उपायान	४८७१		(जयद्रथ-वधपर्व)	
६१.	राजा दिलीप का उपायान	४८७३	८५.	वृत्रघ्न का पुत्रों के 'राम' शोक करके मन्त्र पर युद्ध का वर्णन करने के निमित्त कहना	४९५५
६२.	महाराज मान्धाता का उपायान	४८७५	८६.	मन्त्र का वृत्रघ्न का उठना देकर युद्ध वर्णन का आरम्भ करना	४९६१
६३.	ययानि राजा का उपायान	४८७७	८७.	द्रोणाचार्य का शपथग्रहण करना	४९६४
६४.	महाराज अम्बरार का उपायान	४८७८	८८.	गन्धर्भि में अर्जुन का पहरेना	४९६८
६५.	राजा नक्षत्रिन्दु का उपायान	४८८०	८९.	अर्जुन के युद्ध का वर्णन	४९७१
६६.	महाराज गय का उपायान	४८८२	९०.	अर्जुन से दृष्टान्त की दृष्टि	४९७४
६७.	महाराज हनित्य का उपायान	४८८४	९१.	अर्जुन और द्रोण का युद्ध । द्रोणाचार्य की शपथ अर्जुन का अगे बढ़ना	४९७८
६८.	महाराज भग्न का उपायान	४८८६	९२.	युद्ध और अर्जुन की वध का वर्णन	४९८३
६९.	महाराज वृधु का उपायान	४८८८			
७०.	भगवान् परशुराम का उपायान	४८९०			
७१.	युधिष्ठिर की सम्झावर व्यास जी का अपने आशमन का जाना	४९०५			
	(प्रतिज्ञापर्व)				
७२.	अभिमान्यु के पिण्ड अर्जुन का निगार	४९०८			
७३.	युधिष्ठिर का गिरि में अभिमान्यु का मोरे जाने का वृत्तान्त कहना और अर्जुन का भीम वध कर देना				

अध्याय	विषय	पृष्ठ	अध्याय	विषय	पृष्ठ
९३.	धृतायु आदि का मारा जाना	४९९१	९८.	द्रोणाचार्य और सात्यकि का युद्ध	५०१९
९४.	दुर्योधन का द्रोणाचार्य को उलहना देना और आचार्य का दुर्योधन की अभेद्य कवच पहना देना	४९९८	९९.	अर्जुन का अस्त्रविद्या के प्रभाव से रणभूमि में जल निकालकर घोड़ों को जल पिलाना	५०२५
९५.	राजा लोगों के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन	५००६	१००.	घोड़ों की सेवा सुश्रूषा हो चुकने पर अर्जुन का फिर जयद्रथ की ओर बढ़ना	५०३१
९६.	द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन	५०१२			
९७.	द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न का युद्ध	५०१५			

अथ चतुरधिकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच — स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
 अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमारिन्दमम् ॥ १ ॥
 प्रग्रह्य सुमहत्पापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
 महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ॥ २ ॥
 अर्धचन्द्रं च सन्धाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम् ।
 भीमसेनस्य चिच्छेद् चापं क्रोधसमन्वितः ॥ ३ ॥
 तदन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः ।
 प्रसन्दधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥ ४ ॥
 तेनोरसि महाराज भीमसेनमताडयत् ।
 स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणीपरिसंलिहन् ॥ ५ ॥
 समाललम्ब्य तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ।
 तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः ॥ ६ ॥
 क्रोधेनाऽभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः ।
 अभिमन्युमुखाश्चाऽपि पाण्डवानां महारथाः ॥ ७ ॥
 समभ्यधावन्क्रोशन्तो राजानं जातसम्भ्रमाः ।
 सम्प्रेक्ष्यैतान्सम्पततः संक्रुद्धाजातसम्भ्रमान् ॥ ८ ॥
 भारद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान् ।
 क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ ९ ॥
 संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे ।
 एते क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १० ॥

चौरानवेवौ अध्याय ॥ ९४ ॥

सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! इसके पश्चात् राजा दुर्योधन ने अपनी सेना को विमुख देखकर क्रोध करके भीमसेन की ओर रथ दौड़ाया । वे भीमसेन के ऊपर बाण बरसाने लगे । लोमशुक, सान पर तीक्ष्ण किये गये, एक अर्धचन्द्र बाण से उन्होंने भीमसेन का धनुष काट डाला और एक परीतेभिदी तीक्ष्ण बाण उनके वक्षस्थल में मारा ॥ १।४॥ दुर्योधन का बाण इस वेग से लगा कि भीमसेन को होंठ दबाकर ध्वजा का आश्रय लेना पड़ा । उनको व्यथित

और शिथिल देखकर राक्षस घटोत्कच प्रज्वलित अभि के समान क्रोध से उत्तेजित हो उठा । अभिमन्यु आदि श्रेष्ठ वीर भी गरजते और लड़कारते हुए दुर्योधन के पास पहुँचे ॥ १।८॥ उन्हें क्रोध करके दुर्योधन की ओर बढ़ते देखकर द्रोणाचार्य ने अपने महारथियों से कहा— तुम लोम शीघ्र राजा दुर्योधन के पास जाकर उनकी सहायता और रक्षा करो । वे इस समय विपत्ति के सागर में पड़ गये हैं । देखो पाण्डवसेना के महारथी लोग भीमसेन के अनुगामी होकर, जय

भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपाद्रवन् ।
 नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः ॥ ११ ॥
 नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान् ।
 तदाचार्यवचः श्रुत्वा सौमदत्तिपुरोगमाः ॥ १२ ॥
 तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् ।
 कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः ॥ १३ ॥
 चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्वलः ।
 आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन् ॥ १४ ॥
 ते विंशतिपदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
 पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥
 एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
 भारद्वाजस्ततो भीमं पद्भिंशत्या समार्पयत् ॥ १६ ॥
 भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
 पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ १७ ॥
 तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।
 त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः ॥ १८ ॥
 स गाढविद्धो व्यथितो व्योवृद्धश्च भारत ।
 प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १९ ॥
 गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
 द्रोणायनिश्च संकुञ्च्य भीमसेनमभिद्रुतौ ॥ २० ॥
 तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ ।
 भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम् ॥ २१ ॥

की इच्छा से, उस शस्त्र वायाकर, सिंहाद से राजाओं को उद्धिन्न करते हुए, दुर्योधन के समीप आ रहे हैं ॥११॥ द्रोण के ये उचन, सुनकर महारथ कृप, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, जयद्रथ बृहद्वल और अरुन्दिदेश के मित्र अनुमिन् आदि योद्धा बड़ी शक्ति के साथ महाराज दुर्योधन की अपने मध्य में बगैरे उनका रक्षा करने लगे । पाण्डव गश्त और कौरवगश्त के ये भीरु राम एग और उद्धर परस्पर प्रहार करने लगे ॥१२॥१५॥ महाराज द्रोणाचार्य

ने धनुष चढ़ाकर भीमसेन की छात्रास बाण मारे । जल की धारा जैसे पर्वत को टुक लेती है वैसे ही द्रोणाचार्य ने बाणों से भीमसेन को टुक दिया । भीमसेन ने बड़ा शक्ति से द्रोणाचार्य के राम पार्श्व में दस गण मारे । उन बाणों से द्रोणाचार्य बहुत व्यथित और अचेत होकर रथ के उपर बैठ गये ॥१६॥१७॥ यह देखकर महाराज दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों भीमसेन की ओर चले । काल की तरह उन दोनों गौरों को आने देकर भीर भीमसेन रथ में

अवप्लुत्य रथान्तूर्णं तस्थौ गिरिर्वाऽचलः ।
 समुद्यम्य गदां गुर्वीं यमदण्डोपमां रणे ॥ २२ ॥
 तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
 कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् ॥ २३ ॥
 तात्रापतन्तौ सहितौ त्वरिनौ बलिनां वरौ ।
 अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः ॥ २४ ॥
 तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
 समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः ॥ २५ ॥
 भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया ।
 नानाविधानि शस्त्राणि भीमस्योरस्यपातयन् ॥ २६ ॥
 सहिताः पाण्डवं सर्वे पीडयन्तः समन्ततः ।
 तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तं पीड्यमानं महारथम् ॥ २७ ॥
 अभिमन्युप्रभृतयः पाण्डवानां महारथाः ।
 अभ्यधावन्परीप्सन्तः प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ २८ ॥
 अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दधितः सखा ।
 नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात् ॥ २९ ॥
 स्पर्धते हि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन सः ।
 स विस्कार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ॥ ३० ॥
 यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् ।
 विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयङ्करम् ॥ ३१ ॥
 येन लोकत्रयं क्रोधात्त्रासितं स्वेन तेजसा ।
 तथा नीलेन निर्भिन्नः सुमुक्तेन पतत्रिणा ॥ ३२ ॥

उतर पड़े । ये एक भारी गदा लेकर परत की तरह
 अचल भाव से खड़े हो गये ॥२०॥२२॥ गदा हाथ
 में लिये भीमसेन ऊँचे शिखरवाले कैलास पर्वत के
 समान शोभायमान थे । दुर्गंधन और अश्वत्थामा
 भीमसेन की ओर झपटे, और उधर से भीमसेन भी
 उनकी ओर झपटे । उस समय द्रोणाचार्य आदि
 कौरवपक्ष के वीर, श्रेष्ठ रथी भीमसेन को मार डालने
 के लिए, उनके पास पहुँचकर हृदय में विविध शस्त्र
 मारकर उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगे ॥२३२७॥ महाबली

भीमसेन जब कौरवपक्ष के वीरों के बाणों से अत्यन्त
 व्यथित होकर प्राणसङ्कट की अवस्था में पड़ गये तब
 पाण्डवपक्ष के अभिमन्यु आदि महारथी, प्राणों की
 ममता छोड़कर, उनकी सहायता के लिए दौड़ पड़े ।
 भीमसेन के प्रिय मित्र अर्जुनस्य राजा नील कुन्द होकर
 अश्वत्थामा के सम्मुख आये । महाराज नील सदा ही
 अश्वत्थामा से दुर्धर्ष रखते थे ॥२७॥३०॥ इन्द्र ने
 जैसे दुर्धर्ष, तेजस्वी, त्रिभुवन को प्राप्त पहुँचानेवाले
 विप्रचित्ति को मारा था वैसे ही महावीर नील धनु

सञ्जातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः ।
 स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ३३ ॥
 दध्ने नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः ।
 ततः सन्धाय विमलान्भ्रष्टान्कर्मरमार्जितान् ॥ ३४ ॥
 जघान चतुरो बाहान्पातयामास च ध्वजम् ।
 सप्तमेन च भस्त्रेण नीलं विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥
 स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
 मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ॥ ३६ ॥
 घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो ज्ञातिभिः परिवारितः ।
 अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३७ ॥
 तथेतरे चाऽभ्यधावन्राक्षसा युद्धदुर्मदाः ।
 तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ३८ ॥
 अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन् ।
 निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ ३९ ॥
 येऽभवन्नघतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः ।
 विमुखांश्चैव तान्दृष्ट्वा द्रौणिचापच्युतैः शरैः ॥ ४० ॥
 अक्रुद्धयत महाकायो भैमसेनिर्घटोत्कचः ।
 प्रादुश्चक्रे ततो मायां घोररूपां सुदारुणाम् ॥ ४१ ॥
 मोहयन्समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः ।
 ततस्ते तावकाः सर्वे मायया विमुखीकृताः ॥ ४२ ॥
 अन्योन्यं समपश्यन्त निकृता मेदिनीतले ।
 विचेष्टमानाः कृपणाः शोणितेन परिप्लुताः ॥ ४३ ॥

चढ़ाकर बाण बरसाऊँर अश्वत्थामा को पीड़ा पहुँचाने
 लगे । नील के बाणों से अश्वत्थामा का शरीर रुधिर
 से युक्त हो गया । बसुन्ध होकर नील को मार डालने
 का यत्न करने लगे । अश्वत्थामा ने वज्रगदश शब्द से
 पूर्ण धनुष पर विचित्र सात भुज बाण चढ़ाये । उन्होंने
 छः भुज बाणों से नील के चारों घोंड़े मार डाले और
 पञ्चा पाट डाली । सातवें बाण नील की छाती में
 मारा । उस प्रहार में अनेक-से दोसर नील रथ पर
 बैठ गये ॥ ३१।३५॥ राजा नील को अनेक देग काँध

से गिहल राक्षस घटोत्कच, अपने साथी राक्षसों को
 लेकर, बड़े वेग से अश्वत्थामा का सामना करने आया ।
 और राक्षस भी आक्रमण करने चले । महाबली अश्व-
 त्थामा ने घटोत्कच को देखते मार दी क्षपटकर बाणों
 से भयानक राक्षसों को मारना और गिराना आरम्भ
 किया । घटोत्कच ने अपने आगे के राक्षसों को
 अश्वत्थामा के बाणों से भागने हुए देखकर क्रुद्ध हो,
 अश्वत्थामा को मोहित करने के लिए, अपनी भयङ्कर
 माया प्रकट की ॥ ३६।४१॥ राक्षस की माया से मोहित

द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च ।
 प्रायशश्च महेष्वासा ये प्रधानाः स्म कौरवाः ॥ ४४ ॥
 विध्वस्ता रथिनः सर्वे राजानश्च निपातिताः ।
 हयाश्चैव हयारोहाः सन्निवृत्ताः सहस्रशः ॥ ४५ ॥
 तद् दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिविरं प्रति ।
 मम प्राक्रोशतो राजंस्तथा देवव्रतस्य च ॥ ४६ ॥
 युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे ।
 घटोत्कचप्रमुक्तेति नाऽतिष्ठन्त विमोहिताः ॥ ४७ ॥
 नैव ते श्रद्धधुर्भीता वदतोरात्रयोर्वचः ।
 तांश्च प्रव्रततो दृष्ट्वा जयं प्राप्ताश्च पाण्डवाः ॥ ४८ ॥
 घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान्प्रचक्रिरे ।
 शङ्खदुन्दुभिनिघोषैः समन्तान्नेदिरे भृशम् ॥ ४९ ॥
 एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना ।
 सूर्यास्तमनवेलायां प्रभङ्गं विद्रुतं दिशः ॥ ५० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मपर्वण्ये अष्टमयुद्धदिवसे चतुरधिकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

होकर कौरवपक्ष के वीर पुरुष युद्ध से हट गये। राक्षस
 के बाणों ने उनके अङ्ग छिन्न भिन्न कर दिये। असल्य
 सैनिक लोग रुधिर से युक्त होकर, पृथ्वी पर गिरकर,
 कातर दृष्टि से एक दूसरे को देख रहे थे। द्रोण,
 दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा आदि कौरवपक्ष के वीर
 युद्ध छोड़-छोड़कर हट गये। रथीगण मरने और
 राजा लोग मर-मरकर गिरे लगे। सैकड़ों-हजारों
 घोड़ों और सवारों के शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। मरे
 और अधमरे लोगों से वहाँ की पृथ्वी भर गई ॥ ४१।
 ४६॥ आपकी सेना को शिविर की ओर भागते देखकर
 मैं और भीष्म दोनों पुकार-पुकारकर उनसे कहने

लगे—“हे सैनिक लोगो ! तुम भागो नहीं, युद्ध
 करो। यह सब मायावी घटोत्कच की माया है। इससे
 तुम मत डरभीत होओ।” परन्तु राक्षस की माया के
 प्रभाव से अत्यन्त मोहित होने के कारण वे लोग नहीं
 छहरे। हमारी बातों पर निश्चय न करके वे लोग फिर
 भागने लगे। हे महाराज ! इस प्रकार जय प्राप्त करके
 घटोत्कच और पाण्डवगण सिंहनाद करने लगे। पाण्डव-
 सेना में शङ्ख और निगाड़े ध्वजने लगे। उनका शब्द
 सब ओर छा गया। सूर्यास्त का समय हो आया।
 घटोत्कच के बाणों से छिन्न-भिन्न होकर आपकी सेना
 इधर-उधर भागने लगी ॥ ४६।५०॥

भीष्मपर्व का चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९४ ॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच — तस्मिन्महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा ।
 गाह्वेयमुपसङ्गम्य विनयेनाऽभिवाद्य च ॥ १ ॥
 तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे ।
 घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥ २ ॥

कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।
 अब्रवीच्च तदा राजन्भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ३ ॥
 भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः ।
 पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥ ४ ॥
 एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम ।
 निदेशे तत्र तिष्ठन्ति मया सार्धं परन्तप ॥ ५ ॥
 सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः ।
 घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ॥ ६ ॥
 तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवोऽनलः ।
 तदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात्परन्तप ॥ ७ ॥
 राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह ।
 त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ८ ॥
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम ।
 दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥
 शृणु राजन्मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
 यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परन्तप ॥ १० ॥
 आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिन्दम ।
 धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदाऽनघ ॥ ११ ॥
 अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः ।
 राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमार्छति ॥ १२ ॥

पञ्चानवैर्वा अग्याय ॥ ९५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महाराज दुर्योधन
 ने पितामह भीष्म के पास जाकर विनित भाव से
 प्रणाम किया । फिर लम्बी-लम्बी सासें-लेकर अपनी
 पराजय और घटोत्कच की विजय का वर्णन विस्तार
 के साथ कहा कि हे पितामह ! पाण्डवगण जैसे कृष्ण
 का आश्रय पाकर उन्हीं के विघास से युद्ध कर रहे
 हैं वैसे ही मैंने आपके और गुरु के विघास पर
 पाण्डवों से युद्ध ठाना है । हे शत्रुदमन ! मैं और
 मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना आपके अर्थन है ; फिर
 भी घटोत्कच की सहायता से भीमसेन आदि पाण्डवों
 ने युद्ध में मुझे जीत लिया । गुणा हुआ पेड़ जैसे अग्नि

से जलता है वैसे ही मेरा शरीर भी क्रोध से जल रहा
 है । इसलिए अब वही उपाय कीजिए जिससे मैं आपका
 आश्रय लेकर दुष्ट राक्षस को मार सकूँ ॥११८॥ राजा
 दुर्योधन के ये वचन सुनकर भीष्म ने कहा—हे राजेन्द्र !
 इस कार्य के लिए तुमको जो करना होगा सो मैं
 कहता हूँ, सुनो । तुम सदा, सब अवस्थाओं में, अपनी
 रक्षा करते रहो । और देखो, राजा या तो राजा से
 युद्ध करता है, [या राजकुमार से] । इसलिए तुम
 धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल या सहदेव से ही युद्ध
 करना ॥११२॥ मैं, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अघ्नयामा,
 धृतरर्षा, शन्य, भीमदत्ति, विरुण और दुःशामन

अहं द्रोणः कृपा द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः ।
 शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथाः ॥ १३ ॥
 तव च भ्रातरः श्रेष्ठा दुःशासनपुरोगमाः ।
 त्वदर्धे प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥ १४ ॥
 रौद्रे तस्मिन्राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुशयो महान् ।
 अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः ॥ १५ ॥
 भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि ।
 एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाऽववीत् ॥ १६ ॥
 समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
 गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ॥ १७ ॥
 वारयस्व रणे यत्तो मिपतां सर्वधान्विनाम् ।
 राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥ १८ ॥
 तव दिव्यानि चाऽस्त्राणि विक्रमश्च परन्तप ।
 समागमश्च बहुभिः पुराऽभूदमरैः सह ॥ १९ ॥
 त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
 स्ववलेनोच्छ्रितो राजञ्जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥ २० ॥
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
 प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २१ ॥
 तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
 अभ्यवर्तन्त संकुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २२ ॥
 भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
 द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च भारत ॥ २३ ॥

आदि तुम्हारे भाई, सन लोग तुम्हारे लिए महाबली
 राक्षस घटोत्कच से युद्ध करेंगे । अथवा यदि तुमको
 उस राक्षस से ऐसा ही सन्ताप पहुँचा है तो ये इन्द्र
 के समान प्रतापी महाराज भगदत्त उस राक्षस के
 साथ युद्ध करने जायें ॥ १३, १६ ॥ महीपाल भीष्म
 ने दुर्योधन से यह कहकर सनके सामने भगदत्त से
 कहा—हे महाराज ! तुम शीघ्र जाकर सन योद्धाओं
 के सम्मुख यत्नपूर्वक युद्ध में प्रचण्ड अपम राक्षस को
 रोको । जैसे इन्द्र ने तारकासुर को मारा था वैसे ही

इस राक्षस को जीतो । तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है
 और अस्त्र भी दिव्य हैं । तुम पहले असुरों के साथ
 युद्ध कर चुके हो । अतएव इस समय अपने से स्पर्धा
 रखने लगे दुरात्मा घटोत्कच को शीघ्र ही मारो ॥ १६।
 २० ॥ पराक्रमी सेनापति भीष्म की आज्ञा पाकर राजा
 भगदत्त, सुप्रतीक नाम के हाथी पर चढ़कर, सिंह-
 नाद करते हुए शत्रुओं की ओर चले । पाण्डवपक्ष
 के महारथी भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच,
 द्रौपदी के पाँचों पुत्र, सत्यधृति क्षत्रदेव, चेदिराज,

चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
 सुप्रतीकेन तांश्चाऽपि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत् ॥ २४ ॥
 ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
 पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ २५ ॥
 प्रयुक्ता रथिभिर्वाणा भीमवेगाः सुतेजनाः ।
 ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥ २६ ॥
 प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः ।
 परस्परं समासाद्य सन्निपेतुरभीतवत् ॥ २७ ॥
 मदान्धा रोपसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे ।
 विभिर्दुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ २८ ॥
 हयाश्च चामरापीडाः प्राप्तपाणिभिरास्थिताः ।
 चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥ २९ ॥
 पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः ।
 न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३० ॥
 रथिनश्च रथै रोजन्कर्णिनालीकसायकैः ।
 निहत्य समरे वीरान्सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३१ ॥
 तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
 भगदत्तो महेष्वालो भीमसेनमथाऽद्रवत् ॥ ३२ ॥
 कुञ्जरेण प्रभिन्नेन संतथा स्रवता मदम् ।
 पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वशः ॥ ३३ ॥
 किरञ्जरसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः ।
 ऐरावतस्थो मघवान्वारिधारा इवाऽनघ ॥ ३४ ॥

वसुदान और दशार्णदत्त के राजा आदि वीर लोग भी घाटपकाल के मेघ के समान गरजेत हुए भगदत्त को आने देगाकर मुद्रा होकर, उगरी और चले ॥ २१, २४ ॥ इसके अनन्तर भगदत्त के साथ पाण्डवों का घोर संग्राम होने लगा । रथों लोग हाथियों और रथों के ऊपर बड़े वेग से बाण मारमाने लगे । सत्रास के द्वारा सुमिश्रित दम्य हाथी मय बाणों होकर भी दूसरे हाथियों में निर्भय भाव से निहने लगे । मदान्धा और रोपसंरब्ध राक्षसों पर अस्त्रों से निहने लगे ।

प्रहार करने लगे । बाणभूषित घोड़े, घाम हाथ में लिये हुए सत्रासों के द्वारा चलाये जाकर, वेग के साथ परस्पर आक्रमण और प्रहार करने लगे । रथों-सत्रासों के दन्त के दन्त परस्पर शक्ति, तोमर आदि शस्त्रों के प्रहार करके धृष्टी पर गिरने लगे । रथों पर बैठकर रथों लोग कर्णों, गान्धर्व और तोमर आदि बाणों में वीरों को मारकर मिटाना करने लगे ॥ २५, ३१ ॥ हे गजेंद्र ! इस प्रकार रणभेद उत्पन्न कर देनेवाला संग्राम मग जाने पर महाभयानक भगदत्त,

स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः ।
 पर्वतं वारिधाराभिस्तपान्ते जलदो यथा ॥ ३५ ॥
 भीमसेनस्तु संकुद्धः पादरक्षान्परःशतान् ।
 निजघान महेष्वासः संरब्धः शरवृष्टिभिः ॥ ३६ ॥
 तान्दृष्ट्वा निहतान्कुङ्क्षो भगदत्तः प्रतापवान् ।
 चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥ ३७ ॥
 स नागः प्रेषितस्तेन चाणो ज्याचोदितो यथा ।
 अभ्यधावत् वेगेन भीमसेनमारिन्दमम् ॥ ३८ ॥
 तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः ।
 अभ्यवर्त्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
 केकयाश्चाऽभिमन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
 दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिप ॥ ४० ॥
 चेदिपश्चित्रकेतुश्च संरब्धाः सर्व एव ते ।
 उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ॥ ४१ ॥
 तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात्पर्यवारयन् ।
 स विद्धो बहुभिर्बाणेर्वर्यरोचत महाद्विपः ॥ ४२ ॥
 सजातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाऽद्रिराट् ।
 दशार्णाधिपतिश्चाऽपि गजं भूमिधरोपमम् ॥ ४३ ॥
 समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम् ।
 तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ॥ ४४ ॥

सरनो से शोभित पर्वत के समान बहते हुए मदजल से सुशोभित, हाथी पर चढ़कर चारों ओर चाण बरसाते हुए भीमसेन की ओर दौड़े ॥३२॥३४॥ वर्षाकाल का मेघ जैसे जलधारा से पर्वत को ढक देता है वैसे ही उन्होंने भीमसेन को चाणों से छिपा दिया । महावीर भीम ने क्रोध में अधीर होकर सी से अधिक हाथी के चरणरक्षकों को चाणों से मार डाला । महानिजसी राजा भगदत्त ने उनको मरा हुआ देग मुद्र होकर अपने हाथी को भीमसेन के रथ की ओर बढ़ाया ॥३५॥३७॥ भगदत्त के द्वारा सम्बालित वह हाथी धनुष से छूटे हुए बाण के समान भीमसेन के ऊपर झपाटा । इसी समय पाण्डवराज के सत्र महारथी भीमसेन के पीछे-पीछे वेग से आगे बढ़े । अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, दशार्णराज, क्षत्रदेव, चेदिराज, चित्रकेतु और केकयगण क्रोध के मारे महाधनुष चढ़ाकर, चारों ओर से घेरकर, उस हाथी पर दिव्य अस्त्र छोड़ने लगे ॥३८॥४२॥ वह गजराज चाणों के प्रहार से बहुत ही घायल हो गया । उनके शरीर में रक्त बहने लगा । यह देख मे रोंगे हुए गिरिराज की तरह सोभायमान हुआ । दशार्ण देश के राजा पर्यानुष ऊँचे हाथी पर चढ़कर भगदत्त के हाथी की ओर बढ़े । तटभूमि जैसे महासागर के जल को रोखती है वैसे ही सुवर्तीक ने उस हाथी के वेग को रोक और उस हाथी ने भगदत्त

दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम् ।
 वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मनः ॥ ४५ ॥
 साधु साध्विति सैन्यानि पाण्डवेयान्यपूजयन् ।
 ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥ ४६ ॥
 प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम ।
 वर्ममुख्यं तनुत्राणं शातकुम्भपारिष्कृतम् ॥ ४७ ॥
 विदार्य प्राविशन्क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः ।
 स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
 उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्तत वेगितः ।
 स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन्भैरवं रवम् ॥ ४९ ॥
 सम्मर्दयानः स्वचलं वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
 तस्मिन्पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ॥ ५० ॥
 सिंहनादं विनद्योच्चैर्युद्धायैवाऽवतस्थिरे ।
 ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन् ॥ ५१ ॥
 किरन्तो विविधान्वाणाञ्छस्त्राणि विविधानि च ।
 तेषामापततां राजन्संकुङ्क्षानाममर्पिणाम् ॥ ५२ ॥
 श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद्व्रतसाध्वसः ।
 भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत् ॥ ५३ ॥
 अङ्कुशागुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि ।
 तस्मिन्क्षणे समभवत्सावर्तक इवाऽनलः ॥ ५४ ॥
 रथसङ्घास्तथा नागान्हयांश्च हयसादिभिः ।
 पादातांश्च सुसंकुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५५ ॥

के सुप्रतीक हाथी का वेग रोक। यह देखकर पाण्डवगण और उनकी सेना "वाह वाह" करने लगी ॥४२॥४६॥ तब राजा भगदत्त ने क्रुद्ध होकर शत्रु के हाथी को चौदह तोमर मारे। सर्प जैसे त्रिल में प्रवेश होता है वैसे ही वे तोमर, हाथी पर पड़े हुए सुनर्गम कनक को तोड़कर, उनके शरीर में प्रवेश हो गये। दशार्णपिपि। का हाथी इससे बहुत घायल होकर भयानक शब्द में चिल्लाते लगा और वेग में चलनेवाली आँधी जैसे पेड़ों को तोड़ती है वैसे अपने

ही पक्ष की सेना को रौंदता हुआ बड़े वेग से भागा ॥४६॥५०॥ इस प्रकार दशार्णराज का हाथी भाग जाने पर पाण्डवपक्ष के सब महारथी युद्ध के लिए उद्यत होकर, भीमसेन को आगे करके, सिंह की तरह गरजते और तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र बरसाते हुए राजा भगदत्त पर आक्रमण करने चले ॥५०॥५१॥ महाधनुर्दर भगदत्त ने उन कुपित धीरों का सिंहनाद सुनकर, बहुत ही क्रुद्ध होकर, निर्भय भाव से अपने हाथी को उनकी ओर बढ़ाया। अकुश का इशारा पाते ही गजराज

अमृद्रात्समरे नागः सम्प्रधावंस्ततस्ततः ।
 तेन संलोड्यमानं तु पाण्डवानां बलं महत् ॥ ५६ ॥
 सञ्चुकोच महाराज चर्मैवाऽग्नौ समाहितम् ।
 भयं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ॥ ५७ ॥
 घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत् ।
 विकटः परुषो राजन्दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ॥ ५८ ॥
 रूपं विभीषणं कृत्वा रोपेण प्रज्वलन्निव ।
 जग्राह विमलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ॥ ५९ ॥
 नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः ।
 स विस्फुलिङ्गमालाभिः समन्तात्परिवेष्टितः ॥ ६० ॥
 तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा प्राग्ज्योतिषो नृपः ।
 चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं सुदारुणम् ॥ ६१ ॥
 चिच्छेद तन्महच्छूलं तेन बाणेन वेगवान् ।
 उत्पपात द्विधा छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥ ६२ ॥
 महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता ।
 शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृतं च पार्थिवः ॥ ६३ ॥
 स्वमदण्डां महाशक्तिं जग्राहाऽग्निशिखोपमाम् ।
 चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ६४ ॥
 तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव ।
 उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च ॥ ६५ ॥
 वभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत ।
 पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६६ ॥

सुप्रतीक प्रलयकाल के संतर्क अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित हो उठा। वह सामने पड़नेवाले हाथियों, घोड़ों, सगरों और सैन्धवों-सहस्रों पैदलों तथा रथों को रींझता हुआ क्षीप्रता से दौड़ा। पाण्डवों की सेना अग्नि में पड़े चर्मड़े की तरह मय से सजुचित हो उठी ॥५२॥५७॥ उधर प्रदीप्त-मुख और प्रदीप्त-नयन महाबली घटोत्कच बड़ा भयानक रूप धारण करके, क्रोध से प्रज्वलित होकर, पवन को भी तोड़ सकने-वाला एक भयङ्कर शूल हाथ में लेकर राजा भगदत्त

की ओर दौड़ा ॥५७॥६०॥ उसने हाथी को, माले के लिए, वह शूल मारा। यह देखकर कुपित महा-राज भगदत्त ने एक तीक्ष्ण अर्धचन्द्र बाण मारकर उस शूल के दो टुकड़े कर डाले। इन्द्र के चलाये वज्र के समान वह शूल दो टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अत्र भगदत्त ने "छहर जा, छहर जा" कहकर एक अग्निशिखानुन्य घोर शक्ति राक्षस को मारी ॥६०॥६४॥ उस सुवर्ण-दण्डभूषित शक्ति को आकाश में आन डूँप वज्र की तरह देवदर घटे वत्त

तदवेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन वलीयसा ।
 दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चाऽपि विस्मिताः ॥ ६७ ॥
 पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः ।
 साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन् ॥ ६८ ॥
 तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम् ।
 नाऽमृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ॥ ६९ ॥
 स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ।
 तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान् ॥ ७० ॥
 विस्त्रुजन्विमलांस्तीक्ष्णान्नाराचाञ्ज्वलनप्रभान् ।
 भीममेकेन विव्याध राक्षसं नवभिः शरैः ॥ ७१ ॥
 अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान्पञ्चभिस्तथा ।
 पूर्णायतविस्त्रुष्टेन शरेणाऽनतपर्वणा ॥ ७२ ॥
 विभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाऽऽहवे ।
 पपात सहसा तस्य सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७३ ॥
 द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत् ।
 भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान् ॥ ७४ ॥
 ध्वजं केसरिणं चाऽस्य विच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।
 निर्विभेद त्रिभिश्चाऽन्यैः सारथिं चाऽस्य पत्रिभिः ॥ ७५ ॥
 स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थं उपाविशत् ।
 विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥ ७६ ॥

ने उद्यमकर पकड़ लिया और सिंहादर करके भगदत्त
 के सामने ही घुड़गो से उमके दो टुकड़े कर डाले ।
 उमका यह कार्य अत्यन्त अद्भुत जान पड़ा । देवगोत्र
 में देवता, गन्धर्व और मुनिगण उम राक्षस के इस
 अद्भुत कर्म को देखकर यहन ही विस्मित हुए ॥ ६७ ॥
 ६७॥ भीमसेन और उनके साथी श्रीराज "बाहू बाहू"
 के शब्द में पृथिवीमन्वत को प्रतिपन्नित करने लगे ।
 परमप्रसन्न पाण्डवों का मित्रनाद सुनकर महारथुर्ध्व
 भगवान् अत्यन्त ऊर्ध्व हुए । दद धनुष चढ़ाकर वे
 पाण्डवों के गन्धारियों को भगवान् करने लगे । वे
 महारथ के बाहों पर भगवान् अतिरुच्य बाण बरसाने
 लगे ॥ ६८ ॥ ७१ ॥ उन्होंने भीमसेन को एक बाण,

पटोकरुच को नव बाण, अभिमन्यु को तीन बाण और
 केकेयकुमारों को पाँच बाण मारे । इसके पश्चात्
 धनुष पर एक बाण चढ़ाकर क्षत्रदेव के दाहने हाथ
 में गात । इसमें क्षत्रदेव के हाथ में धनुष और बाण
 गिर पड़ा ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ भगदत्त ने फिर पाँच तीक्ष्ण
 बाण द्रौपदी के पुत्रों को मारे । फिर गन्धारीर भीमसेन
 के घेड़ों को मारकर तीन बाणों में पड़ना फाट
 डाली और अन्य तीन बाणों में मारपी को घायल
 कर दिया । उनका मारपी शिकार उस प्रकार में
 अत्यन्त पीड़ित होकर रथ पर गिर पड़ा । अब श्रेष्ठ
 रही भीमसेन महा वैद्यक रथ में उतर पड़े, और बंद
 नेम में शत्रु को और टाँके । उन्हें शत्रुताक देना

ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः ।
 गदां प्रवृह्य वेगेन प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ७७ ॥
 तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ।
 तावकानां भयं घोरं समपद्यत भारत ॥ ७८ ॥
 एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
 आजगाम महाराज निघ्नश्शत्रून्समन्ततः ॥ ७९ ॥
 यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महाबलौ ।
 प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥ ८० ॥
 दृष्ट्वा च पाण्डवो भ्रातृन्युष्यमानान्महारथान् ।
 त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्राऽयुध्यत्किरञ्ज्वरान् ॥ ८१ ॥
 ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः ।
 सेनामचोदयत्क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम् ॥ ८२ ॥
 तामापतन्तीं सहसा कौरवाणां महाचमूम् ।
 अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेतवाहनः ॥ ८३ ॥
 भगदत्तश्च समरे तेन नागेन भारत ।
 विमृद्गन्पाण्डवबलं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ८४ ॥
 तदाऽऽसीत्समहद्युद्धं भगदत्तस्य सारिप ।
 पञ्चालैः पाण्डवैश्च केकयैश्चोद्यतायुधैः ॥ ८५ ॥
 भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ ।
 अश्रावययथावृत्तमिरावद्धमुत्तमम् ॥ ८६ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मराजपर्वणि भगदत्तपुद्गे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

की तरह अति देवकर कौरवराज के थीर भय में
 विह्वल हो उठे ॥७४॥७८॥ उधर अर्जुन चारों ओर
 शत्रुओं की सेना को मारते हुए उस स्थान पर आये
 जहाँ भीम और गटोत्कच के साथ भगदत्त का युद्ध
 हो रहा था । महाशवी भाइयों को युद्ध करते देवकर
 वे भी शत्रुसेना के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे
 ॥७९॥८१॥ राजा दुर्योधन ने हाथी, घोड़े, रथ
 आदि में परिपूर्ण और भी बहूत सी सेना युद्ध के

लिए भेजी । अर्जुन उस नई आती हुई कौरवसेना
 को मारने के लिए उगलती और चढ़े । राजा भगदत्त
 अपने हाथी में पाण्डसेना को रौंदवाने हुए बड़े
 वेग में युधिष्ठिर की ओर चले । उस समय दारु
 उठाये हुए पाण्डव, सुश्रव, केकेय आदि के साथ
 भगदत्त का घोर संघाव होने लगा । उगी समय
 भीमसेन ने शत्रुसेना और अर्जुन से शत्रुओं की मृत्यु
 का सब वृत्तान्त कहा ॥८२॥८६॥

भीमसेन का पञ्चमोऽध्याय समाप्त हुआ ॥ ९५ ॥

अथ पणव्रतितमोऽध्याय ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच— पुत्रं विनिहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनञ्जयः ।
 दुःखेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्पन्नगो यथा ॥ १ ॥
 अब्रवीत्समरे राजन्वासुदेवमिदं वचः ।
 इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्पुरा ॥ २ ॥
 कुरूणां पाण्डवानां च क्षयं घोरं महामतिः ।
 स ततो निवारितवान्धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ३ ॥
 अन्ये च बहवो वीराः संग्रामे मधुसूदन ।
 निहताः कौरवैः संख्ये तथाऽस्माभिश्च कौरवाः ॥ ४ ॥
 अर्थहेतो नरश्रेष्ठ क्रियते कर्म कुत्सितम् ।
 धिगर्थान्यत्कृते ह्येवं क्रियते ज्ञातिसङ्क्षयः ॥ ५ ॥
 अधनस्य मृतं श्रेयो न च ज्ञातिवधाद्धनम् ।
 किं नु प्राप्स्यामहे कृष्ण हत्वा ज्ञातीन्समागतान् ॥ ६ ॥
 दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौवलस्य च ।
 क्षत्रिया निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च ॥ ७ ॥
 इदानीं च विजानामि सुकृतं मधुसूदन ।
 कृतं राज्ञा महाबाहो याचता च सुयोधनम् ॥ ८ ॥
 राज्यार्थं पञ्च वा ग्रामान्नाऽकार्षीत्स च दुर्मतिः ।
 दृष्ट्वा हि क्षत्रियाञ्छूराञ्शयानान्धरणीतले ॥ ९ ॥
 निन्दामि भृशमात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ।
 अशक्तमिति मामेते ज्ञास्यन्ते क्षत्रिया रणे ॥ १० ॥

ठियानेगवौ अध्याय ॥ ९६ ॥

सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! अपने पुत्र इरावाम् की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ । क्रोध से निद्रल होकर नाम की तरह सोंस लेते हुए वे श्रीकृष्ण से कहने लगे — हे केशव ! पहले ही महामति विदुर ने वीरों और पाण्डवों के प्रियजन-वियोगरूप अनि घोर भय का वृत्तान्त जान-कार हमको और दुर्योधन आदि को युद्ध न करने का उपदेश दिया था ॥१॥३॥ देखो ! हमने कौरवपक्ष के बहुत से वीरों को और कौरवों ने हमारे बहुत से वीरों की मार डाली है । हे मित्र ! लोग धन के लिए

ही बुरे और निन्दित कर्म करते हैं । हम भी उसी धन के लिए ही जातिपथरूप पाप कर रहे हैं । ऐसे धन को धिक्कार है ! जाति-माइयों को मारकर धनी बनने की अपेक्षा मर जाना ही निर्धन मनुष्य के लिए श्रेष्ठ है । हे वसुदेव ! इन भाइयों और जानिवालों को मारकर हमें क्या लाभ प्राप्त होगा ? ॥४॥६॥ दुर्योधन और शकुनि के अपराध से तथा कर्ण की कुमन्त्रणा से ये मय वीर क्षत्रिय मारे जा रहे हैं । अतः मेरा ममत्त्व में आया है कि पहले राजा युधिष्ठिर दुर्योधन से आधा राज्य या केनउ पाँच गाँव माँगकर अच्छा

युद्धं तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन ।
 सञ्चोदय हयाञ्शीघ्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ॥ ११ ॥
 प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् ।
 नाऽयं यापयितुं कालो विद्यते माधव क्वचित् ॥ १२ ॥
 एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा ।
 चोदयामास तानश्वान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥ १३ ॥
 अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य भारत ।
 मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ १४ ॥
 अपराह्णे महाराज संध्यामः समपद्यत ।
 पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥ १५ ॥
 ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् ।
 परिवार्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा ॥ १६ ॥
 ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः ।
 भगदत्तः सुशर्मा च धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥ १७ ॥
 हार्दिक्यो वाहिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ ।
 अम्बष्ठकस्तु नृपातिरभिमन्युमवास्थितः ॥ १८ ॥
 शोपास्त्वन्ये महाराज शोपानेव महारथान् ।
 ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ १९ ॥
 भीमसेनस्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर ।
 प्रजज्वाल रणे कुज्रो हविषा हव्यवाडिव ॥ २० ॥

ही कार्य कर रहे थे, किन्तु दुष्ट दुर्योधन उस समझौते पर भी प्रसन्न नहीं हुआ ॥७९॥ हे केशव ! इस समय इन वीर क्षत्रियों की मृत्यु देखकर मैं आप अपनी निन्दा कर रहा हूँ । क्षत्रियवृत्ति को धिक्कार है ! जानि भाइयों से युद्ध करने की इच्छा मुझे कदापि नहीं है ; किन्तु मैं युद्ध न करूँगा तो वीर क्षत्रियगण मुझे कायर समझेंगे । इसी से मैं युद्ध कर रहा हूँ । हे मधुसूदन ! दुर्योधन की सेना के मध्य शीघ्र मेरा रथ ले चले । मैं अपने बाहुबल से इस अशर समर-सागर के पार जाऊँगा । ननुसक वीर तरह वृथा पथानाथ में पड़ना और समय गँवाना उचित नहीं है ॥९१२॥ शत्रुपक्ष के वीरों को मारनेवाले अर्जुन के ये वचन

सुनकर कृष्णचन्द्र, पवन के वेग से चलनेवाले घोड़ों को हॉकर, उधर ही रथ ले चले । पर्वकाल में उमड़ते हुए समुद्र में जैसा शब्द होता है वैसे ही कोलाहल उस समय कीरवों की सेना में होने लगा । तीसरे पहर भीष्म के साथ पाण्डवों का घोर युद्ध होने लगा ॥१३॥१५॥ जिस प्रकार वसुण्ड इन्द्र को चारों ओर में घेरे रहते हैं उसी प्रकार धृतराष्ट्र के पुत्र शोपाचार्य को अपने मध्य में करके भीमसेन की ओर बढ़े । अब महारथी भीष्म, कृपाचार्य, भगदत्त और सुशर्मा अर्जुन से युद्ध करने चले । सुशर्मा और वार्हिक गायक से युद्ध करने चले । राजा अम्बष्ठक अभिमन्यु से युद्ध करने चले ॥१६॥१८॥ अन्य महारथी लोग

पुत्रास्तु तव कौन्तेयं छादयाञ्चकिरे शरैः ।
 प्राश्रपीव महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ २१ ॥
 स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशाम्पते ।
 सृक्किणी संलिहन्वीरः शार्दूल इव दर्पितः ॥ २२ ॥
 व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत ।
 क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद्गतजीवितः ॥ २३ ॥
 अपरेण तु भस्त्रेण पीतेन निशितेन तु ।
 अपातयत्कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ २४ ॥
 ततः सुनिशितान्पीतान्समादत्त शिलीमुखान् ।
 ससर्ज त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिप ॥ २५ ॥
 प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना ।
 अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् ॥ २६ ॥
 अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम् ।
 दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम् ॥ २७ ॥
 प्रपतन्त स्म वीरास्ते विरेजुर्भरतर्षभ ।
 वसन्ते पुष्पशवलाश्च्युताः प्रपतिता इव ॥ २८ ॥
 ततः प्रदुद्रुवुः शेषास्तव पुत्रा महाहवे ।
 तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥ २९ ॥
 द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव ।
 यथाऽद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद्व्यकिरच्छरैः ॥ ३० ॥

अपने समान महारथियों से युद्ध करने लगे । इसके
 अनन्तर दोनों पक्षों में महाप्रमानक युद्ध होने लगा ।
 आपने पुत्रों को देखकर महारथी भीमसेन आहूति
 पड़ने से प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित
 हो उठे । आपके पुत्र वंश ही भीमसेन पर बाण बरसाने
 लगे जैसे मंत्र पर्वत पर जल बरसाने हैं ॥ २१-२२ ॥
 पराक्रमी भीमसेन क्रोध से होठ चाटते हुए आपके
 पुत्रों पर बाण बरसा रहे थे । उन्होंने तीक्ष्ण क्षुरप
 बाण से व्यूढोरस्क नाम के राजकुमार का सिर काट
 डाला । फिर एक तीक्ष्ण भल्ल बाण मारकर सुण्डनी
 नाम के राजकुमार को भीसे ही मार डाला जैसे सिंह मृग
 को मार डालता है ॥ २२-२३ ॥ अब वे स्वर्ग में आपके

अन्य पुत्रों पर बाण बरसाने लगे । हे राजेन्द्र ! भीमसेन
 के अर्घ्य बाणों के प्रहार से अनाधृष्य, कुण्डभेदी,
 वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज
 नामक आपके पुत्र मारकर रथ पर से गिर पड़े । पृथ्वी
 पर पड़े हुए वे वीर राजकुमार उत्तङ्गतर गिरे हुए
 पुण पूर्ण आग के वृक्षों की तरह देल पड़े ॥ २५-२८ ॥
 महाराहु भीमसेन को माक्षत् काष्ठ के समान सन्मुख
 देगकर आपके अन्य पुत्र भय के मोर इधर उधर
 भागने लगे । हे महाराज ! महारथी द्रोणाचार्य भीमसेन
 के हाथों आपके पुत्रों की मृत्यु देगकर उन पर तीक्ष्ण
 कणों की वर्षा करने लगे । द्रोण के बाणों से पीड़ित
 होकर भी भीमसेन ने आपके पुत्रों को मारकर अपने

तत्राऽऽद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् ।
 द्रोणेन वार्यमाणोऽपि निजघ्ने यत्सुतांस्तव ॥ ३१ ॥
 यथा गोवृषभो वर्षं सन्धारयति खात्पतत् ।
 भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत् ॥ ३२ ॥
 अद्भुतं च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः ।
 यत्पुत्रांस्तेऽवधीत्संख्ये द्रोणं चैव न्यवारयत् ॥ ३३ ॥
 पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडाऽर्जुनपूर्वजः ।
 मृगेष्विव महाराज चरन्व्याघ्रो महाबलः ॥ ३४ ॥
 यथा हि पशुमध्यस्थो दारयेत पशून्वृकः ।
 वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद्रणे ॥ ३५ ॥
 गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथाः ।
 पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुर्जुनम् ॥ ३६ ॥
 अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां सोऽतिरथो रणे ।
 प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३७ ॥
 अभिमन्युस्तु राजानमम्वष्टं लोकविश्रुतम् ।
 विरथं रथिनां श्रेष्ठं वारयामास सायकैः ॥ ३८ ॥
 विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रेण यशस्विना ।
 अवप्लुत्य रथानूर्णमम्वष्टो वसुधाधिपः ॥ ३९ ॥
 अस्ति विक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः ।
 आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महाबलः ॥ ४० ॥
 आपतन्तं तु निखिद्रं युद्धमार्गविशारदः ।
 लाघवाद्द्वयंसयामास सौभद्रः परवीरहा ॥ ४१ ॥

अद्भुत वीर्य का परिचय दिया। बगी सौंद जैसे
 आवास में गिरती हुई नुँदों के रंग को महज ही सह
 रता है, जैसे ही भीमसेन भाद्रोणाचार्य के बाणा को
 सहने लगे ॥२८॥३२॥ भीमसेन ने एक साथ द्रोणा
 चार्य का सामना किया और अपने पुत्र को भी मारा,
 यह देखकर मचरी यहा आभय हुआ। हे महाराज!
 व्याघ्र जैसे भृगों के छुण्ड में घूमता और क्रीड़ा करता
 है। मैं ही महाबाही भीमसेन भी आसक्त पुत्रों के मध्य
 में बिचले हुए मुद को क्रीड़ा करने लगे। एक

भेदिया जैसे महत्सो पशुओं को मार डालता है जैसे
 ही भीमसेन आपके पुत्रों के मध्य में जाकर उन्हें
 मगाने लगे ॥३२॥३५॥ शर महारथी भीष्म, मगदस
 और व्याचार्य अनुग्रहादी अर्जुन को बड़े रंग में
 और देखकर रुकने के साथ उठे गंगने लगे। अर्जुन
 रथी बोधा अर्जुन ने अपने दिव्य अस्त्रों में उनके अस्त्रों
 को निरस्त कर दिया। वे वीरसेना के मुख्य-मुख्य
 योदों को मारने लगे। अभिनय ने अलग-अलग मार-
 कर रात अन्धकार के मध्य में दुर्ग-दुर्गद कर डाले

व्यंसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा ।
 साधु साधिति सैन्यानां प्रणादोऽभूद्विशम्पते ॥ ४२ ॥
 धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन् ।
 तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ॥ ४३ ॥
 तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
 निघ्नतां दृढमन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥ ४४ ॥
 अन्योन्यं हि रणे शूराः केशेष्वक्षिप्य मानिनः ।
 नखदन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
 तलैश्चैवाऽथ निस्त्रिंशैर्बाहुभिश्च सुसंस्थितैः ।
 विवरं प्राप्य चाऽन्योन्यमनयन्यमसादनम् ॥ ४६ ॥
 न्यहनञ्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
 व्याकुलीकृतसर्वाङ्गा युयुधुस्तत्र मानवाः ॥ ४७ ॥
 रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि मारिष्य
 हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः ॥ ४८ ॥
 जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैर्निशिताः शराः ।
 तैलयौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः ॥ ४९ ॥
 हस्तिदन्तस्सरून्खङ्गाजातरूपपरिष्कृतान् ।
 चर्माणि चाऽपविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनाम् ॥ ५० ॥
 सुवर्णविकृतप्रासान्पाट्टिशान्हेमभूषितान् ।
 जातरूपमयाश्चर्षीः शक्तीश्च कनकाज्ज्वलाः ॥ ५१ ॥

॥३६॥३८॥ अभिमन्यु के बाणों से रथ टूटते देखकर
 राजा अम्बष्ठ रथ से उतर पड़े और अभिमन्यु पर
 खड्ग का बार कारके हार्दिक्य के रथ पर चढ़ गये ।
 युद्धनिपुण शत्रुदमन अभिमन्यु ने अम्बष्ठ के उस खड्ग
 को टुकड़े-टुकड़े कर डाला । यह देखकर सब सैनिक
 “वाह वाह” करते लगे ॥३९॥४२॥ हे महाराज !
 धृष्टपुत्र आदि पाण्डवपक्ष के योद्धा आपकी सेना से
 आर आपके योद्धा उनकी सेना में भिड़कर घोर युद्ध
 करते लगे । दोनों पक्ष के सैनिक लेश परस्पर भिड़कर
 एक दूसरे के केश पकड़कर खींचते और नख, दाँत
 नुँम, घुटने, पण्ड, रात्र, कुहनी आदि के प्रहारों
 में मरते और मारते थे ॥४३॥४६॥ युद्ध के ओरश

में आकर पिता पुत्रों को और पुत्र पिता आदि को
 मार रहे थे । शत्रुपक्ष के बाणों से योद्धाओं के अङ्ग
 कट-फट जाते थे । मरे हुए लोगों के सुवर्णमण्डित
 पीठ और मूठवाले मनोहर धनुष और बहुमूल्य अल-
 ङ्कार युद्धभूमि में धर-उधर दिखाई दे रहे थे । सोने-
 चाँदी से शोभित, तीक्ष्ण बाण केंचुल से निकले हुए
 नागों की तरह रणभूमि में शिरते थे ॥४७॥४९॥
 हार्पादों की मूठों से शोभित सुवर्णमण्डित खड्ग,
 दाँते, प्रास, पट्टिश, सुवर्णमण्डित ऋष्टि, शक्ति, वक्षिया
 कवच, भारी मूसल, भिन्दिपाल, विविध स्वर्णभूषित
 धनुष, अनेक प्रकार के परिष, चामर, व्यजन और
 अन्य कई प्रकार के अल-शस्त्रों की हाथ में लिये

सुसन्नाहाश्च पतिता मुसलानि गुरूणि च ।
 परिधान्पाट्टिशाश्चैव भिन्दिपालांश्च मारिप ॥ ५२ ॥
 पतितान्विविधांश्चापांश्चित्रान्हेमपरिष्कृतान् ।
 कुथा बहुविधाकाराश्चामरा व्यजनानि च ॥ ५३ ॥
 नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य पतिता नराः ।
 जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वा महारथाः ॥ ५४ ॥
 गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ।
 गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ ॥ ५५ ॥
 तथैवाऽश्वनृनागानां शरीरैर्विवभौ तदा ।
 सञ्छन्ना वसुधा राजन्पर्वतैरिव सर्वशः ॥ ५६ ॥
 समरे पतितैश्चैव शक्यृष्टिशरतामरैः ।
 निखिंशैः पाट्टिशैः प्रासैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ॥ ५७ ॥
 परिधैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिश्च मारिप ।
 शरीरैः शस्त्रनिर्भिन्नः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ५८ ॥
 विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः ।
 गतासुभिरमित्रघ्न विवभौ निचिता मही ॥ ५९ ॥
 सतलत्रैः सकेयूरैर्वाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
 हस्तिहस्तोपमैरिच्छत्रैरूढभिश्च तरस्विनाम् ॥ ६० ॥
 बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
 पातितैर्नृपभाक्षाणां वभौ भारत मेदिनी ॥ ६१ ॥
 कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च कायनेः ।
 रराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवाऽनलैः ॥ ६२ ॥

महारथी वीर मर जाने पर भी दूर से जीवित से जान पड़ने थे ॥५०॥५४॥ बहुतों के शरीर गदा के प्रहार से चिपड़ा हो गये थे, बहुतों के मिर मूसल की चोट से पट गये थे और बहुत में घोड़ा हाथी, घोड़े, रथ आदि के नीचे कुलल गये थे । ऐसे अमर्य मनुष्य जहाँ-तहाँ पड़े हुए थे । हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के शरीरों के डेरों से यह पृथ्वी पर्यन्तभी मी जान पड़ती थी । शस्त्रों में छिन्न-भिन्न नर-शरीरों से और शक्ति, क्रुति, तोमर, बाण, गद्ग, पाट्टिश, प्राम, बर्छी,

परशु, परिध, भिन्दिपाल और शतघ्नी आदि से पृथ्वी भरी पड़ी थी ॥५५॥५८॥ हे महाराज ! उनमें से कोई चुनचाप पड़ा था, कोई धीरे-धीरे कराह रहा था, कोई जोर में चिड़ा रहा था और कोई निद्रकुन मरा पड़ा था। केयूरभूषित चन्दनचर्चित बाहु, हाथों की मुँह के ममान जोंध, चूडामणि और कुण्डलों में भूषित निर मंत्र फटे पड़े थे । उनमें रणभूमि की अदृश्य भीम शोभा हो रही थी । गद्ग से सने हुए स्वर्णमय कवच चारों ओर पड़े हुए थे, जिनमें बट युद्धभूमि अग्नि-

विप्रविद्धैः कलौपैश्च पतितैश्च शरासनैः ।
 विप्रकीर्णैः शरैश्चैव स्वमपुद्गैः समन्ततः ॥ ६३ ॥
 रथैश्च सर्वतोभयैः किङ्किणीजालभूपितैः ।
 वाजिभिश्च हतैर्वाणैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः ॥ ६४ ॥
 अनुकपैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि ।
 प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः ॥ ६५ ॥
 स्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विवभौ मही ।
 नानारूपैरलङ्कारैः प्रमदेवाऽभ्यलङ्कृता ॥ ६६ ॥
 दन्तिभिश्चाऽपरैस्तत्र सप्रासैर्गाढवेदनैः ।
 करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरं च मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥
 विवभौ तद्रणस्थानं स्यन्दमानैरिवाऽचलैः ।
 नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनाम् ॥ ६८ ॥
 वैदूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरङ्कुशैः शुभैः ।
 घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः ॥ ६९ ॥
 विपाटितविचित्राभिः कुथाभिरङ्कुशैस्तथा ।
 ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च स्वमकक्ष्याभिरेव च ॥ ७० ॥
 यन्त्रैश्च बहुधा छिन्नैस्तोमरैश्चाऽपि काञ्चनैः ।
 अश्वानां रेणुकपिलैः स्वमच्छन्नैरुश्छदैः ॥ ७१ ॥
 सादिनां भुजगैश्छिन्नैः पतितैः साह्वदैस्तथा ।
 प्रासैश्च विमलैस्तीक्ष्णैर्विमलाभिस्तथाष्टिभिः ॥ ७२ ॥
 उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रविद्धैस्ततस्ततः ।
 विचित्रैर्वाणवपैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ॥ ७३ ॥

शिखामयी सी प्रतीत होती थी ॥५९॥६२॥ सुवर्णपुङ्ख
 बाण, धनुष, तर्जस, किङ्किणीजालभूपित टूटे हुए
 रथ, रक्त से युक्त निकर्ण हुई जीभ, घोड़े, रथ, अनुरूप,
 पताका, मटमेली घञा, महाशङ्ख आदि सर्वत्र पड़े
 थे । उनसे वह पृथ्वी अलङ्कारों से भूपित स्त्री के
 समान शोभायमान हो रही थी । हाथियों की सूँड़े
 वट गई थीं और वे पृथ्वी पर पड़े थे । प्रास के प्रहार
 से घायल और गहरी यन्त्रणा से पीड़ित हाथी चीत्कार
 करते हुए सूँड़ पटग रहे थे । उनसे वह पृथ्वी झरनों

से शोभित पर्वतों से व्याप्त सी जान पड़ती थी ॥६३॥
 ६८॥ तरह-तरह के कम्बल, हाथियों की विचित्र
 झले, वैदूर्यमणिमण्डित दण्ड, अँबुदा, घण्टा, फटे हुए
 विचित्र आसन, विचित्र कण्ठभूषण, सोने की जञ्जारें,
 छिन्न भिन्न यन्त्र, काञ्चनमण्डित तोमर, धूल से सने
 हुए छत्र, कबच, सगरा की अङ्गदभूषित कटी हुई
 भुजाएँ, विमल तीक्ष्ण प्रास, यष्टि, पगड़ी, सुवर्णमय
 विचित्र बाण, घोड़ों के परिमर्दित विचित्र कम्बल,
 राङ्गन कम्बल, राजाओं के मस्तक की विचित्र चूड़ामणि,

अश्वास्तरपरिस्तोमैराङ्गवैर्मृदितैस्तथा ।
 नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ॥ ७४ ॥
 छत्रैस्तथाऽपविष्टैश्च चामरैर्व्यजनैरपि ।
 पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ७५ ॥
 क्लृप्तमश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ।
 अपविष्टैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलैः ॥ ७६ ॥
 ग्रहनक्षत्रशबला द्यौर्वाऽऽसीदसुन्धरा ।
 एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत ॥ ७७ ॥
 परस्परं समासाद्य तत्र तेषां च संयुगे ।
 तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत ॥ ७८ ॥
 रात्रिः समभवत्तत्र नाऽपश्याम ततोऽनुगान् ।
 ततोऽबहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥ ७९ ॥
 रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये ।
 अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
 न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिविरं तदा ॥ ८० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मभ्युपनिषत्पर्वणि अष्टमदिवससुद्राह्वारं पञ्चांगितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

छत्र, चामर, व्यजन और वीरों के मनोहर कुण्डलों से शोभित श्मश्रुयुक्त प्रकाशपूर्ण सिर इधर-उधर पड़े थे। उनसे यह पृथ्वी ग्रह-नक्षत्र-भूषित आकाश के समान शोभा पा रही थी ॥६८७७॥ हे नरनाथ ! दोनों पक्ष के वीर जब अभिप्राय से मारे जा चुके

तब मरने से बचे हुए योद्धा पककर भागने और कुचले जाने लगे। इतने में महाभयङ्कर रात्रि आ गई। उस समय समरभूमि में कुछ भी नहीं सूझता था। तब कौरवों और पाण्डवों ने युद्ध समाप्त कर दिया। सब लोग अपने-अपने डेरों में जाकर विश्राम करने लगे ॥७७८०॥

भीष्मपर्व का द्वितीयपर्व अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९६ ॥

अथ मत्तनवतिनोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

सप्तम उवाच — ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चाऽपि सौचलः ।
 दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूनपुत्रश्च दुर्जयः ॥ १ ॥
 समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवाक्षितम् ।
 कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति ॥ २ ॥

मत्तनवतिनोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

सप्तम ने कहा— हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् राजा दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्ण तीनों मित्रकर सम्मति करके लगे कि किस प्रकार मेना महिष

पाण्डवों को परान्त किया जा सकता है। अब दुर्योधन ने कर्ण और शकुनि को सम्बोधन करके कहा— हे वीरो ! मेरी ममता में नहीं आता कि द्रोणाचार्य

ततो दुर्योधनो राजा सर्वास्तानाह मन्त्रिणः ।

सूतपुत्रं समाभाष्य सौवलं च महाबलम् ॥ ३ ॥

द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे ।

न पार्थान्प्रतिवाधन्ते न जाने तच्च कारणम् ॥ ४ ॥

अवध्यमानास्ते चाऽपि क्षपयन्ति बलं मम ।

सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे ॥ ५ ॥

निकृतः पाण्डवैः शूरैरवध्यैर्देवतैरपि ।

सोऽहं संशयमापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे ॥ ६ ॥

तमब्रवीन्महाराज सूतपुत्रो नराधिपम् ।

कर्ण उवाच—मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव ॥ ७ ॥

भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात् ।

निवृत्ते युधि गाङ्गे न्यस्तशस्त्रे च भारत ॥ ८ ॥

अहं पार्थान्हनिष्यामि सहितान्सर्वसोमकैः ।

पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप ॥ ९ ॥

पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति वै ।

अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान्महारथान् ॥ १० ॥

अभिमानी रणे भीष्मो नित्यं चापि रणप्रियः ।

स कथं पाण्डवान्युद्धे जेष्यते तात सङ्गतान् ॥ ११ ॥

स त्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिविरं प्रति ।

अनुमान्य गुरुं बृद्धं शस्त्रं न्यासय भारत ॥ १२ ॥

भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा, ये लोग पाण्डवों को क्यों नहीं परास्त करते या मारते । पाण्डव लोग जीवित रहकर बिना किसी बाधा के हमारे पक्ष की सेना को नष्ट कर रहे हैं । हे कर्ण ! मेरी सेना और अथ-शल्य दिन-दिन घटते जा रहे हैं । सुनता हूँ, पाण्डवों को देवता भी नहीं मार सके । वे ऐसे ही शूर हैं । मैं उन्हें किस प्रकार मारूँगा या परास्त करूँगा ! मुझे बड़ा सन्देह और चिन्ता हो रही है ॥१॥६॥ कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप बृथा शोक न करें । मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा । केरत विनामह भीष्म को शीघ्र इस युद्ध में प्रयुक्त हो जाने दो । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि भीष्म अथ-शल्य स्वयं

वर युद्ध से हट जायें तो मैं, उनके सम्मुख ही, सोमकों सहित पाण्डवों को मार डालूँगा ॥७॥९॥ भीष्म पितामह पाण्डवों पर बहुत दया रखते हैं । इस कारण वे कभी पाण्डवों को परास्त नहीं कर सकेंगे । भीष्म अत्यन्त समर-प्रिय हैं । वे अभिमानी भीष्म कैसे पाण्डवों को जितकर युद्ध को समाप्त कर देंगे ! हे राजेन्द्र ! अथ शीघ्र भीष्म के शिविर में जाइए । वे आपके गुरुजन, बृद्ध और मान्य हैं । आप उनसे प्रार्थनापूर्वक अनुरोध कीजिए जिसमें शस्त्र रखकर वे युद्ध से अलग हो जायें । वे शस्त्रलग कर देंगे तो आप निश्चय जानिए कि मैं अकेला ही वन्धु-बान्धव-सुहृद-सहित पाण्डवों को मार डालूँगा ॥१०॥१३॥

न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान्पश्य पाण्डवान् ।
 मयैकेन रणे राजन्समुद्ब्रूणवान्धवान् ॥ १३ ॥
 एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
 अत्रवीद्भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः ॥ १४ ॥
 अनुयात्रं यथा सर्वं सजीभवति सर्वशः ।
 दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय ॥ १५ ॥
 एवमुक्त्वा ततो राजन्कर्णमाह जनेश्वरः ।
 अनुमान्य रणे भीष्ममेपोऽहं द्विपदां वरम् ॥ १६ ॥
 आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमारिन्दम ।
 अपक्रान्ते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे ॥ १७ ॥
 निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशम्पते ।
 सहितो भ्रातृभिस्तेस्तु देवैरिव शतक्रतुः ॥ १८ ॥
 ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
 आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्तदा ॥ १९ ॥
 अङ्गदी वद्धमुकुटो हस्ताभरणवान्पुत्र ।
 धार्तराष्ट्रो महाराज विवभौ स पथि व्रजन् ॥ २० ॥
 भण्डीपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभेन च ।
 अनुलितः पराद्धयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ २१ ॥
 अरजोम्बरसंवीतः सिंहखेलगतिर्नृप ।
 शुशुभे विमलार्चिष्मात्रभसीव दिवाकरः ॥ २२ ॥
 तं प्रयान्तं नरव्याघ्रं भीष्मस्य शिविरं प्रति ।
 अनुजग्मुर्मेहेष्वासाः सर्वलोकस्य धन्विनः ॥ २३ ॥

हे राजेन्द्र ! कर्ण के ऐसे वचन सुनकर दुर्योधन ने दुःशासन से कहा—हे भाई ! शीघ्र मेरे साथियों को प्रस्तुत होने की आज्ञा दो । अत्र दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि हे शत्रुघ्न ! मैं भीष्म को अस्त्र-शस्त्र त्यागकर युद्ध से शृङ्खल होने के लिए प्रमत्त करके अभी तुम्हारे निकट आता हूँ । भीष्म युद्ध करना छोड़ देंगे तो तुम शीघ्र युद्ध करके पाण्डवों को मारना । हे महाराज ! कर्ण से जो वदकर देनाओं के मध्य में इन्द्र के समान अपने भाइयों के साथ राजा दुर्योधन

भीष्म के पास जाने को प्रस्तुत हुए ॥ १४ ॥ १८ ॥
 दुःशासन ने पराक्रमी दुर्योधन को घोड़े पर सवार कराया । सिंह के समान रोमंते धीरे दुर्योधन ने अङ्गद, मुकुट और हाथों के अन्य आभूषण पहने । ये मञ्जीठ के पुष्प के समान कान्तिगले, सुनहरे रङ्ग के, शरीर में सुगन्धि चन्दन और अङ्गार लगाये हुए थे । स्वच्छ वस्त्र और भूषण पहने सूर्य के समान तेजस्वी राजा दुर्योधन शक्ति से भीष्म के शिविर की ओर ॥ १९, २०, २१ ॥ जैसे देवगण देवदेव में इन्द्र की

अभिवाच्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने ।
 काञ्चने सर्वतोभद्रे स्पृहयास्तरणसंवृते ॥ ३५ ॥
 उवाच प्राञ्जलिभीष्मं वाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ।
 त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ॥ ३६ ॥
 उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान् ।
 किमु पाण्डुसुतान्वीरान्ससुहृद्गणवान्धवान् ॥ ३७ ॥
 तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो ।
 जहि पाण्डुसुतान्वीरान्महेन्द्र इव दानवान् ॥ ३८ ॥
 अहं सर्वान्महाराज निहनिष्यामि सोमकान् ।
 पञ्चालान्केकयैः सार्धं करुपांश्चेति भारत ॥ ३९ ॥
 त्वद्वचः सत्यमेवाऽस्तु जहि पार्थान्समागतान् ।
 सोमकांश्च महेष्वासान्सत्यवाग्भव भारत ॥ ४० ॥
 दयया यदि वा राजन्द्रेष्यभावान्मम प्रभो ।
 मन्दभाग्यतया चापि मम रक्षसि पाण्डवान् ॥ ४१ ॥
 अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् ।
 स जेष्यति रणे पार्थान्ससुहृद्गणवान्धवान् ॥ ४२ ॥
 स एवमुक्त्वा नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
 नोवाच वचनं किञ्चिद्भीष्मं सत्यपराक्रमम् ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मं प्रति दुर्योधनवाक्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

भीष्म के शिरि में पहुँचकर सवारी से उतरे और पिनाम्ह के पास गये । उन्हें प्रणाम करके, सर्वतोभद्र मदागुण्य गलीचे के ऊपर सेने के सिंहासन पर बैठकर, हाथ जोड़कर नेत्रों में आँसू भरे हुए वे गद्गद स्वर से करने लगे—हे शत्रुनाशन ! हम आपका आग्रह लेकर पाण्डवों को कौन कहे, देवताओं और दानवों को भी युद्ध में परास्त करने का साहस कर सकते हैं ॥३४॥३७॥ इसलिये हे पिनाम्ह ! इन्द्र जैसे दानवों को परास्त करने हैं वैसे ही आप पाण्डवों को परास्त कीजिए । हे महामने ! आप मम मौनियों,

पाखायों, कर्णियों और कल्पों को परास्त करने का प्रण कर चुके हैं । इस समय वह अपना वचन सत्य कीजिए । अपना जो आप पाण्डवों पर दया या हम पर द्वेष की दृष्टि रखने के या हमारे अभाग्य के कारण पाण्डवों को मार डालना न चाहते हों तो फिर युद्धमय कर्ण को युद्ध करने का आज्ञा दे दीजिए । वे मम में बन्धु-बान्धवों-सहित पाण्डवों को परास्त करने मार डालने के लिये प्रस्तुत हैं । कीरवश्रुत दुर्योधन भीष्म में यह कहकर चुप हो रहे ॥३८॥४३॥

भीष्मार्थ का सत्तानेयों अध्याय ममस हुआ ॥ ९७ ॥

अथ अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

सञ्जय उवाच — वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः ।
 दुःखेन महताऽऽविष्टो नोवाचाऽप्रियमण्वपि ॥ १ ॥
 स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः ।
 श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया ॥ २ ॥
 उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत ।
 सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदां वरः ॥ ३ ॥
 अब्रवीत्तव पुत्रं स सामपूर्वमिदं वचः ।
 किं त्वं दुर्योधनैव मां वाक्शल्यैरपकुन्तसि ॥ ४ ॥
 घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम् ।
 जुह्वानं समरे प्राणांस्तव वै प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥
 यदा तु पाण्डवः शूरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ।
 पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ६ ॥
 यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा ।
 अमोचयत्पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ७ ॥
 द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तव प्रभो ।
 सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८ ॥
 यच्च नः सहितान्सर्वान्विराटनगरे तदा ।
 एक एव समुत्थातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ९ ॥
 द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे ।
 वासांसि स समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १० ॥

अष्टानवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! वाक्य-बाण द्वारा दुर्योधन ने भीष्म पितामह के मर्मस्थल में चोट पहुँचाई । वे दुःख से अत्यन्त कानर और व्यथित होकर महानाग की तरह श्वास लेते हुए शान्त हो रहे । दूसरे काल के समान भीष्म की आँखें क्रोध से लाल होकर ऊपर चढ़ गईं । वे इस प्रकार देगने लगे मानों देवना-दैत्य-गन्धर्व-मनुष्य आदि सहित तर्जनों दोनों को भस्म कर डालेंगे; किन्तु उन्होंने कोई अप्रिय या गन्गी धान नहीं खाई । क्षण भर के पश्चात् शान्त भाव से समझने हुए पितामह बोले—मुने

दुर्योधन ! मैं प्राणों की अपेक्षा न करके यथाशक्ति यत्पूर्वक तुम्हारा प्रिय करने की चेष्टा कर रहा हूँ । तब भी तुम ऐसे वचन-बाणों से क्यों मेरे मर्मस्थल की चोट पहुँचाते हो ? अर्जुन ने खाण्डव-दाह के समय इन्द्र आदि देवताओं की जीतकर अग्नि की तृप्त किया था, वही उनके पराक्रम का यथेष्ट प्रमाण है ॥१॥६॥ गन्धर्गण जब तुमको पराङ्मुख ले चले थे, तुम्हारे शूर भाई और कर्ण तुमको छोड़कर भाग गये थे तब अर्जुन, तुमको छुड़ाकर, अपने पराक्रम का यथेष्ट परिचय दे चुके हैं । विराट नगर में गाँवें दहने के

तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतमथाऽपि च ।
 गोघ्रे जितवान्पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ११ ॥
 विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम् ।
 उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १२ ॥
 निवातकवचान्युद्धे वासवेनाऽपि दुर्जयान् ।
 जितवान्समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १३ ॥
 को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा ।
 यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥
 वासुदेवोऽनन्तशक्तिः सृष्टिसंहारकारकः ।
 सर्वेश्वरो देवदेवः परमात्मा सनातनः ॥ १५ ॥
 उक्तोऽसि बहुशो राजन्नारदाद्यैर्महर्षिभिः ।
 त्वं तु मोहान्न जानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥ १६ ॥
 मुमुर्षुर्हि नरः सर्वान्बृक्षान्पश्यति काञ्चनान् ।
 तथा त्वमपि गान्धारे विपरीतानि पश्यसि ॥ १७ ॥
 स्वयं वैरं महत्कृत्वा पाण्डवैः सह सृज्यैः ।
 युद्धयस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव ॥ १८ ॥
 अहं तु सोमकान्सर्वान्पञ्चालांश्च समागतान् ।
 निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखण्डिनम् ॥ १९ ॥
 तैर्वाऽहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम् ।
 तान्वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव ॥ २० ॥

समय हम सब योद्धा मित्रकर भी अनेके अर्जुन का
 कुछ नहीं कर सके, परन्तु उन्होंने हम सबको जीत
 लिया । यही उनके बल का यथेष्ट परिचय है । उस
 समय अर्जुन दुपित द्रोणाचार्य को, मुल्लभो, महारथी
 अश्वत्थामा को और कृपाचार्य को जीतकर हम सबके
 वस्त्र उतार ले गये थे, यही उनके बल का श्रेष्ठ निद-
 र्शन है ॥७।१०॥ अपने को शूर और मर्द मानकर
 सदा अभिमान करने वाले कर्ण को भी उस समय
 जीतकर अर्जुन उसके वस्त्र ले गये थे और उसके वे
 वस्त्र बालिका उत्तराको दिये थे, यही उनके पराक्रम
 का अच्छा परिचय है । इन्द्र भी जिन्हें हरा नहीं सके
 उन निवात कवच दानवों को अर्जुन ने सहज में

मार डाला, यही उनके बल का श्रेष्ठ प्रमाण है ॥११।
 १३॥ हे राजेन्द्र ! नारद आदि महर्षि जिन्हें महाशक्ति-
 सम्पन्न, सृष्टि स्थिति प्रलयकारी, सन के ईश्वर, देवदेव,
 परमात्मा और सनातन पुरुष कहते हैं, वह शङ्ख-चक्र-
 गदा पद्मगारी, बिन्दु रक्षक, वासुदेव अर्जुन के सहा-
 यक आर रक्षक हैं । उन महाप्रतापी यशस्वी अर्जुन
 को युद्ध में कोन परास्त कर सकता है ? हे दुर्योजन !
 मोह के वश होने से तुम्हें कार्य अकार्य का ज्ञान
 नहीं है ॥१५।१६॥ धृष्ट के वश मनुष्य जैसे साधारण
 वृक्षों को सुखर्णमय देखता है वैसे ही तुम सब बातों
 को विपरीत देख रहे हो । तुमने आप ही पहले
 अन्याय करके सुख्यों और पाण्डवों के साथ वैरमान

पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखण्डी राजवेश्मनि ।
 वरदानात्पुमाञ्जातः सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २१ ॥
 तमहं न हनिष्यामि प्राणत्यागेऽपि भारत ।
 याऽसौ प्राङ्निर्मिता धात्रा सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २२ ॥
 सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽस्मि कर्ता महारणम् ।
 यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत्स्थास्यति मेदिनी ॥ २३ ॥
 एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर ।
 अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम् ॥ २४ ॥
 आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनम् ।
 प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयङ्करः ॥ २५ ॥
 प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिव ।
 प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान्द्रुपः ॥ २६ ॥
 राज्ञः समाज्ञापयत् सेनां योजयतेति ह ।
 अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यतिसोमकान् ॥ २७ ॥
 दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलापितं बहु ।
 मन्यमानः स तं राजन्प्रत्यादेशमिवाऽऽत्मनः ॥ २८ ॥
 निवेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम् ।
 दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥ २९ ॥
 इङ्कितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम् ।
 दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥ ३० ॥

उत्पन्न किया है। इस समय हम लोगों के सामने उनकी
 युद्ध में हराकर अपना पौरुष दिखाओ। या तो मैं
 शिखण्डी के अतिरिक्त सब सृज्यों और पाञ्चालों को
 मारकर तुम्हारा प्रिय करूँगा या मैं स्वयं उनके हाथ
 से मारा जाऊँगा ॥ २७ ॥ शिखण्डी अपने पिता
 के यहाँ पहले स्त्री-रूप में उत्पन्न होकर पीछे यक्ष के
 वरदान से पुरुष हुआ है। चास्तव में वह स्त्री ही है।
 हे भारत ! मैं प्राण भले दे दूँगा, परन्तु उस पर बार
 नहीं करूँगा। क्योंकि पहले विधाता ने उसे स्त्री-रूप
 से उत्पन्न किया है। हे दुर्योधन ! अब तुम जाकर
 विश्राम करो। मैं कल महाघोर युद्ध करूँगा। जब
 तक पृथ्वी रहेगी, तब तक मेरे उस युद्ध की चर्चा

रहेगी ॥ २१ ॥ २३ ॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजा धृतराष्ट्र !
 भीष्म ने जब आपके पुत्र दुर्योधन से यह कहा, तब
 उन्होंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। फिर वे अपने
 शिविर में आकर सुख से लेटकर विश्राम करने लगे।
 रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातःकाल होने पर उठकर
 दुर्योधन ने सब राजाओं को आज्ञा दी कि हे वीरो !
 तुम लोग सेना तैयार करो। आज भीष्म कुपित होकर
 सोमकों को मारेगा ॥ २४ ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! रात्रि को
 भीष्म ने दुर्योधन के उन वचनों को अपने लिए
 तिरस्कार समझा। वे पराधीनता की बहुत निन्दा करके
 खिन्न होकर अर्जुन से युद्ध करने के बारे में सोचते
 रहे। उनके इस भाव को समझकर दुर्योधन ने

दुःशासन रथास्तूर्ण युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।
 द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाऽभिचोदय ॥ ३१ ॥
 इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूर्णाभिचिन्तितम् ।
 पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चाऽऽगमः ॥ ३२ ॥
 तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम् ।
 स नो युतः सहायः स्याद्धन्यात्पार्थाश्च संयुगे ॥ ३३ ॥
 अत्रवीद्धि विशुद्धात्मा नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
 स्त्रीपूर्वको हासौ राजंस्तस्माद्भय्यो मया रणे ॥ ३४ ॥
 लोकस्तेद्वद् यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
 राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान्पुरा ॥ ३५ ॥
 नैव चाऽहं स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथञ्चन ।
 हन्यां युधि नरश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३६ ॥
 अयं स्त्रीपूर्वको राजञ्छिखण्डी यदि ते श्रुतः ।
 उद्योगे कथितं यत्तत्तथा जाता शिखण्डिनी ॥ ३७ ॥
 कन्या भूत्वा पुमाञ्जातः स च मां योधयिष्यति ।
 तस्याऽहं प्रमुखे बाणान्न मुञ्चेयं कथञ्चन ॥ ३८ ॥
 युद्धे हि क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः ।
 सर्वानन्यान्हनिष्यामि सम्प्राप्तान्रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥
 एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित् ।
 तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम् ॥ ४० ॥

दुःशासन से कहा--हे दुःशासन ! तुम भीष्म
 की रक्षा के लिए अस्त्राय रथी आर सेना के बाईस
 बड़े बड़े दल भेजो ॥२८॥३१॥ मैं बहुत दिनों से
 सोचता आ रहा हूँ कि सेना सहित पाण्डवों को मारकर
 राज्य प्राप्त करूँगा । इस घड़ी वही समय उपस्थित
 है । इस समय युद्ध में सब प्रकार भीष्म की रक्षा
 करना ही मुझे श्रेयस्कर जान पड़ता है क्योंकि वे
 हमारे प्रधान सहायक हैं । वे सुरक्षित रहेंगे तो पाण्डव
 अग्नय मारे जायेंगे । महात्मा भीष्म ने कहा है कि "मैं
 शिखण्डी पर कभी प्रहार नहीं करूँगा, क्योंकि वह
 पहले स्त्री था । इसी कारण वह इस युद्ध में मेरे लिए
 त्याज्य है ॥३२॥३३॥ मैं पहले, पिता के हित की

इच्छा से, विवाह और राज्य का अधिकार छोड़ चुका
 हूँ । हे राजेन्द्र ! तुमसे सत्य कहता हूँ कि मैं स्त्री
 पर या स्त्रीपूर्व पुरुष पर कभी प्रहार नहीं करूँगा ।
 युद्धारम्भ के पहले ही मैं तुमसे कह चुका हूँ कि
 शिखण्डी पहले स्त्री था, पीछे पुरुष हुआ है । वह
 शिखण्डी मुझसे युद्ध करेगा, तो मैं उस पर बाण नहीं
 चलाऊँगा । शिखण्डी के अतिरिक्त और जो कोई
 पाण्डवों की जय चाहनेवाले क्षत्रिय मेरे सामने आ
 जायेंगे, उनको मैं मारूँगा ।" ॥३५॥३६॥ हे भाई !
 शास्त्रविद्या में निपुण पितामह मुझसे यह कह चुके
 हैं । इस कारण सब प्रकार उनकी रक्षा करना हमारा
 मुख्य कर्तव्य है । वन में अश्विनि सिंह की भी भेड़िये

अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महाहवे ।
 मा वृकेणेव गाङ्गेयं घातयेम शिखण्डिना ॥ ४१ ॥
 मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः ।
 यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन्गुप्ते ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥
 एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधनवचस्तदा ।
 सर्वतो रथवंशेन गाङ्गेयं पर्यवारयन् ॥ ४३ ॥
 पुत्राश्च तव गाङ्गेयं परिवार्य ययुर्मुदा ।
 कम्पयन्तो भुवं द्यां च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥ ४४ ॥
 ते रथैः सुप्रसंयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः ।
 परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवस्थिताः ॥ ४५ ॥
 यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम् ।
 सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम् ॥ ४६ ॥
 ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत् ।
 सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ॥ ४७ ॥
 गोतारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः ।
 रक्ष्यमाणः स पार्थेन तथाऽस्माभिर्विवर्जितः ॥ ४८ ॥
 यथा भीष्मं न नो हन्याद्दुःशासन तथा कुरु ।
 भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ ४९ ॥
 भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ।
 भीष्मं तु रथवंशेन दृष्ट्वा समभिसंवृतम् ॥ ५० ॥

मार डालते हैं। इसलिए ऐसा यत्न करो जिससे भीष्म-
 रूप सिंह शिखण्डिरूप भेड़िये के हाथ से न मारे जा
 सकें। मामा शकुनि, शल्य, कृपाचार्य, द्रोणचार्य और
 विविंशति आदि सब मुख्य योद्धा यत्न के साथ भीष्म
 की रक्षा करें। उनके सुरक्षित होने से हमारी
 विजय निश्चित है ॥४०॥४२॥ तब शकुनि आदि
 वीरगण दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार, चारों ओर
 अमंग्य रथों से घेरकर, भीष्म की रक्षा करने लगे। हे
 राजेन्द्र ! आपके पुत्रगण अजानन्द और उन्माह के साथ
 मिहनाद से आकाशकण्डल और पृथ्वीकण्डल को कंपाने
 हुए, पाण्डवों के हृदय में क्षोभ उत्पन्न करके, भीष्म
 के आसपास स्थित हुए। जैसे देवागुरु-मंत्रागम में देव-

ताओं ने इन्द्र की रक्षा की थी, वैसे वे महारथी लोग
 भीष्म पितृमह की रक्षा करने लगे ॥४३॥४६॥ अब
 दुर्योधन ने फिर दुःशासन से कहा—हे भाई दुःशासन !
 युधामन्यु और उत्तमौजा नाम के दोनों वीर अर्जुन के
 रथ के बायें और दाहिने पहिये की रक्षा करते हैं।
 उनके द्वारा सुरक्षित होकर अर्जुन अश्वय शिखण्डी
 की रक्षा करेंगे। इसलिए जो हम भीष्म की रक्षा नहीं
 करेंगे तो अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी अवश्य उनकी
 मारेगा। अतएव इस समय बड़ी उपाय करना है,
 जिससे भीष्म को शिखण्डी न मार सके। दुर्योधन के
 ये वचन सुनकर, बहुत सी सेना साथ लेकर, दुःशासन
 भीष्म के पीछे उनकी रक्षा करते हुए युद्ध करते

अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह ।

शिखण्डिनं नरव्याघ्रं भीष्मस्य प्रमुखे नृप ।

स्थापयस्वाऽद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताऽहमित्युत ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

चले । इधर महारथी अर्जुन ने भीष्म को महारथियों के
मध्य सुरक्षित देखकर सेनापति धृष्टद्युम्न से कहा—
हे पाञ्चाल-राजकुमार ! शिखण्डी को भीष्म के आगे

खड़ा कर दो । आज मैं स्वयं समर में शिखण्डी की
रक्षा करूँगा ॥४७॥५१॥

भीष्मपर्व का अष्टानवविंशो अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९८ ॥

अथ ऊनगततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सञ्जय उवाच—ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सह सेनया ।

व्यूहं चाऽव्यूहत् महत्सर्वतोभद्रमात्मनः ॥ १ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च शैव्यश्चैव महारथः ।

शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २ ॥

भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत ।

अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः ॥ ३ ॥

द्रोणो भूरिश्रवाः शम्यो भगदत्तश्च मारिष ।

दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ४ ॥

अश्वत्थामा सोमदत्ताश्चाऽऽवन्त्यौ च महारथौ ।

महत्या सेनया युक्ता वामं पक्षमपालयन् ॥ ५ ॥

दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तेः सर्वतो वृतः ।

व्यूहमध्ये स्थितो राजन्याण्डवान्प्रति भारत ॥ ६ ॥

अलम्बुपो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः ।

पृष्ठतः सर्वं सैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ ॥ ७ ॥

एवं च तं तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः ।

सन्नद्धाः समदृश्यन्त प्रनपन्त इवाऽग्नयः ॥ ८ ॥

निम्नानवविंशो अध्यायः ॥ ९९ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! इसके अनन्तर सेना
साथ लेकर महारथी भीष्म युद्ध के लिए शिविर से बाहर
निकले और सर्वतोभद्र नाम के व्यूह की रचना करने
लगे । महावीर कृपाचार्य, कृतवर्मा, शैव्य, शकुनि, सिन्धु-
पति जयद्रथ, काम्बोजराज सुदक्षिण और आपके सब

पुत्रों को साथ लेकर, सब सेना के आगे, व्यूह के मुख
में महारथी प्रतापी भीष्म पितामह खड़े हुए । द्रोणाचार्य,
भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त करच पहनकर व्यूह के
दक्षिणभाग की रक्षा करने लगे ॥१॥४॥ महारथी अश्व-
त्थामा, सोमदत्त और क्रिन्द, अनुविन्द अपनी सेना

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ।
 नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्राबुभावपि । ॥ ९ ॥
 अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।
 धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ १० ॥
 स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः ।
 शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ११ ॥
 चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
 स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः ॥ १२ ॥
 अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः ।
 युयुधानो महेष्वासो युधामन्युश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥
 केकया भ्रातरंश्चैव स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
 एवं तेऽपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥
 पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
 तावकास्तु रणे यत्ताः सहसेना नराधिपाः ॥ १५ ॥
 अभ्युद्ययू रणे पार्थान्भीष्मं कृत्वाऽग्रतो नृप ।
 तथैव पाण्डवा राजन्भीमसेनपुरोगमाः ॥ १६ ॥
 भीष्मं योद्धुमभीप्सन्तः संग्रामे विजयैषिणः ।
 च्वेडाः किलकिलाः शङ्खान्क्रकचान्गोविपाणिकाः ॥ १७ ॥
 भेरीभृद्गुणवाज्रादयन्तश्च पुष्करान् ।
 पाण्डवा अभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्गवान् ॥ १८ ॥

साथ लेकर बामभाग की रक्षा करने लगे। त्रिगर्त-देश के राजा सुशर्मा के साथ महाराज दुर्योधन व्यूह के मध्यस्थल में स्थित हुए। श्रेष्ठ रथी राक्षस अलम्बुप और महारथी धृताशुष कवच पहनकर व्यूह के पृष्ठभाग की रक्षा में तत्पर हुए। कौलपक्ष के कन्धधारी वीर इस प्रकार व्यूह-रचना करके प्रचलित अग्नि के समान देख पड़ने लगे ॥१५॥॥ इधर धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव अपने व्यूह के अग्रभाग में स्थित होकर उत्तरी रक्षा करने लगे। महावीर धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, शिखण्डी, अर्जुन, राक्षस घटोत्कच, महाबाहु चेकितान, महाबली कुन्तिभोज, श्रेष्ठ धनुर्धर योद्धा अभिमन्यु, प्रतापी द्रुपद, युयुधान,

युधामन्यु और केकेय देश के पाँचों भाई राजकुमार बहुमूल्य हृद कवच पहनकर उभ व्यूह की रक्षा करते हुए समरभूमि में शोभायमान हुए। इस प्रकार दुर्भेद्य दारुण महाव्यूह की रचना करके पाण्डव भी युद्ध के लिए उद्यत हुए। कौरवपक्ष के वीर राजा लोग भीष्म को आगे करके युद्ध के लिए पाण्डवों की ओर बढ़े। युद्ध में जसाह रखेवाले भीमसेन आदि पाण्डव भी विजय की इच्छा से भीष्म की ओर बढ़े ॥१६॥॥ उस समय युद्ध के मैदान में बारम्बार, सिंहनाद, किलकिल-रव, हाथियों की चिंघार, घोड़ों और रथों का शब्द तथा अलों की झनकार चारों ओर छा गई। पाण्डव भी वीरनाद, सिंहनाद तथा

भेरीमृदङ्गशङ्खानां दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
 उत्कृष्टसिंहनादैश्च बलितैश्च पृथग्विधैः ॥ १९ ॥
 वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम त्वरान्विताः ।
 सहसैवाऽभिसंक्रुद्धास्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ २० ॥
 ततोऽन्योन्यं प्रधावन्तः सम्प्रहारं प्रचकिरे ।
 ततः शब्देन महता प्रचक्रम्ये वसुन्धरा ॥ २१ ॥
 पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विवभ्रमुः ।
 सप्रभश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत ॥ २२ ॥
 ववुश्च वातास्तुमुलाः शंसन्तः सुमहद्भयम् ।
 घोराश्च घोरनिर्हृदाः शिवास्तत्र ववाशिरे ॥ २३ ॥
 वेदयन्त्यो महाराज महद्वैशसमागतम् ।
 दिशः प्रज्वलिता राजन्यांसुवर्प पपात च ॥ २४ ॥
 रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्प तथैव च ।
 रुदतां बाहनानां च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २५ ॥
 सुप्तुबुश्च शकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशाम्पते ।
 अन्तर्हिता महानादाः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २६ ॥
 रक्षसां पुरुपादानां नदतां भैरवाब्रवान् ।
 सम्पतन्तश्च दृश्यन्ते गोमायुबलवायसाः ॥ २७ ॥
 श्वानश्च विविधैर्नादैर्वाशन्तस्तत्र मारिप ।
 ज्वलिताश्च महोल्का वै समाहृत्य दिवाकरम् ॥
 निपेतुः सहसा भूमौ वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ २८ ॥

शङ्खनाद करके उत्साह के साथ कीरों के सामने आ
 गये । कक्रव, गोविषाण, भेरी, मृदङ्ग, पणव, दुन्दुभि
 और शङ्ख आदि बाजों का घोर शब्द आकाशमण्डल
 तक गूँज उठा । कीरों लोग भी शत्रुपक्ष के प्रभुत्तर
 में प्रतिनाद करते हुए पाण्डवों की सेना पर बड़े वेग
 से आक्रमण करने लगे । इस प्रकार दोनों ओर की
 सेना परस्पर भिड़कर घोर युद्ध करने लगी । हे राजेन्द्र !
 उम समय रणभूमि में इतना शब्द और कोलाहल
 होने लगा कि उसमें पृथ्वी काँप उठी ॥ १९-२१ ॥
 माताहादी पक्षी भयानक शब्द करते हुए आकाश में
 मैडलने लगे । उज्जरत्र प्रभा के साथ उदय हुए सूर्य

का मण्डल प्रभाश्रय हो गया । अमलमूचक सिंघार-
 निघारियों के दुष्ट विह्वले हुए इधर उधर किले
 लगे । वे होनेवाटे घोर लोकक्षय की सूचना दे रहे
 थे । आनेवाले घोर मय की सूचना देती हुई विनट
 और जेर में चले लगी । दिशाओं में अग्नि लगने
 का सा लाल प्रकाश (दिग्दाह) दिगर्ह पड़ने लगा ।
 आकाश से धूट और रुधिरयुक्त हार्दिकी बरसने लगी ।
 बाहनों की आँखों में आँसू बहने लगे । काहन विन्तित-
 में देग पड़ने लगे; वे बारम्बार मउ-मूय-म्याग
 करते लगे ॥ २२-२६ ॥ महमा अदृश्य पुरुषमांजी
 राक्षसों के अनेक प्रकार के भयानक शब्द सुन पड़ने

महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये ततस्तयोः पाण्डवधार्तराष्ट्रयोः ।

चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गानिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना ॥ २९ ॥

नरेन्द्रनागाश्वसमाकुलानामभ्यायतीनामशिवे मुहूर्ते ।

वभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धतानामिव सागराणाम् ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मधर्मपर्वणि परसंव्यवृत्तनायां उग्रातदर्शने ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

लगे । गीदड़, गिद्ध, कौए और कुत्ते आदि मांसाहारी पशु-पक्षी आकाश से रणभूमि में टूट पड़ते और पृथ्वी पर दौड़ते देख पड़ने लगे । कुत्ते नाना प्रकार से विकट कर्णकटु शब्द करते और भँकते हुए फिरे लगे । सूर्य के चारों ओर से प्रज्वलित उल्काएँ पृथ्वी पर गिरकर महाभय की सूचना देने लगीं । इस प्रकार आकाश और पृथ्वी में अनेक अनिष्टसूचक उत्पात

देख पड़ने लगे । हे महाराज ! उस घोर युद्ध के समय पण्डवों और कौरवों की बड़ी-बड़ी सेनाएँ — जिनमें हाथी, घोड़े, राजा आदि थे — पवनप्रेग से कम्पित वनों की तरह शङ्ख, मृदङ्ग आदि बाजे बजाती हुई आगे बढ़ीं । कालाहलपूर्ण सेनाओं के चलने का दृश्य देखकर ऐसा जान पड़ता था कि दो महासागर क्षोभ को प्राप्त हो रहे हैं ॥ २७।२० ॥

भीष्मपर्व का निजानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९९ ॥

अथ शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

सञ्जय उवाच—अभिमन्यु रथोदारः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः ।

अभिदुद्राव तेजस्वी दुर्योधनवलं महत् ॥ १ ॥

विकिरञ्शरवर्षाणि वारिधारा इवाऽम्बुदः ।

न शोकुः समरे क्रुद्धं सौभद्रमरिसूदनम् ॥ २ ॥

शस्त्रौघिणं गाहमानं सेनासागरमक्षयम् ।

निवारयितुमप्याजौ त्वदीयाः कुरुनन्दन ॥ ३ ॥

तेन मुक्ता रणे राजञ्शराः शत्रुनिर्वहणाः ।

क्षत्रियाननयञ्शूरान्प्रेतराजनिवेशनम् ॥ ४ ॥

यमदण्डोपमानघोराञ्ज्वलिताशीविपोपमान् ।

सौभद्रः समरे क्रुद्धः प्रेषयामास सायकान् ॥ ५ ॥

स रथान्धिनस्तूर्ण हयांश्चैव ससादिनः ।

गजारोहांश्च सगजान्दारयामास फाल्गुनिः ॥ ६ ॥

एक सौ अध्याय ॥ १०० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर महातेजस्वी वीर अभिमन्यु पिङ्गल रत्न के घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर, मेघ जैसे जल बरसाता है वैसे, बाण बरसाते हुए दुर्योधन की सेना की ओर दौड़े । अनन्त सेना के भीतर घुसते हुए अख-शस्त्रधारी वीर

अभिमन्यु को कौरव लोग किसी प्रकार नहीं रोक सके ॥ १।३ ॥ अभिमन्यु के धनुष से छूटे हुए शत्रु-नाशक तीक्ष्ण बाण कौरवपक्ष के क्षत्रियों को मार-मारकर गिराने लगे । युद्धचतुर अभिमन्यु क्रुद्ध होकर यमदण्ड-सदृश भीषण और काले नाग के समान

तस्य तत्कुर्वतः कर्म महत्संख्ये महीभृतः ।
 पूजयाश्चक्रिरे हृष्टाः प्रशशंसुश्च फाल्गुनिम् ॥ ७ ॥
 तान्यनीकानि सौभद्रो द्रावयामास भारत ।
 तूलराशीनिवाऽऽकाशे मारुतः सर्वतोदिशम् ॥ ८ ॥
 तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत ।
 व्रातारं नाऽध्यगच्छन्त पङ्के मग्ना इव द्विपाः ॥ ९ ॥
 विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि नरोत्तम ।
 अभिमन्युः स्थितो राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १० ॥
 न चैनं तावका राजन्विपेहुररिघातिनम् ।
 प्रदीप्तं पावकं यद्वत्पतङ्गाः कालचोदिताः ॥ ११ ॥
 प्रहरन्सर्वशत्रुभ्यः पाण्डवानां महारथः ।
 अदृश्यत महेष्वासः सवज्ज इव वासवः ॥ १२ ॥
 हेमपृष्ठं धनुश्चाऽस्य ददृशे विचरद्दिशः ।
 तोयदेषु यथा राजन्राजमाना शतहृदा ॥ १३ ॥
 शराश्च निशिताः पीता निश्चरन्ति स्म संयुगे ।
 वनात्फुल्लद्रुमाद्राजन्भ्रमराणामिव व्रजाः ॥ १४ ॥
 तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः ।
 रथेन काश्चनाङ्गेन ददृशुर्नाऽन्तरं जनाः ॥ १५ ॥
 मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिं च सबृहद्रलम् ।
 सैनध्वं च महेष्वासो व्यचरच्छु सुष्ठु च ॥ १६ ॥

जहरीले बाण बरसाकर रथ महित रथी, बोड़े सहित
 घुड़सवार और हाथी सहित हाथी के सगर को
 भारत गिराने लगे। राजा लोग उनके अद्भुत कार्य और
 पराक्रम को देखकर, प्रसन्न होकर, प्रशंसा करने
 लगे ॥४१॥ बाण जैसे रई के ढेर को उड़ा
 देता है वैसे ही यीर अभिमन्यु के बाण कौरवपक्ष की
 सेना को भगाकर तिर-तिर करने लगे। दलदल
 में फेरे हुए हाथी की सी दशा सब सैनिकों की हो
 गई। अभिमन्यु के प्रहार से पीड़ित होकर भागते
 हुए सैनिकों की रक्षा कर सके नाला कोई योद्धा
 नहीं देग पड़ता था। महापराक्रमी अभिमन्यु अनायास
 शत्रुसेना को भगाकर प्रज्वलित अग्नि के समान शोभाप-

मान हुए ॥८१॥ काल-अग्नि पतङ्ग जैसे अग्नि
 के प्रताप को नहीं सह सकते, वैसे ही कौरव-सेना
 अभिमन्यु के पराक्रम को नहीं सह सकी। शत्रुसेना
 को मार करके हुए, वीर अभिमन्यु वज्रराजि इन्द्र के
 समान देग पड़ने थे। सुवर्ण में मढ़ी हुई पीठराखा
 उनका धनुष घनघटा में बिजली के समान शोभाप-
 मान हो रहा था ॥११॥ १२॥ फले हुए वृक्षों के वन
 में उड़ने हुए भोंतों की तरह अभिमन्यु के धनुष में
 छूटे, भजते हुए, तीक्ष्ण बाण समरभूमि में चारों ओर
 जा रहे थे। सुवर्णमय रथ पर सवार वीर अभिमन्यु
 ने मशरौर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुराचार्य
 और बृहद्रथ को ज्वलन कर दिया। ये हठि और

मण्डलीकृतमेवाऽस्य धनुः पश्याम भारत ।
 सूर्यमण्डलसङ्काशं दहतस्तव वाहिनीम् ॥ १७ ॥
 तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूराः प्रतपन्तं तरस्विनम् ।
 द्विफाल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः ॥ १८ ॥
 तेनाऽर्दिता महाराज भारती सा महाचमूः ।
 व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ १९ ॥
 द्रावयित्वा महासैन्यं कम्पयित्वा महारथान् ।
 नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः ॥ २० ॥
 तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे ।
 चक्रुरार्तस्वनं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २१ ॥
 तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य भारत ।
 मारुतोद्धतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ २२ ॥
 दुर्योधनस्तदा राजन्नाप्यशृङ्गिमभापत ।
 एष कार्णिगर्महाबाहो द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ २३ ॥
 चमूं द्रावयते क्रोधादत्रो देवचमूनिव ।
 तस्य चाऽन्यन्न पश्यामि संयुगे भेषजं महत् ॥ २४ ॥
 ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठं सर्वविद्यासु पारगम् ।
 स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभद्रमाहवे ॥ २५ ॥
 वयं पार्थ हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
 स एवमुक्तो बलवान्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २६ ॥

सुन्दरता के साथ बाण बरसाते हुए युद्धभूमि में विचरने लगे ॥ १४।१६॥ कौरवसेना का सहार करता हुआ अभिमन्यु का धनुष सर्वत्र खिचा हुआ ही देख पड़ता था । वह सूर्य की तरह चमक रहा था । शूर क्षत्रियों ने शत्रुसेना का सहार करते हुए स्फूर्तिशाली अभिमन्यु के अद्भुत काम देखाकर समझा कि इस लोक में दो अर्जुन हैं । हे राजेन्द्र ! अभिमन्यु के यणों से पीड़ित कौरवसेना, मद पिये हुए स्त्री की तरह, भ्रान्त होकर नितर-बितर होने लगी ॥ १७।१९॥ युद्धप्रिय अभिमन्यु ने शत्रुसेना के प्रधान वीरों को विचित्रित करके और गारी सेना को भगाकर अपने सुहृदों को उसी प्रकार प्रमत्त कर दिया, जिस प्रकार मयासुर को जीवनर

इन्द्र ने देवताओं को प्रसन्न किया था । कौरवपक्ष की सब सेना अभिमन्यु के प्रहारों से पीड़ित होकर भागनी हुई भेषगर्जन के समान ऊँचे स्वर से आर्तनाद करने लगी ॥ २०।२१॥ महाराज दुर्योधन ने जब वृषान से उमड़े हुए समुद्र के शब्द के समान भयभीत होकर कौरवसेना की चिन्ताहट सुनी तो राक्षसराज अलम्बुष को बुलाकर कहा—हे वीर राक्षसश्रेष्ठ ! महावीर अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु दूसरे अर्जुन की तरह, देवसेना को भगानेवाले वृषासुर की तरह, अकेला ही अपने पराक्रम में कौरवसेना को पीड़ित करके भगा रहा है । तुम सब प्रकार की युद्धविद्या में निपुण हो । उसे रोकनेवाला तुम्हारे अनिर्दिष्ट और कोई नहीं देख

प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ।
 नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ २७ ॥
 तस्य शब्देन महता पाण्डवानां बलं महत् ।
 प्राचलत्सर्वतो राजन्वातोद्धत इवाऽर्णवः ॥ २८ ॥
 बहवश्च महाराज तस्य नादेन भीषिताः ।
 प्रियान्प्राणान्परित्यज्य निपेतुर्धरणीतले ॥ २९ ॥
 कार्पिणश्चापि मुदा युक्तः प्रशङ्क सशरं धनुः ।
 नृत्यन्निव रथोपस्थे तद्रक्षः समुपाद्रवत् ॥ ३० ॥
 ततः स राक्षसः क्रुद्धः सम्प्राप्यैवाऽऽर्जुनिं रणे ।
 नाऽतिदूरे स्थितां तस्य द्रावयामास वै चक्षुः ॥ ३१ ॥
 तां बध्यमानां च तथा पाण्डवानां महाचमूम् ।
 प्रत्युद्ययौ रणे रक्षो देवसेनां यथा बलः ॥ ३२ ॥
 विमर्दः सुमहानासीत्तस्य सैन्यस्य मारिष्य ।
 रक्षसा घोररूपेण बध्यमानस्य संयुगे ॥ ३३ ॥
 ततः शरसहस्रैस्तां पाण्डवानां महाचमूम् ।
 व्यद्रावयद्रणे रक्षो दर्शयन्सपराक्रमम् ॥ ३४ ॥
 सा बध्यमाना च तथा पाण्डवानामनीकिनी ।
 रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे भयात् ॥ ३५ ॥
 प्रमृद्य च रणे सेनां पद्भिर्नी वारणो यथा ।
 ततोऽभिदुद्राव रणे द्रोपदेयान्महाबलान् ॥ ३६ ॥

पड़ता । इसदिष्ट तुम शीघ्र ही जाकर युद्ध में उसे
 मार डालें । हम लोग भीष्म और द्रोण आदि के
 साथ जाकर अर्जुन की मारेंगे ॥२७॥२८॥ दुर्योधन
 की आज्ञा पाते ही राक्षसदिष्ट अश्वत्थु वर्यामन के
 गेव के समान गरजता हुआ अभिमन्यु की ओर
 बढ़ा । उसके घोर दण्ड की सुनकर पाण्डवों की
 भारी सेना पाण्डु से लड़ते हुए समुद्र के समान
 विचित्र हो उठी । उसके दण्ड में ही हरकर बहुतों में
 भिन्न हो गये ॥२९॥३०॥ महाराज ! उस समय
 रथ पर स्थित महाराज भी अभिमन्यु धनुष-बाण हाथ
 में लेकर उस राक्षस के समुद्र में आये । अश्वत्थु ने
 अभिमन्यु की देखी ही कुछ हीन उस पर आक्रमण

किया । राक्षस को देखकर पाण्डवों की सेना भयभीत
 हो गई और भागने लगी । यह नाम का दैत्य जेम्मे देव-
 सेना के पीछे दौड़ा था, वेम्मे ही साथ बरमाना हुआ
 अश्वत्थु पाण्डवसेना के पीछे दौड़ा ॥३०॥३१॥ यह
 राक्षसगज अपना पराक्रम दिखाना और अभिमन्यु को
 बलाना हुआ पाण्डवसेना को भगने और नष्ट करने
 लगा । पाण्डवों की भारी सेना अत्यन्त व्यथित और
 भय में आकुल होकर चले और भागने लगी । हे
 महाराज ! मगर द्रोण ने समझा कि जो गिरता है उसे
 ही राक्षसगज अश्वत्थु पाण्डवसेना पर महार करता
 हुआ द्रोण की पुत्रों के समुद्र में दौड़ा । द्रोण की
 पीछे पुत्र उस राक्षस को देखकर, अपना दण्ड

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः ।
 राक्षसं दुद्रुवुः संख्ये ग्रहाः पञ्च रविं यथा ॥ ३७ ॥
 वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
 यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥ ३८ ॥
 प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षा विभेद निशितैः शरैः ।
 सर्वपारश्वैस्तूर्णैरकुण्ठाग्रैर्महाबलः ॥ ३९ ॥
 स तैर्भिन्नतनुत्राणः शुशुभे राक्षसोत्तमः ।
 मरीचिभिरिवाऽर्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४० ॥
 विषक्तैः स शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः ।
 आर्ष्यशृङ्गिर्वभौ राजन्दीप्तशृङ्ग इवाऽचलः ॥ ४१ ॥
 ततस्ते आतरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे ।
 विव्यधुर्निशितैर्वाणैस्तपनीयविभूपितैः ॥ ४२ ॥
 स निर्भिन्नः शरैर्घोरैर्भुजगैः कोपितैरिव ।
 अलम्बुपो भृशं राजन्नागेन्द्र इव चुक्रुधे ॥ ४३ ॥
 सोऽतिविद्धो महाराज मुहूर्तमथ मारिष ।
 प्रविवेश तमो दीर्घं पीडितस्तैर्महारथैः ॥ ४४ ॥
 प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः ।
 चिच्छेद सायकांस्तेषां ध्वजांश्चैव धनूपि च ॥ ४५ ॥
 एकैकं पञ्चभिर्वाणैराजघान समन्निव ।
 अलम्बुपो रथोपस्थे नृत्यन्निव महारथः ॥ ४६ ॥
 त्वरमाणः सुसंरब्धो हयांस्तेषां महात्मनाम् ।
 जघान राक्षसः क्रुद्धः सारथीश्च महाबलः ॥ ४७ ॥

होकर, मूर्ख के मन्मुख पाँच ग्रहों की तरह, उसके मन्मुख दीर्घ । प्रलयकाट में पाँच ग्रह जैसे चन्द्रमा को पीड़ा पहुँचाने, वैसे ही द्रौपदी के पुत्र उस राक्षस को पीड़ित करने लगे ॥ ३३, ३८ ॥ महाप्रनापी प्रति-
 विन्ध्य ने उम राक्षसराज को तक्षिण, कुण्डिन न होने-
 वाले, फट बाण मारे । उन बाणों से अलम्बुष का कवच पट गया और वह मूर्ख-किरणरश्मि फाट
 मेर के समान शोभायमान हुआ । प्रति विन्ध्य के सुवर्ण-
 भूषित विपट बाण राक्षस के शरीर में प्रवेश हो गये ।

उनसे वह प्रज्वलित गिरार-युक्त पर्यंत के समान देख
 पड़ा ॥ ३९, ४२ ॥ अब द्रौपदी के पाँच पुत्र एक साथ
 सुवर्णभूषित बाण मारकर अलम्बुष को पीड़ा पहुँचाने
 लगे । महावीर्यशाली क्रुद्ध अलम्बुष नाग-नुन्य उन
 बाणों से घायत होने के कारण घोर व्यथा से अंचित
 हो गया । क्षण भर में मंचित होने पर वह द्विगुने
 क्रोध से बिह्वल हो उठा । उसने बढ़ी रक्ति के साथ
 बाणों में द्रौपदी के पुत्रों के धनुष, बाण और ध्वजार
 काट डाले । फिर उम महावीर राक्षस ने हर एक

विभेद च सुसंरब्धः पुनश्चैनान्सुसंशितैः ।
 शरैर्वहुविधाकारैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४८ ॥
 विरथांश्च महेष्वासान्कृत्वा तत्र स राक्षसः ।
 अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः ॥ ४९ ॥
 तानर्दितान्रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना ।
 दृष्ट्वाऽर्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाव्रवत् ॥ ५० ॥
 तयोः समभवद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ।
 ददृशुस्तावकाः सर्वे पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ५१ ॥
 तौ समेतौ महायुद्धे क्रोधदीप्तौ परस्परम् ।
 महाबलौ महाराज क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ ५२ ॥
 परस्परमवेक्षेतां कालानलसमौ युधि ।
 तयोः समागमो घोरो बभूव कटुकोदयः ॥ ५३ ॥
 यथा देवासुरे युद्धे शक्रशम्बरयोः पुरा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुपाभिर्मन्युसमागमे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

को पाँच-पाँच बाण मारे ॥४३॥४६॥ उसने उनके
 घोड़ों और सारथियों को भी मार डाला । यह अद्भुत
 कर्म करके, अन्य अनेक तीक्ष्ण बाण मारकर, उसने
 सबको घायल कर दिया । महारथी राक्षस इस प्रकार
 द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को, रथहीन करके, मारने के
 लिए शीघ्रता से आगे बढ़ा । महापराक्रमी अभिमन्यु
 ने जब देखा कि बली राक्षस द्रौपदी के पुत्रों को
 पीड़ित कर रहा है तब वे शीघ्रता के साथ अपना
 रथ बढ़ाकर उसके पास पहुँचे ॥४७॥५०॥ हे राजेन्द्र ।

उस समय महाप्रतापी अभिमन्यु के साथ राक्षसराज
 अलम्बुप घोर युद्ध करने लगा । कौरवपक्ष और
 पाण्डवपक्ष के सब योद्धा, युद्ध छोड़कर, उन वृत्रासुर
 और इन्द्र के समान पराक्रमी दोनों वीरों का घोर अद्भुत
 संग्राम देखने लगे । कालानल-सुलभ ये दोनों वीर क्रोध
 से लाल आँखों से परस्पर इस प्रकार देखते थे मानों
 दृष्टि से ही भस्म कर डालेंगे । पहले देवासुर-युद्ध में
 शम्बरासुर और इन्द्र का जैसा भयङ्कर संग्राम हुआ था
 वैसा ही भयङ्कर समर इस समय होने लगा ॥५१॥५४॥

भीष्मपर्व का एक सा अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०० ॥

अथ एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—आर्जुनि समरे शूरं विनिघ्नन्तं महारथान् ।
 अलम्बुपः कथं युद्धे प्रत्ययुध्यत सञ्जय ॥ १ ॥
 आर्प्यशृङ्गिं कथं चैव सौमद्रः परवीरहा ।
 तन्ममाऽऽवृत्तं तत्त्वेन यथा वृत्तं स्म संयुगे ॥ २ ॥
 धनञ्जयश्च किं चक्रे मम सैन्येषु संयुगे ।
 भीमो वा रथिनां श्रेष्ठो राक्षसो वा घटोत्कचः ॥ ३ ॥

नकुलः सहदेवो वा सात्यकिर्वा महारथः	॥ १ ॥
एतदाचक्ष्व मे सत्यं कुशलो ह्यसि सञ्जय	॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच—हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि संग्रामं लोमहर्षणम्	॥ ५ ॥
यथाऽभूद्राक्षसेन्द्रस्य सौभद्रस्य च मारिष	॥ ५ ॥
अर्जुनश्च यथा संख्ये भीमसेनश्च पाण्डवः	॥ ६ ॥
नकुलः सहदेवश्च रणे चक्रुः पराक्रमम्	॥ ६ ॥
तथैव तावकाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरः सराः	॥ ७ ॥
अद्भुतानि विचित्राणि चक्रुः कर्माण्यभीतवत्	॥ ७ ॥
अलम्बुपस्तु समरे अभिमन्युं महारथम्	॥ ८ ॥
विनय सुमहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः	॥ ८ ॥
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाऽग्रवीत्	॥ ९ ॥
अभिमन्युश्च वेगेन सिंहवद्विनदन्मुहुः	॥ ९ ॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं पितुरत्यन्तवैरिणम्	॥ १० ॥
ततः समीयतुः संख्ये त्वरितौ नरराक्षसौ	॥ १० ॥
रथाभ्यां रथिनौ श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ	॥ ११ ॥
मायावी राक्षसश्रेष्ठो दिव्यास्त्रश्चैव फाल्गुनिः	॥ ११ ॥
ततः कार्णिर्महाराज निशितैः सायकैस्त्रिभिः	॥ १२ ॥
आर्ष्यशृङ्गिं रणे विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः	॥ १२ ॥
अलम्बुपोऽपि संकुब्धः कार्णिं नवभिराशुगैः	॥ १३ ॥
हृदि विव्याध वेगेन तोत्रैरिव महाद्रिपम्	॥ १३ ॥

एक सौ एक अघ्याय ॥ १०१ ॥

शूतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! महारथियों और शूरों को समर में मारते हुए अभिमन्यु से अलम्बुप ने किस प्रकार कैसा युद्ध किया ? शत्रुदमन अभिमन्यु ने ही उस राक्षसराज से कैसा युद्ध किया ? महा-वर्द्ध भीमसेन, राक्षस घटोत्कच, नकुल, सहदेव, सायकि और अर्जुन आदि ने मेरी सेना से कैसा युद्ध किया ? युद्ध का सब वृत्तान्त तुम जानते हो और वर्णन करने में भी निपुण हो । इसलिए यह मर वृत्तान्त करो ॥१॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महावीर अभिमन्यु और अलम्बुप ने ऐसा युद्ध किया, अर्जुन-भीमसेन-नकुल और सहदेव ने समर में जैसा

पराक्रम प्रकट किया और आपके पक्ष के भीष्म, द्रोण आदि महारथी वीरों ने निर्भय होकर जो-जो अद्भुत कर्म किये, सो सब मैं आपके आगे कहता हूँ ॥५॥७॥ राक्षसराज अलम्बुप सिंहनाद के साथ बारम्बार तरज-गरजकर “टहर जा, टहर जा” कहता हुआ धड़े वेग में अभिमन्यु पर आक्रमण करने लगा । अभिमन्यु भी सिंहनाद करते हुए पिता के शत्रु राक्षसराज अलम्बुप की ओर वेग से चले । दिव्य अस्त्र चटलने में निपुण महारथी अभिमन्यु और मायावी श्रेष्ठ रथी अलम्बुप दोनों, देव-दानव के समान, शीघ्र ही आमने-सामने पहुँच गये ॥८॥१॥ महावीर अभिमन्यु ने राक्षस

ततः शरसहस्रेण क्षिप्रकारी निशाचरः ।
 अर्जुनस्य सुतं संख्ये पीडयामास भारत ॥ १४ ॥
 अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ।
 विभेद निशितैर्वाणै राक्षसेन्द्रं महोरसि ॥ १५ ॥
 ते तस्य विविशुस्तूर्णं कायं निर्भिद्य मर्मसु ।
 स तैर्विभिन्नसर्वाङ्गः शुशुभे राक्षसोत्तमः ॥ १६ ॥
 पुष्पितैः किंशुकै राजन्संस्तीर्ण इव पर्वतः ।
 सन्धारयाणश्च शरान्हेमपुङ्गवान्महाबलः ॥ १७ ॥
 विवभौ राक्षसश्रेष्ठः सज्जाल इव पर्वतः ।
 ततः क्रुद्धो महाराज आर्ज्यशृङ्गिरमर्पणः ॥ १८ ॥
 महेन्द्रप्रतिमं कार्णिं छादयामास पत्रिभिः ।
 तेन ते विशिखा मुक्ता यमदण्डोपमाः शिताः ॥ १९ ॥
 अभिमन्युं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।
 तथैवाऽऽर्जुनिना मुक्ताः शराः कनकभूषणाः ॥ २० ॥
 अलम्बुपं विनिर्भिद्य प्राविशन्त धरातलम् ।
 सौमद्रस्तु रणे रक्षः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २१ ॥
 चक्रे विमुखमासाद्य मयं शक्र इवाऽऽहवे ।
 विमुखं च रणे रक्षो वध्यमानं रणेऽरिणा ॥ २२ ॥
 प्रादुश्चक्रे महामायां तामसीं परतापनाम् ।
 ततस्ते तमसा सर्वे वृताश्चाऽऽसन्महीपते ॥ २३ ॥

को पहले तीन और फिर पाँच बाण मारे । जैसे महावत
 गजराज को अङ्कुरा मार वैसे ही स्फूर्तिशाली अलम्बुप
 ने क्रुद्ध होकर अभिमन्यु की छाती में ताकतूर नन तीक्ष्ण
 बाण मारे । इसके पश्चात् स्फूर्ति के साथ और एक
 सहस्र बाण मारे ॥ १२।१४॥ मर्मस्थल में उन बाणों के
 लगने से अभिमन्यु क्रोध से अग्निरहो उठे । उन्होंने
 भी महाभयङ्कर नव बाण राक्षस की छाती में मारे ।
 वे बाण उसके शरीर को फोड़कर मर्मस्थल में पहुँच
 गये । बाणों से घायल और रक्त से रंगा हुआ वह
 राक्षस फले हुए द्राक के पेड़ोंवाले पर्वत के समान
 शोभायमान हुआ । वे सुगुणपुङ्ख बाण राक्षस के शरीर
 में प्रवेश हो गये थे, इस कारण वह शिखरों से शोभित

पर्वत सा जान पड़ता था । क्रोधी अलम्बुप ने भी
 इन्द्र-सदृश अभिमन्यु को असह्य बाणों से दक दिया
 ॥ १५।१९॥ राक्षस के धनुष से छूटे हुए यमदण्डतुल्य
 बाण अभिमन्यु के शरीर को फोड़कर पृथिवी में प्रवेश
 हो गये । इसी प्रकार ही अभिमन्यु के बाण भी
 अलम्बुप के शरीर को फोड़कर पृथ्वी में प्रवेश
 हो गये । इन्द्र ने जैसे मय दानव को समर से
 हटा दिया था, वैसे ही महावीर अभिमन्यु ने तीक्ष्ण
 बाण मारकर राक्षस को व्यथित और युद्ध से विमुख
 कर दिया ॥ १९।२२॥ अब उस राक्षस ने शत्रुओं
 को नष्ट करनेवाली तामसी माया उत्पन्न की । उससे
 चारों ओर गहरा अँधेरा छा गया । कोई किसी को

नाऽभिमन्युमपश्यन्त नैव खान्न परान्रणे ।
 अभिमन्युश्च तद् दृष्ट्वा घोररूपं महत्तमः ॥ २४ ॥
 प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमत्युग्रं भास्करं कुरुनन्दनः ।
 ततः प्रकाशमभवज्जगत्सर्वं महीपते ॥ २५ ॥
 तां चाऽभिजघ्निवान्मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ।
 संक्रुद्धश्च महावीर्यो राक्षसेन्द्रं नरोत्तमः ॥ २६ ॥
 छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 बह्वीस्तथाऽन्या मायाश्च प्रयुक्तास्तेन रक्षसा ॥ २७ ॥
 सर्वास्त्रविदमेयात्मा वारयामास फाल्गुनिः ।
 हृतमायं ततो रक्षो बध्यमानं च सायकैः ॥ २८ ॥
 रथं तत्रैव सन्त्यज्य प्राद्ववन्महतो भयात् ।
 तस्मिन्निनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ॥ २९ ॥
 आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं सम्ममर्द ह ।
 मदान्धो गन्धनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव ॥ ३० ॥
 ततः शान्तनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाऽभिविद्रुतम् ।
 महता शरवर्षेण सौभद्रं पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥
 कोष्ठीकृत्य च तं वीरं धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
 एकं सुबहवो युद्धे ततक्षुः सायकैर्दृढम् ॥ ३२ ॥
 स तेषां रथिनां वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
 सदृशो वासुदेवस्य विक्रमेण बलेन च ॥ ३३ ॥

नहीं देव सजना था अभिमन्यु को, अपने को या
 किमी अन्य को देख सजना असम्भर हो गया। महा-
 पराक्रमी अभिमन्यु ने वह घोर अन्धकार देवकर
 प्रकाशमय सौर अस्त्र का प्रयोग किया। मृगाल के प्रभाव
 से राक्षस की माया का घोर अन्धकार दूर हो गया
 और सारे जगत् में प्रकाश फैल गया ॥२२॥२५॥
 राक्षस ने और भी बहुतेरी मायाएँ प्रकट कीं, किन्तु
 वीर अभिमन्यु ने दिव्य अस्त्रों से उन सब मायाओं
 को नष्ट कर दिया। इसके अनन्तर अभिमन्यु अमरग्य
 तीक्ष्ण बाण भरकर उस राक्षस को पीड़ा पहुँचाने
 लगे ॥२६॥२८॥ सब अस्त्रों के जाननेवाले अभिन
 पराक्रमी अभिमन्यु के द्वारा सब माया नष्ट होने पर

प्रहार-पीड़ित और भय में व्याकुल वह राक्षस रथ
 छोड़कर भाग खड़ा हुआ। कूटयुद्ध करनेवाला वह
 राक्षस जब इस प्रकार हारकर भाग गया तब महावीर
 अभिमन्यु फिर बाण-वर्षा करके कौरसेना को पीड़ित
 करने लगे। उस समय ऐसा जान पड़ा कि मदान्ध
 जहल्ला हाथी कमलों के बन को रौंदकर उजाड़ रहा
 है ॥२८॥३०॥ महारथी भीष्म ने सैनिकों को संभाम
 से भागने देकर तीक्ष्ण बाण बरसाने पर अभिमन्यु का
 आगे बढ़ना रोका। महारथी दुर्योधन और उनके भाई
 भी अनेक अभिमन्यु को चारों ओर में घेरकर असंख्य
 बाण मारने लगे। तब अर्जुन के तुल्य पराक्रमी और
 बल-वीर्य में श्रीकृष्ण के समान महावीर अभिमन्यु,

उभयोः सदृशं कर्म स पितुर्मातुलस्य च ।
 रणे बहुविधं चक्रे सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ३४ ॥
 ततो धनञ्जयो वीरो विनिघ्नस्तव सैनिकान् ।
 आससाद् रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः ॥ ३५ ॥
 तथैव समरे राजन्पिता देवव्रतस्तव ।
 आससाद् रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥ ३६ ॥
 ततः सरथनागाश्वः पुत्रास्तव जनेश्वर ।
 परिव्रू रणे भीष्मं जुगुपुश्च समन्ततः ॥ ३७ ॥
 तथैव पाण्डवा राजन्परिवार्य धनञ्जयम् ।
 रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
 शारद्वतस्ततो राजन्भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम् ।
 अर्जुनं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ ३९ ॥
 प्रत्युद्गम्याऽथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः ।
 पाण्डवप्रियकामार्थं शार्ङ्गल डव कुञ्जरम् ॥ ४० ॥
 गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः ।
 हृदि विव्याध संकुद्धः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ४१ ॥
 शौनेयोऽपि ततः क्रुद्धश्चापमानस्य वेगवान् ।
 गौतमान्तकरं तूर्णं समाधत्त शिलीमुखम् ॥ ४२ ॥
 तमापतन्तं वेगेन शक्राशनिसमद्युतिम् ।
 द्विधा चिच्छेद संकुद्धो द्रौणिः परमकोपनः ॥ ४३ ॥
 समुत्सृज्याऽथ शौनेयो गौतमं रथिनां वरः ।
 अभ्यद्रवद्रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा ॥ ४४ ॥

पिता और माता के समान, युद्ध में अनेक अद्भुत
 कार्य आर कौशल दिखाने लगे ॥३१॥३४॥ महा-
 धीर्यशाला अर्जुन भी उस समय कोरव सेना को भारते
 हुए अभिमन्यु को हँदने-हँदते भीष्म के समीप पहुँच
 गये । राहु जैसे प्रसंगे के लिए सूर्य के पास जाता
 है वैसे ही भीष्म भी अर्जुन के समीप आये । हे राजेन्द्र !
 आपके पुत्रगण असह्य रथ, हाथी, घोड़े आदि साथ
 लेकर चारों ओर से भीष्म पितामह की रक्षा करने
 लगे । इधर पाण्डवपक्ष के योद्धा भी चारों ओर से

अर्जुन की सहायता करते हुए घोर युद्ध में प्रवृत्त
 हुए ॥३५॥३८॥ इसी समय कृपाचार्य ने, भीष्म के
 सामने उपस्थित, अर्जुन को पक्षीस तीक्ष्ण बाण मारे ।
 सिंह जैसे गजराज पर झपटता है वैसे ही सात्यकि भी
 पाण्डवों के हित के लिए कृपाचार्य के सन्मुख पहुँचे ।
 वे अनेक तीक्ष्ण बाण मारकर कृपाचार्य को पीड़ित
 करने लगे । इससे क्रुद्ध होकर कृपाचार्य ने बड़ी
 स्थिति के साथ कङ्कपत्रभूषित नव बाण सात्यकि की
 छाती में मारे ॥३९॥४१॥ तब सात्यकि ने अत्यन्त

तस्य द्रोणमुतश्चापं द्विधा विच्छेद भारत ।
 अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः ॥ ४५ ॥
 सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम् ।
 द्रौणिं पृष्ट्वा महाराज बाहोःरसि चाऽर्पयत् ॥ ४६ ॥
 स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः ।
 निपसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ४७ ॥
 प्रतिलभ्य ततः संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
 बाष्पेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समार्पयत् ॥ ४८ ॥
 शौनेयं स तु निर्भयं प्राविशच्चरणीतलम् ।
 वसन्तकाले बलवान्विलं सर्पशिशुर्यथा ॥ ४९ ॥
 अथाऽपरेण भलेन माधवस्य ध्वजोत्तमम् ।
 विच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं मुमोच ह ॥ ५० ॥
 पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत ।
 निदाधान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५१ ॥
 सात्यकोऽपि महाराज शरजालं निहत्य तत् ।
 द्रौणिमभ्यकिरन्तुर्णं शरजालैरनेकधा ॥ ५२ ॥
 तापयामास च द्रौणिं शौनेयः परवीरहा ।
 विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा ॥ ५३ ॥
 शराणां च सहस्रेण पुनरेव समुद्यतः ।
 सात्यकिश्छादयामास ननाद च महाबलः ॥ ५४ ॥

क्रुद्ध होकर बड़े वेग से, धनुष चढ़ाकर, प्राण हर
 लेनेवाला एक बाण कृपाचार्य को मारा। अश्वत्थामा ने
 उस बलवन्त बाण को वेग से अति देखकर एक बाण
 से उसे काटकर गिरा दिया। अब महारथी सात्यकि
 कृपाचार्य को छोड़कर, आकाशमण्डल में राहु जैसे
 चन्द्रमा की ओर दौड़ता है वैसे ही अश्वत्थामा की ओर
 दौड़े ॥४२॥४४॥ महारथी अश्वत्थामा ने उनका धनुष
 काट डाला और उनपर असंख्य बाण बरसाये। सात्यकि
 ने उसी क्षण रक्षित से दमरु मुदर धनुष हाथ में
 लेकर साठ बाण अश्वत्थामा के हृदय में और दोनों
 हाथों में मारे। उन बाणों के प्रहार से अश्वत्थामा
 बहुत व्यथित होकर क्षण भर के लिए अचेत होगये, वे

ध्वजा का टण्डा पकड़कर रथ पर बैठ गये ॥४५॥४७॥
 सचेत होने पर उन्होंने क्रुद्ध होकर सात्यकि को एक
 घोर नाराच बाण मारा। वह बाण सात्यकि के शरीर
 को फोड़कर वैसे ही पृथ्वी में प्रवेश हो गया जैसे
 वसन्तऋतु में बलवान् सर्प का बच्चा बिल में प्रवेश
 हो जाता है। फिर एक भट्ट बाण में सात्यकि के
 रथ की ध्वजा काटकर वे सिंहनाद करने लगे। वर्षा-
 ऋतु में मेघ जैसे सूर्य को छिपा लेते हैं वैसे ही
 अश्वत्थामा ने बाणों से सात्यकि को अदृश्य कर दिया
 ॥४८॥५१॥ हे राजेन्द्र ! सात्यकि भी उन बाणों को
 काटकर, अपने बाणों में अश्वत्थामा को अदृश्य करके,
 मेघों को चीरकर निकले हुए सूर्य की तरह अश्वत्थामा

दृष्ट्वा पुत्रं च तं प्रसन्नं राहुणेन निशाकरम् ।
 अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५५ ॥
 विव्याध च सुतीक्ष्णेन पृषत्केन महामृधे ।
 परीप्सन्स्वसुतं राजन्वाष्णेयेनाऽभिपीडितम् ॥ ५६ ॥
 सात्यकिस्तु रणे हित्वा गुरुपुत्रं महारथम् ।
 द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः ॥ ५७ ॥
 तदन्तरममेयात्मा कौन्तेयः शत्रुतापनः ।
 अभ्यद्रवद्रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथः ॥ ५८ ॥
 ततो द्रोणश्च पार्थश्च समेयेतां महामृधे ।
 यथा बुधश्च शुक्रश्च महाराज नभस्तले ॥ ५९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अलम्बुपाभिर्मनुयुद्धे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

को सताने लगे । इसके अनन्तर फिर सहस्रों बाण
 बरसाकर उन्होंने अश्वत्थामा को जर्जर कर दिया
 ॥५२॥५४॥ पुत्र अश्वत्थामा को राहुप्रसन्न चन्द्रमा के
 समान पीडित देखकर द्रोणाचार्य सात्यकि की ओर
 दौड़े, और अश्वत्थामा के प्राण बचाने के लिए उन्होंने
 सात्यकि को तीक्ष्ण बाण मारा । तब सात्यकि ने

भी गुरु-पुत्र अश्वत्थामा को छोड़कर द्रोणाचार्य को
 लोहमय बीस बाण मारे । उधर महापराक्रमी अर्जुन
 भी कुपित होकर द्रोणाचार्य की ओर दौड़े । इसके
 अनन्तर द्रोण और अर्जुन दोनों, आकाश में बृहस्पति
 और शुक्र की तरह, घोर युद्ध करने लगे ॥५५॥५९॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सी एक अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

अथ दृष्टाधिकजननमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथं द्रोणो महं ग्वास्तः पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
 समीयतू रणे यत्तौ तावुभौ पुरुषर्षभौ ॥ १ ॥
 प्रियो हि पाण्डवो नित्यं भारद्वाजस्य धीमतः ।
 आचार्यश्च रणे नित्यं प्रियः पार्थस्य सञ्जय ॥ २ ॥
 तावुभौ रथिनौ संख्ये हृष्टौ सिंहाविवोत्कटौ ।
 कथं समीयतुर्यत्तौ भारद्वाजधनञ्जयौ ॥ ३ ॥
 सञ्जय उवाच—न द्रोणः समरे पार्थं जानीत प्रियमात्मनः ।
 क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य पार्थो वा गुरुमाहवे ॥ ४ ॥

एक मौ दो अध्याय ॥ १०२ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय । पुरुषश्रेष्ठ द्रोण-
 चार्य और अर्जुन दोनों ने किस प्रकार युद्ध किया । उन दोनों, सिंह के समान उत्साही, वीरों ने किस
 बुद्धिमान् द्रोणाचार्य को अर्जुन बहुत ही प्रिय हैं, प्रकार युद्ध किया ॥११॥३॥ सञ्जय ने कहा—हे

और अर्जुन भी द्रोणाचार्य का बहुत मान करते हैं ।
 उन दोनों, सिंह के समान उत्साही, वीरों ने किस
 प्रकार युद्ध किया ॥११॥३॥ सञ्जय ने कहा—हे

न क्षत्रिया रणे राजन्वर्जयन्ति परस्परम् ।
 निर्मर्यादं हि युध्यन्ते पितृभिर्भ्रातृभिः सह ॥ ५ ॥
 रणे भारत पार्थेन द्रोणो विद्वस्त्रिभिः शरैः ।
 नाऽचिन्तयच्च तान्वाणान्पार्थचापच्युतान्युधि ॥ ६ ॥
 शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे ।
 स प्रजज्वाल रोपेण गहनेऽग्निरिवोर्जितः ॥ ७ ॥
 ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 छादयामास राजेन्द्र न चिरादेव भारत ॥ ८ ॥
 ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत् ।
 द्रोणस्य समरे राजन्पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ९ ॥
 त्रिगर्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
 छादयामास समरे पार्थ बाणैरयोमुखैः ॥ १० ॥
 ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे ।
 हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ॥ ११ ॥
 ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद्विविशुः प्रभो ।
 फलभारननं यद्वत्स्वादुवृक्षं विहङ्गमाः ॥ १२ ॥
 अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः ।
 त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३ ॥
 ते बध्यमानाः पार्थेन कालेनैव युगक्षये ।
 पार्थमेवाऽभ्यवर्तन्त मरणे कृतानिश्चयाः ॥ १४ ॥

महाराज ! क्षत्रियधर्म के अनुयायी द्रोणाचार्य युद्ध में अर्जुन को अपना प्रिय नहीं समझते, और अर्जुन भी शुरु पर कटोर प्रहार करने में कुछ कमी नहीं रखते। क्षत्रियों का धर्म ही यह है कि वे युद्ध में किसी का विचार नहीं करते। वे नोते का विचार छोड़कर पिता और भाई आदि से कठिन युद्ध करते हैं॥४५॥ हे महाराज ! अर्जुन ने द्रोणाचार्य को तीन तीक्ष्ण बाण मारे; किन्तु अर्जुन के धनुष से छूटे हुए उन बाणों में द्रोणाचार्य विचलित नहीं हुए। तब फिर अर्जुन उनके ऊपर बाणों की वर्षा-सी करने लगे। गहन धन में अग्नि के समान आचार्य द्रोण क्रोध में प्रभावित हो उठे। उन्होंने हठानुति के साथ अति तीक्ष्ण अग्न्य

बाणों से अर्जुन को ढक दिया॥६॥८॥ तब राजा दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पार्श्वभाग की रक्षा और सहायता के लिए त्रिगर्देश के राजा सुशर्मा को भेजा। राजा सुशर्मा कुपित होकर, धनुष चढ़ाकर, तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को पीड़ा पहुँचाने लगे। सुशर्मा का पुत्र भी लोहमय बाण अर्जुन को मारने लगा। उन पिता पुत्र के चलाय हुए बाण आकाश में, शरद्वृक्ष में, उड़ते हुए हंसों के समान जान पड़ने लगे। जैसे पक्षी चारों ओर में अकर स्वादिष्ट फलों से पूर्ण शुक्रे हुए वृक्ष के भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे बाण चारों ओर में आकर अर्जुन के शरीर में प्रवेश होने लगे॥९॥१२॥ महारथी अर्जुन ने शिद-

मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति ।
 शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षैः समन्ततः ॥ १५ ॥
 प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाऽचलः ।
 तत्राऽद्भुतमपश्याम वीभत्सोर्हस्तलाघवम् ॥ १६ ॥
 त्रिमुक्तां बहुभियोधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
 यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव ॥ १७ ॥
 कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुपुर्द्वदानवाः ।
 अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगतां प्रति भारत ॥ १८ ॥
 मुमोचाऽस्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे ।
 प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम् ॥ १९ ॥
 पातयन्त्रै तरुणान्विनिघ्नैश्चैव सैनिकान् ।
 ततो द्रोणोऽभिधीक्ष्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम् ॥ २० ॥
 शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह ।
 द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप ॥ २१ ॥
 प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश ।
 ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान् ॥ २२ ॥
 निरुत्साहानरणे चक्रे विमुखान्विपराक्रमान् ।
 ततो दुर्योधनश्चैव कृपश्च रथिनां वरः ॥ २३ ॥
 अश्वत्थामा तथा शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिकः सह बाह्लिकैः ॥ २४ ॥

नाद करके पिता और पुत्र दोनों को बहुत से बाण
 मारे । सुशर्मा और उनका पुत्र दोनों ही कालतुल्य
 अर्जुन के बाणों से घायल होकर भी, जीवन की
 ममता छोड़कर, अर्जुन से घोर युद्ध करने लगे । ये
 अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे ।
 पर्वत जैसे वर्षा को अपने ऊपर रोकता है वैसे ही
 वीर अर्जुन अपने बाणों से उनके बाणों को रोकने
 लगे । उस समय हम लोग अर्जुन के हाथों की स्फूर्ति
 देखने लगे । वायु जैसे मेघमाला को क्षणभर में छिन्न-
 भिन्न कर डालती है, वैसे ही अर्जुन अर्जुन बहुत से
 योद्धाओं के शस्त्रों की वर्षा को छिन्न-भिन्न करने और
 रोकने लगे । अर्जुन के उस अद्भुत कर्म और युद्ध-

कोशल को देखकर देवता और दानव बहुत ही सन्तुष्ट
 हुए ॥ १११८ ॥ महावीर अर्जुन ने कुपित होकर
 त्रिगर्तसेना के ऊपर वायव्य अक्ष छोड़ा । उससे प्रबल
 आंधी उत्पन्न हुई, जिससे आकाशमण्डल क्षोभ को
 प्राप्त हुआ, वृक्ष उखड़-उखड़कर गिरने लगे, सैनिक
 लोग नष्ट होने लगे और सारी सेना अस्तव्यस्त तथा
 नष्टनष्ट होने लगी । द्रोणाचार्य ने उस दारुण वायव्य-
 अक्ष का उद्गम देखकर, उसे व्यर्थ करने के लिए,
 घोर पर्वताक्ष का प्रयोग किया । उससे आंधी शान्त
 हो गई, दसों दिशाएँ निर्मल देख पड़ने लगीं । इसके
 पश्चात् महारथी अर्जुन ने अपने युद्धकोशल से त्रिगर्त-
 राज के असंग्रह्य रथी योद्धाओं को उत्साहहीन और

महता रथं वशेन पार्थस्याऽवारयन्दिशः ।
 तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः ॥ २५ ॥
 गजानीकेन भीमस्य ताववारयतां दिशः ।
 भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशाम्पते ॥ २६ ॥
 शरौघैर्विमलेस्तीक्ष्णैर्माद्रीपुत्राववारयन् ।
 भीष्मस्तु संहतः संख्ये धार्तराष्ट्रैः ससैनिकैः ॥ २७ ॥
 युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्यवारयत् ।
 आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः ॥ २८ ॥
 लेलिहन्तृक्षिणी वीरो मृगराडिव कानने ।
 भीमस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां गृह्य महाहवे ॥ २९ ॥
 अवप्लुत्य रथान्तूर्णं तव सैन्यान् यभीपयत् ।
 तमुद्रीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः ॥ ३० ॥
 परिव्रू रणे यत्ता भीमसेनं समन्ततः ।
 गजमध्यमनुप्रातः पाण्डवः स व्यराजत ॥ ३१ ॥
 मेघजलस्य महतो यथा मध्यगतो रविः ।
 व्यधमत्स गजानीकं गदया पाण्डवर्वभः ॥ ३२ ॥
 महाभ्रजालमतुलं मातरिश्वेव सन्ततम् ।
 ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः ॥ ३३ ॥
 आर्तनादं रणे चक्रुर्गर्जन्तो जलदा इव ।
 बहुधा दारितश्चैव विपाणैस्तत्र दन्तिभिः ॥ ३४ ॥

पराक्रम-रूप करके युद्ध से विमुख कर दिया ॥ २८ ॥
 २३॥ तब राजा दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, सुदक्षिण, विन्द, अनुविन्द और बाह्यक देश की सेना सहित राजा बाह्यक असुर्य रथों के द्वारा चारों ओर से अर्जुन को घेरकर उनपर प्रहार करने लगे । महानली श्रुतायुष आर राजा भगदत्त ने बड़े भारी हाथियों के दल से चारों ओर से भीमसेन को घेर लिया । भूरिश्रवा, शल और शकुनि, ये तीनों वीर बहुत सी सेना के द्वारा नकुल और सहदेव को घेरकर उनपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । सेना सहित आपने सत्र पुत्रों की साथ लिये भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥ २३॥ २७ ॥

हे महाराज । पराक्रमी भीमसेन ने हाथियों की बड़ी सेना को अपनी ओर आने देखा तो वे रथ से उतर पड़ और गदा हाथ में लेकर उसी ओर दौड़े ! वन में निचलेवाले मिह की तरह क्रोध से होंठ चाटते हुए भीमसेन का भयानक रूप ही देखकर बहुत ॥ सैनिक भय से व्याकुल हो उठे । हाथिया पर सवार योद्धाओं ने गदा हाथ में लिये भीमसेन को खड़े देखकर चारों ओर से घेर लिया । मूर्ख जैसे मेघों के मध्य में शोभित होते हैं वैसे ही उस गजदल के मध्य भीमसेन की शोभा हुई ॥ २७ ॥ ३१ ॥ वायु जैसे मेघों को तिनर-बितर कर देती है वैसे ही भीमसेन अपनी गदा के विकट प्रहार से उस गजदल को मारने

फुल्लाशोकनिभः पार्थः शुशुभे रणमूर्धनि ।
 विपाणे दन्तिनं गृह्य निर्विपाणमथाऽकरोत् ॥ ३५ ॥
 विपाणेन च तेनैव कुम्भेऽभ्याहत्य दन्तिनम् ।
 पातयामास समरे दण्डहस्त इवाऽन्तकः ॥ ३६ ॥
 शोणिताक्तां गदां विभ्रन्मेदोमज्जाकृतच्छविः ।
 कृताभ्यङ्गः शोणितेन रुद्रवत्प्रत्यदृश्यत ॥ ३७ ॥
 एवं ते वध्यमानाश्च हतशेषा महागजाः ।
 प्राद्वयन्त दिशो राजन्विमृद्मन्तः स्वकं बलम् ॥ ३८ ॥
 द्रवद्भिस्तैर्महानागैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
 दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवनपर्वणि भीष्मपराक्रमे द्वायधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

ओर भगाने लगे । बड़े-बड़े हाथी भीमसेन की गदा का मार खाकर मेघ-गर्जन के समान चिल्लाते और आत-नाद करने लगे । हाथियों ने भी भीमसेन के शरीर में दौलों के प्रहार किये । उनके शरीर से रक्त वह चला, जिससे वे फले हुए अशोकवृक्ष के समान शोभायमान हुए ॥ ३२, ३५ ॥ भीमसेन ने कुपित होकर किसी-किसी हाथी के दाँत उखाड़ लिये, ओर दण्ड-पाणि यमराज की तरह उन्हीं दाँतों के प्रहार से उनके

मस्तक फाड़कर वे उन्हें पृथ्वी पर गिराने लगे । भीम के शरीर में मेदा और मज्जा छिपी हुई थी, रक्त से युक्त गदा उनके कन्धे पर थी; इस वेप में वे शूलपाणि रुद्र के समान देख पड़ते थे । जो बड़े-बड़े हाथी मरने से बचे थे वे अपनी ही सेना को रौंदते हुए चारों ओर भागने लगे । कौरवपक्ष की सेना फिर युद्ध से भागकर अस्तव्यस्त हो गई ॥ ३६, ३९ ॥

— • —

भीष्मपर्व का एक सौ दो अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०२ ॥

अथ त्रयविकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच—मध्यन्दिने महाराज संग्रामः समपद्यत ।
 लोकक्षयकरो रौद्रो भीष्मस्य सह सोमकैः ॥ १ ॥
 गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
 व्यधमन्निशितैर्चाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २ ॥
 संममर्द च तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
 धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव ॥ ३ ॥

एक सौ तीन अध्याय ॥ १०३ ॥

सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र ! इसी दिन मध्याह्न के समय सोमकों के साथ भीष्म पितामह महाभयानक युद्ध करने लगे । महारथी भीष्म चाणों की अग्नि में

सैकड़ों-सहस्रों क्षत्रियों को मार कर रहे लगे । जैसे बैल अन्न के ढेर को रौंदते हैं वैसे ही देवव्रत भीष्म पाण्डवों की सेना का संहार करने लगे ॥ १, ३ ॥ घृष्टबुध्न

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा ।
 भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम् ॥ ४ ॥
 धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा विराटं च शरैस्त्रिभिः ।
 द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥
 तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेणाऽमित्रकर्षिणा ।
 चुक्रुधुः समरे राजन्यादस्पृष्टा इवोरगाः ॥ ६ ॥
 शिखण्डी तं च विव्याध भरतानां पितामहम् ।
 स्त्रीमयं मनसा ध्यात्वा नाऽस्मै प्राहरदच्युतः ॥ ७ ॥
 धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधेनाऽग्निरिव ज्वलन् ।
 पितामहं त्रिभिर्वाणैर्बाह्वोरुरसि चऽऽर्पयत् ॥ ८ ॥
 द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः ।
 शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याधसायकैः ॥ ९ ॥
 सोऽतिविद्धो महाराज शोणितौघपरिप्लुतः ।
 वसन्ते पुष्पशवलो रक्ताशोक इवाऽऽवभौ ॥ १० ॥
 तान्प्रत्यविध्यद्बाह्वेयस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः ।
 द्रुपदस्य च भस्त्रेण धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ११ ॥
 सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः ।
 सारथिं च त्रिभिर्वाणैः सुशितै रणमूर्धनि ॥ १२ ॥
 तथा भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
 केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः ॥ १३ ॥

शिखण्डी, विराट और महारथी द्रुपद भीष्म के पास जाकर उनपर असंख्य बाण बरसाने लगे। शत्रुनाशन भीष्म ने तीन-तीन बाण धृष्टद्युम्न और विराट को और एक नाराच बाण द्रुपद को मारा। धृष्टद्युम्न आदि महारथी भीष्म के बाणों से विद्ध होकर पाँव से पूँछ दबे हुए सर्प के समान कुन्ध हो गये ॥११६॥ यद्यपि शिखण्डी निरन्तर भीष्म के मर्मस्थल में बाण मारने लगे, किन्तु महाव्रत भीष्म ने उन्हें पहले की स्त्री समझकर उन पर प्रहार नहीं किया। धृष्टद्युम्न ने क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित होकर भीष्म के हाथों में अग्निमदश दो बाण मारे, और एक बाण वक्षःस्थल में मारा। महारथी द्रुपद ने भी भीष्म को पचीस बाण मारे। विराट ने पितामह को दस बाण और शिखण्डी ने पचीस बाण मारे ॥७१९॥ हे राजेन्द्र ! उन बाणों से बहुत ही घायल होकर भीष्म रक्त से तर हो गये। वे उस समय वसन्त में लाल फूलों से शोभित अशोक-वृक्ष के समान देख पड़ने लगे। तब उन्होंने कुपित होकर [शिखण्डी को छोड़कर और] सबको तीन-तीन बाण मारे। इसके पश्चात् एक भट्ट बाण से द्रुपद का धनुष काट डाला। राजा द्रुपद ने दूसरा धनुष लेकर पाँच बाण भीष्म को और तीन बाण उनके सारथी को मारे ॥१०१२॥ तब भीमसेन, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, कैकेयगण, यादवग्रेष्ठ सात्यकि और धृष्टद्युम्न, ये लोग द्रुपद की रक्षा करने के लिए भीष्म

अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
 रिरक्षिपन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ १४ ॥
 तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः ।
 प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप ॥ १५ ॥
 तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं तव तेषां च संकुलम् ।
 नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १६ ॥
 रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद्यमसादनम् ।
 तथेतरान्समासाद्य नरनागाश्वसादिनः ॥ १७ ॥
 अनयन्परलोकाय शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 शरैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशाम्पते ॥ १८ ॥
 रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा ।
 विप्रद्रुताश्च समरे दिशो जग्मुः समन्ततः ॥ १९ ॥
 मृद्गन्तस्ते नरान्राजन्हयांश्च सुबहून्रणे ।
 चातायमाना दृश्यन्ते गन्धर्वनगरोपमाः ॥ २० ॥
 रथिनश्च रथैर्हीना बर्मिणस्तेजसा युताः ।
 कुण्डलोष्णीविणः सर्वे निष्काह्मद्विभूषणाः ॥ २१ ॥
 देवपुत्रसमाः सर्वे शौर्ये शक्रसमा युधि ।
 ऋद्धया वैश्रवणं चाऽति नयेन च बृहस्पतिम् ॥ २२ ॥
 सर्वलोकेश्वराः शूरास्तत्र तत्र विशाम्पते ।
 विप्रद्रुता व्यहस्यन्त प्राकृता इव मानवाः ॥ २३ ॥
 दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ हीनाः परमसादिभिः ।
 मृद्गन्तः स्वान्यनीकानि निषेतुः सर्वशब्दगाः ॥ २४ ॥

की ओर चले । हे महाराज ! आपके पक्ष के सब
 भी भी सेना साथ लेकर भीम की रक्षा करने के
 लिए पाण्डवों की ओर दौड़े ॥ १३ ॥ १५ ॥ उस समय
 दोनों ओर के रथी, हाथी, घोड़े और पैदल परस्पर
 भिड़कर घोर युद्ध करने लगे । रथी रथी के साथ,
 हाथी हाथी के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ, सवार
 सवारों के साथ और पैदल सैनिक पैदल सैनिकों के
 साथ भिड़कर यमपुरी की ओर चले । हे राजेन्द्र !
 स्थान-स्थान पर दारुण घणों के प्रहार से टूट-फूटकर,

सारथी और रथी से शून्य होकर, बड़े-बड़े रथ समर-
 भूमि में इधर-उधर फिरने लगे ॥ १६ ॥ १८ ॥ मैंने देखा
 कि गन्धर्व नगरसदृश, वायुवेगवाली घोड़ों से युक्त,
 बड़े-बड़े रथ मनुष्यों और घोड़ों की रौंदते हुए इधर-
 उधर दौड़ने लगे । हे भूपाळ ! बृहस्पति के समान
 नीति में निपुण, कुबेर के समान सम्पत्तिशाली, इन्द्र
 के समान शूर, कुण्डल पगड़ी-निष्का-अङ्गद-वाच
 आदि से अलङ्कृत, देवपुत्र के समान रथी राजा लोग
 बड़े-बड़े देशों के नरेश होकर भी, रथ नष्ट हो जाने

चर्मभिश्चामरैश्चित्रैः पताकाभिश्च मारिष	।
छत्रैः सितैर्हंसदण्डैश्चामरैश्च समन्ततः	॥ २५ ॥
विशीर्णैर्विप्रधावन्तो दृश्यन्ते स्म दिशो दश	।
नवमेघप्रतीकाशा जलदोषमनिःखनाः	॥ २६ ॥
तथैव दन्तिभिर्हीना गजारोहा विशाम्पते	।
प्रधावन्तोऽन्वदृश्यन्त तत्र तेषां च संकुले	॥ २७ ॥
नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान्हेमभूषितान्	।
वातायमानानद्राक्षं शतशोऽथ सहस्रशः	॥ २८ ॥
अश्वारोहान्हतैरश्वैर्गृहीतासीन्समन्ततः	।
द्रवमाणानपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे	॥ २९ ॥
गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महाहवे	।
ययौ प्रमृद्य तरसा पादातान्वाजिनस्तथा	॥ ३० ॥
तथैव च रथान्राजन्प्रममर्द रणे गजः	।
रथाश्चैव समासाद्य पतितांस्तुरगान्भुवि	॥ ३१ ॥
व्यमृद्गन्समरे राजंस्तुरगांश्च नरान्रणे	।
एवं ते बहुधा राजन्प्रत्यमृद्गन्परस्परम्	॥ ३२ ॥
तस्मिन्त्रोद्रे तथा युद्धे वर्तमाने महाभये	।
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितान्प्रतरङ्गिणी	॥ ३३ ॥
अभ्यिसङ्घातसम्प्राधा केशशेखरशाद्वला	।
रथद्वटा शरावर्ता हयमीना दशमटा	॥ ३४ ॥

शीर्षोपलसमाकीर्णा हस्तिग्राहसमाकुला ।
 कवचोष्णीपफेनौघा धनुर्वेगासिकच्छपा ॥ ३५ ॥
 पताकाध्वजवृक्षाद्या मर्त्यकूलापहारिणी ।
 क्रव्यादहंससङ्कीर्णा यमराष्ट्रविवर्धनी ॥ ३६ ॥
 तां नदी क्षत्रियाः शूरा रथनागहयग्नवैः ।
 प्रतेरुर्वहवो राजन्भयं त्यक्त्वा महारथाः ॥ ३७ ॥
 अपोवाह रणे भीरुन्कश्मलेनाभिसंवृतान् ।
 यथा वैतरणी प्रेतान्प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ३८ ॥
 प्राक्रोशन्क्षत्रियास्तत्र दृष्ट्वा तद्वैशसं महत् ।
 दुर्योधनापराधेन गच्छन्ति क्षत्रियाः क्षयम् ॥ ३९ ॥
 गुणवत्सु कथं द्वेषं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
 कृतवान्पाण्डुपुत्रेषु पापात्मा लोभमोहितः ॥ ४० ॥
 एवं बहुविधा वाचः श्रूयन्ते स्म परस्परम् ।
 पाण्डव-स्तव-संयुक्ताः पुत्राणां ते सुदारुणाः ॥ ४१ ॥
 ता निशम्य ततो वाचः सर्वयोधैरुदाहृताः ।
 आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ४२ ॥
 भीष्मं द्रोणं कृपं चैव शल्यं चोवाच भारत ।
 युध्यध्वमनहङ्गाराः किं चिरं कुरुष्वेति च ॥ ४३ ॥
 ततः प्रवृत्ते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
 अक्षयूतकृतं राजन्सुघोरं वैशसं तदा ॥ ४४ ॥

उसमें सेवार और घास की जगह थे । दृष्टे हुए रथ
 उसके भीतर के गहरे कुण्ड थे । बाण ही और थे;
 घोड़ों की लाशें मछलियाँ थीं । कटे हुए सिर कमल
 के फूल थे । हाथियों के शरीर बड़े-बड़े । हथियार
 कवच और पगड़ियाँ फेंके की जगह वह रही थी । धनुष
 ही उसका वेगशाली प्रवाह था । तलवारें कच्छप की
 जगह थीं । पताका और ध्वजों की लाशों पर के वृक्षों
 की जगह थीं । मनुष्यों की लाशें उसके कगारों थे ।
 माताहारी पक्षी हँसों के समान उमके आस-पास
 उड़ रहे थे । वह नदी यम के राज्य को बढ़ा रही
 थी ॥ ३५, ३६ ॥ बहुत से शरवीर महारथी क्षत्रिय
 निर्भय भाव से नौका के समान घोड़े-हाथी-रथ आदि

पर चढ़कर उस नदी के पार जा रहे थे । जैसे वैत-
 रणी नदी मेरे हुआँ को यमपुर में पहुँचाती है वैसे
 ही वह रक्त की नदी कायर और मूर्खित-से पुरुषों
 को रणभूमि से दूर हटाने लगी । क्षत्रियगण उस
 महाघोर हायागण्ड को देखकर चिन्ता-चिन्ताकर कहने
 लगे — “हे क्षत्रियो ! दुर्योधन के अपराध से ही सब
 क्षत्रिय नष्ट हो रहे हैं । महाराज धृतराष्ट्र ने ही लोभ
 और मोह के बश तथा पापपरायण होकर मुणी
 पाण्डवों से द्वेष क्यों किया ?” ॥ ३७, ३८ ॥ हे महाराज !
 इस प्रकार सब क्षत्रिय पाण्डवों की प्रशंसा और आपके
 पुत्रों की निन्दा से भरी अनेक प्रकार की बातें कर
 रहे थे । सब योद्धा क्षत्रियों के मुख से ऐसी बातें सुन-

यत्पुरा न निगृह्णासि वार्यवाणो महात्मभिः ।

वैचित्रवीर्यं तस्येदं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ४५ ॥

न हि पाण्डुसुता राजन्ससैन्याः सपदानुगाः ।

रक्षन्ति समरे प्राणान्कौरवा वापि संयुगे ॥ ४६ ॥

एतस्मात्कारणाद्धोरो वर्तते खजनक्षयः ।

दैवाद्वा पुरुषव्याघ्र तव चापनयान्मृष ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

कर सर्वके अपराधी आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण, कृप और राजा शल्य से कहा— “हे वीरो ! तुम लोग अहङ्कार छोड़कर युद्ध करो । विलम्ब क्यों कर रहे हो ?” ॥ ११४३ ॥ हे राजेन्द्र ! तब उसी घृतकीर्वा के कारण फिर कौरवों और पाण्डवों का घोर युद्ध होने लगा । पहले व्यास, विदुर आदि महात्माओं ने बारम्बार आपको मना किया था परन्तु आपने उनकी बात नहीं मानी, उसी का यह दारुण परिणाम अब

प्रत्यक्ष देखिए । हे राजेन्द्र ! पाण्डव या कौरव और उनके सैनिक असुगत बन्धु-बान्धव आदि सभी, प्राणों का मोह छोड़कर, घोर युद्ध कर रहे हैं । इस भयङ्कर स्वजन-विनाश का कारण चाहे दैव को मानिए, चाहे अपने अनुचित व्यवहार को मानिए और चाहे अपने हितचिन्तकों का कहा न मानने के अपराध को मानिए ॥ ४४।४७ ॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ तीन अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०३ ॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्तान्नरव्याघ्रः सुशर्मानुचरान्मृषान् ।

अनयत्प्रेतराजस्य सदनं सायकैः शितैः ॥ १ ॥

सुशर्माऽपि ततो वाणैः पार्थ विव्याध संयुगे ।

वासुदेवं च सप्तत्या पार्थं च नवभिः पुनः ॥ २ ॥

तं निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः ।

सुशर्मणो रणे योधान्प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ३ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनैव युगक्षये ।

व्यद्रवन्त रणे राजन्भये जाते महारथाः ॥ ४ ॥

उत्सृज्य तुरगान्केचिद्रथान्केचिच्च मारिष ।

गजानन्ये समुत्सृज्य प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ ५ ॥

एक सौ चार अध्याय ॥ १०४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! पुरुषसिंह अर्जुन तीक्ष्ण बाण वरसाकर त्रिगर्भराज सुशर्मा के साथियों को घमघुर भेजने लगे । सुशर्मा ने पहले सत्तर बाण श्रीकृष्ण को और फिर नव बाण अर्जुन को मारे ।

महारथी अर्जुन ने अनायास सुशर्मा के बाणों को व्यर्थ करके उसके सहायक कई योद्धाओं को मार डाला ॥ १।३ ॥ सुशर्मा के बचे हुए साथी योद्धा, प्रलयकाल में काल के समान संहार करनेवाले, अर्जुन

अपरे तु तदाऽऽदाय वाजिनागरथान्रणे ।
 त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशाम्पते ॥ ६ ॥
 पादाताश्चाऽपि शस्त्राणि समुत्सृज्य महारणे ।
 निरपेक्षा व्यधावन्त तेन तेन स्म भारत ॥ ७ ॥
 वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैर्गतैर्न सुशर्मणा ।
 तथाऽन्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ॥ ८ ॥
 तद्वलं प्रदुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तब ।
 पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतः ॥ ९ ॥
 सर्वोद्योगेन महता धनञ्जयमुपाद्रवत् ।
 त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते ॥ १० ॥
 स एकः समरे तस्थौ किरन्वहुविधान्शरान् ।
 भ्रातृभिः सहितः सर्वैः शेषा हि प्रदुता नराः ॥ ११ ॥
 तथैव पाण्डवा राजन्सर्वोद्योगेन दंशिताः ।
 प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यतिष्ठत ॥ १२ ॥
 ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः ।
 हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः ॥ १३ ॥
 ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानां बहूथिनीम् ।
 छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥
 एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः ।
 अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ १५ ॥

के बाणों से पीड़ित होकर भय के मारे प्राण लेकर
 भाग खड़े हुए । कोई घोड़े को, कोई हाथी को और
 कोई रथ को छोड़कर जिधर मार्ग मिला उधर पैदल
 ही भाग खड़ा हुआ । पैदल सेना के लोग भी उस
 महारण में शस्त्र-अस्त्र फेंककर, किसी का मार्ग न
 देखकर, इधर-उधर भागने लगे । त्रिगर्तराज सुशर्मा
 और अन्य राजा लोग उन्हें बारम्बार उत्साहित करते
 और ठहरने के लिए कहते थे, परन्तु उनमें से कोई
 भी नहीं ठहरा ॥ ११।८ ॥ हे महाराज ! दुर्योधन ने
 सुशर्मा की सेना को जब भागते देखा तब वे आप
 सब सेना के आगे हुए, और भीष्म पितामह को अपने
 आगे करके सुशर्मा के प्राण बचाने के लिए उद्योग

करते हुए अर्जुन की ओर बढ़ने लगे । अपने माइयों
 के साथ केवल दुर्योधन ही बाणवर्षा करते हुए अर्जुन
 के सम्मुख ठहरे, और सब योद्धा भाग गये । उधर
 कवचधारी पाण्डव भी पूर्ण उद्योग के साथ अर्जुन
 की सहायता करने के लिए भीष्म पितामह के सम्मुख
 आये ॥ १२।१२ ॥ युद्ध में अर्जुन का अमित पराक्रम
 जानकर भी वे लोग उत्साह के साथ कोलाहल और
 सिंहनाद करते हुए चारों ओर से भीष्म पर आक्रमण
 करने चले । तालचिह्न युक्त पताका से शोभित रथ
 पर बैठे हुए शर भीष्म पितामह ने तीक्ष्ण बाणों से
 पाण्डवसेना को ढक दिया । हे राजेन्द्र ! इस प्रकार
 मध्याह्न के समय कौरवों के साथ पाण्डवों का घमासान

सात्यकिः कृतवर्माणं विद्वधा पञ्चभिराशुगैः ।
 अतिष्ठदाह्वे शूरः किरन्वाणान्सहस्रशः ॥ १६ ॥
 तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्वधा शितैः शरैः ।
 पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चाऽस्य पञ्चभिः ॥ १७ ॥
 भीमसेनस्तु राजानं बाह्यीकं प्रपितामहम् ।
 विद्वधा नदन्महानादं शार्दूल इव कानने ॥ १८ ॥
 आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः ।
 अतिष्ठदाह्वे शूरः किरन्वाणान्सहस्रशः ॥ १९ ॥
 चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध समरे भृशम् ।
 समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम् ॥ २० ॥
 यथा दिवि महाघोरौ राजन्बुधशनैश्चरौ ।
 तस्याऽश्वान्श्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः ॥ २१ ॥
 ननाद बलवान्नादं सौभद्रः परवीरहा ।
 हताश्वात्तु रथान्तूर्णं सोऽवमुत्स्य महारथः ॥ २२ ॥
 आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते ।
 द्रोणश्च द्रुपदं भित्त्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २३ ॥
 सारथिं चाऽस्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी ।
 पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदा बाहिनीमुखे ॥ २४ ॥
 अपायज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
 भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्यिकम् ॥ २५ ॥

युद्ध होने लगा ॥ १३।१५॥ महारथी सात्यकि ने कृतवर्मा को पाँच बाण मारे । इसके अनन्तर उन्होंने और भी हजारों बाण बरसाये । राजा द्रुपद ने पहले तीक्ष्ण बाणों से द्रोणाचार्य को घायल करके फिर सत्तर बाण उनको और पाँच बाण उनके सारथी को मारे । भीमसेन ने प्रपितामह राजा बाह्यीक को बाणों से घायल करके घोर सिंहनाद किया ॥ १६।१८॥ पहले चित्रसेन ने बहुत से तीक्ष्ण बाण अभिमन्यु को मारे । शूर अभिमन्यु गन्तुओं पर हजारों बाण बरसा रहे थे । चित्रसेन के प्रहार करने पर उन्होंने भी चित्रसेन को तीन बाण मारे । हे मदारान ! जैसे आकाश में महाघोर गह सुष और शनैश्चर शोभाप-

मान हों वैसे ही वे दोनों वीर युद्ध करते समय शोभा को प्राप्त हुए । वीर शत्रुओं का संहार करनेवाले अभिमन्यु ने नव बाणों से चित्रसेन के सारथी और चारों घोड़ों को मारकर सिंहनाद किया । वीर चित्रसेन बिना घोड़ों के रथ से क्रूरकर शक्ति के साथ अनेक भारी दुर्मुख के रथ पर चले गये ॥ १९।२३॥ पराक्रमी द्रोणाचार्य ने बहुत से तीक्ष्ण बाण द्रुपद को और उनके सारथी को मारे । राजा द्रुपद सब सेना के सामने द्रोण के बाणों से पीड़ित होकर, उनके साथ अनेक पिठले बैर को स्मरण कर, घोड़ों को दीप्रवा में टँकवाकर उनके सामने से दृष्ट गये । भीमसेन ने क्षणभर में सब सेना के सम्मुख मदारान बाह्यीक के

व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
 ससम्भ्रमो महाराज संशयं परमं गतः ॥ २६ ॥
 अवष्टुत्य ततो बाहाद्वाहीकः पुरुषोत्तमः ।
 आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारणे ॥ २७ ॥
 सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे ।
 शरैर्वहुविधै राजन्नाससाद् पितामहम् ॥ २८ ॥
 स विद्वद्वा भारतं पृथ्वा निशितैर्लोमवाहिभिः ।
 नृत्यन्निव रथोपस्थे विधुन्वानो महच्छनुः ॥ २९ ॥
 तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाऽथ पितामहः ।
 हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम् ॥ ३० ॥
 तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुदुर्जयाम् ।
 व्यंसयामास बाष्पेणो लाघवेन महायशः ॥ ३१ ॥
 अनासाद्य तु बाष्पेणं शक्तिः परमदारुणा ।
 न्यपतच्छरणीपृष्ठे महोत्केव महाप्रभा ॥ ३२ ॥
 बाष्पेण्यस्तु ततो राजन्त्वां शक्तिं कनकप्रभाम् ।
 वेगवदृष्ट्वा चिक्षेप पितामहरथं प्रति ॥ ३३ ॥
 बाष्पेण्यभुजवेगेन प्रणुन्ना सा महाहवे ।
 अभिदुद्राव वेगेन कालरात्रिर्यथा नरम् ॥ ३४ ॥
 तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद् भारतः ।
 क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां सा व्यशीर्यत मेदिनीम् ॥ ३५ ॥

घोड़ा को और रथ सहित सारथी को नष्ट कर दिया ।
 हे राजेन्द्र ! पुरुषश्रेष्ठ बाह्यीक प्राणसङ्कट की अस्था
 में पड़कर भय के मारे स्फूर्ति के साथ दूटे हुए रथ से
 छूटकर लक्ष्मण कुमार के बाण मारकर कृतवर्मा को
 सात्यकि ने कई प्रकार के बाण मारकर कृतवर्मा को
 युद्ध से हटा दिया । इसके अनन्तर वे भीष्म के पास
 पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्फूर्ति के साथ भयानक लोभ-
 साही साठ बाण भीष्म को मारे । वे इतनी स्फूर्ति के
 साथ मण्डलाकार धनुष धुमाकर बाण बरसा रहे थे
 कि देखने से जान पड़ता था मानो रथ पर नृत्य
 कर रहे हैं ॥ २८-२९ ॥ तब भीष्म पितामह ने हेम-
 चित्रित वेगवती नागिन-सी एक तीक्ष्ण शक्ति हाथ

में ली, और वह शक्ति पूर्णबल से सात्यकि को
 मारी । महायशस्वी सात्यकि उस मृत्युनुन्य अमोघ
 शक्ति को सहसा आते देखकर बड़ी स्फूर्ति के साथ
 उसका प्रहार बचा गये । वह भयङ्कर शक्ति बड़ी
 उन्मा के समान पृथ्वी में प्रवेश हो गई ॥ ३० ॥ ३२ ॥
 अब वीर सात्यकि ने अपनी शक्ति उठाकर बड़े वेग
 से भीष्म के रथ पर फेंकी । सात्यकि के बाहुबल से
 चलाई गई बड़े वेग से आती हुई वह शक्ति मनुष्यों
 पर आक्रमण करनेवाली कालरात्रि के समान जान
 पड़ी । परन्तु भीष्म ने उस शक्ति को सहसा गिरते
 देख दो तीक्ष्ण क्षुरप बाणों से काटकर गिरा दिया ।
 वह शक्ति दो टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी

छित्वा शक्तिं तु गाङ्गेयः सात्यकिं नवभिः शूरैः ।

आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्छत्रुकर्शनः ॥ ३६ ॥

ततः सरथनागाश्र्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजाः ।

परिव्रू रणे भीष्मं माधवत्राणकारणात् ॥ ३७ ॥

ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।

पाण्डवानां कुरुणां च समरे विजयैषिणाम् ॥ ३८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मप्रपञ्चेणि वाण्येययुद्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

॥३३॥३५॥ उस शक्ति को काटने के पश्चात् शत्रु-को चारों ओर से घेर लिया । जय की इच्छा रखने-
दमन भीष्म ने क्रोध की हँसी हँसकर सात्यकि की-वाले कौरव और पाण्डव परस्पर प्रहार करते हुए घोर
छाती में नव बाण मारे । तब भीष्म के अतुल पराक्रम युद्ध करने लगे ॥३६॥३८॥
से सात्यकि की रक्षा करने के लिए पाण्डवों ने भीष्म

भीष्मपर्व का एक सौ चार अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०४ ॥

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

सञ्जय उवाच — दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम् ।

यथा मेघैर्महाराज तपान्ते दिवि भास्करम् ॥ १ ॥

दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत ।

एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शूरनिषूदनः ॥ २ ॥

छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद्भरतर्षभ ।

तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः ॥ ३ ॥

रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः ।

निह्न्यात्समरे यत्तान्पञ्चालान्पाण्डवैः सह ॥ ४ ॥

तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम् ।

गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः ॥ ५ ॥

स भवान्सर्वसैन्येन परिवार्य पितामहम् ।

समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु ॥ ६ ॥

एक सौ पॉन अध्याय ॥ १०५ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! पितामह भीष्म को
बर्षाकाल के मेघों से घिरे हुए सूर्य की तरह पाण्डवों
की सेना के चारों ओर घेर कर राजा दुर्योधन ने
दुःशामन से कहा — हे भाई ! यह देगो, समुद्रमन भीष्म
को पाण्डवों की सेना ने घेर लिया है । इस समय उन

महान्नीर की रक्षा और सहायता करना हमारा परम
कर्तव्य है । यदि हम पितामह की रक्षा कर सकेंगे तो
वे अकेले ही पाण्डवों और पाण्डवों की मार डालेंगे ।
भीष्म समर में अनेक अद्भुत दुष्कर कार्य करनेवाले
और हमारे प्रधान रक्षक हैं । इसलिए तुम अपनी सारी

स-एवमुक्तः समरे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
 परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः ॥ ७ ॥
 ततः शतसहस्राणां हयानां सुचलात्मजः ।
 विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम् ॥ ८ ॥
 दर्पितानां सुवेशानां वलस्थानां पताकिनाम् ।
 शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः ॥ ९ ॥
 नकुलं सहदेवं च धर्मराजं च पाण्डवम् ।
 न्यवारयन्नरश्रेष्ठान्परिवार्य समन्ततः ॥ १० ॥
 ततो दुर्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम् ।
 अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां निवारणे ॥ ११ ॥
 तैः प्रविष्टैर्महावेगैर्गुरुमद्भिरीवाऽऽहवे ।
 खुराहता धरा राजंश्चकम्पे च ननाद च ॥ १२ ॥
 खुरशब्दश्च सुमहान्वाजिनां शुश्रुवे तदा ।
 महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ १३ ॥
 उत्पतन्निश्च तैस्तत्र समुद्भूतं महद्भजः ।
 दिवाकररथं प्राप्य च्छादयामास भास्करम् ॥ १४ ॥
 वेगवद्भिर्हयैस्तैस्तु क्षोभिता पाण्डवी चमूः ।
 निपतद्भिर्महावेगैर्हसैरिव महत्सरः ॥ १५ ॥
 हेपतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन ।
 ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १६ ॥

सेना के साथ जाकर पितामह की रक्षा करो ॥१६॥
 दुर्योधन की आज्ञा पाकर वीर दुःशामन ने भीष्म को
 अपनी सेना के मध्य में कर लिया। सब लोग बड़ी
 सावधानी से पितामह की रक्षा करने लगे। नकुल,
 सहदेव और धर्मराज से प्रधान रथी शकुनि युद्ध करने
 लगे। निर्मल प्रास, ऋष्टि और तोमर आदि शस्त्र
 धारण करने वाले, सुशिक्षित, युद्धनिपुण वीर शकुनि
 के साथ थे। वे महावेगशाली पताका-शोभित घोड़ों
 पर सवार थे। ऐसे सहस्रों युद्धसगरो ने शकुनि के
 साथ जाकर तानों पाण्डवों को घेर लिया ॥१७॥
 राजा दुर्योधन ने पाण्डवों की गति देखने के लिए
 दस हजार युद्धसगर सेना और भेज दी। गरुड की

तरह शाप्र चलनेवाले घोड़ों के दल आने पर उनकी
 टांगों से समरभूमि मानों काँप उठी और टांगों की
 आवाज से मूँज उठी। अग्नि लगने पर जलते हुए
 बाँसों की पोरें फटने से जैसा घोर शब्द होता है वैसा
 ही शब्द घोड़ों की टाँगें घृष्टी पर पड़ने से हो रहा
 था। उनकी टाँगों से उड़ती हुई धूल के मेघ आकाश
 में छा गये और उसमें सूर्यमण्डल छिप गया ॥१८॥
 १८॥ जैसे हस्तों के प्रवेश होने से मरोवर का जल क्षोभ
 की प्राप्ति होता है वैसा ही वेगमग्न युद्धसगर सेना
 आने पर पाण्डवों की सेना में हलचल मच गई।
 उस समय यहाँ घोड़ों की हिनहिनाहट और अत्र-
 शक्नों की झनकार के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं

प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे ह्यसादिनाम् ।
 उद्वृत्तस्य महाराज प्रावृट्कालेऽतिपूर्यतः ॥ १७ ॥
 पौर्णमास्यामम्बुवेगं यथा वेला महोदधेः ।
 ततस्ते रथिनो राजञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥
 न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि शरेण ह्यसादिनाम् ।
 ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ॥ १९ ॥
 नागैरिव महानागा यथावहिरिगिह्वरे ।
 तऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
 न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश ।
 अभ्याहता हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ॥ २१ ॥
 अत्यजन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमाः ।
 ससादिनो हया राजंस्तत्र तत्र निपूदिताः ॥ २२ ॥
 पतिताः पात्यमानाश्च प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।
 बध्यमाना हयाश्चैव प्राद्रवन्त भयार्दिताः ॥ २३ ॥
 यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः ।
 पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून्महामृधे ॥ २४ ॥
 दध्मुः शङ्खांश्च भेरींश्च ताडयामासुराहवे ।
 ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम् ॥ २५ ॥
 अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ मद्राजमिदं वचः ।
 एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो यमाभ्यां सहितो रणे ॥ २६ ॥
 पश्यतां वो महाबाहो सेनां द्रावयति प्रभो ।
 तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम् ॥ २७ ॥

घुन पड़ता था । तटभूमि जैमे वर्षाकाल की पूर्णिमा
 के दिन क्षोभ को प्राप्त महासागर के प्रचण्ड वेग को
 रोक्नी है वैसे ही राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव
 ने उन घुड़सवार वीरों के वेग को तत्काल ही रोक दिया
 ॥१५॥१८॥ तीनों वीर भाई तीक्ष्ण बाणों और प्रासों
 से उनके सिर काटने लगे । घुड़सवार लोग पाण्डवों के
 बाणों से मरकर, पर्यन्त कन्दरा में गिर्य नागों द्वारा
 निहत महानागों की तरह, गिरने लगे । उनके सिर
 पेड़ में टपकनेवाले पके हुए ताड़-फल के समान

धृष्टी पर गिरते देव पड़ते थे ॥१८॥२३॥ बहुत से
 घोड़े भी सवारों के साथ मरकर चारों ओर गिरने
 लगे । पाण्डवों के बाणों से अत्यन्त व्यथित घोड़े,
 सिंह के सतये हुए घृगों की तरह, प्राण ले-लेकर भागने
 लगे । तीनों पाण्डव इस प्रकार युद्ध में शत्रुपक्ष को
 हराकर भेरी, शङ्ख आदि वज्राने लगे ॥२३॥२५॥
 राजा दुर्योधन ने अपने घुड़सवारों को हारकर भागने
 देख मद्राज शन्य से कहा—हे राजेन्द्र ! यह देखो,
 पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव हमारे सामने

त्वं हि सन्ध्रूयसेऽत्यर्थमसह्यवलविक्रमः ।
 पुत्रस्य तत्र तद्वाक्यं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान् ॥ २८ ॥
 स ययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
 तदाऽऽपतद्वै सहसा शल्यस्य सुमहद्वलम् ॥ २९ ॥
 महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः ।
 मद्राजं च समरे धर्मराजो महारथः ॥ ३० ॥
 दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे ।
 नकुलः सहदेवश्च तं सप्तभिरजिह्वगैः ॥ ३१ ॥
 मद्राजोऽपि तान्सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः ।
 युधिष्ठिरं पुनः पष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥
 माद्रीपुत्रौ च सम्भ्रान्तौ द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ।
 ततो भीमो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाह्वे ॥ ३३ ॥
 मद्राजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।
 अभ्यपद्यत संग्रामे युधिष्ठिरमभिजित् ॥ ३४ ॥
 ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
 अपरां दिशमास्थाय पतमाने दिवाकरे ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मप्रथमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

ही हमारी सेना को मारकर भगा रहे हैं । हे महाभाग !
 आपका उल-विक्रम घृष्णी में प्रसिद्ध है । इसलिए तट-
 भूमि जैसे समुद्र के बग को रोमती है वैसे ही आप भी
 ज्येष्ठ पाण्डव की रीति पर ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे महाराज !
 प्रतापी राजा शल्य दुर्योधन के ये वचन सुनकर असह्य
 रथों के साथ युधिष्ठिर के समग्र चले । राजा युधिष्ठिर
 ने शल्य को भारी सेना के साथ बड़े वेग से अपनी
 ओर आते देखकर उन्हें अनायास रोक लिया । युधिष्ठिर
 ने शल्य की छाती में दम बाण मारे । नकुल और
 सहदेव ने भी सात बाण मारे ॥ २८ ॥ ३१ ॥ मद्राज

शल्य ने भी तीनों को तीन-तीन बाण मारे । इसके
 अनन्तर क्रुद्ध होकर फिर युधिष्ठिर को तीक्ष्ण साठ
 बाण और नवगुल सहदेव को दो-दो बाण मारे । हे
 राजेन्द्र ! शत्रुघ्नीराशन महाराष्ट्र भीमसेन ने जन
 राजा युधिष्ठिर को शत्रु के पक्ष में कैसे और शल्य
 के प्रशस्ती देखा तब वे बड़े वेग से उनको पास दौड़े
 गये । सूर्य उस समय पश्चिम आकाश में पड़ चुके
 थे । दोनों ओर के गीर प्राणों का मोह छोड़कर
 समामान युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥ ३५ ॥

भीष्मपत्र का एक साँ पाँच अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०५ ॥

अथ पट्विंशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सञ्जय उवाच—ततः पिता तत्र क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः ।

आजघान रणे पार्थान्सहसेनान्समन्ततः ॥ १ ॥

भीमं द्वादशभिर्विध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः ।
 नकुलं च त्रिभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २ ॥
 युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाहोरुरसि चाऽर्पयत् ।
 धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा ननाद सुमहाबलः ॥ ३ ॥
 तं द्वादशाख्यैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः ।
 धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः ॥ ४ ॥
 युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत्पितामहम् ।
 द्रोणस्तु सात्यकिं विध्वा भीमसेनमविध्यत् ॥ ५ ॥
 एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः ।
 तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः ॥ ६ ॥
 तोत्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम् ।
 सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ७ ॥
 अभीपाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।
 संग्रामे नाऽजहुर्भीष्मं बध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ८ ॥
 तथैवाऽन्ये महीपाला नानादेशसमागताः ।
 पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः ॥ ९ ॥
 तथैव पाण्डवा राजन्परिव्रुः पितामहम् ।
 स समन्तात्परिवृतो रथौघैरपराजितः ॥ १० ॥
 गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन्परान् ।
 रथान्यगारश्चापार्चिरसि शक्तिगदेन्धनः ॥ ११ ॥

एक सौ छ. अध्याय ॥ १०६ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर पराक्रमी भीष्म क्रोध से उत्तेजित होकर तीक्ष्ण बाणों में सेना सहित पाण्डवों को पीड़ित करने लगे । उन्होंने भीमसेन को बारह, सात्यकि को नव, नकुल को तीन, महदेव को सात और युधिष्ठिर के हृदय तथा हाथों में बारह बाण मारे । इसके पश्चात् कई बाणों से धृष्टद्युम्न को घायल करके वे मिहनाद करने लगे ॥ १।३॥ तब नकुल ने बारह, सात्यकि ने तीन, धृष्टद्युम्न ने सत्तर, भीमसेन ने सात और युधिष्ठिर ने बारह बाण भीष्म पितामह को मारे । महाबली द्रोणार्च्य ने सात्यकि और भीमसेन को यमदण्डनुन्य

पाँच-पाँच उग्र बाण मारे ॥ ४।६॥ जैसे कोई गजराज को अङ्कुश मारे वैसे ही सात्यकि और भीमसेन ने भी ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणार्च्य को तीन-तीन तीक्ष्ण बाण मारे । सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीपाह, शूरसेन, शिपि और वसानि देश के योद्धा लोग तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित होकर भी संग्राम में भीष्म को छोड़कर नहीं भागे । अन्य अनेक देशों के योद्धा और राजा भी विभिन्न दिशा लेकर पाण्डवों से युद्ध करने लगे । ॥ ६।९॥ पाण्डवगण भी अपनी मेना के साथ चारों ओर से पितामह भीष्म को घेरकर उन पर प्रहार करने लगे । उस समय रथों से

शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निर्ददाह क्षत्रियर्षभान् ।
 सुवर्णपुङ्खैरिगुभिर्गाध्रपक्षैः सुतेजैः ॥ १२ ॥
 कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद्वलम् ।
 अपातयद् ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ॥ १३ ॥
 मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ।
 निर्मनुष्यान्थान् राजन्गजान्श्वांश्च संयुगे ॥ १४ ॥
 अकरोत्स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
 तस्य ज्यातलनिघोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥ १५ ॥
 निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत ।
 अमोघा ह्यपतन्वाणाः पितुस्ते भरतर्षभ ॥ १६ ॥
 नाऽसज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः ।
 हतवीरान्स्थान् राजन्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ॥ १७ ॥
 अपश्याम महाराज ह्रियमाणान् रणाजिरे ।
 चेदिकाशिकरूपाणां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १८ ॥
 महारथाः समालयाताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
 अपरावर्तिनः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १९ ॥
 संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
 निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथकुञ्जराः ॥ २० ॥
 भग्नाक्षोपस्करान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत ।
 अपश्याम महाराज शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २१ ॥

धिरे हुए भीष्म वन में दानवगण के समान प्रज्वलित
 होकर शत्रुसेना को बाणों से नष्ट करने लगे । रथ-
 समूह भीष्मरूप अग्नि के गुण्ड थे । धनुष उससी
 जगल था । तलवार, गदा, शक्ति आदि शस्त्र ईंधन
 थे । बाण चिनगारियों थे ॥ १०१२ ॥ वे गृध्रपक्ष-
 शोभित सुवर्णपुङ्ख तीक्ष्ण इष्ट, कर्णी, नालीक, नाराच
 आदि बाणों से पाण्डवसेना को व्याप्त करके ध्वजाओं
 को काट-काटकर गिराने लगे । ध्वजाएँ कट जाने से
 सब रथ मुण्डित तालवृक्षों के समान देख पड़ने लगे ।
 इसके पश्चात् वे हाथियों, रथों और घोड़ों पर सवार
 योद्धाओं को मार-मारकर पृथ्वी पर गिराने लगे ॥ १२ ॥
 १५ ॥ उनके धनुष की डोरी का विकट शब्द सुनकर

सब प्राणी भय से काँपने लगे । हे महाराज ! महावीर
 भीष्म के धनुष से निकले हुए अमोघ बाण शत्रुओं
 के कवच तोड़कर शरीर के भीतर प्रवेश होने लगे ।
 इसके पश्चात् मैंने देखा कि वेग से चलने लगे घोड़े—
 रथी और सारथी से शून्य—रथों को पीछे छोड़
 युद्धभूमि में इधर-उधर फिर रहे हैं ॥ १५ ॥ १८ ॥ उच्चकुट
 में उत्पन्न, युद्ध में कर्मा पीट न दिखाने वाले, सुवर्ण-
 निर्मित ध्वजाओं से शोभित रथों पर घंटे हुए, देहत्याग
 का निश्चय किये हुए जीवदह हथार चेदि, काशी और
 कर्कष देवा के योद्धा महारथी ज्योंही मुग्न फैल्यो
 हुए काल के समान भीष्म के सामने आये त्योंही
 दायी, घोड़े आदि अपने बाहनों के साथ मर-मरकर

सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः ।
 शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिश्च विशाम्पते ॥ २२ ॥
 गदाभिर्भिन्दिपालैश्च निशितैश्च शिलीमुखैः ।
 अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चकैर्भग्नैश्च मारिष ॥ २३ ॥
 बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
 तलत्रैर्गुलित्रैश्च ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २४ ॥
 चापैश्च बहुधा छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ।
 हतारोहा गजा राजन्हयाश्च हयसादिनः ॥ २५ ॥
 न्यपतन्त गतप्राणाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
 यतमानाश्च ते वीरा ब्रवमाणान्महारथान् ॥ २६ ॥
 नाऽशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ।
 महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ २७ ॥
 अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।
 आविद्धरथनागाश्च पतितध्वजसंकुलम् ॥ २८ ॥
 अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।
 जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ २९ ॥
 प्रियं सखायं चाऽऽक्रन्दे सखा दैवचलात्कृतः ।
 विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥ ३० ॥
 प्रकीर्य केशान्धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।
 तद्रोकुलऽमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथकूचरम् ॥ ३१ ॥

यमपुर को निभाले लगे । सैकड़ों-सहस्रों योद्धाओं में किसी के रथ का युगकाष्ठ और अन्य अश और निमी के रथ के पहिये बाणों से छिन्न-भिन्न होते देख पड़ते थे ॥ १८१२१ ॥ टूटे हुए रथ, बन्ध, घटे हुए बाण, कवच, पट्टिश, गदा, भिन्दिपाल, तरकम, चक्र, गद्ग, घटे हुए कुण्डल-शोभित मिर, तलप्राण, अगुत्रिप्राण और कटकर गिरि हुई धजा-यताका आदि में वह युद्धभूमि परिपूर्ण थी । सैकड़ों-सहस्रों हाथी, घोड़े और उनके मवार मारे गये । मत्त महावर्षी भीष्म के बाणों में अपन्न व्यथित होकर युद्धभूमि में भागने लगे । पाण्डवगण किसी प्रकार उन्हें नहीं रोक पाये । हे भारत ! उस समय पाण्डवों की

सेना महेन्द्रसदृश महावीर भीष्म के बाणों की चोट से देसी अस्तव्यस्त हो गई कि दो मनुष्य भी एक साथ नहीं भाग सकते थे ॥ २५२८ ॥ सब अपनी-अपनी जान लेकर भाग रहे थे, दूसरे की ओर देखते भी नहीं थे । रथ, हाथी, घोड़े, पैदल और धजाओं से पूर्ण पाण्डवसेना अचेत सी होकर हाहाकार और आतिनाद काले लगी । दैतदृषिपाक में पड़कर पिता पुत्र को, पुत्र पिता को और प्रिय बन्धु प्रिय बन्धु को मारने लगा । युधिष्ठिर की मत्त सेना कवच फेककर, बाल खोलकर, 'ग्राहि ग्राहि' करती हुई चारों ओर भागी । रथों के अङ्ग-भङ्ग हो गये । अनेक रथ उल्टे पुलट गये । मिह के आक्रमण में व्याकुल और उड़ी हुई

ददशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।
 प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ३२ ॥
 उवाच पार्थ वीभत्सुं निश्छा रथमुत्तमम् ।
 अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यः कांक्षितस्तव ॥ ३३ ॥
 प्रहराऽस्मिन्नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।
 यत्पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमे ॥ ३४ ॥
 विराटनगरे तात सञ्जयस्य समीपतः ।
 भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धारारार्षस्य सैनिकान् ॥ ३५ ॥
 सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति सङ्घे ।
 इति तत्कुरु कौन्तेय सत्वं वाक्यमरिन्दम ॥ ३६ ॥
 क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः ।
 इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ॥ ३७ ॥
 अकाम इव वीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।
 अवधानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम् ॥ ३८ ॥
 दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत् ।
 चोदयाऽश्वान्यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ॥ ३९ ॥
 पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
 स चाऽश्वान्नरजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ॥ ४० ॥
 यतो भीष्मस्ततो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ।
 ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ॥ ४१ ॥

गउओं के झुण्ड की सा दशा पाण्डवसेना की दख
 पड़ा । सत्र लोग अतिनाद कर रहे थे ॥२८॥३२॥
 युधिष्ठिर की सेना को यों भागते देखकर वासुदेव ने
 रथ रोकर अर्जुन से कहा — हे धनञ्जय ! यह तुम्हारा
 अर्थात् समय उपस्थित है । इस समय तुम मोह को
 छोड़कर युद्ध करो । हे पुरुषसिंह ! वीर भीष्म पर
 प्रहार करो । तुमने एक समय विराटनगर में सञ्जय
 के आगे कहा था कि भीष्म, द्रोण आदि कौरवपक्ष
 के योद्धा मुझसे युद्ध करने आवेंगे तो मैं उनको मारूँगा;
 उनके साथी भी जीते नहीं बचेंगे । इस समय अपनी
 उन बातों को पूर्ण करो । स-ताप और मोह छोड़कर
 क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध करो ॥३२॥३७॥ सञ्जय

कहते हैं—हे राजेन्द्र ! श्रद्धिष्ण के ये वचन सुनकर
 अर्जुन ने तिरछी दृष्टि से देखकर, मुल्य लटकाकर,
 अनिच्छापूर्वक कहा—हे हर्षकिन्दा ! अरघ्य गुरुजन
 का मारकर नरक का कारणस्वरूप राज्य प्राप्त करने
 की अपेक्षा मुझे जनवास के दुःख भोगना ही श्रेष्ठ जान
 पड़ना है । तुम्हारी बात न मानना भी मेरी शक्ति
 के बाहर है । रथ चलाओ । मैं तुम्हारी आज्ञा से दुर्धर्म
 कुरुपितामह वृद्ध भीष्म को आज युद्ध में मार गिराऊँगा
 ॥३७॥४०॥ अब भगवान् वासुदेव सूर्य के समान
 तेजस्वी दुर्निरीक्ष्य भीष्म की ओर चैन रक्त के अर्जुन
 के घोड़ों को हॉन्कर ले चले । युधिष्ठिर की मन
 सेना अर्जुन को भीष्म से युद्ध करने के लिए उचन

दृष्ट्वा पार्थ महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ।
 ततो भीष्मः कुशश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ४२ ॥
 धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ।
 क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसाराथिः ॥ ४३ ॥
 शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत ।
 वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्वरः ॥ ४४ ॥
 चोदयामास तानश्चान्विनुन्नान्भीष्मसायकैः ।
 ततः पार्थो धनुर्युह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ॥ ४५ ॥
 पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा शितैः शरैः ।
 स छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ॥ ४६ ॥
 निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ।
 चक्रे च ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ ४७ ॥
 अथाऽस्य तदपि कुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ।
 तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ॥ ४८ ॥
 गाङ्गेयस्त्वब्रवीत्पार्थ धन्विश्रेष्ठमरिन्दम ।
 साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ॥ ४९ ॥
 समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
 मुमोच समरे भीष्मः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ५० ॥
 आदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
 मोघान्कुर्वन्शरांस्तस्य मण्डलानि निदर्शयन् ॥ ५१ ॥

देखकर आप से ही फिर लौट पड़ा ॥४०॥४२॥ भी काट डाला । भीष्म ने प्रसन्न होकर इस स्तुति
 महावीर भीष्म बारम्बार सिंहनाद करके अर्जुन के क लिए "शाबाश अर्जुन, शाबाश !" कहकर अर्जुन
 रथ पर बाण बरसाने लगे । क्षण भर में ही भीष्म के कां प्रशंसा की ॥४५॥४२॥ भीष्म ने फिर दूसरा
 बाणों में अर्जुन का रथ ऐसा छिड़ गया कि घोंड़े धनुष हाथ में लिया । वे फिर अर्जुन के रथ पर बाण
 सारथी और रथ कुछ भी नहीं मूझ पड़ता था । निर्मय छोड़ने लगे । वासुदेव भी अनेक प्रकार की गतियों
 वासुदेव धैर्य के साथ उन भीष्म के बाणों में व्याकुल से घोंड़े चलाकर भीष्म के बाणों को व्यर्थ करते
 घोंड़ों को चलाते लगे ॥४२॥४५॥ तब महावीर अर्जुन हुए सारथी के काम में निपुणता की पराकाष्ठा दिखाने
 ने मेघगर्जन का सा गम्भीर शब्द कानिगड़े दिव्य लगे । तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण इस चतुराई से रथ
 गाण्डीव धनुष को लेकर तीक्ष्ण बाणों में भीष्म का को धुमाने थे कि भीष्म का लक्ष्य और बाण निष्फल
 धनुष काट डाला । महावीर भीष्म ने उन्हीं क्षण और जानें थे । वासुदेव और अर्जुन के शरीर फिर भी भीष्म
 एक बड़ा धनुष उठाकर उस पर प्रयत्न चढ़ाई । के बाणों से घायल हो रहे थे और वे दोनों पुरुषसिंह
 तुरन्त ही पुनः अर्जुन ने शक्ति के साथ वह धनुष परस्पर मीलों की दूरी से घायल श्रेष्ठ मौर्य की तरह

शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
 गोवृषाविव संख्यौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ५२ ॥
 वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ।
 भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ॥ ५३ ॥
 प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ।
 वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ॥ ५४ ॥
 युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे वले ।
 नाऽमृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥ ५५ ॥
 उत्सृज्य रजतप्रख्यानहयान्पार्थस्य मारिष ।
 वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात् ॥ ५६ ॥
 अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली ।
 प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ५७ ॥
 दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः ।
 क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः ॥ ५८ ॥
 ग्रसन्त इव चेतांसि तावकानां महाहवे ।
 दृष्ट्वा माधवमाक्रन्दे भीष्मायोद्यतमन्तिके ॥ ५९ ॥
 हतो भीष्मो हतो भीष्मस्तत्र तत्र वचो महत् ।
 अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात्तदा ॥ ६० ॥
 पीतकौशेयसंवीनो मणिदयामो जनार्दनः ।
 शुशुभे विद्रवन्भीष्मं विद्युन्माली यथाऽम्बुदः ॥ ६१ ॥
 स सिंह इव मातङ्गं द्यूथर्षभ इवर्षभम् ।
 अभिदुद्राव वेगेन विनदन्यादवर्षभः ॥ ६२ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे ।
 असम्भ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महच्छत्रुः ॥ ६३ ॥
 उवाच चैव गोविन्दमसम्भ्रान्तेन चेतसा ।
 एद्मेहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ॥ ६४ ॥
 मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
 त्वया हि देव संग्रामे हतस्याऽपि ममाऽनघ ॥ ६५ ॥
 श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।
 सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाऽद्य संयुगे ॥ ६६ ॥
 प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चाऽनघ ।
 अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम् ॥ ६७ ॥
 निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै ।
 निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ॥ ६८ ॥
 जगामैवैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ।
 पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ॥ ६९ ॥
 निजग्राह हृषीकेशं कथञ्चिद्दृशमे पदे ।
 तत एवमुवाचाऽऽर्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ॥ ७० ॥
 निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः प्रणयात्सखा ।
 निवर्तस्व महाबाहो नाऽनृतं कर्तुमर्हसि ॥ ७१ ॥
 यत्त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव ।
 मिथ्यावादीति लोकास्त्वां कथयिष्यन्ति माधव ॥ ७२ ॥

की तरह गरजते हुए श्रीकृष्ण जब भीष्म के समुप
 चले तब वे विजली से शोभित मेघ के समान जान
 पड़े । क्योंकि उनका शरीर मरकतमणि के समान
 सौम्य था, और उसपर रंशमी पीताम्बर बहाव दिया
 रहा था ॥५९॥६२॥ परानर्मी भीष्म महामा वासुदेव
 को अपनी ओर इस प्रकार झपटते देखकर तनिक भी
 विचलित नहीं हुए । उन्होंने बैसे ही दिव्य धनुष
 गीघकर फटा—हे वासुदेव ! आपको प्रणाम है ।
 आह, आज इस महायुद्ध में मुझे मारकर खरगति
 दीजिए । हे देव ! आप यदि मुझे युद्ध में मारेंगे तो
 उमरों भी मैं अपने लिए श्रेय समझूँगा । हे गोविन्द !
 आपके इस स्पर्शसे आज त्रिभुवन के लोग मुझे

और भी सम्मान देंगे । हे निष्णव ! मैं आपका दास
 हूँ; मुझ पर जी भरकर प्रहार कीजिए ॥६३॥६७॥
 इधर अर्जुन भी श्रीकृष्ण के पीछे रथ से कूद पड़े ।
 उन्होंने दौड़कर पीछे से श्रीकृष्ण के दोनों हाथ पकड़
 लिये । अर्जुन के रथों रोक्ने पर भी कुपित श्रीकृष्ण
 नहीं रुके, और उसी प्रकार उनको भी रौंचने हुए
 वेग में आगे बढ़े । दम पूरा आगे जाते पर, किसी
 प्रकार रथ जमाकर, अर्जुन उन्हें रोक सके ॥६७॥
 ७०॥ क्रोध से नेत्र लाल करके सारे की तरह बारम्बार
 घाम छेने हुए श्रीकृष्ण ने सखा अर्जुन ने मोहपूर्ण
 नयन में कहा—हे महाबाहो ! लौट चलिए ।
 हे केशव ! आप पहनते युद्ध न करने की प्रतिज्ञा पर

ममैव भारः सर्वो हि हनिष्यामि पितामहम् ।
 शपे केशव शस्त्रेण सत्येन सुकृतेन च ॥ ७३ ॥
 अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुसूदन ।
 अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महारथम् ॥ ७४ ॥
 तारापतिमिवाऽऽपूर्णमन्तकाले यदृच्छया ।
 माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ ७५ ॥
 न किञ्चिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः ।
 तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ भीष्मः शान्तनवः पुनः ॥ ७६ ॥
 वर्षं शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाऽचलौ ।
 प्राणानादत्त योधानां पिता देववतस्तव ॥ ७७ ॥
 गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यस्तेजांसि शिशिरालये ।
 यथा कुरूणां सैन्यानि बभञ्जुर्गुधि पाण्डवाः ॥ ७८ ॥
 तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता ।
 हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ॥ ७९ ॥
 निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे ।
 मध्यङ्गतमिवाऽऽदित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा ॥ ८० ॥
 ते वध्यमाना भीष्मेण शतशोऽथ सहस्रशः ।
 कुर्वाणं समरे कर्माण्यतिमानुपविक्रमम् ॥ ८१ ॥
 वीक्षाञ्चकुर्महाराज पाण्डवा भयपीडिताः ।
 तथा पाण्डवसैन्यानि द्राव्यमाणानि भारत ॥ ८२ ॥

चुके हैं, उसे असत्य न कीजिए । आप शत्रु लेकर
 पितामह मे युद्ध करेंगे तो लोग आपकी मिथ्यागदी
 कहेंगे । यह सब भार तो मेरे ऊपर है । मैं पितामह
 को मारूँगा । मैं शत्रु, मत्स्य और सुहृद की मंगल
 पाकर कहता हूँ कि ममाम मे सब शत्रुओं को उनके
 भाई-बन्धुओं-महित अवश्य मारूँगा ॥७३॥७४॥ आप
 अभी देखेंगे कि मैं पूर्णचन्द्र तुज्य पितामह को रथ से
 गिरा दूँगा । महातुभा श्रीहृण अर्जुन के ये वचन सुन-
 कर भी ही क्रोधपूर्ण भाव मे फिर रथ पर चढ़े गये ।
 अर्जुन और श्रीहृण के रथ पर जाते ही महाभी
 भीष्म फिर मेघ जैसे पर्वत पर जल बरमाने जैसे ही
 उन पर बाण बरमाने लगे । मृत्यु जैसे वसन्त ऋतु

में अपनी किरणों मे सब पदार्थों के तेज को प्रहण
 करते हैं वैसे ही पितामह भीष्म बाणों से सबका प्राण
 हरने लगे ॥७५॥७६॥ पाण्डवगण जैसे कौरवों की
 सेना को भगा रहे थे वैसे ही भीष्म पाण्डवों की सेना
 को भगाने लगे । इस प्रकार भागते हुए, निरुत्साह,
 व्याकुल मैकड़ों-महलों पाण्डवश के पीर मर मारकर
 गिरने लगे । वे मर्यादावाद के मृत्यु के समान तेज मे
 प्रशस्ति, अशक्ति, पराक्रमी, दुष्कर काम करनेवाले
 भीष्म की ओर नेत्र उठाकर देख भी नहीं सकते थे ।
 उनका जोर देखते ही पाण्डवगण भयभीत होने लगे
 ॥७८॥७९॥ हे भारत ! पाण्डवश के सब निरंक
 भीष्म के प्रहार मे भगदड़, वीरद मे दौरी गउओं

त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त गावः पङ्कगता इव ।

पिपीलिका इव क्षुण्णा दुर्वला वलिना रणे ॥ ८३ ॥

महारथं भारतदुष्प्रकम्पं शरौघिणं प्रतपन्तं नरेन्द्रान् ।

भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते शरार्चिषं सूर्यमिवाऽऽतपन्तम् ॥ ८४ ॥

विमृद्गतस्तस्य तु पाण्डुसेनामस्तं जगामाऽथ सहस्ररश्मिः ।

ततो बलानां श्रमकर्षितानां मनोऽब्रह्मं प्रति सम्बभूव ॥ ८५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवचनपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्ते पञ्चदशतमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

के हृण्ड के समान, उत्पीड़ित चींटियों के समान और बलवान् व्यक्ति से युद्ध करनेवाले दुर्बल पुरुषों के समान, शरणहीन होकर भीष्म की ओर फिरकर देख भी नहीं सकते थे । महापराक्रमी भीष्म बाणरूप किरणों के द्वारा, सूर्य के समान, सब राजाओं

को सन्ताप पहुँचाने लगे । हे राजेन्द्र ! इस प्रकार पाण्डवों की महासेना भीष्म के बाणों से नष्ट होने लगी । उस समय भगवान् सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँच गये । सैनिक लोग बहुत विश्रान्त हो गये थे । वे युद्ध के मिश्राम के लिए व्याकुल हो उठे ॥ ८२।८५॥

भीष्मपर्व का एक सौ छः अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०६ ॥

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

सञ्जय उवाच—युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।

सन्ध्या समभवद्धोरा नाऽपश्याम ततो रणम् ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा सन्ध्यां सन्दृश्य भारत ।

वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम् ॥ २ ॥

स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम् ।

भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ॥ ३ ॥

सौमकांश्च जितान्दष्टान् निरुत्साहान्महारथान् ।

चिन्तयित्वा ततो राजा अब्रह्मरोचयत् ॥ ४ ॥

ततोऽब्रह्मं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।

तथैव तव सैन्यानामपहारो ह्यभूत्तदा ॥ ५ ॥

ततोऽब्रह्मं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः ।

न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षनविक्षताः ॥ ६ ॥

एक सौ सात अध्याय ॥ १०७ ॥

राज्य ने कहा—हे भारत ! दिन व्यतीत हो गया था । युद्धभूमि में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था । सन्ध्या के समय राजा युधिष्ठिर ने अपने पक्ष की सेना को महामुनी भीष्म के प्रहार में पीड़ित हो,

अब-शायद फेंककर, भागने और सोमरगण को पराजित कर निरुत्साह होते देखकर अत्यन्त चिन्तित हो सेनापति को युद्ध रोकने की आज्ञा दी ॥ १।५॥ दे राजेन्द्र ! इस प्रकार पाण्डवपक्ष की सेना को युद्ध से

भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः ।
 नाऽलभन्त तदा शान्तिं भीष्मवाणप्रपीडिताः ॥ ७ ॥
 भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान्सहस्रञ्जयान् ।
 पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत ॥ ८ ॥
 न्यविशत्कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः ।
 ततो रात्रिः सप्तभवत्सर्वभूतप्रमोहिनी ॥ ९ ॥
 तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
 सृञ्जयाश्च दुराधर्पा मन्त्राय समुपाविशन् ॥ १० ॥
 आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः ।
 मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः ॥ ११ ॥
 ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप ।
 वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे ॥ १२ ॥
 कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
 गजं नलवनानीव विमृद्भन्तं बलं मम ॥ १३ ॥
 न चैवेनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
 लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥ १४ ॥
 यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विपोल्वणः ।
 तथा भीष्मो रणे क्रुद्धस्तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान् ॥ १५ ॥
 गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ।
 शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट् ॥ १६ ॥

लौटने देखकर आपके पक्ष की सेना ने भी युद्ध बन्द
 कर दिया । शस्त्र-प्रहार से टिन्न-भिन्न महारथी
 योद्धा लोग अपने-अपने शिरि को लौट चले । भीष्म
 के बाणों में पीड़ित पाण्डवगण उनके अद्भुत युद्ध-
 कौशल को स्मरण करके जिसी प्रणाली शान्ति नहीं प्राप्त
 कर सकते थे । वे बहुत ही व्याकुल हो उठे ॥१७॥
 उपर आपके पुत्र भीष्म की पूजा और प्रशंसा करते
 हुए उन्हें अपने मध्य में करके शिरि को गये ।
 इसके पश्चात् मय प्राणियों को मोहित करनेवाली
 भयङ्कर रात्रि उपस्थित हुई । दुर्दैव पाण्डव और सृष्ट्रय
 रात्रि के समय शीघ्रता और चारों ओर का माघ डेर
 में बैठकर मग्न होकर लगे ॥१८॥ राजा युधिष्ठिर

ने देर तक मोचकर श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा—
 हे वासुदेव ! ये महाबली भीष्म मेरी सेना को धमि
 ही नष्ट कर रहे हैं जैसे मग्न हाथी नरकुल के बल
 को रौंदता है । वे प्रचलित अग्नि की तरह मेरी सेना
 को भस्म कर रहे हैं ॥१९॥ तीक्ष्ण अश्व-गण
 चलाते में बहुत महाप्रवारी विनामद क्रोधपूर्ण धनुष
 हाथ में लेकर, महानाग तक्षक के समान, प्रताप
 बाण बरसाने हैं । हम लोगों को उनकी ओर देखने
 तक का माहम भी नहीं होता । युधिष्ठिर सम्राट्,
 वज्रपाणि इन्द्र, पाशपाणी यम और यमनाभि कुबेर
 को कोई कोई जीत भी ले, किन्तु शम्भुपाणि युधिष्ठिर
 भीष्म को कोई युद्ध में नहीं पराजित कर सकता है

वरुणः पाशभृच्चाऽपि सगदो वा धनेश्वरः ।
 न तु भीष्मः सुसंकुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे ॥ १७ ॥
 सोऽहमेवं गते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे ।
 आत्मनो बुद्धिदौर्वल्याद्भीष्ममासाद्य संयुगे ॥ १८ ॥
 वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम् ।
 न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा ॥ १९ ॥
 यथा प्रज्वलितं वह्निं पतङ्गः समभिद्रवन् ।
 एकतो मृत्युमभ्येति तथाऽहं भीष्ममीयिवान् ॥ २० ॥
 क्षयं नीतोऽस्मि बाष्पण्य राज्यहेतोः पराक्रमी ।
 भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः ॥ २१ ॥
 मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्यभ्रष्टा वनङ्गताः ।
 परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन ॥ २२ ॥
 जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ।
 जीवितस्याऽद्य शोषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥ २३ ॥
 यदि तेऽहमनुयाह्यो भ्रातृभिः सह केशव ।
 स्वधर्मस्याऽविरोधेन हितं व्याहर केशव ॥ २४ ॥
 एवं श्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद्बहुविस्तरम् ।
 प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम् ॥ २५ ॥
 धर्मपुत्र विपादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर ।
 यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः ॥ २६ ॥

॥१५॥१७॥ इमलिए हे शत्रुदेव ! तुम बताओ, अत्र
 मैं क्या करूँ ? मैं भीष्म से बहुत भयभीत हो रहा
 हूँ । ये नियम मेरी सेना नष्ट करने जा रहे हैं । मैं
 फिर वन में जाकर रहना ही अनेक लिए श्रेष्ठ समझता
 हूँ । अत्र युद्ध करने की जी नहीं चाहता । जैसे पतङ्ग
 मरने के लिए ही जलनी हुई अग्नि की ज्योति के
 ऊपर आक्रमण करते हैं, वैसे ही भीष्म ने हमारा
 युद्ध करना है ॥१८॥२०॥ हे यदुकुञ्ज-निष्का राज्या
 के लोग मैं युद्ध टालकर मैं इस समय विनाश के
 मग्न पर गिरा हूँ । मेरे ये नष्ट भाई भी भीष्म के
 बाणों में अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं । मेरे ही कारण,
 भ्रातृमह के वध होकर, ये लोग भी राज्य में भय

हुए और वन में रहे । हे मधुसूदन ! मेरे ही कारण
 द्रौपदी ने अब तक इतने शोक सहे । मैं इस समय
 जीवन की ही श्रेष्ठ और दुर्लभ समझता हूँ; अब इस
 शोक जीवन की अवस्था में कन्याण के निमित्त धर्मा-
 चरण करूँगा । हे माधव ! यदि मैं और मेरे भाई
 तुम्हारे अनुग्रह के पात्र हो तो तुम जिसमें हम लोगों
 के धर्म में विरोध न हो, ऐसा हित का कार्य वर्णन
 करो, मैं उसका ही अनुग्रह करूँगा ॥२१॥२४॥
 युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण को दया आ गई ।
 वे उन्हें समझाते हुए बोले — हे मयादी धर्मपुत्र !
 आप व्यावृत्त न हो । आपके चारों भाई बंध और
 पराक्रम में श्रेष्ठ हैं । ये शत्रुओं का नष्ट करनेवा

अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ ।
 माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ ॥ २७ ॥
 मां वा नियुक्ष्व सौहार्दाद्योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव ।
 त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्या महाहवे ॥ २८ ॥
 हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् ।
 पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः ॥ २९ ॥
 यदि भीष्मे हते वीरे जयं पश्यसि पाण्डव ।
 हन्ताऽस्म्येकरथेनाऽय्य कुरुवृद्धं पितामहम् ॥ ३० ॥
 पश्य मे विक्रमं राजन्महेन्द्रस्येव संयुगे ।
 विमुञ्चन्तं महान्नाणि पातयिष्यामि तं रथात् ॥ ३१ ॥
 यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः ।
 मदर्थं भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते ॥ ३२ ॥
 तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च ।
 मां सान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थं महीपते ॥ ३३ ॥
 एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत् ।
 एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम् ॥ ३४ ॥
 स मां नियुञ्च राजेन्द्र यथा योद्धा भवान्यहम् ।
 प्रतिज्ञातमुपप्रव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः ॥ ३५ ॥
 घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य सन्निधौ ।
 परिरक्ष्यमिदं तावद्रथः पार्थस्य धीमतः ॥ ३६ ॥

और दुर्जय हैं। अर्जुन और भीमसेन अग्नि तथा वायु के समान तेजस्वी हैं। नकुल और सहदेव ऐसे बलवान् हैं कि इन्द्र के समान देवताओं पर भी प्रभुता कर सकते हैं ॥ २५।२७॥ इन पर भी आपनो विजय का विश्वास न हो तो मुझे अपना सुहृद् और हितचिन्तक समझकर भीष्म से युद्ध करने की आज्ञा दीजिए। हे महाराज। आपके कहने से ऐसा कौन कार्य है जिसे मैं महायुद्ध में नहीं कर सकता ? यदि अर्जुन स्वयं भीष्म को मारना नहीं चाहते तो मैं, दुर्गोधन आदिके सामने ही, नरश्रेष्ठ भीष्म को मारूँगा। हे पाण्डव ! महावीर भीष्म के मरने से ही यदि विजय पा सकोगे तो मैं अकेला ही कुरुवृद्ध भीष्म को मार

डालूँगा। हे राजेन्द्र ! युद्ध में मेरा इन्द्र के समान पराक्रम देखिएगा। महाबल छोड़ते हुए भीष्म को मैं रथ से गिरा दूँगा ॥ २८।३१॥ जो व्यक्ति पाण्डवों का शत्रु है, वह मेरा भी शत्रु है। मुझे आप किसी बात में पृथक् न समझिए। आपके पक्ष के लोग मेरे हैं और मेरे पक्ष के लोग आपके अधीन हैं। विशेषकर अर्जुन के साथ मेरा विशेष सम्बन्ध है। अर्जुन मेरे भाई, सखा, सम्बन्धी और शिष्य हैं। मैं उनके लिए अपने शरीर का मांस तक भी काटकर दे सकता हूँ। वीर अर्जुन भी मेरे लिए प्राण तक दे सकते हैं। हम दोनों मित्रों की परस्पर यह प्रतिज्ञा है कि एक दूसरे को सङ्कट से उबारेंगे ॥ ३२।३४॥ इसलिए

अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः ।
 अथवा फाल्गुनस्यैव भारः परिमितो रणे ॥ ३७ ॥
 स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम् ।
 अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः ॥ ३८ ॥
 त्रिदशान्वा समुद्युक्तान्सहितान्दैत्यदानवैः ।
 निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप ॥ ३९ ॥
 विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवनः ।
 भीष्मः शान्तनवो नूनं कर्तव्यं नाऽवबुध्यते ॥ ४० ॥
 युधिष्ठिर उवाच—एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
 सर्वं ह्येतेन पर्याप्तास्तव वेगविधारणे ॥ ४१ ॥
 नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेतद्यथेप्सितम् ।
 यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान्पक्षे व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥
 सेन्द्रानपि रणे देवान्जयेयं जयतां वर ।
 त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महारथम् ॥ ४३ ॥
 न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात् ।
 अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव ॥ ४४ ॥
 समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे ।
 मन्त्रयिष्ये तवाऽर्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन ॥ ४५ ॥
 दुर्योधनार्थं योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो ।
 स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव ॥ ४६ ॥

राज ! मुझे आप आज्ञा दें, मैं ममर के लिए प्रस्तुत
 हो जाऊँ । अर्जुन ने उपप्लव्य नगर में, उन्नक दूत
 के आगे, प्रतिज्ञा की थी कि "मैं भीष्म को मारूँगा" ।
 मुझे अर्जुन की यह प्रतिज्ञा मर्षा पूर्ण करनी है ।
 अर्जुन की अनुमति पाकर मैं अक्षय उसे पूर्ण कर
 सकता हूँ । अपना युद्ध मे यह कार्य करना अर्जुन के
 लिये कठिन नहीं है, इसलिए यही सामान्य शत्रुदमन
 भीष्म को माँगें । अर्जुन उत्पन्न होकर रण में आर
 के लिए असाध्य कर्म भी सज्ज हो कर सकते हैं
 ॥३५॥३८॥ ये युद्ध में दैत्य-दानवों-महिन देवताओं
 को भी मार सकते हैं । फिर भीष्म को मार देना कौन
 बड़ा बात है ? भीष्म महावीर होने पर भी इस समय

कर्तव्यज्ञान से शून्य हो रहे हैं । ये इस समय क्षुद्र
 सैनिकों पर अपना पराक्रम दिखाने हैं । उनकी युद्धि
 भ्रष्ट-सी हो गई है, इसी से जान पड़ता है कि उनके
 जीवन की अग्नि थोड़ी ही रह गई है ॥३९॥४०॥
 युधिष्ठिर ने कहा—हे वायुदेव ! तुम जो कह रहे हो तो
 उचित है । सब कौरव मिलकर भी तुम्हारे वेग को नहीं
 सह सकते । तुम हमारे पक्ष में हो, इसलिए अवश्य ही
 हमारी इच्छाएँ पूर्ण होंगी । हे गोविन्द ! तुमको हमने
 सहायक पाया है इसलिए भीष्म पितामह क्या हैं, हम
 इन्हें महिन देवताओं को भी हरा सकते हैं । किन्तु
 हे माधव ! तुम युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर
 चुके हो इसलिए, अमरगोत्र की शहा का विचार करके

तस्मादेवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः ।
 भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन ॥ ४७ ॥
 तद्वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम् ।
 न चिरात्सर्वे वाष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवम् ॥ ४८ ॥
 स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्माञ्जनार्दन ।
 यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्ताऽस्मि संयुगे ॥ ४९ ॥
 स नो जयस्य दाता स्यान्मन्त्रस्य च दृढव्रतः ।
 वालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम् ॥ ५० ॥
 तं चेत्पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव ।
 पितुः पितरामिष्टं च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५१ ॥
 ततोऽब्रवीन्महाराज वाष्णेयः कुरुनन्दनम् ।
 रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम् ॥ ५२ ॥
 देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनाऽपि निर्दहेत् ।
 गम्यतां स वधोपायं प्रपुं सागरगासुतः ॥ ५३ ॥
 वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः ।
 ते वय तत्र गच्छामः प्रपुं कुरुपितामहम् ॥ ५४ ॥
 गत्वा शान्तनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत ।
 स वो दास्यति मन्त्रं यं तेन योत्स्यामहे परान् ॥ ५५ ॥
 एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजम् ।
 जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ ५६ ॥

मैं तुम्हें युद्ध में लिस करना और मित्यादा बनाना
 उचित नहीं समझता । तुम युद्ध न करके यों ही मुझको
 उचित सहायना दो ॥ ४१ ॥ ४४ ॥ मुझसे युद्ध के पहले
 भीष्म प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि 'ये युद्ध तो दूयोधन की
 ओर से करेंगे, परन्तु मुझे विजय की सम्मति देंगे ।
 इसलिए हे माधव ! वे अग्रय ही विजय की अच्छी
 सम्मति मुझे देंगे और उनकी कृपा से हमें राज्य प्राप्त
 होगा । हे वासुदेव ! इस समय हम सब मिलकर उनके
 पास चलें । आओ, उन्हीं से चलकर उनके वध का
 उपाय पूछें । वे अक्षय हमको हमारे हित की बात
 बतावेंगे । जो तुमको यह सम्मति देंगे तो हम लोग
 उनके पास चलकर सम्मति लें । वे जैसा बतावेंगे

कैसा ही हम लोग करेंगे ॥ ४५ ॥ ४९ ॥ हे मधुसूदन !
 बान्यायस्या में जब हमारे पिता का स्वर्गवास हो गया
 था तब उन्हींने हमारा लालन-पालन किया था । वे
 देवव्रत भीष्म इस समय अवश्य हमें अच्छी सम्मति देंगे ।
 किन्तु हमारे इस क्षत्रिय-धर्म को धिक्कार है कि हम लोग
 उन्हीं वृद्ध पितामह, पिता के प्रिय पिता, को मारना
 चाहते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज !
 तब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मपुत्र ! आपने
 जो कुछ कहा वह मुझे भी रुचिकर है । देवव्रत भीष्म
 समर में शत्रुओं को देखकर ही नष्ट कर सकते हैं ।
 इस कारण उनके वध का उपाय जानने के लिए उन्हीं
 के पास जाना चाहिए । आप विशेष रूप से पूछेंगे

विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति ।
 प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रणिपेदिरे ॥ ५७ ॥
 पूजयन्तो महाराज पाण्डवा भरतर्षभम् ।
 प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमभ्ययुः ॥ ५८ ॥
 तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः ।
 स्वागतं तव वाष्णेय स्वागतं ते धनञ्जय ॥ ५९ ॥
 स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ।
 किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम् ॥ ६० ॥
 सर्वात्मनाऽपि कर्तामि यदि स्यात्सुदुष्करम् ।
 तथा द्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्तं पुनः पुनः ॥ ६१ ॥
 उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः ।
 कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ॥ ६२ ॥
 प्रजानां संशयो न स्यात्कथं तन्मे वद प्रभो ।
 भवान्हि नो बधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ॥ ६३ ॥
 भवन्तं समरे वीर विपहेम कथं वयम् ।
 न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥ ६४ ॥
 मण्डलेनैव धनुषा दृश्यसे संयुगे सदा ।
 आददानं सन्दधानं विकर्पन्तं धनुर्न च ॥ ६५ ॥
 पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्यमिवाऽपरम् ।
 रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥ ६६ ॥

तो वे अपने वध का उपाय बता देंगे । इसलिए आइए, हम सब कुरुपितामह से पूछने चले । हम लोग उनकी यहाँ ईई सम्मति के अनुसार शत्रुओं से युद्ध करेंगे और विजय प्राप्त करेंगे ॥५२॥५५॥ हे राजेन्द्र ! महावीर पाण्डवगण और श्रीकृष्ण यह सम्मति करके, धनुष आदि शस्त्र और कवच त्यागकर, सब मिलकर भीष्म के शिर में पहुँचे । सबने भिर भुकाकर प्रणाम और पूजा की । सब उनके शरणागत हुए ॥५६॥५८॥ तब कुरुपितामह भीष्म ने प्रवेष्ट से स्वागत और कुशब्द पुष्टकर कहा—हे वीरा ! बचाओ, तुम्हारी प्रीति के लिए मैं क्या करूँ ? वध कार्य दुष्कर होने पर भी मैं उसे सब प्रकार पक्षपूर्वक करने को प्रयत्न हूँ ॥५९॥

६१॥ पितामह ने जब प्रसन्नतापूर्वक बारम्बार इस प्रकार पूछा तब दीन भाव में, स्नेहपूर्ण स्वर से, युधिष्ठिर ने कहा—हे धर्मज्ञ पितामह ! हम लोग जय और राज्य किस प्रकार पावेंगे ? किस प्रकार हम अपने अश्वीन वीर क्षत्रियों को इस नाश से बचा सकेंगे ? आप कृपाकर अपनी मृत्यु का उपाय हमको बता दीजिए । हे वीर ! समर में हम किस प्रकार आपके वेग को सह सकते हैं ? युद्ध में आप पर प्रहार करने का, आपको मारने का, साधारण अवसर भी हमें नहीं देकर पड़ता । आप मदा समर में मण्डलाकार धनुष धारण किये बाण बरसाने देकर पड़ते हैं, ॥६२॥६५॥ आप किस समय धनुष हाथ में लेते हैं,

कोऽथवोत्सहते जेतुं त्वां पुमान्भरतर्षभ ।
 वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम् ॥ ६७ ॥
 क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम ।
 यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम ॥ ६८ ॥
 मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह ।
 ततोऽब्रवीज्जान्तनवः पाण्डवान्पाण्डुपूर्वजः ॥ ६९ ॥
 न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे ।
 जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद्रवीमि ते ॥ ७० ॥
 निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः ।
 क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम् ॥ ७१ ॥
 अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम् ।
 एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ॥ ७२ ॥
 हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम् ।
 ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ॥ ७३ ॥
 भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
 शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा ॥ ७४ ॥
 न भवान्समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
 सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ॥ ७५ ॥
 नाऽहं जेतुं रणे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
 आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकामुकः ॥ ७६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

भीष्म उवाच—

कब खोरी खींचते हैं, कब बाण चढ़ाते और कब छोटते हैं, यह कुछ भी हम लोगों को नहीं देख सकता । रथ के ऊपर आप दूसरे सूर्य के समान देख पड़ते हैं । रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य आदि को आप निरन्तर अपने बाणों से गिराते ही रहते हैं । आपका भला कौन पुरुष समर में जीत सकता है ? आपने निरन्तर बाण-वर्षा करके मेरी इतनी बड़ी सेना नष्ट कर दी है । इसलिए हे पितामह ! इस समय आप वही उपाय बताइए जिससे हम युद्ध में आपको जीत सकें, राज्य प्राप्त कर सकें और मेरी सेना का निनाश भी न हो ॥ ६५॥६९॥ ॥ हे राजेन्द्र ! तब भीष्म ने पाण्डवों से कहा—हे कुन्तीनन्दन ! मेरे जीवित रहते

युद्ध में विजय प्राप्त करना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं । युद्ध में मुझे मारने पर ही तुम लोग जय प्राप्त कर सकोगे । इसलिए यदि समर में जय प्राप्त करना चाहते हो तो शीघ्र ही मुझ पर कठोर प्रहार करो । मैं तुम को आज्ञा देता हूँ, जी भरकर मुझ पर बाण चलाओ । इसे मैं तुम्हारा सौभाग्य समझता हूँ कि तुम लोग यह जान गये कि मुझे मारे बिना तुम्हें जय नहीं प्राप्त हो सकती । मेरे मरने से ही सब कौरवों का मरना सम्भवकर मुझे भाग्ये का यज्ञ शीघ्र करो ॥ ६९॥ ७२॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! आप संग्राम में दण्डपाणि यमराज की तरह देख पड़ते हैं । इसलिए वह उपाय बताइए जिससे हम युद्ध में आपको जीत

ततो मां न्यस्तशस्त्रं तु एते हन्युर्महारथाः ।
 निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ॥ ७७ ॥
 द्रवमाणे च भीते च तवाऽस्मीति च वादिनि ।
 स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रिणि ॥ ७८ ॥
 अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम ।
 इमं मे शृणु राजेन्द्र सङ्कल्पं पूर्वचिन्तितम् ॥ ७९ ॥
 अमङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कदाचन ।
 य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ॥ ८० ॥
 शिखण्डी समरामर्षी शूरश्च समिनिञ्जयः ।
 यथाऽभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात्पुंस्त्वं समागतः ॥ ८१ ॥
 जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद्यथातथम् ।
 अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ८२ ॥
 मामेव विशिखैस्तीक्ष्णैरभिद्रवतु दंशितः ।
 अमङ्गल्यध्वजे तस्मिन्स्त्रीपूर्वं च विशेषतः ॥ ८३ ॥
 न प्रहर्तुमभीप्तामि गृहीतेषुः कथञ्चन ।
 तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनञ्जयः ॥ ८४ ॥
 शरैर्घातयतु क्षिप्रं समतान्द्रतरपभ ।
 न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद्यः समुद्यतम् ॥ ८५ ॥
 ऋते कृष्णान्महाभागात्पाण्डवाद्वा धनञ्जयात् ।
 एष तस्मात्पुरोधाय कश्चिदन्यं ममाऽग्रतः ॥ ८६ ॥

सके । हम लोग समर में इन्द्र, वरुण और यमराज
 को भी जीत सकते हैं; किन्तु आपको तो इन्द्र सहित
 सब देवता और दैत्य भी नहीं जीत सकते, फिर हम
 हैं क्या यस्तु ! ॥७३॥७५॥ भीष्म ने कहा—हे
 पाण्डव ! तुम उचित ही कह रहे हो । मैं सप्राप्त में
 यत्पूर्वक धनुष-बाण लेकर ब्रह्माहोके तो इन्द्र सहित
 सब देवता और दैत्य भी मित्रकर मुझे नहीं जीत सकते ।
 मैं यदि अस्त्र-शस्त्र त्याग दूँ तभी ये मुझे मार सकते
 हैं । हे धर्मपुत्र ! शस्त्र का त्याग किये हुए, कवच-
 हीन, गिरे हुए, पराजित, भयभीत हुए, भयभीत हुए,
 शरणागत, स्त्री-जाति, स्त्रियों का नाम रखनेवाले,
 किर्याण, आगे पिसा के एकमात्र पुत्र, मस्तानहोन

और नपुंसक आदि के साथ युद्ध करना मुझे रुचिकर
 नहीं है ॥७६॥७९॥ हे राजेन्द्र ! मेरी पहले की प्रतिज्ञा
 स्मरण करो । मैं पुरुष-भाव को प्राप्त स्त्री जाति से
 या नपुंसक से कभी युद्ध नहीं कर सकता । जो
 महारथी युद्धनिपुण द्रपद का पुत्र शिखण्डी तुम्हारी
 मेना में है वह पहले स्त्री था, पछि यक्ष को वरदान
 से पुरुष हो गया है । यह वृत्तान्त तुम लोग भी
 अच्छी प्रकार जानते ही हो ॥७९॥८२॥ इस समय
 महारथी अर्जुन उभी शिखण्डी को आगे करके मुझ-
 पर तीक्ष्ण बाण भेरे । शिखण्डी अमङ्गल्यध्वज और
 पहले का स्त्री है, इसलिए धनुष बाण हाथ में रखने
 पर भी मैं उस पर प्रहार नहीं करूँगा । अर्जुन उसी

आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकामुक्कः ।
 मां पातयतु वीभत्सुरेवं तव जयो ध्रुवम् ॥ ८७ ॥
 एतत्कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत ।
 संग्रामे धार्तराष्ट्रांश्च हन्याः सर्वान्समागतान् ॥ ८८ ॥
 सञ्जय उवाच—ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था जग्मुः स्वशिविरं प्रति ।
 अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ८९ ॥
 तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते ।
 अर्जुनो दुःखसन्तप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ ९० ॥
 गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन भीमता ।
 पितामहेन संग्रामे कथं योद्धाऽस्मि माधव ॥ ९१ ॥
 क्रीडता हि मया बाल्ये वासुदेव महामनाः ।
 पांसुरुपितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः ॥ ९२ ॥
 यस्याऽहमधिरुह्याऽङ्गं बालः किल गदाग्रज ।
 तातेत्यबोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः ॥ ९३ ॥
 नाऽहं तातस्तव पितुस्तातोऽस्मि तव भारत ।
 इति मामब्रवीद्बाल्ये यः स बध्यः कथं मया ॥ ९४ ॥
 कामं बध्यतु सैन्यं मे नाऽहं योत्स्ये महात्मना ।
 जयो वाऽस्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे ॥ ९५ ॥
 (कथमस्मद्विधः कृष्ण जानन्धर्मं सनातनम् ।
 न्यस्तशस्त्रे च वृद्धे च प्रहरोद्धि पितामहे ॥)
 शासुदेव उवाच—प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे ।
 क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ॥ ९६ ॥

शिखण्डी की आज में रहकर बारम्बार बाण मारे ।
 युद्ध के लिए उद्यत मुझको महाभाग श्रीकृष्ण या
 महारथी अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं मार
 सकता ॥ ८२।८६॥ इसलिए वीर अर्जुन यत्पूर्वक
 गाण्डीय धनुष हाथ में लेकर, शिखण्डी को आगे
 करके, मुझ पर प्रहार करें और मुझे मिरा दें । तब
 तुम अस्त्र जप प्राप्त कर सकोगे । हे युधिष्ठिर ! मेरी
 सम्मति के अनुसार कार्य करोगे तो कौरवों को जीत
 लेगे ॥ ८६।८८॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज !

महा-मा श्रीकृष्ण और पाण्डवगण पितामह भीष्म से
 उनकी मृत्यु का यह उपाय जानकर, उन्हें प्रणाम
 करके, अपने शिविर को छोड़ गये । अब भीष्म को
 प्राणयाग के लिए उद्यत देखकर, दुःख और सन्तान
 से भिन्न होकर, लज्जितमान से अर्जुन ने श्रीकृष्ण से
 कहा—हे वासुदेव ! मैं बाल्यावस्था में धूट में लड़ने-
 खेलने जिनकी गोद में बैठकर जिन्हें धूट से मर देता
 था, जिन्हें पिता कहता था तो “मैं तुम्हारा पिता नहीं,
 तुम्हारे पिता का पिता हूँ” कहकर जो मुझसे स्नेह

पातयैनं रथात्पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम् ।
 नाऽहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति ॥ ९७ ॥
 दृष्टमेतत्पुरा देवैर्गमिष्यति यमक्षयम् ।
 यद् दृष्टं हि पुरा पार्थ तत्तथा न तदन्यथा ॥ ९८ ॥
 न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
 त्वदन्यः शक्नुयाद्योद्धुमपि वज्रधरः स्वयम् ॥ ९९ ॥
 जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचो मम ।
 यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्वृहस्पतिः ॥ १०० ॥
 ज्यायांसमपि चेद्बुद्धं गुणैरपि समन्वितम् ।
 आततायिनमायान्तं हन्याच्चातकमात्मनः ॥ १०१ ॥
 शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय ।
 योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चाऽनसूयुभिः ॥ १०२ ॥
 अर्जुन उवाच — शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम् ।
 दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्तते ॥ १०३ ॥
 ते वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
 गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥ १०४ ॥
 अहमन्यान्महेष्वासान्वारयिष्यामि सायकैः ।
 शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठं भीष्ममेवाऽभियोधयेत् ॥ १०५ ॥
 श्रुतं हि कुरुमुख्यस्य नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
 कन्याऽहोपा पुरा भूत्वा पुरुषः समपद्यत ॥ १०६ ॥

करते थे, उन्हीं महात्मा बुद्ध पितामह से इस समय
 मैं कैसे युद्ध करूँगा ! किस प्रकार तीक्ष्ण बाण मारकर
 उनकी हत्या करूँगा ? हे वासुदेव ! महात्मा भीष्म मेरी
 समग्र सेना को भले ही नष्ट कर दें, किन्तु मैं उनसे
 कभी न युद्ध करूँगा । नाश हो और चाहे जय, मैं उन्हें
 नहीं मार सकता । हे श्रीकृष्ण ! आप ही कहिए, क्या
 मेरा यह कर्तव्य नहीं है ? ॥ ८८।९५॥ श्रीकृष्ण ने कहा—
 सुनो अर्जुन ! तुम पहले युद्ध में भीष्म को मारने की
 प्रतिज्ञा कर चुके हो । क्षत्रिय होकर अव उम प्रतिज्ञा
 को असत्य कैसे करोगे ! हे पार्थ ! युद्धदुर्मद क्षत्रिय भीष्म
 को क्षत्रियधर्म के अनुसार मार गिराओ । उन्हें मार
 बिना तुमको जय नहीं प्राप्त हो सकती । यह बात, अर्थात्

तुम्हारे हाथ से भीष्म की मृत्यु, पहले ही देवता निश्चित
 कर चुके हैं । तुम्हें विवश होकर वही करना होगा ।
 देवताओं का निश्चय कभी टल नहीं सकता ॥ ९६।९८॥
 मुख फैलाये हुए बाल के समान दुर्दर्प भीष्म का
 सामना तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता ।
 यहाँ तक कि इन्द्र भी युद्ध में भीष्म को नहीं मार सकते ।
 इसलिए मेरी बात सुनो, चित्त को स्थिर करके भीष्म
 को मारो । महामति बृहस्पति ने एक समय इन्द्र से
 कहा था कि अपना बड़ा, बुद्ध और गुर्गा पुरुष—
 गुरुजन होकर भी—यदि आतनायी की तरह अग्ने
 को मारने और तो उसे मार डालना चाहिए । इसमें
 कोई दोष नहीं है । हे पार्थ ! क्षत्रियों का यही सनातन-

इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सहमाधवाः ।

अनुमान्य महात्मानं प्रययुर्हृष्टमानसाः ।

शयनानि यथास्वानि भोजिरे पुरुषर्षभाः ॥ १०७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मत्रयपर्वणि नयमदिनसाहसरोत्तरपत्रे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

धर्म है कि ये ईर्ष्या छोड़कर यज्ञ कर आर शत्रुओं से युद्ध करें आर प्रजा की रक्षा करें ॥ १०७ ॥ अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! शिखण्डी के ही हाथ से भीष्म की मृत्यु होना निश्चित है, क्योंकि शिखण्डी जो सन्मुख देखकर ही भीष्म युद्ध से त्रिमुख हो जते हैं। मैंने यही उपाय रचिकार समझा है कि मैं शिखण्डी को अपने आंग करके भीष्म को मारूँगा। केवल शिखण्डी

भीष्म से युद्ध करेंगे, और मैं अन्य महारथियों को अपने बाणों से रोहूँगा। मैंने भीष्म के मुख से सुना है कि शिखण्डी पहले खी थे। इसी कारण पितामह भीष्म उनसे युद्ध नहीं करेंगे। हे महाराज ! पाण्डव-गण श्रीकृष्ण के साथ इस प्रकार भीष्म-वध का निश्चय करके प्रसन्नतापूर्वक अपने डेरों में आये और विश्राम करने लगे। ॥ १०३ ॥ १०७ ॥

भीष्मपर्व का एक सो सात अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०७ ॥

अथ अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

भृतराष्ट्र उवाच—कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यवर्तत संयुगे ।

पाण्डवांश्च कथं भीष्मस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच—ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति ।

ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥ २ ॥

ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः ।

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि ॥ ३ ॥

कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिवर्हणम् ।

शिखण्डी सर्वसेन्यानामग्र आसीद्दिशाम्पते ॥ ४ ॥

चक्ररक्षो ततस्तस्य भीमसेनधनञ्जयो ।

पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान् ॥ ५ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोता महारथः ।

भृष्टगुम्भस्ततः पश्चात्पञ्चालेरभिरक्षितः ॥ ६ ॥

एक सो अष्ट अध्याय ॥ १०८ ॥

भृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! शिखण्डी ने भीष्म के साथ किस प्रकार समाप्त किया ? पितामह भीष्म ने पाण्डवों के साथ दसवें दिन क्या युद्ध किया ? ॥ १ ॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेंद्र ! सूर्योदय होने पर बाणों और भेरी, मृदङ्ग, तबल, राक्षसदि कात्रे चलने लगे। पाण्डवों ने उन दिनों शिखण्डी को आगे करके युद्ध

के लिए रखा। शत्रुओं के लिए दूनों में महाव्यूह की रचना करके शिखण्डी उसके अग्रभाग में स्थित हुए। महाराज भीष्म और अर्जुन उनके रथ के दोनों पहियों की रक्षा में तैयार हुए। द्रोपदी के दोषों पर और अग्रिम युद्धि, शिखण्डी के पृष्ठभाग हुए। भीष्म ने अर्जुन के दोनों पहियों की रक्षा का कार्य सम्पन्न किया।

ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
 प्रययौ सिंहनादेन नादयन्भरतर्षभ ॥ ७ ॥
 विराटस्तु ततः पश्चात्स्वेन सैन्येन संवृतः ।
 द्रुपदश्च महाबाहो ततः पश्चादुपाद्रवत् ॥ ८ ॥
 केकया भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
 जघनं पालयामासुः पाण्डुसैन्यस्य भारत ॥ ९ ॥
 एवं व्यूह्य महासैन्यं पाण्डवास्तत्र बाहिनीम् ।
 अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १० ॥
 तथैव कुरवो राजन्भीष्मं कृत्वा महारथम् ।
 अग्रतः सर्व सैन्यानां प्रययुः पाण्डवान्प्रति ॥ ११ ॥
 पुत्रैस्तत्र दुराधर्षो रक्षितः सुमहाबलैः ।
 ततो द्रोणो महेष्वासः पुत्रश्चाऽस्य महाबलः ॥ १२ ॥
 भगदत्तस्ततः पश्चाद्भजानीकेन संवृतः ।
 कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ ॥ १३ ॥
 काम्योजराजो बलवांस्ततः पश्चात्सुदक्षिणः ।
 मागधश्च जयत्सेनः सौबलश्च बृहद्रथः ॥ १४ ॥
 तथैवाऽन्ये महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः ।
 जघनं पालयामासुस्तत्र सैन्यस्य भारत ॥ १५ ॥
 दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवो युधि ।
 आसुरानकरोद्व्यूहान्पैशाचानथ राक्षसान् ॥ १६ ॥
 ततः प्रवृत्ते युद्धं तत्र तेषां च भारत ।
 अन्योन्यं निघ्नतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १७ ॥

चेकितान आर महारथी घृष्टयुद्ध करने लगे। घृष्टयुद्ध
 की रक्षा के लिए पाश्चात् नियुक्त हुए ॥२॥६॥ हे
 भारत ! उनके पीछे राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव
 एकत्र होकर सिंहनाद करते हुए चले। उनके पीछे
 अपनी सारी सेना लेकर राजा विराट चले। विराट
 के पीछे राजा द्रुपद चले। पाँचा माई कंकेय-कुमारों
 और महाबली घृष्टकेतु को उस व्यूह के जघनस्थल
 की रक्षा का भार सौंपा गया। हे महाराज ! पाण्डव-
 गण इस प्रकार अपनी सेना का व्यूह बनाकर, प्राणों

की ममता छोड़कर, कौरव सेना के सामने चले ॥७॥
 १०॥ इधर कौरवगण भी महारथी भीष्म को सत्र सेना
 के आगे करके पाण्डवों की सेना की ओर अग्रसर हुए।
 आपने महाबली पराक्रमी पुत्रगण चारों ओर से दुर्द्वर्ष
 वीर भीष्म की रक्षा करने लगे। भीष्म के पीछे क्रमशः
 महाधनुर्धर द्रोणाचार्य गुरुपुत्र अश्वत्थामा, हाथियों की
 सेना साथ लिये राजा भगदत्त, कृपाचार्य वृत्तर्मा आदि
 महारथी चले। काम्योजपति सुदक्षिण, मागधराज
 जयसेन, शकुनि, बृहद्रथ और सुशर्मा आदि अन्य

अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुस्तकृत्य शिखण्डिनम् ।
 भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधाञ्जरान् ॥ १८ ॥
 तत्र भारत भीमेन ताडिनास्तावकाः शरैः ।
 रुधिरौघपरिह्विताः परलोकं ययुस्तदा ॥ १९ ॥
 नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
 तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा ॥ २० ॥
 ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ।
 नाऽशक्नुवन्वारयितुं पाण्डवानां महद्वलम् ॥ २१ ॥
 ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः ।
 सुसम्प्राप्तं दश दिशः काल्यमानं महारथैः ॥ २२ ॥
 ज्ञातारं नाऽध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ ।
 वध्यमानाः शितैर्बाणैः पाण्डवैः सह सृज्यैः ॥ २३ ॥
 पीड्यमानं बलं दृष्ट्वा पार्थैर्भीष्मः पराक्रमी ।
 यदकार्पीद्रणे क्रुद्धस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २४ ॥
 कथं वा पाण्डवान्युद्धे प्रत्युद्यानः परन्तपः ।
 विनिघ्नन्सोमकान्वीरस्तदाचक्ष्व ममाऽऽनघ ॥ २५ ॥
 आचक्ष्व ते महाराज यदकार्पीत्पिता तव ।
 पीडिते तव पुत्रस्य सैन्ये पाण्डव सृज्यैः ॥ २६ ॥
 प्रहृष्टमनसः शूराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
 अभ्यवर्तन्त निघ्नन्तस्तव पुत्रस्य बाहिनीम् ॥ २७ ॥

शृतराष्ट्र उवाच—

सञ्जय उवाच

तं विनाशं मनुष्येन्द्र नरवारणवाजिनाम् ।
 नाऽमृष्यत तदा भीष्मः सैन्यघातं रणे परैः ॥ २८ ॥
 स पाण्डवान्महेष्वासः पञ्चालांश्चैव सृञ्जयान् ।
 नाराचैर्वत्सदन्तैश्च शितैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २९ ॥
 अभ्यवर्षत दुर्धर्षस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
 स पाण्डवानां प्रवरान्पञ्च राजन्महारथान् ॥ ३० ॥
 आत्तशस्त्रो रणे यत्नाद्वारयामास सायकैः ।
 नानाशस्त्रास्त्रवर्षैस्तान्वीर्यामर्षप्रवेरितैः ॥ ३१ ॥
 निजज्ञे समरे क्रुद्धो हस्त्यश्वं चाऽमितं बहु ।
 रथिनोऽपातयद्राजन्मरथेभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ३२ ॥
 सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यः पादातांश्च समागतान् ।
 गजारोहान्गजेभ्यश्च परेषां जयकारिणः ॥ ३३ ॥
 तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम् ।
 पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रहस्तमिवाऽसुराः ॥ ३४ ॥
 शक्राशनिसमस्पर्शान्विमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ॥ ३५ ॥
 दिक्चवदृश्यत सर्वासु घोरं सन्धारयन्वपुः ।
 मण्डलीभूतमेवाऽस्य नित्यं धनुरदृश्यत ॥ ३६ ॥
 संग्रामे युद्धयमानस्य शक्रचापोपमं महत् ।
 तद् दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ ३७ ॥
 विस्मयं परमं गत्वा पितामहमपूजयन् ।
 पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव ॥ ३८ ॥

महाबली पाण्डवगण प्रसन्नतापूर्वक कौरवपक्ष की सेना को मारते हुए भीष्म के सन्मुख जाने लगे । महा-
 धनुर्धर भीष्म अपने पक्ष के घोड़े, हाथी, मनुष्य
 आदि को शत्रुओं के बाणों से मरते देखकर क्रोध से
 अधीर हो उठे ॥ २६।२८ ॥ वे जीवन की आशा छोड़-
 कर नाराच, वत्सदन्त और अञ्जलिक बाणों से पञ्चाल,
 सृञ्जय, पाण्डव आदि पर प्रहार करने लगे । उन्होंने
 निरन्तर बाण-शर्या करके पाँचों पाण्डवों का आगे
 बढ़ना रोक दिया । वे क्रोध के आवेश से त्रिविध
 अस्त्र-शस्त्र बरसाकर, असंख्य हाथियों और घोड़ों को

गिराकर, भयानक रूप से शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने
 लगे । उन्होंने घोड़े के सवार को घोड़े से, हाथी के
 सवार को हाथी से, रथ के सवार को रथ से और
 पैदल सैनिक को बाण मारकर भूमि पर गिरा दिया
 ॥ २९।३३ ॥ असुरगण जैसे इन्द्र के सन्मुख युद्ध करने
 को उपस्थित हों, वैसे ही पाण्डवगण महारथी भीष्म
 को संग्राम-भूमि में आते देखकर उनके सन्मुख आये ।
 महावीर भीष्म इन्द्र के वज्र ऐसे बाण छोड़ने लगे ।
 उस समय उनका भयानक रूप और मण्डलाकार
 घूमना हुआ बड़ा धनुष ही चारों ओर सैनिकों को

युद्धयमानं रणे शूरं विप्रचित्तिमिवाऽमराः ।
 न चैनं वारयामासुर्व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ३९ ॥
 दशमेऽहनि सम्प्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः ।
 अदहन्निशितैर्वाणैः कृष्णवर्त्मैव काननम् ॥ ४० ॥
 तं शिखण्डी त्रिभिर्वाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
 आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवाऽन्तकम् ॥ ४१ ॥
 स तेनाऽतिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखण्डिनम् ।
 अनिच्छन्निव संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥
 काममभ्यस वा मा वा न त्वां योत्स्ये कथञ्चन ।
 यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव त्वं हि शिखण्डिनी ॥ ४३ ॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिखण्डी क्रोधमूर्छितः ।
 उवाचैनं तथा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ४४ ॥
 जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयङ्करम् ।
 मया श्रुतं च ते युद्धं जामदग्न्येन वै सह ॥ ४५ ॥
 दिव्यश्च ते प्रभावोऽयं मया च बहुशः श्रुतः ।
 जानन्नपि प्रभावं ते योत्स्येऽद्याऽहं त्वया सह ॥ ४६ ॥
 पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम ।
 अद्य त्वां योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम ॥ ४७ ॥
 ध्रुवं च त्वां हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः ।
 एतच्छ्रुत्वा च मद्राक्यं यत्कृत्यं तत्समाचर ॥ ४८ ॥

देख पड़ने लगा ॥ ३९।३०॥ हे भारत ! आपके पुत्र-
 गण महावीर भीष्म का ऐसा अद्भुत विजय और पुरुषार्थ
 देखकर आश्चर्य के साथ उनकी प्रशंसा करने लगे ।
 देवताओं ने जैसे अपने शत्रु विप्रचित्ति राक्षस को
 देखा था, वैसे ही पाण्डवगण व्याकुल दृष्टि से भीष्म
 की ओर देखने लगे । मुख फैलाये हुए यमराज के
 समान भयङ्कर भीष्म का देखकर सब भयभीत हो
 गये । कोई उन्हें रोक नहीं सका । हे राजेन्द्र ! दसवें
 दिन के युद्ध में महावीर भीष्म वन जलानेवाले दाम्य
 नल के समान प्रज्वलित होकर शिखण्डी के साथ
 वीर्य-सेना को भस्म करने लगे ॥ ३९।४०॥ वृषित
 सर्प और यमराज के समान भीष्म की छाती में शिखण्डी

ने तीन तीक्ष्ण बाण मारे । महापराक्रमी भीष्म ने
 शिखण्डी की ओर देखकर, क्रोध की हँसी हँसकर,
 अनिच्छा के साथ कहा—हे शिखण्डी ! तुम मुझे
 बाण भले मारो, परन्तु मैं किसी प्रकार तुमसे युद्ध
 नहीं करूँगा, क्योंकि विधाता ने तुमको शिख-
 ण्डिनी के रूप में उत्पन्न किया है ॥ ४१।४२॥ भीष्म
 के ये वचन सुनकर, क्रोध से अत्यन्त अधिक होकर
 होंठ बाटते हुए शिखण्डी ने कहा—हे क्षत्रियकुल
 के काल भीष्म ! मैं तुमको अच्छी प्रकार जानता हूँ ।
 तुमने परशुराम के साथ युद्ध किया था, यह भी मैं
 जानता हूँ । तुम्हारा दिव्य प्रभाव भी मुझे विदित है ।
 तो भी मैं अपने और पाण्डवों के हित के लिए तुमसे

काममभ्यस वा मा वा न मे जीवन्प्रमोक्ष्यसे ।

सुदृष्टः कियतां भीष्म लोकोऽयं समितिजयः ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।

अविध्यत रणे भीष्मं प्रणुज्ञं वाक्यसायकैः ॥ ५० ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः ।

कालोऽयमिति सञ्चिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत् ॥ ५१ ॥

अहं त्वामनुयास्यामि परान्विद्रावयज्शरैः ।

अभिद्रव सुसंरन्धो भीष्मं भीमपराक्रम ॥ ५२ ॥

न हि ते संयुगे पांडां शक्तः कर्तुं महाबलः ।

तस्मादद्य महाबाहो यत्नाद्भीष्ममभिद्रव ॥ ५३ ॥

अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिषि ।

अवहास्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह ॥ ५४ ॥

नाऽवहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे ।

तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम् ॥ ५५ ॥

अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल ।

वारयन्रथिनः सर्वान्साधयस्व पितामहम् ॥ ५६ ॥

द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाऽथ सुयोधनम् ।

चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ ५७ ॥

विन्दानुविन्दात्रावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।

भगदत्तं तथा शूरं मागधं च महाबलम् ॥ ५८ ॥

सप्राम कर्त्तव्य ॥४९॥४६॥ मैं सीगन्ध त्याकर कहना
हूँ कि तुमको अमर्य मारूँगा । हे भीष्म । मेरी प्रतिज्ञा
तुमने सुन ली । अब जो चाहे सो करो । यदि तुम
मुझको बाण न मारोगे तो भी जब तक जीवित रहोगे
तब तक किसी प्रकार छुटकारा न पाओगे । इसलिए
इस संसार को एक बार अच्छी प्रकार देख लो ॥४७॥
४९॥ सञ्जय कहते हैं—अब शिखण्डी ने भीष्म को
अत्यन्त कटोर पाँच बाण मारे । महारथी अर्जुन ने
शिखण्डी के वचन सुनकर, वही ठीक अमर्य समझ-
कर, शिखण्डी के कहा—हे वीर शिखण्डी ! अब मैं
तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम बाण-नर्था से शत्रुओं
को मारकर क्रोधपूर्वक योग से महावीर भीष्म पर

आक्रमण करो । महारथी भीष्म तुमको पीड़ित नहीं
करोगे, मैं तुम्हारे साथ हूँ । आज तुम यत्नपूर्वक भीष्म
में समर करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ ॥५०॥५३॥
जो तुम भीष्म को मारे बिना समर से लड़ोगे तो
योग झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला कहकर तुम्हारा उपहास
करेगा । इसलिए ऐसा उपाय करो जिससे समाज में
हमारा उपहास न हो ॥५४॥५६॥ तदभूमि जंगे
समुद्र के वेग को रोकता है वैसे मैं द्रोणाचार्य, अश्वत्था-
मा, कृपाचार्य, दुर्योधन, चित्रसेन, विकर्ण, जयद्रथ,
विन्द, अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, शूर भगदत्त,
महारथी मगधराज जयसेन, चंपैशाली भूरिश्रमा,
राक्षस अलम्बुष, त्रिगुणराज सुशर्मा और अन्य महा-

सौमदन्तिं तथा शूरमार्ष्यशृङ्गिं च राक्षसम् ।
 त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ॥ ५९ ॥
 अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ।
 कुरुंश्च सहितान्सर्वान्युध्यमानान्महाबलान् ।
 निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहम् ॥ ६० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मशिखण्डिसमागमे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥
 रथों कोरथों को रोककर उनसे तुम्हारी रक्षा करूंगा । तुम पितामह भीष्म को मारने की चेष्टा करो ॥ ५७।६०॥
 भीष्मपर्व का एक सौ आठ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०८ ॥

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यधावपितामहम् ।
 पाञ्चाल्यः समरे क्रुद्धो धर्मात्मानं यतव्रतम् ॥ १ ॥
 केऽरक्षन्पाण्डवानीके शिखण्डिनमुदायुधाः ।
 त्वरमाणास्त्वरकाले जिगीपन्तो महारथाः ॥ २ ॥
 कथं शान्तनवो भीष्मः स तस्मिन्दशमेऽहनि ।
 अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृजयैः ॥ ३ ॥
 न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखण्डिना ।
 कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः ॥ ४ ॥
 सञ्जय उवाच—नाऽशीर्यत धनुश्चाऽस्य रथभङ्गो न चाऽप्यभूत् ।
 युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ ५ ॥
 निघ्नतः समरे शत्रूञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ॥ ६ ॥
 तथा दन्तिगणा राजन्हयाश्चैव सुसज्जिताः ।
 अभ्यवर्तन्त युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ॥ ७ ॥

एक सौ नौ अध्याय ॥ १०९ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पाञ्चालपुत्र शिखण्डी ने क्रुद्ध होकर पितामह भीष्म के साथ कैसे युद्ध किया ? किस प्रकार उन पर आक्रमण किया ? पाण्डव-सेना के किन्-किस महारथी ने जय प्राप्त करने की इच्छा से अज शर लेकर शिखण्डी की रक्षा की ? उस दसवें दिन महारथी भीष्म ने पाण्डवों और युद्धों ने किम प्रकार युद्ध किया ? हे सञ्जय !

मुझे यह समाचार असह्य हो रहा है कि शिखण्डी ने भीष्म पर आक्रमण किया । जिस समय युद्ध से निमग्न भीष्म पर आक्रमण किया गया उस समय उमरो भीष्म का रथ तो नहीं टूटा ? उनका धनुष तो नहीं फट गया ? ॥ १।२॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! संग्राम के समय महारथी भीष्म का न तो रथ हों टूटा और न धनुष ही फटा । वे सम्मतपर्व तीक्ष्ण

यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चाऽपि समितिञ्जयः ।
 पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समिति क्षयम् ॥ ८ ॥
 युध्यमानं महेष्वासं विनिघ्नन्तं पराञ्शरैः ।
 पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं सर्वे ते नाऽभ्यवारयन् ॥ ९ ॥
 दशमेऽहनि सम्प्राप्ते ततस्तां रिपुवाहिनीम् ।
 कीर्यमाणां शितैर्वाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥
 नहि भीष्मं महेष्वासं पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज ।
 अशक्नुवन्नणे जेतुं पाशहस्तमिवाऽऽन्तकम् ॥ ११ ॥
 अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनञ्जयः ।
 त्रासयन्नथिनः सर्वान्वीभत्सुरपराजितः ॥ १२ ॥
 सिंहवद्विनदन्नुच्चैर्धनुज्यां विक्षिपन्मुहुः ।
 शरौघान्विस्तृजन्पार्थो व्यचरत्कालवद्वणे ॥ १३ ॥
 तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
 सिंहस्येव मृगा राजन्व्यद्रवन्त महाभयात् ॥ १४ ॥
 जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा त्वत्सैन्यं चाऽभिपीडितम् ।
 दुर्योधनस्ततो भीष्ममवब्रवीद्भृशपीडितः ॥ १५ ॥
 एष पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
 दहते मामकान्सर्वान्कृष्णवस्त्रमेव काननम् ॥ १६ ॥
 पश्य सैन्यानि गाढेय द्रवमाणानि सर्वशः ।
 पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे ॥ १७ ॥

विचित्र बाणों से शत्रुसेना को नष्ट करने लगे । 'हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के बहुत से महारथी योद्धा हाथियों और धुइसवार सेना को साथ लेकर, भीम की आंग करके, युद्ध करने लगे । समविजयी भीष्म, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, समर में निरन्तर शत्रुसेना का संहार करने लगे । वे महावीर दसवें दिन के युद्ध में जय शत्रुसेना का संहार करने लगे तब क्या पाशालग्न और क्या पाण्डवगण, कोई भी उनके प्रचल वेग और विक्रम को रोकने या मटने में समर्थ नहीं हुआ । ये सम्पूर्ण शत्रुदल पर सैकड़ों-सहस्रों तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे थे । सारी शत्रुसेना एक साथ मिटकर भी पाशपाणि यमराज के समान शीघ्र

को समर में परास्त नहीं कर सकी—उनके वेग के आगे ठहर नहीं सकी ॥ ८।११॥ हे राजेन्द्र ! ऊपर अजेय अर्जुन भी सब रथी लोगों के मन में भय उत्पन्न करके, युद्धभूमि में जाकर, चौर से सिंहनाद करने लगे । वे बारम्बार धनुष घुमाकर बाणों की वर्षा करते हुए साक्षात् काल की तरह बिचरने लगे । उनके भयानक शब्द से आपके पक्ष के सैनिक लोग व्याकुल हो उठे । सिंह के स्वेदे हुए मृगों की तरह भयभीत होकर वे लोग अर्जुन के आगे से भागने लगे ॥ १२।१४॥ तब राजा दुर्योधन ने विजयी अर्जुन को विजय प्राप्त करके सिंहनाद करते और अपनी मेना को व्याकुल होकर भागने देकर, दुःखित हो,

यथा पशुगणान्पालः सङ्कलयति-कानने ।
 तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥ १८ ॥
 धनञ्जयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः ।
 भीमोऽप्येवं दुराधर्षो विद्रावयति मे वलम् ॥ १९ ॥
 सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
 अभिमन्युः सुविक्रान्तो वाहिनीं द्रवते मम ॥ २० ॥
 धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
 व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे ॥ २१ ॥
 बध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरतैर्महारथैः ।
 नाऽन्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत ॥ २२ ॥
 क्रते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम ।
 पर्याप्तस्तु भवाञ्छीघ्रं पीडितानां गतिर्भव ॥ २३ ॥
 सञ्जय उवाच—एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्ताव ।
 चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥ २४ ॥
 तत्र सन्धारयन्पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः ।
 दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशाम्पते ॥ २५ ॥
 पूर्वकालं तत्र मया प्रतिज्ञातं महाबल ।
 हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥
 संग्रामाद्व्यपयातव्यमेतत्कर्म ममाऽऽहिकम् ।
 इति तत्कृतवांश्चाऽहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥ २७ ॥

पितामह भीष्म के पास जाकर कहा—हे पितामह ! अनिरुद्ध इस भगनी हुई सेना को और कोई नहीं
 दायनल जैसे जङ्गल को भस्म कर देता है वैसे ही फेर सकता है, और न पाण्डवसेना के इन महारथियों से युद्ध
 अर्जुन हमारी सेना को बाणों की वर्षा से भस्म कर ही कर सकता है। इसलिए आप क्षीप्रता के साथ
 रहे हैं। वह देखिए, मेरी सेना बारम्बार हर स्थान अर्जुन मेरी सेना को रक्षा करेगा ॥२०॥२१॥ हे राजेन्द्र !
 के पक्ष से पीड़ित होकर भाग रहा है ॥१५॥१७॥ दैत्य भीष्म दुर्योधन के ये वचन सुनकर, क्षणभर
 ॥ रात्रुतापन ! पशुपाल जैसे वन में पशुओं को विचारकर, उन्हें समझाने और धैर्य देने हुए सोचे—
 पीटना है वैसे ही अर्जुन मेरी सेना को पीड़ा पहुँचा है दुर्योधन ! तुम प्यान से मेरी बात सुने। मैंने
 रेंगे हैं। एक तो अर्जुन ही उनको मारकर मगा रहे पहले तुम्हारे आगे प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रतिदिन
 हैं, उस पर भीमसेन, सात्यकि, जैमिन्तान, नकुल, दस सहस्र मोदा मारकर युद्ध में लौटूँगा। हे पुत्र !
 महोदर, महारथी अभिमन्यु, मगधनी धृष्टद्युम्न और मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्ण करना रहा है।
 राक्षस घटोत्कच भी उन्हें मार रहे हैं ॥१८॥१९॥ मैं आज भी युद्ध में बहुत बड़ा कार्य करूँगा। आज
 ॥ महात्मा ! आर देवतुल्य पराक्रमी हैं। आपने

अद्य चाऽपि महत्कर्म प्रकरिष्ये महाबल ।
 अहं वाऽय हतः शेष्ये हनिष्ये वाऽय पाण्डवान् ॥ २८ ॥
 अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं तव ।
 भर्तृपिण्डकृतं राजन्निहतः पृतनामुखे ॥ २९ ॥
 इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान्प्रवपञ्चरैः ।
 आससाद् दुराधर्पः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ३० ॥
 अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ ।
 आशीविपमिव क्रुद्धं पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ३१ ॥
 दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयञ्शक्तिमात्मनः ।
 राजञ्शतसहस्राणि सोऽवधीत्कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥
 पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः ।
 तेषामादत्त नेजांसि जलं सूर्य इवांऽशुभिः ॥ ३३ ॥
 हत्वा दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
 सारोहाणां महाराज हयानां चाऽयुतं तथा ॥ ३४ ॥
 पूर्णे शतसहस्रे द्वे पादातानां नरोत्तमः ।
 प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ३५ ॥
 न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम् ।
 उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३६ ॥
 ते पाण्डवेयाः संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः ।
 वधायाऽभ्यद्रवन्भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥ ३७ ॥

या तो मुझे पाण्डवगण मारें और या मैं उनको
 मारूँगा । दो में एक बात तो अश्वय होगी । आज मैं
 युद्धभूमि की वीरशय्या पर सोकर, अथवा पाण्डवों
 को ही सुलगकर, प्रसू का ऋण चुकाऊँगा ॥ २४।२९॥
 महात्रली भीष्म दुर्योधन से इतना कहकर क्षत्रियों
 पर बाण बरसाते हुए पाण्डवों की सेना पर वेग से
 आक्रमण करने चले । पाण्डवों की सेना उनके
 आक्रमण से तितर-बितर होने लगी । तब पाण्डवगण भी
 अपनी सेना के मध्य में प्रवेश होते हुए, क्रुद्ध नागराज
 के समान, भीष्म को घेरेकर रोकने की चेष्टा करने
 लगे । हे कौरव ! दसों दिन भीष्म ने अपने पराक्रम
 के अनुसार देखते ही देखते शत सहस्र सेना का

नाश कर डाला । जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी
 का रस (जल) खींचते हैं वैसे ही भीष्म अपने बाणों
 से पाञ्चालों के तज, उरसाह और प्राणों को हरने
 लगे ॥ ३०।३३॥ हे राजेन्द्र ! वे सवारों सहित दस
 सहस्र घोड़ों, इतने ही वेगशाली हाथियों और दो
 लाख पैदलों को मारकर युद्धभूमि में जलती हुई अग्नि
 के समान देख पड़ने लगे । पाण्डवों में से कोई भी
 उन उत्तरायण में तप रहे सूर्य के समान तेजस्वी
 प्रतापी भीष्म की ओर अच्छी प्रकार नेत्र उठाकर
 देख तक भी नहीं सकता था । महाधनुर्धर भीष्म के
 द्वारा इस प्रकार पीड़ित होने पर सब पाञ्चाल और
 पाण्डव मिलकर उन्हें मारने के लिए उनपर आक्रमण

संयुद्धयमानो बहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तथा ।
 अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवाऽऽवृतः ॥ ३८ ॥
 पुत्रास्तु तव गाङ्गेयं समन्तात्पर्यवारयन् ।
 महत्या सेनया सार्द्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

करने दोड़े। उस समय योद्धाओं से घिरे हुए भीष्म
 काले मेघों से घिरे हुए शर्ण गिरि सुमेरु के समान
 शोभायमान हुए। आपके पुत्रगण भी भारी सेना के
 साथ एकत्र होकर भीष्म के चारों ओर आकर उनकी
 रक्षा करने लगे। इसके अनन्तर फिर घोर संग्राम
 होने लगा ॥ ३४-३९ ॥

भीष्मपर्व का एक सो नौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०९ ॥

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्तु रणे राजन्हृष्टा भीष्मस्य विक्रमम् ।
 शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् ॥ १ ॥
 न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादथ कथञ्चन ।
 अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् ॥ २ ॥
 एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ
 अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ३ ॥
 धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्सौभद्रश्च महारथः
 हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ४ ॥
 विराट्द्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः
 अभ्यद्रवत गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥ ५ ॥
 नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान्
 तथैतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशाम्पते ॥ ६ ॥
 समाद्रवन्त गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्
 प्रत्युद्यस्तावकाश्च समेतांस्तान्महारथान् ॥ ७ ॥

एक सा दस अध्याय ॥ ११० ॥

सञ्जय ने कहा कि हे महाराज ! अर्जुन ने
 संग्राम में भीष्म का पराक्रम देखकर शिखण्डी से
 कहा—हे शिखण्डी ! तू भीष्म के साथ युद्ध करो।
 आज उनके विलकुल मत भयभीत होओ। मैं तीक्ष्ण
 बाण मारकर आज उन्हें श्रेष्ठ रथ पर से गिरा दूँगा
 ॥ १११ ॥ हे राजा धृतराष्ट्र ! तब शिखण्डी अर्जुन के ये

वचन सुनकर भीष्म की ओर रथ बढ़ाकर दीप्रता के
 के साथ चले। सेनापति धृष्टद्युम्न और अभिमन्यु भी
 आगे बढ़े। वृद्ध राजा विराट्, द्रुपद और कुन्तिभोज
 कवच पहनकर आपके पुत्र के सम्मुख ही पितामह
 भीष्म पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े। नकुल,
 सहदेव, महारथशाही धर्मराज और अन्य सब योद्धाओं

यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु ।
 चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ॥ ८ ॥
 भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रादिशुर्यथा ।
 धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ॥ ९ ॥
 त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत् ।
 भीमसेनं सुसंकुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम् ॥ १० ॥
 त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत् ।
 तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान्वहून् ॥ ११ ॥
 विकर्णो वारयामास इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।
 सहदेवं तथा राजन्यान्तं भीष्मरथं प्रति ॥ १२ ॥
 वारयामास संकुद्धः कृपः शारद्वतो युधि ।
 राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनि महाबलम् ॥ १३ ॥
 भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद्वली ।
 सात्वर्किं समरे यान्तं तत्र पुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥
 अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति ।
 सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥ १५ ॥
 विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिर्मर्दनौ ।
 अश्वरथामा ततः कुद्धो वारयामास भारत ॥ १६ ॥
 तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकाक्षिणं ।
 भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥ १७ ॥
 अर्जुनं रमसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
 भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश ॥ १८ ॥

ने मिलकर भीष्म पर आक्रमण किया ॥३॥७॥ हे
 राजेन्द्र ! आपके पक्ष के सब योद्धाओं ने शत्रुपक्ष
 के वीरों को जिस प्रकार रोका, जिस प्रकार उन पर
 यथाशक्ति उत्साह के साथ आक्रमण किया, सो सुनिए ।
 भीष्म से युद्ध करने के लिए जानेवाले चेकितान को,
 बैल को व्याघ्र बालक के समान, चित्रसेन ने रोका ।
 भीष्म के पास शीघ्रता से जानेवाले और उन पर
 प्रहार करने का यत्न कर रहे धृष्टद्युम्न को कृतवर्मा ने
 रोका । भीष्म के वध की इच्छा में आगे जानेवाले

क्रुद्ध भीमसेन को भरिश्चवा ने स्फुर्ति के साथ रोका ।
 अनेक वाण बरसाते हुए शूर नकुल को भीष्म का
 जीवन चाहनेवाले विकर्ण ने रोका ॥७॥१२॥ भीष्म
 के रथ के पास जाते हुए सहदेव को कुपित कृपा-
 चार्य ने रोका । क्रूरकर्मा महाबली घटोत्कच को
 भीष्म के मारने के लिए उद्यत देखकर बली राज-
 कुमार दुर्मुख ने आगे बढ़कर रोक लिया । क्रुद्ध
 सात्वर्कि को दुर्योधन ने रोका । भीष्म के रथ के
 पास जानेवाले अभिमन्यु को काम्बोजनरेश सुदक्षिण

दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे ।
 अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान् ॥ १९ ॥
 भीष्मस्याऽभिमुखान्यातान्वारयामासुराहवे ।
 धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशंस्तु पुनः पुनः ॥ २० ॥
 अभ्यद्रवत संरब्धो भीष्ममेकं महारथः ।
 एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं प्रयाति कुरुनन्दन ॥ २१ ॥
 अभ्यद्रवत मा भैष्ट भीष्मो हि प्राप्स्यते न वः ।
 अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः ॥ २२ ॥
 किमु भीष्मो रणे वीरा गतसत्त्वोऽल्पजीवितः ।
 इति सेनापतेः श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ २३ ॥
 अभ्यद्रवन्त संहृष्टा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ।
 आगच्छमानान्समरे वार्योधान्प्रलयानिव ॥ २४ ॥
 अवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः ।
 दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः ॥ २५ ॥
 भीष्मस्य जीविताकांक्षी धनञ्जयमुपाद्रवत् ।
 तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥ २६ ॥
 अभ्यद्रवन्त संग्रामे तव पुत्रान्महारथाः ।
 तत्राऽद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशारूपते ॥ २७ ॥
 दुःशासनरथं प्राप्य यत्पार्थो नाऽत्यवर्तत ।
 यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम् ॥ २८ ॥

ने रोका ॥१३॥१५॥ शत्रुदमन राजा त्रिशट् और
 वृद्धदुपद को अश्वत्थामा ने रोका । भीष्म का बन्
 चाहने गले ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य ने
 रोका । अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित
 कर रहे और शिखण्डी को आगे करके वेग से भीष्म
 के समुख जाते हुए अर्जुन को महाधनुर्धर दुःशासन
 ने रोका । इसी प्रकार भीष्म के समुख जाने गले
 पाण्डव पक्ष के अन्य महारथियों को भी आपके
 पक्ष के अन्य योद्धाओं ने भी रोका ॥१६॥२०॥
 हे महाराज ! अब धृष्टद्युम्न भी सब सैनिकों से यह
 पुकारकर कहते हुए अकेले महारथी भीष्म की ओर
 दौड़े कि "हे वीरो ! देखो ये अर्जुन भीष्म से युद्ध

करने जा रहे हैं; तुम लोग निर्भय होकर चलो और
 आक्रमण करो । भीष्म के बाण तुम्हारे अङ्ग को छू भी
 न सकेंगे । समर में अर्जुन से युद्ध करने का साहस
 इन्द्र भी नहीं कर सकते, फिर अष्टद्युद्धि, क्षीणवल,
 अन्य जीमन गले भीष्म क्या उनका सामना कर सकेंगे ॥"
 ॥२०॥२१॥ पाण्डव पक्ष के महारथी लोग धृष्टद्युम्न
 के ये बचन सुनकर प्रसन्नतापूर्वक भीष्म के रथ की
 ओर दौड़े । आपके पक्ष के पुरुषश्रेष्ठ वीर भी प्रसन्नता
 के साथ प्रवाह की तरह आते हुए शत्रुओं के वेग
 को रोकने लगे । हे राजेन्द्र ! भीष्म के जीवन की रक्षा
 करने के लिए महारथी दुःशासन निर्भय होकर अर्जुन
 के समुख आये । शूर पाण्डव भी उधर में भीष्म के

तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत् ।
 उभौ तौ रथिनां श्रेष्ठावुभौ भारत दुर्जयो ॥ २९ ॥
 उभौ चन्द्रार्कसदृशौ कान्त्या दीप्त्या च भारत ।
 तथा तौ जातसंरम्भावन्योन्यवधकाक्षिणौ ॥ ३० ॥
 समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा ।
 दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ३१ ॥
 वासुदेवं च विशत्या ताडयामास संयुगे ।
 ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वाष्णेयं वीक्ष्य पीडितम् ॥ ३२ ॥
 दुःशासनं शतेनाऽऽजौ नाराचानां समार्षयत् ।
 ते तस्य कवचं भित्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ ३३ ॥
 दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थ विव्याध पत्रिभिः ।
 ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
 ललाटस्थैस्तु तैर्वाणैः शुशुभे पाण्डवो रणे ।
 यथा मेरुर्महाराज शृङ्गैरत्यर्थमुच्छिन्नैः ॥ ३५ ॥
 सोऽतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना ।
 व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ॥ ३६ ॥
 दुःशासनं ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः ।
 पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुः पूर्णं निशाकरम् ॥ ३७ ॥
 पीड्यमानो बलवता पुत्रस्तव विशाम्पते ।
 विव्याध समरे पार्थ कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ ३८ ॥

रथ के पास पहुँचने के लिए आपके पुत्रों पर आक्रमण करने को बदे । ॥२३।२७॥ उस समय वहाँ पर हमने यह एक विचित्र बात देखी कि दुःशासन के रथ के पास पहुँचकर अर्जुन फिर आगे नहीं बढ़ सके । जैसे तटभूमि क्षोभ को प्राप्त समुद्र के वेग को रोक लेती है, वैसे ही वीर दुःशासन ने क्रुद्ध अर्जुन को रोक लिया । वे दोनों ही श्रेष्ठ रथी, दुर्जय, चन्द्र के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी थे । दोनों ही कुपित होकर परस्पर मार डालने की इच्छा से मयासुर और इन्द्र के समान आक्रमण करने लगे । ॥२७।३१॥ हे महाराज ! दुःशासन ने अर्जुन को तीन और श्रीकृष्ण को बीस तीक्ष्ण बाण मारे । अर्जुन

ने श्रीकृष्ण को पीड़ित देखकर क्रोध करके दुःशासन को एक सौ नाराच बाण मारे । वे नाराच बाण दुःशासन के सुदृढ़ कवच को तोड़कर उनके शरीर का रक्त पाने लगे । तब दुःशासन ने अत्यन्त कुपित होकर तीक्ष्ण तीन बाण अर्जुन के मस्तक में मारे । ॥३२।३४॥ मस्तक में प्रवेश हुए हुए उन तीन बाणों से वीर अर्जुन उन्नत शिखरवाले सुमेरु पर्वत, अथवा फले हुए ढाक के पेड़ के समान बहुत ही शोभायमान हुए । राहु जैसे पर्व के समय चन्द्रमा को सताता है, वैसे ही अर्जुन भी दुःशासन को बाणवर्षा में छिपाकर पीड़ा पहुँचाने लगे । ॥३५।३७॥ उन बाणों से पीड़ित होकर दुःशासन ने बहुत से कङ्कपत्रयुक्त, शिला पर रगड़-

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा रथं चाऽस्य त्रिभिः शरैः ।
 आजघान ततः पश्चात्पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥ ३९ ॥
 सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः ।
 अर्जुनं पञ्चविंशत्या बाहोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ४० ॥
 तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः ।
 अप्रैपीद्विशिखान्धोरान्यमदण्डोपमान्वहून् ॥ ४१ ॥
 अप्राप्तानेव तान्वाणांश्चिच्छेद तनयस्तव ।
 यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमित्राऽभवत् ॥ ४२ ॥
 पार्थ च निशितैर्वाणैर्विध्यत्तनयस्तव ।
 ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान्सन्धाय कार्मुके ॥ ४३ ॥
 प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
 न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महारमनः ॥ ४४ ॥
 यथा हंसा महाराज तडागां प्राप्य भारत ।
 पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ॥ ४५ ॥
 हित्वा पार्थ रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत् ।
 अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत्तदा ॥ ४६ ॥
 प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशाम्पते ।
 अवारयन्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥ ४७ ॥
 शरैः सुनिशितैः पार्थ यथा वृत्रं पुरन्दरः ।
 निर्विभेद महाकायो विव्यथे नैव चाऽर्जुनः ॥ ४८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अर्जुनदुःशासनसमागमे दशधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥
 परं तीक्ष्ण क्रिये गये बाणों में अर्जुन को घायल किया। अर्जुन ने तीन बाणों से दुःशासन का धनुष काटकर रथ भी काट डाला। तब दुःशासन ने दूसरा धनुष लेकर पचास बाण अर्जुन के हाथों और वक्षस्थल में मारे ॥ ३९-४० ॥ इसमें अनन्तर अर्जुन मृदु होकर गमदण्डतुल्य अमग्न अमल बाण दुःशामन को मारने लगे। किन्तु वे बाण पाम तक नहीं पहुँचने पाये और दुःशासन ने उन्हें काट डाला। इस प्रकार अर्जुन को विरहित करके वे तीक्ष्ण बाणों से उसको पीड़ा पहुँचाने लगे। तब अर्जुन ने क्रोध में अधिक होकर अमग्न मुनर्गपुङ्ख तीक्ष्ण बाण बरसाना प्रारम्भ भीष्मपर्व या एक मी दम अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११० ॥

किया। ॥ ४१-४२ ॥ अर्जुन के छोड़े हुए वे बाण तालाब में प्रवेश हो रहे होंगे के समान दुःशामन के हृदय शरीर में प्रवेश हो गये। दुःशामन बहुत ही पीड़ित और अचेत होकर दीप्रता के साथ, अर्जुन को छोड़कर भीष्म के रथ के पास चले गये। उस अयाह शक्ति में डूब रहे दुःशामन के लिए भीष्म पितामह आश्रयस्थान दीप्त हो गये। महापराक्रमी दुःशामन क्षणभर में मने होकर उसी प्रकार तीक्ष्ण बाण बरसाने अर्जुन को रोषने लगे, जैसे इन्द्र ने घृताशुर को रोगा था। किन्तु इसमें अर्जुन ने तो तनिक भी व्यथित नहीं हुए और न मग्न मंत्रिगुण हुए ॥ ४३-४४ ॥

अथ एकादशाविकशततमोऽध्याय ॥ १११ ॥

सञ्जय उवाच—सात्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे ।

आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥ १ ॥

माधवस्तु सुसंकुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः ।

आजघान रणे राजन्प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥

तथैव राक्षसो राजन्माधवं नवभिः शरैः ।

अर्दयामास राजेन्द्र संकुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥

शैनेयः शरसङ्घं तु प्रेषयामास संयुगे ।

राक्षसाय सुसंकुद्धो माधवः परवीरहा ॥ ४ ॥

ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।

विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च ॥ ५ ॥

माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा ।

वार्यमाणश्च तेजस्वी जहास च ननाद च ॥ ६ ॥

भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः ।

ताडयामास समरे तोत्रैरिव महागजम् ॥ ७ ॥

विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः ।

प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान्सन्नतपर्वणः ॥ ८ ॥

तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महङ्गुनः ।

चिच्छेद शतधारेण भल्लेन कृतहस्तवत् ॥ ९ ॥

अथाऽन्यङ्गनुरादाय वेगवत्परवीरहा ।

भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥

एक सी ग्यारह अध्याय ॥ १११ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज । कनकधारी वीर सात्यकि को भीष्म पर आक्रमण करने के लिए उद्यत देखकर महाधनुर्धर राक्षस अलम्बुष उन्हें रोकने लगा । सात्यकि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नव बाण अलम्बुष को मारे । तब राक्षस ने भी अत्यन्त क्रुपित होकर सात्यकि को नव बाण मारे ॥१॥३॥ सात्यकि ने क्रुद्ध होकर राक्षस के ऊपर असंख्य बाण छोड़े हैं महाराज । अलम्बुष भी तीक्ष्ण बाणों से सात्यकि को पीड़ित करके सिंहनाद करने लगा । राक्षस के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर भी तेजस्वी सात्यकि

धैर्य धारण करते हैंसते हुए सिंहनाद करने लगे । जैसे गजराज को कोई बारम्बार अट्कुश का प्रहार करे वैसे ही क्रुद्ध भगदत्त आकर सात्यकि को अनेक तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥११७॥ तब रथियों में श्रेष्ठ सात्यकि उस राक्षस को छोड़कर प्राग्ज्योतिषपति भगदत्त के ऊपर सुतीक्ष्ण शीप्रणामी बाण बरसाने लगे । भगदत्त ने हाथ की शक्ति दिखाकर तीक्ष्ण भल्ल बाण से सात्यकि का वड़ा भारी धनुष काट डाला । शत्रुनाशन सात्यकि उसी क्षण दूसरा धनुष लेकर भगदत्त को अति तीक्ष्ण बाणों से घायल करने

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
 शक्तिं कनकवैदूर्यभूषितामायसीं दृढाम् ॥ ११ ॥
 यमदण्डोपमां घोरां विक्षेप परमाहवे
 तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुवल्लेखिताम् ॥ १२ ॥
 सात्यकिः समरे राजन्दिधा चिच्छेद् सायकैः ।
 ततः पपात सहसा महोल्केव हतप्रभा ॥ १३ ॥
 शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते
 महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥ १४ ॥
 तथा परिवृत्तं दृष्ट्वा बाण्योयानां महारथम्
 दुर्योधनो भृशं क्रुद्धो भ्रातृन्सर्वानुवाच ह ॥ १५ ॥
 तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि
 न जीवन्प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद्रथव्रजात् ॥ १६ ॥
 तस्मिन्हृते हतं मन्ये पाण्डवानां महद्वलम्
 तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः ॥ १७ ॥
 शैनेयं योधयामासुर्भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे
 काम्बोजराजो बलवान्वारयामास संयुगे ॥ १८ ॥
 आर्जुनिं नृपतिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः
 पुनरेव चतुःपृष्ठा राजन्विध्वाध तं नृप ॥ १९ ॥
 सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विध्वाध पञ्चभिः
 सारथिं चाऽस्य नवभिरिच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ॥ २० ॥

लगे ॥८१॥ महाधनुर्धर भगदत्त का शरीर सात्यकि
 के बाणों से जर्जर हो गया । वे क्रोध के मोरे होठ
 चाटने लगे । सुगण और वैदूर्यमणि से शोभित,
 यमदण्डसदृश भयङ्कर एक लोहमयी शक्ति उन्होंने
 ताककर सात्यकि को मारी । महावीर सायकि ने
 उर्मा क्षण एक तीक्ष्ण बाण से उसके दो हुकड़े कर
 डाले । यह कटी हुई शक्ति प्रभालीन महाउज्ज्वा की
 तरङ्ग पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥११॥१३॥ महाराज
 दुर्योधन ने भगदत्त की शक्ति को व्यर्थ होने देकर
 अपना रथसंना से सात्यकि को घेरकर भागों में
 बटा—हे भाईयो ! ऐसा बल करो कि सात्यकि जीने
 की इम रथ—मेरे से बाहर न निकलने पावे ।

समझता हूँ, सात्यकि के मरने पर पाण्डवों के बल
 का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो जायगा ॥१४॥१७॥
 हे राजेन्द्र ! यह सुनकर आपके सव महारथी कुमार,
 बड़े भाई की आज्ञा के अनुसार, भीष्म से युद्ध करने
 के लिए उपर सात्यकि के साथ युद्ध करने लगे ।
 काम्बोजराज महावीर सुदक्षिण नितामद भीष्म के
 सम्मुख जाते हुए अभिमन्यु को रोकने लगे । अभिन
 पराक्रमी अभिमन्यु ने पहले बहुत से बाण मारकर
 पीछे चमट तीक्ष्ण बाण सुदक्षिण को मारे । सुदक्षिण ने
 भी, भीष्म के प्राणों की रक्षा के अभिप्राय में अभिमन्यु को
 रोकने के लिए पाँच बाण उसको और नव बाण मारपी
 को मारे ॥१७॥१९॥ हे राजेन्द्र ! वे दोनों भी इमी

तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ।
 यदाऽभ्यधावद्वाङ्मेयं शिखण्डी शत्रुकर्शनः ॥ २१ ॥
 विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम् ।
 भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ ॥ २२ ॥
 अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समियाद्रथसत्तमः ।
 ततः प्रवृत्ते युद्धं तयोस्तस्य च भारत ॥ २३ ॥
 विराटो दशभिर्भैरराजघान परन्तप ।
 यतमानं महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ २४ ॥
 द्रुपदश्च त्रिभिर्वाणैर्विव्याध निशितैस्तदा ।
 गुरुपुत्रं समासाद्य प्रहरन्तौ महाबलौ ॥ २५ ॥
 अश्वत्थामा ततस्तनौ तु विव्याध बहुभिः शरैः ।
 विराटद्रुपदौ वीरौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ ॥ २६ ॥
 तत्राऽद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत् ।
 यद् द्रौणिसायकान्घोरान्प्रत्यवारयतां युधि ॥ २७ ॥
 सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात् ।
 यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाव्रवत् ॥ २८ ॥
 कृपश्च समरे शूरो माद्रीपुत्रं महारथम् ।
 आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः ॥ २९ ॥
 तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
 अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः ॥ ३० ॥
 सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम् ।
 माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः ॥ ३१ ॥

प्रकार भयङ्कर संग्राम करने लगे। जब भीष्म पर आक्रमण करने को शिखण्डी आगे बढ़े तब महारथी विराट और द्रुपद क्रोध से अधीर होकर कौरवों की भारी सेना को छिन्न भिन्न करते हुए भीष्म की ओर चले। उधर से महारथी अश्वत्थामा कुपित होकर उनके समुख आयातक दोनों वीर राजाओं के साथ अश्वत्थामा घोर संग्राम करने लगे ॥२१॥२३॥ विराट ने दस भृष्ट बाण और द्रुपद ने तीन तीक्ष्ण बाण अश्वत्थामा की मारे। अश्वत्थामा भी दोनों वीर राजाओं को निरन्तर असंख्य

बाणों से घायल कर रहे थे। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि दोनों वीर राजा, वृद्ध होने पर भी अनायास अश्वत्थामा के शीघ्रगामी दारुण बाणों को काटते ही चले जाते थे ॥२४॥२७॥ मदनोन्मत्त जङ्गली हाथी जैसे दूसरे जङ्गली हाथी पर आक्रमण करता है, वैसे ही वीर कृपाचार्य ने महारथी सहदेव के पास जाकर उनको सुवर्णभूषित सत्तर बाण मारे। सहदेव ने बाणों से कृपाचार्य का धनुष काट डाला और नव बाण मारे ॥२८॥३०॥ महावीर कृपाचार्य ने भीष्म

आजघानोरसि कुद्ध इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।
 तथैव पाण्डवो राजञ्छारद्वतममर्पणम् ॥ ३२ ॥
 आजघानोरसि कुद्धो भीष्मस्य वधकाक्षया ।
 तयोर्युद्धं समभवद्वोरूपं भयावहम् ॥ ३३ ॥
 नकुलं तु रणे कुद्धो विकर्णः शत्रुतापनः ।
 विव्याध सायकैः पट्या रक्षन्भीष्मं महाबलम् ॥ ३४ ॥
 नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता ।
 विकर्ण सप्तसप्तत्या निर्विभेद शिलीमुखैः ॥ ३५ ॥
 तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परन्तपौ ।
 अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ ३६ ॥
 घटोत्कचं रणे यान्तं निघ्नन्तं तव बाहिनीम् ।
 दुर्मुखः समरे प्रायाञ्जीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ३७ ॥
 हैडिम्बस्तु रणे राजन्दुर्मुखं शत्रुतापनम् ।
 आजघानोरसि कुद्धः शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ३८ ॥
 भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः ।
 पट्या वीरो नदन्हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥
 धृष्टद्युम्नं तथा यान्तं भीष्मस्य वधकाक्षिणम् ।
 हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठं महारथः ॥ ४० ॥
 हार्दिक्यः पार्षतं चापि विध्वा पञ्चभिरायसैः ।
 पुनः पञ्चाशता तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥
 आजघान महाबाहुः पार्षतं तं महारथम् ।
 तं चैव पार्षतो राजन्हार्दिक्यं नवभिः शरैः ॥ ४२ ॥

का जीवन बचाने के लिए उसी क्षण दूसरा दह धनुष लेकर सहदेव की छाती में दम बाण मारे । सहदेव ने भी भीष्मवध की इच्छा में, आगे बढ़ने के लिए, कृपाचार्य की छाती में कई बाण मारे । हे भारत ! इस प्रकार वे दोनों वीर परस्पर कठिन युद्ध करते लगे ॥ ३१, ३३ ॥ शत्रुनाशन विकर्ण ने क्रोध में उन्मत्त होकर नकुल को साठ बाण मारे । मध्यग्री नकुल ने उस प्रकार से अत्यन्त स्थिति होकर विकर्ण को कई वेग से सतसह बाण मारे । इस प्रकार दोनों वीर

भीष्म की रक्षा और वध के लिए, मैदान में युद्ध करते हुए दो गाँवों के समान, परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ३४, ३६ ॥ घटोत्कच भी वीरवमेना को मारकर भीष्म की ओर बढ़ रहा था, इसी समय पराक्रमी दुर्मुख राजकुमार उसके समुग पड़ने । घटोत्कच ने क्रोधवश होकर दुर्मुख की छाती में एकतेर बाण मारा । उसके बदले में दुर्मुख ने साठ बाण घटोत्कच की छाती में मारे ॥ ३७, ३९ ॥ मध्यग्री धृष्टद्युम्न भी बड़े वेग के साथ भीष्म की ओर बढ़ने जा रहे थे ।

विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैरजिह्वगैः ।
 तयोः समभवद्युद्धं भीष्महेतोर्महाहवे ॥ ४३ ॥
 अन्योन्यातिशये युक्तं यथा वृत्रमहेन्द्रयोः ।
 भीमसेनं तथा यान्तं भीष्मं प्रति महारथम् ॥ ४४ ॥
 भूरिश्रवाऽभ्ययात्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
 सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे ॥ ४५ ॥
 नाराचेन सुतीक्ष्णेन स्वमपुङ्गेन संयुगे ।
 उराःस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
 स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम ।
 तौ शरान्सूर्यसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ४७ ॥
 अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते नरर्षभौ ।
 भीमो भीष्मवधाकांक्षी सौमदत्तिं महारथम् ॥ ४८ ॥
 तथा भीष्मजये गृध्रुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम् ।
 कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे ॥ ४९ ॥
 युधिष्ठिरं तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम् ।
 भीष्माभिमुखमायान्तं भारद्वाजो न्यवारयत् ॥ ५० ॥
 द्रोणस्य रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ।
 श्रुत्वा प्रभद्रका राजन्समकम्पन्त मारिष ॥ ५१ ॥
 सा सेना महती राजन्पाण्डुपुत्रस्य संयुगे ।
 द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात्पदम् ॥ ५२ ॥

महारथी कृतवर्मा ने सन्मुख आकर उनकी रोका ।
 धृष्टद्युम्न को कृतवर्मा ने पहले लोहमय पाँच बाण
 मारे, फिर पचास बाण उनकी छाती में मारे । अब
 धृष्टद्युम्न ने कृतवर्मा को कङ्कपत्रयुक्त नव बाण मारे
 ॥४०॥४३॥ इस प्रकार भीष्म की रक्षा और बध के
 लिए वे दोनों वीर परस्पर घोर संग्राम करने लगे ।
 महाबली भीमसेन भी शीघ्रता के साथ पितामह की
 ओर जा रहे थे । इसी समय “ठहरो, ठहरो” कहते
 हुए भूरिश्रवा स्कृत्ति के साथ उनके सन्मुख आये ।
 उन्होंने आते ही तीक्ष्ण सुवर्णपुङ्ख नाराच बाण उनकी
 छाती में मारा । महप्रतापी भीमसेन उस बाण से
 अत्यन्त पीड़ित होकर स्कन्द की शक्ति से विदीर्ण

क्रौञ्च पर्वत के समान देख पड़े ॥४३॥४७॥ इसके
 पश्चात् भीष्मपर्व के लिए उद्योग करनेवाले भीमसेन
 कुपित होकर सूर्य के समान चमकीले तीक्ष्ण बाण
 भूरिश्रवा को और भूरिश्रवा, भीष्म की रक्षा की
 इच्छा से, वैसे ही बाण भीमसेन को मारने लगे ।
 इसी प्रकार युद्ध के साथ दोनों वीर परस्पर युद्ध
 करने लगे ॥४७॥४९॥ उपर राजा युधिष्ठिर भी सेना
 साथ लिये हुए भीष्म के सन्मुख जा रहे थे । उन्हें
 द्रोणाचार्य ने आकर रोका । प्रभद्रकगण द्रोणाचार्य
 के रथ का मेघयर्जन-सम शब्द सुनकर काँपने लगे ।
 वह भारी सेना द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित होकर
 पग भर भी आगे न बढ़ सकी ॥५०॥५२॥ हे

चेकितानं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर ।
 चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५३ ॥
 भीष्महेतोः पराक्रान्तश्चित्रसेनः पराक्रमी ।
 चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत ॥ ५४ ॥
 तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमवारयत् ।
 तदुद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ॥ ५५ ॥
 अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तत्र भारत ।
 त्रिमुखीकृत्य पुत्रं ते सेनां तव समर्द्ध ह ॥ ५६ ॥
 दुःशासनोऽपि परया शक्त्या पार्थमवारयत् ।
 कथं भीष्मं न नो हन्यादिति निश्चित्य भारत ॥ ५७ ॥
 सा वध्यमाना समरे पुत्रस्य तव चाहिनी ।
 लोड्यते रथिभिः श्रेष्ठैस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मत्रयपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥
 राजेन्द्र ! आपके पुत्र चित्रसेन ने चेकितान का मार्ग रोका । दोनों वीर अपनी-अपनी शक्ति की पराकाष्ठा दिगान हुए भयद्वार मंग्राम करने लगे ॥५३॥५५॥
 फिर दुःशासन भी यह चिन्ता करते हुए, कि किस प्रकार भीष्म के जीवन की रक्षा होगी, अर्जुन की शेरने की जी-जान से चेष्टा करने लगे । किन्तु बार-बार रोके जाने पर भी अन्त में दुःशासन को हठानर अर्जुन आगे बढ़ ही गये और कौरवसेना को नष्ट भट करने लगे । दुर्योधन की सेना भी इसी प्रकार स्थान-स्थान पर पराक्रम दिगानकर भी पाण्डव पक्ष की सेना के हाथों समाई जाने लगी ॥५६॥५८॥
 — ० —
 भीष्मपर्वण का एक सा ग्यारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ १११ ॥

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥
 मन्त्रय उवाच ।
 अथ वीरो महेश्वरसो मत्तवारणविक्रमः ।
 समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥ १ ॥
 विधुन्वानो नरश्रेष्ठो द्रावयाणो वरूधिनीम् ।
 पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः ॥ २ ॥
 निमित्तानि निमित्तज्ञः सर्वतो वीक्ष्य वीर्यवान् ।
 प्रतपन्तमर्नकानि द्रोणः पञ्चमभायन ॥ ३ ॥

अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः ।
 जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ॥ ४ ॥
 उत्पतन्ति हि मे वाणा धनुः प्रस्फुरतीव च ।
 योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्तते मतिः ॥ ५ ॥
 दिद्वशान्तानि घोराणि व्याहरन्ति मृगाद्विजाः ।
 नीचैर्वृष्टा निलीयन्ते भारतानां चमूं प्रति ॥ ६ ॥
 नष्टप्रभ इवाऽऽदित्यः सर्वतो लोहिता दिशः ।
 रसते व्यथते भूमिः कम्पतीव च सर्वशः ॥ ७ ॥
 कङ्कश्रुष्टा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहुः ।
 शिवाश्चैवाऽशिवा घोरा वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ ८ ॥
 पपात महती चोल्का मध्येनाऽऽदित्यमण्डलात् ।
 सकवन्धश्च परिघो भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ ९ ॥
 परिवेपस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोगभूत् ।
 वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १० ॥
 देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः
 कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च ॥ ११ ॥
 अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम् ।
 अवाविशाराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः ॥ १२ ॥
 वर्षूपि च नरेन्द्राणां विगताभानि लक्षये ।
 धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च आजन्ति दंशिताः ॥ १३ ॥

प्रवृत्त अपने पुत्र अश्वत्थामा से कहा—हे बेटा !
 यह वही दिन जान पड़ता है जिस दिन भीष्म को
 मारने के लिए महाबली अर्जुन परम यत्न करेंगे । क्योंकि
 आज मेरे बाण तरकस के भीतर से स्वयं बाहर निकले
 पड़ते हैं, धनुष फड़क रहा है । सब अस्त्र-शस्त्र प्रयोग
 करने पर भी प्रयुक्त नहीं होते और मेरी बुद्धि क्रूर कर्म
 में अनुरक्त हो रही है ॥३॥५॥ सब दिशाओं में मृग
 और पक्षी अशान्त होकर घोर शब्द कर रहे हैं । गिद्ध
 नीचे होकर कौरवसेना के ऊपर मँडलते हैं । सूर्य-
 मण्डल की प्रमा फीकी सी पड़ गई है । दिशाओं का
 रङ्ग लाल देख पड़ता है । धृष्टी सब ओर शब्दायमान,
 व्यथित और कण्ठित सी हो रही है । कङ्क, गिद्ध,

बगले आदि पक्षी बारम्बार बोल रहे हैं । अशुभरूप
 गिद्धियों और गीदड़ों के दल महाभय की सूचना
 देते हुए घोर शब्द कर रहे हैं ॥५॥८॥ सूर्यमण्डल
 के मध्य से बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिर रही हैं । कबन्ध
 चिह्नयुक्त मण्डल सूर्यविम्ब के चारों ओर देख पड़ता
 है । यह उत्पात घोर भय की सूचना देता हुआ यह
 जता रहा है कि आज असेन्य राजा मारे जायेंगे ।
 चन्द्र और सूर्य के विषय में मण्डल पड़ा हुआ है ।
 धृतराष्ट्र के देव-मन्दिरों की देवमूर्तियाँ काँपती, हँसती
 नाचती और रोती सी हैं । प्रचण्ड लक्षणयुक्त सूर्य के
 बायें सब ग्रह स्थित हैं । चन्द्रमा ओंघ उदित हुए हैं
 ॥८॥१२॥ सब राजाओं के शरीर तेज और कान्ति

सेनयोरुभयोश्चापि समन्ताच्छ्रूयते महान् ।
 पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निःस्वनः ॥ १४ ॥
 ध्रुवमास्थाय वीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे ।
 अपास्याऽन्यान्रणे योधानभ्येष्यति पितामहम् ॥ १५ ॥
 हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः ।
 चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम् ॥ १६ ॥
 तं चेह निवृत्तिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम् ।
 पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्याऽऽयोधनं गतः ॥ १७ ॥
 अग्रवीच्य पुरा भीष्मो नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
 स्त्री ह्येवा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥ १८ ॥
 अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः ।
 न चाऽमङ्गलिके तस्मिन्प्रहरेदापगासुतः ॥ १९ ॥
 एतद्विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम् ।
 अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २० ॥
 युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मश्चाऽर्जुनसङ्गतः ।
 मम चाऽस्त्रसमारम्भः प्रजानामक्षिवं ध्रुवम् ॥ २१ ॥
 मनस्वी बलवाञ्छूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
 दूरपाती दृढेपुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२ ॥
 अजेयः समरे चाऽपि देवैरपि सवासवैः ।
 बलवान्बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः ॥ २३ ॥

से हीन देख पड़ने हैं। दुर्योधन की सेना में कञ्च-
 धारी वीर योमा को नहीं प्राप्त होते। दोनों सेनाओं
 में चारों ओर पाञ्चजन्य राक्ष और गाण्डीव धनुष
 का भारी शब्द सुन पड़ता है। यह निश्चय है कि
 आज अर्जुन युद्ध में दिव्य अस्त्रों के बल से सब
 राजाओं को हराकर भीष्म के ऊपर आक्रमण करेगा।
 ॥१३।१५॥ हे ऋतु ! महावीर भीष्म और अर्जुन
 के युद्ध का निचार करने से मेरे रोंगटे खड़े हो रहे
 हैं और मन में रोद की गहरी छाया पड़ रही है।
 इस पाप निवारण के, कष्ट में प्रणीत शिखण्डी को
 आगे करके अर्जुन भीष्म से युद्ध करने गये हैं।
 भीष्म की प्रतिज्ञा है कि वे अमङ्गल्यध्वज शिखण्डी

पर प्रहार नहीं करेगा। क्योंकि शिखण्डी को विधाता
 ने ही रूप में उत्पन्न किया था, पाँडे दैवयोग से
 वह पुरुष हो गया। इसी से भीष्म उस पर प्रहार
 नहीं करेगा। [किन्तु वही शिखण्डी आज क्रुद्ध
 होकर भीष्म पर आक्रमण कर रहा है।] यही सोचने
 में मैं मूढ़ सा हो रहा हूँ ॥१६।१९॥ अर्जुन भीष्म
 से युद्ध करने को चढ़ दौड़े हैं। युधिष्ठिर का कुपित
 होना, भीष्म और अर्जुन का युद्ध होना और अस्त्रों
 के प्रयोग के लिए मेरा उद्यम मात्र करना, किन्तु
 पहले की तरह अस्त्रों का उपस्थित न होना, सूचित
 करता है कि प्रजा का अमङ्गल अन्ध होगा। वीर
 अर्जुन उत्साही, बलवान्, शूर, अस्त्रविद्या में निपुण,

विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः ।
 तस्य मार्गं परिहरन्दुतं गच्छ यतव्रत ॥ २४ ॥
 पश्याऽद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत् ।
 हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च ॥ २५ ॥
 क्वचान्यवदीर्यन्ते शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 छियन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूपि च ॥ २६ ॥
 प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः शक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः ।
 वैजयन्त्यश्च नागानां संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ २७ ॥
 नाऽयं संरक्षितुं कालः प्राणान्पुत्रोपजीविभिः ।
 याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च ॥ २८ ॥
 रथनागहयावतां महाघोरां सुदुर्गमाम् ।
 रथेन संग्रामनदीं तरत्येव कपिध्वजः ॥ २९ ॥
 ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत् ।
 इहैव इदृश्यते पार्थे भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥ ३० ॥
 भीमसेनश्च बलवान्मीद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
 वासुदेवश्च वाष्णो यो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥
 तस्यैव मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
 तपोदग्धशरीरस्य कोपो दहति भारतीम् ॥ ३२ ॥
 एष सन्दृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः ।
 दारयन्सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥ ३३ ॥

महापराक्रमी, शक्तिशाली, दूर तक लक्ष्यप्रेमने में प्रवीण और दृढ़ धनुष-बाण धारण करनेवाले हैं; वे बल-बुद्धि से युक्त, निमित्तज्ञ, इन्द्र सहित सप्त देवताओं के लिए भी अजेय, क्रेश को जाते हुए, श्रेष्ठ योद्धा, सदा रण में विजय पानेवाले और भयानक अस्त्रों के शाता हैं। तुम शीघ्र ही जाकर उन्हें रोकने का यत्न करो ॥ २०।२४ ॥ देवों, आज के इस घोर संग्राम में भयानक हत्याकाण्ड होगा। अर्जुन क्रोध से विह्वल होकर सन्नतर्ग सुवर्णभूषित विचित्र वाणों से वीरों के सुवर्णचित्रित सुदृढ़ कणक, चक्राणु, तोमर, धनुष, उज्ज्वल प्रास, तीक्ष्ण शक्तियों और हाथियों के ऊपर ये शण्डे काट-काटकर गिरा रहे हैं। हे पुत्र! हम

लोग राजा दुर्योधन के अरीन हैं, वही हमें जीविका देते हैं ॥ २५।२७ ॥ इस समय हमें अपने प्राणों की रक्षा का विचार छोड़कर युद्ध करना चाहिए। हे बेटा! स्वर्गप्राप्ति की ओर लक्ष्य रखकर यश और विजय प्राप्त करने जाओ। वह देवों, वीर अर्जुन रथ की नौका पर बैठकर रथ हाथी-घोड़ों की चाल के आपत्त से पूर्ण, महाघोर, अत्यन्त दुर्गम युद्ध-नदी के पार जा रहे हैं। युधिष्ठिर के ब्राह्मणभक्ति, इन्द्रिय-दमन, दान (त्याग), तप और श्रेष्ठ उत्तम चरित्र आदि सद्गुणों का फल इसी लोक में दिखाई दे रहा है। जिनके भाई बलवान् भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव हैं; जिनके सहायक और सुदृढ़ साक्षात्

एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना ।
 महोर्मिनद्धं सुमहत्तिमिनेव महाजलम् ॥ ३४ ॥
 हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे ।
 याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥ ३५ ॥
 दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्याऽमिततेजसः ।
 समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥ ३६ ॥
 सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
 पर्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ॥ ३७ ॥
 उपेन्द्रसदृशः श्यामो महाशाल इवोद्भूतः ।
 एष गच्छत्यनीकाग्रे द्वितीयं इव फाल्गुनः ॥ ३८ ॥
 उत्तमास्त्राणि चाऽऽधत्स्व गृहीत्वा च महद्धनुः ।
 पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥ ३९ ॥
 को हि नेच्छेत्प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः ।
 क्षत्रधर्मं तु सम्प्रेक्ष्य ततस्त्वां नियुनज्म्यहम् ॥ ४० ॥
 एष चाति रणे भीष्मो दहते वै महाचमूम् ।
 युद्धेषु सदृशस्तात यमस्य वरुणस्य च ॥ ४१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मप्रपञ्चणि द्रोणाश्वत्थामसंगदे द्वादशधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

वासदेव है उन्हीं तपस्वी युधिष्ठिर का कष्ट शेरूजनिन
 कोष दुर्मति दुर्योधन की सेना को भस्म कर रहा है
 ॥२८।३२॥ श्रीकृष्ण की सहायता से सत्र और
 दुर्योधन की सेना को छिन्न भिन्न और नष्ट भष्ट करते
 हुए अर्जुन देख पड़ रहे हैं। निमि आर घड़ियाल आदि
 जल जन्तुओं से भयानक और बड़ा बड़ा लहरों से
 पूर्ण महासागर के समान क्षाम को प्राप्त कारमसना
 में अर्जुन ने हलचल डाल दी है। सत्र हाहाकार
 और किलकिलारन सुन पड़ता है। हे बेटा! तुम
 पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न को रोमने के लिए जाओ अर
 भी राजा युधिष्ठिर पर, सम्मुख जाकर, आक्रमण करता
 है ॥३३।३५॥ अमित तेजस्वी महाराज युधिष्ठिर की
 सेना का भीतरी भाग, समुद्र के भीतरी भाग की
 तरह, सुरक्षित और सब ओर से दुर्गम है। चारों

ओर से अतिरथी, श्रेष्ठ, योद्धा उसकी रक्षा कर रहे
 हैं। सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल
 आर सहदेव राजा युधिष्ठिर की रक्षा कर रहे हैं।
 वह देखो, श्रीकृष्ण के समान लम्बे-चौड़े, महाशाल
 वृक्ष के तुल्य ऊँचे, श्यामवर्ण, महाजली अभिमन्यु
 वृक्ष के तुल्य ऊँचे, श्यामवर्ण, महाजली अभिमन्यु
 दूसरे अर्जुन के समान सेना के आगे आ रहे हैं।
 तुम शीघ्र ही श्रेष्ठ धनुष और उत्तम अस्त्र-शस्त्रों से
 समजित होकर धृष्टद्युम्न और भीमसेन से जाकर
 युद्ध करो। हे पुत्र! इस सप्ता में कौन नहीं चाहता
 कि मेरा प्रिय पुत्र बहुत दिनों तक जीवित रहे।
 किन्तु मैं क्षत्रिय-धर्म के अनुसार तुम्हें ऐसे भयानक
 युद्ध में मारने-मारने के लिए भेजने को निवृत्त हूँ।
 वह देखो, यमराज और वरुण के समान पराक्रमी
 योद्धा भीष्म भारी सेना का संहार कर रहे हैं ॥३६।४१॥

भीष्मपर्व का एक सी बारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११२ ॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११३ ॥

सञ्जय उवाच—भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च ।
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १ ॥
 चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणादयः ।
 दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥ २ ॥
 महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया ।
 भीष्मस्य समरे राजन्प्रार्थयाना महद्यशः ॥ ३ ॥
 शल्यस्तु नवभिर्वाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
 कृतवर्मा त्रिभिर्वाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥ ४ ॥
 चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिप ।
 दशभिर्दशभिर्वाणैर्भीमसेनमताडन् ॥ ५ ॥
 सैन्धवश्च त्रिभिर्वाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ६ ॥
 दुर्मर्षणस्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः ।
 स तान्सर्वान्महाराज राजमानान्पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
 प्रवीरान्सर्वलोकस्य धार्तराष्ट्रान्महारथान् ।
 जघान समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा ॥ ८ ॥
 सप्तभिः शल्यमाविध्यत्कृतवर्माणमष्टभिः ।
 कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ॥ ९ ॥
 अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
 विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ १० ॥

एक सी तरह अध्याय ॥ ११३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! भगदत्त, कृपा चार्य, शल्य, कृतवर्मा, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण, ये आपके पक्ष के दस योद्धा अनेक देशों की भारी सेना साथ लेकर उस युद्ध में भीष्म के लिए यश की प्रत्याशा से भीमसेन के साथ युद्ध करने लगे ॥ १॥३॥ शल्य ने नव, कृतवर्मा ने तीन और कृपाचार्य ने नव बाण भीमसेन को मारे । चित्रसेन, विकर्ण और भगदत्त ने दस दस बाण भीमसेन को मारे । जयद्रथ ने तीन, विन्द और

अनुविन्द ने पाँच पाँच और दुर्मर्षण ने बास बाण भीमसेन को मारे ॥१॥७॥ हे राजेन्द्र ! तब महानली भीमसेन ने भी सबके समुख ही धृतराष्ट्रपक्ष के इन महाराथियों में से हर एक को अलग-अलग बाण मारे । उन्होंने शल्य को सात और कृतवर्मा को आठ बाण मारकर कृपाचार्य का बाणयुक्त धनुष भी मध्य से काट डाला । इसके पश्चात् धनुष न रहने पर रिक्त हाथ खड़े हुए कृपाचार्य को सात बाणों से घायल किया ॥७॥१०॥ फिर विन्द और अनुविन्द

दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः ।
 विकर्णं दशभिर्वाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ॥ ११ ॥
 विध्वा भीमो नदद्दृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः ।
 अथाऽन्यच्चनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ १२ ॥
 भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः ।
 स विद्धो दशभिर्वाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपः ॥ १३ ॥
 ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ।
 गौतमं ताडयामास शरैर्वहुभिराहवे ॥ १४ ॥
 सैन्धवस्य तथाऽऽश्वं च सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
 प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः ॥ १५ ॥
 हताश्वात्तु रथान्तूर्णमवपुस्य महारथः ।
 शरांश्चिक्षेप निशितान्भीमसेनस्य संयुगे ॥ १६ ॥
 तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद मारिष्य ।
 भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः ॥ १७ ॥
 स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
 चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः ॥ १८ ॥
 अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः ।
 महारथाञ्शरैर्विध्वा वारयित्वा च मारिष्य ॥ १९ ॥
 विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः ।
 तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् ॥ २० ॥

को तीन-तीन बाणों से पीड़ित करके दुर्मर्षण की
 बीस, चित्रसेन को पाँच, विकर्ण को दस और जयद्रथ
 को पहले पाँच और फिर तान बाण मारे । महानली
 भीमसेन इस प्रकार सत्रों को घायल करके आनन्द के
 साथ सिंहनाद करने लगे । महारथी कृपाचार्य ने
 दूसरा धनुष लेकर भीमसेन को सुतीक्ष्ण दस बाणों
 से पीड़ित किया । अद्भुत की चोट खाये हुए मस्त
 गजराज की तरह उन बाणों की चोट खाकर महाराज
 भीमसेन अत्यन्त दुःखित हो उठे । उन्होंने कृपाचार्य
 को एक साथ बहुत से बाण मारे ॥१०॥१४॥
 इसके पश्चात् साक्षात् वार के समान भीमसेन ने
 जयद्रथ के चारों ओर भीमसेन की तीस बाणों से सारथी

को भी मार डाला । महारथी जयद्रथ त्रिना ओढ़े
 और सारथी के रथ पर से नीचे कूदकर भीमसेन
 के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । उन्होंने दो भल्ल
 बाणों से जयद्रथ को धनुष काट डाला । सारथी
 और घोड़ों को मारा और धनुष तथा रथ को बड़ा देरकर
 जयद्रथ शीघ्रता से चित्रसेन के रथ पर चढ़ गये । इस
 प्रकार महारथी भीमसेन अनेक ही अपने बाणों से सत्र
 प्रकार बाणों को पीड़ित और जयद्रथ को रथहीन करके
 सत्रों के मन्मुख ही अद्भुत कार्य करने लगे ॥१५॥१९॥
 हे रामेन्द्र ! भीमसेन के इस पराक्रम की शान्य न
 सह सके । वे "टहरो, टहरो" कहकर, तीक्ष्ण धार-
 वाले चमरों से बाण धनुष पर चढ़ाकर, भीमसेन की

स सन्धाय शरांस्तीक्ष्णान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
 भीमं विव्याध समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २१ ॥
 कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे ॥ २२ ॥
 दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान् ।
 भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिन्दमाः ॥ २३ ॥
 स च तान्प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
 शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः ॥ २४ ॥
 तं शल्यो नवभिर्भित्त्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
 सारथिं चाऽस्य भस्त्रेण गाढं विव्याध मर्मणि ॥ २५ ॥
 विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान् ।
 मदराजं त्रिभिर्वाणैर्बाहोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २६ ॥
 तथेतरान्महेष्वासान्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः ।
 ताडयामास समरे सिंहवद्विननाद च ॥ २७ ॥
 ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम् ।
 त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन् ॥ २८ ॥
 सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे ।
 पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाऽम्बुदैः ॥ २९ ॥
 स तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः ।
 मद्रेश्वरं त्रिभिर्वाणैर्भृशं विध्वा महायशाः ॥ ३० ॥
 कृपं च नवभिर्वाणैर्भृशं विध्वा समन्ततः ।
 प्राग्ज्योतिषं शतैराज्ञौ राजन्विव्याध सायकैः ॥ ३१ ॥

पीड़ित करने लगे । तब शल्य की सहायता के लिए
 कृपाचार्य, कृतवर्मा, महावीर भगदत्त, विन्द, अनुविन्द,
 चित्रसेन, दुर्मर्षण, विकर्ण, पराक्रमी जयद्रथ, ये सब
 मिलकर स्फूर्ति के साथ भीमसेन की बाण मारने लगे ।
 भीमसेन ने उनमें से प्रत्येक को पाँच-पाँच बाण मारे ।
 इसके पश्चात् शल्य को पहले सत्तर और फिर दस
 बाण मारे । शल्य ने भी भीमसेन को पहले नन और
 फिर पाँच बाण मारे । फिर एक भट्ट बाण उनके सारथी
 को मारा । महारथी प्रतापी भीमसेन अपने सारथी

विशोक की बाण की चोट से विह्वल देखकर क्रोध
 से अवीर हो उठे । उन्होंने शल्य के दोनों हाथों में
 और छाती में तीन बाण मारे । उसके पश्चात् अन्य
 धनुर्दरों की तीन-तीन बाणों से घायल करके वे सिंहनाद
 करने लगे ॥ २०।२७॥ तब वे सब महारथी मिलकर
 यत्नपूर्वक महाबली भीमसेन से युद्ध करने लगे । सबने
 भीमसेन के मर्मस्थलों में एक साथ तीन-तीन बाण मारे ।
 जैसे पर्वत गर्भों की जलधारा से व्यथित नहीं होता, वैसे
 ही महारथी भीम उन तीनों के बाणों से अत्यन्त ही

ततस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः ।
 क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥
 तथाऽन्यद्भनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम् ।
 आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परन्तपः ॥ ३३ ॥
 भीमस्तु समरे विध्वा शल्यं नवभिरायसेः ।
 भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥
 द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रभृतीत्रयान् ।
 तेऽपि तं समरे राजन्विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥
 स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वशस्त्रैर्महारथैः ।
 मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान्विचचार गतव्यथः ॥ ३६ ॥
 ते चापि रथिनां श्रेष्ठा भीमाय निशिताञ्जरान् ।
 प्रेपयामासुरव्यग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥
 तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः ।
 चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महामते ॥ ३८ ॥
 तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः ।
 शतश्रीं च कृपो राजञ्छरं शल्यश्च संयुगे ॥ ३९ ॥
 अथेतरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् ।
 भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेपयामासुरोजसा ॥ ४० ॥
 तोमरं च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणाऽनिलारमजः ।
 पट्टिशं च त्रिभिर्वाणेश्चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ४१ ॥

पापट होकर रत्ती भर भी व्यथित नहीं हुए ॥२८॥
 २९॥ उन्होंने मुझ होकर फिर शल्य को तीन.
 श्लाघापाप को नव और भगदत्त को सैकड़ों बाण
 मारकर एक तीरण छुरा बाण से वीर हनुवर्मा को
 बाणयुक्त धनुष काट डाला ॥३०॥३०॥ शत्रुओं को
 पीड़ा पहुँचानेवाले कृतवर्मा ने दूसरा धनुष लेकर एक
 नागच बाण भीमसेन की भीष्टी के मध्य में मारा ।
 तब भीमसेन ने फिर शल्य को नव, भगदत्त को
 तीन, हनुवर्मा को आठ और श्लाघापाप अठि सत्ता-
 रणियों को दो-दो बाण मारे । ये लोग भी मुनीन्द्र
 २८ बन्नों में भीमसेन को पीसा पहुँचाने लगे ॥३३॥
 ३५॥ उन सत्तागणियों के द्वारा अल्प देहिन होकर

भी भीमसेन विवधित नहीं हुए । वे उन लोगों को
 और उनके प्रहारों को मृग के मगान मुच्छत मगह-
 कर्ष मुद्गभूमि में विचरने लगे । वे तब महागर्भी भी
 पण्डित्य होकर भीमसेन के ऊपर शिफाई-यादगों
 बाण बरसाने लगे । हे राजेन्द्र ! महावीर भगदत्त ने
 सुगन्धदण्डयुक्त भगदत्त महाशक्ति भीमसेन को मारी ।
 महाबट्ट उदयन ने तोमर और पट्टिश, श्लाघापाप ने
 शतश्री, शल्य ने बाण और अन्य धनुर्दगे में से हर
 एक ने तीक्ष्ण-तीक्ष्ण जिह्मिष्ठ नाम के उस बाण
 भीमसेन को मारे ॥३९॥४०॥ पराक्रमी भीमसेन ने
 छुरा बना में से लर, लीन बन्नों से पट्टिश और
 वृद्धयुक्त नव बन्नों से शतश्री को हित के देव

स विभेद शतर्षां च नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
 मद्राजप्रयुक्तं च शरं छित्वा महारथः ॥ ४२ ॥
 शक्तिचिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे ।
 तथेतराञ्शरान्घोराञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
 भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत् ।
 तांश्च सर्वान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ ४४ ॥
 ततो धनञ्जयस्तत्र वर्त्तमाने महारणे ।
 आजगाम रथेनाऽऽजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ॥ ४५ ॥
 निघ्नन्तं समरे शत्रून्योधयानं च सायकैः ।
 तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीक्ष्य पाण्डवौ ॥ ४६ ॥
 न शशंसुर्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभाः ।
 अथाऽर्जुनो रणे भीमं योधयन्तं महारथान् ॥ ४७ ॥
 भीष्मस्य निधनाकांक्षी पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
 आससाद् रणे वीरांस्तावकान्दश भारत ॥ ४८ ॥
 ये स भीमं रणे राजन्योऽधयन्तो व्यवस्थिताः ।
 वीभर्तुस्तानथाऽविध्यद्भीमस्य प्रियकाम्यया ॥ ४९ ॥
 ततो दुर्योधनो राजा सुशर्मणमचोदयत् ।
 अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः ॥ ५० ॥
 सुशर्मन्गच्छ शीघ्रं त्वं बलौघैः परिवारितः ।
 जहि पाण्डुसुनावेतौ धनञ्जयवृकोदरो ॥ ५१ ॥
 तच्छृत्वा वचनं तस्य त्रैगर्तः प्रस्थलाधिपः ।
 अभिद्रुत्य रणे भीममर्जुनं चैव धन्विनौ ॥ ५२ ॥

की तरह काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया । राजा
 भगदत्त की चलाई हुई शक्ति को भी उन्होंने काट
 गिराया । उनमें और जो अन्य मयानक बाण आ
 रहे थे, उन्हें अपने शीघ्रगामी बाणों से काटकर
 उन्होंने व्यर्थ कर दिया । यह सब अद्भुत कर्म करने
 प्रत्येक महारथी को उन्होंने तीन-तीन बाण मारे
 ॥४१॥४४॥ उपर महारथी अर्जुन भीमसेन को अकेले
 कई महारथियों से युद्ध करते और उनके प्रहारों को
 व्यर्थ करके उन्हें पीड़ित करते देखकर शीघ्रता के

साथ अपना रथ उनके पास ले आये । उन दोनों
 महारथियों को एकत्र होते देखकर दुर्योधन आदि को
 जय प्राप्त करने की आशा छोड़ देनी पड़ी । भीष्म
 की मारने और भीमसेन की सहायता पहुँचाने के
 लिए महारथी अर्जुन उन दोनों महारथियों को, जिनसे
 भीमसेन युद्ध कर रहे थे, विभिन्न बाणों से पीड़ित
 करने लगे । इसके पश्चात् वे शिखण्डी को आगे करके
 भीष्म के पास जाने को प्रस्तुत हुए ॥४५॥४९॥ तब
 राजा दुर्योधन ने अर्जुन और भीमसेन को मार डालने

रथैरनेकसाहसैः समन्तात्पर्यवारयत्

ततः प्रवृत्ते युद्धमर्जुनस्य परैः सह

॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

के लिए राजा सुशर्मा से कहा—हे विजयराज ! तुम शीघ्र ही अपनी सारी सेना साथ लेकर अर्जुन और भीमसेन के पास पहुँचो और उन्हें मार डालने की चेष्टा करो । राजा दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार

विजयराज सुशर्मा सहस्रो रथों की सेना साथ लेकर आगे बढ़े । उन्होंने भीमसेन और अर्जुन की चारों ओर से घेर लिया । अब कौरवों के साथ अर्जुन का घोर सन्ग्राम होने लगा ॥५०॥५३॥

भीष्मपर्व का एक सौ तेरह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११३ ॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम्

छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः

सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत

प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम्

चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च

दुर्मर्षणं च राजेन्द्र ह्यावन्त्यौ च महारथौ

एकैकं त्रिभिरानर्च्छत्कङ्कर्वहिणवाजितैः

शरैरतिरथो युद्धे पीडयन्वाहिनीं तव

जयद्रथो रणे पार्थं विध्वा भारत सायकैः

भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः

शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः

विव्यधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः

चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशाम्पते

पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः

आजघ्मरजुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष

तौ तत्र रथिनांश्रेष्ठौ कौन्तेयो भरतर्षभो

एक सौ चौदह अध्याय ॥ ११४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अनिरुपी अर्जुन आपके पक्ष की सेना को पीछा पहुँचाने हुए शल्य के पास पहुँचे । उन्होंने अग्रज सुवर्णपुत्र तीक्ष्ण बाणों से अपना मार्ग रोक्ने की चेष्टा करने-वाले शल्य का रथ टुक दिया । इसके अनन्तर सुशर्मा,

कृपाचार्य, भगदत्त, जयद्रथ, चित्रमेन, विजय, कृतार्मा, दुर्मर्षण, सिन्द और अनुविन्द आदि महार्थियों में से प्रत्येक को तीन-तीन कद्दूकरयुक्त बाण मारे ॥१॥४॥ जयद्रथ चित्रमेन के रथ पर चढ़ गये । कर्णों से उन्होंने अर्जुन और भीमसेन को घेरून बाण मारे ।

अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद्वलम्	।
सुशर्माऽपि रणे पार्थ शरैर्नवभिराशुगैः	॥ ९ ॥
ननाद वलवन्नादं त्रासयानो महद्वलम्	।
अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधञ्जयौ	॥ १० ॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्त्वमपुङ्खैरजिह्वागैः	।
तेषां च रथिनां मध्ये कौन्तेयौ भरतर्षभौ	॥ ११ ॥
क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यदृश्यताम्	।
आमिषेप्सू गवां मध्ये सिंहाविव मदोत्कटौ	॥ १२ ॥
छित्वा धनूपि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे	।
पातयामासतुर्वारौ शिरांसि शतशो नृणाम्	॥ १३ ॥
रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः	।
गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुव्यां महाहवे	॥ १४ ॥
रथिनः सादिनश्चापि तत्र तत्र निपूदिताः	।
दृश्यन्ते बहवो राजन्वेपमानाः समन्ततः	॥ १५ ॥
हतैर्गजपदात्योर्घैर्वाजिभिश्च निपूदितैः	।
रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी	॥ १६ ॥
छत्रैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः	।
अंकुशैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत	॥ १७ ॥
केयूरैरङ्गदैर्हारैराङ्गवैर्मृदितैस्तथा	।
उष्णीपैर्ऋष्टिभिश्चैव चामरव्यजनैरपि	॥ १८ ॥
तत्रतत्राऽपविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः	।
ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी	॥ १९ ॥

शल्य और महारथी कृपाचार्य ने बहुत से मर्ममेदी बाण मारकर अर्जुन को पीड़ित किया। हे भारत! चित्रसेन आदि आपके पुत्रों में से प्रत्येक ने भीमसेन और अर्जुन को पाँच-पाँच तीक्ष्ण बाण मारे ॥५।८॥
उपर महारथी अर्जुन और भीमसेन त्रिगर्देश की भारी सेना को विरुद्ध बाणों से पीड़ित और उन्मथित करने लगे। त्रिगर्ताज सुशर्मा अर्जुन को नय बाण मारकर, शत्रुसेना को घास पट्टेचाकर, ऊँचे स्तर से सिंहनाद करने लगे। रथों पर स्थित अन्य योद्धा भी

बाण बरमाकर भीमसेन और अर्जुन को घायल करने लगे। श्रेष्ठ रथी और उदार-प्रकृति भीमसेन और अर्जुन, गायों के झुण्ड में मासलोलुप दो सिंहों की तरह, कौरव पक्ष की रथसेना के मध्य उसका सहार करते हुए विचित्र रूप से विचरने लगे ॥८।१२॥ वे युद्ध-भूमि के मध्य सैन्धवों शत्रु के बाण सहित धनुष काटकर उनके मित्रों को धक्के से अलग करने लगे। उस युद्ध में मैदानों घोड़े मरे और घायल हुए; राहसों हाथी और उनको सगर मर-मारकर पृथ्वी पर गिर

तत्राऽद्भुतमपद्याम रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
 शरैः संवार्य तान्वीरान्यजघान महाबलः ॥ २० ॥
 पुत्रस्तु तव तं दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम् ।
 गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः ॥ २१ ॥
 कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
 विन्दानुविन्दावावन्स्यौ नाऽजहुः संयुगं तदा ॥ २२ ॥
 ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः ।
 कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे ॥ २३ ॥
 ततो बर्हिणवाजानामयुतान्यर्बुदानि च ।
 धनञ्जयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः ॥ २४ ॥
 ततस्ताड्यशरजालेन सन्निवार्य महारथान् ।
 पार्थः समन्तात्समरे प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २५ ॥
 शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः ।
 आजघानोरसि क्रुद्धो भ्रष्टैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥
 तस्य पार्थो धनुच्छित्त्वा हस्तावापं च पञ्चभिः ।
 अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि ॥ २७ ॥
 अथाऽन्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम् ।
 मद्भ्रश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोपितः ॥ २८ ॥
 त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः ।
 भीमसेनं च नवभिर्बाह्योरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २९ ॥

पदों। बहुत से रथ भी टूट गये। शरको रथों और
 धुन्धलर मोरे गये। सारसों शर भी भय के मोरे
 कर्पित हुए देण पदों ॥ १३१२५॥ रण में मोरे गये
 हाथियों, घोड़ों, पैदलों और टूट हुए रथों में मारी
 युद्ध-भूमि पूर्ण हो उठी ॥ १६१२७॥ दे भारत ! इस
 युद्ध में मैंने अर्जुन का एक अर्जुन पराक्रम देखा। वे
 अपने बाणों में उन अमर्य धीरों को अनायास हल
 और आहत कर रहे थे। बटे हुए सार, घोड़ा, अजुश,
 परिभ्रम, कपूर, अजुश, हाथ, कपूर, पगड़ी, अटि,
 पामा-मयत्रन, राजाओं के बटे हुए चन्द्रनवर्षित
 हाथ और जहा। आदि अज्ञ मरने बिना हुए देण
 पदों थे। हे महाबाह ! उनके पुत्र मारा दुर्लभ

भीमसेन और अर्जुन का देण। अर्जुन बट और परा-
 क्रम देणकर भीष्म विनामह के पाम गये। शृणाचार्य,
 शृणामी, जयद्रथ, सिन्द और अनुविन्द उन मगप भी
 युद्ध में सिम्व न होकर दोनों पण्डितों का मानना
 करने रहे ॥ २०१२२॥ महाभनुदेर अर्जुन और महा-
 बर्हि भीमसेन उर्मी प्रकार कौरवसेना को पीड़ित
 करने लगे। वीरव पक्ष के वीरगण भी मर्दों के
 साथ महागणी अर्जुन के रथ के ऊपर महागणों-मगो-
 वगैरों समुद्र-मोहित न होन बाण धामने लगे।
 महावीर अर्जुन अपने बाणों में उन रथों को विना
 बनेक मगलही मगलें वे। मगु के मुग में पदोंने
 लगे ॥ २११२५॥ इन्हें में महागणी मगन में मुर्दों

ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः ।
 दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः ॥ ३० ॥
 यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः ।
 कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ ॥ ३१ ॥
 जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युधि ।
 विव्याध निशितैर्वाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥ ३२ ॥
 तं भीमो दशभिर्विध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
 सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३३ ॥
 उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः ।
 मागधोऽपस्तृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥
 द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः ।
 विव्याध वाणैर्निशितैः पञ्चपट्टिभिरायसैः ॥ ३५ ॥
 तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे ।
 विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा पट्वा च भारत ॥ ३६ ॥
 अर्जुनस्तु सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः ।
 व्यधमत्तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथाऽनिलः ॥ ३७ ॥
 ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः ।
 समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ३८ ॥
 तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्यतः ।
 अभ्यद्रवज्रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ॥ ३९ ॥

होकर अर्जुन की छाता में कई भल्ल बाण मारे। अर्जुन ने उन बाणों से तनिका भी व्यथित न होकर पाँच बाणों से शल्य का धनुष और हस्ताशप काट डाला। फिर बहुत से बाण उनके मर्मस्थल में मारे। तब शल्य क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने और एक दृढ़ धनुष लेकर तीन बाण अर्जुन को, पाँच बाण वासुदेव को और नव बाण भीमसेन की दोनों सुजाओं और छाती में मारे ॥३६॥३९॥ हे भारत ! इसी समय मगधराज जयसेन और द्रोणाचार्य, दुर्योधन की आज्ञा से, उसी स्थान पर आये जहाँ भीमसेन और अर्जुन कौरवों की बहुत बड़ी सेना को मार रहे थे। महारथी मगधराज ने भीमायुधधारी भीमसेन को आठ बाण मारे। परा-

कर्मी भीमसेन ने भी पहले दस और फिर पाँच बाण जयसेन की मारे। इसके पश्चात् एक भल्ल बाण मारकर उनके सारथी को रथ से नीचे गिरा दिया। सारथी के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर मगधराज के धोड़े इधर-उधर दौड़ते हुए सब सेना के सम्मुख ही उनका रथ बुद्धस्थल से ले भागे ॥३०॥३४॥ इसी अयसर में महावीर द्रोणाचार्य ने सम्मुख आकर पैसठ बाणों से भीमसेन को घायत किया। महापराक्रमी भीमसेन ने भी पैसठ तीक्ष्ण भल्ल बाण द्रोणाचार्य को मारे। प्रबल आँधी जैसे मेघों को टिन्न-भिन्न कर देती है धीमे ही अर्जुन भी बाणों से सेना सहित सुशर्मा को क्षत-विक्षत करने लगे ॥३५॥३७॥ महारथी भीष्म पितामह, राजा

कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान्प्रत्यवारयन् ।
 आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याऽऽहवशोभिनः ॥ २ ॥
 सञ्जय उवाच — कुरवः पाण्डवैः सार्धं यदयुध्यन्त भारत ।
 यथा च तदभूद्युद्धं तत्तु वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ३ ॥
 गमिताः परलोकाय परमास्त्रैः किरीटिना ।
 अहन्यहनि संक्रुद्धास्तावकानां महारथाः ॥ ४ ॥
 यथाप्रतिज्ञं कौरव्यः स चापि समितिञ्जयः ।
 पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ५ ॥
 कुरुभिः सहितं भीष्मं युध्यमानं परन्तप ।
 अर्जुनं च सपाञ्चाल्यं संशयो विजयेऽभवत् ॥ ६ ॥
 दशमेऽहनि तस्मिंस्तु भीष्मार्जुनसमागमे ।
 अवर्तत महारौद्रः सततं समितिक्षयः ॥ ७ ॥
 तस्मिन्नयुतशो राजन्भूयशश्च परन्तपः ।
 भीष्मः शान्तनवो योधाञ्जघान परमास्त्रवित् ॥ ८ ॥
 येषामज्ञातकल्पानि नामगोत्राणि पार्थिव ।
 ते हतास्तत्र भीष्मेण शूराः सर्वेऽनिवर्तिनः ॥ ९ ॥
 दशाहानि ततस्तप्त्वा भीष्मः पाण्डववाहिनीम् ।
 निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन परन्तप ॥ १० ॥
 स क्षिप्रं वधमन्विच्छन्नात्मनोऽभिमुखो रणे ।
 न हन्यां मानवश्रेष्ठान्संग्रामे सुवह्मनिति ॥ ११ ॥

एक सौ पन्द्रह अध्याय ॥ ११५ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महावीर्य-
 शाली शान्तनु-नन्दन पितामह भीष्म ने दसों दिन
 पाण्डवों और सञ्जयों से किस प्रकार से युद्ध किया ।
 कौरवों ने किस प्रकार से पाण्डवों के अक्रमण को
 रोका । यह सब घृत्तान्त आप मुझसे कहें ॥ ११२ ॥
 सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! मैं आपके आगे कौरवों
 और पाण्डवों के दारुण युद्ध का घृत्तान्त कहता हूँ,
 आप मन लगाकर सुनिए । महारथी अर्जुन के दिव्य
 अर-शस्त्रों के प्रहार से जैसे आपके पक्ष के वीर नित्य
 मरते थे वैसे ही पाण्डवों की महासेना को भीष्म भी
 अपनी पृथक् प्रतिज्ञा के अनुसार, नित्य मारते थे

॥ ३१५ ॥ कौरवों सहित भीष्म को एक ओर, और
 पाण्डवों सहित अर्जुन को दूसरी ओर, युद्ध करते
 देवकर लोग यह सन्देह करने लगे कि किस पक्ष
 की जय होगी । मग यही समझने लगे कि आज प्रलय
 हो जायगा । दसों दिन अर्जुन और भीष्म के भयङ्कर
 युद्ध में घोर हत्याकाण्ड होते देख पड़ा । हे राजेन्द्र !
 उस भयानक संग्राम में महारथी, श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञाता,
 भीष्म पितामह नित्य दस हजार योद्धाओं को मारते
 थे । जिनके नाम और गोत्र भी नहीं मान्य थे, ऐसे
 अन्याय देशों के शूर और युद्ध में पीट न दिग्गजे-
 वाले योद्धा भीष्म के हाथों मारे गये ॥ ६९ ॥ १५

चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव ।
 अभ्याशस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥
 युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
 शृणुष्व वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः ॥ १३ ॥
 निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनाऽनेन भारत ।
 घ्नतश्च मे गतः कालः सुवहून्प्राणिनो रणे ॥ १४ ॥
 तस्मात्पार्थ पुरोधाय पञ्चालान्सृज्यांस्तथा ।
 सद्गुणे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १५ ॥
 तस्य तन्मतमाज्ञाय पाण्डवः सत्यदर्शनः ।
 भीष्मं प्रति ययौ राजा संप्रामे सह सृज्यैः ॥ १६ ॥
 धृष्टद्युम्नस्ततो राजन्पाण्डवश्च युधिष्ठिरः ।
 श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्वलम् ॥ १७ ॥
 अभिद्रवध्वं युद्धयध्वं भीष्मं जयत संयुगे ।
 रक्षिताः सत्यसन्धेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना ॥ १८ ॥
 अयं चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः ।
 भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥ १९ ॥
 मा वो भीष्मान्नयं किञ्चिदस्त्वद्य युधि सृज्याः ।
 ध्रुवं भीमं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २० ॥
 ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
 ब्रह्मलोकपरा भूत्वा सञ्जग्मुः क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥

पञ्चाद दस दिन तक पाण्डव-सेना का सहार करने से अन्त को धर्मात्मा भीष्म अपने जीवन से ऊब गये। उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैंने बहुत लोगों की हत्या की है। अब मुझे मर ही जाना पड़ेगा। अतएव अपनी मृत्यु की इच्छा करके, और "अब मनुष्य-हत्या नहीं करूँगा" ऐसा विचार करके भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है पाण्डव ! तुम मर शास्त्रों के जाननेवाले हो, इसलिए मैं जो धर्मदर्शक और स्वर्गदायक वचन कहता हूँ, उन्हें सुनो ॥ १० ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! मैंने बहुत से प्राणियों को रण में मारा है। मेरे बहुत बड़े जीवन या अधिक अन्न इसी घर के करने में व्यय हो चुका है। इस

समय जीवन से मेरा जी ऊब गया है। मैं अब जीवन रहना नहीं चाहता। इसलिए जो तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो वो मेरा प्राणों और सृष्टियों महित अर्जुन को आगे करके मुझे मारने का यत्न करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ प्रियदर्शन पाण्डवधृष्ट युधिष्ठिर ने देवर्षि भीष्म की यह इच्छा जानकर उसी समय सृष्टियों के साथ उन पर आक्रमण किया। धृष्टपुत्र और युधिष्ठिर यह कह कर अपनी मर मेना को आक्रमण के लिए उत्साहित करने लगे कि "हे सैनिक योरो ! द्रोण, आक्रमण करो, युद्ध करो और भीष्म को जीत लो। शत्रुदमन सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन और महाबाहु भीमसेन तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे सृष्टयन्त्र ! संप्राम मे

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
 भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥ २२ ॥
 ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
 द्रोणेन सह पुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥ २३ ॥
 दुःशासनश्च बलवान्सह सर्वैः सहोदरैः ।
 भीष्मं समरमध्यस्थं पालयाञ्चक्रिरे तदा ॥ २४ ॥
 ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् ।
 शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५ ॥
 चेदिभिस्तु सपञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ।
 ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २६ ॥
 द्रोणपुत्रं शिनेर्नेसा धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।
 अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥ २७ ॥
 विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् ।
 वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद् परन्तप ॥ २८ ॥
 मद्राजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः ।
 भीमसेनोऽभिमुखस्तु नागानीकमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥
 अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
 द्रौणिं प्रतिययौ यत्तः पाञ्चाल्यः सह सोदरैः ॥ ३० ॥
 कर्णिकारध्वजं चैव सिंहकेतुररिन्दमः ।
 प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्वलः ॥ ३१ ॥

भीष्म से तुम्हें विदित्मात्र भी भय नहीं है । हम
 लोग शिखण्डी को आगे करके आज भीष्म को अक्षय
 मार लेंगे ।" हे महाराज ! दसवें दिन इस प्रकार
 प्रतिज्ञा करके, महालोक अथवा विजय की प्राप्ति के
 लिए यत्न करते हुए पाण्डवगण, कुपित शिखण्डी और
 अर्जुन को आगे करके भीष्म की ओर बढ़े ॥२०१२२॥
 हे गजेन्द्र ! तब आपकी ओर दुर्योधन की आज्ञा से
 अनेक देशों के महाबली राजा लोग, द्रोणाचार्य, अश्व-
 तथामा, सब भाइयों के साथ बटवान् दुःशामन और
 कौरव पक्ष की सेना, सब लोग मिटकर समरभूमि
 के मध्य भीष्म की रक्षा करने लगे । आपके पक्ष के
 शूर योद्धा लोग महान्न भीष्म के अनुगामी होकर

शिखण्डी को आगे करके आते हुए पाण्डवों से घोर
 युद्ध करने लगे ॥२३॥२५॥ उधर चेदि और पाञ्चाल-
 देश के श्रेष्ठ वीरों को साथ लेकर कपिपञ्च महाशय
 अर्जुन, शिखण्डी को आगे रखकर, भीष्म से युद्ध करने
 लगे । साथकिक अश्वत्थामा से, धृष्टकेतु पौरव से, युधामन्यु
 अनुरोध सहित दुर्योधन से, सेना सहित राजा विराट
 सेना सहित महाबली जयद्रथ से, महाराज युधिष्ठिर
 सेना सहित महाबली जयद्रथ से, महाराज युधिष्ठिर
 सेना सहित महाबली जयद्रथ से, सुरक्षित भीमसेन
 गजरोही सेना से और भाइयों सहित सेनापति धृष्टद्युम्न
 अश्वत्थ, अनिरुध, सब दक्षधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य
 से युद्ध करने लगे ॥२६॥३०॥ कर्णिकारिन्दमपुत्र
 राजाशलेय पर स्थित वीर अभिमन्यु से युद्ध करने

शिखाण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
 राजभिः समरे पार्थमभिपेतुर्जिघांसवः ॥ ३२ ॥
 तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे
 सम्प्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पन ॥ ३३ ॥
 तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत
 तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे ॥ ३४ ॥
 ततस्तेषां प्रतप्तानामन्योन्यमभिधावताम्
 प्रादुरासीन्महाशब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३५ ॥
 शङ्खदुन्दुभिघोषश्च वारणानां च वृंहितैः
 सिंहनादश्च सैन्यानां दारुणः समपद्यत ॥ ३६ ॥
 सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा
 वीराङ्गदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥ ३७ ॥
 रजोमेघास्तु सञ्जुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः
 धनुषां चापि निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥ ३८ ॥
 बाणशङ्खप्रणादाश्च भेरिणां च महास्वनाः
 रथघोषश्च सञ्जज्ञे सेनयोरुभयोरपि ॥ ३९ ॥
 पाशशक्यवृष्टिसङ्घैश्च बाणौघैश्च समाकुलम्
 निष्प्रकाशमिवाऽऽकाशं सेनयोः समपद्यत ॥ ४० ॥
 अन्योन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे
 कुञ्जराङ्कुजरा जघ्नुः पादातांश्च पदातयः ॥ ४१ ॥

के लिए सिंहकेतुवाले रथ पर स्थित राजकुमार गृहद्वल
 आगे बढ़े । आपके अन्य पुत्र और अन्य राजा लोग
 शिखण्डी और अर्जुन को मार डालने की इच्छा से
 उन पर आक्रमण करने चले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इस प्रकार
 दोनों ओर की भारी सेनाएँ अपना पराक्रम दिखाती
 हुई इधर से उधर परस्पर आक्रमण करने के लिए
 दौड़ी । उस समय उनके वेग से धूम की कानपें लगी ।
 संग्राम में भीम को युद्ध करने देखकर आपकी और
 पाण्डवों की सेना दोनों, प्राणों का मोह छोड़कर,
 घोर युद्ध करने लगी । प्रहार के लिए चेष्टा करते
 हुए और परस्पर आक्रमण के लिए दौड़ते हुए वीरों
 का घोर कोलाहल दसों दिशाओं में व्याप्त हो गया ।

शङ्ख-नगाड़े आदि का शब्द, हाथियों का शब्द और
 सब सैनिकों का दारुण सिंहनाद चारों ओर सुन
 पड़ने लगा ॥ ३३ ॥ ३६ ॥ वीरों के उत्कृष्ट हार, अङ्गद
 और किरीट आदि की प्रभा के आगे सब राजाओं
 की चन्द्र-सूर्य के समान प्रभा कीकी पड़ गई । उड़ी
 हुई धूल मेघ की घटा सी छा गई । उसके मध्य शस्त्रों
 की चमक बिजली सी जान पड़ती थी । दोनों दलों के
 योद्धा जो धनुष चढ़ाते थे उसका शब्द, बाणों का शब्द
 नगाड़े आदि का शब्द और चलते हुए रथों की
 घरघराहट का शब्द मेघगर्जन सा प्रतीत होता था ।
 ॥ ३७ ॥ ३९ ॥ पाश, शक्ति, ऋष्टि और बाण आदि असंख्य
 शस्त्रों से परिपूर्ण आकाशमण्डल प्रकाश-हीन सा हो

तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।

भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥ ४२ ॥

तेषां समागमो घोरो बभूव युधि सङ्गतः ।

अन्योन्यस्य वधार्थाय जिगीषूणां महाहवे ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मोपदेशे पञ्चादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

गया । रथी लोग रथी वीरों को और घुड़सवार योद्धा
घुड़सवार योद्धाओं को मार-मारकर गिराने लगे ।
हाथियों को हाथी और पैदलों को पैदल मारने लगे ।
हे महाराज ! जैसे मांस के लिए दो श्येन (बाज)

युद्ध करते हैं वैसे ही भीष्म के जीवन के लिए कौरव
और पाण्डव तुमुल युद्ध करने लगे । वे एक दूसरे
को मारने और जीतने के लिए घोर युद्ध कर रहे
थे ॥४०॥४३॥

भीष्मपर्व का एक सौ पन्द्रह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११५ ॥

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सञ्जय उवाच—अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् ।

महत्या सेनया युक्तं भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ १ ॥

दुर्योधनो रणे कार्णि नवभिर्नतपर्वभिः ।

आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २ ॥

तस्य शक्तिं रणे कार्णिमृत्योर्घोरां स्वसामिव ।

प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति ॥ ३ ॥

तामापतन्ती सहसा घोररूपां विशाम्रते ।

द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥ ४ ॥

तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्णिः परमकोपनः ।

दुर्योधनं त्रिभिर्वाणैर्वाहोरसि चाऽर्पयत् ॥ ५ ॥

पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे ।

दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः ॥ ६ ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं चित्ररूपं च भारत ।

इन्द्रियप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥ ७ ॥

एक सौ सोलह अध्याय ॥ ११६ ॥

सञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र ! महाराजभी
अभिमन्यु भीष्म को मारने के लिए असंख्य सेना-परिवृत
राजा दुर्योधन से युद्ध करने लगे । राजा दुर्योधन ने
अति तीक्ष्ण नव बाण अभिमन्यु को मारे । फिर क्रुपित
होकर तीन बाण और भी उनकी छाती में मारे ।

॥१२॥ तब आभिमन्यु ने क्रोध करके मृत्यु की निशा
के समान भयङ्कर स्नेहमयी शक्ति दुर्योधन के रथ पर
फेंकी । हे राजेन्द्र ! आपके पुत्र दुर्योधन ने उस भया-
नक शक्ति को आगे देगकर तीक्ष्ण छुरा बाण से
उमके दो दृढ़ कर डाले ॥३॥५॥ हे भारत ! महा-

भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च ।
 युयुधाते रणे वीरौ सोभद्रकुरुपुङ्गवौ ॥ ८ ॥
 सात्यकिं रभसं युद्धे द्रोणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः ।
 आजघानोऽसि क्रुद्धो नाराचनेन परन्तपः ॥ ९ ॥
 शैनयोऽपि गुणैः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत ।
 अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कवाजितैः ॥ १० ॥
 अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः ।
 त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाहोरुसिं चाऽपर्यत् ॥ ११ ॥
 सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः ।
 द्रोणपुत्रं त्रिभिर्वर्णिराजघान महायशः ॥ १२ ॥
 पौरवो धृष्टकेतुं च शैरराच्छाय संयुगे ।
 बहुधा दारयाश्चक्रे महेष्वासं महारथः ॥ १३ ॥
 तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः ।
 त्रिंशता निशित्वीर्णैर्विव्याधाऽऽशु महाभुजः ॥ १४ ॥
 पौरवस्तु धनुश्छित्वा धृष्टकेतोर्महारथः ।
 ननाद बलवद्वादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ १५ ॥
 सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः ।
 आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ १६ ॥
 तौ तु तत्र महेष्वासो महामात्रो महारथौ ।
 महता शरवर्षेण परस्परमविध्यताम् ॥ १७ ॥
 अन्योन्यम्य धनुश्छित्वा ह्यान्हत्वा च भारत ।
 विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ॥ १८ ॥

वीर अभिमन्यु ने दुर्योधन की छाती और भुजाओं में
 पहले तीन और फिर दस बाण मारे । उन दोनों वीरों
 का यह घोर और विघ्न युद्ध देखकर सब दर्शक बहुत
 प्रसन्न हुए और राजा लोग उनकी प्रशंसा करने लगे ।
 भीष्म को मारने और अर्जुन की विजय के लिए वीर
 अभिमन्यु दुर्योधन से घोर युद्ध करने लगे ॥१५८॥
 उधर शत्रुनाशन ब्राह्मणश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने क्रुपित होकर
 सात्यकि की छाती में एक नाराच बाण मारा । सात्यकि
 ने भी गुरुपुत्र अश्वत्थामा के मर्मस्थलों में कङ्कपर-

भूषित नव बाण मारे । उन्होंने भी सात्यकि के दोनों
 हाथों और छाती में पहले नव और फिर तीस बाण मारे ।
 महायशस्वी सात्यकि ने अश्वत्थामा के बाणों से बहुत
 घायल और व्यथित होकर उनको फिर तीन बाण
 मारे ॥१५१२॥ पौरव ने धृष्टकेतु के ऊपर असंख्य
 बाण वर्षाये, तब धृष्टकेतु ने तीस बाणों से पौरव को
 घायल किया । महारथी पौरव ने धृष्टकेतु का धनुष
 काट डाला और अनेक तीक्ष्ण बाणों से शत्रु को
 पीड़ित करके घोर सिंहनाद किया ॥१६१५॥

आर्यभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपुरस्कृते ।
 तारकाशतचित्रे च निखिंशौ सुमहाप्रभौ ॥ १९ ॥
 प्रगृह्य विमलौ राजस्तावन्योन्यमभिदुतौ ।
 वासितासङ्गमे यत्तौ सिंहाविम महावने ॥ २० ॥
 मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ।
 चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् ॥ २१ ॥
 पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना ।
 ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २२ ॥
 चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम् ।
 आजघान शिताग्रेण जम्बुदेशे महासिना ॥ २३ ॥
 तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे ।
 अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिन्दमौ ॥ २४ ॥
 ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव ।
 जयत्सेनो रथेनाऽऽजावपोवाह रणाजिरात् ॥ २५ ॥
 धृष्टकेतुं तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
 अपोवाह रणे क्रुद्धः सहदेवः पराक्रमी ॥ २६ ॥
 चित्रसेनः सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः ।
 पुनर्विव्याध तं पृथ्वा पुनश्च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
 सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं विशाम्पते ।
 दशभिर्दशभिश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥ २८ ॥

धृष्टकेतु ने शीघ्रता से दूसरा धनुष लेकर पौरव को
 निहत्तर तीक्ष्ण बाण मारे । इसी प्रज्वर वे दोनों महा-
 वर्ग महारथी एक-दूसरे पर अमर्त्य बाण बरसाने हुए
 घोर युद्ध करने लगे । दोनों ने दोनों के धनुष काट
 डाले और रथ तथा घोड़े भी नष्ट कर दिये ॥ १६ ॥ १८ ॥
 इसके पश्चात् स्थलनि दोनों योद्धा गद्गद-युद्ध करने
 का लिए प्रसन्न हुए । जैसे महाजन में एक मिहनी
 का निष् दो सिद्ध परस्पर द्रष्टे, वेमे ही वे दोनों भी
 शतचन्द्रयुक्त दृढ़ दाँते और शतनालकाचित्रित उज्ज्वल
 गहने लेशर एक दूसरे पर झपटे । वे आगे बढ़कर,
 पीछे हटकर, अनेक प्रकार के पैरों दिगति हुए पादर
 अभिन और युद्ध करने लगे ॥ १९ ॥ २१ ॥ अथन्त

कुपित पौरव ने "ठहर-ठहर" कहकर धृष्टकेतु के
 सिर पर खड्ग का प्रहार किया । चेदिराज धृष्टकेतु
 ने भी बढ़कर पुरग्रथ पौरव के कर्ण पर तीक्ष्ण
 गद्गद मारी । हे महाराज ! वे दोनों भी इस प्रकार
 नेम ने परस्पर प्रहार करके अचेत होकर पृथ्वी पर
 गिर पड़े । तब आपके पुत्र जयन्त पौरव को,
 अपने रथ पर विठाकर, समर-भूमि से हटा ले गये ।
 क्रुद्ध प्रतापी सहदेव धृष्टकेतु को लेकर समर से हट
 गया ॥ २२ ॥ २६ ॥ हे राजन् ! आपके पुत्र चित्रसेन ने
 पाण्डव के सुशर्मा नामक राजा को नोचमय बाणों
 से घायल कर दिया । इसके अनन्तर माद्री बाण,
 फिर नव बाण और मारे । सुशर्मा ने भी क्रुद्ध होकर

चित्रसेनश्च तं राज्ञिग्रता नतपर्वभिः ।
 आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ॥ २९ ॥
 भीष्मस्य समरे राजन्यशो मानं च वर्धयन् ।
 सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्वलमयोधयत् ॥ ३० ॥
 पार्थहेतोः पराक्रान्तो भीष्मस्याऽऽयोधनं प्रति ।
 आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विध्वा पञ्चभिरायसैः ॥ ३१ ॥
 पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 सौभद्रः कोसलेन्द्रं तु विव्याधाऽष्टभिरायसैः ॥ ३२ ॥
 नाऽकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः ।
 कोसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ ३३ ॥
 आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपात्रिभिः ।
 सोऽन्यत्कर्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्वलः ॥ ३४ ॥
 फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः ।
 तयोर्युद्धं समभवन्भीष्महेतोः परन्तप ॥ ३५ ॥
 संरन्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनाः ।
 यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत् ॥ ३६ ॥
 भीमसेनो गजानीकं योधयन्बृहद्वलशोभत ।
 यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन्पर्वतोत्तमान् ॥ ३७ ॥
 ते बध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसन्निभाः ।
 निपेतुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥

चित्रसेन को दश गाण मारे । फिर तीस गाण और मार । हे महाराज । उस भीष्म सम्बन्धी समर में अपने यश और बल के मान को बढ़ाते हुए कुमार अभिमन्यु राजा बृहद्वल से घोर युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ ३० ॥ अर्जुन जिसमें अनायास भीष्म को मार सके, इसलिए पराक्रमी अभिमन्यु भी उनका सहायता कर रहे थे । कोशलेश गीर बृहद्वल ने अभिमन्यु को पहले लोहमय पाँच गाण मारे, उसके अनन्तर फिर बीस तीक्ष्ण बाण मारे । अभिमन्यु ने उस प्रहार से तनिक भी विचलित न होकर बृहद्वल को आठ लोहमय बाण मारे । उसके अनन्तर शत्रु का धनुष काटकर बद्ध परयुक्त तीस त्रिशूला बाण और मारे ॥ ३० ॥ ३४ ॥ राज

पुत्र बृहद्वल भी दूसरा धनुष लेकर अभिमन्यु को अनेक प्रकार के बाणा से पीड़ित करने लगे । जैसे दनाष्टर युद्ध में त्रिंश और इन्द्र युद्ध करते थे वैसे ही दोनों गीर क्षत्रिय कुपित होकर, भीष्म के वध और रक्षा के लिए, परस्पर घोर और विचित्र युद्ध कर रहे थे । हे महाराज । उधर भीमसेन हाथियों के दल में प्रवेश होकर उनका सहारा करने लगे । जैसे वज्र पाणि इन्द्र परियों को तोड़ रहे हों वैसे ही गदा हाथ में लेकर हाथियों को मारते हुए भीमसेन शोभायमान हुए । उनसे प्रहार से परितुल्य हाथी घोर चीन्कार से पृथ्वी को कंपने हुए गिरे लगे । अञ्जन के समान काले रक्त के, पर्यन्त जैसे ऊँचे,

गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।	
विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः ॥ ३९ ॥	
युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्राजानमाहवे ।	
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास सङ्गतम् ॥ ४० ॥	
मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् ।	
पीडयामास संरन्धो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ४१ ॥	
विराटं सैन्धवो राजा विध्वा सन्नतपर्वभिः ।	
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्पयत् ॥ ४२ ॥	
विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीपतिः ।	
त्रिंशद्भिर्निशितैर्वाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ४३ ॥	
चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मयुधध्वजौ ।	
रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ॥ ४४ ॥	
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे ।	
महासमुदयं चक्रे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४५ ॥	
ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद्धनुः ।	
छित्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत ॥ ४६ ॥	
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा ।	
द्रोणस्य मिपतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥ ४७ ॥	
ताञ्छराञ्छरघातेन चिच्छेद स महारथः ।	
द्रोणो द्रुपदपुत्राय ग्राहिणोत्पञ्च सायकान् ॥ ४८ ॥	
ततः क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा ।	
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ॥ ४९ ॥	

गजराज पृथ्वी पर गिरकर इधर उधर बिखरे हुए पर्वतों के समान जान पड़ते थे ॥ ३९ ॥ महाप्रभुदेव राजा युधिष्ठिर, अपनी सेना के द्वारा सुशिक्षित होकर, समर के लिए उद्यत मद्राज शल्य को पीड़ित करने लगे । शल्य भी भीष्म की रक्षा के लिए पराक्रम दिखाकर महारथी युधिष्ठिर को पीड़ा पहुँचाने हुए युद्ध करने लगे । उधर सिन्धुराज जयद्रथ ने राजा विराट को पहले तीक्ष्ण नव बाणों से पीड़ित करके फिर ताँस तीक्ष्ण बाण उनकी छाती में मारे । राजा

विराट ने क्रुद्ध होकर जयद्रथ की छाती में तीस तीक्ष्ण बाण मारे । विचित्र धनुष, खट्वा, कवच, शस्त्र, ध्वजा आदि से सुशोभित दोनों वीर राजा इस प्रकार घोर संग्राम करने लगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ हे राजेन्द्र ! महात्मा द्रोणाचार्य राजकुमार धृष्टद्युम्न के सम्मुख जाकर घोर और अद्भुत युद्ध करने लगे । उन्होंने धृष्टद्युम्न का धनुष काटकर स्फूर्ति के साथ पचास बाण मारे । शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष लेकर द्रोणाचार्य के ऊपर अनेक बाण छोड़े । महारथी द्रोणाचार्य ने

तामापतन्तीं सहसा हेमपट्विभूषिताम् ।
 शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे ॥ ५० ॥
 सा छिन्ना बहुधा राजन्द्रोणचापच्युतैः शरैः ।
 चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ॥ ५१ ॥
 गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्यतः शत्रुतापनः ।
 द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारसर्वी शुभाम् ॥ ५२ ॥
 तां द्रोणो नवभिर्वाणैश्चिच्छेद युधि भारत ।
 पार्यतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥ ५३ ॥
 एवमेतन्महायुद्धं द्रोणपार्यतयोरभूत् ।
 भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भयानकम् ॥ ५४ ॥
 अर्जुनः प्राप्य गाह्वयं पीडयन्निति शरैः ।
 अभ्यद्रवत् संयत्तो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ५५ ॥
 प्रत्युद्ययो च तं राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
 त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः ॥ ५६ ॥
 तमापतन्तं सहसा महेन्द्रगजसन्निभम् ।
 परं यत्नं समास्थाय वीभत्सुः प्रत्यपद्यत ॥ ५७ ॥
 ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
 अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ५८ ॥
 अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमैः ।
 विमलेरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥ ५९ ॥

उन बाणों को अपने बाणों से निष्फल कर दिया। इसके पश्चात् अत्यन्त तीक्ष्ण पाँच बाण द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न को मारे ॥४५॥४८॥ तब उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर यमदण्डतुल्य भारी गदा द्रोणाचार्य के ऊपर फेंकी। द्रोणाचार्य ने सोने की पट्टियों से मढ़ी उस गदा को आते देखकर पचास बाणों से उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। द्रोण के बाणों से कटकर चूर्ण सी हो गई वह गदा धृष्टी पर गिर पड़ी ॥४९॥५१॥ शत्रु तापन धृष्टद्युम्न ने गदा का प्रहार व्यर्थ होते देखकर एका छेहे की बनी शक्ति द्रोणाचार्य के ऊपर फेंकी। द्रोण ने नव बाणों से वह शक्ति काटकर गिरा दी, और अनेक तीक्ष्ण बाणों से धृष्टद्युम्न को पीड़ित

किया। भीष्म के कारण द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न ने इस प्रकार महावीर युद्ध किया ॥५२॥५४॥ महावीर अर्जुन भीष्म को देखकर, जङ्गली हाथी जैसे दूसरे जङ्गली हाथी पर आक्रमण करने के लिए दौड़ता है वैसे ही, तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए उनकी ओर चले। महाप्रतापी राजा भगदत्त मदान्ध हाथी पर सवार थे ॥५५॥५७॥ अर्जुन को आते देखकर, उन्हें रोकने के लिए वे आगे बढ़े। भगदत्त को हाथी पर से बाण बरसाते देख महारथी अर्जुन यत्नपूर्वक उन पर बाण छोड़ने लगे। उस महारण में वीर अर्जुन चौड़ी के समान चमकीले छेहे के बाण उस गजराज को मारने लगे। अर्जुन बारम्बार शिखण्डी से कहने लगे—“भीष्म

शिखण्डिनं च कौन्तेयो याहि याहीत्यचोदयत् ।
 भीष्मं प्रति महाराज जह्नेनमिति चाऽब्रवीत् ॥ ६० ॥
 प्राग्न्योतिपस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज ।
 प्रययौ त्वरितो राजन्दुपदस्य रथं प्रति ॥ ६१ ॥
 ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यवदद् द्रुतम् ।
 शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत ॥ ६२ ॥
 ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं युधि ।
 समभ्यधावन्क्रोशन्तस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६३ ॥
 नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप ।
 अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाऽभ्राणि मारुतः ॥ ६४ ॥
 शिखण्डी तु समासाथ भरतानां पितामहम् ।
 इपुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत् ॥ ६५ ॥
 रथान्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ।
 शरसङ्घमहाज्वालः क्षत्रियान्समरेऽदहत् ॥ ६६ ॥
 यथाऽग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः ।
 तथा जज्वाल भीष्मोऽपि दिव्यान्यस्त्राप्युदीरयन् ॥ ६७ ॥
 सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान् ।
 न्यवारयत तत्सैन्यं पाण्डवस्य महारथः ॥ ६८ ॥
 सुवर्णपुद्गैरिपुभिः शितैः सन्नतपर्वभिः ।
 नादयन्स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे ॥ ६९ ॥

के पास जाओ, बहो, उन्हें मारो" ॥५८॥६०॥ तब
 राजा भगदत्त अर्जुन को छोड़कर शीघ्रता के साथ
 राजा द्रुपद के रथ के पास चले । इधर शिखण्डी
 की ओर करके अर्जुन स्फूर्ति के साथ भीष्म की ओर
 चले । उस समय घमासान युद्ध होने लगा । उधर
 से काँख पक्ष के वीर भी कुपित होकर चिल्लाते और
 सिंघनाद करते हुए वेग के साथ अर्जुन की ओर
 दौड़े । उस समय अर्जुन का अद्भुत पराक्रम देख
 पड़ा ॥६१॥६२॥ वायु जैसे आकाश में मेघों को
 टिन्न-भिन्न कर डालती है, वैसे ही वीर अर्जुन आपके
 पुत्रों की सेनाओं को नष्ट-भष्ट करने लगे । पितामह
 भीष्म को देवदत्त शिखण्डी स्फूर्ति के साथ अग्रप्रमाण

से उन पर बाण बरसाने लगे । रथरूप कुण्ड में प्रज्व-
 लित, धनुसरूप ज्वाला से शोभित, खड्ग, गदा, शक्ति
 आदि शस्त्ररूप ईश्वर से प्रज्वलित, बाणरूप चिनगा-
 रियों से परिपूर्ण भीष्म-रूप अग्नि युद्ध में उस समय
 क्षत्रिय वीरों को भस्म करने लगा ॥६४॥६५॥ अग्नि जैसे
 वायु की सहायता से बढ़कर वन को भस्म करती है
 वैसे ही भीष्म भी दिव्य अस्त्र छोड़ते हुए शत्रुसेना
 में प्रज्वलित हो उठे । अर्जुन के अनुगामी सब सौम्यों
 को नष्ट करके भीष्म ने सारी पाण्डवसेना को हरा
 दिया । उस महायुद्ध में महावीर भीष्म ने सब दिशाओं
 को अपने सिंहनाद और मरते हुए वीरों के आर्तनाद
 से प्रतियुक्त कर दिया । वे सुवर्णपुद्गयुक्त तीक्ष्ण

पातयन्निधिनो राजन्हयांश्च सह सादिभिः ।
 मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ॥ ७० ॥
 निर्मनुष्यान् रथान् राजन्गजान् श्वांश्च संयुगे ।
 चकार समरे भीष्मः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ७१ ॥
 तस्य ज्यातलनिघोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
 निशम्य सर्वतो राजन्समकम्पन्त सैनिकाः ॥ ७२ ॥
 असोधा न्यपतन्वाणाः पितुस्ते मनुजेश्वर ।
 नाऽसज्जन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः ॥ ७३ ॥
 निर्मनुष्यान् रथान् राजन्सुयुक्तांश्च वनेर्हयैः ।
 व्रातायमानानद्राक्षं ह्रियमाणान्विशाम्पते ॥ ७४ ॥
 चेदिकाशिकरूपाणां सहस्राणि चतुर्दश ।
 महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुयजः ॥ ७५ ॥
 अपरावर्तिनः शूराः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
 संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ॥ ७६ ॥
 जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
 न तत्राऽऽसीद्रेणे राजन्सोमकानां महारथः ॥ ७७ ॥
 यः सम्प्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे ।
 तांश्च सर्वान् रणे यो धाम्प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ७८ ॥
 नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
 न कश्चिदेनं समरे प्रत्युधाति महारथः ॥ ७९ ॥
 ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
 शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यमभितौजसम् ॥ ८० ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मपञ्चपर्वणि सकुलपुत्रे पोडशविकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

बाणों से रथियों, घुड़मवारों और घोड़ों को मार-
 मारकर गिराने लगे । उनके बाणों से महस्रो रथों के
 छुण्ड छुण्ड होन धड़ों से परिपूर्ण होकर छूटे हुए ताड़
 के घन से जान पड़ने लगे ॥ ६७० ॥ रथों, हाथियों
 और घोड़ों की पीठें मनुष्यों से रहित हो गई । विजली
 की वाइक से भी भयङ्कर उनके धनुष की प्रत्यक्षा का
 शब्द सन और सुनकर सैनिक लोग काँप उठे । भीष्म
 के धनुष से छूटे हुए बाण लक्ष्य से कभी नहीं चूकने

थे । वे अघोष बाण तीरों के शरीरों को फोड़कर उम
 पार निकल जाते थे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ मिने देखा कि रथी
 और सारथी में रहित रथों को वायुवेगवानी घोड़े श्वर-
 उधर लिये फिर रहे हैं । हे महाराज ! चेदि, काशी,
 कल्प आदि देशों के उच्च कुट्ट में उत्पन्न महारथी,
 मगध से कभी विमुख न होने वाले, शूर, सुवर्णमण्डित
 राजाओं से शोभित रथों पर स्थित चांदर महस्र
 क्षत्रिय अपनी चतुर्दिगी मेना महित भीष्म के हाथ

से मारे गये॥७५॥७७॥मुख फैलाये हुए महाकाक के समान भीष्म के सन्मुख जो आया उसी को लोगो ने समझ लिया कि अब यह बच नहीं सकता । सोमरु-वंश के सभी महारथी योद्धाओं को भीष्म ने मार

डाला । उस समय वीर अर्जुन और पराक्रमी शिखण्डी के अतिरिक्त और कोई भीष्म के सन्मुख जाने का साहस नहीं कर सका॥७७॥८०॥

— ० —

भीष्मपर्व का एक सौ सोलह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११६ ॥

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

सञ्जय उवाच—शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषपभम् ।
 दशभिर्निशितैर्भलैराजधान स्तनान्तरे ॥ १ ॥
 शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ।
 सम्प्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥ २ ॥
 स्त्रीत्वं तस्य स्मरन्राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः ।
 नाऽऽजघान रणे भीष्मः स च तन्नाऽवबुद्धवान् ॥ ३ ॥
 अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत ।
 अभिद्रवस्व त्वरितं जहि चैनं पितामहम् ॥ ४ ॥
 किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम् ।
 न ह्यन्यमनुपश्यामि कश्चिद्यौधिष्ठिरे वले ॥ ५ ॥
 यः शक्तः समरे भीष्मं प्रतियोक्तुमिहाऽऽहवे ।
 ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥
 एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
 शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहसवाकिरत् ॥ ७ ॥
 अचिन्तयित्वा तान्वाणान्पिता देवव्रतस्तव ।
 अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः ॥ ८ ॥
 तथैव च चमूं सर्वा पाण्डवानां महारथः ।
 अप्रैपीत्स शरैस्तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष ॥ ९ ॥

एक सौ सप्त अध्याय ॥ ११७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! भीष्म के पास पहुँचकर शिखण्डी ने उनकी छाती में दस तीक्ष्ण भद्र बाण मारे । भीष्म ने क्रोध से प्रज्वलित तीक्ष्ण निरी दृष्टि से देगा; ऐसा जान पड़ा मानों वे उन्हें भस्म कर देंगे । किन्तु शिखण्डी को जन्म की ही जानवर मनुष्य लोगो के मनुष्य भीष्म ने ऊपर प्रहार नहीं किया । परन्तु शिखण्डी ने यह भीष्म का भाव नहीं जाना॥१॥३॥महारथी भीष्म के पास गये हुए शिखण्डी ने अर्जुन ने कहा—“हे वीर शिखण्डी ! अब विचार और मशय की आवश्यकता नहीं । वगैरे भीष्म को मरने में क्षीप्रता करो । युधिष्ठिर को तेला में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई मुझे ऐसा नहीं देगा

तथैव पाण्डवा राजन्सैन्येन महता वृताः ।
 भीष्मं सञ्ज्वाद्यामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १० ॥
 स समन्तात्परिवृतो भारतो भरतर्षभ
 निर्ददाह रणे शूरान्वने वह्निरिव ज्वलन् ॥ ११ ॥
 तत्राऽद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
 अयोधयञ्च यत्पार्थ जुगोप च पितामहम् ॥ १२ ॥
 कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः ।
 दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः ॥ १३ ॥
 यदेकः समरे पार्थान्तार्जुनान्समयोधयत् ।
 न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुत्त्वणम् ॥ १४ ॥
 दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः ।
 सादिनश्च महेश्वासा हस्तिनश्च महाबलाः ॥ १५ ॥
 विनिर्मिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्वसुधातले ।
 शरातुरास्तथैवाऽन्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः ॥ १६ ॥
 यथाऽग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद्दीप्तार्चिरुत्त्वणम् ।
 तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डुसेनां विनिर्दहन् ॥ १७ ॥
 तं भारतमहामात्रं पाण्डवानां महारथः ।
 जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाऽभ्युद्यातुं कथञ्चन ॥ १८ ॥
 ऋते महेन्द्रतनयाद्भवेताश्चात्कृष्णसारथेः ।
 स हि तं समरे राजन्निर्जित्य विजयोऽर्जुनः ॥ १९ ॥

पड़ता, जो पितामह भीष्म के मन्मुख खड़ा होकर इनसे
 युद्ध कर सके । हे पुरुषसिंह ! यह मैं तुमसे सत्य
 कह रहा हूँ ॥ १४ ॥ अर्जुन के यों कहने पर शिष्यण्डी
 अनेक प्रकार के बाण बरमाते हुए भीष्म की ओर
 दौड़े । हे महाराज ! आपके पिता देववन भीष्म
 शिष्यण्डी के प्रहारों का कुछ विचार न करके क्रुद्ध अर्जुन
 के ऊपर बाण बरसाने लगे । वे तीक्ष्ण बाणों में
 पाण्डवों की महासेना को मारने लगे ॥ १५ ॥ हि राजेन्द्र !
 मेना महित सब पाण्डवों में ही भीष्म को घेरने और
 बाणों से दबाने लगे, जैसे मेघमण्डली सूर्य को दब
 लेनी है । हे भवभ्रेष्ठ ! चाणों और से चिरे हुए भीष्म
 पितामह वन में अग्नि के समान प्रज्वलित होकर युद्ध-

भूमि में जूना की भस्म करने लगे । उस भवद्वार
 मग्नम में आपके पुत्र दुःशासन का अद्भुत पौरुष देख
 पड़ा । वे अकेले ही अर्जुन आदि पाण्डवों से युद्ध
 करते थे और उन्हें रोक कर भीष्म की रक्षा कर रहे थे
 ॥ १० ॥ ११ ॥ दुःशासन के इस कर्म की देखकर सब
 लोग बहुत ही मन्मुख हुए । सब पाण्डव भिड़कर भी
 दुःशामन को नहीं रोक सकते थे । दुःशामन रण-
 भूमि में रथी शूराँ की रथ-हानि करके हाथियों और
 घोड़ों को नष्ट करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनके बाणों में
 विद्राघ हाथी और धनुर्धर युद्धसार शूराँ पर गिरने
 लगे । मैत्रके हाथी उनके बाणों में पीड़ित होकर
 इधर-उधर भागने लगे । जैसे इंधन पाकर अग्नि प्रज्व-

भीष्ममेवाऽभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
 विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्र्वयः ॥ २० ॥
 पुनः पुनः समाश्र्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः ।
 अर्जुनस्तु रणे राजन्योधयन्संव्यराजत ॥ २१ ॥
 शिखण्डी तु रणे राजन्विव्याधैव पितामहम् ।
 शरैरशनिसंस्पृशैस्तथा सर्पत्रिपोपमैः ॥ २२ ॥
 न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर ।
 स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान्वाणाञ्जग्रहे तदा ॥ २३ ॥
 उष्णातो हि नरो यद्वज्रलधाराः प्रतीच्छति ।
 तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥ २४ ॥
 तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे ।
 भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २५ ॥
 ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष ।
 अभिद्रवत संग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे ॥ २६ ॥
 भीष्मो वः समरे सर्वान्पालयिष्यति धर्मवित् ।
 ते भयं सुमहत्पृथक् पाण्डवान्प्रतियुध्यत ॥ २७ ॥
 हेमतालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन् ।
 सर्वेषां धार्तराष्ट्राणां समरे शर्म वर्म च ॥ २८ ॥
 त्रिदशोऽपि समुद्युक्ता नाऽलं भीष्मं समासितुम् ।
 किमु पार्था महात्मानं मर्त्यभूता महाबलाः ॥ २९ ॥

लित हो उठती है, वैसे ही दुःशासन प्रज्वलित होकर पाण्डवों की सेना को भस्म करने लगे । पाण्डवों में से महारथी अर्जुन के अतिरिक्त और कोई उन्हें जीतने के लिए उनके पास जाने का साहस नहीं कर सकता था ॥ १६ ॥ १७ ॥ महानीर अर्जुन ही सबके मनुख उन्हें जीतकर भीष्म की ओर अग्रसर हुए । भीष्म के बाहुबल का आश्रय पाये हुए गौर दुःशासन, अर्जुन से हारकर भी, धीरज धरमर बारम्बार उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे । उग युद्ध में अर्जुन की बढ़ी शोभा हुई ॥ २० ॥ २१ ॥ उग्र शिखण्डी और किमी से न युद्धकर यन्मुन्य कटार और मर्ष के समान पिचले बाणों में भीष्म को ही घायल करने लगे । किन्तु वे

बाण भीष्म को तनिक भी पीड़ा नहीं पहुँचा सके । मुमकरते हुए भीष्म उन बाणों को धँसे ही रोक लेते थे जैसे गर्मी का सताया हुआ मनुष्य जल की धारा अपने ऊपर गिरने देता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ क्षत्रियों ने घोर रूप भीष्म को देखा कि वे पाण्डवों की सेना को बाणर्या से नष्ट कर रहे हैं । इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने अपने सब मंत्रिकों से कहा—हे वीर ! तुम लोग शीघ्र ही चारों ओर से अर्जुन पर आक्रमण करो । धर्मज्ञ भीष्म तुम सबकी रक्षा करेंगे । हे नरपतियो ! सुवर्णभूषित तालचिह्नयुक्त पद्माकलेश पर विराजमान भीष्म ही हम लोगों के गण्ड और रक्षक हैं । भीष्म तुम्हारे पास ही हैं, हमारे ही

तस्माद् द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे ।
 अहमय रणे यत्तो योधयिष्यामि पाण्डवम् ॥ ३० ॥
 सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः ।
 तच्छ्रुत्वा तु बचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः ॥ ३१ ॥
 सर्वं योधाः सुसंरब्धा वलवन्तो महाबलाः ।
 ते विदेहाः कलिङ्गश्च दासेरकगणाश्च ह ॥ ३२ ॥
 अभिपेतुर्निपादाश्च सौवीरश्च महारणे ।
 बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ३३ ॥
 अभीपाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।
 शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः कैकेयैः सह ॥ ३४ ॥
 अभिपेतू रणे पार्थ पतङ्गा इव पावकम् ।
 शलभा इव राजेन्द्र पार्थमप्रतिमं रणे ।
 एतान्सर्वान्सहानीकान्महाराज महारथान् ॥ ३५ ॥
 दिव्यान्यस्त्राणि सञ्चिन्त्य प्रसन्धाय धनञ्जयः ।
 स तैरस्त्रैर्महावेगेर्ददाह सुमहाबलः ॥ ३६ ॥
 शरप्रतापैर्वीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः ।
 तस्य बाणसहस्राणि सृजतो हृद्बन्ध्विनः ॥ ३७ ॥
 दीप्यमानमिवाऽऽकाशे गाण्डीवं समदृश्यत ।
 ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णमहाध्वजाः ॥ ३८ ॥
 नाऽभ्यवर्तन्त राजानः सहिता वानरध्वजम् ।
 सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ॥ ३९ ॥

लोग निर्भय होकर पाण्डवों से युद्ध करो ॥ २५ ॥ २७ ॥
 सब देवता भी मिलकर भीम का सामना नहीं कर
 सकते, फिर पाण्डव हैं ही क्या बस्तु ? इसलिए
 पाण्डवों से डटकर युद्ध करो । मैं स्वयम् तुम लोगों
 के साथ यत्नपूर्वक अर्जुन से युद्ध करूँगा ॥ २८ ॥ ३० ॥
 हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के सब महाबली योद्धा
 दुर्योधन के ये वचन सुनकर, निर्भय होकर, अर्जुन
 से युद्ध करने लगे । पतङ्ग जैसे अग्नि पर आक्रमण
 करते हैं वैसे ही वे विदेह, कलिङ्ग, दासेक, निपाद,
 सौवीर, बाह्लीक, दरद, प्रतीच्य, आंदीच्य, मालव,

अभीपाद, शूरसेन, शिवि, वसाति, शाल्व, शक,
 त्रिगर्त, अम्बष्ठ, कैकेय आदि देशों और जातियों के
 वीर कुपित होकर अर्जुन से युद्ध करने चले ॥ ३१ ॥ ३५ ॥
 महावीर अर्जुन ने सब दिव्य अस्त्रों का ध्यान किया
 और फिर उन्हीं अस्त्रों से संयुक्त बाण छोड़कर वे उन
 शत्रुओं को, अग्नि जैसे पतङ्गों को जलाती हैं वैसे,
 मार करने लगे । उन महावेगवाले अस्त्रों के प्रभाव से
 युक्त सहस्रों बाण गाण्डीव धनुष से एक साथ निकलने
 लगे । गाण्डीव धनुष आकाश में विजली की तरह
 चमकने लगा ॥ ३५ ॥ ३८ ॥ उन बाणों से राजाओं के

सगजाश्च गजारोहाः किरीटिशरताडिताः ।
 ततोऽर्जुनभुजोत्प्रैरावृताऽऽसीद्वसुन्धरा ॥ ४० ॥
 विद्रवद्भिश्च बहुधा वलैः राज्ञां समन्ततः ।
 अथ पार्थो महाराज द्रावयित्वा वरूथिनीम् ॥ ४१ ॥
 दुःशासनाय सुवहून्प्रेषयामास सायकान् ।
 ते तु भित्त्वा तव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ॥ ४२ ॥
 धरणीं विविशुः सर्वे बल्मीकमिव पन्नगाः ।
 ह्यांश्चाऽस्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत् ॥ ४३ ॥
 विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान्प्रभुः ।
 आजघ्नान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ४४ ॥
 कृपं विकर्णं शल्यं च विध्वा बहुभिरायसैः ।
 चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ४५ ॥
 एवं ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष ।
 दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ॥ ४६ ॥
 सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
 पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान् ॥ ४७ ॥
 प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः ।
 तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिवानिव ॥ ४८ ॥
 अन्यान्पि महाराज तापयामास पार्थिवान् ।
 पराङ्मुखीकृत्य तथा शरवर्षैर्महारथान् ॥ ४९ ॥
 प्रावर्तयत संग्रामे शोणितोदां महानदीम् ।
 मध्येन कुरुसैन्यानां पाण्डवानां च भारत ॥ ५० ॥

रणो वी ध्वजारैः कट-कटकर गिरने लगीं । बाणों से पीड़ित राजा लोग अर्जुन के सम्मुख टहर नहीं सके । पञ्जा, रथ, रथी, घोड़े, घुड़मगार, हाथी और उनके सगार अर्जुन के बाणों से पीड़ित और टिन्न-भिन्न होकर पृथ्वी पर गिरने लगे । अर्जुन की युजाओं से छूटे हुए बाण सर्वत्र व्याप्त हो गये । लक्षों से पृथ्वी भर गई । दुर्योधन की सब सेना चारों ओर भागने लगी ॥ ३८१॥ महारथी अर्जुन ने इस प्रकार कौरव-सेना को भगाकर दुःशामन के ऊपर बहुत से बाण

छोड़े । वे लोहमय बाण दुःशासन के शरीर को चीर-कर सर्प जैसे बिल में प्रवेश होता है ऐसे ही धरती में प्रवेश हो गये । अब अर्जुन ने दुःशासन के सारथी और घोड़ों को भी मार डाला । फिर बीस बाणों से विविंशति का रथ तोड़कर उनको पाँच बाण मार ॥ ४१॥ ४४॥ अर्जुन ने कृपाचर्य, शल्य और विकर्ण के रथ नष्ट करके उन्हें बहुत से लोहमय बाण मार । इस प्रकार महारथी कृप, शल्य, दुःशामन, विकर्ण और विविंशति, सब रथ-हीन होकर अर्जुन के दार-

गजाश्च रथसङ्घाश्च बहुधा रथिभिर्हताः ।
 रथाश्च निहता नागैर्हयाश्चैव पदातिभिः ॥ ५१ ॥
 अन्तरा छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च ।
 निपेतुर्दिक्षु सर्वासु गजाश्चरथयोधिनाम् ॥ ५२ ॥
 छन्नमायोधनं राजन्कुण्डलाङ्गदधारिभिः ।
 पतितैः पाल्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः ॥ ५३ ॥
 रथनेमिनिवृत्तैश्च गजैश्चैवाऽवपोथितैः ।
 पादाताश्चाऽप्यधावन्त साश्वाश्च हययोधिनः ॥ ५४ ॥
 गजाश्च रथयोधाश्च परिपेतुः समन्ततः ।
 विकीर्णाश्च रथा भूमौ भग्नचक्रयुगध्वजाः ॥ ५५ ॥
 तद्गजाश्चरथौघानां रुधिराण्यसमुक्षितम् ।
 छन्नमायोधनं रेजे रक्ताभ्रमिव शारदम् ॥ ५६ ॥
 श्वानः काकाश्च एघ्राश्च वृका गोमायुभिः सह ।
 प्रणेतुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृगद्विजाः ॥ ५७ ॥
 बुबुर्बहुविधाश्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः ।
 दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु च नदत्सु च ॥ ५८ ॥
 काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः ।
 धूयमाना व्यदृश्यन्त सहसा मारुतेरिताः ॥ ५९ ॥

कर युद्धभूमि से भाग खड़े हुए । हे भरतश्रेष्ठ ! मर्यादा के पहले इन महारथियों की जीतकर अर्जुन धूम-रहित अग्नि के समान प्रवर्धित होउंटे । बाणों से किरण-मण्डित सूर्य के समान शोभा को प्राप्त अर्जुन अग्य राजाओं की भी पीड़ित करने लगे ॥ ४५१-४९॥ पाण्डवों और दिव्य अस्त्रों के प्रभाव से सब महारथियों की विमुख करके अर्जुन ने कौरवों और पाण्डवों की सेना के मध्य रक्त की महानदी बहा दी । [पाण्डव और सुब्रह्मण्य भीष्म के ऊपर पूर्णचल लगाकर आक्रमण करने लगे । भीष्म को भी प्रबल पराक्रम के साथ उनका सामना करते देखकर, समर में मृत्यु होने से चर्यालोक प्राप्त होगा—यह सोचकर, आपके पुत्र और उनके अधीन राजा लोग पाण्डवों का सामना करने लगे । कोई भी रण से नहीं भागा । उभर पाण्डवगण भी

आपके पुत्रों से प्राप्त अपने पहले के क्लेशों की स्मरण करके निर्भय भाग से युद्ध करने लगे । उन शूरों ने निश्चय कर लिया कि जीने में तो राज्य प्राप्त करेंगे, और मर जायेंगे तो स्वर्गलोक प्राप्त होगा । यह सोचकर प्रसन्नतापूर्वक शत्रुओं से प्राणपण पराक्रम के साथ सब युद्ध कर रहे थे ।] रथी लोगों के बाणों से मनुष्य-प्राणी और हाथियों के समूह सर्वत्र पड़े हुए थे । हाथियों के तोड़े हुए रथ और पैदलों के मारे हुए घोड़े गिरे पड़े थे । हाथी, घोड़े, पैदल तथा रथों, घोड़ों और हाथियों के सवार मरे पड़े थे । उनके सिर और शरीर कट-कटकर सर्वत्र बिखरे पड़े थे ॥ ५०॥ ५२॥ कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषणों से भूषित महारथी राजपुत्र गिर रहे थे और कुठ गिरे पड़े थे । उनकी लाशों से साग मैदान भरा पड़ा था । कुठ लोग रथों

श्वेतच्छत्रसहस्राणि सध्वजाश्च महारथाः ।
 विकीर्णाः समदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६० ॥
 सपताकाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः ।
 क्षत्रियाश्च मनुष्येन्द्र गदाशक्तिधनुर्धराः ॥ ६१ ॥
 समन्ततश्च दृश्यन्ते पतिता धरणीतले ।
 ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ॥ ६२ ॥
 अभ्यधावत कौन्तेयं मिपतां सर्वधन्विनाम् ।
 तं शिखण्डी रणे यान्तमभ्यद्रवत दंशितः ॥ ६३ ॥
 ततः समाहरद्भीष्मस्तदस्त्रं पावकोपमम् ।
 त्वरितः पाण्डवो राजन्मध्यमः श्वेतवाहनः ॥ ६४ ॥
 निजघ्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम् ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

के पहियों के नीचे पड़कर कट गये थे और कुछ के शरीर हाथियों के पाओं से कुचल गये थे । पैदल और घुड़सवार इधर-उधर दौड़ रहे थे । हाथी और रथों के योद्धा चारों ओर मर-मरकर गिर रहे थे । जिनके पहिये, युग और ध्वजा आदि अङ्ग टूट गये हैं ऐसे रथ पृथ्वी पर पड़े हुए थे ॥ ५३ ॥ ५६ ॥ हाथी, घोड़े और रथ आदि के सवारों के रक्त से सनी हुई वह पृथ्वी शरद ऋतु के सन्ध्या काल के लाल मेघ के समान देख पड़ती थी । कुत्ते, बिल्ली, गिद्ध, भेड़िये, सियार आदि भयङ्कर मांसाहारी पशु-पक्षी भोजन पाकर बड़े आनन्द से बोल रहे थे । उस समय सब दिशाओं में नाना प्रकार की कटोर गर्म और रुद्ध वायु चलने लगी । चीत्कार करते और गरजते हुए राक्षस, भूत, प्रेत आदि साक्षात् देख पड़ने लगे । सुवर्णभूषित हार और

पताकाएँ सहसा वायु से उड़ने लगीं ॥ ५७ ॥ ५९ ॥ सहस्रो श्वेत छत्र और ध्वजा सहित महारथी इधर-उधर बिखरे हुए देख पड़ने लगे । बाणों से पीड़ित होकर पताकाओं से शोभित बड़े-बड़े हाथी इधर-उधर भागने लगे । गदा, शक्ति, धनुष आदि शस्त्र हाथों में लिये सहस्रो क्षत्रिय पृथ्वी पर इधर-उधर पड़े देख पड़ते थे ॥ ६० ॥ ६२ ॥ हे महाराज ! तब भीष्म पितामह दिव्य अस्त्र का प्रयोग करके सब योद्धाओं के सम्मुख अर्जुन की ओर चले; किन्तु कवचधारी शिखण्डी ने सम्मुख आकर उन्हें रोक लिया । तब भीष्म ने उस अग्नि-तुल्य अस्त्र का उपसंहार कर लिया । इसी अगसर में अर्जुन ने पितामह को मोहित करके आपकी सेना को मारना आरम्भ किया ॥ ६३ ॥ ६५ ॥

— ० —

भीष्मपर्व का एक सौ सत्रह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११७ ॥

अथ अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

सञ्जय उवाच—समं व्यूढेष्वनीकेषु भूयिष्ठेष्वनिवर्तिनः ।
 ब्रह्मलोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत ॥ १ ॥
 नद्यनीकमनीकेन समसज्जत संकुले ।
 रथा न रथिभिः सार्धं पादाता न पदातिभिः ॥ २ ॥

अश्वा नाऽश्वैर्युध्यन्त गजा न गजयोधिभिः ।
 उन्मत्तवन्महाराज युध्यन्ते तत्र भारत ॥ ३ ॥
 महान्व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत ।
 नरनागगणेष्वेवं विकीर्णेषु च सर्वशः ॥ ४ ॥
 क्षये तस्मिन्महारौद्रे निर्विशेषमजायत ।
 सतः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ॥ ५ ॥
 दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान् ।
 पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन् ॥ ६ ॥
 सा बध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः ।
 भ्राश्यते बहुधा राजन्मारुतनेव नौर्जले ॥ ७ ॥
 यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति ।
 तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति ॥ ८ ॥
 तथैव तत्र सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना ।
 नवमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः ॥ ९ ॥
 मृद्यमानाश्च दृड्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः ।
 इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥
 पेतुर्गर्तस्वरं घोरं कृत्वा तत्र महागजाः ।
 आनद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥
 छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
 तस्मिन्नेव महाराज महावीरवरक्षये ॥ १२ ॥

सङ्ग्रय ने कहा — हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय
 सेनाओं के व्यूह टूट गये । सब लोग जीवन की
 आशा छोड़कर स्वर्ग प्राप्त करने की अभिलाषा से महा
 घोर युद्ध करने लगे । उस समय युद्ध के नियमों का
 विचार किसी की नहीं रहा । साधारणतः रथी रथी
 से, घुड़सवार घुड़सवार से, हाथी का सवार हाथी के
 सवार से और पैदल पैदल से युद्ध करता था, परन्तु
 उस समय यह नियम जाता रहा । जो जिस पाता
 था वह उसी पर प्रहार कर देता था । सब उन्मत्त
 से हो रहे थे ॥१३॥ दोनों सेनाओं में हलचल मच
 गई । मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि इस प्रकार भिखार
 महाघोर साम्राज्य करने लगे । कोई किसी को नहीं

पहचानता था, यहाँ तक कि लोग अपने ही पक्ष
 वालों पर प्रहार कर रहे थे ॥१५॥ तत्र शल्य, कृपा-
 चार्य, चित्रसेन, दुःशासन और विकर्ण, पाँचों कीर
 रथों पर बैठकर पाण्डव पक्ष की सेना को मारने और
 मथने लगे । जल में डूबती हुई नाव के समान उस
 मारी जाता हुई पाण्डवसेना ने अपनी रक्षा करनेवाला
 किसी को न देखा । जैसे जाड़े की ऋतु गाय आदि
 पशु-पक्षियों को कष्ट पहुँचाती है, वैसे ही पितामह भीष्म
 पाण्डवों को मर्मस्थल में पीड़ा पहुँचाने लगा ॥१८॥
 तुल्य ही महावीर अर्जुन अपने बाणों से मेघवर्ण बड़े-
 बड़े हाथियों को मर-मारकर गिराने लगे । प्रधान-
 प्रधान योद्धा अर्जुन के बाणों से उन्मथित होकर

भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनञ्जये ।
 ते पराक्रान्तमालोक्य राजन्युधि पितामहम् ॥ १३ ॥
 अभ्यवर्तन्त ते पुत्राः सर्वे सैन्यपुरस्कृताः ।
 इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ १४ ॥
 पाण्डवानभ्यवर्तन्त नस्मिन्वीरवरक्षये ।
 पाण्डवाऽपि महाराज स्मरन्तो विविधान्वहून् ॥ १५ ॥
 क्लेशान्कृतान्सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप ।
 भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकाय तत्पराः ॥ १६ ॥
 तावकांस्तव पुत्रांश्च योधयन्ति प्रहृष्टवत् ।
 सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः ॥ १७ ॥
 अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह ।
 सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयाश्च ते ॥ १८ ॥
 अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः ।
 बध्यमानस्ततो राजन्पिता शान्तनवस्तव ॥ १९ ॥
 अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान् ।
 तस्य कीर्तिमतस्तान पुरा रामेण धीमता ॥ २० ॥
 सम्प्रदत्तास्त्राशिक्षा वै परानीकविनाशनी ।
 स तां शिक्षामधिष्ठाय कुर्वन्परवलक्षयम् ॥ २१ ॥
 अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
 भीष्मोदशसहस्राणि जघान परवीरहा ॥ २२ ॥

गिरने लगे। आर्तनाद करते हुए बड़े-बड़े गज पृथ्वी पर गिरने लगे। आभूषणों में भूषित शीशों के शरीरों और कुण्डल-मण्डित मुण्डों से यह पृथ्वी व्याप्त हो गई॥१९॥२॥महापराक्रमी भीष्म और महारथी अर्जुन ने इस प्रकार पराक्रम दिग्गजर गोर महार कर डाला। युद्ध में पितामह को इस प्रकार पराक्रम के साथ युद्ध करते देखकर आपके संव पुत्र अपनी-अपनी सेना लेकर लौट पड़े। युद्ध में मरकर स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा में वे लोग उम समय पाण्डवों में युद्ध करने लगे॥२१॥२१॥हे महाभाग! पाण्डव भी आपके पुत्रों में प्राप्त अर्जुन त्रेक्षों की स्मरण करके निर्भय होकर प्रमत्तापूर्ण स्वर्गशोक अथवा विजय

की इच्छा से कीर्त्या के साथ युद्ध करने लगे। उस समय पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपने सेना-वालों में कहा - "हे सोमकगण! हे सृञ्जयगण! तुम लोग शीघ्र भीष्म के ऊपर आक्रमण करो।" अतः मोमक और सृञ्जयगण भीष्म के बाणों में अथवा घायत और पीड़ित होने पर भी, सेनापति की आज्ञा में उन्माहित होकर, शीघ्रता के साथ बाण बरमाते हुए भीष्म के ऊपर बाणों और से आक्रमण करने लगे॥२१॥२१॥ उनके बाणों के प्रहार से युधिष्ठिर होकर आपके पिता देवव्रत भीष्म युद्धों में युद्ध करने लगे। पहलू महाभाग परशुगम में भीष्म ने जो शत्रुदल नष्ट करनेवाली अथवा प्राप्त की थी, उसी अथवा प्राप्त की

तस्मिंस्तु दशमे प्राप्ते दिवसे भरतर्षभ ।
 भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पञ्चालेषु च संयुगे ॥ २३ ॥
 गजाश्वममितं हत्वा हताः सप्त महारथाः ।
 हत्वा पञ्च सहस्राणि रथानां प्रपितामहः ॥ २४ ॥
 नराणां च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश ।
 दन्तिनां च सहस्राणि हयानामयुतं पुनः ॥ २५ ॥
 शिक्षावलेन निहतं पित्रा तव विशाम्पते ।
 ततः सर्वमहीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीम् ॥ २६ ॥
 विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः ।
 शतानीकं च समरे हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
 सहस्राणि महाराज राज्ञां भङ्गेरपातयत् ।
 उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनञ्जयम् ॥ २८ ॥
 ये च केचन पार्थानामभियाता धनञ्जयम् ।
 राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम् ॥ २९ ॥
 एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः ।
 अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ ३० ॥
 स कृत्वा सुमहत्कर्म तस्मिन्वै दशमेऽहनि ।
 सेनयोरन्तरे तिष्ठन्प्रवृत्तीतिशरासनः ॥ ३१ ॥
 न चैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राज्ञिरीक्षितुम् ।
 मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥ ३२ ॥

त वे नित्य शत्रुसेना का संहार करते थे। उसी अस्त्र-
 विद्या के प्रभाव से नर दिन तक नित्य उन्होंने पाण्डव-
 सेना के दस-दस संहार वीरों को मारा। हे भारत-
 श्रेष्ठ ! दसवें दिन अकेले भीष्म ने मत्स्य और पाञ्चाल
 देश की सेना के साथ युद्ध करके एक महस्र हाथी के
 मवार, दस हजार घुड़सवार, पाँच हजार रथी, चौदह
 हजार पैदल और सात महारथी योद्धा मारे। इनके
 अतिरिक्त हाथी और घोड़े तो असंख्य मारे ॥ १९।२६॥
 इस प्रकार शिक्षा के प्रभाव से सब राजाओं की सेना
 का नाश करके उन्होंने विराट के प्रिय भाई शतानीक
 को मारा। शतानीक के साथी एक सहस्र वीर राजा
 भी भीष्म के भल्ल बाणों से मारे गये। समर में योद्धा

लोग व्याकुल होकर अर्जुन को पुकारने और चिहाने
 लगे। पाण्डव-सेना के जो वीर अर्जुन के साथ-साथ
 भीष्म के सम्मुख आये, वे ही मारे गये ॥ २६।२९॥
 दसों दिशाओं में बाण बरसते हुए भीष्म पाण्डव-सेना
 भर को उन्मथित करके सेना के अग्रभाग में खड़े हुए।
 हे महाराज ! दसवें दिन ऐसा अद्भुत सप्ताम करने के
 अनन्तर धनुष हाथ में लिये हुए भीष्म पितामह दोनों
 सेनाओं के मध्य में बहुत ही शोभायमान हुए। मत्स्याह
 के सूर्य के समान तपनेवाले भीष्म की ओर कोई
 राजा नेत्र उठाकर देख भी नहीं सकता था। इन्द्र ने जिस
 दानवों को पीड़ित किया था वेमे ही भीष्म भी पाण्डवों
 को और उनकी सेना को पीड़ित करने लगे ॥ ३०।३३॥

यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे ।
 तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्तापयामास भारत ॥ ३३ ॥
 तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः ।
 उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥ ३४ ॥
 एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः ।
 सन्निहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ॥ ३५ ॥
 बलात्संस्तम्भयस्त्वेनं यत्रैषा भिद्यते चमूः ।
 नहि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥ ३६ ॥
 ततस्तस्मिन्क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः ।
 सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ ३७ ॥
 स चाऽपि कुरुमुख्यानामृपभः पाण्डवेरितान् ।
 शरव्रातैः शरव्रातान्वहुधा विदुधाव तान् ॥ ३८ ॥
 ततः पञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
 पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३९ ॥
 यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह ।
 सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ॥ ४० ॥
 द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
 सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः ॥ ४१ ॥
 एते चाऽन्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः ।
 समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे ॥ ४२ ॥
 ततः शिखण्डी वेगेन प्रवृत्त्य परमायुधम् ।
 भीष्ममेवाऽभिदुद्राव रक्षमाणः किरीटिना ॥ ४३ ॥

हे महाराज! इस प्रकार पराक्रम करके सेना के अग्रभाग में स्थित भीष्म को दैत्यकर श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन से कहा — “हे धनञ्जय ! ये पितामह भीष्म दोनों सनाओं के मध्य में खड़े हैं । इस समय इन्हें बलपूर्वक मारने से ही तुम्हें जय-प्राप्ति होगी । इसलिए जहाँ पर भीष्म तुम्हारी सेना को डिल-भिल कर रहे हैं वहीं पर इन्हें बलपूर्वक शोक रक्को । भीष्म के बाणों की चोट को तुम्हारे अनिश्चित और कोई नहीं सह सकता ” ॥३४॥३६॥ श्रीकृष्ण के यो

कहने पर अर्जुन उस समय भीष्म पर असंख्य बाण बरसाने लगे । ध्वजा, रथ, घोड़े आदि सहित भीष्म को अर्जुन ने अपने बाणों से अट्टर्य कर दिया । बुरुश्रेष्ठ भीष्म भी अर्जुन के बाणों को अपने बाणों से वाट-कूट करके नष्ट करने लगे ॥३७॥३८॥ इसी मध्य में अर्जुन ने भीष्म के बाणों से पीड़ित और शोकसागर में निमग्न पाञ्चालराज द्रुपद, पराक्रमी धृष्टकेतु, महाबली भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, चेकितान, रावों भार्गवकेसकुमार, महाबाहू सात्यकि,

ततोऽस्याऽनुचरान्हत्वा सर्वान्नृणां विभागवित् ।
 भीष्ममेवाऽभिदुद्राव वीमत्सुरपराजितः ॥ ४४ ॥
 सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्यतः ।
 विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४५ ॥
 दुद्रुवुर्भीष्ममेवाऽऽजौ रक्षिता दृढधन्वना ।
 अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ॥ ४६ ॥
 दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः ।
 ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेज्वपलायिनः ॥ ४७ ॥
 बहुधा भीष्ममानर्तुर्मार्गणैः क्षतमार्गणैः ।
 विधूय तान्वाणगणान्ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः ॥ ४८ ॥
 पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम् ।
 चक्रे शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः ॥ ४९ ॥
 नाऽभिसन्धत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः ।
 स्त्रीत्वं तस्याऽनुसंसृज्य भीष्मो वाणाञ्जिखण्डिने ॥ ५० ॥
 जघान द्रुपदानिके रथान्सप्त महारथः ।
 ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभूत्तदा ॥ ५१ ॥
 मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् ।
 ते नराश्चरथव्रातैर्मार्गणैश्च परन्तप ॥ ५२ ॥
 तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ।
 भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रनपन्तं रणे रिपून् ॥ ५३ ॥

अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रोपदी के पाँच पुत्र, शिखण्डी, अर्जुनशाली कुन्तिभोज विराट और युधिष्ठिर आदि सत्र पाण्डवपक्ष के वीरों की रक्षा की ॥३९॥४२॥ तब शिखण्डी उड़िया धनुष और बाण लेकर वेग से भीष्म पर आक्रमण करने लगे । रणनिपुण अर्जुन भी भीष्म के रक्षक अनुचरों को मारकर शिखण्डी की रक्षा करने के लिए भीष्म की ओर चले । महारथी सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, राजा विराट, राजा द्रुपद, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँच पुत्र और अन्य सब वीर, अर्जुन के द्वारा सुरक्षित होकर, भीष्म को संमुख देखकर तार तारकर तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥४३॥४७॥ सप्राम से न भागनेवाले, दृढ़ धनुष धारण

किये हुए वे वीर भीष्म के ऊपर, फटोर प्रहार करने लगे । महा भा भीष्म ने क्रीड़ा के समान उन सत्र वीरों के बाणों को खण्ड-खण्ड करके पाण्डव सेना को मयना आरम्भ किया । शिखण्डी नाग्यार भीष्म के ऊपर बाण बरसा रहे थे ; किन्तु उन्हें पहले की स्त्री समझकर भीष्म ने कोई बाण नहीं मारा ॥४७॥५०॥ पितामह ने द्रुपद की सेना के सात रथों योद्धा मार डाले । उस समय मत्स्य, पाञ्चाल और चंडि देश के सैनिक किलकिला शब्द करके एक भीष्म के हाँ ऊपर आक्रमण करने लगे । सूर्य को जैसे मेघ ढक लेते हैं वैसे ही मनुष्य, रथ, घोड़े, हाथी आदि की चतुरङ्गिणी सेना ने चारों ओर से भीष्म को घेर

ततस्तस्य च तेषां च युद्धे देवासुरोपमे ।

किरीटी भीष्ममानच्छं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ५४ ॥

लिया । उस देवासुर-संग्राम के समान घोर युद्ध में बरसाने लगे ॥ ५१ ॥ ५४ ॥

शिखण्डी को आगे करके अर्जुन भीष्म के ऊपर बाण

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ अठारह अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११८ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मपराक्रमे अष्टादशधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

अथ ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

सञ्जय उवाच—एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।

विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥

शतघ्नीभिः सुघोराभिः परिवैश्व परश्वधैः ।

मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीयैश्च सर्वशः ॥ २ ॥

शरैः कनकपुद्गैश्च शक्तितोमरकम्पनैः ।

नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च सर्वशः ॥ ३ ॥

अताडयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः ।

स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ॥ ४ ॥

न विव्यथे तदा भीष्मो भियमानेषु मर्मसु ।

सन्दीप्तशरचापाग्निरस्त्रप्रसृतमारुतः ॥ ५ ॥

नेमिनिर्ह्रादसन्तापो महास्त्रोदयपावकः ।

चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ॥ ६ ॥

युगान्ताग्निसमप्रख्यः परेषां समपद्यत ।

विवृत्य रथसङ्क्रान्तानामन्तरेण विनिःसृतः ॥ ७ ॥

दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् ।

ततः पञ्चालराजं च धृष्टकेतुमचिन्त्य च ॥ ८ ॥

पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद् विशाम्पते ।

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! पाण्डवगण और सृञ्जयगण इस प्रकार भिड़कर, शिखण्डी को आगे करके, चारों ओर से विनामह भीष्म को घेरकर उन पर शताघ्नी, परिघ, मुद्गर, मुसल, प्रास, क्षेपणीय, बाण, शक्ति, तोमर, कम्पन, नाराच, वत्सदन्त, भुशुण्डी आदि शस्त्रों के प्रहार करने लगे ॥ ११४ ॥ बाणों के प्रहारों से मर्मपङ्क्तियों में पाँदा पहुँचने पर भी भीष्म विचलित नहीं हुए । उनका कण्ठ भिन्न भिन्न

हो गया । भीष्म के श्रेष्ठ अस्त्रों का उदयगग्न अग्नि शत्रुओं को भस्म कर रहा था । धनुष-बाण उस प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला में जल रहे थे । रथनाम का शब्द उस अग्नि का तत्प था । भीष्म विनामह शत्रुओं के लिए प्रत्ययकाट के अग्नि के समान हो रहे थे । विचित्र धनुष ज्वाला के समान था । बड़े-बड़े वीर ईश्वर के समान उभरने लगे थे । विनामह भीष्म रथों के भीतर से निकलकर फिर

ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥ ९ ॥
 द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
 भीमघोषैर्महावेगैर्मर्मावरणभेदिभिः ॥ १० ॥
 पडेताग्निशितैर्भीष्मः प्रविच्यधोत्तमैः शरैः ।
 तस्य ते निशितान्वाणान्सन्निवार्य महारथाः ॥ ११ ॥
 दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामासुरोजसा ।
 शिखण्डी तु महावाणान्यान्मुमोच महारथः ॥ १२ ॥
 न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
 ततः किरीटी संरन्धो भीष्ममेवाऽभ्यधावत ॥ १३ ॥
 शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।
 भीष्मस्य धनुषश्छेदं नाऽमृष्यन्त महारथाः ॥ १४ ॥
 द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
 भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च ॥ १५ ॥
 ससैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः ।
 तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ॥ १६ ॥
 अभिपेतुर्मृशं क्रुद्धारुछादयन्तश्च पाण्डवम् ।
 तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फाल्गुनं प्रति ॥ १७ ॥
 उद्धृतानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये ।
 घ्नताऽऽनयत गृहीत विद्धयध्वमवकर्तत ॥ १८ ॥
 इत्यासीन्निमुलः शब्दः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
 तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ १९ ॥

शत्रुपक्ष के राजाओं के मध्य विचारकर सबको मारते
 लगे ॥१८॥ द्रुपद और धृष्टकेतु को लौंघकर पितामह
 भीष्म पाण्डवों की सेना में जा प्रवेश हुए । सात्यकि,
 भीमसेन, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, पिता और द्रुपद, इन
 छः महारथियों के कवच काटकर भीष्म पितामह
 अंग्रेले ही मय नक शब्द आर वेग से युक्त, मर्मस्थल
 को फाड़ने लगे, तीक्ष्ण बाण मारने लगे ॥१९॥
 सात्यकि आदि छहों महारथियों ने भीष्म के उन
 तीक्ष्ण बाणों को विफल करके उन्हें दस-दस बाण
 मारे । महारथी शिखण्डी जो सुवर्णपुङ्ख, तीक्ष्णधार,
 बाण भीष्म को मारते थे उन बाणों से भीष्म को तनिक
 भी चोट नहीं पहुँचती थी । तब कुपित अर्जुन शिखण्डी

को अगे करके भीष्म के सम्मुख पहुँचे । उन्होंने तीक्ष्ण
 बाणों से भीष्म का धनुष काट डाला ॥११॥१४॥
 उनके धनुष को कटते देखकर, उत्तेजित होकर
 कृतार्मा, द्रोणार्ज्य, जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य
 और भगदत्त ये गीर धेंद्र और तीक्ष्ण बाण बरसाते
 हुए अर्जुन की ओर दौड़े । ये साता महारथी अपने
 दिव्य अस्त्रों का प्रभाव दिखाते हुए अर्जुन के पास
 पहुँचे । प्रलयकाल में उमड़ रहे सागर के गरजने का
 सा शब्द करते हुए ये लोग “मारो, शीघ्रता करो,
 पकड़ लो, छेद डालो, काट डालो” इत्यादि बातें
 कहने लगे । अर्जुन के रथ के पास उन लोगों का
 कोलाहल सुनकर पाण्डव पक्ष के सात महारथी

अभ्यधावन्परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ ।
 सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २० ॥
 विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः ।
 अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥
 समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुकधारिणः ।
 तेषां समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२ ॥
 संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव ।
 शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ २३ ॥
 अविध्यद्दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे ।
 सारथिं दशभिश्चाऽस्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे ॥ २४ ॥
 सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेव्यो वेगवत्तरम् ।
 तदप्यस्य शितैर्वाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः ॥ २५ ॥
 एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्मात्तं पुनः पुनः ।
 धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परन्तपः ॥ २६ ॥
 स छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
 शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारणीम् ॥ २७ ॥
 तां च विक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
 तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ २८ ॥
 समादत्त शितान्भल्लान्पञ्च पाण्डवनन्दनः ।
 तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥
 संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेरिताम् ।
 सा पपात तथा छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ ३० ॥

सात्यकि, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, ॥११२०॥ विराट, द्रुपद,
 घटोत्कच और अभिमन्यु उधर ही चले । ये लोग
 कुपित होकर धनुष चढ़ाने हुए शक्ति के साथ अर्जुन
 के समीप पहुँचे । देवासुर-संग्राम में देवताओं के साथ
 दानवों का जैसे घोर संग्राम हुआ था, वैसे ही कौरव
 पक्ष के सात वीरों के साथ पाण्डव पक्ष के सात वीरों
 का घोर युद्ध होने लगा ॥२१२३॥ भीष्मका धनुष
 पट जलने पर शिखण्डी ने दस बाण उनसे और दस
 बाण सारथी को मारे । फिर एक बाण से उनके रथ

की ध्वजा काट डाली । भीष्म ने दूसरा धनुष हाथ में
 लिया । अर्जुन ने शक्ति के साथ तीन बाणों से उसे
 भी काट डाला । इस प्रकार भीष्म ने जो धनुष
 लिया वही अर्जुन ने काट डाला ॥२३१२६॥ तब
 कुपित होकर हाँट चाट रहे भीष्म ने अर्जुन के रथ
 पर एक प्रचलित वज्रनुय और पर्वत को भी तोड़
 डालनेवाली शक्ति फेंकी । अर्जुन ने पाँच भट्ट बाणों
 से उस शक्ति के पाँच टुकड़े करके पृथ्वी पर गिरा
 दिये ॥२७१३०॥ क्रुद्ध अर्जुन के बाणों से कटी हुई

मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतहृदा ।
 छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः॥ ३१ ॥
 अचिन्तयद्गणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः ।
 शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान् ॥ ३२ ॥
 यद्येषां न भवेद्गोप्ता विश्वक्सेनो महाबलः ।
 कारणद्वयमास्थाय नाऽहं योत्स्यामि पाण्डवान् ॥ ३३ ॥
 अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः ।
 पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहम् ॥ ३४ ॥
 स्वच्छन्दभरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा ।
 तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवाऽऽत्मनः ॥ ३५ ॥
 एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
 ऋपयो वसवश्चैव वियत्स्या भीष्ममब्रुवन् ॥ ३६ ॥
 यत्ते व्यवसितं तात तदस्माकमपि प्रियम् ।
 तत्कुरुष्व महाराज युद्धे बुद्धिं निवर्तय ॥ ३७ ॥
 अस्य वाक्यस्य निधने प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः ।
 अनुलोमः सुगन्धी च पृथक्चैव समन्वितः ॥ ३८ ॥
 देवदुन्दुभयश्चैव सम्प्रणेदुर्माखनाः ।
 पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि मारिष ॥ ३९ ॥
 न च तच्छुश्रुवे कश्चित्तेषां संवदतां नृप ।
 ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा ॥ ४० ॥

वह शक्ति बादल के मध्य से गिरे हुए बिजली के
 दुकन्दों के समान जान पड़ने लगी । उस शक्ति को
 इस प्रकार निष्कल देखकर भीष्म बहुत ही कुपित
 हुए । वे सोचने लगे कि यदि महाप्रतापी योगेश्वर
 वासुदेव इनके रक्षक न होते तो मैं पाँचों पाण्डवों
 को एक ही धनुष से मार सकता था । किन्तु पाण्डव
 मारे नहीं जा सकते, और स्त्री-जाति होने के कारण
 शिखण्डी भी अवश्य है । इन दोनों कारणों से अब
 मैं पाण्डवों के साथ युद्ध न करूँगा ॥ ३१-३४ ॥ पिता
 ने दूसरे विवाह के समय—निपाद-कन्या काली से
 विवाह करने के समय—मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे
 दो वर दिये थे । एक तो यह कि मैं जब चाहूँ तब

मरूँ और दूसरा यह कि युद्ध में कोई मुझे जीत न
 सके । मैं ममज्ञता हूँ कि मेरी मृत्यु का यही उपयुक्त
 समय है । क्योंकि जीवन से मैं ऊँच चुका हूँ ॥ ३४ ॥
 ३५ ॥ पितामह भीष्म यों सोच रहे थे कि इसी समय
 आकाश में स्थित ऋषियों और ऋषुओं ने भीष्म के
 इस विचार को जानकर कहा—“हे तात भीष्म !
 तुम जो सोच रहे हो वही हमें रुचिकर है । इसलिए
 अपना और हमारा प्रिय करने को तुम युद्ध बन्द
 करके अपना कर्तव्य करो ।” हे महाराज ! ऋषियों
 के यों कहने पर अनुकूल, सुगन्धित, जलकणयुक्त और
 मन्द वायु चलने लगी । देवलोक में नगाड़े बजने लगे
 और भीष्म के ऊपर आकाश से फूलों की वर्षा होने

सम्भ्रमश्च महानासीत्त्रिदशानां विशाम्पते ।
 पतिष्यति रथाद्धीष्णे-सर्वलोकप्रिये तदा ॥ ४१ ॥
 इति देवगणानां च वाक्यं श्रुत्वा महातपाः ।
 ततः शान्तनवो भीष्मो वीभत्सुं नाऽत्यवर्तत ॥ ४२ ॥
 भिद्यमानः क्षितैर्वाणैः सर्वावरणभेदिभिः ।
 शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम् ॥ ४३ ॥
 आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निक्षितैः शरैः ।
 स तेनाऽभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४४ ॥
 नाऽकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाऽचलः ।
 ततः प्रहस्य वीभत्सुर्व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ॥ ४५ ॥
 गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समर्पयत् ।
 पुनः पुनः क्षितैरेनं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ४६ ॥
 सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ।
 एवमन्यैरपि भृशं विद्धयमानः सहस्रशः ॥ ४७ ॥
 तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः ।
 तैश्च मुक्ताञ्छरान्भीष्मो युधि सत्यपराक्रमः ॥ ४८ ॥
 निवारयामास शरैः समं सन्नतपर्वाभिः ।
 शिखण्डी तु रणे बाणान्यान्मुमोच महारथः ॥ ४९ ॥
 न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वमपुङ्खाः शिलाशिताः ।
 ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाऽभ्यवर्तत ॥ ५० ॥
 शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।
 अथैनं नवभिर्विध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ ५१ ॥

लगी ॥३६॥३९॥ ऋषियों के पूर्वोक्त वचन भीष्म के अतिरिक्त और किसी ने नहीं सुने । वेदव्यास की कृपा के प्रभाव से मुझे भी वे वचन सुन पड़े । हे नरनाथ ! सब लोगों के प्रिय भीष्म के रथ से गिरने की बात जानकर सब देवता भी व्याकुल हो गये ॥४०॥४१॥ महातपस्वी भीष्म ने देवताओं और ऋषियों के उक्त वचन सुनकर, सब आरणां को तोड़कर शरीर में प्रवेश होनेवाले तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित होकर भी, अर्जुन पर प्रहार करना छोड़ दिया ।

उस समय शिखण्डी ने कुपित होकर और भी वेग से भीष्म की छाती में नव बाण मारे । किन्तु जैसे भूकम्प के समय भी पर्यंत नहीं विचलित होते वैसे ही शिखण्डी के उन बाणों से भीष्म विचलित नहीं हुए ॥४२॥४५॥ तब महाधनुर्धर अर्जुन ने हँसकर क्रोध के साथ गाण्डीव धनुष खींचकर पचीस क्षुद्रक बाण भीष्म की मार । अर्जुन स्फूर्ति के साथ और भी सैकड़ों-सहस्रों बाण भीष्म के गर्भस्थलों और सब अङ्गों में मारने लगे । इसी प्रकार और योद्धा भी

सारथिं विशिखैश्चाऽस्य दशभिः समकम्पयत् ।
 सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम् ॥ ५२ ॥
 तदप्यस्य शितैर्भलैस्त्रिधा त्रिभिरघातयत् ।
 निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्तं महारणे ॥ ५३ ॥
 एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ ।
 ततः शान्तनवो भीष्मो वीभत्सु नाऽत्यवर्तत ॥ ५४ ॥
 अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्षयत् ।
 सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभापत ॥ ५५ ॥
 एष पाथो रणे क्रुद्धः पाण्डवानां महारथः ।
 शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाऽभ्यहनद्रणे ॥ ५६ ॥
 न चैष समरे शक्यो जेतुं वज्रभृता अपि ।
 न चापि सहिता वीरा देवदानवराक्षसाः ॥ ५७ ॥
 मां चापि शक्ता निर्जेतुं किमु मर्त्या महारथाः ।
 एवं तयोः संवदतोः फाल्गुनो निशितैः शरैः ॥ ५८ ॥
 शिखण्डिनं पुरस्कृत्य भीष्मं विव्याध संशुगे ।
 ततो दुःशासनं भूयः स्वयमान इवाऽववीत् ॥ ५९ ॥
 अतिविद्धः शितैर्वाणैर्भृशं गाण्डीवधन्वना ।
 वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि ॥ ६० ॥
 मुक्ताः सर्वेऽव्यवच्छिन्ना नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
 निकृन्तमाना मर्माणि दृढावरणभेदिनः ॥ ६१ ॥

भीष्म को सहस्रों बाण मारने लगे । सशपाकर्मी
 भीष्म ने अपने बाणों से उन सब बाणों को नष्ट कर
 दिया ॥४५॥४९॥ महारथी शिखण्डी ने सुगर्णपुह
 तीक्ष्ण बाण भीष्म को मारे । पान्तु उन बाणों के
 लगाने से भीष्म को तनिक भी व्यथा नहीं हुई ।
 अब महारथी अर्जुन ने कुपित होकर, शिखण्डी को
 आगे करके, भीष्म पितामह का धनुष काट डाला ।
 दस तीक्ष्ण बाण उनके सारथी को मारे, एक बाण
 से ध्वजा काट डाली और नव बाण उनके शरीर में
 मारे ॥४९॥५२॥ इस पर भीष्म ने दसग धनुष लीया ।
 अर्जुन ने तीन भल बाणों से उसे भी काट डाला ।
 इसके अनन्तर भीष्म ने जितने धनुष हथ में लिये

उन सबको अर्जुन ने शक्ति के साथ अपने बाणों से
 काट डाला । तब भीष्म ने अर्जुन के ऊपर प्रहार
 करने का उद्योग छोड़ दिया ॥५२॥५४॥ किन्तु अर्जुन
 ने फिर भी उनके मर्मस्थल में पञ्चम क्षुद्र बाण मारे ।
 महारथी भीष्म का शरीर अर्जुन के बाणों से बहुत
 ही घायल हो गया । तब भीष्म ने कहा—वीर दुःशामन !
 ये पाण्डव पक्ष के महारथी अर्जुन कुपित होकर निर-
 न्तर सहस्रों बाण मुझको मारे रहे हैं । वज्रपाणि इन्द्र
 समेत सब देवता, दानव और राक्षस आदि भी मिल्क
 कर न तो मुझे जीत सकते हैं और न अर्जुन को;
 फिर मनुष्य जाति के महारथी वीर मेरा क्या कर
 सकते हैं ? महानीर भीष्म दुःशासन से यों कह रहे

मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
 वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः ॥ ६२ ॥
 मम प्राणानारुजन्ति नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
 नाशयन्तीव मे प्राणान्यमदूता इवाऽऽहिताः ॥ ६३ ॥
 गदापरिधिसंस्पर्शा नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
 भुजगा इव संकुद्धा लेलिहाना विपोल्वणाः ॥ ६४ ॥
 समाविशन्ति मर्माणि नेमे वाणाः शिखण्डिनः ।
 अर्जुनस्य इमे वाणा नेमे वाणाः शिखण्डिनः ॥ ६५ ॥
 कुन्तन्ति मम गात्राणि माघमां सेगवा इव ।
 सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ॥ ६६ ॥
 वीरं गाण्डीवधन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम् ।
 इतिबुवञ्छान्तनवो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ६७ ॥
 शक्तिं भीष्मः स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत ।
 तामस्य विशिखैश्छित्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत् ॥ ६८ ॥
 पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तव भारत ।
 चर्माऽथाऽऽदत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६९ ॥
 खड्गं चाऽन्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा ।
 तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमस्तायकैस्तथा ॥ ७० ॥
 रथादनवरुढस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
 ततो युधिष्ठिरो राजा खान्यनीकान्यचोदयत् ॥ ७१ ॥

थे, इसी समय शिखण्डी के पीछे स्थित अर्जुन तीक्ष्ण
 बाण मारकर भीष्म को घायल करने लगे ॥५५॥५९॥
 गाण्डीव धनुष से दृष्टे हुए बहुत ही तीक्ष्ण भयानक
 बाणों से अत्यन्त बेधे जाते हुए भीष्म ने हँसकर फिर
 दुःशासन से कहा— हे दुःशासन ! ये जो वज्रतुल्य
 बाण निरन्तर आकर मेरे शरीर में लग रहे हैं, वे
 शिखण्डी के बाण नहीं हैं । ये जो मुसल के समान
 बाण आकर दृढ़ कवच को तोड़कर मेरे मर्मस्थलों को
 छेद रहे हैं, वे शिखण्डी के बाण नहीं हो सकते ।
 ये जो वज्र के समान वेग से आकर वज्रदण्ड के समान
 मेरे शरीर में लगते हैं और मेरे जीवन को क्षीण कर
 रहे हैं, वे बाण शिखण्डी के नहीं हैं ॥५९॥६३॥

ये जो गदा और परिध के समान बाण यमदूत की
 तरह आकर मेरे प्राणों को नष्ट कर रहे हैं, वे बाण
 शिखण्डी के नहीं हैं । ये जो कुद्ध उत्तेजित नाग
 के समान बाण तेजी से आकर मेरे मर्मस्थल में प्रवेश
 कर रहे हैं, वे शिखण्डी के नहीं हैं । ये बाण जो
 मेरे शरीर को छेद रहे हैं, कभी शिखण्डी के नहीं
 हैं । ये बाण तो अर्जुन के ही हैं, इसमें कोई सन्देह
 नहीं ॥६३॥६६॥ गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले महा-
 वीर महाबली अर्जुन के अतिरिक्त और किसी क्षत्रिय
 का प्रहार मुझे केश नहीं पहुँचा सकता । इतना
 कहकर मानों अर्जुन को मस कर डालने की इच्छा
 से भीष्म ने उन पर एक शक्ति फेंकी । अर्जुन ने

अभिद्रवत गाङ्गेयं मा वोऽस्तु भयमप्यपि ।
 अथ ते तोमरैः प्रासैर्वाणौघैश्च समन्ततः ॥ ७२ ॥
 पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नाराचैश्च तथा शितैः ।
 वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः ॥ ७३ ॥
 सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत्तदा ।
 तथैव तत्र पुत्राश्च नेदुर्भीष्मजयैपिणः ॥ ७४ ॥
 तमेकमभ्यरक्षन्त सिंहनादांश्च चक्रिरे ।
 तत्राऽऽसीत्तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ७५ ॥
 दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे ।
 आसीद्वाङ्ग इवाऽऽवर्तो मुहूर्तमुदधेरिव ॥ ७६ ॥
 सैन्यानां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
 असौम्यरूपा पृथिवी शोणिताक्ताऽभवत्तदा ॥ ७७ ॥
 समं च विपमं चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।
 योधानामयुतं हत्वा तस्मिन्स दशमेऽहनि ॥ ७८ ॥
 अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।
 ततः सेनामुखे तस्मिन्स्थितः पार्थो धनुर्धरः ॥ ७९ ॥
 मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास बाहिनीम् ।
 वयं श्वेतहयान्नीताः कुन्तीपुत्राञ्जनजयात् ॥ ८० ॥

सत्र कौरवों के सम्मुख ही तीन बाणों से उस शक्ति के तीन टुकड़े कर डाले ॥६६॥६७॥ प्रयु अथवा विजय, दो में से एक के लिए भीष्म ने सुवर्णभूषित ढाल और तलवार हाथ में ली । भीष्म रथ पर से उतरने भी नहीं पाये कि अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ तीक्ष्ण बाणों से उस ढाल और तलवार के सौ टुकड़े कर डाले । अर्जुन या यह कर्म अथवा अद्भुत जान पड़ा । हे राजेन्द्र ! इसी समय राजा युधिष्ठिर ने अपने सन्निधियों से कहा—“हे वीरो ! तुम लोग शीघ्र भीष्म के ऊपर आक्रमण करो । तुम्हें भीष्म से भयभीत न होना चाहिए” ॥६९॥७०॥ तब सत्र लोग मिलकर अरुले भीष्म के ऊपर आक्रमण करने के लिए तोमर, प्रास, बाण, पट्टिश, खट्वा, नाराच, वत्सदन्त और भल्ल आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े । उस समय पाण्डव

लोग और उनके पक्ष के वीर लोग घोर सिंहनाद करने लगे । उधर भीष्म की जय चाहनेवाले आपके पुत्र भी अकेले भीष्म की रक्षा करते हुए घोर सिंहनाद करने लगे । उस समय भीष्म और अर्जुन के युद्ध में कौरव और पाण्डव परस्पर भिड़कर बड़ा निरुद्ध युद्ध करने लगे ॥७२॥७६॥ जसे समुद्र में भारी हलचल मचे, उसे ही दोनों सेनाओं थोड़ी देर तक बड़े मेग से दाँड़ दौड़कर परस्पर प्रहार और प्राणनाश करती रहीं । पृथ्वी में रक्त की कीचड़ मच गई । ऊँचा और नीचा कुछ नहीं जान पड़ता था । पृथ्वी का रूप बड़ा भयङ्कर हो उठा । महामा भीष्म ने दसों दिन भी दस सहस्र योद्धाओं की मारकर मर्मस्थलों में अत्यन्त घायल और पीड़ित होने पर युद्ध रोक दिया ॥७६॥ ७७॥ उधर महारथी अर्जुन सेना के अग्रभाग में खड़े

पीड्यमानाः शितैः शस्त्रैः प्राद्रवाम रणे तदा ।
 सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योर्दाच्यमालवाः ॥ ८१ ॥
 अभीपाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।
 शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ८२ ॥
 सर्व एते महात्मानः शरार्ता व्रणपीडिताः ।
 संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना ॥ ८३ ॥
 ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः ।
 परिकाल्य कुरुन्त्सर्वाश्शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ८४ ॥
 निपातयत गृहीत युध्यध्वमवकृन्तत ।
 इत्यासीत्तुमुलः शब्दो राजन्भीष्मरथं प्रति ॥ ८५ ॥
 निहत्य समरे राजश्शतशोऽथ सहस्रशः ।
 न तस्याऽऽसीदनिर्भिन्नं गात्रे द्वयंगुलमन्तरम् ॥ ८६ ॥
 एवम्भूतस्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः ।
 शिताग्रैः फाल्गुनेनाऽऽजौ प्राक्शिराः प्रापतद्रथात् ॥ ८७ ॥
 किञ्चिच्छेपे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम् ।
 हाहेति दिवि देवानां पार्थिवानां च भारत ॥ ८८ ॥
 पतमाने रथाङ्गीष्मे बभूव सुमहाखनः ।
 सम्पतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम् ॥ ८९ ॥
 सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन्हृदयानि नः ।
 स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ॥ ९० ॥

होकर बाणवर्षा से कौरव-सेना को मारने और भगने लगे । हे महाराज ! हमारे पक्ष के सब योद्धा अर्जुन के बाणों से अत्यन्त व्यथित और भीत होकर भागने लगे । हे राजेन्द्र ! संधीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीपाह, शूरसेन, शिवि, वसाति, शाल्व, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय, इन देशों के वीरों ने और उनकी सेना के लोगों ने संग्राम में अर्जुन के बाणों से पीड़ित और अत्यन्त घायल होकर भी भीष्म का साथ नहीं छोड़ा ॥ ७९ ॥ ८३ ॥ अब पाण्डव पक्ष के सब वीरों ने मिलकर भीष्म को चारों ओर से घेर लिया । [शिखण्डी को आगे करके अर्जुन तो भीष्म पर प्रहार कर रहे थे और अन्य वीरगण

बाणों की वर्षा करके कौरव-सेना के योद्धाओं को दूर भगा रहे थे ।] उस समय पाण्डव पक्ष के लोग भीष्म के रथ के पास "गिरा दो, पकड़ लो, युद्ध करो, छिन्न-भिन्न कर दो" इत्यादि कहते हुए घोर कोलाहल करने लगे । हे महाराज ! भीष्म के शरीर में कोई ऐसा स्थान नहीं था जहाँ वीर अर्जुन के बाण न प्रवेश हो गये हों ॥ ८३ ॥ ८६ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसी दशा में आपके पिता बाल-व्रक्षचारी भीष्म, आपके पुत्रों के समुल्लसि, पूर्व की ओर सिर करके रथ से नाँचे गिर पड़े । उस समय सूर्य के अस्त होने में कुछ ही देर थी । आकाश में देवता और पृथ्वी में सब राजा लोग हाहाकार करने लगे । महामा

इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टः केतुः सर्वधनुष्मताम् ।
 धरणीं न स पस्पर्श शरसङ्घैः समावृतः ॥ ९१ ॥
 शरतल्पे महेष्वासं शयानं पुरुषर्षभम् ।
 रथात्प्रपतितं चैनं दिव्यो भावः समाविशत् ॥ ९२ ॥
 अभ्यवर्षच्च पर्जन्यः प्राकम्पत च मेदिनी ।
 पतन्स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम् ॥ ९३ ॥
 संज्ञां चोपालभद्वीरः कालं सञ्चिन्त्य भारत ।
 अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः ॥ ९४ ॥
 कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
 कालकर्ता नरव्याघ्रः सम्प्राप्ते दक्षिणायने ॥ ९५ ॥
 स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत्
 धारयामास च प्राणान्पतितोऽपि महीतले ॥ ९६ ॥
 उत्तरायणमन्विच्छन्भीष्मः कुरुपितामहः ।
 तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ॥ ९७ ॥
 महर्षीन्हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै ।
 ततः सम्पातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः ॥ ९८ ॥
 आजग्मुः सहिता द्रष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
 यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥ ९९ ॥
 ते तु भीष्मं समासाद्य ऋषयो हंसरूपिणः ।
 अपश्यञ्छरतल्पस्थं भीष्मं कुरुकुलोद्बहम् ॥ १०० ॥

भीष्म को रथ से नाचे गिरते देखकर हम लोगों के
 हृदय भी उनके साथ ही गिर पड़े। ॥ ८७ ॥ १०० ॥ सन
 धनुर्धरों में श्रेष्ठ पितामह भीष्म जिस समय इन्द्र की
 ध्वजा के समान पृथ्वी पर गिरे उस समय पृथ्वी काँप
 उठी और घोर शब्द होने लगे। पितामह के शरीर
 में इतने बाण प्रवेश हुए थे कि रथ से नाचे गिरने
 पर भी उनका शरीर पृथ्वी में नहीं छू गया। वे
 उन्हीं बाणों की शय्या पर गिर गये। उस समय
 उनके हृदय में दिव्य सात्विक भाव का उदय हो
 आया। पृथ्वी काँप उठी और मेघ जल बरसाने लगे
 ॥ ९० ॥ ९३ ॥ हे राजेन्द्र ! गिरते समय भीष्म ने सूर्य
 को दक्षिणायन में देखा था, इसलिए उन्होंने उस

समय प्राण त्याग नहीं किये। उपयुक्त समय न देख-
 कर वे फिर सचेत हो गये। उसी समय अन्तरिक्ष
 में उन्हें यह आकाशगणी सुन पड़ी “सब राज-
 धारियों में श्रेष्ठ पुरुषसिंह महात्मा भीष्म ने दक्षिणायन
 सूर्य में कैम प्राण-त्याग किये।” यह देखगणी सुन-
 कर भीष्म ने उत्तर दिया—“मैं अभी जीवित हूँ।”
 पितामह भीष्म इस प्रकार दक्षिणायन काल में गिर-
 कर भी सन्नति की इच्छा से उत्तरायण सूर्य की
 प्रतीक्षा करने लगे। ॥ ९३ ॥ १०० ॥ हिमवान् की कन्या और
 भीष्म की माता गङ्गा ने भीष्म की इच्छा जानकर
 महर्षियों को हस्तक्षेप में उनके पास भेजा। भीष्म को
 देवर्षि ने उस स्थान पर आये, जहाँ वे पुरुष-

ते तं दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
 गाङ्गेयं भरतश्रेष्ठं दक्षिणेन च भास्करम् ॥१०१॥
 इतरेतरमामन्त्र्य प्राहुस्तत्र मनीषिणः ।
 भीष्मः कथं महात्मा सन्संस्थाता दक्षिणायने ॥१०२॥
 इत्युक्त्वा प्रस्थिता हंसा दक्षिणामभितो दिशम् ।
 सम्प्रेक्ष्य वै महाबुद्धिश्चिन्तयित्वा च भारत ॥१०३॥
 तानब्रवीच्छान्तनवो नाऽहं गन्ता कथञ्चन ।
 दक्षिणावर्त आदित्ये एतन्मे मनसि स्थितम् ॥१०४॥
 गमिष्यामि स्वकं स्थानमासीद्यन्मे पुरातनम् ।
 उदगायन आदित्ये हंसाः सत्यं ब्रवीमि वः ॥१०५॥
 धारयिष्याम्यहं प्राणानुत्तरायणकांक्षया ।
 ऐश्वर्यभूतः प्राणानामुत्सर्गो हि यतो मम ॥१०६॥
 तस्मात्प्राणान्धारयिष्ये मुमूर्षुरुदगायने ।
 यश्च दत्तो वरो मह्यं पित्रा तेन महात्मना ॥१०७॥
 छन्दतो मृत्युरित्येवं तस्य चाऽस्तु वरस्तथा ।
 धारयिष्ये ततः प्राणानुत्सर्गे नियते सति ॥१०८॥
 इत्युक्त्वा तांस्तदा हंसान्स शेते शरतल्पगः ।
 एवं कुरुणां पतिते शृङ्गे भीष्मं महौजसि ॥१०९॥
 पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
 तस्मिन्हते महासत्वे भरतानां पितामहे ॥११०॥

सिंह बाणों की शय्या पर पड़े हुए थे॥१०७॥१००॥
 हस्तरूपी ऋषियों ने वहाँ पहुँचकर, भीष्म को देखकर,
 उनकी प्रदक्षिणा की । सूर्य के दक्षिण ओर स्थित
 ऋषियों ने परस्पर कहा—“महात्मा होकर भीष्म
 कैसे दक्षिणायन सूर्य में प्राण त्याग करेंगे।” महामति
 भीष्म ने मन में विचारकर उन ऋषियों की ओर
 देखकर कहा—“मैंने मन में यह निश्चय कर लिया है
 कि दक्षिणायन सूर्य में प्राण-त्याग नहीं करूँगा॥१०१॥
 १०४॥ हे हंसो ! मैं सत्य कहता हूँ, उत्तरायण सूर्य
 होने पर प्राणत्याग कर मैं अपने धाम को जाऊँगा ।
 उत्तरायण सूर्य आने तक मैं जीवित रहूँगा, क्योंकि
 पिता ने मुझको मृत्यु पर आधिपत्य का प्र दिया है

कि मैं जब चाहूँ तभी नरूँ । इसी से मैं जीवित हूँ ।
 उपयुक्त समय आने पर मरूँगा ।” हंसों से इतना
 कहकर भीष्म उसी शरशय्या पर लेटे रहे । हे राजन्द्र !
 कुरुकुलतिलक महात्मा महाबली और अवध्य भीष्म
 के गिरे पर पाण्डव और सृञ्जयगण आशात त
 आनन्द के मारे सिंहनाद करने लगे । महासत्व पिता-
 महे के हत होने पर आपके पुत्र निःकृतव्य रिष्ट
 और शोक से व्याकुल हो उठे । कुरुवंश के सब
 लोग व्याकुल हो गये॥१०९॥११॥कृपाचार्य और
 दुर्योधन आदि लम्बे-लम्बे आस लेते हुए रोने लगे ।
 खेद के मारे बहुत देर तक वे जड़ की तरह खड़े
 रहे । उनकी इन्द्रिया चेष्टा रहित हो गई । युद्ध के

न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
 सम्मोहश्चैव तुमुलः कुरुणामभवत्तदा ॥१११॥
 कृपदुयोधनमुखा निःश्वस्य रुदुस्ततः ।
 विपादाच्च चिरं कालमतिष्ठन्विगतेन्द्रियाः ॥११२॥
 दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः ।
 ऊरुग्राह्यहीताश्च नाऽभ्यधावन्त पाण्डवान् ॥११३॥
 अवध्ये शन्तनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि ।
 अभावः सहसा राजन्कुरुराजस्य तर्कितः ॥११४॥
 हतप्रवीरास्तु वयं निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।
 कर्तव्यं नाऽभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना ॥११५॥
 पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा परत्र च परां गतिम् ।
 सर्वे दधुर्भहाशङ्खाञ्जुराः परिघवाहवः ॥११६॥
 सोमकाश्च सपञ्चाला प्राहृष्यन्त जनेश्वर ।
 ततस्तूर्यसहस्रेषु नदत्सु स महाबलः ॥११७॥
 आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननाद च ।
 सेनयोरुभयोश्चापि गाङ्गेये निहते विभौ ॥११८॥
 संन्यस्य वीराः शस्त्राणि प्राध्यायन्त समन्ततः ।
 प्राक्रोशन्प्राद्रवंश्चाऽन्ये जग्मुर्मोहं तथाऽपरे ॥११९॥
 क्षत्रं चाऽन्येऽभ्यनिन्दन्त भीष्मं चाऽन्येऽभ्ययूजयन्
 ऋषयः पितरश्चैव प्रशशंसुर्भहाव्रतम् ॥१२०॥
 भरतानां च ये पूर्वे ते चैनं प्रशशंसिरे ।
 महोपनिषदं चैव योगमास्थाय वीर्यवान् ॥१२१॥
 जपञ्ज्ञान्तनवो धीमान्कालाकांक्षी स्थितोऽभवत् ॥१२२॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मनिपातने ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

लिए वे उद्यत न हो सकें। जैसे किसी ने उनके
 पाओं को पकड़ लिया हो इस प्रकार वे लोग पाण्डवों
 पर आक्रमण करने के लिए नहीं दौड़ सकें। महा-
 पराक्रमी और अवध्य भीष्म के गिरने पर कुरुराज
 दुर्योधन को चारों ओर शून्य और अधैरा देख पड़ने
 लगा॥११२॥११४॥हम लोगों के सब अह्न अर्जुन
 के बाणों से क्षत-विक्षत हो रहे थे, हमारे अनेक वीर

आर अजेय भीष्म भी मार जा चुके थे। अर्जुन ने
 हारे हुए हम लोग कुछ अपना कर्तव्य न निश्चिन्त
 कर सके। पाण्डव लोग इस लोक में विजय और
 परलोक के लिए परम गति प्राप्त करके आनन्द से
 शङ्ख बजाने लगे॥११५॥११६॥सुत्रप, सोमक और
 पाञ्चालगण आनन्द से पुलकित हो उठे। सैकड़ों
 तुरही और नगाड़े बजने लगे। महाबली भीमसेन

बारम्बार सिंहनाद करते हुए तल्लोके और उछलने लगे । भीष्म की मृत्यु होने पर दोनों पक्ष के सैनिक शत्रुओं को रखकर चिन्ता करने लगे । कुछ लोग चिल्लाते लगे और कुछ लोग खेद और दुःख से अचेत-से हो गये । कुछ लोग क्षत्रिय-धर्म की निन्दा करने लगे और कुछ लोग महात्मा भीष्म की प्रशंसा करने लगे ।

ऋषिगण, पितृगण और भरतकुल के स्वर्गवासी पूर्व-पुरुषगण भीष्म को साधुवाद देने लगे । महावीर भीष्म शरशय्या पर पड़े पड़े उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करते हुए योगधारणपूर्वक महापनिषद गायत्री का जाप करने लगे॥११७॥१२२॥

—०—

भीष्मपर्व का एक सौ उन्नास अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११९ ॥

अथ विंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथमासंस्तदा योधा हीना भीष्मेण सञ्जय ।

बलिना देवकल्पेन गुर्वथं ब्रह्मचारिणा ॥ १ ॥

तदैव निहतात्मन्ये कुरुनन्यांश्च पाण्डवैः ।

न प्राहरद्यदा भीष्मो घृणिस्वाद् द्रुपदात्मजम् ॥ २ ॥

ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत्प्रभविष्यति ।

अद्याऽहं पितरं श्रुत्वा निहतं स्म सुदुर्मतिः ॥ ३ ॥

अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।

श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते ॥ ४ ॥

यदन्यन्निहतेनाऽऽजौ भीष्मेण जयमिच्छता ।

चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत ॥ ५ ॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे ।

न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैरयं पुरा ॥ ६ ॥

स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।

सञ्जय उवाच—सायाहे निहतो भूमौ धार्तराष्ट्रान्विपादयन् ॥ ७ ॥

पञ्चालानां ददौ हपं भीष्मः कुरुपितामहः ।

स शेते शरतल्पस्थो मेदिनीमस्पृशंस्तदा ॥ ८ ॥

एक सौ बीस अध्याय ॥ १२० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पिता के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहनेवाले देवतुल्य महात्मा भीष्म के गिर जाने पर, उनसे हीन, मेरे पक्ष के योद्धाओं की क्या दशा हुई ! जब घृणा के कारण भीष्म ने द्रुपद के पुत्र शिखण्डी पर प्रहार नहीं किया, तभी मैंने समझ लिया कि पाण्डवों के हाथों कोरम मोरे गये । हा ! इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा !

॥११३॥ पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर भीष्म दुर्मति का हृदय सौ दुकड़े होकर फट क्यों नहीं जाता ? मेरा हृदय अश्व ही वज्र का बना हुआ है । हे सुव्रत ! जय की इच्छा रखनेवाले कुरुसिंह भीष्म ने युद्ध में गिरने के अनन्तर और जो कुछ किया हो वह मेरे आगे कहो । देवव्रत की बारम्बार शत्रुओं ने बाणों से मारा, यह अनर्थ मुझसे नहीं

भीष्मे रथात्प्रपतिते प्रच्युते धरणीतले ।	
हाहेति तुमुलः शब्दो भूतानां समपद्यत ॥ ९ ॥	
सीमावृक्षे निपतिते कुरूणां समितिञ्जये ।	
सेनयोरुभयो राजन्क्षत्रियान्भयमाविशत् ॥ १० ॥	
भीष्मं शान्तनवं दृष्ट्वा विशीर्णकवचध्वजम् ।	
कुरवः पर्यवर्तन्त पाण्डवाश्च विशाम्पते ॥ ११ ॥	
खं तमः संवृतमभूदासीद्भानुर्गतप्रभः ।	
ररास पृथिवी चैव भीष्मे शान्तनवे हते ॥ १२ ॥	
अयं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो ह्ययं ब्रह्मविदां वरः ।	
इत्यभाषन्त भूतानि शयानं पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥	
अयं पितरमाज्ञाय कामार्त्तं शान्तनुं पुरा ।	
ऊर्ध्वरेतसमात्मानं चकार पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥	
इति स्म शरनल्पस्थं भरतानां महत्तमम् ।	
ऋषयस्त्वभ्यभाषन्त सहिताः सिद्धचारणैः ॥ १५ ॥	
हते शान्तनवे भीष्मे भरतानां पितामहे ।	
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव हि मारिप ॥ १६ ॥	
विषण्णवदनाश्चाऽऽसन्हतश्रीकाश्च भारत ।	
अतिष्टन्त्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ॥ १७ ॥	
पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः ।	
सर्वे दध्मुर्महाशङ्कान्हेमजालपरिष्कृतान् ॥ १८ ॥	

सहा जाता । जिन पराक्रमी भीष्म को पहिले दिव्य अस्त्रों के द्वारा परशुराम भी नहीं मार सके, वही भीष्म आज पाञ्चालकुमार शिशुण्डी के हाथ से मारे गये ॥१॥ आमन्त्रण ने कहा — हे राजेन्द्र ! पितामह भीष्म सन्ध्या के समय रथ में गिरकर कौरवों को विषादमग्न और पाण्डवों तथा पाञ्चालों को आनन्दित करते हुए शरशय्या पर बैठ गये । उनका शरीर धूपी से ऊपर ही रहा । अमन्य बाणों से टिक्त-भिन्न होकर भीष्म जब रथ से गिरे तब मग्न लोग हाहाकार करने लगे । सीमावृक्ष की तरह दोनों सेनाओं के मध्य में जब भीष्म गिर पड़े तब दोनों पक्ष के क्षत्रिय अथवा भयभीत और उद्विग्न हो उठे ॥१॥ ॥

कवच और ध्वजा जिनकी कट गई है ऐसे पितामह भीष्म के गिरने पर कौरव और पाण्डव दोनों में युद्ध बन्द कर दिया । उस समय आकाश में घना अंधेरा छा गया और अस्त्र होने हुए सूर्य की प्रभा मलिन हो गई । धूपी के फटने का सा दारुण शब्द होने लगा । पुरुषश्रेष्ठ भीष्म पितामह को शरशय्या पर पड़े देखकर सब प्राणी कहने लगे कि ये महामां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्मजनियों की गति हैं ॥११॥ १२॥ शर शय्या पर पड़े हुए भीष्म को देखकर निन्द-चारणों सहित ऋषिगण परस्पर कहने लगे कि इन्होंने पूर्ण समय में अपने पिता शान्तनु को कामार्त्तज्ञित्य देकर, उन्हें सुगी करने के लिए, जन्मभर नेष्टि-

हर्षान्तूर्यसहस्रेषु वाद्यमानेषु चाऽनघ ।
 अपश्याम महाराज भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥
 विक्रीडमानं कौन्तेयं हर्षेण महता युतम् ।
 निहत्य तरसा शत्रुं महाबलसमन्वितम् ॥ २० ॥
 सम्मोहश्चापि तुमुलः कुरुणामभवत्ततः ।
 कर्णदुर्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥
 तथा निपतिते भीष्मे कौरवाणां पितामहे ।
 हाहाभूतमभूत्सर्वं निर्मर्यादमवर्तत ॥ २२ ॥
 दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
 उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ २३ ॥
 भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः खेनाऽनीकेन दंशितः ।
 प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यं सविपादयन् ॥ २४ ॥
 तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कुरवः पर्यवारयन् ।
 दुःशासनं महाराज किमयं वक्ष्यतीति च ॥ २५ ॥
 ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः ।
 द्रोणस्तत्राऽप्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ ॥ २६ ॥
 स संज्ञामुपलभ्याऽऽशु भारद्वाजः प्रतापवान् ।
 निवारयामास तदा खान्यनीकानि मारिव ॥ २७ ॥
 विनिवृत्तान्कुरुन्द्वा पाण्डवाऽपि स्वसैनिकान् ।
 दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तारपर्यवारयन् ॥ २८ ॥

ब्रह्मचारी रहने का प्रण किया था । हे महाराज ! भरतवंश के पितामह भीष्म के मारे जाने पर आपके पुत्रों को कुछ नहीं सूझ पड़ता था कि वे क्या करें । वे श्रीहीन लज्जित विपादमग्न होकर, सिर झुकाकर, शोक करने लगे ॥ १४१७ ॥ अधर संग्रामभूमि में स्थित पाण्डव लोग विजय पाकर सुवर्णभूषित महाशङ्ख बजाने लगे । अनेक तुरही और नगाड़े आदि बजाकर पाण्डवों की सेना हर्ष प्रकट करने लगी । महाबली शत्रु के मारे जाने के कारण परम आनन्दित भीमसेन बाणों की तरह उड़लने और कूदने लगे । किन्तु कौरवगण चिन्तित हो गये । कर्ण और दुर्योधन [सन्ताप, क्षोभ और क्रोध के मारे] बारम्बार आस लेने लगे ।

सब लोग व्यग्रभाव से इधर-उधर दौड़ते हुए हाहा-कार करने लगे ॥ १८११ ॥ भीष्म के गिरने पर दुर्योधन की आज्ञा से कवचधारी दुःशासन अपनी बड़ी भारी सेना लेकर बड़े वेग से द्रोणाचार्य के दल में गये ॥ २१२४ ॥ दुःशासन को आते हुए देखकर, ये क्या कहेंगे, इस कौतुहल से सब कौरवों ने उनको चारों ओर से घेर लिया । दुःशासन ने द्रोणाचार्य के पास जाकर भीष्म के गिरने का वृत्तान्त कहा । वह अप्रिय समाचार सुनतेमारा ही द्रोणाचार्य मुश्किल हो गये । सबैत हो जाने पर प्रतापी द्रोणाचार्य ने अपनी सेना को युद्ध बन्द कर देने की आज्ञा दी ॥ २५१२७ ॥ कौरवों को युद्ध बन्द करते देखकर पाण्डवों ने भी

निवृत्तेषु च सैन्येषु पारम्पर्येण सर्वशः ।
 निर्मुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः ॥ २९ ॥
 व्युपरम्य ततो युद्धाद्योधाः शतसहस्रशः ।
 उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवाऽमराः ॥ ३० ॥
 ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम् ।
 अभिवाद्याऽवतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३१ ॥
 अथ पाण्डून्कुलंश्चैव प्रणिपत्याऽग्रतः स्थितान् ।
 अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३२ ॥
 स्वागतं वो महाभागा स्वागतं वो महारथाः ।
 तुष्यामि दर्शनाच्चाऽहं युष्माकममरोपमाः ॥ ३३ ॥
 अभिमन्याऽथ तानेवं शिरसा लम्बताऽब्रवीत् ।
 शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥
 ततो नृपाः समाज्जुस्तनूनि च मृदूनि च ।
 उपधानानि मुख्यानि नैच्छन्तानि पितामहः ॥ ३५ ॥
 अथाऽब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान् नृपान् ।
 नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥ ३६ ॥
 ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम् ।
 धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥ ३७ ॥
 धनञ्जय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते ।
 दीयतामुपधानं नै यद्युक्तमिह मन्यसे ॥ ३८ ॥

श्रीप्रणामी घोड़ों पर दूतों को भेजकर युद्ध बन्द करा दिया। सत्र सेनाएँ युद्ध बन्द करके एकत्रित हुईं। तब सब राजा लोग कानच गोलकर भीष्म के पास आये। सैरुङ्गा-सहस्रों योद्धा युद्ध बन्द करके, प्रजापति के पास देवनाओं की तरह, पितामह भीष्म के पास आये॥२८।३॥ इस प्रकार पाण्डव और कौरव दोनों, शरशय्या पर लेटे हुए, भीष्म के पास आकर उन्हें प्रणाम करने सम्मुख खड़े हो गये। तब धर्मार्मा भीष्म ने उन सब से स्नेह के साथ कहा हे महाभाग क्षत्रियो ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। हे महारथी शिरो ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। हे वीरो ! मैं तुम्हें देवदेव बहुत प्रमत्त हुआ। हे भगवन् ! भीष्म

का सिर नीचे लटक रहा था। उन्होंने सबका स्वागत करने के पश्चात् कहा - 'हे राजाओ ! मेरा सिर बहुत नीचे लटक रहा है, इसलिए मुझे तक्रिया दो' ॥३१।३४॥ राजा लोग और कारवगण उभी समय बढ़िया कोमट मूल्यवान् तक्रिये देकर दीड़े आये; किन्तु भीष्म ने उनके लिए अनिच्छा प्रकट करके हँसकर कहा—'हे नरपत्नियो ! ये तक्रिये वीरशय्या के योग्य नहीं हैं' ॥३५।३६॥ अब अर्जुन की ओर देखकर कहा—हे महाबाहू अर्जुन ! मेरा सिर बहुत नीचे लटक रहा है। तुम इस वीर शय्या के योग्य जो तक्रिया समझने दो, वह मुझे दो ॥३६।३८॥ मन्त्रय कहते हैं कि हे मातागन ! तब अर्जुन ने नेत्रों में

सञ्जय उवाच—समारोप्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम् ।
 नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥
 आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर ।
 प्रेप्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह ॥ ४० ॥
 तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते ।
 उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपदधत्स्व मे ॥ ४१ ॥
 शयनस्याऽनुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे ।
 त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ४२ ॥
 क्षत्रधर्मस्य वेत्ता च बुद्धिसत्त्वगुणान्वितः ।
 फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत् ॥ ४३ ॥
 गृह्याऽनुमन्त्य गाण्डीवं शरान्सन्नतपर्वणः ।
 अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम् ॥ ४४ ॥
 त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः ।
 अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना ॥ ४५ ॥
 अतुष्यद्भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित् ।
 उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद्वन्द्वजयम् ॥ ४६ ॥
 प्राह सर्वान्समुद्रीक्ष्य भरतान्भारतं प्रति ।
 कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवधनम् ॥ ४७ ॥
 शयनस्याऽनुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।
 यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुपा ॥ ४८ ॥
 एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितेष्ठता ।
 स्वसव्यं क्षत्रियेणाऽऽजौ शरतल्पगतेन वै ॥ ४९ ॥

औसू भरकर, श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष चढ़ाकर पितामह को प्रणाम करके कहा—हे पितामह ! मैं आपका आज्ञापालक हूँ । हे धनुर्धरश्रेष्ठ ! हे कुरुश्रेष्ठ ! आज्ञा दीजिए क्या करूँ ॥ ३९, ४० ॥ भीष्म ने कहा—हे बेटा ! मेरा सिर नीचे लटक रहा है । हे अर्जुन ! तुम समर्थ, सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ, क्षत्रिय-धर्म के ज्ञाता और बुद्धिमान हो । तुम सत्व और गुण से सम्पन्न वीर पुरुष हो । इसलिए शीरशय्या के योग्य तकिया मुझे दो ॥ ४१, ४२ ॥ “जो आज्ञा” कहकर, अपना

कर्तव्य विचारकर, शत्रुविजयी अर्जुन ने गाण्डीव को अभिमन्त्रित किया और तीक्ष्ण धारवाले तीन बाण लेकर उस पर चढ़ाये । फिर पितामह को प्रणाम करके वे तीनों बाण मस्तक में मारे । उन बाणों पर तकिये के समान भीष्म का सिर ठहर गया ॥ ४३, ४५ ॥ सुहृदों का आनन्द बढ़ानेवाले अर्जुन ने ठीक तकिया दिया, यह देखकर धर्मात्मा धर्मार्थतत्त्व के ज्ञाता भीष्म उन पर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अर्जुन का अभि-नन्दन करके सब कौरवों की ओर देखकर कहा—

एवमुक्त्वा तु वीभत्सुं सर्वास्तानव्रवीद्वचः ।
 राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान् ॥ ५० ॥
 पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाऽभिसन्धितम् ।
 शिश्येऽहमस्मां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः ॥ ५१ ॥
 ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः ।
 दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ॥ ५२ ॥
 नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा ।
 विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान्सुहृदः सुप्रियानिव ॥ ५३ ॥
 परिखाः खन्यतामत्र ममाऽवसदने नृपाः ।
 उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः ॥ ५४ ॥
 उपारमध्वं संग्रामाद्वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः ।
 मञ्जय उवाच—उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ॥ ५५ ॥
 सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः ।
 तान्हृद्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ॥ ५६ ॥
 धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ।
 एवङ्गते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहाऽस्ति किम् ॥ ५७ ॥
 क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्रातोऽस्मि परमां गतिम् ।
 नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ॥ ५८ ॥
 एभिरेव शरैश्चाऽहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः ।
 तच्छृत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ५९ ॥

हे अर्जुन ! तुमने इस वीरशय्या के योग्य तस्त्रिया
 मुझे दिया । तुम यह न देकर और प्रजार का तस्त्रिया
 देते, तो मैं कुपित होकर तुमको शाप दे देता । हे
 महाबाहो ! संग्राम में धर्मनिरत क्षत्रियों के लिए ऐसी ही
 शय्या और ऐसा ही तस्त्रिया होना चाहिये ॥ ४६।४७॥
 महान्मा भीष्म ने अर्जुन से था कहकर उनके पास
 खड़े हुए राजाओं और राजपुत्रों में कहा हे राजाओं
 और राजपुत्रों ! देखो, अर्जुन ने मुझे यह तस्त्रिया
 दिया है । मैं सूर्य के उत्तरायण होने तक इसी शय्या
 पर लेटा रहूँगा । सूर्य जब सात घोड़ों से युक्त और
 तेज से प्रदीप्त रथ पर चढ़कर उत्तरायण मार्ग में
 प्राप्त होंगे तब जो लोग मेरे समान आंगे वे देखेंगे ।

कि मैं अपने प्रियतम प्राणों को छोड़ूँगा । इस समय
 तुम लोग मेरे इस निग्रामस्थान के चारों ओर खड़ी
 खेद हो । मैं यहीं शरशय्या पर भगवान् सूर्य की
 उपासना करूँगा । मेरा यह भी अनुरोध है कि तुम
 लोग परस्पर वैर-भाव छोड़कर यह युद्ध बन्द कर
 दो ॥ ५०।५१॥ सञ्जय कहते हैं—अब दुर्योधन की
 आज्ञा से शल्य-चिकित्सा में निपुण सुशिक्षित वैद्य
 लोग महाम-पट्टों का सय सामान लेकर, चिकित्सा
 के लिए भीष्म पितामह के पास आये । धर्मान्मा
 भीष्म ने उन्हें देवभर राजा दुर्योधन से कहा—तुम
 इन चिकित्सकों को जो कुछ देना है वह धन देकर
 सञ्चार के साथ विदा कर दो । मैंने क्षत्रिय की प्रशम-

वैद्यान्विमर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ।
 ततस्ते विम्वयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ॥ ६० ॥
 स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मन्याऽमिततेजसः ।
 उपधानं ततो दत्त्वा पितुस्ते मनुजेश्वराः ॥ ६१ ॥
 सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः ।
 उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ॥ ६२ ॥
 तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिःप्रदक्षिणम् ।
 विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ॥ ६३ ॥
 वीराः स्वशिविराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः ।
 निवेशाऽभ्युपागच्छन्तायाहे रुधिरोक्षिताः ॥ ६४ ॥
 निविष्टान्पाण्डवांश्चैव प्रीयमाणान्महारथान् ।
 भीष्मस्य पतने दृष्टानुपगम्य महाबलः ॥ ६५ ॥
 उवाच माधवः काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
 दिष्ट्वा जयसि कौरव्य दिष्ट्वा भीष्मो निपातितः ॥ ६६ ॥
 अवध्यो मानुषेरेव सत्यसन्धो महारथः ।
 अथवा दैवतैः सार्धं सर्वशास्त्रस्य पारगः ॥ ६७ ॥
 त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो द्यौरेण चक्षुषा ।
 एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ ६८ ॥
 तव प्रसादाद्विजयः क्रोधात्तव पराजयः ।
 त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ॥ ६९ ॥

नीय गति प्राप्त की है, इस समय इन वैद्यों की क्या आवश्यकता है ? हे राजा लोगो ! मैं शरद्व्या पर लेटा हुआ हूँ; यह मेरा धर्म नहीं है कि चिकित्सा कराकर फिर आरोग्य होने की इच्छा करूँ। दिव्यो ! इन वाणों की ही चिता में मुझे भस्म करना॥५५५९॥ राजा दुर्योधन ने पितामह भीष्म की यह आज्ञा सुनकर वैद्यों को, यथोचित धन देकर, मरकार के साथ चिदा कर दिया। हे महाराज ! अनेक देशों के निवासी राजा लोग महतिजस्वी भीष्म को यह धर्म-निष्ठा और धर्मानुकूल शृष्टि की वन्दना देकर चला गये। उन सब राजाओं, कौरवों और पाण्डवों ने भीष्म के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, और

तब पर उनकी प्रदक्षिणा की। फिर उनके चारों ओर शस्त्र नियुक्त करके सब लोग चिन्ता करते हुए अग्नि अपने शिविर को गये। सन्ध्या हो जाने पर रुधिर-भिम्ब, पाण्डव और धके हुए सब लोग दीन भाव से अग्नि डेरों में पहुँचे॥५९॥६४॥ भरतकुण्ड-पितामह भीष्म के युद्ध में गिरने पर प्रसन्न पाण्डवगण अग्नि शिविर में एकत्र हुए। उस समय महान्या श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पास आकर कहा—हे महाराज ! आपके ममर में अमर-सदृश भीष्म को गिराकर आज जय प्राप्त की, इससे बढ़कर सांसारिक क्या हो सकता है। देवता, मनुष्य, दानव आदि कोई भी इन युद्ध-निपुण सन्ध्यात भीष्म को युद्ध में परास्त



(१) वीर अर्जुन का ज़मीन में बाण मारकर जल का फवारा भीष्म पितामह जी के मुख में डालना ।

अनाश्रयों जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव ।
 रक्षिता समरे नित्यं नित्यं चाऽपि हिते रतः ॥ ७० ॥
 सर्वथा त्वां समासाद्य नाऽङ्घ्र्यमिति मे मतिः ।
 एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः ।
 तवैवेतमुक्तरूपं वचनं पार्थिवोत्तम ॥ ७१ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मत्रयपर्वणि भीष्मोपधानदत्ते विंशत्रिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

नहीं कर सकता; किन्तु आपकी घोर दृष्टि में पड़कर ही आज उनकी मृत्यु हुई। आप जिसकी कोप की दृष्टि से देखें वह किसी प्रकार नहीं बच सकता॥६५।६८॥ तब धर्मराज ने जनार्दन को सम्बोधन करके कहा— हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे ही प्रसाद और अनुग्रह से आज हमने जय प्राप्त की है। तुम्हारे ही कोप में कौरव परास्त हुए हैं। तुम हमारे लिए परम आश्रय और भक्तों को

अमय देनेवाले हो। तुम जिनके हितेषां और रक्षक हो, उनकी जय होने में आश्चर्य ही क्या है? तुमको सर्वथा अपना आश्रय बना लेनेवाला जो पा जाय वह थोड़ा है। मैं यही समझता हूँ। धर्मराज के ये वचन सुनकर महात्मा श्रीकृष्ण मुसकराकर बोले— हे महाराज! ऐसे नम्र वचन कहना सर्वथा आपके ही योग्य कार्य है॥६८।७१॥

भीष्मपर्व का एक सौ बीस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२० ॥

अथ एकत्रिंशद्विकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

सञ्जय उवाच—व्युष्टायां तु महाराज शर्वयां सर्वपार्थिवाः ।
 पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन्पितामहम् ॥ १ ॥
 तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तम ।
 अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ २ ॥
 कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्मल्यैश्च सर्वशः ।
 अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्रशः ॥ ३ ॥
 स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः ।
 समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ॥ ४ ॥
 तूर्याणि शतसंख्यानि तथैव नटनतकाः ।
 शिल्पिनश्च तथाऽऽजग्मुः कुरुवृद्धं पितामहम् ॥ ५ ॥

एक सौ इक्यास अध्याय ॥ १२१ ॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातःकाल फिर कौरव, पाण्डव और उनके अधीन अन्य राजा लोग शरशय्या पर पड़े हुए महारथों भीष्म के पास गये। उन्हें सबने प्रणाम किया। सहस्रों कन्याएँ वहाँ जाकर भीष्म के ऊपर चन्दन-चूर्ण, खिले, माला-फल आदि बरमाने लगी। प्रजा

जैसे भगवान् सूर्य को उगमना करती है वैसे ही स्त्रियाँ, बालक, वृद्ध, और अन्यान्य देखनेवाले लोग भी भीष्म को देखने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित होने लगे॥१।१॥।वाजे बजानेवाले, नट, नर्तक और अनेक प्रकार के शिल्पी लोग भी भीष्म के पास गये। कौरव और पाण्डवगण अस्त्र-शस्त्र, कवच आदि युद्ध

उपारम्य च युद्धेभ्यः सन्नाहान्विप्रमुच्य ते ।
 आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः ॥ ६ ॥
 अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिन्दमम् ।
 अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः ॥ ७ ॥
 सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता ।
 शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवाऽऽदित्यमण्डलम् ॥ ८ ॥
 विवभौ च नृपाणां सा गङ्गासुतमुपासताम् ।
 देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥ ९ ॥
 भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निष्ठह्य भरतर्षभ ।
 अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १० ॥
 शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसम्पातमूर्छितः ।
 पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान्प्रत्यभापत ॥ ११ ॥
 ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजन्हुः समन्ततः ।
 भक्ष्यानुचावचाव्रजन्वारिकुम्भांश्च शीतलान् ॥ १२ ॥
 उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत् ।
 नाऽद्याऽतीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः ॥ १३ ॥
 अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम् ।
 प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥ १४ ॥
 एवमुक्त्वा शान्तनवो निन्दन्वाक्येन पार्थिवान् ।
 अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभापत भारत ॥ १५ ॥

की सज्जा त्यागकर, पहले की तरह प्रतिपूर्क अस्था
 की छुट्टाई-बढ़ाई के क्रम से, भीष्म के पास बराबर-
 बराबर बैठे । असंख्य राजाओं के मध्य तेजस्वी भीष्म
 से शोभित वह भरतकुट की सभा आकाश में स्थित
 सूर्यमण्डल के समान शोभित हुई। ॥१५॥ द्रौणिगण जैसे
 इन्द्र की उपासना किया करते हैं वैसे ही सब राजा
 भीष्म के पास शोभायमान हुए । महामा भीष्म अमन्य
 बाणों से बिन्धे हुए और पीड़ित होकर भी धैर्य से
 उस वेदना को संभाले हुए थे । उन्होंने नाराज की
 तरह लम्बे आस लेकर, सब राजाओं की ओर देख-
 कर, पाने के लिए जल माँगा ॥१६॥ उसी समय
 क्षत्रियगण पाणों और से अनेक प्रकार के उत्तम भोजन

और खादिष्ट शीतल जल से भरे कलश ले आये ।
 भीष्म ने वह जल देखकर राजाओं से कहा—हे
 नरपाले ! मैं इस शरशय्या पर लेटा हुआ हूँ सही,
 किन्तु अब मनुष्यलोक में मेरा निवास नहीं है । केवल
 उत्तरायण की प्रतीक्षा में भरे प्राण अटके हुए हैं
 [वास्तव में मैं मृत्युन्म्य और परलोकवासी हो चुका
 हूँ । यह समय ऐसा नहीं कि मैं इस लोक का सुन्दर
 भोजन और यह जल ग्रहण करूँ] ॥१२॥१४॥ इस
 प्रकार राजाओं की निन्दा करके महामा भीष्म फिर
 बोले—हे नरपणियो ! इस समय अर्जुन को देखने
 की मुझे बड़ी अभिलाषा है । हे महाराज ! तब
 महाबाहु अर्जुन ने विनामह के पास जाकर प्रणाम

अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम् ।
अतिष्ठत्प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाऽब्रवीत् ॥ १६ ॥
तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याऽग्रतः स्थितम् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयम् ॥ १७ ॥
दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः ।
मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति ॥ १८ ॥
वेदनार्तशरीरस्य प्रयच्छाऽपो ममाऽर्जुन ।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि ॥ १९ ॥
अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपच्छतुः ॥ २० ॥
तस्य ज्यातलनिघोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि सर्वे श्रुत्वा च पार्थिवाः ॥ २१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः ।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २२ ॥
सन्धाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः ।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥
अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे ।
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा ॥ २४ ॥
शीतल्याऽमृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च ।
अतर्पयत्ततः पार्थः शीतया जलधारया ॥ २५ ॥
भीष्मं कुरुणामृपभं दिव्यकर्मपराक्रमम् ।
कर्मणा तेन पार्थस्य शकस्येव विकर्षतः ॥ २६ ॥

विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः ।
 तत्कर्म प्रेक्ष्य वीभत्सोरतिमानुषविक्रमम् ॥ २७ ॥
 सम्प्रावेपन्त कुरवो गावः शीतार्दिता इव ।
 विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन्सर्वतो नृपाः ॥ २८ ॥
 शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।
 तृतः शान्तवश्चाऽपि राजन्वीभत्सुमब्रवीत् ॥ २९ ॥
 सर्वपार्थिववीराणां सन्निधौ पूजयन्निव ।
 नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ॥ ३० ॥
 कथितो नारदेनाऽसि पूर्वर्षिरमितश्रुते ।
 वासुदेवसहायस्त्वं महत्कर्म करिष्यसि ॥ ३१ ॥
 यन्नोत्सहति देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम् ।
 विदुस्त्वां निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः ॥ ३२ ॥
 धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृपु ।
 मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः ।
 सारितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ ३४ ॥
 आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान्वरः ।
 जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम् ॥ ३५ ॥
 न वै श्रुतं धार्तराष्ट्रेण वाक्यं मयोच्यमानं विदुरेण चैव ।
 द्रोणेन रामेण जनार्दनेन मुहुर्मुहुः सञ्जयेनापि चोक्तम् ॥ ३६ ॥

स्थान से सुगन्धपूर्ण अमृततुल्य मधुर निर्मल शीतल
 जल की धारा ऊपर निकली । वह जल पीकर महा-मा
 भीष्म बहुत प्रसन्न और तृप्त हो गये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इन्द्र-
 मण्डप पराक्रमी अर्जुन ने इस प्रकार भीष्म को जल
 पिलाया । अर्जुन का यह अद्भुत कार्य देखकर मन
 राजा लोग अत्यन्त विस्मित होकर बस हिलाने लगे
 तथा कौरव लोग जोड़े में घबड़ाने लगे । तब
 कः मौर कोपने लगे । उस समय चारों ओर शङ्ख
 और मण्डप बजने लगे ॥ २६ ॥ २७ ॥ महाराज ! इस
 प्रकार भीष्म ने तुम होकर सब राजाओं के आगे
 अर्जुन का प्रशंसा करके कहा है महाबाहू !
 मुझे जो कार्य आज कर दिखाना यह मुझसे लिये
 कुछ विचित्र नहीं है । पहले नागद क्रवि ने मुझसे

कहा था कि तुम पुरातन ऋषि नर हो । इन्द्र भी
 मय देवताओं के साथ मिलकर जो काम करने का
 माहम नहीं कर सकते वह कार्य तुम, श्रीकृष्ण की
 सहायता से, अकेले ही करोगे । हे अर्जुन ! पृथ्वी-
 मण्डल भर पर तुम अद्वितीय अर्थात् सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर
 हो ॥ २७ ॥ ३३ ॥ मैंने सब प्राणियों में मनुष्य, पक्षियों
 में गरुड, जलजन्तुओं में सागर, चौरावों में गाय, जंगली
 पदार्थों में आदिप, पर्वतों में हिमाचल और जानियों
 में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, वैसे ही तुम सब धनुर्धारियों में
 श्रेष्ठ हो । मैं, विदुर, द्रोणाचार्य, कर्ण, जनार्दन कृष्ण
 और मन्त्रय, सबने बारम्बार दूयोधन को हिन का
 उपदेश किया; किन्तु मन्दमति दूयोधन ने अधर्मा-
 पूर्ण किया का कहा नहीं माना । इस कारण शास्त्र-

परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो दुर्योधनो न च तच्छ्रद्धधाति ।
 स शेप्यते वै निहताश्विराय शास्त्रातिगो भीमवलाभिभूतः ॥ ३७ ॥
 एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो दुर्योधनो दिनमना बभूव ।
 तमब्रवीच्छान्तनवोऽभिवीक्ष्य निबोध राजन्भव वीतमन्युः ॥ ३८ ॥
 दृष्टं दुर्योधनैतत्ते यथा पार्थेन धीमता ।
 जलस्य धारा जनिता शीतस्याऽमृतगन्धिनः ॥ ३९ ॥
 एतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन्नाऽन्यः कश्चन विद्यते ।
 आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ॥ ४० ॥
 ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ।
 धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैश्वतमथाऽपि वा ॥ ४१ ॥
 सर्वस्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः ।
 कृष्णो वा देवकीपुत्रो नाऽन्यो वेदेह कश्चन ॥ ४२ ॥
 अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथञ्चन ।
 अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः ॥ ४३ ॥
 तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाऽऽहवशोभिना ।
 कृतिना समरे राजन्सन्धिर्भवतु मा चिरम् ॥ ४४ ॥
 यावत्कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम ।
 तावत्पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४५ ॥
 यावन्न ते चमूः सर्वाः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 नाशयत्यर्जुनस्तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४६ ॥
 यावत्सिष्ठन्ति समरे हतशेपाः सहोदराः ।
 नृपाश्च बहवो राजन्स्तावत्सन्धिः प्रयुज्यताम् ॥ ४७ ॥

मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाला दुर्मति दुर्योधन भीम-
 सेन के वच से बहुत ग्रीष्म ग्रस्त होगा ॥ ३७ ॥
 भीष्म के इन तिरस्कारपूर्ण वाक्यों को सुनकर कौरवेन्द्र
 दुर्योधन बहुत ही व्याकुल हुए । उनका दुःखित देह-
 कर गडगडा भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन ! तुम इस
 समय क्रोध को छोड़ दो । बुद्धिमान् बलीशक्तिशाली
 अर्जुन ने जिस प्रकार मुझे जल पिलाया, सो तुम्हें
 प्रायशः देव दिया । इस लोक में ऐसा कार्य और
 कौन कर सकता है ॥ ३८ ॥ आग्नेय, वायु, सौम्य,

वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत और ब्राह्म आदि सप्त
 दिव्य अस्त्र महा मा श्रीकृष्ण और अर्जुन के अतिरिक्त
 और कोई नहीं जानता ॥ ४० ॥ हे भाई ! जिनके ऐसे
 अंगीकृत कार्य हैं उन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता ।
 हे राजेन्द्र ! इन मायशायण युद्धनिपुण पाण्डवों के
 साथ सन्धि कर ले । मरेशक्तिमान् महा मा श्रीकृष्ण
 जिनके पक्ष में हैं उनके साथ सन्धि कर लेना ही
 श्रेष्ठ है । यदि मैं वचें हुए तुम्हारे भाई और मेरे
 राजा लोग जरूर नष्ट हो जायें, उनके परिते ही

न निर्दहति ते यावत्क्रोधदीप्तेक्षणश्चमूम् ।
 युधिष्ठिरो रणे तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४८ ॥
 नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ।
 यावच्चमूं महाराज नाशयन्ति न सर्वशः ॥ ४९ ॥
 तावत्ते पाण्डवैर्वीरैः सौहार्दं मम रोचते ।
 युद्धं मदन्तमेवाऽस्तु तात संशाम्य पाण्डवैः ॥ ५० ॥
 एतन्तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयाऽनघ ।
 एतत्क्षममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च ॥ ५१ ॥

त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः पर्याप्तमेतद्यत्कृतं फाल्गुनेन ।
 भीष्मस्याऽन्तादस्तु वः सौहार्दं च जीवन्तु शेषाः साधु राजन्प्रसीद ॥ ५२ ॥
 राजस्याऽर्धं दीयतां पाण्डवानामिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभिधातु ।
 मा मित्रध्रुवपार्थिवानां जघन्यः पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र ॥ ५३ ॥
 ममाऽवसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां सङ्गच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः ।
 पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन् ॥ ५४ ॥
 न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्धया ।
 तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्य सर्वे सत्यामेतां भारतीमीरयामि ॥ ५५ ॥
 एतद्वाक्यं सौहृदादापगेयो मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा ।
 तूष्णीमासीच्छल्यसन्तप्तसर्मा योज्याऽऽत्मानं वेदानां संनियम्य ॥ ५६ ॥

सञ्जय उवाच—धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम् ।

नाऽरोचयत पुत्रस्ते मुमुर्षुरिव भेषजम् ॥ ५७ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवपर्वणि दुर्योधन प्रति भीष्मावाक्ये एकविंशतिशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

सन्धि कर लो॥ ५१॥ ४६॥ जब तक राजा युधिष्ठिर का कोप रूप प्रगलित अग्नि तुम्हारी सारी सेना को भस्म नहीं कर देता, उसके पहले ही सन्धि कर लो । जब तक नकुल, सहदेव और भीमसेन तुम्हारी सेना के महावीरों को नष्ट नहीं कर देते, उनके पहले ही महावीर पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेना अच्छा है । यही मेरी सम्मति है । मेरी मृत्यु से ही इस युद्ध का अन्त हो जाय॥ ४७॥ ५०॥ हे दुर्योधन ! पाण्डवों के साथ होनेवाले युद्ध की शान्ति के लिए मैंने जो तुमसे कहा है वह तुम्हारे और तुम्हारे कुल के लिए अत्यंत श्रेयस्कर है । इसलिए क्रोध त्यागकर

शान्त भाव से पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो । अर्जुन ने अब तक जो किया है वही तुम्हारे सामान होने के लिए पर्याप्त है । मेरे विनाश से ही इस घोर हत्याकाण्ड की समाप्ति हो जाय और तुम लोग शान्ति प्राप्त करो । पाण्डवों को आधा राज्य दे दो; युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ में जाकर राज्य करे । हे कुरुराज ! राजाओं की निन्दित नीच वृत्ति जो मित्र-द्रोह है, उसमें लिप्त होकर अकीर्ति एकत्रित मत करो ॥ ५१॥ ५३॥ मेरे अन्त से ही प्रजा शान्ति का सुगम भोगे । पर भुलाकर सब राजा लोग प्रमत्ततापूर्वक परस्पर मित्रे । हे गजेन्द्र ! विना पुत्र को, भागजा

मामा को, भाई भाई को और मित्र मित्र को फिर पावे । मैं सत्य कहता हूँ, तुम मोह के आवरण से यदि फिर युद्ध करोगे तो अन्त को असत्य तुम्हारा सर्वनाश होगा॥५४॥५५॥हे महाराज ! महाराम भीष्म सब राजाओं के और राजा दुर्योधन मे यों कहकर चुप हो रहे । क्योंकि उनके मर्मस्थल के घावों में

वेदना हो रही थी । सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो रहा है उसे ओषधि जैसे नहीं रुचती वैसे ही महाराम भीष्म के धर्मार्थ-सङ्गत परमहितकर वचन आपके पुत्र दुर्योधन को नहीं रुचे॥५६॥५७॥

—०—

भीष्मपर्व का एक मो इक्षीम अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२१ ॥

अथ द्वित्रिंशद्विंशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

सञ्जय उवाच — ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान्पुनः ।

तूष्णीम्भूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने ॥ १ ॥

श्रुत्वा तु निहतं भीष्मं राधेयः पुरुषर्षभः ।

इयदागतसन्त्रासस्त्वरयोपजगाम ह ॥ २ ॥

स ददर्श महात्मानं शरत्तल्पगतं तदा ।

जन्मशय्यागतं वीरं कार्तिकेयमिव प्रभुम् ॥ ३ ॥

निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः ।

भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाश्रुतिः ॥ ४ ॥

राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ नित्यमक्षिगतस्तव ।

द्वेष्णोऽहं तव सर्वत्र इति चैनमुवाच ह ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा कुरुवृद्धो हि वलीसंवृतलोचनः ।

शनैरुद्धीक्ष्य सस्नेहभिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

रहितं धिष्यमालोक्य समुत्सार्य च रक्षिणः ।

पितेव पुत्रं गाङ्गेयः परिभ्येकपाणिना ॥ ७ ॥

एहोहि मे विप्रतीप स्पर्धसे त्वं मया सह ।

यदि मां नाऽधिगच्छेथा न ते श्रेयो भुञ्जं भवेत् ॥ ८ ॥

एक सौ वार्षम अध्याय ॥ १२२ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! भीष्म जब चुप हो गये तब सब राजा लोग उठकर अपने स्थानों को गये । उस समय पुरुषश्रेष्ठ कर्ण, भीष्म के गिरने का समाचार सुनकर, कुछ सकुचिन होकर शीघ्रता के साथ उनके पास पहुँचे॥१२॥वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि जन्म-संसे कहीं शय्या पर पड़े हुए कार्ति-केय के समान भीष्म पितामह शरशय्या पर भेज भूँडे

पड़े हैं । कर्ण के नेत्रों में आँसू भर आये । उन्होंने गद्गद स्वर से कहा—हे कुरुश्रेष्ठ भीष्म ! मैं वही राधेय कर्ण हूँ जो सदा आपकी आँखों पर चढ़ा हुआ था और जिसको, निरपराध होने पर भी, आप द्वेषी समझने थे॥३॥पितामह भीष्म ने कर्ण के ये वचन सुनकर धीरे धीरे भेज म्बोले । फिर रक्षकों को वहाँ से हटाकर एकान्त में उन्होंने, पिता जैसे पुत्र को गर्ले से लगाता

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाऽधिरथः पिता ।
 सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया ॥ ९ ॥
 कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः ।
 न च द्वेपोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १० ॥
 तेजोवधनिमित्तं तु पुरुषं त्वाऽहमब्रुवम् ।
 अकस्मात्पाण्डवान्सर्वानवाक्षिपसि सुव्रत ॥ ११ ॥
 येनाऽसि बहुशो राज्ञा चोदितः सूतनन्दन ।
 जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी ॥ १२ ॥
 नीचाश्रयान्मत्सरेण द्वेषिणी गुणिनामपि ।
 तेनाऽसि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि ॥ १३ ॥
 जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि ।
 ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम् ॥ १४ ॥
 न त्वया सदृशः कश्चित्पुरुषेष्वमरोपम ।
 कुलभेदभयाच्चाऽहं सदा परुषमुक्तवान् ॥ १५ ॥
 इष्वस्त्रे चाऽस्त्रसन्धाने लाघवेऽस्त्रवले तथा ।
 सदृशः फाल्गुनेनाऽसि कृष्णेन च महात्मना ॥ १६ ॥
 कर्णं काशिपुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता ।
 कन्यार्थे कुरुराजस्य राजानो मृदिता युधि ॥ १७ ॥
 तथा च बलवान् राजा जरासन्धो दुरासदः ।
 समरे समरश्चाधिष्ठ त्वया सदृशोऽभवत् ॥ १८ ॥

है धीसे ही, लेहपूर्वक एक हाथ से कर्ण को हृदय से लगा लिया। इसके अनन्तर उन्होंने कहा—हे कर्ण ! आओ आओ। तुम मेरे प्रतियोगी हो। सदा मेरे साथ लग जाओ रथमेंवाले तुम्हीं एक हो। हे कर्ण ! जो तुम इस समय मेरे पास न आते तो कभी तुम्हारा कन्यापण न होता॥६।८॥हे महाबाहो ! मैंने नारदजी और व्यासजी के मुख से सुना है कि तुम राधाकपुत्र नहीं, पुत्री के पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं, साक्षात् मृत्युदेव हैं। हे माँ ! मैं माय कहता हूँ, तुम पर विशिष्ट मात्र भी द्वेष का भाव मेरे हृदय में नहीं है। मैंने तुम्हारा तेज घटने के लिए ही सदा तुम्हारे लिए कटार शस्त्रों का प्रयोग किया है। हे

कर्ण ! तुम्हारा जन्म धर्मयुग से हुआ है इसी कारण तुमने पाण्डवों का अनेक उष्ट और दुःख पहुँचे हैं। तुम्हारी बुद्धि और प्रवृत्ति इसी कारण गुणियों से द्वेष रखनी है। इसी में कुरुसभा में मैंने अनेक बार तुम को रूक्ष और कटु वचन सुनाये हैं। मैं जानता हूँ कि युद्ध में तुम बहुत निपुण हो और तुम्हारा पराक्रम तथा उष्ट शत्रुओं के लिए अत्यन्त असह्य है॥१०॥१३॥ हे कर्ण ! तुम ब्रह्मनिष्ठ, शूर और श्रेष्ठ दानी हो। तुम बाणमग्नान और हाथ की शक्ति में और अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान हो। तुम्हारे समान पुण्य समार में रहने ही कम होंगे। यह सब जानकर भी तुम्हारे कारण पाण्डवों और यौरों में कट पड़ने के

ब्रह्मण्यः सत्त्वयोधी च तेजसा च बलेन च ।
 देवगर्भसमः संख्ये मनुष्यैराधिको युधि ॥ १९ ॥
 व्ययनीतोऽद्य मन्युर्मे यस्त्वां प्रति पुरा कृतः ।
 देवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २० ॥
 सोदर्याः पाण्डवा वीरा भ्रातरस्तेऽरिसूदन ।
 सङ्गच्छ तैर्महाबाहो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ २१ ॥
 मया भवतु निर्वृत्तं वैरमादित्यनन्दन ।
 पृथिव्यां सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामयाः ॥ २२ ॥
 कर्ण उवाच — जानाम्येव महाबाहो सर्वभेतन्न संशयः ।
 यथा वदसि मे भीष्म कौन्तेयोऽहं न सूतजः ॥ २३ ॥
 अवकीर्णस्त्वहं कुन्त्या सूतेन च विवर्धितः ।
 भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥ २४ ॥
 वसुदेवसुतो यद्वत्पाण्डवाय दृढव्रतः ।
 वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः ॥ २५ ॥
 सर्वं दुर्योधनस्याऽर्थं त्यक्तं मे भूरिदक्षिण ।
 मा चैतद्व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव ॥ २६ ॥
 कोपिताः पाण्डवा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम् ।
 अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुम् ॥ २७ ॥
 देवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ।
 पृथिवीक्षयशंसीनि निमित्तानि पितामह ॥ २८ ॥

भय मे मैं मद्रा तुमको दुवचन कहता रहा ॥ १९ ॥
 ॥ १६ ॥ ॥ कर्ण ! तुमने कागिपुर मे जाकर कुरुराज
 की कन्या के लिए एक धनुर्मात्र की महायत्ना मे सब
 राजाओं को परास्त किया था । युद्धनिपुण दृढदर्प
 प्रबल मगराज जरामश्रु भी तुम्हारे समान नहीं थे ।
 तुम युद्ध करने मे देवमदश हो । हे कर्ण ! पाँच
 के द्वारा कोई भाग्य को टाल नहीं सकता ॥ १७ ॥
 इस समय जो तुम मेरा प्रिय घरना चाहते हो तो
 आगे भाई पाण्डवों से मित्र जाओ । मेरी मृत्यु मे
 हो गैर वीर यह अग्नि सुप्त जाय और मगराजा कुजाल
 मे रहे ॥ २१ ॥ २२ ॥ कर्ण ने कहा । हे महात्मा ! आप
 जो कुछ कह रहे हैं वह सब अचिन्त ही है । मैं सब-

कुछ कुन्ती का पुत्र हूँ, मृत को नहीं । किन्तु कुन्ती ने
 जब मुझे त्याग दिया था तब मृत ने ही मुझे पाण्ड-
 वों से मिल बड़ा किया । उमके पश्चात् दुर्योधन के
 ऐश्वर्य और वृथा मे मैं अब तक सुख भोग रहा हूँ ।
 इन बातों को मैं मिथ्या या वृथा नहीं कर सकता ।
 दृढव्रत श्रीकृष्ण जैसे पाण्डवों के लिए यश, धन,
 पुत्र, स्त्री और शरीर तक सब त्याग करने के लिए
 प्रसन्न रहने के योग्य ही मैं पुत्र, स्त्री आदि अपना मात्र
 कुछ दुर्योधन को अर्पण कर चुका हूँ । हे कौरव !
 क्षत्रियों के लिए व्याधि मृत्यु अनुचिन्त है और पाण्डव-
 गण भी दुर्योधन पर अत्यन्त क्रुपित हैं ॥ २३ ॥ २६ ॥
 अतएव क्या कारणों मे यह असंभवानी युद्ध निमी

भवद्भिरुपलब्धानि कथितानि च संसदि ।
 पाण्डवा वासुदेवश्च विदिता मम सर्वशः ॥ २९ ॥
 अजेयाः पुरुषैरन्यैरिति तांश्चोत्सहामहे ।
 विजयिष्ये रणे पाण्डुनिति मे निश्चितं मनः ॥ ३० ॥
 न च शक्यमवसृष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।
 धनञ्जयेन योत्स्येऽहं स्वधर्मप्रीतमानसः ॥ ३१ ॥
 अनुजानीष्व मां तात युद्धाय कृतनिश्चयम् ।
 अनुज्ञातस्त्वया वीर युद्धयेयमिति मे मतिः ॥ ३२ ॥
 दुरुक्तं विप्रतीपं वा रभसाच्चापलात्तया ।
 यन्मयेह कृतं किञ्चित्तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥
 न चेच्छक्यमवसृष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।
 अनुजानामि कर्ण त्वां युद्धयस्व स्वर्गकाम्यया ॥ ३४ ॥
 निर्मन्युर्गतसंरम्भः कृतकर्मा रणे स ह ।
 यथाशक्ति यथोत्साहं सतां वृत्तेषु वृत्तवान् ॥ ३५ ॥
 अहं त्वामनुजानामि यदिच्छसि तदानुहि ।
 क्षत्रधर्मजिताँल्लोकानवाप्स्यसि धनञ्जयात् ॥ ३६ ॥
 युध्यस्व निरहङ्कारो बलवीर्यव्यपाश्रयः ।
 धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३७ ॥

भीष्म उवाच—

प्रकार रुक नहीं सकता। सन्धि होने की कोई आशा नहीं। यह तो आप मानते ही हैं कि कोई मनुष्य पौरुष के द्वारा भागी को टाल नहीं सकता। आप लोगों ने पृथ्वी के लोगों के नाश की सूचना देने-वाले घोर उत्पात देखे थे और कुरु सभा में उनका वर्णन भी किया था। इसलिए यह हन्याकाण्ड, यह युद्ध, किसी प्रकार बन्द नहीं होगा॥२७॥२९॥ मैं जानता हूँ कि श्रीकृष्ण सहित पाण्डव अजेय हैं—उन्हें कोई जीत नहीं सकता। अन्य पुरुषों के द्वारा अजेय समझकर भी मैं उनसे युद्ध करने का उत्साह रखता हूँ। मैं समझता हूँ कि मैं युद्ध में पाण्डवों को जीत दूँगा। हम लोगों का यह दारुण वैरभाज किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए आप मुझे क्षत्रिय-धर्म के अनुसार अर्जुन से युद्ध करने की

आज्ञा दीजिए। मैं युद्ध के लिए निश्चय कर चुका हूँ। हे वीर! मैं चाहता हूँ कि आपसे आज्ञा लेकर मैं युद्ध करूँ। मैंने क्रोध या चञ्चलता के कारण आपको जो कुछ बुरा-भला कहा हो उससे, और मेरे दुर्न्यायहार को, क्षमा कीजिए॥२९॥३३॥भीष्म ने कहा—हे कर्ण! यदि यह दारुण वैरभाज तुम नहीं छोड़ सकते तो मैं तुमको युद्ध की आज्ञा देता हूँ। तुम क्षत्रिय-धर्म के अनुसार स्वर्ग की इच्छा से युद्ध करो। आत्म्य और क्रोध छोड़कर, शक्ति और उत्साह के अनुसार, सदाचार का पालन करते हुए, शत्रुओं से युद्ध करो और दुर्बल का कार्य करो। मैं तुमको अनुमति देता हूँ कि जो चाहते हो सो पाओ॥३४॥३६॥अर्जुन के द्वारा तुम उन लोगों को प्राप्ते जिन्हें लोग क्षत्रिय-धर्म का पालन करने

प्रशमे हि कृतो यत्नः सुमहान्सुचिरं मया ।

नचैव शकितः कर्तुं कर्णं सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥

मञ्जय उवाच—इत्युक्तवाति गाङ्गेये अभिवाधोपमन्त्र्य च ।

राधेयो रथमारुह्य प्रायात्तव सुतं प्रति ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मकर्णसवादे द्वाविंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

॥ समाप्तं भीष्मवधपर्व ॥

से प्राप्त करते हैं । अहङ्कार छोड़कर, बल और
वीरता का आश्रय लेकर, युद्ध करो । क्षत्रिय के लिए
धर्मयुद्ध से बढ़कर शुभ कर्म और दूसरा नहीं है । मैं
तुमसे सत्य कहता हूँ कि सन्धि के लिए मैंने बहुत
दिनों तक यत्न किया, किन्तु किसी प्रकार कृतकार्य

नहीं हो सका ॥ ३८ ॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज !
महात्मा भीष्म के यों कहकर चुप हो जाने पर प्रणाम
करके कर्ण, आज्ञा लेकर, वहाँ से चल दिये । रथ
पर चढ़कर वे दुर्योधन के पास जाने को चले ॥ ३९ ॥

भीष्मपर्व का एक सौ बाईस अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२२ ॥

भीष्मपर्व समाप्त हुआ ।



अस्याऽनन्तरं द्रोणपर्व भविष्यति तस्याऽयमाद्यः श्लोकः—

अनमेजय उवाच—तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यसमन्वितम् ।

हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥

द्रोणपर्व
अध्याय [१-१००]

द्रोणपर्व ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रावणेऽर्चयन्म ॥ श्रवेदव्यासायनम ॥

ॐ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच—तमप्रतिमसत्त्वौजोवलवीर्यपराक्रमम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥
धृतराष्ट्रस्ततो राजा शोकव्याकुललोचनः ।
किमचेष्टत विप्रैर्हते पितरि वीर्यवान् ॥ २ ॥
तस्य पुत्रो हि भगवन्भीष्मद्रोणमुखै रथैः ।
पराजित्य महेष्वासान्पाण्डवान्राज्यमिच्छति ॥ ३ ॥
तस्मिन्हते तु भगवन्क्रेतौ सर्वधनुष्मताम् ।
यदचेष्टत कौगव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥
निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ५ ॥
तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत् ।
आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥ ६ ॥
शिविरात्सञ्जयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम् ।
आस्विकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥ ७ ॥
श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् ।
पुत्राणां जयमाकांक्षन्विललापाऽऽतुरो यथा ॥ ८ ॥

पहला अध्याय ॥ १ ॥

राजा जनमेजय ने कहा 'ह भगवन्' नवम् ।
नृवीर्यशाली अत्रिप्रिय अत्र सरस्वती और अद्वितीय
पराक्रमी भीष्म विनामक की शिखण्डा के हाथ से
मृग्य सुनकर शोक में व्यापुष्ट हुए हुए राजा धृतराष्ट्र
ने क्या किया । उनके पुत्र दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण
आदि महारथियों की महायत्ना में महापादा पाण्डवों
को पराप्त करके राज्य भोग की इच्छा की थी । श्रेष्ठ

योद्धा भीष्मकी मृत्यु हो जाने पर दुर्योधन ने क्या
किया । यह सब वृत्तांत राजा टीन कहिणा ॥ १ ॥
श्रावणायन ने कहा—ह महाराज ! राजा धृतराष्ट्र,
भीष्म की मृत्यु का हाट सुनकर, बिना और सोच
में ऐसे व्यकुल हो गये कि किसी प्रकार उनके चित्त
की अगति दूर नहीं हुई । ते दिन-रात उमीचिना
में डूब रहने थे । इस समय मायङ्गा म मन्त्रय

धृतराष्ट्र उवाच—संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।

किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥ ९ ॥

तस्मिन्विनिहते शूरे दुराधर्पे महात्मनि ।

किं नु स्वित्कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे ॥ १० ॥

तदुदीर्णं महत्सैन्यं त्रैलोक्यस्याऽपि सञ्जय ।

भयमुत्पादयेत्तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥

को हि दौर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः ।

यं प्राप्य समरे वीरा न त्रस्यन्ति महाभये ॥ १२ ॥

देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।

किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच—शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम ।

यत्ते पुत्रास्तदाऽकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥ १४ ॥

निहते तु तदा भीष्मे राजन्सत्यपराक्रमे ।

तावकाः पाण्डवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥

विस्मिताश्च प्रहृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशम्य ते ।

स्वधर्मं निन्यमानास्ते प्रणिपत्य महारामने ॥ १६ ॥

शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायाऽमितकर्मणे ।

सोपाधानं नरव्याघ्र शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७ ॥

-विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम् ।

अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १८ ॥

युद्धस्थल से हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के पास आया ॥ १५ ॥
पुत्रों के जीतने की इच्छा रखनेवाले राजा धृतराष्ट्र ने जब मे भीष्म की मृत्यु का हाल सुना था तभी से वे विनम्र होकर झिझक कर रहे थे । सञ्जय के आने पर उनमें धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! काल प्रेरित कारणों ने महावली भीष्म की मृत्यु होने पर अत्यन्त शोकापीड़ित होकर क्या किया मैं तो ममस्त्रना हूँ कि वीर पाण्डवों की मेना त्रिभुवन के हृदय में भय उत्पन्न कर सकती है ॥ १८ ॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! मंग्राम में भीष्म के गिरने पर आपके पुत्रों ने जो कुल किया, सो मैं कहता हूँ । हे महाराज ! मयपराक्रमी भीष्म के गिरने पर आपके पक्ष के और

पाण्डव-पक्ष के वीर पृथक्-पृथक् सम्मति करने लगे । हे महाराज ! आपके पक्ष के लोगों को वितामह की मृत्यु से आश्चर्य था और पाण्डव-पक्ष के लोग आनन्दित थे । दोनों ओर के लोग क्षत्रियधर्म के अनुसार भीष्म के पास गये । सच्चे उनको प्रणाम किया । पाण्डवों ने नैऋण मन्त्रपर्व वाणों के द्वारा वितामह के लिए तर्किये और विद्वानों की रचना की और उनके चारों ओर रक्षक नियुक्त कर दिये ॥ १४ ॥ १७ ॥
उनके पश्चात् वे सब परस्पर सम्भाषण करके, वितामह की अनुमति लेकर और उनकी प्रदक्षिणा करके, फिर युद्ध के लिए युद्धभूमि में आये । दोनों पक्ष के वीर, कोष में गाल नेत्र किये, एक-दूसरे को देख

	क्रोधसंरक्तनयनाः समवेत्य परस्परम् ।	
	पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १९ ॥	
	तनस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां निनदेन च ।	
	तावकानामनीकानि परेषां च विनिर्ययुः ॥ २० ॥	
	व्यावृत्तेऽर्यम्णि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते ।	
॥ १ ॥	अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः ॥ २१ ॥	
	अनाहत्य वचः पथ्यं गाङ्गेर्यस्य महात्मनः ।	
॥ २ ॥	निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्रापयादाय सत्स्वराः ॥ २२ ॥	
	मोहात्तव सपुत्रस्य वधाच्छान्तनवस्य च ।	
॥ ३ ॥	कौरव्या मृत्युसाद्भूताः सहिताः सर्वराजभिः ॥ २३ ॥	
	अजावयुः इवाऽगोपा वने श्वापदसंकुले ।	
॥ ४ ॥	भृशमुद्विग्नमनसो हाना देवव्रतेन ते ॥ २४ ॥	
	पतिते भगतश्रेष्ठे वभूव कुरुवाहिनी ।	
॥ ५ ॥	द्यौस्विऽपेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥ २५ ॥	
	विपन्नसस्येव मही वाक्चैवाऽसंस्कृता तथा ।	
॥ ६ ॥	आसुरिव यथा सेना निगृहीते नृपे बलौ ॥ २६ ॥	
	विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।	
॥ ७ ॥	वृकैरिव वने रुद्धा पृथ्वी हतयूथपा ॥ २७ ॥	
	शरभाहतसिंहेव महती गिरिकन्दरा ।	
॥ ८ ॥	भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते ॥ २८ ॥	

रहे थे । उनके मिर पर काल मगर था । दोनों पक्ष की मेना युद्ध के लिये निकल । उसमें तुम्ही, भेरी आदि बाजे बजने लगे ॥ १८ ॥ दूसरे दिन प्रातः काल कालप्रप्त कारवण को पयश होकर, महा मा भीष्म के हितकारी उपदेश को न मानकर, अल शत्रु के लिये युद्धभूमि में पहुँच गये । हे राजेन्द्र ! आपकी और दूषोधन की जयाशान्ति मृदता के कारण कारवों की मृत्यु का योग्यता मिल गया है । कौरव और उनके पक्ष के राजा लोग भीष्म के शस्त्राग्राह्य होने पर उन्नी प्रकार चिन्तित हुए, जिस प्रकार मृत्नी जानवरों ने भरे वन में बिना रक्षक के वनारियों और भेड़ों का शिकार हो जाना है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

पक्ष की मेना भीष्म के बिना नक्षत्र हान आकाश की तरह, वायुहान अन्तरिक्ष की तरह, फलरहित पेन की तरह, अशुद्ध वाक्प की तरह और राजा बलि की तरह वामन की ने यत्पूर्वक बाँध दिया था उस समय की नायकविहान अमुग्मेना की तरह उद्विग्न, विचलित और शीतल हो गई । हे राजेन्द्र ! आपकी मेना उस समय विराग मुन्दरी की तरह, जिमका जल शुष्क हो गया हो उस नदी की तरह, भेड़ियों ने जिम जिम्मी की घेर रक्का हो और जिमका मार्गी यूथ मार्ग दाग गया हो । उस मृत्नी की तरह तथा शम्भ ने जिममें रत्नमण्डल मिट की मार डाला हो उस वन्दग की तरह उद्विग्न, विच-

विष्वग्वाताहता रुग्णा नौरिवाऽऽसीन्महार्णवे ।
 बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता ॥ २९ ॥
 सा तदाऽऽसीद्भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा ।
 विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥ ३० ॥
 तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः ।
 पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते ॥ ३१ ॥
 कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः ।
 सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवाऽतिथिम् ॥ ३२ ॥
 बन्धुमापहतस्येव तमेवोपागमन्मनः ।
 बुक्कुशुः कर्णं कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ॥ ३३ ॥
 राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
 स हि नाऽयुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ॥ ३४ ॥
 सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमानयत मा चिरम् ।
 भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥
 रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु ।
 संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन्नर्यभः ॥ ३६ ॥
 रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसम्मतः ।
 सासुरानपि देवेशान्रणे यो योद्धुमुत्सहेत् ॥ ३७ ॥
 सं तु तेनैव कोपेन राजन्गाङ्गेयमुक्त्वान् ।
 त्वयि जीवति कौरव्य नाऽहं योत्स्ये कदाचन ॥ ३८ ॥

न्ति और श्रीहीन हो गई॥२५।२८॥वक्रान में कैसी
 नाप की जो अवस्था समुद्र में होती है वही दशा आप-
 की सेना की हुई । ठीक निशाना लगानेवाले थीर
 पाण्डव आपसी सेना को अत्यन्त पीड़ित करने लगे ।
 घोड़े, रथ, टापी और पैदल सब नष्ट भट्ट होने लगे ।
 मग्न मैनिक उसाहहीन, व्याकुल और विकल देख
 पड़ने लगे । भीष्म के बिना कौरव पक्ष के राजा
 और सैनिक मानों पाताल में डूबने लगे॥२९।३१॥
 उस समय यौरवों ने कर्ण को मग्न धनुर्द्वों में श्रेष्ठ
 भीष्म-तुल्य जानकर अपनी रक्षा के लिए स्मरण
 किया । जैसे गृहस्थ का मन साधु अतिथि की ओर
 और आपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति का मन अपने मित्र

की ओर दाँड़ता है, वैसे ही कौरवों का विचार कर्ण
 की ओर गया । उस समय सग्न राजा लोग कर्ण को
 अपना हितैषी और समर्थ समझकर "कर्ण ! रण !"
 चिल्लाते लगे । उन्होंने कहा - महायशस्वी कर्ण ने
 इन दस दिनों तक शत्रुओं से युद्ध नहीं किया ।
 उन्हें उनके मन्त्रियों, माधियों और सुहृदों सहित
 ग्रीष्म बुलाओ, मित्र न करो॥३२।३५॥महावीर
 कर्ण दो रथी योद्धाओं के तुल्य तथा रथी और अति-
 रथी योद्धाओं में अग्रगण्य है । बड़े बड़े शूरवीर उनका
 सम्मान करने हैं । जे यमराज, इन्द्र, यरुण, कुबेर
 आदि लोकपालों और बड़े-बड़े अमुगों से भी युद्ध
 कर सकते हैं; तथापि बट विक्रमशाली रथी महारथी

त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे ।
 दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि कौरव ॥ ३९ ॥
 पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि ।
 हन्ताऽऽस्म्येकरथेनैव कृत्स्नान्यान्मन्यसे रथान् ॥ ४० ॥
 एवमुक्त्वा महाबाहुर्दशाहानि महायशः ।
 नाऽयुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव सम्मते ॥ ४१ ॥
 भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत ।
 जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४२ ॥
 तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्य सन्धे महौजसि ।
 त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥ ४३ ॥
 तावकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः ।
 हा कर्ण इति चाऽऽक्रन्दन्कालोऽयमिति चाऽब्रुवन् ॥ ४४ ॥
 एवं ते स्म हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
 चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र महाबलाः ॥ ४५ ॥
 जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमखे दुर्वारपौरुषम् ।
 अगमन्नो मनः कर्णं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ ४६ ॥
 स हि शक्तो रणे राजंस्त्रातुमस्मान्महाभयात् ।
 त्रिदशानिव गोविन्दः सततं सुमहाभयात् ॥ ४७ ॥
 तथैव सञ्जयं कर्णं कीर्तयन्तं पुनः पुनः ।
 आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥

वैशम्पायन उवाच—

आदि की गिनती के समय पितामह भीष्म ने उनको
 अर्द्धरथी कहा । इसी से क्रोधित होकर कर्ण ने भी
 भीष्म के आगे प्रतिज्ञा की थी कि “हे पितामह ! तुम्हारे
 जेते जी मैं कदापि युद्ध नहीं करूँगा । इस महामहाम
 में यदि तुम्हारे हाथ से पाँचों पाण्डव मारे गये तो
 मैं, दुर्योधन की अनुमति लेकर, वनवास करने चढ़
 दूँगा । और जो पाण्डवों के हाथों मरकर तुम स्वर्ग-
 यासी हुए तो मैं अकेला ही उन सब क्षत्रियों को
 मारूँगा, जिन्हें तुम पूर्ण रथी और महाग्री कह रहे
 हो” ॥ ३५-४० ॥ हे महाराज ! आपके पुत्र दुर्योधन
 की सम्मति से यशस्वी कर्ण ने दस दिन तक शत्रुओं
 से युद्ध नहीं किया । महानदी भीष्म की सुधिष्टि-पक्ष

के योद्धाओं को नष्ट करते रहे । महापराक्रमी सय-
 मन्त्र महाशूर भीष्म की मृत्यु हो जाने पर आपके पुत्र
 और उनके पक्ष के राजा लोग कर्ण को अपने ही
 स्मरण करने लगे जैसे पार जाने की इच्छा रखनेवाले
 लोग नाव को स्मरण करते हैं ॥ ४१-४३ ॥ मर लोग
 यों चिह्नाए लगे—हा कर्ण ! यही तुम्हारे पराक्रम
 प्रकट करने का समय है । हे राजेन्द्र ! कर्ण ने
 परशुराम से अश्व-विद्या सीखी है, और उनका पराक्रम
 दुर्निवार्य है, यही ममक्षत्र हमारे पक्ष के मनुष्यों
 की कर्ण की ही स्मरण हो आते हैं । जैसे बड़ी आपत्ति
 के समय लोग अपने मित्र की ही स्मरण करने हैं
 जैसे ही पाण्डवों के द्वारा गोविन्द कौरव-सेना कर्ण

धृतराष्ट्र उवाच—यत्तद्वैकर्त्तनं कर्णमगमद्रो मनस्तदा ।
 अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४९ ॥
 अपि तन्न मृपाऽकार्षीत्कर्त्तृत्सत्यपराक्रमः ।
 सम्भ्रान्तानां तदार्त्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम् ॥ ५० ॥
 अपि तत्पूरयाञ्चक्रे धनुर्धरवरो युधि ।
 यत्तद्विनिहते भीष्मे कौरवाणामपाकृतम् ॥ ५१ ॥
 तत्त्वण्डं पूरयन्कर्णः परेषामादधद्भयम् ।
 स हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके सञ्जय कथ्यते ॥ ५२ ॥
 आर्त्तानां वान्धवानां च क्रन्दतां च विशेषतः ।
 परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्त्राणार्थं च शर्म च ।
 कृतवान्मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

को स्मरण करने लगी । हे राजेन्द्र ! जैसे विष्णु भगवान् सदा देवताओं को महाभय से उबारते रहते हैं वैसे ही युद्धभूमि में इस महाभय से महाबाहु कर्ण भी हमारी रक्षा कर सकत हैं ॥ ४९ ॥ ४७ ॥ त्रैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय ! सञ्जय को इस प्रकार बारम्बार कर्ण का ही नाम लेते देखकर निर्वैले नाग के समान लम्बी श्वास छोड़कर राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! दुर्योधन आदि तुम सब ने जब अत्यन्त उद्विग्न और पीड़ित होकर कर्ण को स्मरण किया तब क्या कर्ण ने भी तुम्हारी रक्षा करना स्वीकार किया !

भीष्मपर्व का पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—हतं भीष्ममथाधिरथिर्विदित्वा भिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरुणाम् ।

सोदर्यवद्वयसनात्सूतपुत्रः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ १ ॥

श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं निपातितं शान्तनवं महारथम् ।

अथोपयायात्सहसाऽरिर्कर्पणो धनुर्धराणां प्रवरस्तदा नृप ॥ २ ॥

दुमरा अध्याय ॥ २ ॥

सञ्जय बोले—हे राजेन्द्र ! धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कर्ण को जब महामा भीष्म के गिले का समाचार मिला तब वे अथाह सागर में टूटकर डूबने हुए जहाज

के समान विग्लितागर में पड़ें हुए आपके पुत्र की सेना, मंग भाई की तरह, उबारने के लिए उमके पाम आये । पिता जैसे पुत्रों की रक्षा करने के लिए

हते तु भीष्मे रथसत्तमे परैर्निमज्जतीं नावमिवाऽण्वे कुरुन् ।

पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात्ततः सन्तारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम् ॥ ३ ॥

कर्ण उवाच—यस्मिन्धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजः सत्यं स्मृतिर्वीरगुणाश्च सर्वे ।

अस्त्राणि दिव्यान्यथ सन्नतिर्हीः प्रिया च वागनसूया च भीष्मे ॥ ४ ॥

सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके सनातनं चन्द्रमसीव लक्ष्म

स चेत्प्रशान्तः परवीरहन्ता मन्ये हतानेव च सर्ववीरान् ॥ ५ ॥

नेह ध्रुवं किञ्चन जातु विद्यते लोके ह्यस्मिन्कर्मणोऽनित्ययोगात् ।

सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताऽऽर्यमहाव्रते हते ॥ ६ ॥

वसुप्रभावे वसुवीर्यसम्भवे गते वसूनेव वसुन्धराधिपे ।

वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा कुरुंश्च शोचध्वमिमां च वाहिनीम् ॥ ७ ॥

मञ्जय उवाच—महाप्रभावे वरदे निपातिते लोकेश्वरे शास्तरि चाऽमितौजसि ।

पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः कर्णां भृशं न्यश्वसदश्रु वर्त्तयन् ॥ ८ ॥

इदं च राधेयवचो निशम्य सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह

परस्परं चक्रशुरार्तिजं मुहुस्तदाऽश्रु नेत्रैर्मुमुक्षुश्च शब्दवत् ॥ ९ ॥

प्रवर्त्तमाने तु पुनर्महाहवे विगाह्यमानासु चमूपु पार्थिवैः ।

अथाऽब्रवीर्द्धर्पकरं तदा वचो रथर्यभान्सर्वमहारथर्यभः ॥ १० ॥

जगत्यनिल्ये सततं प्रधावति प्रचिन्तयन्नस्थिरमय लक्षये

भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवः कथम् ॥ ११ ॥

निपातिते शान्तनवे महारथे दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा ।

न पार्थिवाः सोढुमलं धनञ्जयं गिरिप्रबोद्धारमिवाऽनिलं-द्रुमाः ॥ १२ ॥

दौडता है, धैमे ही महावीर कर्ण आपके पुत्रों की
और उर्मक दल की रक्षा करने के लिए आप्रता के
साथ वहाँ आये॥१३॥महापराक्रमी शत्रु-समूहनाशन
कर्ण [परशुराम के दिये दृष्ट धनुष का स्पर्श करके,
उस पर प्रत्यक्षा चढ़ाकर, काल अग्नि और वायु के
तुल्य प्राणनाशक और आप्रणामी वागों को उछाटते
हुए] कारकों से कहने लग्य—चन्द्रमा मैं जैसे श्री
निम्न रुडती है धैमे ही जिन द्विज-शत्रुहन्ता कुनश
भीष्म में धृति, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्थिति,
प्रिय वशी, इत्यादि का अभाव आदि वीरों के सब गुण
विद्यमान थे, वे शत्रुपक्ष के वीरों को मारनेगटे पिता-
मह यदि आज मृत्यु का शिकार बन गयेतो मैं अन्य

सब वीरों को मार दूँगा मैं ही समझता हूँ॥१४॥१५॥
ब्रह्मवारी भीष्म की मृत्यु को देखकर किमकी और
मूर्खदय होने का भी निश्चय होगा ! [भीष्म की मृत्युस्य
अनहोनी होने पर मूर्खदय न होने की अनहोनी
पर भी विश्वास किया जा सकता है ।] मृत्युविजयी
भीष्म की भी जब मृत्यु हो गई तब हम लोगों के
जोश की क्या आशा है ? मर्य है कि हम लोग में
कर्म के अनित्य सम्बन्ध में कोई भी मनु अविनाशी
नहीं है, एक न एक दिन सभी का नाश होगा ।
वसुओं के समान महाप्रभारशाली और वसुओं के नेत्र
में उत्पन्न भीष्म पितामह वसुलोक का जाकर वसुओं
में मीन हो गये । अब धन, पुत्र, पुत्री, कायकान

हतप्रधानं त्विदमार्त्तरूपं परैर्हतोत्साहमनाथमय वै ।
 मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे बलं यथा तेन महात्मना तथा ॥ १३ ॥
 समाहितं चाऽऽत्मानि भारमीदृशं जगत्तथाऽनित्यमिदं च लक्ष्ये ।
 निपातितं चाऽहवशौण्डमाहवे कथं नु कुर्यामहमीदृशे भयम् ॥ १४ ॥
 अहं तु तान्कुरुवृषभानजिह्मगैः प्रवेशयन्ममसदनं चरन्रणे ।
 यशः परं जगति विभाव्य वर्तिता परैर्हतो भुवि शयिताऽथवा पुनः ॥ १५ ॥
 युधिष्ठिरो धृतिमतिसत्यसत्त्ववान्वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः ।
 तथाऽर्जुनस्त्रिदशवरात्मजो युवा न तद्वलं सुजयमिहाऽमरैरपि ॥ १६ ॥
 यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले स सात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः ।
 न तद्वलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवान्निवर्त्तते मृत्युमुखान्न चाऽसुभृत् ॥ १७ ॥
 तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः ।
 मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं स्वरक्षणे चाऽचलवद्वधवस्थितम् ॥ १८ ॥
 एवं चैषां बाधमानः प्रभावं गत्वैवाऽहं ताञ्जयाम्यथ सूत ।
 मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं भग्ने सैन्ये यः समेयात्स मित्रम् ॥ १९ ॥
 कर्त्तास्म्येतत्सत्पुरुषार्थकर्म त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम् ।
 सर्वान्संख्ये शत्रुसङ्घान्हनिष्ये हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥ २० ॥
 सम्प्राकुप्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराहते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
 मया कृत्यमिति जानामि सूत तस्माद्राज्ञस्त्वद्य शत्रून्विजेज्ये ॥ २१ ॥

और इस सब सेना के लिए शोक करो । भीष्म के बिना हम सयनी जीवनीय दैशा हो गई है॥६॥७॥ सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! महाप्रतापी भीष्म का मृत और कौरवों को शत्रुओं से परास्त देवदत्त कर्ण के नेत्रों में आँसू आ गये; वे दू खिन होकर बारम्बार श्वाभ लेने लगे । हे महाराज ! आपके पुत्र और सैनिकगण वीर कर्ण के ये वचन सुनकर जोर में रोने लगे । हे राजेन्द्र ! अब फिर भयङ्कर संग्राम आरम्भ हुआ । राजा लोग शत्रुसेनाओं में प्रवेश होकर उनका संहार करने लगे, सब सैनिक मिहनाद करने दिवाड़े पड़ने लगे । उस समय महारथी-श्रेष्ठ कर्ण मय यादाओं को प्रमत्त और उन्माहित करने हुए बोले—॥८१०॥ हे भारयो ! इस अनित्य जगत् में मुझे कुछ भी स्थिर नहीं देग पड़ता । प्रत्येक वस्तु नाश होनेवाली है ।

यदि ऐसी बात नहीं है, तो फिर आप लोगों के देखने-देखते वीरवार यितामह भीष्म को पाण्डवों ने कैसे मार गिराया ? महारथी भीष्म पृथ्वी पर पड़े हुए सूर्य के समान दिवाड़े पड़े रहे हैं । जैसे पर्वत को भी उलटने के लिए तैयार आँधी को साधारण वृक्ष नहीं रोके सज्जते, वैसे ही हमारे पक्ष के राजा लोग इस समय भीष्म के अतिरिक्त अर्जुन के पराक्रम के सम्मुख नहीं टहर सकते॥११॥१२॥१३॥राज-सेना के प्रधान वीर भीष्म के मारे जाने से मय सैनिक अनाथ, आत और उन्माह-हीन हो रहे हैं । मैं इस समय उम्मी प्रकार इस कुरु-सेना का रक्षा करूँगा, जिस प्रकार महात्मा भीष्म कर रहे थे । इस समय यह मेरा कर्त्तव्य ही गया है । जब कि युद्धप्रेमी महापराक्रमी भीष्म मारे गये हैं और मेरे ऊपर यह कर्त्तव्यभार आ पड़ा

कुरुक्षेत्रन्पाण्डुपुत्राजिघांसंस्त्यक्त्वा प्राणान्धोरूपे रणेऽस्मिन् ।
 सर्वान्संग्रहे शत्रुसङ्घान्निहत्य दास्याम्यहं धार्तराष्ट्राय राज्यम् ॥ २२ ॥
 निबध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि ।
 शिरस्त्राणं चाऽर्कसमानभासं धनुः शरांश्चाऽश्विषाहिकल्पान् ॥ २३ ॥
 उपासङ्गान्पोडश योजयन्तु धनूंषि दिव्यानि तथाऽऽहरन्तु ।
 असींश्च शक्तींश्च गदांश्च गुर्वीः शङ्खं च जाम्बूनदचित्रनालम् ॥ २४ ॥
 इमां रौघमीं नागकक्ष्यां विचित्रां ध्वजं चित्रं दिव्यमिन्दीवराङ्गम् ।
 श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्याऽनयन्तु चित्रां मालां चारुवह्नां सलाजाम् ॥ २५ ॥
 अश्वान्गान्यान्पाण्डुराभ्रप्रकाशान्पुष्टान्नातान्मन्त्रपूताभिरद्भिः ।
 तसैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेताञ्जीवाञ्जीघं सूतपुत्राऽऽनयस्व ॥ २६ ॥
 रथं चाऽग्न्यं हेममालावनद्धं रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रप्रकाशैः ।
 द्रव्यैर्युक्तं सम्प्रहारोपपन्नैर्वह्नैर्युक्तं तूर्णमावर्तयस्व ॥ २७ ॥
 चित्राणि चापानि च वेगवन्ति ज्याश्चोत्तमाः सन्नहनोपपन्नाः ।
 तूणांश्च पूर्णान्महतः शराणामास्ताथ गात्रावरणानि चैव ॥ २८ ॥
 प्रायात्रिकं चाऽऽनयताऽऽशु सर्वं दध्ना पूर्णं वीर कांस्यं च हैमम् ।
 आनीय मालामवबध्य चाङ्गे प्रवादयन्त्वाशु जयाय भेरीः ॥ २९ ॥
 प्रयाहि सूताऽऽशु यतः किरीटी वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च ।
 तान्वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये भीष्माय गच्छामि हतो द्विपद्भिः ॥ ३० ॥

और जब यह जगत् और जीवन सदा रहने का है
 नहीं तब भला मैं क्या भयभीत होने लगा । मैं जीवता
 के साथ मीचे निशाने पर पहुँचनेवाले बाणां मे शत्रु-
 सेना को मारता हुआ रणभूमि में विचरण करूँगा ।
 यदि विजय प्राप्त कर सकूँ तो जगत् मे श्रेष्ठ यश
 प्राप्त करूँगा और शत्रुओं के हाथ मे मारा गया तो
 रणभूमि मे गौरवनि प्राप्त करूँगा ॥ २१ ॥ पाण्डुपुत्रिष्ठिर
 धैर्य, बुद्धि, धर्म और उग्रता मे युक्त हैं; भीममेन मे
 सौ हाथियों का बल है; अर्जुन इन्द्र के पुत्र और
 जवान हैं; इसलिए देवता भी पाण्डवों की मेना को
 सहज मे नहीं जीत सकते । माद्री के पुत्र और माण्यकि
 सहित माक्षात् वासुदेव जिम पक्ष मे हैं, वह यमराज
 के मुख के समान हैं । कोई भी कायर उसके मन्सुग
 पहुँचकर जीता नहीं लाँट सकता । मनस्वी लोग

बड़े हुए तप को तप से ही और बल को बल से ही
 रोकते हैं । मेरा मन निश्चिन्त रूप मे शत्रुओं को
 रोकने और अपनी रक्षा करने के लिए पवन के समान
 अटल है ॥ २१ ॥ इस प्रकार मैं आज शत्रुओं के
 प्रभाव को रोकता हुआ जाने ही उन लोगो को जीत
 दूंगा । जिनों के प्रति शत्रुओं के द्रोह को मैं सह नहीं
 सकता । जो सेना के भाग बड़े होने पर साथ दे,
 वही मित्र है । या तो मे मत्पुरुषों के योग्य इस श्रेष्ठ
 कार्य को करूँगा, और या शत्रुओं के हाथ मे मर-
 कर भीष्म का अनुगामी होऊँगा । नारियों और कुमारों
 का रोना-चिन्तना सुनकर और दूषोधन का पाँह
 प्रतिहत होने पर मेरा यही कर्तव्य है, यह मैं जानता
 हूँ । इसीलिए मैं आज राजा दूषोधन के शत्रुओं को
 मारूँगा ॥ २९, ३० ॥ पाण्डवपक्ष को मारने और कौरव

यस्मिन् राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
 वासुदेवः सात्याकिः सृञ्जयाश्च मन्ये वलं तदजय्यं महीपैः ॥ ३१ ॥
 तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्सदाऽप्रमत्तः समरे किरीटिनम् ।
 तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय ॥ ३२ ॥
 न त्वेवाऽहं न गमिष्यामि तेषां मध्ये शूराणां तत्र चाऽहं ब्रवीमि ।
 मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये पापात्मानो न ममैते सहायाः ॥ ३३ ॥
 सञ्जय उवाच—समृद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं सकूवरं हेमपरिष्कृतं शुभम् ।
 पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमैर्युक्तं समास्थाय ययौ जयाय ॥ ३४ ॥
 सम्पूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा रथर्षभो देवगणैर्यथेन्द्रः ।
 ययौ तदायोधनमुग्रधन्वा यत्राऽवसानं भरतर्षभस्य ॥ ३५ ॥
 वरूथिना महता स ध्वजेन सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना ।
 सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो मेघस्वनेनाऽर्क इवाऽमितौजाः ॥ ३६ ॥
 हुताशनाभः स हुताशनप्रभे शुभः शुभे वै स्वरथे धनुर्धरः ।
 स्थितो रराजाऽधिरथिर्महारथः स्वयं विमाने सुरराडिवाऽऽस्थितः ॥ ३७ ॥
 इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पक्ष की रक्षा करने के लिए इस भयङ्कर रण में या तो मैं अपने प्रिय प्राण दूँगा, और या युद्ध में शत्रुओं को मारकर दुर्योधन को राज्य दूँगा । मुझे सुवर्णमय मणिरत्नमण्डित विचित्र उज्ज्वल कवच पहनाओ, मूर्त्य के समान प्रभा-युक्त शिरलाइन मेरे गिर पर रखो । वाण-पूर्ण सोलह तरकस और दिव्य धनुष ले आओ । तलवारें, शक्तियाँ, भारी गदाएँ, सुवर्णमण्डित विचित्र शस्त्र, सोने की शृङ्खला आदि सब युद्ध-सामग्री लाओ । कमलचिह्नयुक्त विजयमूचक पनाका को, वहाँ से रच्य करके, ले आओ । विचित्र माला और खाले आदि माहात्म्यिक वस्तुएँ उपस्थित करो ॥ २१२५ ॥ घेत मेघसदृश, दृष्ट-पुष्ट, मन्त्र से परित्र किये गये जल में नहलाये गये, तेज, बढ़िया, सुवर्ण के अलङ्कारों से अलङ्कृत घोड़े शीघ्र लाओ । सुरर्णमाल्य से शोभित, चन्द्र-मूर्त्य सदृश कान्तियुक्त, रत्नों से भूषित, नाहनो में युक्त और ममाम की सामग्री से परिपूर्ण बढ़िया रथ मेरी सवारी के लिए अभी लाओ । वेगशाली विचित्र चान, उत्तम और ज़ोर को महनवाली धनुष

की डोरियाँ, वाणपूर्ण बड़े-बड़े तरकस और कवच आदि सब सामग्री लाओ ॥ २६१२८ ॥ प्रस्थानकाल में शुभमूचक जलपूर्ण सुवर्णकलश और दही भरा हुआ वर्तन लाओ । मुझे माला पहनाकर जयमूचक लगाइے जाओ । हे मृत ! तुम शीघ्र ही वहाँ पर मेरा रथ ले चलो जहाँ वीर भीमसेन, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल और महर्षि हैं । मैं युद्धभूमि में उनके सम्मुख पहुँचकर या तो उन्हें मारूँगा, और या भीम की तरह शत्रुओं के हाथ में मारा जाऊँगा । जिस सेना में सत्यपरायण युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, महर्षि, सात्याकि, श्रीकृष्ण और सब सृञ्जय विमान हैं उमें मैं, सब राजाओं के साथ मित्रकर आक्रमण करने पर भी, अजेय ही मानता हूँ ॥ २०१३१ ॥ किन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सर्वनाशक मृत्यु भी सावधान होकर सदैव यदि अर्जुन की रक्षा करे तो भी मैं युद्ध में उनके अवय मारूँगा, अथवा भीम की तरह उनके हाथों में मारा जाऊँगा । कलह में ही उन शत्रुवीर पाण्डवों की सेना के मध्य युद्ध करने न जाऊँगा,

प्रत्युत ये सब सहायक शूर राजा भी मेरे साथ अपना पराक्रम दिखानेगे । ये मेरे सहायक राजा और योद्धा लोग मित्रद्रोही, कच्ची भक्ति रखनेवाले, कायर या पापी नहीं हैं॥ ३२।३३॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! अब सुवर्ण-मुक्ता-मणि-रत्नमण्डित उत्तम हृद् रथ कर्ण के सम्मुख लाया गया । उसमें सुन्दर पताका फहर रही थी, और वायुगामी बढिया छोड़े जुत हुए थे । उसी रथ पर बैठकर महारथी कर्ण विजय के लिए रवाना हुए । सब कारव उग्रधन्वा वीर कर्ण को स्तुति

वैस ही करने लगे, जैसे इन्द्र की स्तुति देवता किया करते हैं । श्रेष्ठ योद्धा कर्ण रथ पर बैठकर वहाँ चले जहाँ भीष्म पितामह शरशय्या पर शयन कर रहे थे । सुवर्ण मुक्ता-मणि-रत्नमण्डित, ध्वजायुक्त, अश्वशोभित रथ पर कर्ण उसी तरह शोभायमान हुए जिस प्रकार गरुजने हुए मेघ पर सूर्य विराजमान हों । अमृतुल्य तेजस्वी शुभरूप्य महारथी महाधनुर्धर कर्ण अग्निपिण्ड-सदृश उस रथ पर बैठकर विमान पर स्थित इन्द्र के समान शोभा को प्राप्त हुए॥ ३४।३५॥

द्रोणपर्व का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच — शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसम् ।
महावातसमूहेन समुद्रमिव शोपितम् ॥ १ ॥
दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं सर्वक्षत्रान्तकं गुरुम् ।
दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना ॥ २ ॥
जयाशा तव पुत्राणां सम्भग्ना शर्म वर्म च ।
अपाराणांमिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छताम् ॥ ३ ॥
स्रोतसा यामुनेनेव शरौघेण परिभुतम् ।
महेन्द्रेणैव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम् ॥ ४ ॥
नभश्च्युतभिवाऽऽदित्यं पतितं धरणीतले ।
शतक्रतुमिवाऽचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम् ॥ ५ ॥
मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनम् ।
ककुद् सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम् ॥ ६ ॥
धनञ्जयशरैर्व्यासं पितरं ते महाव्रतम् ।
तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ७ ॥

तीसरा अध्याय ॥ ३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! कर्ण ने जाकर देखा कि महापराक्रमी महा-या भीष्म शरशय्या पर पड़े हुए हैं । जैसे लकड़ाने में मसृष्ट को सुला डाला हो, वैसे ही अर्जुन ने सर्वक्षत्रान्तक गुरु पितामह भीष्म को दिव्य अस्त्रों के द्वारा गिरा दिया था । भीष्म के गिरते ही आपके पुत्रों की जय की आशा, कल्याण

और रक्षाखुबच खण्डित सा हो गया । महारथी भीष्म कौरवों के लिए वैस ही आश्रय-स्थान थे जैसा अयाह में डूबकर थाह चाहनेवाले मनुष्य के लिए टापू होता है । यमुना के प्रवाह के समान अमरुष्य बाण उनके अङ्गों में छिड़े हुए थे । इन्द्र के वज्र-प्रहार में घुसी पर पड़े हुए मैनाक पर्वत के समान,

भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानां महाद्युतिः ।
 अवतीर्य रथादात्तो वाष्पव्याकुलिताक्षरम् ॥ ८ ॥
 अभिवाद्याऽञ्जलिं वध्वा वन्दमानोऽभ्यभाषत ।
 कणोंऽहमस्मि भद्रं ते वद मामभि भारत ॥ ९ ॥
 पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चाऽवलोकय ।
 न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित्समश्नुते ॥ १० ॥
 यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह ।
 कोशसञ्चयने मन्त्रे व्यूहे प्रहरणेषु च ॥ ११ ॥
 नाऽहमन्यं प्रपश्यामि कुरूणां कुरुपुङ्गव ।
 बुद्ध्या विशुद्ध्या युक्तो यः कुरुंस्तारयेद्भयात् ॥ १२ ॥
 योधांस्तु बहुधा हत्वा पितृलोकं गमिष्यति ।
 अद्यप्रभृति संकुद्धा व्याघ्रा इव सृगक्षयम् ॥ १३ ॥
 पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् ।
 अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञाः सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥
 कुरवः सन्त्रसिष्यन्ति वज्रपाणेरिवाऽसुराः ।
 अद्य गाण्डीवमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ॥ १५ ॥
 त्रासयिष्यति वाणानां कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ।
 समिद्धोऽग्निर्यथा वीर महाज्वालो द्रुमान्दहेत् ॥ १६ ॥
 धार्तराष्ट्रान्प्रधक्ष्यन्ति तथा वाणाः किरीटिनः ।
 येन येन प्रसरतो वाय्वग्नी सहितौ बने ॥ १७ ॥

आकाश से गिरे हुए सूर्य के समान, दृष्टासुर से परा-
 जित इन्द्र के समान भीष्म पितामह पृथ्वी पर पड़े
 हुए थे । युद्ध में सब शत्रुमेना को अपने पराक्रम से
 मृदु बनानेवाले, सब सैनिकों में श्रेष्ठ, धनुर्दरों के
 शिरोमणि, आपने चाचा महात्रन भीष्म को अर्जुन के
 बाणों से शिथिल होकर बीरोचिन शरशय्या पर पड़े
 देव्यर कर्ण शोक और मोह के आवेश में चिह्न
 हो उठे । उनके नेत्रों में आँसू भर आये । वे तुल्य
 हीरक में उतरकर पड़ल ही महामा भीष्म के पाम
 पहुँचे । हाय जोड़कर प्रणाम करके कर्ण ने कहा—
 हे पितामह ! आपका कल्याण हो । मैं कर्ण हूँ । अपनी
 कल्याणमयी दृष्टि में मेरी ओर देगिए, और पवित्र

वाक्यों में मुझे कृतार्थ कीजिए । आप ऐसे धर्मनिष्ठ
 वृद्ध को पृथ्वी पर इस प्रकार पड़े देखकर निश्चिन
 रूप से कहा जा सकता है कि इस लोक में कोई
 भी अपने पुण्य का फल नहीं भोगता ॥ १० ॥
 कुरुश्रेष्ठ ! मुझे तो कौरवों में अब कोई कांप-मशय,
 मन्त्रणा, व्यहरचना और अस्त्रप्रयोग में आप सा निपुण
 नहीं देख पड़ता । विशुद्ध बुद्धि से युक्त आप ही
 कौरवों को इस विपत्ति के पार लगानेवाले थे, सो
 आप बहुत मे बोद्धाओं को मारकर अब पितृलोक
 जानवाले हैं । जैसे क्रुद्ध बाघ भृगों को चीरट करने
 हैं, वैसे ही अब मैं पाण्डव लोग कुरुमेना का
 संसार करोगे । हे पितामह ! अर्जुन के पराक्रम को

तेन तेन प्रदहतो भूरिगुल्मतृणदुमान् ।
 यादृशोऽग्निः समुद्भूतस्तादृक्पाथो न संशयः ॥ १८ ॥
 यथा चायुर्नरव्याघ्र तथा कृष्णो न संशयः ।
 नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गण्डिवस्य च ॥ १९ ॥
 श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत ।
 कपिध्वजस्योत्पततो रथस्याऽमित्रकर्षिणः ॥ २० ॥
 शब्दं सोढुं न शक्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवाः ।
 को हर्जुनं योधयितुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति ॥ २१ ॥
 यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
 अमानुषैश्च संग्रामस्त्रयम्बकेण महारमना ॥ २२ ॥
 तस्माच्चैव वरं प्राप्नो दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
 कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया ॥ २३ ॥
 जितो येन रणे रामो भवना वीर्यशालिना ।
 क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदरपहा ॥ २४ ॥

तमथाऽहं पाण्डवं युद्धशौण्डममृष्यमाणो भवता चाऽनुशिष्टः ।
 आशीविपं दृष्टिहरं सुघोरं शूरं शक्याम्यस्त्रयलाद्भिहन्तुम् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिमेकपर्वणि उर्णयस्य तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जानेनेवाले बारन अत्र गाण्डीय धनुष के शब्द से
 जैसे हा भयभीत होगे जैसे राज के शब्द में असुर
 भयभीत होते हैं । अत्र गाण्डीय धनुष में छूटे हुए
 शणों का शब्द, वज्र का कड़क के समान, कारवा
 को और उनका पक्ष के अन्य राजाओं को भयविह्वल
 बनानेगा ॥ १११६ ॥ हे वीर । जैसे प्रचलित अग्नि
 उड़ी बड़ी ज्वालाओं से वृक्षा को जलाती है वैसे हा
 अर्जुन के वाण शृतराष्ट्र पुत्रों को भस्म करेगा । यायु
 और अग्नि दोनों मिश्रकर महान्न म बड़े बड़े वृक्षों
 और घास फूस लता आदि को भस्म कर डालते हैं ।
 सो अर्जुन ता अग्नि के तुल्य हैं, और कृष्ण यायु के
 समान हैं ॥ १६ ॥ १९ ॥ हे भरतकुलदायक । पाञ्चजन्य
 शङ्ख और गाण्डीय धनुष का शब्द सुनकर सत्रसेना
 भयभीत हो जायगी । हे वीर । आपके न रहने से
 मर राजा लोग अर्जुन के रथ के शब्द को नहीं मह

मरेगा । पण्डित और वीर लोग जिनके अर्णविकर
 कर्मों का वर्णन किया करते हैं, जिन्होंने निरात-
 कत्व आदि दानवों को मारा और माक्षात् शङ्कर
 की सग्राम में सन्तुष्ट करके माधारण मनुष्यों के लिए
 दुर्लभ वरदान प्राप्त किये तथा जिनका रक्षा सदा
 श्राकृष्ण करते हैं, उन ममराभिमानों अर्जुन में युद्ध
 करके आपके अनिरुद्ध कोई भी राजा उनको परास्त
 नहीं कर सकता । आपने क्षत्रियकुल के पाल, सुरा-
 मुर पूजित, महानूर पशुसाम्राज्य को अपने पराक्रम
 म रण में जीत लिया था । ऐसा राजा वीर है, जिसे
 आपने परास्त नहीं किया । किन्तु वाच । श्री वैष्णो
 विचित्र गति है कि यही आप आज अर्जुन के वाणों
 म प्रायल होकर पृथ्वी पर पड़े हुए हैं । मैं उन
 युद्धशूर पाण्डव अर्जुन को आपकी अनुमति लेकर
 मारने की इच्छा रखता हूँ । यिपै नाग के समान

दृष्टि से ही वीरों के प्राण हर लेनेवाले शूर अर्जुन को | द्वारा मार सकूँ॥१९॥२५॥
मैं आपकी अनुमति प्राप्त होने से, अपने अस्त्रबल के

०—

द्रोणपर्व का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सञ्जय उवाच—तस्य लालप्यमानस्य कुरुवृद्धः पितामहः ।
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत्प्रीतमानसः ॥ १ ॥
समुद्र इव सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः ।
सत्यस्य च यथा सन्तो वीजानामिव चोर्वरा ॥ २ ॥
पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव ।
वान्धवास्त्वाऽनुजीवन्तु सहस्राक्षमिवाऽमराः ॥ ३ ॥
मानहा भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्धनः ।
कौरवाणां भव गतिर्यथा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ४ ॥
स्वबाहुबलवीर्येण धार्तराष्ट्रजयैषिणा ।
कर्णं राजपुरं गत्वां काम्प्रोजा निर्जितास्त्वया ॥ ५ ॥
गिरिविजगताश्चापि नम्रजित्प्रमुखा नृपाः ।
अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया ॥ ६ ॥
हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः ।
दुर्योधनस्य वशगास्त्वया कर्णं पुरा कृताः ॥ ७ ॥
उत्कला मेकलाः पौण्ड्राः कलिङ्गान्धाश्च संयुगे ।
नियादाश्च त्रिगर्ताश्च बाह्लीकाश्च जितास्त्वया ॥ ८ ॥
तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा ।
वह्वश्च जिताः कर्णं त्वया वीरा महोजसा ॥ ९ ॥

चौथा अध्याय ॥ ४ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे मागध ! कर्ण के ये
वचन सुनकर पितामह भीष्म प्रमत्ततापूर्वक देश और
काल के अनुकूल यह वचन बोले — हे कर्ण ! मागध
जैसे नदियों का, सूर्य जैसे अयोनिर्गम्य पदार्थों का,
मन्त्रन पुरुष जैसे मय का, उर्वरा भूमि जैसे मय
बीजों का और मेघ जैसे मय प्राणियों के जीवन का
आश्रय है, वैसे ही तुम अपने सुदृढ़ बलियों के आश्रय-
भूत हो । देवता जैसे इन्द्र के अधिन है वैसे ही

तुम्हारे बान्धव कौरव तुम्हारे अधिन हो । नारायण
जैसे देवताओं का आनन्द बढ़ाने है वैसे ही तुम अपने
मित्र कौरवों का आनन्द बढ़ाओ । हे वीर कर्ण !
तुम्हारे पालने वाले बंधुओं का श्रिय करने के लिए राजपुर
में जाकर अपने बंधुओं में कामयोजयण की जीता
था । गिरिविज में स्थित नम्रजित आदि राजाओं,
अम्बष्ठों, विदेहों, गान्धारों और हिमवान् पर्वत के दुर्ग
में रहनेवाले रणकर्कश किरातों को जीतकर तुम्हने

यथा दुर्योधनस्तात सज्ञातिकुलवान्धवः ।
 तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥ १० ॥
 शिवेनाऽभिवदामि त्वां गच्छ युद्धयस्व शत्रुभिः ।
 अनुशाधि कुरुसंख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥ ११ ॥
 भवानप्यैत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा ।
 तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥ १२ ॥
 यौनात्सम्बन्धकाहोके विशिष्टं सङ्गतं सताम् ।
 सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १३ ॥
 स सत्यसङ्गतो भूत्वा ममेदमिति निश्चितः ।
 कुरुणां पालय बलं यथा दुर्योधनस्तथा ॥ १४ ॥
 निशम्य वचनं तस्य चरणावभिवाद्य च ।
 ययौ वैकर्त्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥ १५ ॥
 सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानमप्रतिमं महत् ।
 व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत्समबृंहयत् ॥ १६ ॥
 हृषिताः कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
 उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥ १७ ॥
 कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम् ।
 क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि ।
 धनुः शब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥ १८ ॥
 इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णाश्रम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दुर्योधन के अधीन कर दिया था । हे वीर ! तुमने
 दुर्योधन के हित के लिए उरुग, मेरुग, पौण्ड्र,
 कलिङ्ग, अम्भ्र, निशाद, त्रिगर्न, बाह्मिक, आदि देशों
 में जाकर वहाँ के रहनेवाले बड़े-बड़े वीरों को अपने
 पराक्रम में जीता था । इस समय दुर्योधन जैसे सजा-
 तीय कुल और बान्धव आदि मोक्ष सव कौरवों का
 आश्रयस्थल हैं ऐसे ही तुम भी उनके रक्षक बनो
 ॥ ११ ॥ मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, जाओ, शत्रुओं
 से युद्ध करो । सब कौरवों को अपना अनुगामी बना-
 कर दुर्योधन को विजयी बनाओ । दुर्योधन के समान
 तुम भी मेरे पोतनुत्य हो । धर्म में जैसे मैं दुर्योधन का
 पितामह हूँ वैसे ही तुम्हारा भी हूँ । क्योंकि पण्डित लोग

सत्सङ्गित के सम्बन्ध को जानिमन्बन्ध में भी अधिक
 माननीय बनाते हैं । हे वीर कर्ण ! कौरवों के साथ
 तुम्हारा बड़ी सम्बन्ध हो गया है । मज्जन लोग
 इसी लिए अन्य लोगों में भी मित्रता करना चाहते
 हैं । मेरी सम्मति यह है कि तुम मूल्यप्रतिज्ञ होकर,
 उसी सम्बन्ध के विचार से, ममतापूर्वक दुर्योधन की
 तरह कौरव-सेना की रक्षा करो ॥ ११ ॥ १५ ॥ महाराज !
 भीष्म के ये वचन सुनकर, उनके चरणों में प्रणाम
 करके, महावीर कर्ण ग्य पर सगर हुए और शीघ्रता
 के साथ युद्धभूमि की ओर चले । कर्ण ने सब राजाओं
 की बढ़िया मेना को देखकर उम्र यथाम्मान स्थापित
 और उन्माहित किया । विशाल बक्ष-म्यलगाये बड़े-

बड़े वीर सिपाही अख-शखो से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए तैयार खड़े थे । सब सेना के आगे चलने-वाले वीर कर्ण को लौटकर युद्ध के लिए तैयार देख-कर दुर्योधन आदि कौरव बहुत ही प्रसन्न हुए । सभी

वीर ताल ठोककर, उछल-उछलकर, सिंहनाद और धनुष की डोरियों का शब्द करके अपना उत्साह प्रकट करते हुए वीर कर्ण की अभ्यर्थना करने लगे ॥ १५॥ १८॥

— ० —

भीष्मपर्व का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच— रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम् ।
 हृष्टो दुर्योधनो राजघ्नितं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
 सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम् ।
 अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत्सम्प्रधार्यताम् ॥ २ ॥
 कर्ण उवाच— ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राप्ततमो नृप ।
 यथा चाऽर्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३ ॥
 ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर ।
 नाऽन्याय्यं हि भवान्वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४ ॥
 दुर्योधन उवाच— भीष्मः सेनाप्रणेताऽऽसीद्वयसा विक्रमेण च ।
 श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योधगणैस्तथा ॥ ५ ॥
 तेनाऽतियशसा कर्णं घ्नता शत्रुगणान्मम ।
 सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्म महात्मना ॥ ६ ॥
 तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् ।
 कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥ ७ ॥
 न विना नायकं सेना मुहूर्त्तमपि तिष्ठति ।
 आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले ॥ ८ ॥

पाचवौ अध्याय ॥ ५ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कर्ण को रथ के ऊपर सन्मुख देखते ही दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कहा—हे मित्र ! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित अपनी सेना को मैं सर्वथा सनाथ समझना हूँ । बनाओ, अब हमें क्या करना उचित है ? जो हमारे लिए हित और हमारी शक्ति से साध्य हो, वह निश्चित करके कहो ॥ १॥ २॥ कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप हम सबके प्रभु और श्रेष्ठ युद्धिमान हैं । आप ही कर्तव्य-निर्द्धारण कीजिए । प्रधान स्वामी या राजा स्वयं जैसे कर्तव्य

का निश्चय कर सकता है, वैसे दूसरा मनुष्य नहीं कर सकता । हे नरनाथ ! हम लोग आपके ही मुख से आज्ञा सुनना चाहते हैं । मुझे निश्चय है कि आप अनुचित या अनुपयुक्त नहीं कहेंगे ॥ ३॥ ४॥ दुर्योधन ने कहा—हे कर्ण ! अवस्था, पराक्रम और ज्ञान में वृद्ध पितामह भीष्म ने सेनापति होकर सब योद्धाओं के साथ दस दिन तक अच्छी प्रकार युद्ध चलाया और मेरी सेना का रक्षा की । महायशस्वी पितामह ने अपने युद्ध-कौशल में मेरे शत्रुओं को भी मारा और

यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चाऽसारथिर्यथा ।
 द्रवेद्यथेष्टं तद्वत्स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥ ९ ॥
 अदेशिको यथा सार्थः सर्वः कृच्छ्रं समृच्छति ।
 अनायका तथा सेना सर्वान्दोषान्समर्हति ॥ १० ॥
 स भवान्वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु ।
 पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह ॥ ११ ॥
 यं हि सेनाप्रणेतारं भवान्वक्ष्यति संशयः ।
 तं वयं सहिताः सर्वे करिष्यामो न संशयः ॥ १२ ॥
 कर्ण उवाच—सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः ।
 सेनापतित्वमर्हन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
 कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः ।
 युक्ताः श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥ १४ ॥
 युगपन्न तु ते शक्याः कर्तुं सर्वे पुरःसराः ।
 एक एव तु कर्त्तव्यो यस्मिन्वैशेषिका गुणाः ॥ १५ ॥
 अन्योन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि ।
 शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव ॥ १६ ॥
 अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
 युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ १७ ॥
 को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतां वरे ।
 सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥ १८ ॥

अपनी सेना की भी रक्षा की। ऐसा दुष्कर कर्म करके
 महा मा भीष्म स्वर्गलोक की यात्रा को तयार हो चुके।
 अब हमारा पहला काम उपयुक्त सेनापति को चुनना
 है। तुम जिनको सेनापति बनाने के योग्य समझते
 हो ॥१५॥८॥ जैसे बिना मछाह के नाव पल भर भी
 जल में नहीं रह सकती वैसे ही सेनापति के बिना
 सेना क्षण भर युद्धभूमि में नहीं टहर सकती। सेना-
 पति के न होने पर, सारथी से शस्त्र रथ अथवा
 बिना मछाह की नाव के समान, सेना भी धर-उधर
 बहवनी-बहवनी फिरती है। सेना का ठीक-ठीक सञ्चालन
 करने के लिए एक योग्य सेनापति का होना
 परम आवश्यक है। पद्यप्रदर्शक मुखिया के बिना

सुसाकियों के झुण्ड जैसे कष्ट पाते हैं वैसे ही सेना-
 पति हीन सेना में भी दोष होते हैं। अनएव तुम
 विचारकर देखो कि हमारे पक्ष में जितने महानुभाव
 वीर हैं, उनमें ऐसा योग्य पुरुष कौन है जो महारथारक्षी
 भीष्म के उपरान्त उपयुक्त सेनापति हो सके। तुम
 जिनको उचित समझोगे उन्हीं को हम महर्ष अपना
 सेनापति बनावेगें ॥९॥१२॥ कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र !
 आपकी सेना में जितने श्रेष्ठ पुरुष हैं वे सब सखुल
 में उत्पन्न, ममर-विशारद, ज्ञानी, महावीर, महापरा-
 क्रमी, बुद्धिमान, शास्त्रज्ञ, युद्ध में पीठ न दिगमाने वाले
 और सेनापति होने के उपयुक्त हैं। किन्तु सब श्रेष्ठ
 महारथी एक साथ सेनापति नहीं बनाये जा सकते।

न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत ।
 द्रोणं यः समरे यान्तमनुयास्यति संयुगे ॥ १९ ॥
 एष सेनाप्रणेत्तृणामेष शस्त्रभृतामपि ।
 एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन्युरुस्तव ॥ २० ॥
 एवं दुर्योधनाऽऽचार्यमाशु सेनापतिं कुरु ।
 जिगीपन्तोऽसुरान्संख्ये कार्तिकेयमिवाऽमराः ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनामके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इन सबमें से जिस एक में अधिक गुण देख पड़े उसी को इस समय सेनापति बनाना चाहिए । किन्तु इन परस्पर समान स्पर्धा रखनेवाले चौरों में से किसी एक को जो आप सेनापति बना देंगे तो शेष सब शायद खिन्न होकर उस प्रकार उत्साह से आपके हित के लिए युद्ध न करें ॥ १३ ॥ १६ ॥ इसलिये मेरी सम्मति में योद्धाओं के आचार्य वृद्ध गुरु और सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणजी को ही सेनापति बनाना उचित है । यही सबसे अधिक इस पद के उपयुक्त है । शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और नीतिज्ञान में वृहस्पति तथा शुक

के समान महात्मा द्रोणाचार्य के रहते और कौन सेनापति-पद के योग्य हो सकता है ? आपके पक्ष के राजाओं में ऐसा कौन है जो सेनापति होकर युद्ध के लिए जानेवाले गुरुवर द्रोणाचार्य का साथ न दे ? हे राजेन्द्र ! ये महात्मा आपके गुरु हैं, फिर सेनापतियों, शस्त्रधारियों और बुद्धिमानों में भी श्रेष्ठ हैं । हे दुर्योधन ! जैसे युद्ध में असुरों को जीतने के लिए देवताओं ने कार्तिकेय को अपना सेनापति बनाया था वैसे ही आप शीघ्र द्रोणाचार्यजी को अपनी सेना का प्रधान सेनापति बनाइए ॥ १७ ॥ २१ ॥

द्रोणपर्व का पाचवें अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

अथ पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सङ्गप उवाच — कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
 सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
 दुर्योधन उवाच — वर्णश्रेष्ठयात्कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया ।
 वीर्याद्वाच्यादधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ २ ॥
 तपसा च कृतज्ञत्वाद्बृद्धः सर्वगुणैरपि ।
 युक्तोऽभवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते ॥ ३ ॥
 स भवान्पातु नः सर्वान्देवानिव शतक्रतुः ।
 भवन्नेत्राः पराङ्मुखमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

छठा अध्याय ॥ ६ ॥

सङ्गप कहते हैं कि हे महाराज ! कर्ण के ये वचन सुनकर राजा दुर्योधन ने मेना के मध्य में स्थित द्रोणाचार्य में प्रार्थना की—हे महामन ! आप वर्ण में श्रेष्ठ हैं; पुत्र, अयस्या, बुद्धि, वीरता, चतुरता आदि में भी बड़े हैं । आप शत्रुओं के लिए दुर्घट हैं । अर्थज्ञान, नीति, विजय, तपस्या, वृत्तान्त आदि गुणों में दूसरा कोई आपकी चराचरी नहीं कर सकता । हमारे पक्ष के राजाओं में आपके समान उपयुक्त सेनापति

रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः ।
 कुवेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ ५ ॥
 वसिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः ।
 पितृणामिव धर्मेन्द्रो यादसामिव चाऽम्बुराट् ॥ ६ ॥
 नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः ।
 श्रेष्ठः सेनाप्रणेतृणां स नः सेनापतिर्भव ॥ ७ ॥
 अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु नेऽनघ ।
 ताभिः शत्रून्प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव ॥ ८ ॥
 प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।
 अनुयास्यामहे त्वाऽजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥ ९ ॥
 उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन्धनुः ।
 अग्रेभवं त्वां तु दृष्ट्वा नाऽर्जुनः प्रहरिष्यति ॥ १० ॥
 ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सवान्धवम् ।
 जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान्सेनापतिर्यदि ॥ ११ ॥
 मञ्जय उवाच—एवमुक्ते ततो द्रोणं जयेत्युचुर्नराधिपाः ।
 सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवाऽऽत्मजम् ॥ १२ ॥
 सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम् ।
 दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद्यशः ।
 दुर्योधनं ततो राजन्द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥
 इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणः साहने पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

और कोई नहीं है। १।३॥ हे भगवन् । मम देवताओं
 का जैसा इन्द्र रक्षा करत है वैसा ही आप हम सब के
 रक्षण प्रतिप । हे द्विजश्रेष्ठ । आपको सेनापति बना-
 कर हम अपने शत्रुओं का जीतना चाहते हैं । जैसा
 रथों में कपाल, वसुओं में पावक, यक्षों में कुवेर,
 देवगणों में इन्द्र, प्राक्षणा में अग्निष्ठ, तेजस्वियों में मरुत,
 विप्राओं में यमराज, जलचारियों में वरुण, नक्षत्रों में
 चन्द्रमा, दानवों में शुक्राचार्य और सम्पूर्ण विश्व में
 सृष्टि स्थिति प्रणयनार्थ प्रभु नागयण श्रेष्ठ हैं, वैसा ही
 इन सेनापति-मन्द के लिए उपयुक्त क्षत्रियों में आप
 श्रेष्ठ सेनापति हैं । इसलिए मया प्रार्थना स्वीकार करके
 आप मेरी सेना के सेनापति बनिगा। १॥ ३॥ हे निष्ठाप !

यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना आपके अर्जुन होकर
 युद्ध करे । हे भगवन् । इन्द्र जैसे दानवा का जीतने हैं
 वैसा ही शत्रुओं के विरुद्ध इस सेना में व्यूह रचना करने
 आप मेरे शत्रुओं को जीतिंगे । कर्त्तव्य जैसा देव
 ताओं के आगे आगे चले गे, वैसा ही आप हम लोगों
 की सेना के अग्रगामी सेनापति हों । जैसे बड़े मोड़
 के पीछे बैंग चलते हैं वैसा ही हम लोग युद्धभूमि में
 आपके अनुगामी होंगे । अतः दिव्य धनुष का शब्द
 करने हुए महायोद्धा उग्रधन्वा अर्जुन जब मर्याम में
 आपको अगे द्रोणों ने कभी प्रहार नहीं करेगा ।
 हे पुरुषार्थि ! आप यदि मेरे सेनापति बनेंगे तो मैं
 युद्ध में बगुनानी और अनुगामी राजाओं मर्दिन

युधिष्ठिर को जीत देंगा॥८॥१॥सञ्जय ने कहा— भी महत् यय की इच्छा से प्रसन्नतापूर्वक दुर्योधन की
हे महाराज ! दुर्योधन के यो कहने पर सब राजा बातों का समर्थन करते हुए द्रोणाचार्य की अभ्यर्थना
लोग सिंहनाद से आपके पुत्र को प्रसन्न करते हुए करने लगे। अत्र महायशस्वी द्रोणाचार्य ने आपके पुत्र
'द्रोणाचार्य की जय हो' ऐसा कहने लगे। सैनिकगण से यों कहा॥१२॥१३॥

द्रोणपर्व का छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

द्रोण उवाच—वेदं पठङ्गं वेदाऽहमर्थविद्यां च मानवीम् ।
त्रैयम्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥ १ ॥
ये चाऽप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकाक्षिभिः ।
चिकीर्षुस्तानहं सर्वान्योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥ २ ॥
पार्षतं तु रणे राजन्न हनिष्ये कथञ्चन ।
स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥
योधयिष्यामि सैन्यानि नाशयन्सर्वसोमकान् ।
न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच—स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः ।
द्रोणं तव सुतो राजन्विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥
अथाऽभियिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः ।
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शकमुखाः सुराः ॥ ६ ॥
ततो वादित्रघोषेण शङ्खानां च महास्वनेः ।
प्राहुरासीत्कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ ७ ॥
ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च ।
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधवन्दिनाम् ॥ ८ ॥

सातगा अध्याय ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्य ने कहा—हे दुर्योधन ! मैं वेद के
एहों अङ्ग, मनुषर्णित अर्थविद्या, भगवान् शूलपाणि
का पाशुपत अस्त्र और अन्य अनेक प्रकार के अस्त्र-
शस्त्र तथा उनका प्रयोग भली भाँति जानता हूँ ।
तुम लोगों ने जय की इच्छा करने के मुझमें जिन-जिन
गुणों का होना बन्दाय है उन गुणों का परिचय,
तुम्हारा हित करने के लिए, देता हुआ मैं पाण्डवों
में युद्ध करूँगा । किन्तु हे राजेन्द्र ! मैं द्रुपद के पुत्र
शृष्टपुत्र को किसी प्रकार न मार सकूँगा । वह पुरुष-
श्रेष्ठ मुझे मारने के लिए ही उत्पन्न हुआ है । मैं सब
सोमकों और पाशवालों को मारूँगा, आर सब सैनिकों
के साथ युद्ध करूँगा किन्तु प्रसन्न पाण्डवगण जी
खोलकर मुझमें नहीं युद्ध करेंगे॥१४॥सञ्जय ने
कहा—हे महाराज ! इस प्रकार द्रोणाचार्य की अनु-
मति पाकर आपके पुत्र दुर्योधन ने विधिपूर्वक उनको
मेनापति बनाया । पूर्व समय में जैसे इन्द्र आदिदेव-
ताओं ने वात्सिकेय को अपना मेनापति बनाकर
उनका अभिषेक किया था, वैसे ही दुर्योधन आदि

जयशब्दैर्द्विजान्याणां सुभगानर्त्तितैस्तथा ।
 सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥ ९ ॥
 सैन्यपत्यं तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
 युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात्तत्र सुतैः सह ॥ १० ॥
 सैन्यवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
 दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥
 प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः ।
 ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥ १२ ॥
 कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः ।
 दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥ १३ ॥
 तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरःसराः ।
 ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥ १४ ॥
 मद्रास्त्रिगर्ताः साम्बष्टाः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ।
 शिवयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥ १५ ॥
 सौवीराः कितवाः प्राच्या दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
 तवाऽऽत्मजं पुरस्कृत्य सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ १६ ॥
 हर्षयन्तः स्वसैन्यानि ययुस्तत्र सुतैः सह ।
 प्रवरः सर्वयोधानां वलेषु बलमादधत् ॥ १७ ॥
 ययौ वैकर्त्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ।
 तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥ १८ ॥

राजाआ ने मिलकर सेनापति-पद पर द्रोणाचार्य को स्थापित किया, उनका अभिषेक किया। उस समय कौरवगण विचित्र बाजे और राक्ष बजाकर हर्ष प्रकट करने लगे। अब ब्राह्मणों ने पुण्याह-पाठ और स्तुति-वाचन किया, सूत-मागध-इन्दीजन स्तुति गायन करने लगे, ब्राह्मण लोग शुभ आशीर्वाद के साथ जय-जय-कार करने लगे और सुन्दरी स्त्रियाँ नाचने गान लगीं। इस प्रकार विधिपूर्वक द्रोणाचार्य का सम्कार और अभिषेक करने, सेनापति बनकर, कौरवों ने समझ लिया कि अब पाण्डव पराजित हो गये॥५१॥मञ्जय कहते हैं—सेनापति बनावे जाने पर महारथी द्रोणाचार्य युद्ध की इच्छा में वीरसेना की व्यवस्था

करके आपके पुत्रों के साथ युद्ध के लिए चले। सिन्धुनरेश जयद्रथ, कलिङ्गनरेश और आपके पुत्र विकर्ण उनके दक्षिण भाग में सुमञ्जित सेना के साथ स्थित हुए। गान्धार देश के प्रधान-प्रधान युद्धमगर, जिनके हाथों में उज्ज्वल प्रास चमक रहे थे, शकुनि की अर्धनता में उस सैन्यभाग की रक्षा के लिए, उनके पीछे चले॥१०॥१२॥इषाचार्य, कृतवर्मा, चित्र-मेन, विविंशति और दृशामन आदि वीर योद्धा द्रोणाचार्य के वाम भाग की रक्षा में नियुक्त हुए। राजा सुदक्षिण की अर्धनता में वीर काम्बोज, शक और यवनगण द्वाप्रगामी घोड़ों पर मगर हो इस सैन्यभाग की रक्षा के लिए पीछे-पीछे चले। इस प्रकार

हस्तिकच्यो महाकेतुर्वभौ सूर्यसमद्युतिः ।
 न भीष्मव्यसनं कश्चिद् दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥ १९ ॥
 विशोकाश्चाऽभवन्सर्वे राजानः कुरुभिः सह ।
 हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राऽजल्पन्त वेगतः ॥ २० ॥
 नहि कर्ण रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पाण्डवाः ।
 कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान्सवासवान् ॥ २१ ॥
 किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
 भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना ॥ २२ ॥
 तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति संयुगे ।
 एवं द्रुवन्तस्तेऽन्योन्यं हृष्टरूपा विशाम्पते ॥ २३ ॥
 राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ।
 अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ २४ ॥
 परेषां क्रौञ्च एवाऽसीद्व्यूहो राजन्महात्मनाम् ।
 प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥ २५ ॥
 व्यूहप्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुपर्पभौ ।
 वानरध्वजमुच्छिन्नैश्च विष्वक्सेनधनञ्जयौ ॥ २६ ॥
 ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
 आदित्यपथगः केतुः पार्थस्याऽमिततेजसः ॥ २७ ॥
 दीपयामास तत्सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
 यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै वसुन्धराम् ॥ २८ ॥

मद्र, त्रिगर्त, अम्बुध्र, प्रतीप्य, उदोप्य, मालव, शिति, शूरसेन, शूद्र, मल्ल, सौवीर, कितव, प्राप्य और दक्षिणात्य देशों के राजा और उनकी सेना—दुर्योधन और कर्ण को आगे करके—अपने पक्ष को आनन्दित और उत्साहित करती हुई आगे बढ़ीं ॥ १३ ॥ १७॥ मय धनुर्द्वारों में श्रेष्ठ महारथी कर्ण मय सेना के हृदय में बल और उत्साह बढ़ाते हुए सबके आगे चले । उनकी बहुत बड़ी ध्वजा मय के समान चमक रही थी और हारियों के बाँधने की सुवर्ण-शृङ्खला में रथ में बैठा हुई थी । उन्हें देखकर कुमेना के हृदय में हर्ष और युद्ध के लिए उत्साह बढ़ गया था । उस समय महारथी कर्ण को देखाकर मय लोगो को

भीष्म की मृत्यु का शोक भूल गया । कौरव और उनके पक्ष के राजा लोग झोकहीन हो गये ॥ १७॥ २०॥ बहूतरे सुभट एकत्र होकर परस्पर कहने लगे कि पाण्डवगण वीर कर्ण को देखते ही युद्धभूमि से भाग गये होंगे । पराक्रम और वीर्य में हीन पाण्डवों की कीर्ति कहे, देवगण सहित इन्द्र भी समर में कर्ण को परास्त नहीं कर सकते । पराक्रमी भीष्म ने रण में पाण्डवों की रक्षा की थी, उनको नहीं मारा था, किन्तु कर्ण उन्हें युद्ध में अवश्य अपने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट कर देते । हे महाराज ! योद्धा लोग इस प्रकार प्रसन्नता-पूर्ण कर्ण की प्रशंसा करते हुए रणभूमि की ओर चले ॥ २०॥ २४॥ राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य ने हमारी सेना

दीप्यन्द्श्येत हि तथा केतुः सर्वत्र धीमतः ।
 योधानामर्जुनः श्रेष्ठोः गाण्डीवं धनुषां वरम् ॥ २९ ॥
 वासुदेवश्च भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम् ।
 चत्वार्येतानि तेजांसि बह्वृश्चेतहयो रथः ॥ ३० ॥
 परेषामग्रतस्तस्यौ कालचक्रमिवोद्यतम् ।
 एवं तो सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ ॥ ३१ ॥
 तावकानां मुखे कर्णः परेषां च धनञ्जयः ।
 ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैपिणौ ॥ ३२ ॥
 अवक्षेतां तदाऽन्योन्यं समरे कर्णपाण्डवौ ।
 ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे ॥ ३३ ॥
 आर्त्तिनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत ।
 ततस्तुमुलमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥ ३४ ॥
 वातोद्ध्वनं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम् ।
 ववर्ष द्यौरनभ्रापि मांसास्थिरुधिराण्युत ॥ ३५ ॥
 दृष्ट्वाः श्येना वकाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः ।
 उपर्युपरि सेनां ते तदा पर्यपतन्मृग ॥ ३६ ॥
 गोमायवश्च प्राक्रोशन्भयदान्दारुणान् रवान् ।
 अकार्पुण्यसर्व्यं च बहुशः पृतनां तत्र ॥ ३७ ॥
 चित्रादिपन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम् ।
 अपतद्दीप्यमाना च सन्निर्घाता सैकम्पना ॥ ३८ ॥

में शकट-व्यूह की रचना की थी । उभर युधिष्ठिर ने भी प्रमत्ततापूर्णक कौश-व्यूह की रचना की । अपने रथ की वातरयुक्त ध्वजा का उड़ाने हुए महावीर अर्जुन और महात्मा श्रीकृष्ण उम व्यूह के मुखभाग में स्थित थे । सत्र योद्धाओं में श्रेष्ठ और सब धनुर्धरों का तेज के समूह स्वरूप महानेजयी अर्जुन की ध्वजा आकाश-भाग में स्थित होकर सारी सेना को प्रकाशित कर रही थी । उमें देवदत्त जान पड़ने लगा, मानों प्रलय-काल का मृत्यु पृथ्वी को भस्म करने के णि उड़ित हुआ है । अर्जुन सत्र योद्धाओं में श्रीकृष्ण सत्र प्राणियों में, गाण्डीव धनुष सब धनुषों में और सुदर्शन चक्र मय चक्रों में श्रेष्ठ है । १२४१२५॥ सत्र चारों श्रेष्ठ तेजो

को धारण करिषे हुए, सत्र योद्धाओं में शोभित अर्जुन का रथ उद्यत कालचक्र के समान शत्रुसेना के आगे स्थित था । इस प्रकार कीरत-सेना के अग्रभाग में कर्ण और पाण्डव-सेना के अग्रभाग में अर्जुन खड़े होकर जय की और परस्पर वध की इच्छा में युद्ध होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे । १२५॥ ३३॥ महारथी द्रोणाचार्य जब युद्ध के लिए चले तब उनके मिहनाद और दान्धनाद में पृथ्वी काँप उठी । कीर्त्तियों के समान घाली तीव्र धूल वायु में उड़कर आकाश-मण्डल में जा गई, इममें मृत्यु भी डिर गये । आकाश-मण्डल में भय न होने पर भी माम, हड़, और रक्त की वर्षा होने लगी । सदसों गिद्ध, बाज, कौण, बक

उल्का ज्वलन्ती संग्रामपुच्छेनाऽऽवृत्य सर्वशः ।
 परिवेषो महान्श्चापि सविद्युस्तनयित्नुमान् ॥ ३९ ॥
 भास्करस्याऽभवद्राजन्प्रयाते वाहिनीपतौ ।
 एते चाऽन्ये च बहवः प्रादुरासन्सुदारुणाः ॥ ४० ॥
 उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारिणः ।
 ततः प्रवृत्ते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ॥ ४१ ॥
 कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनाऽपूरयज्जगत् ।
 ते त्वन्योन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ॥ ४२ ॥
 अभ्यघ्नन्निशितैः शस्त्रैर्जयगद्गाः प्रहारिणः ।
 स पाण्डवानां महतीं महेष्वासो महाश्रुतिः ॥ ४३ ॥
 वेगेनाऽभ्यद्रवत्सेनां किरञ्जरशतैः शितः ।
 द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ॥ ४४ ॥
 प्रत्यगृह्णन्तदा राजञ्छरवर्षैः पृथक्पृथक् ।
 विक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ॥ ४५ ॥
 व्यशीर्यत सपाञ्चाला वातेनेव बलाहकाः ।
 बहूनीह विकूर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥ ४६ ॥
 अपीडयत्क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
 ते बध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ॥ ४७ ॥
 पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
 ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ४८ ॥

आदि मांसहारी पक्षी सेनाओं के ऊपर मँडलाने लगे ।
 गीदड़ों के झुण्ड, भयानक चीत्कार करते हुए, मांस
 खाने और रक्त पीने की इच्छा में बारम्बार आपकी
 सेना के दाहने भाग में चक्कर लगाने लगे । बड़ो-
 बड़ी उल्काएँ, अपनी पूँछ फैलाये घोर शब्द करती
 और जलती हुई, संग्रामभूमि में गिरने लगीं ॥ ३९ ॥
 सेनापति के चलने के समय विजली की चमक और
 कड़कड़ाहट के साथ मृग के चारों ओर बढ़ा भारी
 मण्डल पड़ गया । कौरव-सेना के प्रस्थान के समय
 ये और अन्य अनेक घोर उत्पात दिखाई पड़ने लगे,
 जो कि युद्ध में वीरों की मृत्यु की सूचना दे रहे थे ।
 अब परस्पर वध की इच्छा रखनेवाले सैनिकों में युद्ध

होने लगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कौरवों और पाण्डवों की सेना
 का घोर कोलाहल जगत् भर में फैल गया । जय
 की इच्छा रखनेवाले क्रुद्ध कौरव और पाण्डव एक
 दूसरे पर तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार करने लगे ।
 महातेजस्वी महारथी द्रोणाचार्य सैकड़ों-सहस्रों तीक्ष्ण
 बाणों से शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करते हुए वेग से
 आगे बढ़े । उनको इस तरह युद्ध के लिए उद्यत देखकर
 पाण्डव और सृञ्जयगण भी अलग-अलग उन पर बाणों
 की वर्षा और उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे ॥ ४२ ॥
 ॥ ४५ ॥ द्रोणाचार्य भी पाण्डवों की महासेना और
 पाञ्चालों के दल में हलचल डालते हुए उन्हें छिन्न-
 भिन्न करने लगे । द्रोणाचार्य के अनेक दिव्य अस्त्रों

अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ।
 द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्यतः ॥ ४९ ॥
 सन्निवार्य ततः सर्वान्कुरुनप्यवधीद्वली ।
 संयम्य तु ततो द्रोणः समवस्थाप्य चाऽऽहवे ॥ ५० ॥
 स्वमनीकं महेष्वासः पार्यतं समुपाद्रवत् ।
 सवाणवर्षं सुमहदसृजत्पार्यनं प्रति ॥ ५१ ॥
 मघवान्समभिकुङ्घः सहसा दानवानिव ।
 ते कम्प्यमाना द्रोणेन वाणैः पाण्डवसृञ्जयाः ॥ ५२ ॥
 पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ।
 तथा पर्यचरद् द्रोणः पाण्डवानां वले वली ।
 अलातचक्रवट्टाजस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ५३ ॥

खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या चलदनिलपताकं ह्लादनं वल्गिनाश्वम् ।
 स्फटिकविमलकेतुं त्रासनं शास्त्रवाणां रथवरमधिरूढः सज्जहाराऽरिसेनाम् ॥ ५४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकार्पणि द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मे व्यथित आर पीडित पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना बँधे ही तितर-बितर होने लगी, जैसे वायु के झोंके से मेघ फट जाने है । इन्द्र के प्रहार में पीडित असुरों के समान द्रोणाचार्य के प्रहारों में पीडित धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल कोंप उठे। ४५। ४८। तब दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले धृष्टद्युम्न ने भा बाणवर्षा करके द्रोणाचार्य की सेना को उभी तरह छिन्न-भिन्न और पीड़ित किया । यहाँ धृष्टद्युम्न ने अपने बाणों की वर्षा में द्रोणाचार्य की बाणवर्षा को रोककर मघ कीर्यों को अपने तीक्ष्ण बाणों में घायल कर दिया । महानर द्रोणाचार्य अपनी भागती हुई सेना को रोक-कर और युद्धभूमि में टहलाकर धृष्टद्युम्न की ओर दौड़े । जैसे क्रुद्ध होकर इन्द्र दानवों के ऊपर बाण वर्षा करे वैसे ही द्रोण भी धृष्टद्युम्न के ऊपर बाण

बरसाने लगे। ४८। ५२। सिंह के मारे मृगों के समान द्रोण के बाणों में पीड़ित पाण्डव और सृञ्जयगण बारम्बार युद्ध से हटने लगे । जैसे जलती हुई लकड़ी घुमाई जाय वैसे ही द्रोणाचार्य बाणवर्षा करते हुए पाण्डवों की सेना में चिचरने लगे । यह एक अद्भुत दृश्य देखने में आया । शायोक्त विधि में सुसज्जित आचार्य का रथ आग्रश में घूमनेवाले नगर के समान देख पड़े रहा था । स्फटिक-महद उग्रवट्ट परतदण्ड में शोभित रथ के घूमने रहने में उसकी छोटी-छोटी पत्ताकार पहलू गयी थी । घड़े दिनदिना रहे थे । उसकी गति देखकर अपने पक्ष के लोग प्रसन्न थे और शत्रुपक्ष के लोग भयभीत हो रहे थे । ऐसे उत्तम रथ पर चढ़े हुए महाशू द्रोणाचार्य शत्रुसेना का महार करने लगे। ५२। ५४॥

द्रोणपर्व का मानवों अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

मग्नय उवाच - तथा द्रोणमभिप्लवन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
 व्याधिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवास्यन् ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनञ्जयौ ।
 अत्रर्वत्सर्वतोयत्तैः कुम्भयोनिर्निवार्यताम् ॥ २ ॥
 तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षतश्च सहानुगः ।
 प्रत्यगृह्णात्ततः सर्वे समापेतुर्महारथाः ॥ ३ ॥
 केकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ।
 युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्याऽऽत्मजास्तथा ॥ ४ ॥
 द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुः ससात्यकिः ।
 चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥ ५ ॥
 ये चाऽन्ये पार्थिवा राजन्पाण्डवस्याऽनुयायिनः ।
 कुलवीर्यानुरूपाणि चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥ ६ ॥
 संरक्षमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे ।
 व्यावृत्त्य चक्षुषी कोपान्नारद्वाजोऽन्ववैक्षत ॥ ७ ॥
 स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः ।
 व्यधमत्पाण्डवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥ ८ ॥
 रथानश्चान्नरान्नागानभिधावन्नितस्ततः ।
 चचारोन्मत्तवद् द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ ९ ॥
 तस्य शोणितदिग्धाङ्गाः शोणास्ते वातरंहसः ।
 आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥ १० ॥
 तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं यतव्रतम् ।
 दृष्ट्वा सम्प्राद्रवन्योधाः पाण्डवस्य ततस्ततः ॥ ११ ॥

आठवीं अध्याय ॥ ८ ॥

मन्त्रय ने कहा—हे महा राज ! द्रोणाचार्य की
 इस प्रकार सारथी-रथ-हाथी-घोड़े आदि का महार
 करते देव्यकर उनके प्रहार से व्यथित पाण्डवों की
 सेना और पाण्डवगण उनका सामना नहीं कर सके।
 तब राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न और अर्जुन से कहा -
 हे योद्धा ! तुम सावधान होकर सब ओर से घेरकर
 द्रोणाचार्य को रोकोगे॥१२॥अब अर्जुन, धृष्टद्युम्न और
 उनके अनुगामी भीमसेन, भीमसेन, अभिमन्यु,
 घटोत्कच, युधिष्ठिर, नकुल, महदेव, विगट, द्रुपद,
 शिगण्डी, द्रोणदी के पाँचों पुत्र, धृष्टकेतु, मायकि,
 धैर्यवान, युयुत्सु और अन्य राजा लोग द्रोणाचार्य

के मन्त्रय जाकर अपने कुटुम्ब और पराक्रम के अनुकूल
 अनेक अद्भुत कार्य करने लगे॥१३॥रण में अपनी
 सेना को पाण्डवों की बाणबर्षा से भागने देव्यकर
 महाबली द्रोणाचार्य ने तल्वर-माट नेत्रों को चढ़ाकर
 पाण्डवों की ओर देखा। युद्धदुर्मद द्रोणाचार्य तब
 कोप के वश होकर रथ पर बैठे बैठे ही बाणबर्षा में
 भीम, भीमसेन, भीमसेन की मर्ष और उन भिन्न करने लगे,
 जैसे आँधी में घोड़ों को निरन्तर-विचर कर दानवी है।
 बृद्ध होने पर भी तरुणतुल्य बर्षा और पुनीत द्रोणा-
 चार्य क्रोध में उन्मत्त की तरह हाथी, घोड़े, रथ, मन्त्रय
 आदि की ओर इधर-उधर जा-जाकर उन्हें नष्ट करने

तेषां प्राद्वतां भीमः पुनरावर्त्ततामपि ।
 पश्यतां तिष्ठतां चाऽऽसीच्छब्दः परमदारुणः ॥ १२ ॥
 शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः ।
 व्यावाप्त्यिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥
 ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन्युधि ।
 अकरोद्रौद्रमात्मानं किरञ्छरशतैः परान् ॥ १४ ॥
 स तथा तेज्वनीकेषु पाण्डुपुत्रस्य मारिष ।
 कालवद्वधचरद् द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥ १५ ॥
 उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान्बाहूनापि सुभूषणान् ।
 कृत्वा शून्यान्स्थोपस्थानुदक्रोशन्महारथान् ॥ १६ ॥
 तस्य हर्षप्रणादेन वाणवेगेन वा विभो ।
 प्राकम्पन्त रणे योधा गावः शीतार्दिता इव ॥ १७ ॥
 द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेपणेन च ।
 धनुःशब्देन चाऽऽकाशे शब्दः समभवन्महान् ॥ १८ ॥
 अथाऽस्य धनुषो वाणा निश्चरन्तः सहस्रशः ।
 व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्चरथपत्तिषु ॥ १९ ॥
 तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम् ।
 द्रोणमासादयाश्चक्रुः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ २० ॥
 तान्स कुञ्जरपत्यश्चान्प्राहिणोद्यमसादनम् ।
 चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम् ॥ २१ ॥

गंगा ॥ ७९ ॥ राघु के समान गेगशा ग्री द्रोणाचार्य के ।
 घोड़े स्नाभानिक लाल रङ्ग के थे, उस पर रक्त में
 सन जानि के कारण आर भी लाल हो गये । इधर-
 उधर वेग में दौड़ने पर भी वे थके नहीं, सुगमता
 से चारों ओर घूमने लगे । वे घोड़े अच्छी जानि के
 थे । क्रुद्ध काल के समान द्रोणाचार्य को आते हुए
 देखकर पाण्डवपक्ष के योद्धा लोग इधर उधर भागने लगे
 'इधर-उधर भागते, छोटते, युद्ध को देखने और 'गूँज उठा'।
 योद्धाओं का दारुण कोलाहल चारों ओर 'गूँज उठा'।
 शरों के हृदय में हर्ष और कायरों के हृदय में भय
 उत्पन्न करनेवाला यह कोलाहल आकाश और पृथ्वी
 में भर गया । द्रोणाचार्य युद्धभूमि में बारम्बार अपना

नाम सुना सुनाकर असह्य बाणों से शत्रुसेना को
 आच्छन्न करते हुए मयानक हो उठे । बली द्रोणा-
 चार्य साक्षात् काल के समान पाण्डवों की सेना के
 मध्य निचर रहे गे ॥ १० ॥ १५ ॥ उग्र रूप धारण करने
 शरों के मिर और अलङ्कार-शोभित मुजारे काट-काट
 कर गिराते हुए घोर मिहनाद कर रहे थे । द्रोणा-
 चार्य ने 'बाणों' की वर्षा में शत्रुसेना के रथों को
 रथियों से शून्य कर दिया । द्रोणाचार्य के बाणों की
 वर्षा और हर्षमूचक सिंहनाद से योद्धा लोग शीत
 में पीड़ित भाग्यो के ममान कौपने लगे । द्रोणाचार्य
 के रथ-चक्रों का घरघराहट, प्रलम्बा के शब्द और
 धनुष के निघाव से आकाश में घोर प्रतिध्वनि होने

तन्वता परमास्त्राणि शरान्सततमस्यता ।
 द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजालमदृश्यत ॥ २२ ॥
 पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः ।
 तस्य विद्युदिवाऽऽभ्रेषु चरन्केतुरदृश्यत ॥ २३ ॥

स केकयानां प्रवरांश्च पञ्च पञ्चालराजं च शरैः प्रमथ्य ।
 युधिष्ठिरानीकमदीनसत्त्वो द्रोणोऽभ्ययात्कार्मुकवाणपाणिः ॥ २४ ॥
 तं भीमसेनश्च धनञ्जयश्च शिनेश्च नसा ह्रुपदात्मजश्च ।
 शैव्यात्मजः काशिपतिःशिविश्च दृष्ट्वा नदन्तो व्यकिरञ्छरौघैः ॥ २५ ॥
 तेषामथ द्रोणधनुर्विमुक्ताः पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खाः ।
 भित्त्वा शरीराणि गजाश्वयूनां जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥ २६ ॥
 सायोधसङ्घैश्च रथैश्च भूमिः शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च ।
 प्रच्छाद्यमाना पतितैर्वभूव समावृता द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७ ॥
 शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् ।
 अन्यांश्च वीरान्समरे ममर्द द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८ ॥
 एतानि चाऽन्यानि च कौरवेन्द्र कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा ।
 प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन् ॥ २९ ॥

लगी॥१६।१८॥उनके धनुष से निरन्तर निकले हुए सहस्रों बाण सब दिशाओं में व्याप्त हो गये और हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के ऊपर वेग से गिरने लगे। पाण्डवों और सृज्यों ने देखा कि धनुष और अन्य अस्त्र-शस्त्रों से प्रज्वलित अग्नि के समान द्रोणाचार्य उनकी सेना को भस्म कर रहे हैं। पाण्डव और सृज्यगण उनके पास पहुँचकर उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। महापराक्रमी द्रोणाचार्य ने हाथियों, रथों, पैदलों और घोड़ों सहित पाण्डव-सेना का महार करके बहुत क्षीण पृथ्वी पर रक्त की कीचड़ कर दी॥१९।२१॥ वे ऐसे बाण बरसाने लगे और दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे कि चारों ओर हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के ऊपर बाण हों बाण दिग्गज पड़ने लगे। उनके रथ की चक्रा मेघों में विजय की तरह मन्त्र घुमती दिखाई पड़ रही थी।
 अब वीर द्रोणाचार्य केकयेश पाँचों गजकुमारों को और पाञ्चालराज द्रुपद को अपने बाणों में पीड़ित

करके हाथ में धनुष-बाण लिये युधिष्ठिर की सेना के मध्य और आगे बढ़े। इतना पराक्रम और परिश्रम करके वे तनिका भी नहीं बचे॥२२।२४॥उन्हें देखकर सिंहनाद करने हुए भीमसेन, अर्जुन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, काशिराज और शिवि, ये सब वीर उन पर बाणों की वर्षा करने लगे। द्रोणाचार्य के धनुष में निकले हुए तीक्ष्ण और सुवर्णमय विचित्र पुद्ग में शाम्भिन बाण हाथी, घोड़े और नाजगान योद्धा आदि के शरीरों को फाड़कर पृथ्वी में प्रवेश हो जाते थे। उनके विचित्र पुद्ग रक्त में भीग जाते थे। बाणों के प्रहार में बट-कटकर गिरे हुए योद्धा, रथ, हाथी, घोड़े आदि में परिपूर्ण गणभूमि काले मेघों में व्याप्त आकाश की तरह शोभायमान हुई॥२५।२७॥हे महागज! आपके पुत्रों का विभव और विजय चाहनेवाले वीर द्रोणाचार्य ने सात्यकि, भीमसेन, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रुपद, काशिराज आदि अन्यान्य सब वीरों को अपने अर्जुन पराक्रम में पीड़ित और जगति

एवं स्वमरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः ।
 पाण्डवानां रणे योधान्पार्षतेन निपातितः ॥ ३० ॥
 अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
 निहत्य पश्चाद्धृतिमानगच्छत्परमां गतिम् ॥ ३१ ॥
 पाण्डवैः सह पञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः ।
 हतो स्वमरथो राजनृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥
 ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत ।
 सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्यं निहते युधि ॥ ३३ ॥
 द्यां धरां म्वं दिशो वाऽपि प्रदिशश्चाऽनुनादयन् ।
 अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवद्भृशम् ॥ ३४ ॥
 देवताः पितरश्चैव पूर्वं ये चाऽस्य बान्धवाः ।
 ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम् ॥ ३५ ॥
 पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान्प्रचक्रिरे ।
 सिंहनादेन सहता समकम्पत मेदिनी ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रथमवर्णे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

क्रिया । हे महाराज ! ये और अन्य अनेक अद्भुत
 कार्य करके, प्रलयकाल के प्रचण्ड मर्य के समान
 मर लोको को तपाकर, अन्त को महामा द्रोणाचार्य
 भी इस लोक को छोड़कर स्वर्ग को मिथार गये ।
 सुगर्ममण्डित रथ पर सवार द्रोणाचार्य इस तरह मरुझों
 हत्तारों शूरो को मारकर पाण्डवों में युद्ध करते-करते
 भृष्टशुम्भ के हाथ में मारे गये । धर्मज्ञानी महावीर
 द्रोणाचार्य, समर में स्थिर होकर युद्ध करनेवाले वीरों
 की एक अक्षौहिणी में भी अधिक मेना का महार
 करने के पश्चात्, परमगति को प्राप्त हुए । हे महा-
 राज ! अनेक अद्भुत कर्म करके क्रूरकर्मा अनुम
 पाञ्चालों और पाण्डवों के हाथों महारथी द्रोणाचार्य

मारे गये ॥ २८ ॥ ३२ ॥ युद्ध में आचार्य की मृत्यु होने
 पर आकाश में मिदगण, देवगण और पृथ्वी पर आपके
 पक्ष के मैनिक लोग घोर शोरमूचक कालाहल करने
 लगे । सब प्राणी बारम्बार कहने लगे कि अहो,
 धिक्कार है ! उनके इस शब्द की प्रतिध्वनि आकाश,
 अन्तरिक्ष, पृथ्वी और मरु दिशाओं में गूँज उठी ।
 देवों, पितरों और आचार्य के भाई वन्धुओं ने देखा
 कि महारथी द्रोणाचार्य पृथ्वी पर मरे पड़े हैं । पाण्डव
 लोग इस तरह जय प्राप्त करके आनन्द में सिंहनाद
 करने और शब्द बजाने लगे । उनके सिंहनाद में
 पृथ्वी कांपने लगी ॥ ३३ ॥ ३६ ॥

द्रोणपर्व का आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भूतपाद उवाच—किंकुर्वणिं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डवस्तृजयाः ।
 तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रमृतामपि ॥ १ ॥

रथभङ्गो बभूवाऽस्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः ।
 प्रमत्तो वाऽभवद् द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान् ॥ २ ॥
 कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम् ।
 किरन्तमिपुसङ्घातान्स्वमपुङ्गवाननेकशः ॥ ३ ॥
 क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम् ।
 दूरेपुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम् ॥ ४ ॥
 पाञ्चालपुत्रो न्यवधीद्विव्यास्त्रधरमच्युतम् ।
 कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महारथम् ॥ ५ ॥
 व्यक्तं हि देवं बलवत्पौरुषादिति मे मतिः ।
 यद् द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महारमना ॥ ६ ॥
 अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत्प्रतिष्ठितम् ।
 तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम् ॥ ७ ॥
 श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम् ।
 जातरूपपरिष्कारं नाऽद्य शोकमुपाददे ॥ ८ ॥
 न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि सञ्जय ।
 यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः ॥ ९ ॥
 दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम् ।
 अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुहृदं मम ॥ १० ॥
 यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते ।
 ब्राह्मे दैवे तथेष्टस्त्रे यमुपासन्गुणार्थिनः ॥ ११ ॥

नवमीं अध्याय ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा— हे मञ्जय ! द्रोणाचार्य ने
 सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और सब शस्त्रों के युद्ध में
 निपुण थे । उन्हें जिस समय पण्डितों और सूत्रियों ने
 मित्रकर मारा उस समय वे क्या कर रहे थे ? उनका रथ
 टूट गया था या धनुष कट गया था, अथवा ने असावधान
 थे जो उनकी मृत्यु हुई ? शत्रुओं के लिए दुर्दर्भ, सुरण-
 पुष्ट अमंस्क तीक्ष्ण बाण बरसाने वाले, पुर्विले, शून्यविष
 विचित्र युद्ध में अद्वितीय, बहुत दूर तक बाण को
 पहुँचा सजने वाले, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, अश्वयुद्ध के
 पारगामी, जिनेन्द्रिय, द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को शृष्टपुष्ट
 कैसे मार सका ! ॥ १५ ॥ मेरी ममता में पौरुष की अंक्षा

दैव ही प्रबल है । ऐसा न होता तो रण में दारुण
 कर्म करनेवाले, सावधान, महारथी द्रोण के हाथ में
 धनुष-बाण रहने पर भी शृष्टपुष्ट उन्हें कैसे मार डालता ?
 चतुर्विध अस्त्रों के जाननेवाले, शस्त्रधारियों के आचार्य
 द्रोण की मृत्यु होना तुम बना रहे हो ! सुदर्भमय
 और व्याघ्रचर्ममण्डित रथ पर चढ़नेवाले द्रोणाचार्य के
 मारे जाने की सूचना पाकर मेरा शोक किसी तरह
 शान्त नहीं होता । हे सञ्जय ! यह निश्चय है कि
 पण्ये दुःख को सुनकर उस दुःख से किसी के प्राण
 नहीं निकलते । तभी तो मन्दमति में, द्रोणाचार्य की
 मृत्यु का समाचार सुनकर भी, अब तक जीवित हूँ ।

ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हतः ।
 शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ॥ १२ ॥
 पतनं भास्करस्येव न मृप्ये द्रोणपातनम् ।
 दुष्टानां प्रतिषेद्धाऽऽसीद्भार्मिकाणां च रक्षिता ॥ १३ ॥
 योऽहासीत्कृपणस्याऽर्थे प्राणानपि परन्तपः ।
 मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ॥ १४ ॥
 बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम् ।
 ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्मयैः ॥ १५ ॥
 रथे वातजवा युक्ताः सर्वशस्त्रातिगारणे ।
 बलिनो ह्येपिणो दान्ताः सैन्धवाः साधुवाहिनः ॥ १६ ॥
 दृढाः संग्राममध्येषु कच्चिदासन्नविह्वलाः ।
 करिणां बृंहतां युद्धे शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ १७ ॥
 ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणां च सहिष्णवः ।
 आशंसन्तः पराञ्जेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ॥ १८ ॥
 हयाः पराजिताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्गहाः ।
 ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमाहताः ॥ १९ ॥
 कथं नाऽभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् ।
 जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ २० ॥
 भारद्वाजः किमकरोद्युधि सत्यपराक्रमः ।
 विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥ २१ ॥

इस समय सुमे देव ही प्रधान आर प्रबल जान पड़ता है; वीर्य निरर्थक है । हाय ! मेरा यह हृदय बड़ा का बड़ा हुआ है जो द्रोण की मृत्यु सुनकर भी इसके भी डुकड़े नहीं हो जाते ॥६११॥ गुण सीखने की इच्छा से ब्राह्म और देव अथ सीखने के लिए ब्राह्मण-कुमार और राजपुत्र जिनकी सेवा करते थे वही द्रोणाचार्य आज मृत्यु के वश कैसे हुए ! हे मज्जय ! समुद्र का मृग जाना, सुमेर का जड़ से उगड़ना, मृत्यु का पृथ्वी पर गिर पड़ना और द्रोणाचार्य का मरना एक चराचर है । द्रोणाचार्य की मृत्यु मेरे लिए अमय हो रही है । दुष्टों का दमन और धर्मात्मा पुरुषों की रक्षा करने वाले शत्रुदमन द्रोणाचार्य ने दुर्मति दुर्योधन के लिए

ही अपने प्राण दिये । मेरे दुर्मति पुरों की जय की आशा जिन पर निर्भर थी, जो बुद्धि में बृहस्पति और शुक्र के समान थे, वे द्रोणाचार्य किस प्रकार मारे गये ॥११११५॥ द्रोणाचार्य के रथ का घोड़े सुरक्षित जाल ओढ़े रहते थे; वे घोड़े सब प्रकार के शस्त्रों के प्रहार को बचा जाते थे और संग्राम के समय दृढ़ता से डटे रहते थे; वे शङ्ख-दुन्दुभिनाद, हाथियों की चिंगार और प्रयत्नाओं के घोर घोर की सुनकर भी भड़कते नहीं थे; वे अनायाम शस्त्रों और बाणों की बरस की मह डेढ़े थे; वे बहुत परिश्रम करने पर भी थकते या हँकते नहीं थे और शत्रुओं की हार की मचना देने थे; वे लाठ रक्त के, ऊँच-

स सत्यसन्धो वलवान्द्रोणः किमकरोद्युधि ।
 दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भूताम् ॥ २२ ॥
 के नु ते रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः ।
 ननु स्वमरथं दृष्ट्वा प्राद्ववन्ति स्म पाण्डवाः ॥ २३ ॥
 दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं रणे तस्मिन्महाबलम् ।
 उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ॥ २४ ॥
 पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ।
 नूनमावारयत्पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्वगैः ॥ २५ ॥
 ततो द्रोणं समारोहत्पार्षतः पापकर्मकृत ।
 नह्यहं परिपश्यामि वधे कञ्चन शुष्मिणः ॥ २६ ॥
 धृष्टद्युम्नादते रौद्रात्पाल्यमानात्किरीटिना ।
 तैर्वृतः सर्वतः शूरः पाञ्चाल्यापसदस्ततः ॥ २७ ॥
 केकयैश्चेदिकारूपैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः ।
 व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा ॥ २८ ॥
 कर्मण्यसुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम ।
 योऽधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गानाख्यानपञ्चमान् ॥ २९ ॥
 ब्राह्मणानां प्रतिष्ठाऽऽसीत्स्त्रोतसामिव सागरः ।
 क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत्परन्तपः ॥ ३० ॥
 स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्तवान् ।
 अमर्षिणा मर्षितवान्क्रुध्यमानान्सदा मया ॥ ३१ ॥

पूरे, वायु के समान वेग से चलनेवाले शान्त, सुशि-
 क्षित, कभी विद्वल न होनेवाले सिन्धु देश के घोड़े
 क्या पराजित हो गये थे ? सुवर्णभूषित और नरवीर
 द्रोणाचार्य के द्वारा शोभित रथ में जुते हुए वे घोड़े
 पाण्डवों की सेना में प्रवेश होकर उसके पार क्यों
 नहीं पहुँच सके ? ॥ ११५१२ ॥ सत्यपराक्रमी द्रोणाचार्य
 ने सुवर्णमण्डित श्रेष्ठ रथ पर बैठकर युद्धभूमि में
 क्या-क्या किया था ? हे सन्त्रय ! सब लोकों के धनुर्दर
 वीरों ने जिनसे अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी थी, उन मय्य-
 मन्थ बटी द्रोणाचार्य ने किस प्रकार युद्ध किया था ?
 उम्रभर्या इन्द्रसदृश धनुर्दर-श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के सम्मुख
 कीर्तन-यज्ञन पोदा युद्ध करने आये थे । ॥ १२०१२३ ॥
 सुवर्णमण्डित रथ पर विराजमान उन महावीर द्रोणाचार्य

को दिव्य अस्त्र छोड़ते देखकर पाण्डव क्या भाग खड़े हुए
 थे ? अथवा सेनापति धृष्टद्युम्न, अर्जुन आदि भाई और
 सब सेना को साथ लिये हुए धर्मराज ने चारों ओर से
 द्रोणाचार्य को घेर लिया था ? अदभ्य अर्जुन ने अपने
 तांशण बाणों में और राजाओं की द्रोणाचार्य के पास
 सहायता के लिए नहीं पहुँचने दिया होगा। तभी पाप-
 कर्मी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को मार मराने के अनिरीक
 और कोई मुश्किल द्रोणाचार्य को मारनेवाला नहीं देगा
 पड़ता ॥ १२५१२ ॥ अर्जुन ममज्ञता है कि जैसे कीटियों गरी
 को घेरकर व्याकुल कर देता है वैसे ही नराधम
 पात्राज्य की सेना तथा केकय, बेदि, कल्प, मय्य
 और अन्यान्य देशों के भूद राजाओं के द्वारा घेरे

अनर्हमाणाङ्कान्तेयान्कर्मणस्तस्य तत्फलम् ।
 यस्य कर्माऽनुजीवन्ति लोके सर्वधनुर्भृतः ॥ ३२ ॥
 स सत्यसन्धः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम् ।
 दिवि शक्र उव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ॥ ३३ ॥
 स कथं निहतः पार्थः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा निमिः ।
 क्षिप्रहस्तश्च बलवान्दृढधन्वाऽरिमर्दनः ॥ ३४ ॥
 न यस्य विजयाकांक्षी विषयं प्राप्य जीवति ।
 यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥ ३५ ॥
 ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोपश्च धनुष्मताम् ।
 अदीनं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ३६ ॥
 नाऽहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम् ।
 कथं सञ्जय दुर्धर्पमनाधृष्ययशोबलम् ॥ ३७ ॥
 पश्यतां पुरुषेन्द्राणां समरे पार्षतोऽवधीत् ।
 के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षन्तो द्रोणमन्तिकात् ॥ ३८ ॥
 के नु पश्चादवर्तन्त गच्छतो दुर्गमां गतिम् ।
 केऽरक्षन्दाक्षिणं चक्रं सब्यं के च महात्मनः ॥ ३९ ॥
 पुरस्तात्के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे ।
 के च तस्मिन्स्तनूस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ॥ ४० ॥
 द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम् ।
 कञ्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन्नरणे ॥ ४१ ॥

और व्याकुल जियें गये दुष्टर क्रम करनारा आचार्य
 को भृष्टवृत्त ने मारा होगा । जैसे नदिया म मगर
 शत्रु है ऐसे ही द्रोणाचार्य म मर्राणों में शत्रु थे ।
 उन्होंने सब वेद, वेदाङ्ग और इतिहास पुराण पढ़े थे ।
 वे ब्राह्मण भी थे और क्षत्रियधर्म के अनुयायी भी थे ।
 वे शास्त्र और शास्त्र दोनों में पारङ्गत थे । वे बुद्ध
 ब्राह्मण शास्त्र के द्वारा कैम मार गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥
 मार के पश्चात् सदा पाण्डवों को ब्रह्म पढ़ाया,
 किन्तु द्रोणाचार्य ने ब्रह्म के अग्राय पाण्डवों को
 मदा म्मह की दृष्टि में देगा, और अर्जुन को सम्ये
 यदकर बुद्ध विद्या सिखाई । उम्मी था यह परिणाम
 उन्हें मिला । सब धनुर्धर योद्धा जिनके शिष्य हैं,

जिनकी दा हूँ शिष्य म अपनी जीमिना बगते हैं,
 उन द्रोणाचार्य को रायथा प्राप्त करने की इच्छा
 रखनेवा पाण्डव न कैम मारा ॥ ३१ ॥ ३४ ॥ द्रोणाचार्य
 मत्स्यराक्षस, मत्स्यप्रतिज्ञ और पुण्या मा थे । वे महा
 मत्स्य, महापरी और देवताओं में जैसे इन्द्र शत्रु हैं
 कैम हा यार पुरुषों में श्रेष्ठ थे । उन पुनीति, दृढधन्वा,
 शत्रुमर्दन, बन्वान् द्रोणाचार्य को, लुद्ध मद्रिष्यों कैम
 निमि नामय महामर्ष्य को मार डाले म हैं, पाण्डव
 न कैम मार डाले । द्रोणाचार्य के मममय पट्टेचक्र
 विजय की इच्छा रखनारा कोई भी र्याति नीतिन
 नहीं बच मरुता था । वेदपाठियों के वेपाठ का
 मष्ट और धनुर्वेदा मारनेवालों के धनुष का शब्द

रक्षितारस्ततः शून्ये कञ्चित्तेन हतः परैः ।
 न स पृष्ठमरेखासाद्रणे शौर्यात्प्रदर्शयेत् ॥ ४२ ॥
 परामध्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः ।
 एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ४३ ॥
 पराक्रमेद्यथा शक्त्या तच्च तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
 मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवार्यताम् ॥ ४४ ॥
 भूयस्तु लब्धसंज्ञस्त्वां परिपृच्छामि सञ्जय ॥ ४५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रोक्तो नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सदा द्रोणाचार्य के यहाँ सुनाई पड़ना था । अर्थात् करके वीरगति प्राप्त की । किन वीरों ने परम धैर्य शास्त्र पढ़नेवाले और धनुर्विद्या सीखनेवाले विद्यार्थी के साथ आचार्य का सामना किया था ? मन्दमति सदा उनके पास बने रहते थे । ऊभी दोन न होने- कायर क्षत्रिय, जो उनके सहायक और रक्षक थे, वाले, पुरुषसिंह, श्रीयुक्त, अपराजित और धनुर्धरों के उन्हें छोड़कर भाग तो नहीं गये थे ? उसी समय में आचार्य द्रोण को रथियों ने किस प्रकार मार डाला ? तो कहीं उन्हें ओझले पाकर शत्रुओं ने नहीं मार ॥३४॥३७॥जिनका यश और बल दुर्द्धर्ष था, उन डाला ? प्रसिद्ध द्रोणाचार्य कभी विकट आपत्ति या सज्जय ! दुर्गम गति से जानेवाले किन वीरों ने द्रोणा- सङ्कट के समय भी शत्रु के भय से युद्ध में पीठ नहीं चार्य के आगे रहकर युद्ध किया था ? कौन वीर दिलाते थे । उन्हें शत्रुओं ने किस प्रकार मारा ? द्रोणाचार्य के पाम रहकर उनकी रक्षा कर घोर सङ्कट और विपत्ति के आ पड़ने पर भी आर्य रहे थे और कौन वीर उनके पश्चाद्भाग की रक्षा पुरुष का कर्तव्य है कि यथाशक्ति अपना पराक्रम करते थे ? महात्मा द्रोणाचार्य के रथ के दहिने पहिये दिखलाये, मयभीत होये और भागे नहीं । महामा द्रोणाचार्य के रथ के दहिने पहिये द्रोणाचार्य ने यह बात थी । हे सञ्जय ! शोक के और बाँयें पहिये की रक्षा करनेवाले कौन वीर थे ? मारे मैं व्याकुल हो रहा हूँ, मुझे मूर्च्छा सी आ रही है । तुम अभी शान्त रहो । जब मेरा चित्त ठिकाने ॥३७॥३९॥सप्राम के समय कौन लोग द्रोणाचार्य के होगा तब मैं तुमसे सब वृत्तान्त पूछूँगा॥४०॥४५॥ आगे स्थित थे ? किन वीरों ने द्रोणाचार्य से युद्ध

—०—

द्रोणपर्व का नवम अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच—एतत्पुत्रं हृच्छोकेनाऽर्दितो भृशम् ।
 जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत्क्षितौ ॥ १ ॥
 तं विसंज्ञं निपतितं सिपिचुः परिचारिकाः ।
 जलेनाऽत्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय ! मे निराश हो, अचेत होकर, पृथ्वी पर गिर पड़े । महाराज धृतराष्ट्र मग्नय में इस प्रकार पड़ने-पूड़ने तब अचेत पड़े हुए राजा धृतराष्ट्र को दामियों बाण दार्ढिक शोक में व्याकुल और अग्ने पुत्रों की जय कग्ने लगी और सुगन्धित दीनद जल टिड्ढयने लगी ।

पतितं चैनमालोक्य समन्ताद्भरतस्त्रियः ।
 पस्विद्युर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥ ३ ॥
 उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् ।
 आसनं प्रापयामासुर्वाप्पकण्ठ्यो वराननाः ॥ ४ ॥
 आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाऽभिपरिभुतः ।
 निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥
 स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः ।
 पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ॥ ६ ॥
 यः स उद्यन्निवाऽऽदित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः ।
 अजातशत्रुमायान्तं कस्तं द्रोणादचारयत् ॥ ७ ॥
 प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् ।
 प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥ ८ ॥
 वासितासङ्गमे यद्वदजय्यं प्रतिव्यूथपैः ।
 निजघान रणे वीरान्वीरः पुरुषसत्तमः ॥ ९ ॥
 यो ह्येको हि महावीर्यां निर्दहेद्भोरचक्षुषा ।
 कृत्स्नं दुर्नोधनवलं धृतिमान्सत्यसङ्गरः ॥ १० ॥
 चक्षुर्दणं जये सक्तमिष्वासधरमच्युतम् ।
 दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पथिवारयन् ॥ ११ ॥
 के दुष्प्रथपं राजानमिष्वासधरमच्युतम् ।
 समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥ १२ ॥

हमने पश्चात् शुरुकुल की स्त्रियों ने बृद्ध राजा को
 अचेत होकर गिरते देखकर चारों ओर से घेर
 लिया । उन्होंने उन्हें हाथों में छूकर धीरे धीरे पृथ्वी
 से उठाकर मिठासन पर बिठाया । उन स्त्रियों के नेत्रों
 में आँसू भर आये । वे चारों ओर से बापू करने और
 उनकी सेवा करने लगीं । कुन्त ममय के पश्चात् धृतराष्ट्र
 को होश आया किन्तु उनका शरीर उम ममय
 भी काँप रहा था । उन्होंने फिर मन्त्रय से मय वृत्तान्त
 पूछा ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्र ने कहा 'हे मन्त्रय ! जैसे उदय
 हो रहे सूर्य अपने तल में डीपरे को नष्ट कर देते हैं
 वैसे ही शत्रुसेना को नष्ट करनेवाले द्रोणाचार्य के
 नाम आते हुए राजा युधिष्ठिर का मामना किम धीर
 ने किया था ! जैसे अपने निपक्षी कुश हाथियों के

द्वारा न जीता जा सकेवाला, वेग से चलनेवाला,
 मन्त गजराज अन्य गजराज को हथिनी के समानम
 में प्रमत्त देखकर कुपित होकर उस पर आक्रमण करने
 के लिए चलता है, वैसे ही धीरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने शत्रु-
 सेना में प्रवेश करके रण में वीरों को मारा होगा ।
 महा मा युधिष्ठिर अकेले ही अपनी दारुण क्रोधदृष्टि
 में दूर्नोधन की सेना को मग्ने कर सकते हैं ।
 युधिष्ठिर महावीर, धीर, सत्यवादी, जय की
 इच्छा रखनेवाले और अतुष्ट पराक्रमी धनुर्धर हैं ; वे
 दृष्टि में ही शत्रु को नष्ट करने की शक्ति रखनेवाले
 त्रिनेत्रिय, जगन्मान्य, दूरदर्प और अजातशत्रु हैं ।
 उनमें युद्ध करने के लिए मेरे पक्ष के कौन-कौन धीर
 अग्रसर हुए थे ॥ ७१ ॥ जो बड़े वेग से एकारक

तरसैवाऽभिपद्याऽथ यो वै द्रौणमुपाद्रवत् ।
 यः करोति महत्कर्म शत्रूणां वै महाबलः ॥ १३ ॥
 महाकायो महोत्साहो नागायुतसमो बले ।
 तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ १४ ॥
 यदाऽयाजलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् ।
 पर्जन्य इव वीभत्सुस्तुमुलामशनीं सृजन् ॥ १५ ॥
 विस्तृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव ।
 अवस्फूर्जन्दिशः सर्वास्तलनेमिखनेन च ॥ १६ ॥
 चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः ।
 सनेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः ॥ १७ ॥
 रोपनिर्जितजीमूतो मनोभिप्रायशीघ्रगः ।
 मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥ १८ ॥
 सम्प्लावयन्दिशः सर्वा मानवैरास्तरन्महीम् ।
 भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधनपुरागमान् ॥ १९ ॥
 युद्धेऽभ्यपिञ्चद्विजयो गार्धपत्रैः शिलाशितैः ।
 गाण्डीवं धारयन्धीमान्कीदृशं वो मनस्तदा ॥ २० ॥
 इपुसन्वाधमाकाशं कुर्वन्कपिवरध्वजः ।
 यदाऽयात्कथमासीत्तु तदा पार्थ समीक्षताम् ॥ २१ ॥
 कच्चिद्गाण्डीवशब्देन न प्रणश्यति वै बलम् ।
 यद्वः स भैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमन्वयात् ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्य के सम्मुख गये होंगे, जो रण में शत्रुसेना के मध्य बड़े-बड़े अद्भुत कर्म करते हैं, उन महानाय, महान् उत्साही, दस सहस्र हाथियों का बल रखनेवाले भीमसेन ने जब द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया तब उनको मेरे पक्ष के बिन-किन वीरों ने रोका ॥ १३ ॥ १४ ॥ भैरव-महदा, परम पराक्रमी अर्जुन जब, वज्रवर्षा करते हुए इन्द्र जैसे जल बरसाने हैं वैसे, बाण बरसाने हुए तब-घोष से और रथ के घर्घरनाद में सब दिशाओं को पूर्ण करते हुए सम्मुख आये थे तब हमारे पक्ष के वीरों की क्या दशा हुई थी ! गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन जब मेघ के समान गुप्ताग्नयुक्त बाण बरसाने हुए दुर्योधन आदि के आगे आये तब, हमारी

सेना की क्या दशा हुई ! अर्जुन का, धनुष बिजली की तरह चमक रहा होगा । रथ घटा के समान घिरे हुए होंगे । रथ का घर्घर शब्द ही मेघजल सा प्रतीत हो रहा होगा । बाणों का शब्द ही बिजली की कड़कड़ाहट जान पड़ती होगी । मन और मनोरथ के समान वेग से वे मर्त्य विचर रहे होंगे । क्रोध में मेघ को भी मान करनेवाले अर्जुन ने मर्मभेदी बाणों से जल की तरह रक्त बहाकर सब दिशाओं को व्यापित कर दिया होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

कच्चिन्नाऽपानुदत्पाणानिपुभिर्वो धनञ्जयः ।
 वातो वेगादिवाऽऽविध्यन्मेघाञ्शरगणैर्नृपान् ॥ २३ ॥
 को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं नरोऽर्हति ।
 यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥ २४ ॥
 यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशन्नयम् ।
 के तत्र नाऽजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राड्वन्भयात् ॥ २५ ॥
 के वा तत्र तनूस्त्यक्ता प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ।
 अमानुषाणां जेतारं युद्धेऽपि धनञ्जयम् ॥ २६ ॥
 न च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः ।
 गाण्डीवस्य च निघोपं प्रावृह्जलदनिःस्वनम् ॥ २७ ॥
 विष्वक्सेनो यस्य यन्ता यस्य योद्धा धनञ्जयः ।
 अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि ॥ २८ ॥
 सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
 मेधावी निपुणो धीमान्युधि सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥
 आरावं विपुलं कुर्वन्व्यथयन्सर्वसैनिकान् ।
 यदाऽयात्रकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३० ॥
 आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाऽभ्ययात् ।
 कदनं करिष्यञ्छत्रूणां तेजसा दुर्जयो युधि ॥ ३१ ॥
 आर्यव्रतममोघेषु ह्रीमन्तमपराजितम् ।
 सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥

भयानककर्म करते हुए अर्जुन तुम लोगों के सम्मुख
 आये थे तब गाण्डीव धनुष का शब्द सुनकर ही तो
 हमारी सेना नहीं भाग गई। हुई थी । वायु जैसे
 मेघों की ओर भेड़ों के बल की छिन्न भिन्न करता है,
 वैसे ही अर्जुन ने तुम लोगों का बल तो नहीं किया ।
 ॥ २१।२३ ॥ जिन्हें सेना अंगे भित्त सुनकर ही यो-राओं
 की छाती दहल जाती है, उन गाण्डीव-धनुषधारी
 अर्जुन का सामना कौन कर सकता है । मैत्रियों को
 विचित्रित, कण्ठित और शरीरों को भयविह्वल करनेवाले
 पौर संग्राम में कितने वीरों ने द्रोणाचार्य का माथ नहीं
 छोड़ा, और कौन वापर भय के मोर रण में भाग
 पड़े हुए ! किन्तु लोगों ने रण में प्राण त्यागकर पशु-

नीय वीर-मति पाई ! मैं समझता हूँ कि समर में देव-
 ताओं को भी परास्त कर सकतेवाले अर्जुन के तेज
 घोड़ों के वेग और बरसात की घनघटा के पौर गर्जन-
 मद्धा गाण्डीव घोष को घेर मैत्रिक कभी नहीं सह
 सकते अर्जुन का सामना नहीं कर सकते । तात्पर्य
 यह है कि जनार्दन जहाँ रथ होंकलेवाले मारपी और
 अर्जुन रथी हैं, उस पक्ष को देवता भी नहीं हरा
 सकते ॥ २४।२८ ॥ त्रिम ममय सुकुमार, युवा, नर,
 दर्शनीय, युद्धिमान्, युद्धनिपुण, धीर और मत्स्य-
 क्रमी नकुल महाभिहनाद में मैत्रियों को विह्वल करने
 हुए द्रोणाचार्य के नाम पढ़ने से उन ममय कितने वीरों
 ने उनका सामना किया था ॥ २९।३० ॥ अर्जुन के

यस्तु सौवीरराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
 आदत्त महिषीं भोजां काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३३ ॥
 सत्यं धृतिश्च शौर्यं च ब्रह्मचर्यं च केवलम् ।
 सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन्नित्यानि पुरुषर्षभे ॥ ३४ ॥
 वलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् ।
 वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवादनन्तरम् ॥ ३५ ॥
 धनञ्जयोपदेशेन श्रेष्ठमिष्वस्त्रकर्मणि ।
 पार्थेन सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ३६ ॥
 वृष्णीनां प्रवरं वीरं शूरं सर्वधनुष्मताम् ।
 रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ॥ ३७ ॥
 सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चाऽस्त्रमनुत्तमम् ।
 सात्वते तानि सर्वाणि त्रैलोक्यमिव केशवे ॥ ३८ ॥
 तमेवं गुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः ।
 समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥
 पञ्चालेषूत्तमं वीरमुत्तमाभिजनप्रियम् ।
 नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ॥ ४० ॥
 युक्तं धनञ्जयहिते ममाऽनर्थार्थमुत्थितम् ।
 यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ४१ ॥
 महारथं समाख्यातं द्रोणायोद्यतमाहवे ।
 त्यजन्तं तुमुले प्राणात्के शूराः समवारयन् ॥ ४२ ॥

से युक्त रूप पर बैठनेवाले, समर में दुर्जय, आर्यव्रती,
 हीमान्, अपराजित सहदेव विपैले तर्प के समान
 क्रोध से पुष्करते हुए, शत्रुओं को पीड़ित करने के
 लिए, जब रणाङ्गण में आये थे तब किल किल वीरों ने
 उनका सामना किया था । जयद्रथ की शिवाल मेना की
 दल मन्त्रर कमनीय, सर्वाङ्गसुन्दरी, भोजनदिनी
 रानी को हर करनेवाले, अमण्ड ब्रह्मचर्य, सत्य, धैर्य
 और शौर्य को धारण करनेवाले, महायुधि, सपरुषा,
 उसाही, अपराजित, मम्राम में वासुदेव सदृश, वासुदेव
 के अनुज, अर्जुन की दो हुई शिक्षापात्र अस्त्रादि के
 प्रयोग में औरों में श्रेष्ठ और अर्जुन के ममकक्ष मायाके
 जब द्रोणाचार्य के पास पहुँचे थे तब किल किल वीरों

ने उन्हें रोका था ॥ ३१ ॥ ३६ ॥ दृष्टिगन्ता में श्रेष्ठ,
 सत्र धनुर्धरों में अग्रगण्य, अस्त्र-शस्त्र आदि के प्रयोग
 में निपुण, यश आर अस्त्रविद्या में परशुराम के समान,
 और जैसे श्रीकृष्ण त्रिभुवन के आश्रयस्वरूप हैं वैसे
 ही उन्कष्ट अस्त्र के जानकार, प्रयत्न यादग सात्यकि
 स य, धर्म, बुद्धि, और वीरता के आधार हैं । उनके
 पैरों को किल किल वीरों ने रोका था ॥ ३७ ॥ ३९ ॥
 पाशालों में श्रेष्ठ, बुद्धिमानों के प्रेमपात्र, स-कर्मनिरत,
 अर्जुन के हितचिन्तक भरे अनिष्ट के लिए उन्मत्त,
 यम कुबेर मृग इन्द्र चन्द्र उरुण के समान प्रसिद्ध
 महारथ उन्मत्तों के जिम ममय द्रोण के साथ प्राणपण
 से युद्ध करने की प्रस्तुत हुए थे उन समय विन-

एकोऽपस्तृत्य चेदिभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।

धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं कस्तं न्यवारयत् ॥ ४३ ॥

योऽवधीत्केतुमान्वीरो राजपुत्रं दुरासदम् ।

अपरान्तगिरिद्वारे द्रोणात्कस्तं न्यवारयत् ॥ ४४ ॥

स्त्रीपुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् ।

शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ॥ ४५ ॥

देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः ।

द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ४६ ॥

यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनञ्जयात् ।

यस्मिन्नस्त्राणि सत्यं च ब्रह्मचर्यं च सर्वदा ॥ ४७ ॥

वासुदेवसमं वीर्यं धनञ्जयसमं बले ।

तेजसाऽऽदित्यसदृशं बृहस्पतिसमं मती ॥ ४८ ॥

अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।

द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं के शूराः समवारयन् ॥ ४९ ॥

तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौभद्रः परवीरहा ।

यदाऽभ्यधावद्वे द्रोणं तदाऽऽसीदो मनः कथम् ॥ ५० ॥

द्रौपदेया नरव्याघ्राः समुद्रमिव सिन्धवः ।

यद् द्रोणमाद्रवन्संग्रहे के शूरास्तान्यवारयन् ॥ ५१ ॥

एते द्वादश वर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः ।

अस्त्रार्थमवसन्भीष्मे विभृतो व्रतमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

जिन वीरों ने उन्हें रोका था ॥४०॥४२॥ जो महा-
वीर धृष्टकेतु अनेके ही पाण्डवों की सहायता के लिए
चेदि देश से आकर युद्ध में मीमंलित हुए हैं वे जब
द्रोण पर आक्रमण करने चले थे तब उन्हें किमने
रोका था । जिन वीरों ने गिरिद्वार में भागते हुए दुर्योधन
राजपुत्र को मारा था, उन यत्नवान् को द्रोण के
समीप आने में किमने रोका था । जो पुरुषनिहारी
और पुराण दोनों के गुण-दाओं को जानते हैं, जो
महामा भीष्म की मृत्यु का कारण हैं, वे उमाही
राजपुत्र शिखण्डी जब प्रव्रजन्तर्पक द्रोणाचार्य के
समूह आये थे तब उन्हें किमने रोका था ॥४३॥
४६॥ जो अर्जुन में भी अधिक गुणों हैं, जो अश्विपति

सब और ब्रह्मचर्य के अण्ड आधार हैं, जो वीरगा
में श्रीकृष्ण के सदृश, वरु में अर्जुन के समान, तेज
में आदित्य के तुल्य और बुद्धि में बृहस्पति के समान
हैं, वे सुग-कलाकर और हृष्टकाट के समान वीरों
अभिमन्यु जब द्रोणाचार्य के समूह आये थे तब जिन
वीरों ने उनका सामना किया था । जिस समय वे
तरुण प्रज्ञ युग अभिमन्यु द्रोण पर आक्रमण करने
येग में चले थे उस समय तुम लोगों के मन की क्या
दशा हुई थी ॥४४॥४५॥ मैं सब नर-नारी आदि
समूह की ओर वेग में जाते हैं धैर्य ही द्रौपदी के
गाँवों पुत्रों ने जब द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया था
तब उन्हें जिन वीरों ने रोका था । यन्पावना में बाध

क्षत्रञ्जयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च मानदः ।
 धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान्द्रोणादवारयन् ॥ ५३ ॥
 शताद्विशिष्टं यं युद्धे सममन्यन्त वृष्णयः ।
 चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५४ ॥
 वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद्युधि ।
 अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५५ ॥
 भ्रातरः पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः ।
 इन्द्रगोपकसङ्काशा रक्तवर्मायुधध्वजाः ॥ ५६ ॥
 मातृष्वसुः सुता वीराः पाण्डवानां जयार्थिनः ।
 तान्द्रोणं हन्तुमायातान्के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५७ ॥
 यं योधयन्तो राजानो नाऽजयन्वारणावते ।
 पपमासानपि संरब्धा जिघांसन्तो युधां पतिम् ॥ ५८ ॥
 धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसन्धं महाबलम् ।
 द्रोणात्कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ॥ ५९ ॥
 यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् ।
 समरे स्त्रीषु गृह्यन्तं भलेनाऽपाहरद्रथात् ॥ ६० ॥
 धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् ।
 युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ॥ ६१ ॥
 निर्दहन्तं रणे योधान्दारयन्तं च सर्वतः ।
 द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ६२ ॥

वर्ष तक खेल-कूद छोड़कर, कठोर ब्रह्मचर्य धारण करके, भीष्म पितामह के पास रहकर युद्धकला सीखनेवाले धृष्टद्युम्न के चारों पुत्र—क्षत्रञ्जय, क्षत्रदेव, क्षत्रवर्मा और मानद—जब युद्धभूमि में देख पड़े थे तब उन्हें किल वीरों ने रोका था ॥ ५१-५३ ॥ जिन्हें वृष्णिवंश के वीर यादव सौ वीरों से भी अधिक बलवान् और पराक्रमी समझते हैं, उन महाबली चेकितान को किल वीरों ने द्रोण की ओर बढ़ने से रोका था । कलिङ्ग-कुमारी की हरण करनेवाले साहसी अनाधृष्टि वार्धक्षेमि को आचार्य पर आक्रमण करने से किसने रोका था । धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ, लाल ध्वजा और लाल शर्षा से शोभित, लाल कवच धारण

करनेवाले, देखने में बীরबूढ़ी के समान लाल, पाण्डवों के मोसेर भाई, पाण्डवों की जय चाहनेवाले, पाँचों भाई कैकेय राजकुमार जब द्रोणाचार्य को मारने के लिए आगे बढ़े थे तब उन्हें किल-किल वीरों ने रोका था ॥ ५४-५६ ॥ वाराणस में क्रुद्ध और मारने की तपस्य होकर लड़ रहे तब युद्ध करके भी राजा योग जिन्हें परास्त नहीं कर सके, जिन्होंने वाराणसी-पुरी में ली लोभी महारथी काशिराज के पुत्र को गड़ के द्वाग रथ से नाँचे मार गिराया था, उन सयपरायण युयुत्सु को द्रोणाचार्य के ऊपर आक्रमण करते समय किल-किल वीरों ने रोका था । महाधनुर्धर पाण्डवों के प्रधान मन्त्री और सेनानि, दुर्योधन के

उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्याऽस्त्रवित्तमम् ।
 शैखण्डिनं शस्त्रगुप्तं के च द्रोणादवारयन् ॥ ६३ ॥
 य इमां पृथिवीं कृत्वा चर्मवत्समवेष्टयत् ।
 महता रथघोषेण मुख्यारिघ्नो महारथः ॥ ६४ ॥
 दशाश्वमेधानाजहे खन्नपानासदक्षिणान् ।
 निर्गलान्सर्वमेधान्पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥ ६५ ॥
 गङ्गास्रोतसि यावत्यः सिकता अप्यशेषतः ।
 तावतीर्णा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ॥ ६६ ॥
 न पूर्वं नाऽपरे चक्रुरिदं केचन मानवाः ।
 इतीदं चक्रुर्शुद्धेवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६७ ॥
 पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं संस्थास्तुचारिषु ।
 जातं चापि जनिष्यन्तं द्वितीयं चापि साम्प्रतम् ॥ ६८ ॥
 अन्यमौशीनराच्छैव्याद्दुरो वोढारमित्युत ।
 गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः ॥ ६९ ॥
 तस्य नसारमायान्तं शैव्यं कः समवारयत् ।
 द्रोणायाऽभिमुखं यत्तं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ७० ॥
 विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।
 प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ७१ ॥
 सद्यो वृकोदराज्जातो महाबलपराक्रमः ।
 मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम महद्भयम् ॥ ७२ ॥

परम शत्रु और द्रोणश्व के लिए ही उत्पन्न, धृष्टद्युम्न जिस समय मेरे सैनिकों को मारते और छिन्न-भिन्न करते हुए द्रोणाचार्य के सम्मुख पहुँचे थे उस समय उनको किन-किन वीरों ने रोका था ॥५८॥६२॥ द्रुपदराज को गोद में पड़े और बढ़े हुए और अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा सुरक्षित शिखण्डो जब द्रोणाचार्य पर क्रोध से सपटे थे तब उन्हें किन-किन वीरों ने रोका था ? हे सज्जन ! जिन्होंने चर्म सदृश इस भूमण्डल को घेर रक्खा था, जिन शत्रुपक्ष के वीरों को मारनेवाले महारथी के रथ से भयानक शब्द उत्पन्न होता है, जिन्होंने स्वादिष्ट उत्तम खाने-पाने के पदार्थ खिला-पिलाकर और यथेष्ट दक्षिणा देकर

विना किसी प्रकार के विघ्न के दस अश्वमेध यज्ञ किये हैं, जो पुत्र के समान अपनी राजा का पालन करते हैं, जिन्होंने यज्ञों में अगणित गोदान किये हैं, जिनके धरावर गोदान कभी कोई नहीं कर सका, और जिनका यह दुष्कर कार्य पूर्ण होने पर देवताओं ने जिनका नाम लेकर कहा था कि "इस जगत् में उशीनर-तनय के समान महात्मा कोई नहीं उत्पन्न हुआ, न होगा और न इस समय है", उन उशीनर के वंशधर शैव्य का सामना किसने किया था ॥६३॥७०॥ राजा विराट की रथ-सेना जब, मुख फैलाने हुए काल की तरह, आचार्य पर आक्रमण करने आई थी तब उसे किन वीरों ने रोका था ? जो महापराक्रमी मायावी

पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम् ।
 घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७३ ॥
 एते चाऽन्ये च बहवो येषामर्थाय सञ्जय ।
 त्यक्तारः संयुगे प्राणान्किं तेषामजितं युधि ॥ ७४ ॥
 येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः ।
 हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥ ७५ ॥
 लोकानां गुरुरत्यर्थं लोकनाथः सनातनः ।
 नारायणो रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥ ७६ ॥
 यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
 तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि भक्त्या स्वैर्यार्थमात्मनः ॥ ७७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

राक्षस भीमसेन से तत्काल उत्पन्न हुआ था, जिसे मैं
 बहुत ही डरता हूँ, जो पाण्डवों की जय चाहनेवाला
 और मेरे पुत्रों का कण्टक है, वह घटोत्कच जब
 द्रोणाचार्य के सन्मुख आया था तब उसको किन किन
 वीरों ने रोका था ? ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे सञ्जय ! ये सब
 और अन्यान्य वीरगण जिनके लिए प्राणपण से रण
 कर रहे हैं, और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जिनके सहायक

और हितचिन्तक हैं, वे पाण्डव किस प्रकार परास्त
 हो सकते हैं । श्रीकृष्ण लोकगुरु, लोकनाथ, सनातन
 पुरुष, समर में मानवों को शरण देनेवाले, दिव्यरूप
 और प्रभु हैं । पण्डित लोग उनके सम्पूर्ण दिव्य
 कर्मों का वर्णन करते हैं । मैं भी अपने चित्त को
 गान्त करने के लिए उन श्रीकृष्ण के गुणों का कीर्तन
 करूँगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

द्रोणपर्व का दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जय ।
 कृतवान्यानि गोविन्दो यथानाऽन्यः पुमान्कचित् ॥ १ ॥
 संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना ।
 विख्यापितं बलं बाहोस्त्रिपु लोकेषु सञ्जय ॥ २ ॥
 उच्चैः श्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे ।
 जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥ ३ ॥
 दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम् ।
 वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ॥ ४ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! गोविन्द के अश्रौषिक मण्डली में पल्लवर अपने बाहुबल का परिचय त्रिशुपन
 कर्मों की सुने । उन महात्मा ने बाल्यकाल में ही गोप-
 भर में दिया था । इन्होंने उर्ध्वधरा (इन्द्र के घोड़े)

प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् ।
 मुरुं चाऽन्तकसङ्काशमवधीतुष्करेक्षणः ॥ ५ ॥
 तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन पालितः ।
 विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥ ६ ॥
 सुनामा रणविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः ।
 भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान् ॥ ७ ॥
 बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनाऽमित्रघातिना ।
 तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥ ८ ॥
 दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः ।
 आराधितः सदारेण स चाऽस्मै प्रददौ वरान् ॥ ९ ॥
 तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे ।
 निर्जित्य पृथिवीपालानावहत्पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥
 अमृष्यमाणा राजानो यस्य जात्या हया इव ।
 रथ वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ॥ ११ ॥
 जरासन्धं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः ।
 परेण घातयामास समग्राक्षौहिणीपतिम् ॥ १२ ॥
 चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
 अर्धं विवदमानं च जघान पशुवत्तदा ॥ १३ ॥
 सौमं दैत्यपुरं स्वस्थं शाल्वयुतं दुरासदम् ।
 समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥ १४ ॥

क समान बली और बाधु के समान शीघ्र चलनशाल
 यमुना नमस्वासी केशी दल का दमन किया । [श्रीकृष्ण-
 ने पूतना, शकटासुर, धेनु, महाबली अरिष्टासुर आदि
 को मारा है । महाबाहु गायुदेव ने गोवर्द्धन गिरि उठा-
 कर शिलागर्भ से ब्रज को उचाया और दागानल भी
 बुझाया है ।] ॥११॥ १४॥ इन्होंने रूपम (वृषरूपधारी
 असुर), प्रलम्बासुर, नरकासुर, जम्भ, महासुर पीठ
 और यमदुन्य मुर दानव को मारा है । निहत्थे श्रीकृष्ण
 ने पराक्रम के साथ रण में कंस का, जिसका सहा-
 यक महानली अजेय जरासन्ध था, उसके साथियों समेत
 मार डाला है । महापराक्रमी, अक्षौहिणीपति, भोजराज
 के मध्यस्थ, कंसके भाई, शूरसेन देश के राजा, सुनामा

की भी बलदेव सहित श्रीकृष्ण ने युद्ध में मारा और
 उसकी सेना को नष्टभ्रष्ट कर दिया ॥ ५॥ ८॥ महाकोपी
 ब्रह्मर्षि दुर्वासा को, सेवा करके, अपनी पत्नी सहित
 श्रीकृष्ण ने एक समय प्रसन्न किया और उनसे अमोघ
 वर प्राप्त किये । श्रीकृष्ण स्वयंवर में गान्धारराज की
 कन्या को हर लिये, सन राजाओं को वहाँ हराया
 और उस कन्या के साथ उन्होंने विवाह किया । राजा
 लोग यह नहीं सह सके कि राजकन्या उन्हें न मिल-
 कर श्रीकृष्ण को मिले । असील घोड़ा जैसे चायुध
 की चोट नहीं सह सक्ता, वैसे ही वे उसे न सह-
 कर विवाह के अस्तर पर गिराइ खड़े हुए । श्रीकृष्ण
 ने बाण-रूप कीदों की मार से उनकी चमड़ी उखाड़

अङ्गान्वङ्गान्कलिङ्गांश्च मागधान्काशिकोसलान् ।
 वात्स्यगार्ग्यकरूपांश्च पौण्ड्रंश्चाऽप्यजयद्रणे ॥ १५ ॥
 आवन्त्यान्दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयान्देशेरकान् ।
 काश्मीरकानौरसिकान्पिशाचांश्च समुद्रलान् ॥ १६ ॥
 काम्बोजान्वाटधानांश्च चोलान्पाण्ड्यांश्च सञ्जय ।
 त्रिगर्त्तान्मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ॥ १७ ॥
 नानादिग्भ्यश्च सम्प्राप्तान्वशांश्चैव शकांस्तथा ।
 जितवान्पुण्डरीकाक्षो यवनं च सहानुगम् ॥ १८ ॥
 प्रविश्य मकरावासं यादोगणनिपेक्षितम् ।
 जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा ॥ १९ ॥
 युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम् ।
 पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शङ्खमवाप्तवान् ॥ २० ॥
 खाण्डवे पार्थसहितस्तोपयित्वा हुताशनम् ।
 आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१ ॥
 वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वाऽमरावतीम् ।
 महेन्द्रभवनाद्वीरः पारिजातमुपानयत् ॥ २२ ॥
 तच्च मर्षितवाञ्छाक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
 राज्ञां चाप्यजितं कञ्चित्कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥ २३ ॥
 यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय ।
 कृतवान्पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहाऽर्हति ॥ २४ ॥

दी । जनार्दन श्रीकृष्ण ने अनेक अश्वीहिणी सेना के स्वामी महाबाहु जरासन्ध को कौशल से भीमसेन के हाथों द्रुपदयुद्ध में मरवा डाला ॥ १९ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राजनृत्य यज्ञ के अवसर पर राजसेना के अनुयायी महाबली चेदिदेश के राजा विशुपाल ने सबसे पहले जनार्दन श्रीकृष्ण को अर्घ्य (पूजा) मिलते देखकर उसका विरोध किया तब, इसी कारण, श्रीकृष्ण ने क्रुपित होकर पशु की तरह उसे तुरन्त मार डाला । श्रीकृष्ण ने शाल्व के पराक्रम से सुरक्षित दुर्धर्ष आकाशगामी मायामय सौम नामक दैत्यपुर को पराक्रम से तोड़-फोड़कर समुद्र में गिरा दिया ॥ १९ ॥ १० ॥ उन्होंने अङ्ग, वङ्ग, यलङ्ग, मगध, काशी, कोसल, वात्स्य,

गार्ग्य, करूप, पौण्ड्र, अवन्ती, दाक्षिणात्य, पट्टाङ्ग, दाशेरक, काश्मीर, औरसिक, पिशाच, मुद्रल, काम्बोज वाटधान, चोल, पाण्ड्य, त्रिगर्त, मालव, दुर्जय, द्रुपद, खश, शक और अन्य अनेक देशों और उनके राजाओं को जीता । अनुचरों सहित आये हुए महाशक्तिशाली कालयवन को उन्होंने अपने बाहुबल से मार भगाया ॥ १९ ॥ १८ ॥ उन्होंने विकट जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र के भीतर प्रवेश किया, और जल के भीतर जाकर वरुण देव को अपने वश में कर लिया । उन द्राघव ने पाताल-तलवासी पञ्चजन दानव को युद्ध में मारकर दिव्य पाञ्चजन्य शङ्ख उससे प्राप्त किया । महात्मा जनार्दन ने अर्जुन के साथ खाण्डव वन में अग्नि को

यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम् ।
 तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चाऽऽगमम् ॥ २५ ॥
 नाऽन्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः ।
 कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य सञ्जय ॥ २६ ॥
 तथा गदश्च साम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ विदूरथः ।
 अगावहोऽनिरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः ॥ २७ ॥
 उल्मुको निशठश्चैव शिल्घो वभ्रुश्च वीर्यवान् ।
 पृथुश्च त्रिपृथुश्चैव शमीकोऽथाऽस्मिञ्जयः ॥ २८ ॥
 एतेऽन्ये बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः ।
 कथञ्चित्पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः ॥ २९ ॥
 आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महारतना ।
 ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्भम ॥ ३० ॥
 नागायुनबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
 वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥ ३१ ॥
 यमाहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः ।
 अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेऽर्थाय सञ्जय ॥ ३२ ॥
 स यदा तात सन्नह्येत्पाण्डवार्थाय सञ्जय ।
 न तदा प्रतिसंयोद्धा भविता तत्र कश्चन ॥ ३३ ॥
 यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुर्नाम पाण्डवान् ।
 वाष्पेण्योऽर्थाय तेषां वै शृङ्गीयाच्छस्त्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

तृप्त किया, और उनसे अभिवाज तथा दुर्द्धर्ष चक्र प्राप्त किया ॥ १९, २१ ॥ महानीर श्रीकृष्ण गरुड पर बैठकर अमरावती पुरी गये और अमरावती-निवासी देवगण को भयविह्वल करके इन्द्र-भस्म से प्रारिजात का वृक्ष उखाड़ लिये । इन्द्र उनके पराक्रम को अच्छी प्रकार जानते थे, इसी से विवश होकर उन्हें मन सहना पड़ा । हे सञ्जय ! मैंने कभी यह नहीं सुना कि ऐसा कोई राजा है जिसे श्रीकृष्ण ने नहीं हराया, या नीचा नहीं दिखाया । उन कमल लोचन महानिजस्वी श्रीकृष्ण ने सभी के मध्य जैसा अद्भुत कर्म कर दिखाया या वैसा कर्म उनके अतिरिक्त और कौन कर सकता है ॥ २२, २४ ॥ भक्ति से विशुद्धात्मा होकर मैंने परमेश्वर श्रीकृष्ण को

देखा है । इसी से उनके सब कम मुझे प्रत्यक्ष से दिखाई पड़ रहे हैं । पराक्रमी बुद्धिमान् वासुदेव के कार्य अनन्त हैं, उनकी गिनता नहीं की जा सकती । महा मा केशव की आज्ञा से गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अरमाह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण, उल्मुक, निशठ, पराक्रमी, शिल्घोवभ्रु, पृथु, त्रिपृथु, शमीक और अस्मिञ्जय आदि अनेकानेक योद्धा वृष्णिवीर—उनके बलसे पर—एण में पाण्डवों का ही पक्ष लेंगे । तब अवश्य ही मेरे सैनिक प्राणमशय और मद्धत मे पड़ेंगे । जिस ओर महा मा वासुदेव होंगे उन्हीं ओर हम महस हाथियों का बल रखनेवाले पराक्रमी कैराम पर्वत के समान वनमाली बलदेव भी अवश्य होंगे ॥ २५, ३१ ॥

ततः सर्वान्नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन्रणे ।
 कौरवांश्च महाबाहुः कुन्त्यै दद्यात्स मेदिनीम् ॥ ३५ ॥
 यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ।
 रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद्रथः ॥ ३६ ॥
 न केनचिदुपायेन कुरूनां दृश्यते जयः ।
 तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यथा युद्धमवर्तत ॥ ३७ ॥
 अर्जुनः केशवस्याऽऽत्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः ।
 अर्जुने विजयां नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती ॥ ३८ ॥
 सर्वेष्वपि च लोकेषु वीभत्सुरपराजितः ।
 प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ॥ ३९ ॥
 मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह केशवम् ।
 मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ॥ ४० ॥
 न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम् ।
 पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणाबुभौ ॥ ४१ ॥
 एकात्मानौ द्विधा भूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि ।
 मनसाऽपि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ॥ ४२ ॥
 नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुपत्वाच्च नेच्छतः ।
 युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ॥ ४३ ॥
 भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः ।
 नहोव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ॥ ४४ ॥

हे सञ्जय ! द्विजगण जिह सबका पिता बतलते है
 वे जनार्दन कृष्ण क्या पाण्डवों का पक्ष लेकर युद्ध
 करेंगे ? वे जब पाण्डवों के हित की इच्छा से युद्ध
 के लिए तैयार होंगे तब कोई उनका सामना नहीं
 कर सकेगा । यदि कौरवगण पाण्डवों को जात दें ता
 महाबाहु नासुदेन पाण्डवों के लिए शस्त्र धारण करके
 कौरवों को और उनके पक्ष के सन राजाओं को
 मारकर कुन्ती को सम्पूर्ण राज्य दे दगे । जिस ओर
 श्रीकृष्ण सारथी हैं और अर्जुन योद्धा हैं, उससे सम्मुख
 युद्ध में कौन ठहर सकेगा ॥ ३२।३६ ॥ अतएव, हे सञ्जय !
 मैं किसी प्रकार कौरवों के लिए कल्याण की प्राप्ति
 नहीं देखता । अब जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह सन

में विस्तारपूर्ण सुनना चाहता हूँ, मुझसे कहो । अर्जुन
 श्रीकृष्ण की ओर श्रीकृष्ण अर्जुन का आत्मा हैं । अर्जुन
 में विजय और श्रीकृष्ण में शाश्वती कीर्ति सदा रहती
 है । हे सञ्जय ! अर्जुन को इस त्रिभुवन में कोई योद्धा
 परास्त नहीं कर सकता । श्रीकृष्ण भी सर्वगुणालङ्कृत
 और अलौकिक शक्तिशाली हैं ॥ ३७।३९ ॥ दुर्योधन
 देव विद्वन्मना से मोहित और निरुत्तरत्वी मृत्यु के यशभूत
 है, इसीलिए अर्जुन और श्रीकृष्ण के प्रभाव और पौरुष
 को नहीं जानता ये दोनों महात्मा नर नारायण का अव-
 तार हैं । दोनों एक प्राण दो-देह हैं । एक के ही दो
 रूप हैं । उनका परामर्श असम्भर है, उसकी बलना
 भी नहीं की जा सकती । ये दोनों यशस्वी महात्मा

न क्रियाभिर्न चाऽस्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते ।
 लोकसम्भावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ॥ ४५ ॥
 भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किं नु जीवामि सञ्जय ।
 यां तां श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ ४६ ॥
 अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन ह ।
 मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरूणामेव संक्षयः ॥ ४७ ॥
 पकानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत ।
 अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ॥ ४८ ॥
 यस्य कोपान्महात्मानौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।
 प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो न धर्मो मामकान्प्रति ॥ ४९ ॥
 क्रूरः सर्वविनाशाय कालोऽसौ नाऽतिवर्त्तते ।
 अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नैस्तान मनस्विभिः ।
 अन्यथैव प्रपद्यन्ते देवादिति मतिर्मम ॥ ५० ॥
 तस्मादपरिहार्येऽर्थे सम्प्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे ।
 अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रविलोपे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

चाहें तो हमारे पक्ष की सारी सेना को अकेले ही नष्ट कर सकते हैं। किन्तु मनुष्ययोनि म उष्ण होनेके कारण ही मनुष्य-धर्म का पालन करते हुए वैसा नहीं करते ॥४०॥४३॥भीष्म और द्रोणाचार्य की मृत्यु ऐसी घटना है कि जिसे युग का बदल जाना समझना चाहिए। इससे यह निश्च हो गया कि प्रलक्ष्य, वेदपाठ, अथवा द्वात्रिंश-शिक्षा आदि किसी के द्वारा मनुष्य मृत्यु से नहीं बच सकता। मृत्यु अनिवार्य है। हे सञ्जय ! युद्धदुर्मद लोकप्रजित अश्वनिपुण महावीर भीष्म और द्रोणाचार्य की युद्ध में मृत्यु सुनकर भी जो मैं जीविन हूँ, यही आश्चर्य है ॥४४॥४६॥पहले युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी और ऐश्वर्य देखकर मुझे बड़ी ईर्ष्या उत्पन्न हुई थी। अब भीष्म और द्रोण की मृत्यु हो जाने के कारण मुझे युधिष्ठिर के आश्रित होकर रहना पड़ेगा।

मेरे ही कारण कुरुवंश का यह विनाश हुआ है। हे सत् ! जिन लोगों की मृत्यु आ गई है, उनके लिए तिनके यज्ञ बन जाते हैं। जिनके क्रोध से संग्राम में महावीर भीष्म और द्रोणाचार्य की मृत्यु हुई है, वे युधिष्ठिर अर्जुन ही अनन्त ऐश्वर्य के अधिकारी होंगे। अतएव धर्मपुत्र युधिष्ठिर के ही पक्ष में धर्म है; मेरे पुत्रों की ओर से वह विलकुल ही विमुख है। यह पापात्मा क्रूर काल सबका नाश किये बिना नहीं रहेगा। हे तात ! मनस्वी लोग अपने मन में जो-जो मनोरथ कहते हैं उन्हें प्रबल देव मिथ्या कर देता है, उनकी सोची हुई बात पूर्ण नहीं होने पाती। जो यह दुश्चिन्त्य विषय उपस्थित हुआ है, उसके परिहार का उपाय नहीं है। अतः, अब तुम युद्ध का घटान्त बणज करो ॥५०॥५१॥

द्रोणपर्व का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच—हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
 यथा स न्यपतद् द्रोणः सूदिनः पाण्डुसृजयैः ॥ १ ॥
 सेनापतित्वं सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
 मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
 यत्कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् ।
 सैनापत्येन यद्राजन्मामथ कृतवानसि ॥ ३ ॥
 सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत ।
 करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणोष्व यमिच्छसि ॥ ४ ॥
 ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः ।
 सम्मन्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥ ५ ॥
 ददासि चेद्धरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् ।
 गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहाऽऽनय ॥ ६ ॥
 ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः ।
 सेनां ग्रहर्षयन्सर्वाभिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
 धन्यः कुन्तीसुतो राजन्यस्य ग्रहणमिच्छसि ।
 न वधार्थं सुदुर्धर्षं वरमद्य प्रयाचसे ॥ ८ ॥
 किमर्थं च नरव्याघ्र न वधं तस्य कांक्षसे ।
 नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ॥ ९ ॥
 आहोस्त्रिधर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते ।
 यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चाऽऽत्मनः ॥ १० ॥

बारहवाँ अध्याय ॥ १२ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! मैंने सब वृत्तान्त अपने नेत्रों देखा है । जिस प्रकार पाण्डवों और सृजयों के हाथों द्रोणाचार्य की मृत्यु हुई है, सो सब मैं आपके आगे विस्तारपूर्वक कहता हूँ ॥ १ ॥ महारथी भारद्वाज द्रोणाचार्य जब सेनापति बनाये गये तब सब सेना के मध्य में खड़े होकर उन्होंने दुर्योधन से कहा—हे राजेन्द्र ! तुमने कौरवश्रेष्ठ गोपीपितामह के अख्याय के उपरान्त ही इस समय मुझे सेनापति का पद देकर जो मेरा सत्कार किया है, उसके अनुरूप फल अवश्य तुम प्राप्त करोगे । हे भारत ! नतलाओ,

तुम्हारी अब क्या इच्छा है ? मैं कौन सा कार्य करूँ, जिससे तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो ॥ २ ॥ तब राजा दुर्योधन ने कर्ण और दुःशासन आदि मन्त्रियों और स्वजनों से सम्मति करके विजयी दुर्धर्ष द्रोणाचार्य से कहा—हे महामते ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वरदान देते हैं तो मैं यह माँगता हूँ कि आप श्रेष्ठ रथी युधिष्ठिर को जीते ही पकड़कर मेरे सम्मुख लड़वा ॥ ५ ॥ यह सुनकर द्रोणाचार्य ने सारी सेना को हर्षित और उत्साहित करने के लिए दुर्योधन से कहा—हे राजेन्द्र ! राजा युधिष्ठिर धन्य हैं; क्योंकि तुमने

अथवा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान् ।
 राज्यं सम्प्रति दत्त्वा च सौभ्रात्रं कर्तुमिच्छसि ॥ ११ ॥
 धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजातं चाऽस्य धीमतः ।
 अजातशत्रुता सत्या तस्य यत्स्निह्यते भवान् ॥ १२ ॥
 द्रोणेन चैवमुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत ।
 सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः ॥ १३ ॥
 नाऽऽकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि ।
 तस्मात्तव सुतो राजन्प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥
 वधे कुन्तिसुतस्याऽऽजौ नाऽऽचार्यं विजयो मम ।
 हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान्दि नो ध्रुवम् ॥ १५ ॥
 न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुममरैरपि ।
 य एव तेषां शेषः स्यात्स एवाऽस्मान्न शेषयेत् ॥ १६ ॥
 सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते ।
 पुनर्यास्यन्त्यारण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥ १७ ॥
 सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति ।
 अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥ १८ ॥
 तस्य जिह्वामभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽर्थतत्त्ववित् ।
 तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ॥ १९ ॥

उनकी मृत्यु का घर न माँगकर जीते ही पकड़ आने का घर माँगा । हे नरश्रेष्ठ ! तुमने उनके वध की इच्छा क्यों नहीं की ? हे दुर्योधन ! तुमने मन्त्रणा-निपुण होकर भी युधिष्ठिर की मृत्यु क्या नहीं चाही ? युधिष्ठिर सचमुच अजातशत्रु हैं, उनका यह नाम सार्थक है । युधिष्ठिर का कोई शत्रु नहीं है । तुमने क्या अपने कुल की रक्षा करने के विचार से ही युधिष्ठिर की मृत्यु-कामना नहीं की ? ॥ ७१ ॥ अध्याय युद्ध में पाण्डवों को परास्त करके अन्त को उन्हें उनका राज्यांश देकर सौभ्रात्र बनाये रखने का अभिप्राय कर लिया है ? जो हो, राजा युधिष्ठिर के समान भाग्यवान् कोई नहीं है । उनका जन्म सार्थक है, उनका अजातशत्रु नाम भी आज सफल हुआ; क्योंकि तुम उनके महापैरी होकर भी उनसे इतना स्नेह

रखते हो कि चाहे जिस कारण से हो, उनकी मृत्यु नहीं चाहते ॥ १११२ ॥ हे भारत ! बृहस्पतिनृत्य व्यक्त भी ऐसे असर पर अपने हृदय के भाव को नहीं छिपा सकता । इसी कारण उस समय दुर्योधन के हृदय का भाव एकाएक प्रकट हो गया । आचार्य की बात सुनकर वे प्रसन्नपर्वक कहने लगे—हे आचार्य ! राजा युधिष्ठिर की मृत्यु होने से मैं विजय नहीं प्राप्त कर सकूँगा; क्योंकि युधिष्ठिर को मार डालने पर पाण्डव (अर्जुन) कुछ होकर हम सबको मार डालेंगे । फिर सब पाण्डवों का विनाश तो देवता भी मिलकर नहीं कर सकते । अतएव युधिष्ठिर के मारे जाने पर चारों पाण्डव निमन्देह हमारे कुल को निर्मूल भर डालेंगे ॥ १३१६ ॥ किन्तु इस समय यदि आप सत्यपरायण राजा युधिष्ठिर को जीते ही

द्रोण उवाच— न चेद्युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि
 मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥ २० ॥
 न हि शक्यो रणे पार्थः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि ।
 प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥ २१ ॥
 असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चाऽस्त्रकर्मणि ।
 तरुणः सुकृतैर्युक्त एकायनगतश्च ह ॥ २२ ॥
 अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान् ।
 अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नाऽर्मपयाम्यहम् ॥ २३ ॥
 स चाऽपक्रम्यतां युद्धाद्येनोपायेन शक्यते ।
 अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥ २४ ॥
 ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरुषर्षभ ।
 एतेन चाऽप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥ २५ ॥
 अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम् ।
 आनयिष्यामि ते राजन्वशमद्य न संशयः ॥ २६ ॥
 यदि स्यास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः ।
 अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये ॥ २७ ॥
 फाल्गुनस्य समीपे तु नहि शक्यो युधिष्ठिरः ।
 ग्रहीतुं समरे राजन्सैन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ २८ ॥
 सञ्जय उवाच— सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
 गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥ २९ ॥

मेरे पास पकड़ लोके तो मैं फिर उनसे जुआ खेल करके उन्हें हरा दूँगा, और तब वे और उनके अधीन पाण्डव बनवासी होने के लिए विवश होंगे। इस प्रकार मैं बहुत समय तक विजयी होकर राज्य कर सकूँगा। यही कारण है कि मैं राजा युधिष्ठिर को मारना नहीं चाहता॥१७१८॥ अर्पितत्व के ज्ञाता, बुद्धिमान् द्रोणाचार्य ने दुर्योधन के इस कुविचार का वर्णन सुनकर उनके माँगे घर में एक दाव लगा दिया। आचार्य ने कहा—हे दुर्योधन! यदि संग्राम में महावीर अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा नहीं कर सके तो तुम युधिष्ठिर को अपने वश में समझ लो। किन्तु अर्जुन के रहते यह बात नहीं हो सकती। इन्द्र सहित देवता और

दानव मिलकर भी युद्धभूमि में पराक्रमी अर्जुन को परास्त नहीं कर सकते। इसी कारण मैं अर्जुन के सम्मुख युधिष्ठिर को पकड़ लेने का साहस नहीं करता॥१९॥२०॥ अर्जुन मेरे प्रिय शिष्य हैं। उनकी अशिक्षा के लिए ही मैं आचार्य-पद पर रखा गया था। युवा और पुण्यात्मा अर्जुन ने मेरे अतिरिक्त इन्द्र और महादेव से भी बहुत से दिव्य अस्त्र प्राप्त किये हैं। अर्जुन तुम्हारे अनुचित व्यवहार से अत्यन्त क्रुद्ध हैं। इसी कारण मैं उनके आगे युधिष्ठिर को जीते ही पकड़ लेने का साहस नहीं करता। अतएव यदि किसी उपाय से अर्जुन को युद्धभूमि से हटा सकोगे तो मैं अनायास युधिष्ठिर को जीते ही पकड़ लाकर

तच्चाऽन्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम् ।

स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम् ॥ ६ ॥

यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् ।

अर्जुन उवाच—यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन ॥ ७ ॥

तथा तव परित्यागो न मे राजांश्चिकीर्षितः ।

अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥ ८ ॥

प्रतीपो नाऽहमाचार्ये भवेयं वै कथञ्चन ।

त्वां निगृह्याऽऽह्वे राज्यं धार्तराष्ट्रोऽयमिच्छति ॥ ९ ॥

न स तं जीवल्लोकेऽस्मिन्कामं प्राप्येत्कथञ्चन ।

प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ॥ १० ॥

न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् ।

यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ॥ ११ ॥

विष्णुर्वा सहितो देवैर्न त्वां प्राप्स्यत्सप्तौ मृधे ।

मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात्सर्वशस्त्रभृतामपि ।

अन्यच्च व्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां मम निश्चलाम् ॥ १३ ॥

न स्मराम्यनृतं तावन्न स्मरामि पराजयम् ।

न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किञ्चिदप्यनृतं कृतम् ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच—ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।

प्रावायन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥ १५ ॥

अर्जुन से कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुमने द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा का वृत्तान्त सुन लिया न ? अतएव अब ऐसा उपाय करो जिसमें उनकी यह प्रतिज्ञा पूर्ण न हो । हे वीर ! शत्रुनाशन द्रोण ने जो अटल प्रतिज्ञा की है उसकी सीमा तुम्हीं हो, अर्थात् तुम मेरी रक्षा करते रहोगे तो वे मुझे पराजित का साहस नहीं कर सकते । इसलिए तुम मेरे पास रहकर द्रोणाचार्य से सम्प्राप्त करो, जिसमें दुर्योधन द्रोणाचार्य की सहायता से अपने सङ्कल्प को सिद्ध न कर सके ॥१॥७॥ अर्जुन ने कहा—हे महाराज ! जैसे आचार्य का वध करना किसी प्रकार मेरा कर्तव्य नहीं है वैसे ही युद्धभूमि में अकेले अशक्त भाग से आपको छोड़ जाना भी

मेरा कर्तव्य नहीं है । युद्धभूमि में चाहे मुझे प्राण दे देने पड़े, तथापि आचार्य के निपक्ष में मैं किसी प्रकार युद्ध न करूँगा । किन्तु दुर्योधन जो आपको जीवित पराजित विजय की इच्छा कर रहा है, वह मेरे जिते जी पूर्ण नहीं हो सकती ॥७॥१०॥ नक्षत्रों समेत आकाश भले ही गिर पड़े, पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े भले ही हो जायें, किन्तु मेरे जिते जी आचार्य आपको नहीं पराजित करेंगे । यदि उन्नपाणि इन्द्र अथवा विष्णु भगवान् सब देवताओं के साथ मिलकर स्वयं समस्त दुर्योधन की सहायता करें तो भी वह आपको किसी प्रकार नहीं पराजित सकता । हे राजेन्द्र ! यद्यपि द्रोणाचार्य सब अस्त्रों के और अस्त्रविद्या के जाननेवालों

सिंहनादश्च सञ्ज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
 धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक्सुभैरवः ॥ १६ ॥
 श्रुत्वा शङ्खस्य निर्घोषं पाण्डवस्य महौजसः ।
 त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥ १७ ॥
 ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत ।
 शनैरुपेयुरन्योन्यं बोध्यमानानि संयुगे ॥ १८ ॥
 ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
 पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चाल्ययोरपि ॥ १९ ॥
 यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।
 न शोकुः सृञ्जया युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥ २० ॥
 तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
 न शोकुः पाण्डवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना ॥ २१ ॥
 आस्तां ते स्तिमिते सेने रक्षमाणे परस्परम् ।
 सम्प्रसुप्ते यथा नक्तं वनराज्यौ सुपुष्पिते ॥ २२ ॥
 ततो रुक्मरथो राजशर्केणैव विराजता ।
 वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत्पृतनामुखे ॥ २३ ॥
 तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
 अनेकमिव सन्त्रासान्मेनिरे पाण्डुसृञ्जयाः ॥ २४ ॥
 तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेहः सर्वतोदिशम् ।
 त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीम् ॥ २५ ॥

में प्रधान हैं तथापि मेरे रहते आप के लिए भय नहीं है । ह राजेन्द्र ! मेरी प्रतिष्ठा कभी शिफल नहीं हुई और न आगे व्यर्थ हो सकती है । जहाँ तक स्मरण है, मैं कभी असत्य नहीं बोला, किसी से नहीं अपराजित हुआ, और न कभी किसी से कुछ प्रतिष्ठा करके उये मेने निश्चित्वा मिथ्या किया है ॥ १९१४ ॥ महावीर अर्जुन के यों कहने पर पाण्डवों के शिपिर में शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, डड्डे, तुम्ही आदि बाजे बजने लगे, वीरगण सिंहनाद आर प्रत्यक्षा के शब्द करने लगे, योद्धा लोग धम धोकरने लगे । ये अनेक प्रकार के निर्घोष आकाशमण्डल में गूँन उठे और उनकी प्रति पानि दूर-दूर तक छा गई। उस समय शत्रु-पक्ष के शङ्ख

नाद आदि की सुनकर आपकी सेना में भी बाजे बजने लगे । अब आपके और पाण्डव पक्ष के युद्ध चाहनेवाले वीर सैनिक मोर्चेबन्दी करके समान की इच्छा से आगे बढ़े और एक दूसरे के समीप पहुँच गये । उस समय कौरवों के साथ पाण्डवों का, और द्रोणाचार्य के साथ पाण्डवों का लोमहर्षण समान होने लगा ॥ १९५॥ १९॥ तन द्रोणाचार्य के द्वारा सुरक्षित वीरों की सेना को नष्ट करने के लिए सृञ्जयगण अधिक यत्नपूर्वक युद्ध करने लगे, परन्तु किसी प्रकार कृतकार्य न हो सके । दुर्योधन के पक्ष के महारथी लोग भी अर्जुन के द्वारा सुरक्षित सेना को नष्ट करने के लिए जी जान से यत्न करके भी उसमें सफलता न प्राप्त

मध्यन्दिनमनुप्राप्तो गभस्तिशतसंवृतः ।
 यथा दृश्येत धर्माशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥ २६ ॥
 न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति भारत ।
 वीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवाः ॥ २७ ॥
 मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
 धृष्टद्युम्नवलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥ २८ ॥
 स दिशः सर्वतो रुद्ध्वा संवृत्य खमजिह्वगैः ।
 पार्षतो यत्र तत्रैव ममृदे पाण्डुवाहिनीम् ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनव्रतशुधिष्ठिरास्त्रासने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

कर सके । दोनों ओर के मैनिफ, रात्रिकाल के त्रिभिध
 पुष्पों से शोभित वृक्षों की श्रेणी के समान, निस्तब्ध
 देख पड़ने लगे ॥ २० ॥ २१ ॥ इधर शत्रुनाशन द्रोणाचार्य
 सुवर्णमण्डित रथ पर बैठकर पाण्डवों की सेना को
 नष्ट भ्रष्ट करते हुए उसके भीतर प्रवेश हो गये और
 प्रचलित प्रतापी मूर्ध के समान बाण बरसाते हुए
 चारों ओर विचरने लगे । पाण्डव और सृज्यगण रथ
 पर बड़े हुए, फुर्तीले, अफेले, द्रोणाचार्य को अनेक-
 रूप और विभीषिकामय देखने लगे । द्रोणाचार्य के
 चलाये हुए बाण सब सैनिकों को भयविह्वल करते
 हुए चारों ओर गिरने लगे । महारथी द्रोण उस समय
 आकाशमण्डल में विचरते हुए, अमख्य निरण वेष्टित,

मध्याह्न काल के सूर्य के समान देख पड़ने लगे ॥ २१ ॥
 २६ ॥ जैसे दानवगण समर में क्रुद्ध इन्द्र की ओर
 नेत्र उठाकर नहीं देख सकते वैसे ही उस समय
 पाण्डवों की सेना का कोई सुभट द्रोणाचार्य की ओर
 नेत्र उठाकर नहीं देख सकता था । अब प्रबल प्रतापी
 द्रोणाचार्य शत्रुसेना को मोहित करते हुए स्फूर्ति के
 साथ बाण चलाकर धृष्टद्युम्न की सेना को पीड़ा पहुँ-
 चाने लगे । जहाँ पर धृष्टद्युम्न थे वहाँ पर द्रोणाचार्य
 ने इतने बाण बरसाये कि सब दिशाएँ और आकाश
 मण्डल बाणा से व्याप्त हो गया । द्रोणाचार्य उसी स्थान
 पाण्डवों की सेना का सहार करने लगे ॥ २७ ॥ २९ ॥

—०—

द्रोणपर्व का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच—ततः स पाण्डवानीके जनयन्सुमहद्भयम् ।
 व्यचरत्पृतनां द्रोणो दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १ ॥
 निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम् ।
 दृष्ट्वा स्वमरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृज्याः ॥ २ ॥
 सततं कृष्यतः संख्ये धनुषोऽस्याऽऽशुकारिणः ।
 ज्याघोषः शुश्रुवेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥ ३ ॥

चौदहवाँ अध्याय ॥ १४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज । तब द्रोणाचार्य
 पाण्डवों की सेना को, घास फूस अग्नि की तरह, बाणों
 से भस्म करते हुए विचरने लगे । द्रोणाचार्य की क्रोधा

के मोरे प्रदीप्त अग्नि के समान सत्र सेना को भस्म
 करते देखकर सृज्यगण भयविह्वल होकर काँपने लगे ।
 द्रोणाचार्य के कानों तक खिंची हुई धनुष की डोरी

रथिनः सादिनश्चैव नागानश्चान्पदातिनः ।
 रौद्रा हस्तवता मुक्ताः संमृद्नन्ति स्म सायकाः ॥ ४ ॥
 नानयमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये ।
 अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परोपामावहन्त्यम् ॥ ५ ॥
 विचरन्स तदा राजन्सेनां संक्षोभयन्प्रभुः ।
 वर्धयामास सन्त्रासं शात्रवाणाममानुषम् ॥ ६ ॥
 तस्य विद्युदिवोऽश्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
 भ्रमद्रथाम्बुदे चाऽस्मिन्दृश्यते स्म पुनः पुनः ॥ ७ ॥
 स वीरः सत्यवान्प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः ।
 युगान्तकालवद्धोरां रौद्रां प्रावर्त्तयन्नदीम् ॥ ८ ॥
 अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसंकुलाम् ।
 बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृक्षापहारिणीम् ॥ ९ ॥
 शोणितोदां रथावर्त्ता हस्त्यश्चक्रतरोधसम् ।
 कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् ॥ १० ॥
 मेदोमज्जास्यसिकतामुष्णीपचयफेनिलाम् ।
 संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥ ११ ॥
 नरनागाश्चकलिलां शरवेगौघवाहिनीम् ।
 शरीरदारुतङ्घटां रथकच्छपसंकुलाम् ॥ १२ ॥
 उत्तमाङ्गैः पङ्कजिनीं निखिंशज्ञपसंकुलाम् ।
 रथनागहृदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥

वा शब्द वज्र निर्घोष के समान सुनाई पड़ने लगा ॥१॥३॥स्फूर्ति के साथ हाथ चलनेवाले द्रोणाचार्य के बाण रथ, रथी, घुड़सवार, हाथी, घोड़े, पैदल आदि को काट काटकर मारने लगे । जैसे गरजने हुए मेघ वायु की सहायता पाकर वर्षाकाल में गिलाओं की वर्षा करते हैं, वैसे ही द्रोणाचार्य भी सिंहनाद-पूर्ण बाण बरसाते हुए शत्रुपक्ष के लिए भयानक हो उठे । वे शत्रुसेना में विचरते हुए उसे क्षुब्ध करके शत्रुओं के हृदय में दारुण भय उत्पन्न करने लगे ॥४॥६॥उनके घूमते हुए रथ पर सुगन्धमण्डित धनुष बार-बार मेघों के मध्य बिजली की तरह चमक रहा था । सत्यपरायण, प्राज्ञ, नित्य धर्म के अनुरागी द्रोणा-

चार्य ने क्रुद्ध होकर ऐसा घोर युद्ध किया कि रक्त की भयानक नदी बह चली ॥७॥उस नदी में अनेक मांसाहारी जीव भरे पड़े थे । सेनाएँ ही उसका श्रोत थीं । ध्वजाओं को ही किनारे पर के वृक्षों के समान वह गिरा रही थी । जल के स्थान पर उसमें रक्त था । हाथियों और घोड़ों की लाशों के ढेर तटभूमि की तरह देख पड़ते थे । टूटे हुए कवच घनई की तरह जान गड़ते थे । मांस की कीचड़ थी और मेदा-मज्जा हड्डी आदि ही वाद के समान थे । पगड़ियों फेंकने की तरह बह रही थीं । युद्ध के धिरे हुए मेघ से वह उत्पन्न हुई थी । उसमें ग्राम और खन्न रूपी मत्स्य थे ॥९॥१॥मनुष्य-हाथी-घोड़े आदि से वह

महारथशतावर्त्ता भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
 महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ १४ ॥
 शरीरशतसम्बाधां यध्वकङ्कनिपेविताम् ।
 महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसादनम् ॥ १५ ॥
 शूलव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाजिनिपेविताम् ।
 छिन्नक्षत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् ॥ १६ ॥
 चक्रकूर्मां गदानक्रां शरक्षुद्रझपाकुलाम् ।
 वकश्रुस्रगालानां घोरसङ्घैर्निपेविताम् ॥ १७ ॥
 निहतान्प्राणिनः संख्ये द्रोणेन वलिना रणे ।
 वहन्तीं पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥ १८ ॥
 शरीरशतसम्बाधां केशशैवलशाद्वलाम् ।
 नदीं प्रावर्त्तयद्राजन्भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ १९ ॥
 तर्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथम् ।
 सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
 तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढविक्रमाः ।
 सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तदभूद्धोमहर्षणम् ॥ २१ ॥
 शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् ।
 सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
 तस्य माद्रीसुतः केलुं धनुः सूतं हयानपि ।
 नाऽतिक्रुद्धः शरैरिच्छत्वा पृथ्वा विव्याध सौवलम् ॥ २३ ॥

दुर्गम थी । बाणों का वेग ही उसका प्रवाह था ।
 लोगों की लाशें लकड़ियों के समान उसमें बह रही थीं ।
 रथ कच्छप की तरह देख पड़ते थे । कटे हुए मस्तक
 कमल की तरह जान पड़ते थे । गन्धार्थी आदि
 उसके भीतर कुण्ड से जान पड़ते थे । उसमें पड़े
 अनेक आभूषण चमक रहे थे । बड़े-बड़े रथ सैकड़ों
 भर से देख पड़ते थे । पृथ्वी से उठती हुई धूल ही
 उसमें उठनेवाली लहरों के समान जान पड़ती थी ।
 महापराक्रमी वीर योद्धा तो सहज में उस नदी के पार
 जा सकते थे, किन्तु कायरों के लिए वह अत्यन्त
 दुस्तर थी ॥ १२११४ ॥ सहस्रों लाशें उसमें भरी पड़ी
 थी । कङ्क गिद्ध आदि जीव उसके चारों ओर मँडला

रहे थे । वह नदी सहस्रो महारथी वीरों को यमलोक
 को लिये जा रही थी । बड़े बड़े त्रिशूल उसमें नाग
 से जान पड़ते थे । अनेक जीव पक्षियों के समान
 प्रतीत होते थे । कटे हुए छत्र हंसों के समान
 उसमें देख पड़ते थे; कटे हुए मुकुट पक्षियों के सदृश
 जान पड़ते थे ॥ १३१६ ॥ चक्र कच्छप से, गदाएँ मगर
 सी और बाण छोटी-छोटी मछलियों से उसमें बह रहे
 थे । भयानक बगलों, गिद्धों और गीदड़ों के कुण्ड
 उसके आस-पास घूम रहे थे । महावीर द्रोणाचार्य के
 द्वारा युद्ध में मारे गये सहस्रों वीरों को वह रक्त की
 नदी यमलोक पहुँचा रही थी । केश सेवार् और
 घास के समान दिखाई पड़ रहे थे । द्रोणाचार्य ने

सौवलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ।
 स तस्य गदया राजन्रथास्सूतमपातयत् ॥ २४ ॥
 ततस्तौ विरथौ राजन्गदाहस्तौ महाबलौ ।
 चिक्रीडतू रणे शूरो सशृङ्गाविव पर्वतौ ॥ २५ ॥
 द्रोणः पाञ्चालराजानं विध्वा दशभिराशुगैः ।
 बहुभिस्तेन चाऽभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः ॥ २६ ॥
 विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः ।
 विध्वा नाऽकम्पयद्भीरुस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २७ ॥
 विविंगतस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् ।
 भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यान्यपूजयन् ॥ २८ ॥
 स तन्न ममृपे वीरः शत्रोर्विक्रममाहव ।
 ततोऽस्य गदया दान्तान्हयान्सर्वानपातयत् ॥ २९ ॥
 हताश्वात्स रथाद्राजन्गह्य चर्म महाबलः ।
 अभ्यायान्भीमसेनं तु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३० ॥
 शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्त्रीयं प्रियमात्मनः ।
 विव्याध प्रहसन्वाणैर्लालयन्कोपयन्निव ॥ ३१ ॥
 तस्याऽश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः ।
 निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं धूमौ प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

कायों व हृदय में मग उलझ करनेवाली ऐसी महा-
 मयानक रक्त की नदी युद्धभूमि में बहा दी॥१७॥
 १७॥द्रोणाचार्य की इस प्रकार गरज गरजकर अपनी
 सेना की भयनिह्वल करने देख युधिष्ठिर आदि पाण्डव-
 पक्ष के योद्धा चारों ओर से द्रोणाचार्य पर आक्रमण
 करने और उन्हें रोकने चले । महापराक्रमी कायरों
 ने जब उन शूरों को इस प्रकार आते देखा तब वे
 भी उन्हें रोकने के लिए चारों ओर से चले । उस
 समय उनका लोमहर्षण युद्ध हाने लगा॥२०॥२१॥
 बहुत बड़े मायावी शकुनि समरभूमि में सहदेव के
 समुख आकर अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाणों के द्वारा
 उनको पीड़ित करने लगे । उन्होंने सहदेव के रथ
 की घन्टा काट डाली और सारथी को भी घायल
 कर दिया । सहदेव ने भी क्रोध के बश होकर बाणों
 से शकुनि के धनुष, पतंग, सारथी और घोड़ों की

ठिठ भिन्न करक शकुनि को साठ पने बाण मारे ।
 अब शकुनि रथ पर से उतर पड़े और बड़े वेग से
 गदा लेकर दौड़े । उन्होंने गदा के प्रहार से सहदेव
 के सारथी को मार गिराया । तब दोनों ही गाररथ-
 हीन होकर गदा हाथ में लेकर शिखर-शोभित पर्वतों
 की तरह युद्धभूमि में गदायुद्ध के पेतरे दिखाते हुए
 क्रीड़ा सी करने लगे॥२२॥२५॥द्रोणाचार्य ने राजा
 हृपद को दस बाण मारे तब वे भी असह्य बाणों से
 आचार्य को जर्जर करने लगे । आचार्य ने फिर उनसे
 भी अधिक पराक्रम के साथ अतस्य बाणों से राजा
 हृपद को घायल कर डाला । भीमसेन ने त्रिविंशति
 की अत्यन्त तीक्ष्ण बीम बाण मारे, परन्तु वे उस प्रहार
 से तनिक भी विचलित नहीं हुए । यह एक अद्भुत
 घटना हुई । त्रिविंशति ने सहसा भीमसेन के बाण
 मार डार और घना तथा धनुष की डोरी काट दी ।

धृष्टकेतुः कृपेणाऽस्ताञ्छित्वा बहुविधाञ्छरान् ।
 कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चाऽस्याऽऽहरत्त्रिभिः ॥ ३३ ॥
 तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत् ।
 विव्याध च रणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम् ॥ ३४ ॥
 सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।
 विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः समन्निव ॥ ३५ ॥
 तं भोजः सप्तसप्तत्या विध्वाऽऽशु निशितैः शरैः ।
 नाऽकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाऽचलम् ॥ ३६ ॥
 सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वताडयत् ।
 स चापि तं तोमरेण जन्तुदेशेऽभ्यताडयत् ॥ ३७ ॥
 वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत् ।
 सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ३८ ॥
 तत्पौरुषमभूत्तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम् ।
 यत्सैन्यं वारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३९ ॥
 द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन सङ्गतः ।
 तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत् ॥ ४० ॥
 भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः ।
 सनियन्तृध्वजरथं विव्याध पुरुषपर्वभिः ॥ ४१ ॥

इस पर विविशति की सेना ने उनकी प्रशंसा की ।
 अपने शत्रु का यह पराक्रम भीमसेन देख नहीं सके ।
 उन्होंने भी शत्रु को घोड़ों को गदा के प्रहार से गर्द-
 बर्द कर डाला । महाबली विविशति मत्त गजराज की
 तरह क्रुद्ध होकर ढाल तलवार हाथ में लेकर रथ से
 क्रुद्ध पड़े और भीमसेन पर प्रहार करने के लिए झपटे
 ॥ २६।३०॥महावीर शल्य अपने भानजे नकुल को
 कुपित करने के लिए हँसकर लीलापूर्ण धनुष घुमा
 कर उन पर बाण बरसाने लगे । महापराक्रमी नकुल
 ने भी उनके सब घोड़े नष्ट कर दिये, सारथी को
 मार डाला तथा धजा, छत्र और धनुष की डोरी काट
 कर शङ्ख बजाया । धृष्टकेतु ने भी कृपाचार्य के चलाये
 बाणों को काटकर उन्हें सत्तर बाण मारे और तीन बाणों
 से उनकी सुन्दर धजा काटकर गिरा दी । कृपाचार्य
 भी बहुत से बाणों से धृष्टकेतु के बाणों को व्यर्थ

करक घोर युद्ध करने लगे । सात्यकि ने पहले हँस-
 कर कृतवर्मा की छाती में लोहमय नाराच बाण, फिर
 आर सत्तर बाण, और उसके पश्चात् अन्य अनन्य
 प्रकार के अगणित बाण मारे । वेग से चलनेवाली
 आँधी जैसे पर्वत को नहीं कैपा सक्ती वैसे ही भोज-
 राज कृतार्मा सात्यकि को, पने सत्तर बाण मारकर
 भी, विचलित नहीं कर सके ॥ ३१।३६॥सेनापति धृष्ट-
 बुध ने सुशर्मा के मर्मस्थलों में तीक्ष्ण बाण मारे ।
 सुशर्मा ने भी तोमर के प्रहार से उनको अत्यन्त पीड़ित
 किया । महावीर राजा विराट मत्स्यदेश की सेना लेकर
 वीर कर्ण के सम्मुख आये । उन्होंने अपने अपूर्व
 पराक्रम और युद्धकौशल से उन्हें आगे नहीं बढ़ने
 दिया । यह देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ ।
 सूतपुत्र कर्ण ने भी पौरुष प्रकट करते हुए तीक्ष्ण
 बाणों से मत्स्यसेना को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया।

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम् ।
 आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ४२ ॥
 युद्धं योधवरौ लोके सौमदत्तिशिखण्डिनौ ।
 भूतानां त्रासजननं चक्रातेऽस्त्रविशारदौ ॥ ४३ ॥
 भूरिश्रवा रणे राजन्याज्ञसेनिं महारथम् ।
 महता सायकौघेन च्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४४ ॥
 शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशाम्पते ।
 नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत ॥ ४५ ॥
 राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालम्बुपावुभौ ।
 चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैपिणौ ॥ ४६ ॥
 मायाशतसृजौ द्रुपदौ मायाभिरितरेतरम् ।
 अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥ ४७ ॥
 चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे चाऽतिभैरवम् ।
 यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४८ ॥
 लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद्भृशम् ।
 यथा विष्णुः पुरा राजन्हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ ४९ ॥
 ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च ।
 रथेनाऽभ्यपतद्राजन्सौभद्रं पौरवो नदन् ॥ ५० ॥
 ततोऽभ्ययात्स त्वरितो युद्धाकांक्षी महाबलः ।
 तेन चक्रे महद्युद्धमभिमन्युरिन्दमः ॥ ५१ ॥

राजा। द्रुपद स्वयं भगदत्त के समुत्पन्न आकर उनके साथ घोर युद्ध करने लगे । भगदत्त ने बाणों से द्रुपद के सारथी, ध्वजा, रथ आदि को नष्ट करके द्रुपद को घायल कर दिया । उन्होंने भी अत्यन्त कुपित होकर तीक्ष्ण बाण से भगदत्त के वक्षस्थल को छेद दिया ॥ ३७।४२ ॥ अश्वविद्याविशारद भूरिश्रवा और शिखण्डी, ये दोनों वीरवर देखनेवालों का भयविह्वल बना देनेवाला दारुण युद्ध करने लगे । वीर्यशाली भूरिश्रवा ने असंख्य बाणों से महारथी शिखण्डी को ढक दिया । शिखण्डी ने भी क्रोध करके नव्य बाण मारकर भूरिश्रवा के छेके लुझा दिये । गर्वित राक्षस घटोत्कच और अलम्बुप दोनों ही जय की इच्छा से तरह-तरह की आसुरी

माया प्रकट करके अत्यन्त घोर युद्ध करते हुए, कभी कभी अन्तर्धान होकर, दर्शकों के हृदय में आश्चर्य उत्पन्न करने लगे । देवासुर-युद्ध में जैसे आश्चर्य में डालनेवाले कार्य हुए थे वैसे ही कार्य दिखाते हुए चेकितान और अनुविन्द भयानक युद्ध करने लगे । पहले किसी समय वराहरूप विष्णु के साथ हिरण्याक्ष दानव का जैसा युद्ध हुआ था वैसा ही युद्ध लक्ष्मण और क्षत्रदेव करने लगे ॥ ४३।४९ ॥ अब महाबली हार्दिक्य बहुत शीघ्र अभ्युक्त और शीघ्रता के साथ चल रहे रथ पर बैठकर युद्ध की आकांक्षा से अभिमन्यु के निकट पहुँचकर सिंहनाद करने लगे । अभिमन्यु उनके साथ भयानक युद्ध करने लगे । हार्दिक्य ने कई बाणों से

पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरघ्रातैरवाकिरत् ।
 तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ॥ ५२ ॥
 सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
 पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान्सूतं च सायकैः ॥ ५३ ॥
 ततः प्रहर्षयन्तेनां सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
 समादत्ताऽऽर्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ॥ ५४ ॥
 तं तु सन्धितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम् ।
 द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः ॥ ५५ ॥
 तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
 उद्वहर्हं सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५६ ॥
 स तेनाऽनेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् ।
 भ्रान्तासिना चरन्मार्गान्दर्शयन्वीर्यमात्मनः ॥ ५७ ॥
 भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम् ।
 चर्म निखिंशयो राजन्निर्विशेषमदृश्यत ॥ ५८ ॥
 स पौरवरथस्येपामाश्रुत्य सहसा नदन् ।
 पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ॥ ५९ ॥
 जघानाऽस्य पदा सूतमसिना पातयद् ध्वजम् ।
 विक्षोभ्याऽम्भोनिधिं तार्क्ष्यस्तं नागभिर्वचाऽक्षिपत् ॥ ६० ॥
 तमागलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
 उक्षाणमिव सिंहैर्न पात्यमानमचेतसम् ॥ ६१ ॥

अभिमन्यु को घायल किया। अभिमन्यु ने भी तत्काल क्षत्र, ध्वजा और धनुष काट डाला। अभिमन्यु ने और सात बाण हार्दिक्य को मारे तथा पाँच बाणों से उनके घोड़ों को और सारथी को पीड़ित करके वे सिंह की तरह बार-बार गरजकर सैनिकों के हृदय में हर्ष बढ़ाने लगे ॥ ५० ॥ ५३ ॥ अब अभिमन्यु ने शत्रु के प्राणों को हरनेवाला एक बाण धनुष पर चढ़ाना चाहा। किन्तु हार्दिक्य ने उस भयानक बाण को देखकर दो बाणों से मय धनुष के उसको काट डाला। शत्रुदमन अभिमन्यु ने कटे हुए धनुष को फेंककर युद्ध के लिए ढाल तलवार हाथ में ली। उस खड्ग को घुमाते और अनेक ताराचिह्नों से शोभित ढाल चमकाते हुए धीरे

अभिमन्यु अद्भुत पराक्रम प्रकट करते हुए रणभूमि में विचरने लगे ॥ ५४ ॥ ५७ ॥ कभी ढाल-तलवार को घुमाते, कभी ऊपर फेरते और कभी हिलाते तथा तानते हुए अभिमन्यु ने ऐसी स्फूर्ति दिखाई कि किसी को ढाल और तलवार में कुछ भी अन्तर नहीं देख पड़ता था। अभिमन्यु सिंहनाद के साथ उछलकर हार्दिक्य के रथ पर चढ़ गये। पहले हार्दिक्य के बाल पकड़कर उन्हें आसन के नीचे खींच लिया, फिर पाँव मारकर सारथी के प्राण ले लिये और तलवार से ध्वजा काट गिराई। गरुड़ जैसे समुद्र को मयकर सर्प को पकड़कर झटकते हैं वैसे ही अभिमन्यु ने हार्दिक्य को पकड़कर झटक डाला। उस समय जिनके बाल

तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् ।
 पौरवं पातितं दृष्ट्वा नाऽमृष्यत जयद्रथः ॥ ६२ ॥
 स बर्हिबर्हावततं किङ्किणीशतजालवत् ।
 चर्म चाऽऽदाय खड्गं च नदन्पर्यपतद्रथात् ॥ ६३ ॥
 ततः सैन्धवमालोक्य कार्णिरुत्सृज्य पौरवम् ।
 उत्पपात रथात्तूर्णं श्येनवन्निपपात च ॥ ६४ ॥
 प्राप्तपट्टिशानिस्त्रिंशञ्छत्रुभिः सम्प्रचोदितान् ।
 चिच्छेद चाऽसिना कार्णिश्वर्मणा संस्रोध च ॥ ६५ ॥
 स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः ।
 तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाऽथ पुनर्वली ॥ ६६ ॥
 वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
 ससाराऽभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ६७ ॥
 तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ ।
 हृष्टवत्सम्प्रजहाते व्याघ्रकेसरिणाश्विव ॥ ६८ ॥
 सम्पातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः ।
 न तयोरन्तरं कश्चिद्दर्श नरसिंहयोः ॥ ६९ ॥
 अवक्षेपोऽसिनिर्हार्दः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् ।
 बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ॥ ७० ॥
 बाह्यमाभ्यन्तरं चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् ।
 ददृशाते महारमानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥ ७१ ॥

बिम्बेर हुए हैं वे पौरव हार्दिक्य सिंह के पड़ाई हुए
 अचेत सौँड़े के समान जान पड़ने लगे ॥ ५८।६१ ॥
 जयद्रथ ने देखा कि अनाथ की तरह हार्दिक्य मारे
 जा रहे हैं। अभिमन्यु ने उन्हें पटक दिया है और
 बाल पकड़कर प्राण लेने को उद्यत हैं। तब वे अत्यन्त
 क्रुद्ध होकर, सिंहनाद करके, सुवर्णजालयुक्त मयूर-
 शोभित घुंघरुदार ढाल और तलवार लिये रथ से उतर
 पड़े। अभिमन्यु ने जयद्रथ को आते देखकर हार्दिक्य
 को छोड़ दिया, और रथ पर से कूदकर बाज की
 तरह वे जयद्रथ पर झपटे। अभिमन्यु ने शत्रुपक्ष के
 चलाये हुए प्राम, पाँदिया, मझा आदि शस्त्रों की बर्षा को
 ढाल पर रोकना और मझ से काटना शुरू कर दिया

॥ ६२।६५ ॥ पाण्डवसेना को अपना बाहुबल दिखाने हुए
 वीर अभिमन्यु, बाघ का बच्चा जैसे मगराज पर आक्रा-
 मण करता है जैसे ही, ढाल-तलवार घुमाते हुए, अपने
 पिता के वीर क्षत्रियश्रेष्ठ जयद्रथ के पास प्रहार
 करने के लिए पहुँचे। जैसे बाघ और सिंह दोनों परस्पर
 नभों और दाँतों से प्रहार करते हैं वैसे ही वे दोनों
 एक दूसरे को पाकर अत्यन्त उत्साह के साथ व्य-
 प्रहार करने लगे। ढाल और तलवार के कारतबों में,
 प्रहार में, चवाने में और पतारों में दोनों वीर ममान
 कौशल और स्फूर्ति दिखाने लगे। दोनों ही दोनों
 पर समान रूप से प्रहार करते, पड़ते हटते और
 भीतर-बाहरी घाट करते थे ॥ ६६।७० ॥ दोनों वीर

ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः ।
 शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥ ७२ ॥
 स्वमपचान्तरे सक्तस्तस्मिंश्चर्मणि भास्वरे ।
 सिन्धुराजवलोद्धतः सोऽभज्यत महानसिः ॥ ७३ ॥
 भग्नमाज्ञाय निखिशमवपुत्य पदानि पट् ।
 अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७४ ॥
 तं कार्णिणं समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम् ।
 सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ७५ ॥
 ततश्चर्म च खड्गं च समुत्क्षिप्य महाबलः ।
 नानादाऽर्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥ ७६ ॥
 सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
 तापयामास तत्सैन्यं भुवनं भास्करो यथा ॥ ७७ ॥
 तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम् ।
 चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ७८ ॥
 तामवपुत्य जग्राह विकोशं चाऽकरोदसिम् ।
 वैनतेयो यथा कार्णिणः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥ ७९ ॥
 तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वं चाऽमिततेजसः ।
 सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथाऽनदन् ॥ ८० ॥
 ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।
 मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतां शिताम् ॥ ८१ ॥

जिस समय भीतरी और बाहरी चौटों के पैतरे काट रहे थे उस समय वे परदार पर्वत से प्रतीत होते थे। महावीर अभिमन्यु ने अवसर पाकर जयद्रथ को तलवार मारी, जयद्रथ ने भी शत्रु का वार अपनी ढाल पर रोककर खड्ग-प्रहार किया, जिसे अभिमन्यु ने अपनी ढाल पर रोक लिया। ७१।७३॥ जयद्रथ का वह दृढ़ खड्ग अभिमन्यु की ढाल में भेदे हुए सुवर्ण के पत्तर में लगकर टूट गया। मैंने देखा कि उसी समय जयद्रथ अपने खड्ग को खण्डित देखकर, छः पग हटकर, पलक मारते ही स्फूर्ति के साथ अपने रथ पर चढ़ गये। इधर अभिमन्यु भी खड्गयुद्ध बन्द करके फिर श्रेष्ठ रथ पर जा बैठे। उनके पक्ष के योद्धा

राजाओं ने उनको चारों ओर से घेर लिया। वीर अभिमन्यु ढाल-तलवार उछालकर जयद्रथ की ओर देखते हुए सिंहनाद करने लगे। सूर्य जैसे सब दिशाओं को अपने तेज से तपोते हैं वैसे ही शत्रुदलन अभिमन्यु जयद्रथ को इस प्रकार परास्त करके शत्रुसेना को पीड़ित करने लगा। ७४।७७॥ अब शल्य ने एक भयानक सुवर्णमण्डित लोहमय, अग्निशिखा की तरह चमकीली, शक्ति लेकर अभिमन्यु को ताककर मारी। गरुड़ जैसे उछलकर आये हुए नाग को पकड़ लेते हैं वैसे ही अभिमन्यु ने उछलकर उस शक्ति को पकड़ लिया और फिर अपनी तीक्ष्ण तलवार म्यान से निकाली। सब राजा लोग अभिमन्यु के बल-वीर्य

सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
 जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥ ८२ ॥
 ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
 सात्यकिः केकेया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ८३ ॥
 यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः ।
 बाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादश्च पुष्कलाः ॥ ८४ ॥
 प्रादुरासन्हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।
 तन्नाऽमृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥
 अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
 अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ८६ ॥
 तेषां च प्रियमन्विच्छन्सूतस्य च पराभवम् ।
 आर्त्तायनिरभिन्नघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्रमं चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

और अद्भुत पराक्रम को देखकर सिंहनाद करने लगे । अब अमित तेजस्वी शत्रुवीरनाशन अभिमन्यु ने वही अभेद्य मणिलक्षित शक्ति शल्य के ऊपर चलाई ॥७८॥८१॥ किंचुल छोड़े हुए नाग के समान वह शक्ति शल्य के रथ पर पहुँची । उस शक्ति के प्रहार से सारथी मरकर गिर पड़ा । यह देखकर धृष्टकेतु, द्रुपद, विराट, युधिष्ठिर, केकेय, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पुत्र सब अभिमन्यु को साधुभद्र देते हुए चिल्लाते लगे । उस समय बहुविध बाणों के शब्द और सिंहनाद

से समरभूमि गूँज उठी ॥८२॥८५॥ अपराजित अभिमन्यु उस प्रशंसासूचक कोलाहल को सुनकर बहुत आनन्दित हुए । मेघमण्डल जैसे जल बरसाकर पर्वत के शिखर को ढक लेते हैं वैसे ही आपके पुत्रगण, शत्रुपक्ष के उम जयनाद और सिंहनाद को न सह सकने के कारण, एकाएक चारों ओर से अभिमन्यु पर बाण बरसाने लगे । अत्रुदमन शल्य ने सारथी की मृत्यु देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, आपके पुत्रों की विजय की इच्छा से अभिमन्यु पर आक्रमण किया ॥८५॥८७॥

—०—

द्रोणपर्व का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि सञ्जय ।
 त्वयोक्तानि निशम्याऽहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥
 आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः ।
 कुरुणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम् ॥ २ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय ॥ १५ ॥

राजा धृतराष्ट्र कहते हैं—हे सञ्जय ! तुमने जो इस समय मुझे भी नेत्र न होने का खेद हो रहा है । इन वीरों के द्वन्द्वयुद्धों का वर्णन किया उसे सुनकर । मनुष्य इस कुरु-पाण्डव-युद्ध को देवासुर-युद्ध के समान

सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
 जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥ ८२ ॥
 ततो विराटद्वुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
 सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखाण्डिनौ ॥ ८३ ॥
 यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुकुशुः ।
 वाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादश्च पुष्कलाः ॥ ८४ ॥
 प्रादुरासन्हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।
 तन्नाऽमृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥
 अथैनं सहसा सर्वे समन्ताद्विशितैः शरैः ।
 अभ्याकिरन्महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ८६ ॥
 तेषां च प्रियमन्विच्छन्सूतस्य च पराभवम् ।
 आर्त्तायिनिरभिन्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्तं चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

और अद्भुत पराक्रम को देखकर सिंहनाद करने लगे । अब अमित तेजस्वी शत्रुवीरनाशन अभिमन्यु ने वही अभेद्य मणिलिखित शक्ति शल्य के ऊपर चलाई ॥७८॥८१॥ किञ्चुल छोड़ हुए नाग के समान यह शक्ति शल्य के रथ पर पहुँची । उस शक्ति के प्रहार से सारथी मरकर गिर पड़ा । यह देवगर्ज धृष्टकेतु, द्वुपद, विराट, युधिष्ठिर, कैत्रेय, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखाण्डी, भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पुत्र सब अभिमन्यु को साधुवाद देते हुए चिह्नाने लगे । उस समय बहुविध बाणों के शब्द और सिंहनाद

से समरभूमि गूँज उठी ॥ ८२ ॥ ८५ ॥ अपराजित अभिमन्यु उस प्रशमात्सुक कोलाहल को सुनकर बहुत आनन्दित हुए । मेघमण्डल जैसे जल बरसाकर पर्वत के शिखर को टक लेते हैं वैसे ही आपके पुत्रगण, शत्रुपक्ष के उम जयनाद और सिंहनाद को न सह सकने के कारण, एकाएक चारों ओर से अभिमन्यु पर बाण बरसाने लगे । शत्रुदमन शल्य ने सारथी की मृत्यु देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, आपके पुत्रों की विजय को इच्छा में अभिमन्यु पर आक्रमण किया ॥ ८५ ॥ ८७ ॥

— ० —

द्रोणपर्व का चोदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - बहूनि सुविचित्राणि द्रुपदयुद्धानि सञ्जय ।
 त्वयोक्तानि निशम्याऽहं स्पृहयामि सचक्षुषाम् ॥ १ ॥
 आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः ।
 कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम् ॥ २ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय ॥ १५ ॥

राजा धृतराष्ट्र कहते हैं—हे सञ्जय ! तुमने जो । इस समय मुझे भी नेत्र न होने का वेद हो रहा है । इन वीरों के द्रुपदयुद्धों का वर्णन किया उसे सुनकर । मनुष्य इस कुरू-पाण्डव-युद्ध को देवासुर-युद्ध के समान

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम् ।
 तस्मादार्त्तायिनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे ॥ ३ ॥
 सञ्जय उवाच—सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
 समुत्क्षिप्य नदन्कुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ४ ॥
 तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
 जवेनाऽभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५ ॥
 सौभद्रोऽप्यशानिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
 एहोहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद्भीमेन वारितः ॥ ६ ॥
 वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान् ।
 शल्यमासाद्य समरे तस्यौ गिरिर्वाऽचलः ॥ ७ ॥
 तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम् ।
 ससाराऽभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ८ ॥
 ततस्तूर्यनिनादाश्च शङ्खानां च सहस्रशः ।
 सिंहनादाश्च सञ्जनुर्भेरीणां च महास्वनाः ॥ ९ ॥
 पश्यतां शतशो ह्यासीदन्योऽन्यमभिधावताम् ।
 पाण्डवानां कुरूणां च साधुसाध्विति निःस्वनाः ॥ १० ॥
 न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत ।
 सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ११ ॥
 तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
 सोढुमुत्सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात् ॥ १२ ॥

अद्भुत और आश्चर्य में डालनेवाला कहेंगे । यह उत्तम युद्ध-वृत्तान्त सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं होती । इसलिए तुम मेरे आगे शल्य और अभिमन्यु के युद्ध का वृत्तान्त फिर कहो ॥ १३ ॥ सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र ! शल्य ने जब अपने सारथी को मर्ते देखा तब अन्यन्त कुपित होकर, लोह की भारी गदा लेकर, वे रथ से उतर पड़े । हे महाराज ! भीमसेन उन्हें कालदण्ड हाथ में लिये साक्षात् यमराज के समान देखकर अपनी गदा लेकर घड़े वेग से उनकी ओर झपटे । अभिमन्यु भी यज्ञतुल्य गदा हाथ में लेकर शल्य को गदा युद्ध के लिए ललकारने लगे ॥ १४ ॥ महामुद्रापी भीमसेन ने समझाने अभिमन्यु को रोक लिया । वे स्वयं शल्य

के सम्मुख पर्वत के समान जाकर बैठ गये । उसी प्रकार मद्रराज शल्य भी महाबली भीमसेन को देखकर, गजराज की ओर सिंह की तरह, झपटे । उधर तुरही, सहस्रों शङ्ख और ढङ्के बजने लगे; वीर योद्धा मिहनाद करने लगे और एक दूसरे की ओर झपटते हुए पाण्डवों और कौरवों के मध्य असंख्य मायुबाद और जयनाद सुनाई पड़ने लगे ॥ १५ ॥ सप्राम में शल्य को छोड़कर और कोई भीमसेन का वेग नहीं सह सकता था । वैसे ही भीमसेन के अतिरिक्त और कोई भीरुश्रेष्ठ मद्रराज शल्य की गदा का बार नहीं संभाल सकता था । सुवर्ण की यष्टियों से शोभित और अपने लोगों के मन में हर्ष बढ़ानेवाली भारी गदा भीमसेन

पट्टैर्जम्बूनदैर्बद्धा वभूव जनहर्षणी ।
 प्रजज्वाल तदा विद्धा भीमेन महती गदा ॥ १३ ॥
 तथैव चरतो मार्गान्मण्डलानि च सर्वशः ।
 महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा ॥ १४ ॥
 तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
 आवर्त्तितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ ॥ १५ ॥
 मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
 निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ १६ ॥
 ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा ।
 साम्निज्वाला महारौद्रा तदा तूर्णमशीर्यत ॥ १७ ॥
 तथैव भीमसेनस्य द्विपताऽभिहता गदा ।
 वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवाऽऽवभौ ॥ १८ ॥
 गदा क्षिप्ता तु समरे मद्राजेन भारत ।
 व्योम दीपयमाना सा ससृजे पावकं मुहुः ॥ १९ ॥
 तथैव भीमसेनेन द्विपते प्रेषिता गदा ।
 तापयामास तत्सैन्यं महोल्का पतती यथा ॥ २० ॥
 ते गदे गदिनां श्रेष्ठे समासाद्य परस्परम् ।
 श्वसन्त्यो नागकन्येव ससृजाते विभावसुम् ॥ २१ ॥
 नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ ।
 तौ विचेरतुरासाद्य गदान्याभ्यां परस्परम् ॥ २२ ॥

के चञ्चने पर प्रज्वलित हो उठा । उपर विभाग के
 अनुसार मण्डलाकार से घूमकर पैतरा काटते हुए
 शल्य की विशाल गदा भीमसेन के वज्रतुल्य कठोर
 अंगों से लगकर बिजली की तरह चमकने लगे ॥ ११ ।
 १४॥ वे दोनों थीर दो बड़े सोंबों की तरह, घूमनी
 हुई गदाओं के ही सींग से शांभिन होकर, गरजते
 हुए मण्डलाकार गति से घूमने लगे । दोनों थीर समान
 रूप से पैतरे बदलते आर गदा-युद्ध का कांशल दिखाते
 हुए प्रहार कर रहे थे ॥ १५ ॥ १६॥ शल्य की भारी गदा
 भीमसेन की गदा पर पड़कर भयानक अग्नि उगलती
 हुई तन्नाल टूट गई । भीमसेन की गदा भी शल्य
 की गदा पर पड़कर, वस्त्रात के सन्ध्याकाल में जुग-

नुओं से शोभित वृक्ष की तरह, चिनगारियों से शोभाय-
 मान हुई । अरु मद्राज शल्य ने दूसरी गदा चलाई ।
 उस गदा से बारम्बार प्रहार के समय अग्नि की ज्वालाएँ
 निकल रही थीं, जिनसे आकाशमण्डल प्रकाशित हो
 उठता था ॥ १७ ॥ १८॥ शत्रु के ऊपर चलाई गई भीम-
 सेन की गदा भी, भारी उल्कापिण्ड के समान, प्रज्व-
 लित होकर शल्य की सेना को सन्ताप और भय से
 विह्वल बनाने लगी । वे दोनों गदाएँ परस्पर टकराकर
 पुष्पकारती हुई नागकन्याओं के समान अग्नि उगल
 रही थीं ॥ १९ ॥ २०॥ जैसे दो बड़े बाघ नगों से, या
 महागजराज दोंतों से, परस्पर भिड़कर आक्रमण करने
 हो वैसे ही मद्राज शल्य और भीमसेन गदाओं से

ततो गदाग्न्याभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
 ददृशाते महारमानौ किंशुकाविव पुष्पितौ ॥ २३ ॥
 शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
 गदाभिघातसंहादः शक्राशनिरवोपमः ॥ २४ ॥
 गदया मद्वराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
 नाऽकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाऽचलः ॥ २५ ॥
 तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः ।
 धैर्यान्मद्राधिपस्तस्यौ वज्रैर्गिरिस्त्रिाऽहतः ॥ २६ ॥
 आपेततुर्महावेगौ समुच्छिन्नगदाबुधौ ।
 पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७ ॥
 अथाऽऽसृत्य पदान्यष्टौ सन्निपत्य गजाविव ।
 सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २८ ॥
 तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशहतौ ।
 युगपपेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥ २९ ॥
 ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
 शल्यमभ्यपतत्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३० ॥
 दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाऽभिनिपीडितम् ।
 विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्च्छयाऽभिपरिभुतम् ॥ ३१ ॥
 ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे ।
 अपोवाह रणात्तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३२ ॥

परस्पर आक्रमण करते हुए युद्धभूमि में विचरने लगे । वलवाले दोनों वीर भारी गदाएँ उठाकर एक दूसरे
 अब क्षण भर में ही भीमसेन और शल्य दोनों, दारुण पर चोट कर रहे थे और मण्डलाकार घुमकर, अन्तर-
 गदा-प्रहार से निकलनेवाले रक्त से लिप्त होकर फूले मार्ग में रहकर, फिर मण्डलाकार गति से विचरण
 हुए दाक के वृक्ष के समान शोभित हुए । उन दोनों करते थे ॥ २५ ॥ २६ ॥ एक भी आठ पग जाकर एकाएक
 पुरुषसिंहों के मयानक गदा-प्रहार से वज्रपात के समान उछलकर दोनों, दोनों को नष्ट करने के विचार से, एक
 मयानक शब्द उठकर सब दिशाओं में व्याप्त हो दूसरे पर लड़े की भारी गदाओं की चोट करते थे ।
 गया ॥ २२ ॥ २४ ॥ जैसे पर्वत फट जाने पर भी कम्पित इस तरह बारम्बार वेग के साथ दौड़ने में और गदाओं
 नहीं होता, वैसे ही दाहने और बायें अङ्गों में बार- की चोटों से घायल होकर दोनों वीर, इन्द्र की ध्वजा
 म्यार शल्य के गदा मारने पर भीमसेन तनिक भी के समान, मुच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ २८ ॥ ३० ॥
 विचलित नहीं हुए, और मद्वराज भी भीमसेन की इधर महारथी कृतवर्मा गदा-प्रहार से पीडित, निश्चेष्ट,
 गदा की चोटों खाकर वज्राहत पर्वत के समान धैर्य नाग के समान मूर्च्छा में पड़े हुए शल्य को विह्वल
 धारण किये खड़े रहे । बड़ी गजराज के समान तुल्य भाव से बारम्बार श्वास लेते देखकर बड़ी स्फूर्ति से

क्षीववद्विह्वलो वीरो निमेषात्पुनरुत्थितः ।
 भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥ ३३ ॥
 ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम् ।
 सनागपत्न्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष ॥ ३४ ॥
 ते पाण्डवैरर्थमानास्तावका जितकाशिभिः ।
 भीता दिशोऽन्वपद्यन्त वातनुन्ना घना इव ॥ ३५ ॥
 निर्जित्य धार्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः ।
 व्यरोचन्त रणे राजन्दीप्यमाना इवाऽग्नयः ॥ ३६ ॥
 सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च हर्षिताः ।
 भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चाऽऽनकैः सह ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि शल्यापयाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

उनके पास गये और शीघ्र ही उन्हें उठाकर १५ पर
 बिठाकर युद्धभूमि से हट गये । मैंने देखा कि मत-
 वाले के समान विह्वल वीर्यशाली भीमसेन क्षण भर
 में संचेत होकर उठ खड़े हुए । शल्य को समर से
 विमुख देखकर आपके पुत्रगण चतुरङ्गिणी सेना सहित
 भय से काँपने लगे । विजयशाली पाण्डवों के द्वारा
 पीड़ित कौरवगण, शङ्का से व्याकुल होकर, आँधी
 के भगाये भेड़ों के समान चारों ओर भागने लगे

॥३१॥३५॥हे महाराज ! महारथी पाण्डवगण इस
 प्रकार आपकी सेना को हराकर प्रवृत्त अग्नि के
 समान अपने तेज से शोभायमान हुए । पाण्डव पक्ष
 की सेना में चारों ओर वीर लोग प्रसन्नचित्त हो ऊँचे
 स्वर से सिंहनाद और जयनाद करने लगे; शङ्खघनियाँ
 होने लगीं तथा तुरही, डङ्के, मृदङ्ग आदि बाजे बजने
 लगे॥३६॥३७॥

—०—

द्रोणपर्व का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

राज्ञय उवाच - तद्वलं सुमहद्दीर्घं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान् ।
 दधारैको रणे राजन्वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥ १ ॥
 शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे ।
 विचेरुस्ते विनिर्भिय नरवाजिरथद्विपान् ॥ २ ॥
 तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चरुः सहस्रशः ।
 भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः ॥ ३ ॥

सौलहर्षो अध्यायः ॥ १६ ॥

सन्नय कहते हैं — हे राजेन्द्र ! पराक्रमी वृषसेन
 ने अपनी सेना को इस प्रकार जब भागते देखा तब
 वे युद्धभूमि में अकेले ही अपनी अपूर्व अलविद्या के

कीशाल से कौरव-सेना की रक्षा करने लगे । युद्ध
 में वृषसेन ने अनेक प्रकार के अमर्य बाण चलाये ।
 वे बाण पाण्डवों की सेना के हाथी, घोड़े, पैदल,

तेनाऽर्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा ।	
निपेतुरुर्व्या सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ ४ ॥	
हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः ।	
अपातयद्रणे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥	
दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत् ।	
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६ ॥	
नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात् ।	
विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ७ ॥	
तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्वा केतुमपातयत् ।	
तं भ्रातरं परीप्सन्तो द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥ ८ ॥	
कर्णात्मजं शरत्रातैरदृश्यं चक्रुरञ्जसा ।	
तान्नदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥ ९ ॥	
छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान्महारथान् ।	
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वताञ्जलदा इव ॥ १० ॥	
तान्पाण्डवाः प्रत्यगृह्णन्स्वरिताः पुत्रयुद्धिनः ।	
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः ॥ ११ ॥	
तद्युद्धमभवद्दोरं सुमहल्लोमहर्षणम् ।	
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥ १२ ॥	
एवं युयुधिरे वीराः संरब्धाः कुरुपाण्डवाः ।	
परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतापसः ॥ १३ ॥	

रथी आदि को छेदकर इधर-उधर गिरने लगे । हे महाराज ! उनके प्रज्वलित सहस्रों तीक्ष्ण बाण ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की किरणों के समान सब ओर फैलकर रथियों और सवारों को अत्यन्त पीड़ित करके, आँधी के उलाड़े वृक्षों की तरह, एकएक पृथ्वील पर गिराने लगे । महारथी वृषसेन अगणित घोड़ों, रथों और हाथियों को गिराते हुए रणभूमि में विचरने लगे । युद्ध के मैदान में वृषसेन को, अकेले, निर्भय भाव से घूमते देखकर, सब राजाओं ने मिलकर चारों ओर से घेर लिया ॥ १॥ ६॥ इसी समय नकुल के पुत्र भी शतानीक ने वृषसेन को मर्मभेदी दस नाराच बाण मारे । इसके पश्चात् कर्ण के पुत्र वृषसेन ने भी

शतानीक के धनुष आर रथ की ध्वजा की काट डाला । द्रौपदी के पुत्रों ने भाई की यह दशा देखी तो वे उनके समीप जाने के लिए वृषसेन की ओर दौड़े । उन्होंने बहुत से बाणों से वृषसेन को छिपा दिया । हे राजेन्द्र ! मेघ जैसे जल बरसाकर उससे पर्वत को ढक देते हैं वैसे ही अश्वत्थामा आदि वीर-गण वृषसेन को पीड़ित करनेवाले द्रौपदी के पुत्रों को अपने बाणों से अदृश्य करते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ७॥ १०॥ पूर्व समय में दानवों के साथ देवताओं का जैसा भयानक सग्राम हुआ था वैसा ही लोम-हर्षण रण कौरवों और पाण्डवों से होने लगा । पाण्डव, पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और सृञ्जयगण शत्रु ताने हुए

तेषां ददृशिरे कोपाद्वृण्यमिततेजसाम् ।
 युयुत्सूनामिवाऽऽकाशे पतत्रिवरभोगिनाम् ॥ १४ ॥
 भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्पतसात्यकैः ।
 वभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः ॥ १५ ॥
 तदासीत्तुमुलं युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ।
 महावलानां बलिभिर्दानवानां यथा सुरैः ॥ १६ ॥
 ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धृताण्वनिःखनम् ।
 त्वदीयमवधीत्सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम् ॥ १७ ॥
 तत्प्रभञ्जं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम् ।
 अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत ॥ १८ ॥
 ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विषः ।
 प्रविश्य पाण्डवानां युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ १९ ॥
 तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कङ्कपत्रैर्युधिष्ठिरः ।
 तस्य द्रोणो धनुश्छित्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत् ॥ २० ॥
 चक्ररश्मिः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः ।
 दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥ २१ ॥
 द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम् ।
 सिंहनादरवो ह्यार्सात्साधुसाध्विति भाषितम् ॥ २२ ॥
 कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे ।
 विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन्मुहुः ॥ २३ ॥

कारवरीश की मारने के लिए दाढ़ । एक दूसरे के
 अपराधी कौरव और पाण्डवगण, विजय की इच्छा से,
 एक दूसरे की शूर दृष्टि में देखते हुए घोरतर युद्ध
 करने लगे । वे सब क्रुद्ध योद्धा आकाश में युद्ध करने
 के लिए उद्यत पक्षियों के राजा गरुड़ और नाग के
 समान जान पड़ते थे । भीम कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणा-
 चार्य, अश्वपामा, शृष्ट्यन्त्र, सायक आदि दोनों
 ओर के वीरों के बाहुबल के प्रभाव से समग्रभूमि
 प्रलयकाल के उदय हुए सूर्य के समान प्रदीप्त हो
 उठी । देवासुर सन्ध्या के समान परस्पर ग्रहार करते
 हुए महापल्लवाली वीरगण घोरतम सन्ध्या करने लगे
 ॥ १११६ ॥ कुछ ही समय में कौरवपक्ष के वीर भाग

गड़े हुए और युधिष्ठिर की सेना क्रुद्ध-मेना की तरह
 करने लगी । शत्रुओं के द्वारा कौरव सेना को पीड़ित,
 भागने और क्षत विक्षत होते देखकर द्रोणाचार्य उसे
 दाढ़स बंधाते हुए कहने लगे कि हे शूरवीर ! तुम
 भागो नहीं । अब लाल रक्त के घोड़ोंगले रूप पर
 बैठे द्रोणाचार्य ने, चार दौनोंगले गजराज की तरह,
 पाण्डव-सेना में प्रवेश करके युधिष्ठिर पर आक्रमण
 किया ॥ १७॥ १८ ॥ युधिष्ठिर भी कङ्कपत्रगोभिन अनेक
 प्रकार के तीक्ष्ण बाण आचार्य को मारने लगे । आचार्य
 बड़ी छुट्टि के साथ उनका धनुष काटकर उनकी
 ओर झपटे । जैसे नटभूमि सागर के वेग को रोकती है
 वैसे ही पाण्डवों के यश को बढ़ाने वाले कुमार ने, जो

सवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः ।
 शरैरेनेकसाहसैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥ २४ ॥
 तं शूरमार्यव्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम् ।
 चक्ररक्षं परामृद्वात्कुमारं द्विजपुङ्गवः ॥ २५ ॥
 स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
 तव सैन्यस्य गोसाऽऽसीन्द्रारद्वाजो द्विजर्षभः ॥ २६ ॥
 शिखण्डिनं द्वादशभिर्विशत्या चोत्तमौजसम् ।
 नकुलं पञ्चभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २७ ॥
 युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
 सात्यकिं पञ्चभिर्विध्वा मत्स्यं च दशभिः शरैः ॥ २८ ॥
 व्यक्षोभयद्रणे योधान्यथामुख्यमभिद्रवन् ।
 अभ्यवर्त्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ २९ ॥
 युगन्धरस्ततो राजन्भारद्वाजं महारथम् ।
 वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धतमिवाऽण्वम् ॥ ३० ॥
 युधिष्ठिरं स विध्वा तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 युगन्धरं तु भस्मेन रथनीडादपातयत् ॥ ३१ ॥
 ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिविः ।
 व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
 एते चाऽन्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् ।
 आवद्भुस्तस्य यन्थानं किरन्तः सायकान्वहून् ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर के रथ-चक्र की रक्षा कर रहे थे, द्रोणाचार्य को
 रोक दिया । इस प्रकार कुमार के द्वारा द्रोणाचार्य को
 रोके जाते देखकर सब योद्धा सिंहनाद करते हुए
 कुमार को साधुवाद से सम्मानित करने लगे । महा-
 वीर कुमार ने अत्यन्त कुपित होकर आचार्य की
 छाती में एक बाण मारा । निरन्तर कई सहस्र बाणों
 से द्रोणाचार्य को हटा करके कुमार बारम्बार सिंह-
 नाद करने लगे ॥ २० ॥ २४ ॥ कौरव-सेना के रक्षक
 द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने कुर्नीले, संप्राममैन थकनेवाले,
 मन्त्रविद्या और अस्त्रविद्या में निपुण, आर्यव्रती, चक्र-
 रक्षक कुमार को परास्त करके पाण्डव-सेना के भीतर
 प्रवेशकर अर्पू रणकौशल दिखाना आरम्भ किया ।

द्रोण ने बारह बाण शिखण्डों को, बीस बाण उत्त-
 मौजा को, पाँच बाण नकुल को, सात बाण सहदेव
 को, बारह बाण युधिष्ठिर को, तीन-तीन बाण द्रौपदी
 के पुत्रों को, पाँच बाण सात्यकि को और दस बाण
 राजा विराट को मारे । यों प्रधानता के अनुसार हर
 एक योद्धा को प्रहार से पीड़ित और विह्वल करत
 हुए द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए आगे
 बढ़े । तब आँधी से उमड़ते हुए और क्षोभ को प्राप्त
 समुद्र के समान चले आते क्रुद्ध वीर द्रोणाचार्य को
 रोकने के लिए महारथी युगन्धर आगे बढ़े । द्रोणाचार्य
 ने अनेक तीक्ष्ण बाणों से युधिष्ठिर को पीड़ित करके
 एक भट्ट बाण मारकर युगन्धर को रथ से गिरा दिया ।

व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः ।

पञ्चाशता शितै राजंस्तत उच्चुकुशुर्जनाः ॥ ३४ ॥

त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विध्वा महारथम् ।

प्राहसत्सहसा हृष्टस्त्रासयन्त्रै महारथान् ॥ ३५ ॥

ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च ।

तलशब्दं महत्कृत्वा द्रोणस्तं समुपाडवत् ॥ ३६ ॥

ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात्सकुण्डलम् ।

व्याघ्रदत्तस्य चाऽऽक्रम्य भ्रष्टाभ्यामहरद्वली ॥ ३७ ॥

तान्प्रमृज्य शरघातैः पाण्डवानां महारथान् ।

युधिष्ठिररथाभ्याशे तस्यो मृत्युरिवाऽन्तकः ॥ ३८ ॥

ततोऽभवेन्महाशब्दो राजन्यौधिष्ठिरे बले ।

हनो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३९ ॥

अब्रुवन्तैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् ।

अथ राजा धार्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति ॥ ४० ॥

अस्मिन्मुहूर्ते द्रोणस्तु पाण्डवं गृह्य हर्षितः ।

आगमिष्यति नो नूनं धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ४१ ॥

एवं सञ्जल्पतां तेषां तावकानां महारथः ।

आयाज्यवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ॥ ४२ ॥

शोणितोदां रथावतां कृत्वा विशसन् नदीम् ।

शूरास्थिचयसङ्कीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ॥ ४३ ॥

॥ ३५ ॥ ३१ ॥ अत्र कनेय, निराट, सात्विक, वृषद, शिवि, पाञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्त, महात्रयी सिंहसेन और अ अन्य महारथीगण युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए अनेक प्रकार के बाण बरसाते हुए द्रोणाचार्य की राह रोक कर खड़े हो गये । पाञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्त ने स्फूर्ति का साथ द्रोणाचार्य की पंचाम तीक्ष्ण बाण मार । इस अद्भुत कर्म को देखकर लग हाहाकार करने लगे । उसाहपूर्ण प्रसन्नचित्त सिंहसेन भी अन्य शिरा की भयविह्वल करते हुए द्रोणाचार्य की कई बाण मारकर हमने लगे । महाबली द्रोणाचार्य क्रोध में नेत्र फाड़कर, धनुष की टोरी को रगड़ करत हुए, तल-शब्द के साथ आगे बढ़े । आचार्य ने दो मल्ल वज्रो ने सिंह-

सेन और व्याघ्रदत्त के कुण्डल मूवित मिर काटकर धुंरी पर गिरा दिया ॥ ३२ ॥ ३७ ॥ अत्र प्रसार पाण्डवपक्ष के तीरों का नष्ट करते हुए साक्षात् यमराज के समान द्रोणाचार्य महाराज युधिष्ठिर के रथ के पास पहुँचे । यत्रत अजेय द्रोणाचार्य का युधिष्ठिर के पास पहुँचेत देखकर पाण्डव भेना क मय महाकीटाहल उठा कि महाराज युधिष्ठिर पकड़े गये । हे राजेन्द्र ! आप की भेना के लोग आचार्य का पराक्रम देखकर रहने लगे कि आज राजा दुर्योधन विजयी होकर वृत्रार्थ होगा हममें मन्देह नहीं । नि द्रोणाचार्य क्षण भर में ही युधिष्ठिर को पकड़कर प्रसन्नपूर्वक हमारे और महाराज दुर्योधन के समीप ले आयेगा ॥ ३८ ॥ ४१ ॥ महाराज ! आपने

तां शरौघमहाफेनां प्राप्तमत्स्यसमाकुलाम् ।
 नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरुन्विद्राव्य पाण्डवः ॥ ४४ ॥
 ततः किरीटी सहता द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
 छादयन्निपुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४५ ॥
 शीघ्रमभ्यस्यतो वाणान्सन्दधानस्य चाऽनिशम् ।
 नाऽन्तरं ददृशे कश्चित्कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४६ ॥
 न दिशो नाऽन्तरिक्षं च न द्यौर्नैव च मेदिनी ।
 अदृश्यन्त महाराज बाणभृता इवाऽभवन् ॥ ४७ ॥
 नाऽदृश्यत तदा राजस्तत्र किञ्चन संयुगे ।
 बाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥ ४८ ॥
 सूर्ये चाऽस्तमनुप्राप्ते तमसा चाऽभिसंवृते ।
 नाऽज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ ४९ ॥
 ततोऽब्रुवार् चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः ।
 तान्विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान् ॥ ५० ॥
 स्वान्यनीकानि वीभत्सुः शनकैरवहारयत् ।
 ततोऽभितुष्टुवुः पार्थ प्रहृष्टाः पाण्डुसृजयाः ॥ ५१ ॥
 पञ्चालाश्च मनोज्ञाभिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः ।
 एवं स्वशिखिरं प्रायोजित्वा शत्रून्धनञ्जयः ॥ ५२ ॥

सैनिक इस प्रकार काँह ही रहे थे कि महावीर अर्जुन
 रथ के शब्द से सब दिशाओं को कम्पायमान और
 कौरव-सेना को पीड़ित करते हुए बड़े वेग से उस
 स्थान पर आ पहुँचे जहाँ द्रोणाचार्य थे । अर्जुन ने
 युद्धभूमि में रक्त की महानदी बहा दी थी । उस नदी
 में जल की जगह रक्त था, बड़े-बड़े रथ भँवर से
 पड़ते दिखाई दे रहे थे । शत्रु के शरीर और हाड़
 उस नदी को और भी भयानक बना रहे थे । प्रेत-
 भूत आदि उसके किनारों पर भरे पड़े थे । बाण
 उसमें-फेने से जान पड़ते थे और बहते हुए प्राप्त
 आदि शस्त्र मछली आदि जीव-जन्तुओं के समान देख
 पड़ते थे । महावीर अर्जुन वेग से उस नदी को लौघ-
 कर एकाएक द्रोणाचार्य के समीप पहुँच गये । महा-
 रथी अर्जुन ने द्रोणाचार्य की सेना को अपने युद्ध,
 कौशल से मोहित और बाणवर्षा से विह्वल करके उन

पर घोर आक्रमण किया ॥ ४२ ॥ ४५ ॥ महापराक्रमी अर्जुन
 इस स्थिति के साथ धनुष पर बाण चढ़ाते और छोड़ते
 थे कि किसी को यह नहीं देख पड़ता था कि वे
 कब बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं और
 कब छोड़ते हैं । उनके धनुष से निरन्तर बाणों की
 वर्षा सी हो रही थी । अर्जुन के चलाये हुए अग-
 णित बाणों से रणभूमि में चारों ओर अँधेरा छा गया—
 पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश कुछ भी नहीं सूझ
 पड़ता था । सर्वत्र बाण ही बाण देख पड़ते थे ।
 धूल के उड़ने से वह अँधेरा और भी घना हो गया ।
 ऊपर सूर्य भी अस्ताचल पर पहुँच गये । उस समय
 यह नहीं जान पड़ता था कि कौन शत्रु है, कौन
 मित्र है, कौन अपने पक्ष का है और कौन दूसरे पक्ष
 का है ॥ ४६ ॥ ४९ ॥ तब द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदि
 ने युद्ध बन्द कर दिया । अर्जुन ने भी शत्रुपक्ष को

पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै स केशवः ॥ ५३ ॥

मसारगल्वर्कसुवर्णरूपैर्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः ।

चित्रे रथे पाण्डुसुतो वभासे नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि प्रथमदिनसातहोरे षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

भयविह्वल और युद्ध से विमुख देखकर अपनी सेना को शिविर की ओर लौटने की आज्ञा दी । हे महाराज ! जैसे मुनि लोग सूर्यदेव की स्तुति किया करते हैं वैसे ही पाण्डव, सृञ्जय और पाञ्चालगण प्रसन्न होकर अर्जुन की प्रशंसा करने लगे । इस प्रकार शत्रुओं को परास्त करके कृष्ण सहित अर्जुन प्रसन्नता

पूर्वक अपने डेर को छोटे । सब योद्धाओं के पाँछे अर्जुन का रथ चला । हारे, नीलम, पुखराज, पन्ने, मूंग, मोती, मानिक, विछोर आदि रत्नों और सुवर्ण से भूषित रथ पर बैठे हुए अर्जुन नक्षत्रों से शोभित आकाशमण्डल में पूर्ण चन्द्रमा के समान शोभायमान हुए ॥ ५०।५४ ॥

द्रोणपर्व का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच— ते सेने शिविरं गत्वा न्यविशेतां विशाम्पते ।

यथाभागं यथान्वायं यथागुलमं च सर्वशः ॥ १ ॥

कृत्वाऽबहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः ।

दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सत्रीडमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनञ्जये ।

शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

इति तद्वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे ।

मा विशङ्कीर्ष्यो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥

अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने ।

तत एष्यति ते राजन्वशमेव युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु ।

तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथञ्चन ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप ।

ग्रहीष्यामि चर्मं भित्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ७ ॥

सत्रहवाँ अध्याय ॥ १७ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों में जाकर अपने-अपने स्थान पर विश्राम करने लगीं । महारथी द्रोणाचार्य ने शिविर में पहुँचकर बहुत ही व्याकुल और

लजित होकर राजा दुर्योधन की ओर देखकर कहा— हे राजेन्द्र ! मैंने पहले ही तुमसे कह दिया था कि अर्जुन के सम्मुख युद्ध में दैत्यगण भी राजा युधिष्ठिर को नहीं पराजित सकते । तुम लोगों ने युधिष्ठिर के

अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् ।
 मामुपायान्तमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम् ॥ ८ ॥
 एवं तेऽहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
 समानेष्यामि सगणं वशमथ न संशयः ॥ ९ ॥
 यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्त्तमपि पाण्डवः ।
 अथाऽपयाति संग्रामाद्विजयात्तद्विशिष्यते ॥ १० ॥
 सञ्जय उवाच - द्रोणस्य तद्वचः श्रुत्वा त्रिगर्त्ताधिपतिस्तदा ।
 भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥
 वयं विनिकृता राजन्सह गाण्डीवधन्वना ।
 अनागःस्वपि चाऽऽगस्तत्कृतमस्मासु तेन वै ॥ १२ ॥
 ते वयं स्मरमाणास्तान्त्रिनिकारान्पृथग्विधान् ।
 क्रोधान्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशि ॥ १३ ॥
 स नो दिष्टयाऽस्त्रसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः ।
 कर्तारः स्म वयं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् ॥ १४ ॥
 भवतश्च प्रियं यत्स्यादस्माकं च यशस्करम् ।
 वयमेनं हनिष्यामो निकृष्याऽयोधनाद्वहिः ॥ १५ ॥
 अद्याऽऽस्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्त्ताऽथवा पुनः ।
 सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या च भविष्यति ॥ १६ ॥
 एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत ।
 सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥ १७ ॥

पकड़ने का बड़ा यत्न किया, परन्तु सफलता नहीं प्राप्त कर सके। अर्जुन ने युधिष्ठिर को बचा लिया। तुम मेरी बात सत्य मानो। श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता। अतएव किसी उपाय से अर्जुन को रणभूमि से दूर हटा ले जाओ, तो युधिष्ठिर को मैं कल पकड़कर तुम्हारे समीप ले आऊँगा। इसका उपाय यही है कि कोई योद्धा अर्जुन को युद्ध करने के लिए लड़कार कर दूर हटा ले जाय। अर्जुन अत्यन्त उससे युद्ध करने को जायँगे, और उससे युद्ध में जीते बिना कभी न लटेंगे। मैं इसी मन्थ में अस्तर पारर धृष्टद्युम्न के सम्मुख ही, पाण्डव सेना के भीतर प्रवेश होकर, युधिष्ठिर को पकड़ लाऊँगा।

अर्जुन की अनुपस्थिति में युधिष्ठिर यदि मुझे देखकर भय से भाग न खड़े हुए तो मैं उनको अवश्य पकड़ लाऊँगा। यदि युधिष्ठिर सप्राप्त मे क्षण भर भी ठहर गये तो मैं उन्हें और उनके साथियों को पकड़कर तुम्हारे समीप ले आऊँगा, अथवा जो वे युद्ध से भाग खड़े हुए तो वह भी विजय से बढ़कर है॥११॥ सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य के ये वचन सुन कर त्रिपतिदेश के राजा सुशर्मा ने, अपने भाइयों के साथ, खड़े होकर दुर्योधन से कहा—हे महाराज ! अर्जुन ने कई बार हमें परास्त किया है, हम पर चढ़ाई की है। हम लोगों ने उनका कोई अपराध नहीं किया, अर्जुन ही अनारण हम पर आक्रमण

सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च ।
 न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥ १८ ॥
 मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
 सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ॥ १९ ॥
 मावेह्यकैर्ललितैश्च सहितो मद्रकैरपि ।
 रथानामयुतेनैव सोऽगमद्भ्रातृभिः सह ॥ २० ॥
 नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः ।
 समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् ॥ २१ ॥
 ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक् ।
 जग्दुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च ॥ २२ ॥
 ते च वद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः ।
 मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः ॥ २३ ॥
 यज्वानः पुत्रिणो लोभ्याः कृतकृत्यास्तनुत्यजः ।
 योक्ष्यमाणास्तदाऽऽत्मानं यशसा विजयेन च ॥ २४ ॥
 ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः कतुभिश्चाऽऽतदक्षिणैः ।
 प्राप्याल्लोकान्सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥ २५ ॥
 ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान्दत्वा पृथक्पृथक् ।
 गाश्च वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्परम् ॥ २६ ॥
 प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणव्रतम् ।
 तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥ २७ ॥

करने के कारण अपराधी हैं । उन अपनी पराजयों को स्मरण करके हम सदा क्रोध की अग्नि में भीतर ही भीतर जला करते हैं, यहाँ तक कि उसी ही व्याकुलता के मारे रात्रि को हम सुख की निद्रा नहीं सो सकते ॥ १११२ ॥ भाग्यशर ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ है कि वही अर्जुन अस्त्र-शस्त्र धारण किये रणभूमि में हमारे सम्मुख उपरिष्ठ है । आज हम अपनी इच्छा के अनुसार ऐसा कार्य करेंगे जिससे आपका कल्याण होगा और हम भी यश प्राप्त होना । हम अर्जुन को युद्ध के लिए उत्सुक कर रण-भूमि के बाहर ले जायेंगे और वहाँ उनको मार डालेंगे । आज पृथ्वी पर या तो अर्जुन नहीं रहेंगे, और या त्रिगर्त (हम

लोग) नहीं रहेंगे । हम लोग यह प्रतिज्ञा करते हैं ॥ १४१६ ॥ स्थल के अधिपति त्रिगर्तेन्द्रा सुशर्मा ने अपने पाँचों भाइयों — सत्यवर्मा, समरप, सत्यव्रत, सत्येय और सन्यकर्मा — के साथ दस सहस्र रथों सहित युद्ध की सौमन्ध ली । सुशर्मा के साथ मावेह्यक, ललित्य, मद्रकगण, मालव, तुण्डिकेरागण और अनेक जनपदों (देशों) से आये हुए विशेष-विशेष दस महस्र रथों भी युद्ध की सौमन्ध लेने के लिए उद्यत हुए ॥ १७१२ ॥ अनन्तर मगधियों ने हवन के लिए पृथक्-पृथक् वेदियों पर अग्नि को स्थावर स्थापित किया । इसने पथात्सव योद्धा कुदा-चीर और विचित्र कवच धारण करने लगे । घृतस्नान, मौर्वी मेखत्र

शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो वभाषिरे ।
 सर्वे धनञ्जयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥ २८ ॥
 ये वै लोकाश्चाऽवतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनाम् ।
 मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥ २९ ॥
 ब्रह्मखहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः ।
 शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः ॥ ३० ॥
 अगारदाहिनां चैव ये च गां निघ्नतामपि ।
 अपकारिणां च ये लोका ये च ब्रह्माद्विपामपि ॥ ३१ ॥
 स्वभार्याभृतुकालेषु मोहाद्वै नाऽभिगच्छताम् ।
 श्राद्धमैधुनिकानां च ये चाऽप्यात्मापहारिणाम् ॥ ३२ ॥
 न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये ।
 क्लीबेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम् ॥ ३३ ॥
 नास्तिकानां च ये लोका येऽग्निमातृपितृव्यजाम् ।
 तानामुयामहे लोकान्ये च पापकृतामपि ॥ ३४ ॥
 यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्त्तेम धनञ्जयम् ।
 तेन चाऽभ्यर्दितास्त्रासाद्भवेम हि पराङ्मुखा ॥ ३५ ॥
 यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
 इष्टाँल्लोकान्प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ॥ ३६ ॥
 एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे ।
 आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति ॥ ३७ ॥

आदि से अलङ्कृत, कुश-चीर और कमच धारण किये
 कृतकृत्य, जीवन के मोह को छोड़कर पवित्र होकर,
 यश और विजय की इच्छा रखनेवाले, पुत्रसम्पन्न,
 यजमान, वीर महारथीगण रथ में गरीर त्यागकर—
 ब्रह्मचर्य वेदपाठ आदि प्रधान कर्मगले बटुदक्षिणायुक्त
 यज्ञों से मिलनेगले लोकों को—शीघ्र ही पहुँच जाने
 की इच्छा से हवन, ब्राह्मण भोजन आदि श्रेष्ठ कर्म
 करने लगे । उन्होंने पृथक् पृथक् भोजन कराकर,
 गऊ सुवर्ण वस्त्र दक्षिणा आदि देकर, ब्राह्मणों को सुस्तुष्ट
 किया । फिर परस्पर सम्भाषण और समरत्रत धारण
 करके, अग्नि जलकर दृढ़ निश्चय के साथ, सब
 लोगों को सुनाकर उन्होंने ऊँचे स्वर से अर्जुन को

मारने के लिए प्रतिज्ञा की॥२२।२८॥ने अग्नि को
 छुकर, साक्षी बनाकर, रहने लगे—“हे नरपतिवो ।
 अर्जुन को मारे बिना यदि हम युद्ध से लौटें, अथवा
 अर्जुन से भयभीत होकर युद्ध से भाग जायें तो उन्हीं
 निकृष्ट लोकों को जायें जहाँ मिथ्यावादी, मदिरा पीने-
 वाले, ब्रह्महत्या करनेवाले, गुरुकी गाम्भी, ब्राह्मण के धन
 और राजपिण्ड को हरनेगले, किसी की धरोहर हजम
 कर जानेगले, शरणागत को त्यागनेगले और दीन
 गणी कहते हुए को मारनेवाले पातकी जाते हैं । जो
 हम अर्जुन के सम्मुख से हटें तो उन्हीं निकृष्ट लोकों
 को जायें जहाँ शास्त्रविहित मार्ग को छोड़कर कुमार्ग
 पर चलनेगले, नास्तिक, किसी के घर में अग्नि लगा

आहूतस्तेर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरञ्जयः ।
 धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
 आहूतो न निवर्त्तयामिति मे व्रतमाहितम् ।
 संशतकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ॥ ३९ ॥
 एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयते रणे ।
 वधाय सगणस्याऽस्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥
 नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ ।
 सत्यं ते प्रतिजानामि हतान्विद्धि परान्युधि ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच—श्रुतं ते तत्त्वतस्तात यद् द्रोणस्य चिकीर्षितम् ।
 यथा तदनृतं तस्य भवेत्तत्त्वं समाचर ॥ ४२ ॥
 द्रोणो हि बलवाञ्छूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः ।
 प्रतिज्ञातं च तेनैतद्ग्रहणं मे महारथ ॥ ४३ ॥

अर्जुन उवाच—अयं वै सत्यजिद्राजद्रथ त्वां रक्षिता युधि ।
 ध्रियमाणे च पाञ्चाल्येनाऽऽचार्यः काममाप्स्यति ॥ ४४ ॥
 हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो ।
 सर्वैरपि समेतैर्वा न स्यातव्यं कथञ्चन ॥ ४५ ॥

सञ्जय उवाच—अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः ।
 प्रेम्णा हृष्टश्च बहुधा ह्याशिपश्चाऽस्य योजिताः ॥ ४६ ॥
 विहार्येनं ततः पार्थस्त्रिगर्त्तान्प्रत्ययाद्वली ।
 क्षुधितः क्षुद्धिघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥ ४७ ॥

देनेवाले, गोहत्या करनेवाले, अपकारी, ब्रह्मद्रोही, अग्नि और माता-पिता को छोड़ देनेवाले, मोहबश कृतकाल में अपनी पत्नी के समीप न रहनेवाले, ग्राह के दिन स्त्री-सङ्ग करनेवाले, नपुंसक से युद्ध करनेवाले तथा अन्य अनेक पातकी जाने हैं । यदि आज हम समर में अर्जुन-वधरूप दुष्कर कर्म कर सकेंगे तो अवश्य उत्तम इष्ट लोकों को पावेंगे । ॥१२९॥३६॥सुशर्मा आदि योद्धा इस प्रकार सौगन्ध खाकर युद्ध के लिए चले और दक्षिण दिशा की ओर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारते हुए समरभूमि में पहुँचे । उनका युद्ध के लिए ललकारना सुनकर अर्जुन ने कहा—हे धर्मराजजी ! मेरी यह प्रतिज्ञा है कि

यदि कोई युद्ध के लिए ललकारे तो मैं उससे अवश्य युद्ध करूँगा । इस समय ये सशतकगण युद्ध के लिए मुझे बुला रहे हैं । अतएव आप मुझे आज्ञा दीजिए जिससे मैं जाकर उन्हें उनके साथियों सहित नष्ट कर आऊँ । मैं उनके इस आह्वान को नहीं सह सकता । मैं आपके आगे प्रतिज्ञा करता हूँ कि उन्हें अवश्य ही मारूँगा ॥३७॥४१॥राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे पार्थ ! महारथी द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा का समाचार तुमसे छिग नहीं है, तुम सब सुन चुके हो । इस समय तुम बही करो जिसमें द्रोण की प्रतिज्ञा किसी प्रकार पूर्ण न होने पावे । अस्त्रविद्या में निपुण और युद्ध में न चरनेवाले द्रोणाचार्य बड़े पराक्रमी हैं । उन्होंने मुझे

ततो दुर्योधनं सैन्यं मुदा परमया युतम् ।

ऋतेऽर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ॥ ४८ ॥

ततोऽन्योन्येन ते सैन्यं समाजग्मतुरोजसा ।

गङ्गासरय्वौ वेगेन प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ४९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि मशसकवधपर्वणि धनञ्जययाने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पकड़कर दुर्योधन के पास ले जाने की प्रतिज्ञा की है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इस पर अर्जुन ने कहा—हे महाराज ! आज मैं सत्यजित् को आपकी रक्षा का भार सौंपता हूँ; वही आपकी रक्षा करेंगे। इनके जिते जी आचार्य अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकेंगे। यदि दैवयोग से सत्यजित् वीरगति को प्राप्त हो तो फिर अप लोग युद्धभूमि में कदापि न ठहरेंगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! यह सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने प्रीति-प्रफुल्ल नेत्रों से अर्जुन को देखकर

गन्ध से लगाया और बारम्बार आशीर्वाद देकर जाने की अनुमति दी। भूखा सिंह जैसे भूख मिटाने के लिए मृगों के झुण्ड की ओर झपटता है वैसे ही अर्जुन त्रिगर्त देश की मेना की ओर वेग से चले। इसी अस्सर में दुर्योधन के क्रुद्ध सैनिकगण अर्जुन-परि-त्यक्त युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े। अब दोनों ओर के योद्धा लोग वैसे ही महावेग से भिड़ गये जैसे वर्षाकाल में गङ्गा और सरयू वेग के साथ समुद्र में जा मिलती हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

द्रोणपर्व का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच—ततः संशप्तका राजन्समे देशे व्यवस्थिताः ।

व्यूह्याऽनीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः ॥ १ ॥

ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष ।

उदक्रोशन्नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा ॥ २ ॥

स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खं च समावृणोत् ।

आवृतत्वाच्च लोकस्य नाऽसीत्तत्र प्रतिस्वनः ॥ ३ ॥

सोऽतीव संप्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनञ्जयः ।

किञ्चिदभ्युत्समयन्कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

पर्येतान्देवकीमातर्मुमूर्षूनथ संयुगे ।

भ्रातृवैर्गर्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान् ॥ ५ ॥

अथवा हर्षकालोऽयं त्रैगर्तानामसंशयम् ।

कुनरैर्दुस्वापान्हि लोकान्प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६ ॥

अठारहवाँ अध्याय ॥ १८ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! उपर संशप्तक-गण समतल भूमि में ठहकर, प्रसन्नतापूर्वक रथों का अर्धचन्द्राकार मोर्चा बनाकर, अर्जुन को आते देख

हर्ष के साथ चिल्लाते और सिंहनाद करने लगे। वह शब्द चारों ओर और अन्तरिक्ष भर में भर गया। किन्तु चारों ओर मनुष्य ही मनुष्य देख पड़ते थे,

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः ।
 आससाद रणे व्यूहां त्रिगर्तानामनीकिनीम् ॥ ७ ॥
 स देवदत्तमादाय शङ्खं हेमपरिष्कृतम् ।
 दध्मौ वेगेन महता घोषेणाऽऽपूरयन्दिशः ॥ ८ ॥
 तेन शब्देन विव्रस्ता संशप्तकवरूथिनी ।
 विचेष्टाऽवस्थिता संख्ये ह्यश्मसारमयी यथा ॥ ९ ॥
 बाहास्तेषां विवृताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः ।
 विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरं च प्रसुप्तवुः ॥ १० ॥
 उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च बाहिनीम् ।
 युगपत्पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ॥ ११ ॥
 तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः ।
 अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाऽऽशु पराकमी ॥ १२ ॥
 ततोऽर्जुनं शितैर्वाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
 प्राविध्यन्त ततः पार्थस्तानविध्यत्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १३ ॥
 एकैकस्तु ततः पार्थ राजन्विव्याध पञ्चभिः ।
 स च तान्प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराकमी ॥ १४ ॥
 भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सहकेशवम् ।
 आपूरयञ्शरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः ॥ १५ ॥
 ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति ।
 भ्रमराणामिव घ्राताः फुल्लं द्रुमगणं वने ॥ १६ ॥

इस कारण उसकी प्रतिष्ठा नहीं हुई॥१३॥अर्जुन ने उनको अत्यन्त प्रसन्न देखकर कृष्णचन्द्र से मुसकरा-
 कर कहा—हे बाहुरे ! इन मले के लिए उद्यत त्रिगर्त देश के लोगों को देखिए । मैं लोग रदन करने के स्थान प्रसन्नता और हर्ष प्रकट कर रहे हैं । अथवा इसमें सन्देह नहीं कि ये यह समझकर हर्ष प्रकट कर रहे हैं कि बापुरुषों के लिए दृष्टाव्य उत्तम लोग उन्हें, युद्ध में मले से, प्राप्त होंगे॥१४॥अत्र त्रिगर्त लोगों की विशाल सेना के समीप पहुँचकर अर्जुन ने बड़े जोर से सुगन्धभूषित 'देवदत्त' शङ्ख बजाया, जिससे सब दिशाएँ प्रतिपन्नित हो उठीं । सशस्त्र-
 गण की सेना उस शङ्ख के भयानक शब्द को सुन-

कर अत्यन्त शक्ति और पत्थर की मूर्ति की तरह बेधारहित हो गई॥१५॥उनके घोड़े भय से नेत्र फाड़कर, कान गड़े करके, पाँव और गर्दन समेट-
 कर एक साथ रहक उगड़ने और मल-मूत्र त्याग करने लगे । कुछ समय के पश्चात् सशस्त्रगण होश में आये । उन्होंने अपनी सेना को मैमाल करके अर्जुन पर निरन्तर बाण वर्षमाना आरम्भ किया । अर्जुन ने मशक्तों के चलाये तीक्ष्ण सहस्रों बाणों को केवल पन्द्रह बाणों से राह में ही टुकड़े टुकड़े कर डाला ॥१६॥१७॥अत्र सशस्त्रों में से प्रत्येक ने अर्जुन को दस-दस बाण मारे । अर्जुन ने भी उनको तीन-तीन बाण मारे । अर्जुन की फिर उन्होंने पाँच-पाँच बाण

ततः सुबाहुस्त्रिशद्विरद्रिसारमयैः शरैः ।
 अविध्यदिपुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥ १७ ॥
 तैः किरीटी किरीटस्यैर्हैमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
 शातकुम्भमयापीडो वभौ सूर्य इवोत्थितः ॥ १८ ॥
 हस्तावापं सुबाहोस्तु भलेन युधि पाण्डवः ।
 चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥
 ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम् ।
 सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समार्पयत् ॥ २० ॥
 तांस्तु सर्वान्पृथग्वाणैर्वातरप्रवरध्वजः ।
 प्रत्यविध्यद् ध्वजांश्चैषां भलैश्चिच्छेद सायकान् ॥ २१ ॥
 सुधन्वनो धनुश्छित्त्वा हयांश्चाऽस्याऽवधीच्छरैः ।
 अथाऽस्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपातयत् ॥ २२ ॥
 तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
 व्यद्रवन्त भयान्नीता यत्र दौर्योधनं बलम् ॥ २३ ॥
 ततो जघान संकुद्धो वासविस्तां महाचमूम् ।
 शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवाऽशुभिः ॥ २४ ॥
 ततो भग्नो बले तस्मिन्विप्रलीने समन्ततः ।
 सव्यसाचिनि संकुद्धे त्रैगर्तान्भयमाविशत् ॥ २५ ॥
 ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता भृगुगणा इव ॥ २६ ॥

मारे । अर्जुन ने उसके उत्तर में फिर दो दो तीक्ष्ण बाण मारकर उनको घायल कर दिया । सशतकृष्ण ने फिर कुपित होकर, जैसे जलधाराएँ तालाब को भर देती हैं वैसे ही, तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से श्री कृष्ण और अर्जुन सहित उनके रथ को पाट दिया । वन के मध्य जैसे भौरों की कतार फूले हुए वृक्ष पर गिरती है वैसे ही उस समय अर्जुन के ऊपर सहस्रों बाण गिरे लगे ॥ १३१६ ॥ अत्र सुबाहु ने बड़े भारी और तीक्ष्ण लोहमय तीस बाण अर्जुन के किरीट में मारे । खर्णपुङ्खयुक्त बाण किरीट मुकुट में लगने से अर्जुन उदित दिवाकर से, और सुर्ण के अलङ्कारों से अलङ्कृत से, जान पड़ने लगे । तत्र अर्जुन ने

भल बाण मारकर सुबाहु का हठ हस्तावाप (हाथों के बचाव के लिए पहना जानेवाला) काट डाला । अर्जुन सुबाहु पर सहस्रों बाणों की वर्षा करने लगे ॥ १७१९ ॥ तत्र सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहु ने अत्यन्त कुपित होकर दस-दस बाण अर्जुन को मारे । अर्जुन ने उन सबको तीक्ष्ण बाणों से घायल करके भल बाणों से उनकी ध्वजाएँ काट डालीं । अर्जुन ने क्रुद्ध होकर सुधन्वा का धनुष काटकर रथ के घोड़े मार डाले, और उसका शिरस्त्राण शोभित सिर पृथ्वी पर काट गिराया ॥ २०२२ ॥ इससे सुधन्वा के अनुचर अत्यन्त विह्वल होकर भागकर दुर्योधन की सेना के पास जा खड़े हुए । जैसे सूर्यदेव अपनी

ततस्त्रिगर्त्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान् ।
 अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ ॥ २७ ॥
 शप्तवाऽथ शपथान्घोरान्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
 गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः ॥ २८ ॥
 नाऽवहास्याः कथं लोके कर्मणाऽनेन मंयुगे ।
 भवेम सहिताः सर्वे निवर्तध्वं यथाबलम् ॥ २९ ॥
 एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः ।
 शङ्कांश्च दधिमरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम् ॥ ३० ॥
 ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः ।
 नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि सशप्तकपर्वणि सुमन्त्रे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

किरणा से अंधेरे को नष्ट कर देते हैं उसे ही तार अर्जुन कुपित होकर, निरन्तर जाण बरमात्र, त्रिगर्त सेना का सहार करने लगे । त्रिगर्तसेना के लोग शक्ति आर छिन्न भिन्न होकर रक्षक की खोज में इधर उधर भागने लगे । सशप्तकगण अर्जुन की कोप से अत्यन्त आत्रा देखकर त्रुटत ही भयभात अर्जुन के बाणों से घायल होकर ते लोग भयानुर मृगों के समान मोहाभिभूत होने लगे ॥ २३ ॥ २६ ॥ त्रिगर्त राज सुशर्मा ने क्रुद्ध होकर सशप्तकगण से कहा—हे वीरो ! भयमान होकर भाग खड़े होना तुम लोगों का कर्तव्य नहीं है । तुम लोग दुर्योधन के

सन्मुख तैसी भयङ्कर सोग-न खाकर यहाँ युद्ध करने आये हो । अब इस प्रकार रण से भागकर नहीं प्रधान-प्रधान वीरों से क्या कहेंगे ? उन्हें क्या मुख दिखा-आये ? भागते तो लोग क्या तुमको हँसते नहीं ? अतएव तुम सब मिलकर यथाशक्ति युद्ध करो । मृत्यु का क्या भय है ॥ २७ ॥ २९ ॥ सैनिकगण सुशर्मा के उत्साहवाक्य सुनकर लोट पड़े । तैतक्षण महा-गोलाहल करते हुए, शङ्ख बजाते हुए, हर्ष और सन्तोष के साथ युद्ध करने के लिए डट गये । सशप्तकगण और नारायणी सेना जीवन का मोह छोड़कर युद्ध करने लगी ॥ ३० ॥ ३१ ॥

द्रोणर्षि का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

अथ ऊनर्षिशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा तु सन्निवृत्तांस्तान्संशप्तकगणान्पुनः ।
 वासुदेवं महारथान्मर्जुनः समभाषत ॥ १ ॥
 चोदयाऽश्वान्दृपीकेश संशप्तकगणान्प्रति ।
 नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः ॥ २ ॥

ऊनर्षिओं अध्याय ॥ १९ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! अर्जुन ने सन्मुख रण ले चर्निए । जान पड़ता है कि प्राण रहते सशप्तकगण को लोटकर आति देख महामा वासुदेव । ये युद्ध करना न छोड़ेंगे । हे वासुदेव ! आज आप मेरे से कहा—हे श्रीकृष्ण ! शीघ्रता से सशप्तकगण के बाहुबल और धनुष का प्रभाव देखिए रत्नदेव ने जैसे

पश्य मेऽस्त्रवलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च ।
 अद्यैतान्पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ३ ॥
 ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम् ।
 प्रावेशयत् दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ॥ ४ ॥
 स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुद्यमानो रणे तदा ।
 उद्यमानमिवाऽऽकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥ ५ ॥
 मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च ।
 यथा शक्ररथो राजन्युद्धे देवासुरे पुरा ॥ ६ ॥
 अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।
 छादयन्तः शरव्रातैः परिववृर्धनञ्जयम् ॥ ७ ॥
 अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ ।
 कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ८ ॥
 क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः ।
 गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ॥ ९ ॥
 बध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम् ।
 देवदत्तं महाशङ्खं पूरयामास पाण्डवः ॥ १० ॥
 अथाऽस्त्रमारिसङ्घं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः ।
 ततो रूपसहस्राणि प्रादुगासन्पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥
 आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः ।
 अन्योऽन्येनाऽर्जुनं मत्वा स्वमात्मानं च जग्निरे ॥ १२ ॥
 अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ ।
 इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ १३ ॥

पशुओं का सहार किया था वैसे ही मैं आज इन सश-
 स्त्रकण का सहार करूँगा॥१३॥वासुदेव ने अर्जुन के
 ये वचन सुनकर, मङ्गल-वाक्याना द्वारा उनका अभिनन्दन
 करके, उनकी इच्छा के अनुसार रथ चलाया । श्वेत
 घोड़ों से युक्त वह रथ आकाशचारी निगम की तरह
 शोभा को प्राप्त हुआ । हे राजेन्द्र ! देवासुर-संग्राम
 में इन्द्र के रथ के समान वह अर्जुन का रथ अनेक
 प्रकार की गतियों से मण्डलाकार घुमने लगा । तब
 विविध शस्त्र हाथ में लिए नारायणी सेना ने क्षण भर

में बाण बरसाकर वासुदेव सहित अर्जुन को अदृश्य
 कर दिया । महान्तर अर्जुन ने भी परम कुपित होकर
 उस युद्ध में दुगुना पराक्रम प्रकट किया । उन्होंने
 शक्ति के साथ गाण्डीव धनुष की हाथ से पोंछकर,
 क्रोधसूचक मोँहे टेढ़ी करके, 'देवदत्त' शङ्ख बजाया
 और शत्रुनाशन त्वाष्ट्र अस्त्र छोड़ा । उस अस्त्र के
 प्रभाव से एक ही अर्जुन के पृथक्-पृथक् सहस्रों रूप
 चारों ओर दिखाई पड़ने लगे॥११॥शत्रुपक्ष के
 योद्धा लोग उन अनेक प्रतिरूपों से ऐसे मोहित हो

मोहिताः परमास्त्रेण श्वयं जग्मुः परस्परम् ।
 अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ १४ ॥
 ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात् ।
 कृत्वा तदस्त्रं तान्वीराननययमसादनम् ॥ १५ ॥
 अथ प्रहस्य वीभत्सुर्ललित्यान्मालवानपि ।
 मावेल्लकांस्त्रिगर्ताश्च यौधेयांश्चाऽर्दयच्छरेः ॥ १६ ॥
 ते हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
 व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥ १७ ॥
 न ध्वजो नाऽर्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः ।
 प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः ॥ १८ ॥
 ततस्तेऽलब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
 हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुबुस्तदा ॥ १९ ॥
 भेरीमृदङ्गशङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः ।
 सिंहनादरवांश्चोष्मांश्चकिरे तत्र मारिष ॥ २० ॥
 ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चाऽर्जुनमब्रवीत् ।
 काऽसि पार्थ न पश्ये त्वां कञ्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥ २१ ॥
 तस्य तद्भापितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनञ्जयः ।
 वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥ २२ ॥
 ततः संशतकवातान्ताश्चद्विपरथायुधान् ।
 उवाह भगवान्वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥ २३ ॥

गये कि परस्पर एक दूसरे को अर्जुन समक्ष कर मारने काठने लगे । "ये कृष्ण और अर्जुन एकत्र उपस्थित हैं," इस प्रकार कहते कहते वे लोग भाग्य से मोहित होकर परस्पर प्रहार करने लगे । हे महाराज ! परम दिव्य त्नाष्ट्र अख से मोहित सशत-रुग्ण इस प्रकार परस्पर प्रहार करके नष्ट होने लगे । सप्राम में योद्धा लोग फूले हुए दाक के पेड़ के समान शोभायमान हुए । अर्जुन के उस अख ने शत्रुओं को यमपुर भेज दिया और उनके वाणों को भस्म कर दिया । अब अर्जुन हँसकर ललित, मालव, मावेठक और त्रिगर्देश के योद्धाओं को तीक्ष्ण वाणों से पीड़ित करने लगे । वे सब महावीर भी काल-प्रेरित होकर अर्जुन के ऊपर

अनेक प्रकार के असुरय वाण छोड़ने लगे ॥ १२।१७॥ उन दारुण वाणों से अर्जुन, वासुदेव और उनका धजासहित दिव्य रथ, सब अदृश्य हो गये । इसी असुर ने निशाना ठीक लग जाने से सशत-रुग्ण परस्पर कोलाहल करने लगे । वे लोग श्रीकृष्ण और अर्जुन को विनष्ट समझकर प्रसन्नचित्त हो वहाँ को हिलाने लगे । सहस्रों योद्धा भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदि बजाने और कोलाहल करने लगे ॥ १८।२०॥ वासुदेव बहुत ही धनञ्जय और पसाने से तर होकर अर्जुन से बोले—हे पार्थ ! तुम कहा हो ? हे शत्रुनाशन ! मैं तुम्हें देख नहीं पाता । तुम जीवित भी हो ? यह सुनकर अर्जुन ने उसी समय वायव्य अख छोड़ा,

उद्यमानास्तु ते राजन्वहृशोभन्त वायुना ।
 प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिप ॥ २४ ॥
 तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनञ्जयः ।
 जघान निशितैर्वाणैः सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥
 शिरांसि भल्लैरहरद्वाहूनपि च सायुधान् ।
 हस्तिहस्तोपमांश्चोरूज्जशैरुर्व्यामपातयत् ॥ २६ ॥
 पृष्ठच्छिन्नान्विचरणान्वाहुपाश्वक्षणाकुलान् ।
 नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकाराऽरीन्धनञ्जयः ॥ २७ ॥
 गन्धर्वनगराकारान्विविधवत्कल्पितान् रथान् ।
 शरैर्विशकलीकुर्वन्श्चक्रे व्यश्वरथद्विपान् ॥ २८ ॥
 मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरै ।
 छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित्क्वचित् ॥ २९ ॥
 सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकांकुशध्वजाः ।
 पेतुः शकाशनिहता द्रुमवन्त इवाऽचलाः ॥ ३० ॥
 चामरापीडकवचाः स्वस्तान्त्रनयनास्तथा ।
 सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थवाणहताः क्षितौ ॥ ३१ ॥
 विप्रविद्धासिनखराशिष्ठवर्मर्षिशक्तयः ।
 पत्तयश्छिन्नवर्मणाः कृपणाः शरते हताः ॥ ३२ ॥
 तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि ।
 भ्रमन्निनिष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं वभौ ॥ ३३ ॥

जिससे वे सब बाण उड़ गये । उस अख से उत्पन्न वायु ने सूखे पत्तों की तरह हाथी, घोड़े, रथ और शस्त्र-अस्त्र आदि के साथ सशस्त्रगण को उड़ाना आरम्भ कर दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे राजेन्द्र ! जैसे पक्षियों के झुण्ड वृक्षों पर से उड़ते हैं वैसे ही सशस्त्रगण उस वायव्य अख से उड़ने लगे । अर्जुन इस प्रकार उन्हें, अत्यन्त व्याकुल करके, सहस्रों बाणों से पीड़ित करने लगे । अर्जुन भल्ल बाणों से किसी का सिर, किसी का सशस्त्र हाथ और किसी हाथी की सूँड़ के समान जोंघें काट-काटकर पृथ्वी पर गिराने लगे ॥ २६ ॥ २७ ॥ किसी की पीठ के टुकड़े-टुकड़े हो गये, किसी की मुजा के कई खण्ड हो गये, और किसी-किसी के नेत्र

छूट गए । वीर अर्जुन इस प्रकार शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके गन्धर्व नगर के समान सुसज्जित बड़े-बड़े रथों के टुकड़े-टुकड़े और हाथी-घोड़े आदि को विनष्ट करने लगे । कहीं-कहीं पर ध्वजों के काट जाने से मुण्ड रथ डुण्ड ताड़ के पेड़ों के जङ्गल से प्रतीत होने लगे । कहीं पर योद्धा उत्तम धनुष-पताका से युक्त, ध्वजदण्डमण्डित और अंकुशशोभित बड़े-बड़े गजराज वज्रपात से फटे हुए वृक्षयुक्त पर्वतों के समान विदारण होकर पृथ्वी पर गिरने लगे । चामर-शोभित, कवचभारी घोड़े अर्जुन के बाणों से मरकर आँखें निकालकर अपने सवारों सहित पृथ्वी पर धमाधम गिर रहे थे ॥ २८ ॥ २९ ॥ तलवार और नाराच

रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः ।
 मही चाऽप्यभवद् दुर्गा कवन्धशतसंकुला ॥ ३४ ॥
 तद्वभौ रौद्रवीभत्सं वीभत्सोर्यानमाहवे ।
 आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून् ॥ ३५ ॥
 ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्च रथद्विपाः ।
 तमेवाऽभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्याऽतिथितां गताः ॥ ३६ ॥
 सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः ।
 आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः ॥ ३७ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि ।
 व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥
 तं प्रत्यगृह्णंस्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
 युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवचपर्वणि अर्जुनसंगतकयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

बाण लगने से जिनके कवच कट गये हैं ऐसे सहस्रों पैदल योद्धा अर्जुन के बाणों से मर-मरकर गिने लगे । कोई मर गया था, कोई मारा जा रहा था, कोई गिर पड़ा था, कोई गिर रहा था, कोई चक्कर खाकर गिनेवाला था और कोई गिरकर निश्चेष्ट हो रहा था । उस समय वह युद्धभूमि बहुत ही भयानक हो उठी । युद्धभूमि में एकाएक ढोंह धूप हाने से जो बहुत सी धूल उड़ी थी, वह अगार रक्त की बर्षा में बैठ गई । सैकड़ों सदस्रों कवन्धों से परिपूर्ण होकर वह युद्ध का मैदान बहुत ही भयानक हो गया । उस समय, प्रलय काल में पशु-सहार करनेवाले रुद्र की

झोड़ाभूमि के समान अर्जुन का वह भयानक रथ शोभा को प्राप्त हुआ ॥ ३२, ३५ ॥ संशप्तकगण की सेना के हाथी, घोड़े और रथ (के घोड़े) व्याकुल हो उठे । सब शत्रुसेना प्रहार से पीड़ित होकर भी अर्जुन के समुल्लसते पट्टे चली और मर-मरकर इन्द्रपुरी को जा रही थी । उस समय वह समरभूमि मारे गये महारथियों से परिपूर्ण होकर अत्यन्त शोभित हुई । इधर अर्जुन समर में उन्मत्त हो उठे, उधर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए उनकी ओर चले । विशाल सुसज्जित सशस्त्र सेना, युधिष्ठिर की इच्छा से, द्रोणाचार्य के साथ चली । उस समय घोर सम्राट होने लगा ॥ ३६, ३९ ॥

द्रोणपर्व का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सञ्जय उवाच — परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः ।

उक्त्वा सुवहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥ १ ॥

विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह ।

निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥ २ ॥

वीसवाँ अध्याय ॥ २० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य ने यह रात्रि व्यतीत करके दुर्योधन को बहुत धैर्य बैठाया ।

उधर युधिष्ठिर की रक्षा का कार्य अन्य वीरों को सौंपकर महावीर अर्जुन संशप्तकगण को मारने लगे, इधर

व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम् ।
 अभ्ययान्द्रतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३ ॥
 व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाजकृतं तदा ।
 व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद्युधिष्ठिरः ।
 मुखं त्वासीत्सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः ॥ ४ ॥
 शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ।
 चक्षुषी कृतवर्माऽऽसीद्वैतमश्वाम्भोजस्यतां वरः ॥ ५ ॥
 भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाशश्च वीर्यवान् ।
 कलिङ्गः सिंहलाः प्राच्याः शूराभीरा दशेरकाः ॥ ६ ॥
 शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपथाश्च ये ।
 ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥ ७ ॥
 गजाश्वरथपत्न्योघास्तस्थुः परमदांशिताः ।
 भूरिश्रवास्तथा शल्यः सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ८ ॥
 अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ।
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ९ ॥
 वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः ।
 पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ॥ १० ॥
 गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः पार्वतीया वसातयः ।
 पुच्छे वैकर्त्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिवान्धवः ॥ ११ ॥
 महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया ।
 जयद्रथो भीमरथः सम्पातिर्ऋषभो जयः ॥ १२ ॥

द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने की इच्छा से व्यूह-
 रचना-पूर्वक अपनी विशाल सेना साथ लेकर पाण्डवों
 की सेना की ओर चले । युधिष्ठिर ने देखा कि द्रोणा-
 चार्य अपनी सेना को सुपर्णव्यूह रचकर युद्ध में लाये
 हैं । तब युधिष्ठिर ने भी मण्डलार्धव्यूह अर्थात् अर्द्ध-
 चक्राकार व्यूह रचकर उनके विरुद्ध अपनी सेना
 को सञ्चालित किया । कौरव-सेना का व्यूह इस प्रकार
 था कि स्वयं महारथी द्रोणाचार्य उस व्यूह के मुख
 में स्थित थे । अपने अनुचरों और भाइयों सहित
 महाराज दुर्योधन उसके मस्तक में स्थित थे । कृत-

वर्मा और महोत्तमस्त्री कृपाचार्य दोनों नेत्रों के स्थान
 पर थे । व्यूह के ग्रीवाभाग में भूतशर्मा, क्षेमशर्मा,
 पराक्रमी करकाश, कलिङ्ग, सिंहल, प्राच्य, शूर
 आमीर, दशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हंस-पथ
 शूरसेन, दरद, मद्र और कैकेयगण सहस्रों हाथी, घोड़े,
 रथ और पैदल लिये हुए स्थित थे । भूरिश्रवा, शल्य,
 सोमदत्त और बाह्लिक अक्षौहिणी सेना साथ लिये
 उसके दक्षिण भाग की रक्षा कर रहे थे । अवन्ती
 देश के विन्द, अनुविन्द और काम्बोजराज सुदक्षिण
 अश्वत्थामा के आगे रहकर वाम भाग की रक्षा कर

भूमिञ्जयो वृषक्राथो नैपथश्च महाबलः ।
 वृता वलेन महता ब्राह्मलोकपरिष्कृताः ॥ १३ ॥
 व्यूहस्योरसि ते राजन्स्थिता युद्धविशारदाः ।
 द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्पथश्चरथद्विपैः ॥ १४ ॥
 वातोद्धूतार्णवाकारः प्रवृत्त इव लक्ष्यते ।
 तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥ १५ ॥
 सविद्युस्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे ।
 तस्य प्राग्जोतिषो मध्ये विधिवत्कल्पितं गजम् ॥ १६ ॥
 आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा ।
 माल्यदामवता राजञ्श्चेत्तच्छत्रेण धार्यता ॥ १७ ॥
 कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ।
 नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदन्धो द्विरदो बभौ ॥ १८ ॥
 अतिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात्पर्वतो महान् ।
 नानानृपतिभिर्वीरैर्विविधायुधभूषणैः ॥ १९ ॥
 समन्वितः पार्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ।
 ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ॥ २० ॥
 अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत् ।
 ब्राह्मणस्य वशं नाऽहमियामद्य यथा प्रभो ।
 पारावतसवर्णाश्च तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥

रहे थे। अम्बष्ठ, कलिङ्ग, मागध, गौण्ड, मदक, गान्धार, शकुन, प्राच्य, पार्वतीय और वसतिगण पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे॥११॥महारी कर्ण के पुत्र अपने जलियालों, दान्धव और भाइयों सहित बहुत से देशों से आई हुई विशाल सेना साथ लिये उस व्यूह के पुच्छभाग में स्थित हुए। जयद्रथ, भीमरथ, सगपाति, कृपभ, जय, भूमिञ्जय, वृष, क्राथ और पराक्रमी निपथराज बहुत सी सेना साथ लेकर उसके वक्ष-स्थल में स्थित हुए॥११॥हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के द्वारा द्रोणाचार्य का रचा हुआ वह सुवर्ण-व्यूह आँधी से चलायमान महासागर के समान आन्दोलित होने लगा। बड़े बड़े वीर योद्धा लोग युद्ध की इच्छा से व्यूह के पक्ष-प्रपक्ष-स्थानों से, बर्षाकाल के

विजली से शोभित गरजते हुए मेघों के समान, निकलने लगे। सुसज्जित हाथी पर सवार प्राग्जोतिषर भगदत्त उस व्यूह के भीतर उदयाचल पर स्थित सूर्य के समान लगने लगे। सेवकों ने भगदत्त के मस्तक पर कलमाला से युक्त श्वेत छत्र लगाया, जिससे कर्त्तिका पूर्णिमा की कृत्तिका नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के समान भगदत्त की शोभा हुई। उनका अञ्जनपुञ्जसदृश मद-मत्त गजराज जलधाराओं से नहा रहे महापर्वत के समान शोभायमान हुआ। देवगण जैसे इन्द्र के आस-पास शोभा को प्राप्त होते हैं, वैसे ही विविध शस्त्र धारण किये हुए, विचित्र अलङ्कारों से शोभित, पहाड़ी राजा लोग भगदत्त के आस-पास शोभित हो रहे थे॥१४॥२॥उपर धर्मराज युधिष्ठिर ने बहुत ही दृढ़

धृष्टद्युम्न उवाच—द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत ।
 अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥ २२ ॥
 मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि ।
 नहि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथञ्चन ॥ २३ ॥
 सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा किरन्वाणान्द्रुपदस्य सुतो वली ।
 पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २४ ॥
 अतिप्रदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
 क्षणेनैवाऽभवद् द्रोणो नाऽतिहृष्टमना इव ॥ २५ ॥
 तं तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
 प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥ २६ ॥
 स सम्प्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत ।
 पार्यतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत ॥ २७ ॥
 पार्यतः शरजालेन क्षिप्रमप्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
 भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २८ ॥
 द्रोणमाचारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवाऽऽत्मजः ।
 नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्यतं सममोहयत् ॥ २९ ॥
 तयोर्विपक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः ।
 द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः ॥ ३० ॥
 अनिलेन यथाऽभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ।
 तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि कचिच्छकचित् ॥ ३१ ॥

और दुर्मुख सुपर्णव्यूह की रचना देखकर सेनापति धृष्टद्युम्न से कहा— हे वीर ! आज ऐसा उपाय करो जिसमें द्रोणाचार्य मुझे पकड़ न सकें । धृष्टद्युम्न ने कहा— हे महाराज ! आप निर्भय रहें, द्रोणाचार्य बहुत यत्न करके भी आपको पकड़ न सकेगे । मैं अपनी सेना और साथियों सहित उन्हें रोकूँगा, उनकी सारी चेष्टा व्यर्थ कर दूँगा । मेरे जीते जी आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें । आचार्य द्रोण मुझको किसी प्रकार भी परास्त नहीं कर सकते ॥ २१२६ ॥ सञ्जय कहते हैं—अब महावीर धृष्टद्युम्न बाणों की वर्षा करते हुए आचार्य के सन्मुख आये । द्रोणाचार्य अपने कालसरूप अशुभदर्शन धृष्टद्युम्न को देखकर

बहुत ही अप्रसन्न और उत्साहहीन हो गये । हे महाराज ! उस समय आपके पुत्र दुर्मुख, द्रोणाचार्य को अत्यन्त व्याकुल देखकर, उनका हित और सहायता करने के लिए धृष्टद्युम्न के सन्मुख आये । तब वे दोनों वीर मयानक संग्राम करने लगे । धृष्टद्युम्न ने बड़ी शक्ति के साथ दुर्मुख को अपने बाणों की वर्षा से दक दिया और फिर निरन्तर बाण बरसाकर आचार्य को भी रोका । दुर्मुख ने धृष्टद्युम्न के द्वारा आचार्य को निवारित देखकर शक्ति से जाकर अनेक चिह्नों से युक्त तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से धृष्टद्युम्न को मोहित कर दिया । दोनों वीर इस प्रकार घोर संग्राम इधर करने लगे, उधर आचार्य द्रोण युधिष्ठिर की सेना

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
 तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ ३२ ॥
 नैव खे न परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् ।
 अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत्समवर्त्तत ॥ ३३ ॥
 चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु ।
 तेषामादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥ ३४ ॥
 तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम् ।
 वलाकाशवलाभ्रामं ददृशे रूपमाहवे ॥ ३५ ॥
 नरानेव नरा जघ्नुर्दृष्ट्वाश्च हया हयान् ।
 रथांश्च रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥ ३६ ॥
 समुच्छिन्नपताकानां गजानां परमद्विषैः ।
 क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ॥ ३७ ॥
 तेषां संसक्तगात्राणां कर्पतामितरेतरम् ।
 दन्तसङ्घातसङ्घर्षात्सधूमोऽग्निरजायत ॥ ३८ ॥
 विप्रकीर्णपताकास्ते विपाणजनिताग्नयः ।
 बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाऽम्बुदाः ॥ ३९ ॥
 विक्षिपद्भिन्नदर्द्रिश्च निपतद्भिश्च वारणैः ।
 सम्बभूव मही कीर्णां मेघैर्यौरिव शारदी ॥ ४० ॥
 तेषामाहन्यमानानां वाणतोमरऋषिभिः ।
 वारणानां रवो जज्ञे मेघानामिव सम्प्लवे ॥ ४१ ॥

पर बाण बरसाने लगे । जैसे मेघमण्डल वायु के बग
 से छिन भिन्न हो जाता है वैसे ही युधिष्ठिर की सेना
 भी छिन भिन्न होने लगी । वह युद्ध क्षण भर ऐसा
 घोर हुआ कि देखनेवाले चकित हो गये ॥ २७ ॥
 अन्त को योद्धा लोग उन्मत्त की तरह युद्ध की मर्यादा
 और नियम आदि तोड़ करके तुमुल युद्ध करने लगे ।
 उस समय दोनों पक्ष के लोग अपने-पराये का कुछ
 विचार न करके जो मनुष्य आया उसी को मारने
 लगे । [धूल और वाणों से ऐसा अंधेरा छा गया कि]
 केवल अनुमान और चेतना के द्वारा एक दूसरे को
 जान सकता था, किन्तु वास्तव में कोई किसी को
 पहचान नहीं सकता था । दोनों के अङ्गों में चूड़ा-

मणि, निष्क आदि अन्यान्य आभूषण और कनक-
 मण्डित कवच चमक रहे थे, जिनसे वे योद्धा लोग
 सूर्य के समान प्रतीत होते दिखई देते थे । वगलों
 की कतार से शोभित मेघमण्डल के समान वे चल्ते-
 फिलते हुए पताकायुक्त गजराज, घोड़े और रथ अत्यन्त
 मनोहर देख पड़ते थे । योद्धाओं को योद्धाओं ने
 मारा, घोड़े घोड़ों से भिड़ गये, हाथियों ने हाथियों
 को मारा और रथियों ने रथियों का नाश कर
 दिया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ क्षण भर में हाथियों से हाथी भिड़
 गये, और उनमें घोर युद्ध होने लगा । उन मदान्ध
 हाथियों के दौनों की टक्कर और शरीर की रगड़ से
 धूमयुक्त अग्नि प्रकट होने लगी । हाथियों के दौन

तोमराभिहताः केचिद्वाणैश्च परमद्विपाः ।
 वित्रेसुः सर्वनागानां शब्दमेवाऽपरेऽवजन् ॥ ४२ ॥
 विपाणाभिहताश्चापि केचित्तत्र गजा गजैः ।
 चक्रुरार्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४३ ॥
 प्रतीपाः क्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः ।
 उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमांकुशैः ॥ ४४ ॥
 महामात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः ।
 गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणांकुशाः ॥ ४५ ॥
 निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः ।
 छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुः सम्प्रविश्य परस्परम् ॥ ४६ ॥
 हतान्परिवहन्तश्च पतितान्पतितायुधान् ।
 दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ॥ ४७ ॥
 ताडितास्ताड्यमानाश्च तोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
 पेतुरार्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ॥ ४८ ॥
 तेषां शैलोपमैः कार्यैर्निपतद्भिः समन्ततः ।
 आहता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ॥ ४९ ॥
 सादितैः सगजारोहैः सपताकैः समन्ततः ।
 मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ५० ॥

और होदों पर की पताकाएँ टूट टूटकर गिरने लगीं
 और पूर्णोक्त प्रकार से अग्नि प्रज्वलित हो उठी, जिससे
 वे गजराज आकाश में विजली युक्त मेघों के समान
 शोभा को प्राप्त होने लगे । जैसे शरद ऋतु के प्रथम
 आकाशमण्डल में मेघ छा जाते हैं, वैसे ही उस रण-
 भूमि में चारों ओर हाथी ही हाथी देख पड़ते थे ।
 कोई हाथी घोर वील्वार कर रहा था, कोई प्रहार से
 पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर रहा था । कोई-कोई
 हाथी तीक्ष्ण तोमर और बाणों के प्रहार से पीड़ित हो
 प्रलयकाल के मेघ के समान चिल्लाता हुआ पृथ्वी पर
 गिरकर मर जाता था ॥ ३७।४१ ॥ कोई हाथी बाण और
 तोमर के प्रहार से विह्वल और शङ्कित होकर भाग खड़ा
 हुआ । कुछ हाथी दूसरे हाथियों के दाँतों के कठिन
 प्रहार से पीड़ित होकर प्रलयकाल के मेघगर्जन के
 समान भयानक आर्तनाद करने लगे । कोई हाथी दूसरे

हाथी के प्रहार से पीड़ित होकर युद्ध छोड़कर भागा
 तो महावत ने उसको बारम्बार अङ्कुश मारे, जिससे
 उत्तेजित होकर वह फिर लोट पड़ा और क्रोधान्व
 होकर शत्रुसेना की रीढ़ने लगा । महान्तों में से किसी
 को दूसरे महान्त ने बाण या तोमर मारे और वह
 मरकर हाथी की पीठ पर से पृथ्वी पर गिर पड़ा,
 उसके हाथों से अकुश और शस्त्र छूटकर अलग गिर
 पड़े । महान्तों के बिना केवल होदा लड़े हुए हाथी
 आर्तनाद करने और परस्पर भिड़कर, छिन्न भिन्न
 मेघखण्ड की तरह, पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ ४२।४५ ॥
 कुछ हाथी पीठ पर निहत, पतित और पतितायुध
 योद्धाओं की लड़े हुए त्रिसिलसिले गैँड़े की तरह इधर-
 उधर परिभ्रमण कर रहे थे । कुछ हाथी तोमर, ऋष्टि
 और परशु आदि शस्त्रों की चोट खाकर आर्तनाद
 करते हुए, फटे हुए पर्वतशिखर की तरह, धमाधम

गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे ।
 रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णाकुशतोमराः ॥ ५१ ॥
 क्रौञ्चवद्विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः ।
 परान्खांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥ ५२ ॥
 गजाश्चरथयोधानां शरीरौघसमावृता ।
 चभूव पृथिवी राजन्मांसशोणितकर्दमा ॥ ५३ ॥
 प्रमथ्य च विपाणायैः समुत्क्षिप्ताश्च वारणैः ।
 सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥ ५४ ॥
 रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
 हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुर्भयातुराः ॥ ५५ ॥
 जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
 इत्यासीत्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५६ ॥
 आयुल्फेभ्योऽवसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः ।
 दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ॥ ५७ ॥
 शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च ।
 छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ॥ ५८ ॥
 हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः ।
 संक्षुण्णाः पुनरावृत्त्य बहुधा रथनेभिभिः ॥ ५९ ॥
 सगजौघमहावेगः परासुनरशैबलः ।
 रथौघतुमुलावर्तः प्रवभौ सैन्यसागरः ॥ ६० ॥

पृथी पर गिर रहे थे । उनकी परतमदृश देहों के धमाके से पृथी तल एकाएक काँप उठता था और शब्दावमान होने लगता था । मारे गये महावत की लाश लादे हुए पताकाशोभित बड़े-बड़े हाथी मर-मरकर चारों ओर गिरे पड़े थे, जिनमें वह रणभूमि परानमायाओं से घिरी हुई सी जान पड़ती थी । हाथियों पर बड़े हुए महाव्रत रथियों के मारे भल्ल बाणों से आहत और भिन्न हृदय होकर, अतृप्त और तोमर छोड़कर, पृथ्वी पर गिरते देख पड़ते थे । कोई कोई हाथी लोहमय नाराच बाणों की चोट या मर क्रोध पशु की तरह चिल्लाते हुए दोनों पक्ष की सेना की रीढ़ों पर चारों ओर भागने लगा ॥ ४६ ॥ २ ॥ उस समय वह रणभूमि

टिल-भिन्न हाथियों, घोड़ों और रथों से परिपूर्ण तथा मांस और रक्त की भयानक काँचड़ में अत्यन्त ही दुर्गम हो उठी । बड़े बड़े हाथी पहियोंदार और पहियों के बड़े बड़े रथों को अपने दोनों से तोड़ते-फोड़ते हुए उन्हें रथियों सहित ऊपर उठा लेने लगे । रथी बाणों से शून्य रथ, सवारों से शून्य घोड़े और हाथी शक्ति और व्याकुल हुए चारों ओर भागने लगे । ऐसा सङ्कट युद्ध हुआ कि पिता पुत्र को न पहचानकर मारने-काटने लगा । इस प्रकार अत्यन्त घोर सन्नाह होने पर ऐसा हो गया कि किसी को कुछ नहीं जान पड़ता था । रक्त की मीच में लोगों के पाँव चित्ता-चित्ता मर घूम जाने लगे । उस

तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैपिणः ।
 अवगाह्याऽथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ॥ ६१ ॥
 शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वञ्चितलक्ष्मसु ।
 न तेष्वचित्तां लैभे कश्चिदाहतलक्षणः ॥ ६२ ॥
 वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयङ्करे ।
 मोहयित्वा परान्द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ६३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशतकवधपर्वणि संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

समय ऐसा जान पड़ने लगा कि मानों वृक्ष प्रज-
 लित दावानल के मध्य में गाड़ दिये गये हों ।
 वस्त्र, कवच, छत्र और पताका आदि रक्त में सन
 जाने के कारण सभी कुल रुधिरमय सा प्रतीत होने
 लगा । मरे और घायल होकर गिरे अधमरे घोड़े,
 हाथी, रथ और मनुष्य सब रथों के पहियों से छिज-
 भिन्न और खण्ड-खण्ड होने लगे । वह सेना का
 समुद्र ऐसा था कि बड़े बड़े हाथी से देख पड़ते थे

॥५६।६०॥ विजयाभिलाषी वीरगण वाहनरूप नौका
 पर बैठे उसमें नहा करके, निमग्न न होकर, शत्रुओं
 को मोह से अभिभूत करने लगे । अपने-अपने विशेष
 चिह्न से अलङ्कृत वीरगण बाणों से अदृश्य हो उठे ।
 बाण-प्रहार से उनके चिह्न नष्ट हो जाने के कारण
 कोई किसी को नहीं पहचान सकता था । महार्थों
 द्रोणाचार्य उस भयानक संग्राम में शत्रुओं को मोहा-
 भिभूत करके राजा युधिष्ठिर की ओर चले ॥ ६१।६३ ॥

द्रोणपर्व का बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सञ्जय उवाच—ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वाऽन्तिकमुपागतम् ।
 महता शरवर्येण प्रत्यश्ल्लादभीतवत् ॥ १ ॥
 ततो हलहलाशब्द आसीद्यौधिष्ठिरे वले ।
 जिघृक्षति महार्सिहे गजानामिव यूथपम् ॥ २ ॥
 दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
 युधिष्ठिरमभिप्रेक्षुराचार्यं समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
 तत आचार्यपाञ्चाल्यौ युयुधाते महाबलौ ।
 विक्षोभयन्तो तत्सैन्यमिन्द्रवैरोचनावित्र ॥ ४ ॥
 ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित्सत्यविक्रमः ।
 अविध्यन्निशिताग्नेण परमास्त्रं विदर्शयन् ॥ ५ ॥

इक्ष्वासिवां अध्याय ॥ २१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! राजा युधि-
 ष्ठिर द्रोणाचार्य को अपने समीप आये हुए देखकर
 उन पर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । हाथियों

के यूथपति को जब कोई महासिंह पकड़ना चाहता
 है तब जैसे अन्य हाथी चिल्लाते लगते हैं, वैसे ही
 युधिष्ठिर के सैनिक लोग उस समय कोलाहल करने

तथाऽस्य सारथेः पञ्च शरान्सर्पत्रिपोपमान् ।
 अमुञ्चदन्तकप्रख्यान्संमुमोहाऽस्य सारथिः ॥ ६ ॥
 अथास्य सहसाऽविध्यद्भयान्दशभिराशुगैः ।
 दशभिर्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ७ ॥
 मण्डलं तु समावृत्य विचरन्पृतनामुखे ।
 ध्वजं चिच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्याऽमित्रकर्षणः ॥ ८ ॥
 द्रोणस्तु तत्समालोक्य चरितं तस्य संयुगे ।
 मनसा चिन्तयामास प्राप्तकालमरिन्दमः ॥ ९ ॥
 ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
 अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्त्वाऽस्य सशरं धनुः ॥ १० ॥
 स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत्प्रतापवान् ।
 द्रोणमभ्यहनद्राजस्त्रिंशता कङ्कपस्त्रिभिः ॥ ११ ॥
 दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाऽऽहवे ।
 वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाख्याद्रोणमार्दयत् ॥ १२ ॥
 सञ्छायमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम् ।
 चुक्रुशुः पाण्डवा राजन्वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥ १३ ॥
 वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं पृथ्वा स्तनान्तरे ।
 विव्याध वलवान् राजंस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
 द्रोणस्तु शरवर्षेण च्छायमानो महारथः ।
 वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ १५ ॥

रण । सत्यजिमी सत्यजित्, द्रोणाचार्य की देखकर
 युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए आचार्य के समुख
 आये । सेना को धुंम्य करके दोनों योद्धा बैसा ही
 घोर युद्ध करने लगे जैसा राजा बलि और इन्द्र से
 हुआ था । पराक्रमी सत्यजित् ने द्रोणाचार्य की तीक्ष्ण
 बाणों से घायल करके उनके सारथी को विपले सर्प
 और काल के समान पाँच बाण मारे । इससे वह
 मूर्च्छित हो गया ॥ १६ ॥ फिर सत्यजित् ने आचार्य के
 घोड़ों को दस-दस बाण मारे, दोनों पाशों में स्थित दोनों
 सारथियों को दस-दस बाणों से घायल किया, और
 मण्डलगति से घूमकर क्रोधपूर्ण शत्रुनाशन द्रोणा-
 चार्य के रूप की पूजा काट डाली । शत्रुदमन द्रोण

ने रणभूमि में सत्यजित् का यह अद्भुत कार्य देखकर
 उनका काल आया हुआ समझकर, तत्क्षण मर्मभेदी
 तीक्ष्ण दस बाण उनको मारे और उनका बाण सहित
 धनुष काट डाला ॥ १७ ॥ हिं रजिन्द्र ! प्रतापी सत्य-
 जित् ने सृष्टि के साथ अन्य धनुष लेकर द्रोणाचार्य
 की वङ्कण-शोभित तीस बाण मारे । सत्यजित् को
 इस प्रणवर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करते देखकर
 पाण्डवगण चिलाकार, बख हिल्या कर, हर्ष प्रकट करने
 लगे । तत्र महाबली वृक ने अत्यन्त कोप करके द्रोणाचार्य
 के हृदय में साठ बाण मारे । दर्शकों को वृक का यह
 कार्य अत्यन्त अद्भुत प्रतीत हुआ ॥ ११ ॥ १४ ॥ महारथी
 द्रोण ने भी अत्यन्त क्रुपित होकर, शत्रु की ओर देखा और

ततः सत्यजितश्चापं छित्वा द्रोणो वृकस्य च ।
 पद्भिः ससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद्वृकम् ॥ १६ ॥
 अथाऽन्यद्धनुरादाय सत्यजिद्वेगवत्तरम् ।
 साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥ १७ ॥
 स तन्न ममृपे द्रोणः पाश्चात्येनाऽर्दितो मृधे ।
 ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ १८ ॥
 हयान्ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।
 अवाकिरत्ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥ १९ ॥
 तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।
 पाश्चात्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत् ॥ २० ॥
 स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे ।
 अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महामनः ॥ २१ ॥
 तस्मिन्हते महामात्रे पश्चालानां महारथे ।
 अपायाज्वनैरश्वैर्द्रोणात्प्रस्तो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
 पश्चालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूपकोसलाः ।
 युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥ २३ ॥
 ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा ।
 व्यधमत्तान्यनीकानि तूलराशिमिवाऽनलः ॥ २४ ॥
 निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः ।
 द्रोणे मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत ॥ २५ ॥

फिर वेग के साथ बाणवर्षा से शत्रुसेना को छा दिया ।
 द्रोणाचार्य ने सत्यजित् और वृक का धनुष काटकर
 छः बाणों वृक के घोड़े और सारथी को मारकर
 वृक को भी मार डाला । उधर सत्यजित् बड़े वेग
 के साथ अन्य धनुष लेकर तीक्ष्ण बाणों से द्रोणा-
 चार्य को तथा उनके सारथी, ध्वजा और घोड़ों को
 छेदने लगे । सत्यजित् का यह प्रहार-कौशल असह्य
 होने के कारण, उन्हें मारने के लिए, महाबली द्रोणा-
 चार्य ने शीघ्रता के साथ उनके घोड़े, ध्वजा, धनुष
 की मूठ और आसपास रहनेवाले रक्षकों तथा सारथी
 के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाना आरम्भ किया । आचार्य
 द्रोण ने इस प्रकार जब बार-बार सत्यजित् के अनेक

धनुष काट डाले तब महावीर सत्यजित् अत्यन्त क्रुपित
 होकर आचार्य के साथ भयानक युद्ध करने लगे
 ॥ १५ ॥ २० ॥ महारथी बीरवर द्रोणाचार्य ने ऐसे प्रभाव-
 शाली सत्यजित् को अपने आगे देख, अत्यन्त क्रुपित
 होकर, एक अर्धचन्द्र बाण से उनका सिर काट डाला ।
 महारथी सत्यजित् की इस प्रकार मृत्यु हो जाने पर
 धर्मराज युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के भय से शङ्कित और
 विद्वल होकर, बड़े वेग से रथ हँकड़ाकर उनके आगे
 से भाग खड़े हुए । इधर पश्चाल, केकेय, मत्स्य,
 चेदि, करूप और कोशलदेश के योद्धागण महाराज
 युधिष्ठिर की रक्षा करने के लिए आचार्य के आगे
 उपास्थित हुए । जिस प्रकार अग्नि भूमी के ढेर की

सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
 पद्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विध्वाऽनदद्भृशम् ॥ २६ ॥
 क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम् ।
 अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥ २७ ॥
 तस्य नानदतो द्रोणः शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
 क्षुरेणाऽपाहरत्पूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥
 मत्स्याञ्जित्वाऽजयच्चेदीन्करूपान्केकयानपि ।
 पञ्चालान्स्त्रञ्जयान्पाण्डून्भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २९ ॥
 तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम् ।
 दृष्ट्वा रुमरथं वीरं समकम्पन्त स्त्रञ्जयाः ॥ ३० ॥
 उत्तमं ह्यादानस्य धनुरस्याऽऽशुकारिणः ।
 व्याघोपो निघ्नतोऽभिन्नान्दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ ३१ ॥
 नागानश्चान्पदातींश्च गथिनो गजसादिनः ।
 रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
 नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यवे ।
 अश्मवर्षमिवाऽवर्षत्परेपां भयमादधत् ॥ ३३ ॥
 सर्वा दिशः समचरत्सैन्यं विक्षोभयन्निव ।
 बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥ ३४ ॥
 तस्य त्रिद्युदिवाऽभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम् ।
 दिक्षु सर्वासु यस्यामो द्रोणस्याऽमिततेजसः ॥ ३५ ॥

जलाती है वैसे ही महावीर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को
 पकड़ने की अभिलाषा से उन सम्मुख आय हुए वीरों
 को भस्म करने लगे ॥ २१ ॥ २४ ॥ उस समय राजा विराट
 के छोटे भाई शतानीक द्रोणाचार्य को बारम्बार सेना
 का सहार करते देखकर उनके सम्मुख पहुँचे । दुष्कर
 कम करने के लिए उन्होंने मूर्ख किरण सदृश तेज
 पुञ्ज छः बाणों से द्रोणाचार्य को, उनके घोड़ों को
 और सारथी को घायल किया । फिर बारम्बार सिंह
 नाद करके वे द्रोण पर बाण बरसाने लगे । उस समय
 द्रोणाचार्य ने स्वर्ण के साथ क्षुरप बाण मारकर उनका
 कुण्डलमण्डित सिर काटकर गिरा दिया । यह देखकर
 मत्स्यदेश की सेना भय के मार भाग खड़ी हुई ॥ २५ ॥ २८ ॥

इस प्रकार महारथी द्रोणाचार्य मत्स्यों को परास्त करने
 चेदि, कारूप, कर्जेय, पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डवों
 की सेना को बारम्बार मारने और हराने लगे । अत्यन्त
 क्रुपित द्रोणाचार्य को, वन की जलने हुए दागानल
 के समान, सप्त शत्रुसेना को भस्म करने देखकर
 सृञ्जयगण भयभीत हो गये । शत्रुनाशन महारथी
 द्रोणाचार्य के धनुष का शब्द दमों दिशाओं में गूँज
 उठा । द्रोण के हाथ से लूटे हुए बाण असंख्य घोड़ा,
 हाथियों, रथों और पैदलों को नष्ट करने लगे ॥ २९ ॥
 ३३ ॥ श्रीभू ऋतु में प्रबल आँधी से सञ्चालित, शिला
 बरसानेवाले, भेड़ों की तरह महाशुद्ध, महाबाहु,
 मित्रपक्ष को अभयदान करनेवाले महावीर आचार्य

शोभमानां ध्वजे चाऽस्य वेदीमद्राक्षम भारत ।
 हिमवच्छिखराकारां चरतः संयुगे भृशम् ॥ ३६ ॥
 द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कदनं महत् ।
 यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ३७ ॥
 स शूरः सत्यवाक्प्राज्ञो बलवान्सत्यविक्रमः ।
 महानुभावः कल्शान्ते रौद्रां भीरुविभीषणाम् ॥ ३८ ॥
 कवचोर्मिध्वजावर्त्ता मर्त्यकूलापहारिणीम् ।
 गजवाजिमहाप्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥ ३९ ॥
 वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम् ।
 चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाढलाम् ॥ ४० ॥
 शरौघिणीं धनुः स्रोतां बाहुपन्नगसङ्कुलाम् ।
 रणभूमिवहां तीव्रां कुरुक्षेत्रवाहिनीम् ॥ ४१ ॥
 मनुष्यशीर्षपापाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम् ।
 उष्णीषकेनवसनां विकीर्णान्त्रसरीसृपाम् ॥ ४२ ॥
 वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम् ।
 हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ॥ ४३ ॥
 क्रूरां शरीरसङ्घटां सादिनक्रां दुरत्ययाम् ।
 द्रोणः प्रावर्त्तयत्तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥ ४४ ॥
 क्रव्यादगणसञ्जुष्टां श्वशृगालगणायुताम् ।
 निपेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समन्ततः ॥ ४५ ॥

निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए युद्धभूमि में चारों ओर विचरने लगे । उस समय उनका सुवर्णभूषित धनुष मेघमण्डल में स्थित बिजली की तरह चमकता और मण्डलाकार घुमता हुआ चारों ओर दृष्टिगोचर होने लगा ॥ ३६ ॥ उनकी घजा की वेदी हिमाचल के ऊँचे शिखर के समान शोभायमान थी । सुपुत्रों के बन्दनीय महाप्रतापी भयान् विष्णु जैसे दानव दल का दहन करें वैसे ही महार्थशास्त्री आचार्य पाण्डवसेना का सहार करने लगे । महाबली सत्य-पराक्रमी द्रोण ने अखण्डकाल प्रभाव से मनुष्य कुल-नाशिनी, कायरों को भयभीत करानेवाली और यमपुरी को जानेवाली घोर रक्त की नदी बहा दी ॥ ३६-३८ ॥

गीदड़, कुत्ते और गिद्ध आदि मांसभोजी जीव तथा राक्षस उस नदी के आसपास भरे पड़े थे । टूटे-फूटे कचरा उममें लहरो के समान थे, ध्वजारें आवर्त-सदृश थीं, घोड़े और हाथी ग्राहण थे, तलवारें मटली थीं, वीरों की हड्डियाँ कङ्कड़-पत्थर की जगह थीं, भेरी मुरज आदि बाजे कञ्चप थे, ढालें और कच छोटी-छोटी डोंगियाँ थीं, केश सेरार और घास-फूस थे, बाणों की गति बेग था, धनुष प्रगाह थे, बाहुएँ पन्नग और मृत मनुष्यों के मस्तक ही शिलाओं के स्थान पर थे । लाशों की जाँचे मटली सी, गदाएँ डोंगी सी, पगडियाँ फेनपुञ्ज सी, अतड़ियाँ कीड़े-मकोड़े सी, प्रतीन होती थीं । ध्वजारें तटवृक्ष की सी और पुङ्ग-

तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत् ।
 सर्वतोऽभ्यद्रवन्द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ॥ ४६ ॥
 ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन् ।
 गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यं तपन्तं भुवनं यथा ॥ ४७ ॥
 तं तु शूरं महेष्वासं तावकाऽभ्युद्यतायुधाः ।
 राजानो राजपुत्राश्च समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ४८ ॥
 शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
 क्षत्रवर्मा च त्रिंशत्या वसुदानश्च पञ्चभिः ॥ ४९ ॥
 उत्तमौजास्त्रिभिर्वाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः ।
 सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाऽष्टभिः ॥ ५० ॥
 युधिष्ठिरौ द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः ।
 धृष्टशुन्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः ॥ ५१ ॥
 ततो द्रोणः सत्यसन्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
 अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ५२ ॥
 ततो राजानमासाप प्रहरन्तमभीतवत् ।
 अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ५३ ॥
 स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन्दिशः ।
 ज्ञाता ह्यभवदन्वेषां न ज्ञातव्यः कथञ्चन ॥ ५४ ॥
 शिखण्डिनं द्वादशभिर्विशत्या चोत्तमौजसम् ।
 वसुदानं च भहेन प्रैषयन्मसादनम् ॥ ५५ ॥

सगर तथा हाथी नक (बडियाल) में प्रतीत होते थे। उमरक्त की नदी में मांस और हविर की कीचड़ हो रही थी॥३९॥ ५५॥ द्रोणाचार्य की साक्षात् काल के समान सेना का संहार करते देखकर अनेक वीरों के साथ पाण्डवगण उनके मनुमुख आये और उनकी रोकने की चेष्टा करने लगे। मृत्यु के समान तेजस्वी द्रोणाचार्य भी उनसे घोर युद्ध करने लगे। यह देख कर कौरवपक्ष के सब राजा और राजपुत्र भी एकत्र होकर द्रोणाचार्य की चारों ओर से घेरकर उनकी रक्षा करने लगे॥४६॥ ४८॥ महावीर शिखण्डी ने पाँच बाण, क्षत्रवर्मा ने बीस बाण, वसुदान ने पाँच बाण, उत्तमौजा ने तीन बाण, क्षत्रदेव ने सात बाण, सात्यकि

ने साँ बाण, युधामन्यु ने आठ बाण, युधिष्ठिर ने बारह बाण, धृष्टशुन्न ने दस बाण और चेकितान ने तीन बाण द्रोणाचार्य को मारे। महावीर द्रोणाचार्य ने इन वीरों के बाणों की चोट सहकर, झुंझ ही, भल हाथी की तरह रथमेना की लौघरर दृढ़सेन को मार गिराया। फिर वे सहसा राजा क्षेम के सन्मुख पहुँचे। क्षेम निर्भय भाव से प्रहार करने लगे। आचार्य ने उन्हें नत्र बाण मारे। राजा क्षेम मृत्यु की प्राप्त हो गये। उनका शरीर रथ में धृन्नी पर गिर पड़ा॥४९॥ ५३॥ महावीर द्रोणाचार्य चारों ओर फिरकर सेना के मध्यस्थल में पहुँचे। अपने पक्ष के अन्य वीरों की रक्षा वही कर रहे थे, उनकी रक्षा कोई क्या करता।

अशीत्या क्षत्रवर्माणं पद्मिंशत्या सुदक्षिणम् ।
 क्षत्रदेवं तु भस्त्रेन रथनीडादपातयत् ॥ ५६ ॥
 युधामन्युं चतुःपट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम् ।
 विध्वा रुमरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाब्रुवत् ॥ ५७ ॥
 ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः ।
 अपायाज्वनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥ ५८ ॥
 तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत् ।
 स हतः प्रापतद्भूमौ रथाज्जोतिरिवाऽम्बरात् ॥ ५९ ॥
 तस्मिन्हते राजपुत्रे पञ्चालानां यशस्करे ।
 हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान् ॥ ६० ॥
 तांस्तथा भृशसंरब्धान्पञ्चालान्मत्स्यकेकयान् ।
 सृञ्जयान्पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद्वली ॥ ६१ ॥
 सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
 वार्धक्षेमिं चैत्रसेनं सेनाविन्दुं सुवर्चसम् ॥ ६२ ॥
 एतांश्चाऽन्यांश्च सुवहून्नाजानपदेश्वरान् ।
 सर्वान्द्रोणोऽजयद्युद्धे कुरुभिः परिवारितः ॥ ६३ ॥
 तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे ।
 पाण्डवेयान्रणे जघ्नुर्द्रवमाणान्समन्ततः ॥ ६४ ॥
 ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना ।
 पञ्चालाः केकया मत्स्याः समकम्पन्त भारत ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि सप्तसम्बषर्पणि द्रोणयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्रोण ने बीर शिखण्डी को बारह और उत्तमौजा को बीस बाण मारकर एक मछल जण से खुदान को मार गिराया । फिर क्षत्रार्मी को अस्सी और सुदक्षिण को छन्वीस बाण मारकर एक मछल जण से क्षत्रदेव का सिर काट डाला और उन्हें रथ से गिरा दिया । इसके पश्चात् युधामन्यु को चासठ और सात्यकि को तास बाण मारकर वे वड़े वेग से युधिष्ठिर की ओर चले । धर्मपुत्र युधिष्ठिर स्फूर्ति के साथ अपने रथ के वेगशाली घोड़ों को हँकाकर द्रोणाचार्य के समुख से हट गये । अन् महावीर पाञ्चाल्य नाम का राज-कुमार द्रोणाचार्य के समुख आया । आचार्य ने उसका

धनुष काट डाला, उसके सारथी आर रथ के घोड़ों को नष्ट करके उसे भी यमपुरी को भेज दिया । द्रोण के बाणों से निहत होकर महावीर पाञ्चाल्य उस ही रथ से गिर पड़ा जैसे कोई उल्कापिण्ड आकाश से टूट कर पृथ्वी पर गिरता है । पञ्चाल्य के मारे जाने पर सब लोग चारों ओर से “द्रोण को मारो, द्रोण को मारो !” कहकर चिल्लाने लगे ॥ ५४/६० ॥ महा-पराक्रमी आचार्य दुपित होकर पाञ्चाल, मत्स्य, वेन्जय, सृञ्जय आर पाण्डवों की सेना को मारने लगे । चारों ओर हलचल सी मच गई । सात्यकि, चेकितान, धृष्ट-द्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेम और नित्रसेन के पुत्र, सेना-

विन्दु, सुवर्चा और अन्य बहुत मे और द्रोणाचार्य और कौरव-सेना से परास्त हो गये । हे महाराज ! कौरवगण इस प्रकार जय प्राप्त करके भागतो हुई पाण्डवसेना । गण आचार्य से परास्त होकर काँपने लगे ॥ ६१ ॥ ६५ ॥

द्रोणपर्व का इकाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — भारद्वाजेन भक्षेण पाण्डवेण महामृधे ।
 पाश्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्त्तत ॥ १ ॥
 आर्या युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम् ।
 असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः ॥ २ ॥
 स हि वीरो व्रतः शूरो यो भक्षेण निवर्त्तते ।
 अहो नाऽऽसीत्पुमान्कश्चिद्दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम् ॥ ३ ॥
 जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
 त्यजन्तमाहवे प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४ ॥
 महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विपतां भयवर्धनम् ।
 कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ५ ॥
 भारद्वाजं तथाऽनीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम् ।
 के शूराः सन्न्यवर्त्तन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ६ ॥
 सञ्जय उवाच — तान्हृष्टां चलितान्संहये प्रणुतान्द्रोणसायकैः ।
 पञ्चालान्पाण्डवान्मत्स्यान्सृञ्ज्यांश्चेदिकेकयान् ॥ ७ ॥
 द्रोणचापविमुक्तेन शरौघेणाऽशुहारिणा ।
 सिन्धोरिव सहौघेन ह्रियमाणान्यथा प्लवान् ॥ ८ ॥
 कौरवाः सिन्धनादेन नानाबाद्यस्वनेन च ।
 रथाद्विपनरांश्चैव सर्वतः समवारयन् ॥ ९ ॥

बाईसवाँ अध्याय ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा — हे सञ्जय ! उस महासमर में द्रोणाचार्य ने जब पाश्चालों और पाण्डवों की सेना को मार भगाया तब और कौन उनके सम्मुख उनका सामना करने के लिए आया ? कृन्तज्ञ, सत्यपरायण, दुर्योधन के हितैषी, चित्रयुद्धमिपुण, महाधनुर्धर, सत्रुपक्ष के लिए भयङ्कर, कुपित सिंह के समान, मत्स्य गज-राज के तुल्य, पुरुषसिंह शूर द्रोणाचार्य जब जीवन का मोह छोड़कर क्षत्रियों के लिए यशस्करी, वीरों को

प्रिय और कापुरुषों को अप्रिय युद्ध का दृढ विचार करके युद्धभूमि में मृत्यु की तरह निचरने लगे होंगे तब उनका सामना किसने किया होगा ? हे सञ्जय ! उस समय कौन-कौन वीर समर करने के लिए उद्यत हुआ ! सब वृत्तान्त सुन सुनाओ ॥ १ ॥ ६ ॥ सञ्जय ने कहा — हे महाराज ! पाश्चाल, पाण्डव, मत्स्य, सृञ्जय, चेदि और कंकेयणों को आचार्य के दारुण बाणों के प्रहार से पाङ्गिन और बिह्वल होकर सागर के वेग में बहते हुए

तान्पश्यन्सैन्यमध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः ।

दुर्योधनोऽब्रवीत्कर्णं प्रहृष्टः प्रहसन्निव ॥ १० ॥

दुर्योधन उवाच - पश्य राधेय पञ्चालान्प्रणुन्नान्द्रोणसायकैः ।

सिंहेनेव मृगान्वन्यांस्त्रासितान्दृढधन्वना ॥ ११ ॥

नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः ।

यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः ॥ १२ ॥

अर्धमानाः शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना ।

पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्तस्ततः ॥ १३ ॥

सन्निरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना ।

एतेऽन्ये मण्डलीभृताः पावकेनेव कुञ्जराः ॥ १४ ॥

भ्रमरैरिव चाऽऽविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः ।

अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः ॥ १५ ॥

एष भीमो महाक्रोधी हीनः पाण्डवस्तृज्यैः ।

मदीयैरावृतो योधैः कर्णं नन्दयतीव माम् ॥ १६ ॥

व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः ।

निराशो जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः ॥ १७ ॥

कर्ण उवाच - नैव जातु महाबाहुर्जीविन्नाहवमुत्सृजेत् ।

न चेमान्पुरुषव्याघ्रा सिंहनादान्सहिष्यति ॥ १८ ॥

न चाऽपि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः ।

शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ १९ ॥

जहाजो की तरह भागने देखकर कौरव सिंहवाद करने लगे । कौरव सेना में हर्षसूचक त्रिभिध बाजे बजने लगे । कौरवपक्ष के वीरगण पराक्रमपूर्वक शत्रुपक्ष के रथों, घोड़ों और हाथियों को आगे बढ़ने से रोकने लगे । सेना ओर स्वजनमण्डली के मध्य में स्थित राजा दुर्योधन उस समय शत्रुपक्ष की सेना को इस दशा में देखकर प्रसन्नतापूर्वक जेए से हँसकर कर्ण से कहने लगे ॥ १० ॥ हे मित्र कर्ण ! यह देखो, पाञ्चालगण सिंह के भय से विह्वल हिरनों के झुण्ड की तरह आचार्य के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं । वायु के शोक से जैसे वृक्ष टूट जाते हैं वैसे ही ये लोग आचार्य के बाणों से मरकर अथवा घायल होकर पृथ्वी

पर गिर रहे हैं । जान पड़ता है, अब ये लोग युद्ध नहीं करेंगे । वह देखो, अगणित शत्रु-सेना महारथी आचार्य के सुवर्णपुद्ग-शोभित तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से पीड़ित होकर न तो भाग ही सकती हैं और न ठहर ही सकती हैं ; योद्धा लोग इधर-उधर घूम रहे हैं । वह देखो, हाथी जैसे दावानल के मध्य में घिरकर इधर-उधर दौड़ते हैं वैसे ही बहुत सी सेना महारथी द्रोण और अन्यान्य कौरवपक्ष के वीरों से घिरकर इधर-उधर भागती और भागने को गह न पाकर चारों ओर घूम रही है ॥ ११ ॥ वह देखो, पाण्डवों की सेना द्रोणाचार्य के तीक्ष्ण बाणों से, जो भौरों की तरह मना रहे हैं, विह्व होकर भागती है और परस्पर भिड़

विपाग्निद्यूतसंक्लेशान्वनवासं च पाण्डवाः ।
 स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्रामिति मे मतिः ॥ २० ॥
 निवृत्तो हि महाबाहुरभितौजा वृकोदरः ।
 वरान्वरान्हि कौन्तेयो रथोदारान्हनिष्यति ॥ २१ ॥
 असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्न रथैः ।
 आयसेन च दण्डेन व्रातान्त्रातान्हनिष्यति ॥ २२ ॥
 तमेनमनुवर्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः ।
 पञ्चाला केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३ ॥
 शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः ।
 विनिघ्नन्तश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥ २४ ॥
 ते द्रोणमभिवर्तते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः ।
 वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ २५ ॥
 एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम् ।
 अरक्षमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥ २६ ॥
 असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चाऽपि वारणे ।
 अतिभारमहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम् ॥ २७ ॥
 शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ।
 कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥ २८ ॥

जाती है। वह देखो, कुपित भीमसेन को कौरव
 वीरों ने घेर लिया है और पाण्डवों तथा सृजनों की
 सेना साथ छोड़कर भाग खड़ी हुई है। इससे मुझे
 बड़ा आनन्द हो रहा है। वह दुराणा भीमसेन आज
 चारों ओर द्रोण की ही देख रहा है, और जीवन
 तथा राज्य से निराश सा हो गया है॥१५॥१७॥
 कर्ण ने कहा—हे राजेन्द्र! महानीर भीम जीने जी
 यतापि युद्ध से हटनेवाले नहीं हैं। ये हम लोग
 का उद्धार और सिंहनाद भी कदापि नहीं महन कर
 सकते। यह समार नहीं है कि बलवीर्य-मन्त्र,
 युद्धदुर्मद और अश्व-शस्त्र की विद्या को भलीभांति
 सीखे हुए पाण्डव एकाएक हार मान लें और युद्ध
 छोड़ दें। ये विप दान, अग्नि में जलने की चेष्टा,
 हुए की विडम्बना और वनवास के कष्टों को कभी
 न भूलेंगे और समर में न हटेंगे॥१८॥२०॥महा-

तेजस्वी महानीर भीमसेन युद्धभूमि में लौटे हुए आ
 रहे हैं, वे अस्त्र ही हमारे पक्ष के प्रधान-प्रधान
 वीरों को यमपुर पहुँचावेंगे। उनके खड्ग, धनुष,
 शक्ति और लोहमय गदा के एक एक प्रहार में असंख्य
 रथ, हाथी, घोड़े और पैदल विनष्ट होंगे। महानीर
 सात्यकि आदि योद्धा और पाञ्चाल, केकेय, मत्स्य
 और पाण्डुगण भीमसेन के साथ हैं। ये सब महा-
 नीर महापराक्रमी और महारथी हैं॥२१॥२४॥विशेष-
 कर महाकौरी वीर भीमसेन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर
 इन सबको युद्ध करने के लिए भेजा है। मेव जैसे
 मृत्यु को घेर लेते हैं वैसे ही ये सब वीर भीमसेन
 को घेरकर, सुरक्षित करके, चारों ओर में द्रोणाचार्य
 के मन्त्र पर आ रहे हैं। मरने के लिए उद्यत पतङ्ग
 जैसे दीपक पर गिरते हैं वैसे ही ये सब वीर एकाग्र
 चित्त से, जीवन की आशा छोड़कर, अश्विन द्रोणा-

सञ्जय उवाच—राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः ।

भ्रातृभिः सहितो राजन्प्रायाद्रोणरथं प्रति ॥ २९ ॥

तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम् ।

पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाम्निकपर्वणि संवत्सखधपर्वणि द्रोणयुद्धं द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

चार्य के ऊपर आक्रमण करेंगे । अस्त्र-शास्त्रकला में इन्होंने अच्छी प्रकार अभ्यास किया है, अतएव आचार्य का सामना करना और उन्हें रोकना इन लोगों के लिए कुछ दुःसाध्य नहीं है । मेरी समझ में आचार्य पर बहुत भार आ पड़ा है, इसलिए इस समय उनके पास जाकर उनकी सहायता करना हम लोगों का कर्तव्य है । भेड़िये मिलकर जैसे एक घड़े गजराज को मार डालें वैसे ही पाण्डवपक्ष के सब योद्धा मिल-कर ओले द्रोणाचार्य को न मार डालें, यही सोचकर हम आचार्य की सहायता करनी चाहिए ॥ २५ ॥ २८ ॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! कर्ण के ये वचन सुनकर भाइया और अन्य वीरों सहित राजा दुर्योधन महारथी द्रोणाचार्य के समीप गये । तब पाण्डवपक्ष के योद्धा, रत्न-रत्न के घोड़े जिनमें जुते हुए हैं ऐसे, रथों पर बैठकर द्रोणाचार्य को मारने के लिए आगे बढ़े और घोर सिंहनाद तथा कोलाहल करने लगे ॥ २६ ॥ ३० ॥

द्रोणपर्व का चाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सर्वेपामेव मे ब्रूहि रथचिह्नानि सञ्जय ।

ये द्रोणमभ्यवर्त्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच—ऋक्षवर्णैर्हयैर्हृष्टा व्यायच्छन्तं वृकोदरम् ।

रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः सन्न्यवर्त्तत ॥ २ ॥

सारङ्गाश्चो युधामन्युः स्वयं प्रत्वरयन्हयान् ।

पर्यवर्त्तत दुर्धर्यः क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ३ ॥

पारावतसवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः ।

पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टयुष्मो न्यवर्त्तत ॥ ४ ॥

पितरं तु परिप्रेप्सुः क्षत्रधर्मा यतव्रतः ।

सिद्धिं चाऽस्य परां काक्षन्शोणाश्वः सन्न्यवर्त्तत ॥ ५ ॥

पद्मपत्रनिभांश्चाश्वान्मल्लिकाक्षान्खलंकृतान् ।

शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु स्वयं प्रत्वरयन्धुर्यौ ॥ ६ ॥

तेईसवाँ अध्याय ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! भीमसेन आदि जो वीर क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य का सामना करने गये थे, उनके रथों और चिह्नों का वर्णन करो, मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! सुनिधि ।

महारथी भीमसेन रीछ के से रत्न के घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर समरभूमि में आये । महावीर सात्विक चाँदी के रत्न के श्वेत घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर द्रोणाचार्य की ओर चले । महारथी युधामन्यु अत्यन्त क्रुद्ध

दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः ।
 वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवुः ॥ ७ ॥
 कृष्णास्तु मेघसङ्काशा अवहन्नुत्तमौजसम् ।
 दुर्धर्पायाभिसन्धाय क्रुद्धं युद्धाय भारत ॥ ८ ॥
 तथा तित्तिरिकल्मापा हया वातसमा जवे ।
 अवहन्तुमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम् ॥ ९ ॥
 दन्तवर्णास्तु राजानं कालवाला युधिष्ठिरम् ।
 भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन्वातरंहसः ॥ १० ॥
 हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे ।
 अभ्यवर्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
 राज्ञस्त्वनन्तरो राजा पाञ्चाल्यो द्रुपदोऽभवत् ।
 जातरूपमयच्छत्रः सर्वैस्तैरभिरक्षितः ॥ १२ ॥
 ललामैर्हरिभिर्युक्तः सर्वशब्दक्षमैर्युधि ।
 राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्तत ॥ १३ ॥
 तं विराटोऽन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः ।
 केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥ १४ ॥
 स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः ।
 तं तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा ह्योत्तमाः ॥ १५ ॥
 वहमाना वरराजन्त मत्स्यस्याऽमित्रघातिनः ।
 हरिद्रासमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ॥ १६ ॥

होकर सारङ्ग-वर्ण (श्वेत नीला और लाल रङ्ग मिश्रित) के घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर और महायोद्धा धृष्टद्युम्न महावेगशाली सुरार्णभूषित कबूतर के रङ्गवाले अर्थात् श्वेत नाँवे घोड़ों के रथ पर बैठकर युद्ध करने चले । धृष्टद्युम्न के पुत्र महावीर शत्रुधर्मा अपने पिता की रक्षा करने और विजय प्राप्त करने की इच्छा में लाल घोड़ों-वाले रथ के ऊपर बैठकर चले ॥ २१॥ शिखण्डी के पुत्र महाबाहु शत्रुदेव अपने हाथ में, पद्मदल के रङ्गवाले और मल्लिका-पुष्प के रङ्ग की आँगोशले, घोड़ों की हार्जने हुए अंग बड़े । वीर नकुल तोले के पक्ष के रङ्ग के काम्बोजदेशीय दर्शनीय घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर युद्ध करने चले । वीर उत्तमौजा श्वान-मेघवर्ण

घोड़वाले रथ पर बैठकर समरभूमि में आये ॥ १८ ॥ सशस्त्र महावीर सहदेव के रथ में वायुवेगवामी तीनर के रङ्ग के कवरे घोड़े जुते हुए थे । मत्स्य योद्धा सैनिक-गण सुरार्ण के आभूषणों में भूषित वायुवेगवामी घोड़ों में युक्त रथों पर बैठकर युधिष्ठिर के पीछे चले । महाराज युधिष्ठिर के रथ में ऐसे सुन्दर घोड़े जुते हुए थे, जिनका रङ्ग हाथीदंत का सा था और जिनकी गर्दन पर काटे और लगे बाट थे ॥ १९ ॥ पाञ्चाल-राज द्रुपद सुरार्णमण्डित रथ पर बैठकर, युधिष्ठिर के पीछे चलनेवाली सेना में सुरक्षित होकर, धर्मगज के पीछे समरभूमि में चले । राजाओं के मध्य में स्थित महाभयुर्द्वर द्रुपद के रथ में ऐसे घोड़े जुते हुए

पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन् ।
 इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च कैकयाः ॥ १७ ॥
 जातरूपसमाभासाः सर्वे लोहितकध्वजाः ।
 ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १८ ॥
 वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः ।
 आमपात्रनिकाशास्तु पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ १९ ॥
 दत्तास्तुम्बुरुणा दिव्याः शिखण्डिनमुदावहन् ।
 तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः ॥ २० ॥
 तेषां तु पट्सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः ।
 पुत्रं तु शिशुपालस्य नरसिंहस्य मारिष ॥ २१ ॥
 आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशवला हयाः ।
 धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृपभोऽतिवलोदितः ॥ २२ ॥
 काम्बोजैः शवलैरश्वैरभ्यवर्तत दुर्जयः ।
 बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं सुकुमारं ह्योत्तमाः ॥ २३ ॥
 पलालधूमसङ्काशाः सैन्धवाः शीघ्रमावहन् ।
 मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा बालिहजाताः स्वलंकृताः ॥ २४ ॥
 शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृक्षदेवमुदावहन् ।
 स्वमभाण्डप्रतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः ॥ २५ ॥
 क्षमावन्तोऽवहन्संख्ये सेनाविन्दुमारिन्दमम् ।
 युवानमवहन्युद्धे क्रौञ्चवर्णा ह्योत्तमाः ॥ २६ ॥

थे, जो निर्भय, किसी भी शब्द से न भड़कनेवाले, बहु-
 मूल्य आभूषण पहने और परम सुन्दर थे। राजा द्रुपद
 के सिर पर स्वर्णमय छत्र तना हुआ था। मत्स्यराज
 बली विराट उनके पीछे चले। कैकेयदेश के राज-
 कुमार, महावीर शिखण्डी और धृष्टकेतु अपनी-अपनी
 सेना को साथ लिये राजा विराट के पीछे चले। महाराज
 विराट के रथ में पाटल-पुष्प के रङ्ग के श्वेत दिव्य घोड़े
 जुते हुए थे। विराट के पुत्र के रथ में धर्णहारभूषित,
 वेग से चलनेवाले, पीछे घोड़े लगे हुए थे ॥ १२१६ ॥
 सुवर्णवर्ण और सुवर्ण की मालाओं से शलंकृत युद्धनिपुण
 कैकेयदेश के राजकुमार पाँचों भाई कवच पहने,
 लाल ध्वजा और वीरव्यूह की रङ्ग के लाल घोड़ों से

युक्त रथ पर बैठकर वर्षाकाल के बरस रहे मेघ के
 समान शोभायमान हुए ॥ १६१९ ॥ महाबली शिखण्डी
 के रथ में कच्चे घोड़े के रङ्ग के, तुम्बुरु गन्धर्व के दिये हुए,
 बहुमूल्य दिव्य घोड़े लगे हुए थे। युद्ध के लिए आये
 हुए नरह सहस्र पाञ्चालदेशीय योद्धाओं में से छः
 सहस्र वीर समरनिपुण महावीर तेजस्वी शिखण्डी के
 साथ चले। शिशुपाल के पुत्र के रथ में सारङ्ग के रङ्ग के
 (चितकबरे) घोड़े जुते थे। महाबलशाली वीर चेदि-
 नरेश अपनी सेना को साथ लेकर काम्बोज देश के
 घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर युद्ध के लिए चले।
 कैकेयदेश के राजा बृहत्क्षत्र धूर्त के रङ्ग के सिन्धु-
 देशीय घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर संग्राम करने

काश्यस्याऽभिभुवः पुत्रं सुकुमारं महारथम् ।

श्वेतास्तु प्रतिविन्ध्यं तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः ।

यन्तुः प्रेष्यकरा राजन्राजपुत्रमुदावहन् ॥ २७ ॥

सुतसोमं तु यः सौम्यं पार्थः पुत्रमजीजनत् ।

मापपुष्पसवर्णास्तमवहन्वाजिनो रणे ॥ २८ ॥

सहस्रसोमप्रतिमो वभूव पुरे कुरूणामुदयेन्दुनाश्रि ।

तस्मिञ्जातः सोमसंक्रन्दमध्ये यस्मात्तस्मात्सुतसोमोऽभवत्सः ॥ २९ ॥

नाकुलिं तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः ।

आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३० ॥

काञ्चनापिहितैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसन्निभाः ।

द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥ ३१ ॥

श्रुतकीर्तिं श्रुतनिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः ।

ऊहुः पार्थसमं युद्धे चापपन्ननिभा हयाः ॥ ३२ ॥

यमाहुरध्वर्धगुणं कृष्णात्पार्थाञ्च संयुगे ।

अभिमन्युं पिशाङ्गास्तं कुमारमवहन्रणे ॥ ३३ ॥

एकस्तु धार्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान्यः समाश्रितः ।

तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन्रणे ॥ ३४ ॥

पलालकाण्डवर्णास्तु वार्धश्रेभिं तरस्विनम् ।

ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः कृष्णाः खलङ्कृताः ॥ ३५ ॥

चले ॥ १९ ॥ २४ ॥ शिष्यण्डा के पुत्र क्षत्रदेव के रथ में कमल के मे रङ्ग के, मल्लिका पुत्र मन्दरा रङ्ग की आँवों वाले, बाह्यारदेश के दिव्य घोड़े लगे हुए थे । शत्रुदमन सेनाबिन्दु के रथ में सुवर्णजाल से सुरक्षित और रेशम के रङ्ग के, शायत, इच्छानुसार चरने वाले घोड़े शोभायमान थे । काशिराज अभिभूत पुत्र महा-रणी मययुक्त सुकुमाररथों में रथ में कई व पक्षी के रङ्ग के दिव्य घोड़े लगे हुए थे । काशी मर्दन और सन शरीर वाले, शीघ्रगामी और सारथी के इशारे पर इच्छानुसार चरने वाले घोड़े युधिष्ठिर के पुत्र प्रतिविन्ध्य के रथ की शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ अभिमन्यु के पुत्र श्रेष्ठ घोड़ा महाजयी सुतसोम के रथ के घोड़े उद्दद के कूट के रङ्ग के थे । सुतसोम महासोम (चन्द्रमा) के

समान साम्य हैं और उनका जन्म उदयेन्दु पुर (इन्द्र-प्रस्थ) में, सोमाभिषय में, सोम के प्रसाद से हुआ था । वे सोमरथमा में प्रसिद्ध हैं । हे महाराज ! नकुल के पुत्र प्रशस्तीय शतानीक के रथ में सारथी के पुण्य के रङ्ग के और तरुण सूर्य के समान चमकाले श्रेष्ठ घोड़े लगे हुए थे ॥ २८ ॥ ३० ॥ महेंद्र के पुत्र महाजली श्रुतकर्मा के घोड़ा का रङ्ग मयूरग्रीव नाम के पक्षी के रङ्ग का था और उनके मुख में सुवर्ण की लगाम थी, मान भी मन सुनहरा था । अर्जुन के पुत्र अर्जुनतुल्य पराक्रमी श्रुतनिधि श्रुतकीर्ति के रथ के घोड़े का रङ्ग चक्रवर्ण के पक्ष के समान था । युद्ध-क्षेत्र में श्रीकृष्ण और अर्जुन में लड़ें दो युद्धनिपुणता दिगमने वाले परा-क्रमी और अभिमन्यु विद्वत्पुरुष घोड़ों में शोभित रथ

कुमारं क्षितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुच्छदैः ।
 सौचित्तिमवहन्द्युद्धे यन्तुः प्रेक्ष्यकरा हयाः ॥ ३६ ॥
 रुक्मपीठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः ।
 सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन् ॥ ३७ ॥
 रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः ।
 काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३८ ॥
 अस्त्राणां च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम् ।
 तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुदावहन् ॥ ३९ ॥
 यः स पाञ्चालसेनानीद्रौणमंशमकल्पयत् ।
 पारावतसवर्णास्तं धृष्टशुम्भमुदावहन् ॥ ४० ॥
 तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।
 श्रेणिमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ॥ ४१ ॥
 युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनेहंममालिभिः ।
 भीषयन्तो द्विपत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥ ४२ ॥
 प्रभद्रकास्तु काम्बोजाः पदसहस्राण्युदायुधाः ।
 नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्हमवर्णैरथध्वजाः ॥ ४३ ॥
 शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून्विततकार्मुकाः ।
 समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टशुम्भं समन्वयुः ॥ ४४ ॥
 बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः ।
 ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ४५ ॥

पर बैठकर चले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अपने सौ भाइयों को छोड़-
 कर पाण्डवों के पक्ष में जानेवाले आपके पुत्र युयुत्सु
 के रथ में बहुत बड़े, मृणाल के रत्न के, घोड़े जुते
 हुए थे । महावीर वृद्धक्षेम के पुत्र के रथ में पयाल
 के रत्न के अलंकृत और फुर्तीले घोड़े लगे हुए थे ।
 सुचित्ति के पुत्र के रथ में सुवर्णजालशोभित कांठ
 पाँववाले सुशिक्षित विनीत घोड़े जुते हुए थे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥
 श्रेणिमान् राजा के रथ के घोड़े सुवर्णपीठशोभित,
 अलंकृत, सुवर्ण की मालाओं से भूषित, सधे हुए,
 श्वेत रत्न के थे । काशिराज के रथ में सुवर्णमाला
 और सुवर्णपीठ से भूषित धीरप्रकृति घोड़े लगे हुए थे
 ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अस्त्रविद्या, धनुर्वेद और वेदशास्त्र के पार-

गामी पण्डित क्षत्रिश्रेष्ठ सत्यधृति लाल घोड़ों से शोभित
 रथ पर बैठकर द्रोणाचार्य से युद्ध करने चले । पाञ्चाल-
 सेना के सेनापति और द्रोणाचार्य का सिर काटनेवाले
 धृष्टद्युम्न के रथ में श्वेत गोलें रखे के घोड़े जुते हुए
 थे । धृष्टद्युम्न के पीछे यम और कुबेर के तुल्य महा-
 वीर सत्यधृति, युद्धप्रिय सुचित्तिपुत्र श्रेणिमान्, वसुदान,
 काशिराजतनय आदि वीरगण बैराग्यशाली, सुवर्णमाला-
 धारी, काम्बोजदेवीय घोड़ोंवाले रथों पर बैठकर शत्रु-
 सेना को मयभीत करवाते हुए समरभूमि में चले
 ॥ ३९ ॥ ४० ॥ धृष्टद्युम्न के साथ काम्बोजदेवीय छः
 सहस्र प्रभद्रक योद्धा शस्त्र उठाये हुए, प्राणों का मोह
 छोड़कर, धनुष चढ़ाकर शत्रुओं पर बाण बरसाते हुए

इन्द्रायुधसवर्णस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः ।
 आयात्सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः ॥ ४६ ॥
 अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकाचित्रिता इव ।
 राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन् ॥ ४७ ॥-
 कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः ।
 जारासन्धिं हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ॥ ४८ ॥
 ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः ।
 जवे श्येनसमाश्रित्राः सुदामानमुदावहन् ॥ ४९ ॥
 शशलोहितवर्णास्तु पाण्डुरोद्वतराजयः ।
 पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥ ५० ॥
 पञ्चालानां नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः ।
 तस्य सर्पपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥ ५१ ॥
 मापवर्णाश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः ।
 दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन्नुत्तम ॥ ५२ ॥
 शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः ।
 पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन् ॥ ५३ ॥
 रासभारुणवर्णाभाः पृष्ठतो मूपिकप्रभाः ।
 वल्गन्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदावहन् ॥ ५४ ॥
 हरयः कालकाश्चित्राश्चित्रमाल्यविभूषिताः ।
 सुधन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदावहन् ॥ ५५ ॥

चले । उनके रथों में अनेक रत्न के बहुमूल्य घोड़े लगे हुए थे और रथ तथा ध्वजारों सुवर्णमण्डित थीं॥४३॥ ४४॥चेक्रितान के रथ के बहुमूल्य घोड़े सुवर्ण की मालाओं से भूषित, प्रगुल्लचित और न्यौले के रत्न के थे । अर्जुन के मामा कुन्तिभोज पुरुजित् इन्द्रधनुष के रत्नवाले श्रेष्ठ घोड़ा में युक्त रथ में बैठकर युद्ध करने चले । महाराज रोचमान तारुण्य चित्रित आकाश के समान रत्नवाले श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर क्षेणाचार्य का सामना करने चले॥४५॥ ४७॥राले पौरवाले चित्रकरोर घोड़े जरासन्ध के पुत्र वीरश्रेष्ठ सहदेव के रथ में जुते हुए थे । उन घोड़ों के गले में रत्नमण्डित सुवर्ण की मालाएँ पड़ी हुई थीं।

सुदामा नामक वीर के रथ के घोड़े पुष्कालाल के रत्न के और वेग में वायु के समान जनिगले थे । पाञ्चालदेशीय गोपति राजा के पुत्र सिंहसेन के रथ में वरणाश के म टाल रत्न के चमकीले रोएँवाले घोड़े जुते हुए थे । पाञ्चालदेशीय प्रसिद्ध वीर जनमेजय ऐसे रथ पर बैठकर युद्धभूमि में चले जिसमें सरसों के फूल के से रत्नगले बहुमूल्य घोड़े जुते हुए थे । पाञ्चाल्य नाम के राजा के रथ में सुवर्णमालाधारी वेगशाली उड़द के फूल के रत्नगले घोड़े लगे हुए थे॥४८॥५१॥उनकी पीठ दही के रत्न की थी और चेहरों का रत्न विचित्र था। राजा दण्डधार के रथ में पद्मकेसर के रत्न के सुंदर मिरगले, धेनू-गार वृष्ट, शर घोड़े लगे हुए थे । राजा

इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसन्निभाः ।
 काये चित्रान्तराश्चित्राश्चित्रायुधमुदावहन् ॥ ५६ ॥
 विश्रतो हेममालास्तु चक्रवाकोदरा ह्याः ।
 कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहन् ॥ ५७ ॥
 शवलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जाम्बूनदस्रजः ।
 युद्धे सत्यधृतिं क्षेमिमवहन्प्रांशवः शुभाः ॥ ५८ ॥
 एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
 अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्तत ॥ ५९ ॥
 समुद्रसेनपुत्रं तु सामुद्रा रुद्रतेजसम् ।
 अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदावहन् ॥ ६० ॥
 नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः ।
 शैव्यं चित्ररथं संख्ये चित्रमाल्या वहन्हयाः ॥ ६१ ॥
 कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः ।
 रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूर्धुर्युद्धदुर्मदम् ॥ ६२ ॥
 यं तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम् ।
 तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णावहन्हयाः ॥ ६३ ॥
 चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम् ।
 ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा ह्योत्तमाः ॥ ६४ ॥
 एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च ।
 धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोऽभ्यवर्तत ॥ ६५ ॥

व्याघ्रदत्त के रथ में अरुण-मलिन-वर्ण-शरीर और मूसे
 के रत्न की पीठगले घोड़े जुते हुए थे । वे घोड़े जाने
 के लिए बड़ी शीघ्रता दिखा रहे थे ॥ ५२ ॥ ५४ ॥ विचित्र
 मालाओं से भूषित, काले मस्तकगले चितकरे घोड़े
 पुरुषसिंह पाञ्चालदेशीय सुधन्वा के रथ में जुते हुए
 थे । अद्भुतदर्शन, विचित्रवर्ण, वीरवहूटी के रत्न क घोड़े
 चित्रायुध राजा के रथ में जुते हुए थे । कोसलाधिपति
 के पुत्र सुक्षत्र के रथ में विचित्रवर्ण, ऊँचे, सुवर्णमाला-
 भूषित, चक्रों के पेट के से रत्नगले सुन्दर घोड़े
 जुते हुए थे ॥ ५५ ॥ ५७ ॥ मलयधृति क्षेमि भी सुवर्णमाल्य
 धारी, बड़े और ऊँचे, शुभदर्शन, सधे हुए कानों
 घोड़ों से युक्त रथ में बैठकर आगे बढ़े । महावीर शुक

की ध्वजा, कानच, धनुष और रथ के घोड़े आदि सब
 सामान श्वेत हा था । रुद्र के समान तेजस्वी समुद्र
 सेन के पुत्र चन्द्रसेन के रथ के घोड़े चन्द्रमा के
 समान श्वेत थे । शिवि के पुत्र चित्ररथ के रथ के
 घोड़े नीलरुमल के रत्न के, सुवर्णभूषित और विचित्र
 मालाओं से अलङ्कृत थे । मिश्रदयामा वर्ण और लाल-
 श्वेत रंगों से शोभित श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठ-
 कर युद्धप्रिय महायोद्धा रथसेन युद्ध करने चले । पट-
 चर नामक असुरों को मारनेगले और सब मनुष्यों
 से बढ़कर शूर कहलानेगले समुद्राधिप के रथ में
 तोते के रत्न के घोड़े जुते हुए थे ॥ ६१ ॥ ६३ ॥ विचित्र
 माला, कानच, आयुध और ध्वजा से अलङ्कृत चित्रा-

नानारूपै रत्नचिह्नैर्वरुथरथकार्मुकैः ।
 वाजिध्वजपताकामिश्रित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्तत ॥ ६६ ॥
 ये तु पुष्करवर्णस्य तुल्यवर्णा ह्योत्तमाः ।
 ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ६७ ॥
 योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः ।
 श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुं हयावहन् ॥ ६८ ॥
 केशवेन हते संख्ये पितर्यथ नराधिपे ।
 भिन्ने कपाटे पाण्ड्यानां विद्रुतेषु च वन्धुषु ॥ ६९ ॥
 भीष्मादवाप्य चाऽस्त्राणि द्रोणाद्रामात्कृपास्तथा ।
 अस्त्रैः समत्वं सम्प्राप्य रुक्मिकर्णार्जुनाच्युतैः ॥ ७० ॥
 इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्वा जेतुं च मेदिनीम् ।
 निवारितस्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ॥ ७१ ॥
 वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः ।
 स सागरध्वजः पाण्ड्यश्चन्द्ररश्मिनिभैर्हयैः ॥ ७२ ॥
 वैदूर्यजालसञ्छन्नैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।
 दिव्यं विस्फारयन्थापं द्रोणमभ्यद्रवद्रुली ॥ ७३ ॥
 आटरूपकवर्णाभा हयाः पाण्ड्यानुयायिनाम् ।
 अवहन् रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥ ७४ ॥
 नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमुखा हयाः ।
 रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ७५ ॥

युध के रथ में दारु के फूल के रत्न के घोड़े जुते हुए थे । महाराज नील की ध्वजा, कवच, धनुष, रथ के घोड़े आदि सब सामान नीले रत्न का था । चित्रराजा के घोड़े, ध्वजा, पताका, रथ, धनुष आदि सब सामान विचित्रवर्ण नाना रूप रत्नचिह्नों से विचित्र था ॥ ६४ ॥ ६६ ॥ रोचमान के पुत्र हेमवर्ण के रथ के श्रेष्ठ घोड़े पद्म के रत्न के थे । दण्डकेतु के रथ के घोड़े सुद्धसमर्थ, सुढील, शरदण्ड के समान उज्ज्वलगौर पीठवाले, श्वेत अण्डकोशवाले और मुर्गी के अण्डे की सी आभावाले थे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ श्रीकृष्ण के हाथों युद्ध में पिता की मृत्यु होने पर, पाण्ड्यदेश-नरेश के सहायक मित्रों के भाग जाने और नगर लुट जाने पर

जिन्होंने भीष्म, द्रोण और परशुराम से अस्त्रशिक्षा प्राप्त करके अश्वविद्या में रुक्मी, कर्ण, अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान होकर द्वारकापुरी को नष्ट-भष्ट करने और वृध्नीमण्डल को जीतने का अभिप्राय किया था; किन्तु फिर हितचिन्तक सुहृदों के समझाने पर श्रीकृष्ण से वैर और बदला लेने का विचार छोड़ दिया और इस समय जो उत्तमता के साथ अपने राज्य का शासन कर रहे हैं, वे पाण्ड्यनरेश सागरध्वज वैदूर्य-जालमण्डित चन्द्रकिरण के रत्न के घोड़ों से शोभित रथ पर बैठकर, अपने बाहुबल से दिव्य दृढ़ धनुष चढ़ाकर, द्रोणाचार्य के सम्मुख चले ॥ ६९ ॥ ७३ ॥ पाण्ड्यनरेश के अनुयायी १,४०००० श्रेष्ठ रथियों

भरतानां समेतानामुत्सृज्यैको मतानि यः ।
 गतो युधिष्ठिरं भक्त्या त्यक्त्वा सर्वमभीप्सितम् ॥ ७६ ॥
 लोहिताक्षं महाबाहुं बृहन्तं तमरट्टजाः ।
 महासत्त्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम् ॥ ७७ ॥
 सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम् ।
 राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ७८ ॥
 वर्णैरुचावचैरन्यैः सदश्चानां प्रभद्रकाः ।
 सन्न्यवर्त्तन्त युद्धाय बहवो देवरूपिणः ॥ ७९ ॥
 ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः काञ्चनध्वजाः ।
 प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ ८० ॥
 अत्यरोचत तान्सर्वान्धृष्टशुम्भः समागतान् ।
 सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत ॥ ८१ ॥
 अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः कृष्णाजिनोत्तरः ।
 कमण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभः ॥ ८२ ॥
 ध्वजं तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिलोचनम् ।
 भ्राजमानं महासिंहं राजन्तं दृष्टवानहम् ॥ ८३ ॥
 ध्वजं तु कुरुराजस्य पाण्डवस्य महौजसः ।
 दृष्टवानस्मि सौवर्णं सोमं ग्रहगणान्वितम् ॥ ८४ ॥
 मृदङ्गौ चाऽत्र त्रिपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ ।
 यन्त्रेणाऽऽहन्यमानौ च सुखनौ हर्षवर्धनौ ॥ ८५ ॥

के रथों के घोड़े वासकपुष्प के रङ्ग के थे । वीर घटोत्कच के रथ में अनेक रङ्ग, रूप और आकारवाले विचित्र घोड़े जुते हुए थे । उसकी ध्वजा में रथचक्र का चिह्न था । कौरवों के अभिप्राय को और अपनी सब प्रिय वस्तुओं को छोड़कर, भक्तिपूर्वक युधिष्ठिर का आश्रय लेनेवाले, महाबाहु लोहितलोचन युयुत्सु के सुवर्णमय रथ में महाबली पराक्रमी महाकाय घोड़े लगे हुए थे ॥७४॥७५॥सेना के मध्यभाग में स्थित धर्मज्ञ नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर के आगे, पीछे और आसपास बहुत से बहुमूल्य घोड़े चले । देवर्षी बहुत से प्रभद्रकगण बड़े रङ्गों के घोड़ों से शोभित रथों पर बैठकर युद्ध करने के लिए चले । सुवर्णदण्डमण्डित ध्वजाओं से अलङ्कृत वे सब

वीर भीमसेन के साथ इन्द्र सहित देवताओं के समान शोभायमान हुए ॥७८॥७९॥हे राजेन्द्र ! पाण्डव-सेना में सब वीरों से अधिक धृष्टशुम्भ शोभायमान थे । वैसे ही इधर कौरवों की सेना में प्रतापी द्रोणाचार्य की शोभा सब वीरों से बढ़कर थी । द्रोणाचार्य के रथ में ध्वजा के ऊपर कृष्णाजिन और सुवर्णमय कमण्डलु बहुत ही शोभायमान हो रहा था । हे महाराज ! मैंने देखा कि भीमसेन की ध्वजा पर वैदूर्य-मणिमय नेत्रों से युक्त महासिंह की अर्ध शोभा हो रही थी । महाराज युधिष्ठिर के रथ में सुवर्णनिर्मित प्रहों से युक्त चन्द्रमा की अर्ध शोभा दिखाई पड़ रही थी ॥८१॥८४॥उनके रथ में बहुत बड़े दिव्य-नन्द-उपनन्द

शरभं पृष्ठसौवर्णं नकुलस्य महाध्वजम् ।
 अपश्याम रथेऽत्युग्रं भीमयाणमवस्थितम् ॥ ८६ ॥
 हंसस्तु राजतः श्रीमान्ध्वजे घण्टापताकवान् ।
 सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विपतां शोकवर्धनः ॥ ८७ ॥
 पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमाध्वजभूषणम् ।
 धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः ॥ ८८ ॥
 अभिमन्योः कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः ।
 रथे ध्वजवरो राजस्तसचामीकरोऽञ्जलः ॥ ८९ ॥
 घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत ।
 अश्वश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा ॥ ९० ॥
 माहेन्द्रं च धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
 वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यममृन्तृप ॥ ९१ ॥
 त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम् ।
 तद्विव्यमजरं चैव फाल्गुणनार्थाय वै धनुः ॥ ९२ ॥
 वैष्णवं नकुलायाऽथ सहदेवाय चाऽश्विजम् ।
 घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनुर्दिव्यं भयानकम् ॥ ९३ ॥
 रौद्रमाग्नेयकौवेरं याम्यं गिरिशमेव च ।
 पञ्चानां द्रौपदेयानां धनुर्त्नानि भारत ॥ ९४ ॥
 रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं लेभे यद्रोहिणीसुतः ।
 तत्तुष्टः प्रददौ रामः सौभद्राय महात्मने ॥ ९५ ॥

नाम के दो। घटङ्ग—यन्त्र के द्वारा मधुर स्वर से बज
 कर—हर्ष को बढ़ा रहे थे। नकुल की ध्वजा में
 सुवर्ण की पीठ से शोभित अतीव उग्र शरभ शनु-
 पक्ष की सेना को भयभीत करवा रहा था। सहदेव
 की ध्वजा में घण्टा-पताका आदि सहित चाँदी का बना
 हुआ हंस शत्रुओं के शोक को बढ़ा रहा था॥ ८५। ८७॥
 द्रौपदी के पाँचों पुत्रों की ध्वजाओं में क्रमशः धर्म,
 वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों की प्रतिमाएँ शोभाय-
 मान थीं। कुमार अभिमन्यु के रथ की ध्वजा में सुवर्ण
 का बना हुआ शार्ङ्ग पक्षी था। महाबल घटोत्कच
 की ध्वजा में विकटरूप गिद्ध अङ्कित था। घटोत्कच
 के रथ में, राक्षसराज रावण के ऐसे इच्छानुसार चलने-

वाले, बहुमूल्य घोड़े जुते हुए थे॥ ८८। ९०॥ हे महाराज।
 राजा युधिष्ठिर के पास दिव्य माहेन्द्र का धनुष था।
 भीमसेन के हाथ में दिव्य वायु का धनुष था। कामी
 जीर्ण न होनेवाले जिम (गणेश) धनुष को ब्रह्मा
 जी ने त्रैलोक्य की रक्षा करने के लिए बनाया था वह
 अर्जुन के हाथ में था। नकुल के हाथ में विष्णु का
 धनुष और सहदेव के हाथ में अश्विनीकुमारों का दिव्य
 धनुष था। घटोत्कच के हाथ में बहुत ही भयानक
 दिव्य पौलस्त्य धनुष था॥ ९१। ९२॥ द्रौपदी के पाँचों
 पुत्रों के पास क्रमशः रुद्र, अग्नि, कुवेर, यम और
 गिरिश के श्रेष्ठ धनुष थे। बलराम को जो श्रेष्ठ रौद्र
 धनुष प्राप्त हुआ था वही धनुष उन्होंने प्रसन्न होकर

एते चाऽन्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः ।
 तत्राऽदृश्यन्त शूराणां द्विपतां शोकवर्धनाः ॥ ९६ ॥
 तदभूद् ध्वजसम्बाधमकापुरुषसेवितम् ।
 द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रमिवाऽर्पितम् ॥ ९७ ॥
 शुश्रुवुर्नामगोत्राणि वीराणां संयुगे तदा ।
 द्रोणमाद्रवतां राजन्स्वयंवर इवाऽऽहवे ॥ ९८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि सप्ततमोऽध्यायः ॥ २३ ॥
 वीर अभिमन्यु को दे दिया था । कुमार अभिमन्यु के हाथ में वही धनुष था ॥ ९४ ॥ हे राजेन्द्र । ये तथा अन्य अनेक शूराँ वी सुवर्णमण्डित आर शत्रुओं के लिए शोकवर्द्धक ध्वजाएँ दिखाई पड़ रही थीं । हे महाराज ! द्रोणाचार्य की सेना में चारों ओर ध्वजाएँ देख सुनाई पड़ने लगे ॥ ९६ ॥ ९८ ॥

द्रोणपर्व का तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि सञ्जय ।
 आहवे न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥ - १ ॥
 सम्प्रयुक्तः किलैवाऽयं दिष्टैर्भवति पूरुषः ।
 तस्मिन्नेव च सर्वार्थाः प्रदृश्यन्ते पृथग्विधाः ॥ २ ॥
 दीर्घ विप्रोपितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी ।
 अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
 स एव महतीं सेनां समावर्त्तयदाहवे ।
 किमन्यद्देवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाऽभवत् ॥ ४ ॥
 युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
 स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥ ५ ॥

चौबीसवाँ अध्याय ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा — हे सञ्जय ! युद्धभूमि में भीमसेन के साथ जानेवाले ये वीर राजा लोग देवताओं की सेना को भी व्याकुल और परास्त कर सकते हैं । इनमें कोई भी युद्ध से हटनेवाला नहीं है । हे सञ्जय ! यह जीत भाग्य के अधीन होकर ही जन्म लेता है । मनुष्य चाहे कुछ भी विचार करे, किन्तु उस भाग्य के अनुसार ही फल होता है । यही

कारण है कि मनुष्य विचार करता कुछ है और होता कुछ है । मृगशाला पहनकर आर जटाधारी होकर युधिष्ठिर बहुत समय तक वन में रहे, एक वर्ष का अज्ञातवास भी उन्होंने पूर्ण किया । वही युधिष्ठिर अब इतनी भारी सेना एकत्र करके, युद्ध ठानकर, कौरवपक्ष को इस प्रकार परास्त कर रहे हैं । केरे पुत्र की इस पराजय का कारण अतिरिक्त भाग्य के

द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः ।
 स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥ ६ ॥
 अथ मे केकया लब्धाः काशिकाः कोसलाश्च ये ।
 चेदयश्चाऽपरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः ॥ ७ ॥
 पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा ।
 इति मामब्रवीत्सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ॥ ८ ॥
 तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।
 निहतः पार्यतेनाऽजौ किमन्यद्भागधेयतः ॥ ९ ॥
 मध्ये राज्ञां महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम् ।
 सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं मृत्युरूपेयिवान् ॥ १० ॥
 समनुप्राप्तकृच्छ्रोऽहं मोहं परममागतः ।
 भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नाऽहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥
 यन्मां क्षत्ताऽब्रवीत्तात प्रपश्यन्पुत्रवृद्धिनम् ।
 दुर्योधनेन तत्सर्वं प्राप्तं सूत मया सह ॥ १२ ॥
 नृशंसं तु परं नु स्यान्त्यक्त्वा दुर्योधनं यदि ।
 पुत्रशोषं चिकीर्षयं कृत्स्नं न मरणं व्रजेत् ॥ १३ ॥
 यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः ।
 सोऽस्माच्च हीयते लोकात्क्षुद्रभावं च गच्छति ॥ १४ ॥
 अथ चाऽप्यस्य राष्ट्रस्य हतोऽस्ताहस्य सञ्जय ।
 अवशोप न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १५ ॥

आर क्या हो सकता है ॥१४॥ इसी से मैं कहता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य को साथ लेकर ही जन्म लेता है । मनुष्य जिसको नहीं चाहता, उसी ओर भाग्य उसे खींच ले जाता है । तत्पर्य यह है कि भाग्य जतन कर साथ नहीं देना तब तक मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी नहीं कर पाता । देखो, युधिष्ठिर ने जुआ खेलकर, सर्वस्व हारकर, क्लेश सह, परन्तु भाग्य के अनुकूल होने से फिर भी उन्हें सहायक साथी मिल गये । मन्दमति दुर्योधन पहले मुझसे कहा करता था कि कैकेय, काशी, कोशल, चेदि और उद्ग देश के ये द्वा भेरे ही पक्ष में हैं । उसने मुझसे यह भी कहा था कि पृथ्वीमण्डल का

अधिकांश उम्मी के अधिकार में है, युधिष्ठिर का अधिकार में उतनी पृथ्वी नहीं है ॥१५॥ उसी महती सेना से सुरक्षित होने पर भी महावीर द्रोणाचार्य युद्ध भूमि में धृष्टद्युम्न के हाथ से मारे गये, तो यह मेरे पुत्र के दुर्भाग्य के अनिरिक्त और क्या कहा जा सकता है 'अहो ! सदा युद्धप्रिय, सब अस्त्रों के प्रयोग में सिद्ध-हस्त, महानाहु अद्वितीय योद्धा द्रोणाचार्य इतने राजाओं के मध्य में सुरक्षित रहकर भी कैसे मारे गये । भीष्म और द्रोण की मृत्यु का समाचार सुनने से मैं बहुत व्याकुल होकर कष्ट प्राप्त कर रहा हूँ । अब यह दुःखमय जीवन रन्वने को मेरा जी नहीं चाहता ॥१६॥ मुझे पुत्र की ममता में कैसे देखकर नीतिज्ञ

कथं स्यादवशेषो हि धुर्ययोरभ्यतीतयोः ।
 यौ नित्यमुपजीवामः क्षभिणौ पुरुषर्षभौ ॥ १६ ॥
 व्यक्तमेव च मे शंस यथा युद्धमवर्त्तत ।
 केऽयुध्यन्के व्यपाकुर्वन्के क्षुद्राः प्राद्रवन्भयात् ॥ १७ ॥
 धनञ्जयं च मे शंस यद्यच्चके रथर्षभः ।
 तस्मान्द्रयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च वृकोदरात् ॥ १८ ॥
 यथाऽऽसीच्च निवृत्तेषु पाण्डवेषु सञ्जय ।
 मम सैन्यावशेषस्य सन्निपातः सुदारुणः ॥ १९ ॥
 कथं च वो मनस्तात निवृत्तेष्वभवत्तदा ।
 सामकानां च ये शूराः के कांस्तत्र न्यवारयन् ॥ २० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि सप्तसप्तम्यध्यायः ॥ २४ ॥

विदुर ने पहले जो कुछ कहा था वह सज्जने और दुर्गो
 धन के आगे आया । हाय ! यदि मैं उसा समय नृशस
 दुर्गोधन को छोड़ देता तो इस समय मेरे सभी
 पुत्र न मारे जाते । एक जो निजाल देने से शेष सज्ज
 बच जाते । सत्य है कि जो मनुष्य धर्म को छोड़कर
 केवल अर्थ (धन) को ही देखता है वह इस लोका
 में सुखी नहीं होता, लोग उसे लुट समझते हैं ॥ १२ ॥
 १४ ॥ हे सञ्जय ! इस राज्य के श्रेष्ठ प्रोद्धा और रक्षक
 द्रोणाचार्य के मारे जाने से मुझे यह राज्य विनाश
 से किसी प्रकार बचता नहीं देख पड़ता । जिन दोनों
 प्रधान वीर पुरुषों के बाहुजल के आश्रय हम लोग
 निश्चिन्त और निष्कण्ठ थे, उन क्षमताशाली मय
 और द्रोण की जव मृत्यु हो गई है तब हम लोग कसे

बच सकते हैं ? कौन हमारी रक्षा कर सकता है ?
 हे सञ्जय ! अब तुम उस भयानक युद्ध का सब वृत्तान्त
 विस्तारपूर्वक मुझे सुनाओ । किस किसने युद्ध किया ?
 किस किसने किस किस पर आक्रमण किया ? कौन-
 कौन क्षुद्रचेता मारर रणभूमि से भाग खड़े हुए ? श्रेष्ठ
 योद्धा अर्जुन ने कौन-कौन अद्भुत कर्म किये ? ॥ १५ ॥
 १७ ॥ स्वयं म मुझ अपने भतीजे अर्जुन और भीमसेन
 स ही अपन पक्ष के लिए बड़ा भय है । पाण्डवसेना
 के यों आक्रमण करने पर मेरे पक्ष की शेष सेना ने
 किस प्रकार कमा दारुण सप्राम किया ? युद्ध में
 पाण्डवों के प्रवृत्त होने पर तुम लोगों की मानसिक
 अवस्था कैसी हुई ? मेरे पक्ष के किन-किन शूर वीरों ने
 पाण्डवपक्ष के वारों का सामना किया ? ॥ १८ ॥ २० ॥

द्रोणपर्व का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच—महन्मैरवमासीन्नः सन्निवृत्तेषु पाण्डुषु ।
 दृष्ट्वा द्रोणं छाद्यमानं तैर्भास्करमिवाऽम्बुदैः ॥ १ ॥
 तैश्चोद्धूतं रजस्तीव्रमवचक्रे चमूं तव ।
 ततोऽहतममस्याम द्रोणं दृष्टिपथे हते ॥ २ ॥

पचीसवाँ अध्याय ॥ २५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! पाण्डवों ने जब
 इस प्रकार युद्धभूमि में आकर, मृत्यु को जैसे मेघ

छिपा लेते हैं, जैसे ही द्रोणाचार्य को घेर लिया तब
 हम लोग बहुत ही व्याकुल हो उठे । पाण्डवों की

तांस्तु शूरान्महेष्वासान्क्रूरं कर्म चिकीर्षतः ।
 दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्वसैन्यं समचूचुदत् ॥ ३ ॥
 यथाशक्ति यथात्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः ।
 वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४ ॥
 ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत्सुतस्तव ।
 आराद्धृष्ट्वा किरन्वाणैर्जिघृक्षुस्तस्य जीवितम् ॥ ५ ॥
 तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाऽऽहवे ।
 तं च भीमोऽतुदद्वानैस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ६ ॥
 त ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः शूराः प्रहारिणः ।
 राज्यं मृत्युभयं त्यक्त्वा प्रत्यतिष्ठन्परान्युधि ॥ ७ ॥
 कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेप्सुं विशाम्पते ।
 पर्यवारयदायान्तं शूरं समरशोभिनम् ॥ ८ ॥
 तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।
 कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ९ ॥
 सैन्धवः क्षत्रवर्माणमायान्तं निशितैः शरैः ।
 उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १० ॥
 क्षत्रवर्मा सिन्धुपतेरिच्छता केतनकार्मुके ।
 नाराचैर्दशभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ११ ॥
 अथाऽन्यद्जनुरादाय सैन्धवः कृतहस्तवत् ।
 त्रिविधाध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥ १२ ॥

सेना के चलने किरने से इतनी धूट उड़ो कि उससे
 कौरवों की सेना दह गई। आचार्य जो न देखकर
 हम लोगों ने समझा कि वे शत्रुओं के हाथों मार
 डाले गये॥१॥२॥उस समय राजा दुर्योधन न उन
 शूरों और महाधनुस्त्रों की द्रोणधनुस्त्र दुष्कर धूर
 कर्म करने के लिए उद्यत देखकर कारन सेना का
 उनका सामना करने के लिए इस प्रकार आज्ञा दी—
 हे गीर सैनिकों! तुम सब नरक मिलकर, यथाशक्ति
 उसाह और पराक्रम के अनुसार, पाण्डवों की इस
 सेना को शेरों और नष्ट करो॥३॥४॥हे राजेन्द्र!
 तब आपने पुत्र गीर दुर्मर्षण दूर से भीमसेन को देख
 कर, द्रोणाचार्य के जीवन की रक्षा करने के लिए,

भीमसेन के सम्मुख आये और उन पर उड़ो स्फूर्ति
 के साथ असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे। क्रोध
 से भरे हुए यमराज के समान महावीर दुर्मर्षण ने
 ज्योंही भीमसेन पर बाणों की वर्षा की त्योंही भीमसेन ने
 दुर्मर्षण के ऊपर निरंतर बाण प्रसूता आरम्भ किया।
 इस प्रकार ये दोनों गीर लोमहर्षण संग्राम करने लगे।
 उपर आया ये युद्धनिपुण महारथी लोग, अपने अपने
 स्वामियों की आज्ञा पानर, राज्य की ममता और मृत्यु
 का भय छोड़कर शत्रुओं से भिड़ गया॥१०॥युद्ध के
 लिए उद्यत कृतवर्मा ने मत्त मातङ्ग के समान पराक्रमी
 सा यन्त्रि को और उग्रधन्वा सिन्धुराज जपदधने क्षत्रवर्मा
 को तीक्ष्ण बाण मारकर द्रोणाचार्य के समीप जाने

युयुत्सुं पाण्डुवार्थाय यतमानं महारथम् ।
 सुबाहुर्भारतं शूरं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १३ ॥
 सुबाहोः सुधनुर्वाणावस्यतः परिघोपमौ ।
 युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद्भुजौ ॥ १४ ॥
 राजानं पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
 वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्राट् समवारयत् ॥ १५ ॥
 तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिर्द्भिरवाकिरत् ।
 मद्रेशस्तं चतुःपट्या शरैर्विध्वाऽनदद्भृशम् ॥ १६ ॥
 तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त च कार्मुकम् ।
 क्षुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चुकुशुर्जनाः ॥ १७ ॥
 तथैव राजा बाह्यीको राजानं द्रुपदं शरैः ।
 आद्रवन्तं सहानीकः सहानीकं न्यवारयत् ॥ १८ ॥
 तद्युद्धमभवद्दोरं वृद्धयोः सहसेनयोः ।
 यथा महायूथपयोर्द्विपयोः सम्प्रभिन्नयोः ॥ १९ ॥
 बिन्दानुबिन्दावाचन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
 सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा वलिम् ॥ २० ॥
 तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद्देवासुरोपमम् ।
 मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्चरथदिग्म् ॥ २१ ॥
 नाकुलिं तु शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः ।
 अस्थन्तमिषुजालानि घान्तं द्रोणादवारयत् ॥ २२ ॥

से रोका । क्रोध से बिह्वल क्षत्रवर्मा ने जयद्रथ की
 ध्वजा और धनुष काटकर उनके मर्मस्थलों में दम
 नाराच बाण मारे । जयद्रथ ने भी स्फूर्ति के साथ
 दूसरा दृढ़ धनुष लेकर लोहमय तीक्ष्ण बाणों से क्षत्र-
 वर्मा को घायल किया ॥ १०।१२॥ पाण्डवोंकी विजय के
 लिए यत्न करनेवाले महारथी शूर युयुत्सु को सुबाहु ने
 द्रोणाचार्य के समीप जाने से रोका । तब महारथी
 युयुत्सु ने अत्यन्त तीक्ष्ण दो चुर बाणों से सुबाहु की
 धनुष-बाण-सहित भुजाएँ काट डालीं । जैसे तटभूमि
 समुद्र के वेग को रोकती हैं वैसे ही शल्य ने धर्मात्मा
 राजा युधिष्ठिर को रोका ॥ १३।१५॥ धर्मराज ने शल्य
 के मर्मस्थलों में बहुत से बाण मारे । शल्य भी युधि-

धिर को चीतठ बाण मारकर जोर से सिंहनाद करने
 लगे । सिंहनाद करनेवाले शल्य पर 'अ यन्त कुपित
 होकर युधिष्ठिर ने दो चुर बाणों से उनकी राजा
 और धनुष काट डाला । यह देखकर लोग ऊँचे
 स्तर से चिल्लाने लगे । सेना सहित बाण बरसते आते
 राजा द्रुपद को राजा बाह्यीक ने और उनकी सेना
 ने रोका । मदीन्मत्त महायूथ के अधिपति दो गज-
 राजा के समान ये दोनों अपर सेना के स्वामी बुद्धि
 राजा घोर युद्ध करने लगे ॥ १६।१९॥ पूर्व समय में
 इन्द्र और अग्नि ने जिस प्रकार असुराधिप राजा बलि
 को बाणों से घायल किया था उसी प्रकार अग्नि
 देश के राजपुत्र दोनों भाई बिन्द और अनुबिन्द मत्स्य-

ततो नकुलदायादन्निभिर्भट्टैः सुमंशितैः ।
 चक्रे विवाहुशिगमं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३ ॥
 सुतमोमं तु विक्रान्तमायान्तं तं शौघिणम् ।
 द्रोणायाऽभिमुखं वीरं त्रिविंशतिरवारयत् ॥ २४ ॥
 सुतमोमस्तु संकुष्ठः स्वपितृव्यमजिह्वगोः ।
 त्रिविंशतिं शौघेभित्वा नाऽभ्यवर्तत दंशितः ॥ २५ ॥
 अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैर्यत्तेः शितैः ।
 पद्भिः साश्वनियन्तागमनयग्रममादनम् ॥ २६ ॥
 श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
 चत्रसेनिर्महाराज तत्र पौत्रं न्यवारयत् ॥ २७ ॥
 तौ पौत्रौ तत्र दुर्धर्षौ परस्परवधोपिणौ ।
 पितृणामर्थसिद्धयर्थं चक्रतुर्गुह्यमुत्तमम् ॥ २८ ॥
 तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं महाहवे ।
 द्रोणिर्मानं पितुः कुर्वन्मार्गणैः समचारयत् ॥ २९ ॥
 नं क्रुद्धं प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः ।
 सिंहलांगूललक्षमाणं पितुरथं व्यवस्थितम् ॥ ३० ॥
 प्रवपन्निव वीजानि वीजकाले नरर्पभ ।
 द्रोणायनिं द्रोपदेयाः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३१ ॥
 आर्जुनिं श्रुतकीर्तिं तु द्रोपदेयं महारथम् ।
 द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं दौःशासनिरवारयत् ॥ ३२ ॥

राज विराट को बाणों में बरने लगे । मत्स्य और
 कैकेय देश के बाँझ लोग पारसर भिड़कर देशभर-
 सप्राप्त की भाँति अत्यन्त घोर और अद्भुत युद्ध करने
 लगे । दोनों ओर की चतुरागिणी सेना भिड़ गई ॥ २० ॥
 २१ ॥ नकुट के पुत्र वीर शतानीक बाणा की वर्षा
 करते हुए द्रोणाचार्य के सम्मुख जा रहे थे । उनको
 वीर भूतकर्मा ने आगे बढ़ने से रोक़ा । शतानीक ने
 अत्यन्त क्रुद्ध होकर तीन तीक्ष्ण गल्ल बाणा से भूत-
 कर्मा के दोनों हाथ काटकर सिर काट डाला । महा-
 वीर त्रिविंशति ने आचार्य की ओर जानेवाले बल-
 विरूमशाली सुतसेम को रोका । उन्होंने कुपित
 होकर सीधे निशाने पर पहुँचनेवाले धीमे बाण बरसा-

कर अपने बाबा त्रिविंशति के मर्मस्थलों को छिन्न-
 भिन्न करना आरम्भ किया ॥ २२ ॥ २५ ॥ महावीर भीम-
 रथ ने धीमे लोहमय बाण बरसाकर शान्त की पीड़ित
 किया और उनके सारथी तथा रथ के घोड़ों को
 छ बाणों में मार गिराया । मोर-सदृश घोड़े निमग्न
 जुने हुए थे, ऐसे रथ पर बैठकर आते हुए महावीर
 श्रुतकर्मा को चित्रमेन के पुत्र ने आगे बढ़ने से रोका ।
 हे राजेन्द्र ! आपके पराक्रमी पोते, अपने-अपने पितृ-
 वृत्त के नाम और मान की रक्षा करने के लिए,
 एक दूसरे के प्राण लेने का यत्न करते हुए घोर
 सप्राप्त करने लगे ॥ २६ ॥ २८ ॥ सिंहपुच्छ के चिह्न से
 युक्त धजा से शोभित रथ पर बैठे हुए महावीर

तस्य कृष्णसमः कार्पिण्यमिर्मलैः सुसंशितैः ।
 धनुर्ध्वजं च सूतं च छित्त्वा द्रोणान्तिकं ययौ ॥ ३३ ॥
 यस्तु शूरतमो राजन्नुभयोः सेनयोर्मतः ।
 तं पटच्चरहन्तारं लक्ष्मणः समवारयत् ॥ ३४ ॥
 स लक्ष्मणस्येष्वसनं छित्त्वा लक्ष्म च भारत ।
 लक्ष्मणे शरजालानि विस्तृजन्वह्मशोभत ॥ ३५ ॥
 विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम् ।
 पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा ॥ ३६ ॥
 ततस्तमिपुजालेन याज्ञसेनिः समावृणोत् ।
 विधूय तद्वाणजालं वभौ तव सुतो बली ॥ ३७ ॥
 अङ्गदोऽभिमुखं वीरमुत्तमौजसमाहवे ।
 द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं शरौघेण न्यवारयत् ॥ ३८ ॥
 स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
 सैनिकानां च सर्वेषां तयोश्च प्रातिवर्धनः ॥ ३९ ॥
 दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली ।
 द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥ ४० ॥
 सदुर्मुखं भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाऽभ्यताडयत् ।
 तस्य तद्विवभौ वक्त्रं सनालमिव पङ्कजम् ॥ ४१ ॥
 कर्णस्तु केकयान्भ्रातृन्पञ्च लोहितकध्वजान् ।
 द्रोणायाऽभिमुखं याताञ्शरवर्षैरवारयत् ॥ ४२ ॥

अश्वत्थामा ने अपने पिता के गौरव और प्राणों की रक्षा करने के लिए बहुत से बाण बरसाकर राजपुत्र प्रतिनिधियों को रोका । महाबाहु प्रतिनिधियों भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर मर्मभेदी अनेक बाण मारकर उन्हें पीड़ित करने लगे । द्रौपदी के पुत्रगण, खेत में बीज बोने वाले किसान की तरह, अश्वत्थामा के ऊपर निरन्तर बाण बरसाने लगे ॥ २९ ॥ अर्जुन के पुत्र महाबाहु श्रुतकीर्ति जन युद्ध के लिए आचार्य की ओर आगे बढ़े तब दुःशासन के पुत्र ने उनको रोका । अर्जुन के तुल्य पराक्रमी श्रुतकीर्ति ने बहुत पने तीन भए बाणों से दुःशासन के पुत्र के धनुष, घन्ना और सारथी के सिर को काट डाला और फिर आगे की

प्रस्थान किया । हे राजेन्द्र । दोनों पक्ष के वीर जिन्हें प्रधान वीर समझते हैं, उन पटच्चर असुरों का सहार करनेवाले वीर को राजकुमार लक्ष्मण ने रोका । पटच्चरविनाशन वीर ने कुपित होकर लक्ष्मण के धनुष और धजा को काट डाला और उन पर बाण बरसाना आरम्भ किया ॥ ३२ ॥ महाप्राज्ञ नययुक्ता विकर्ण ने रणभूमि में द्रोण की ओर जाते हुए शिखण्डी को रोका । तब वे भी विकर्ण के ऊपर बाण बरसाने लगे । महाबाहु विकर्ण ने अनायास शिखण्डी के सब बाण काट डाले । महावीर उत्तमाजा आचार्य की ओर वेग से जा रहे थे, उन्हें महाबाहु अङ्गद ने बाण बरसाकर रोका । ये दोनों वीर क्रमशः अत्यन्त प्री

ते चैनं भृशसन्तप्ताः शरवर्षैरवाकिरन् ।
 स च ताञ्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ॥ ४३ ॥
 नैवं कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्वाणसंवृताः ।
 साश्वसूतध्वजरथाः परस्परशराचिताः ॥ ४४ ॥
 पुत्रास्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च ह ।
 नीलकाश्यजयत्सेनांस्त्रयस्त्रीन्प्रत्यवारयन् ॥ ४५ ॥
 तद्युद्धमभवद्धोरमीक्षितृप्रीतिवर्धनम् ।
 सिंहव्याघ्रतरक्षूणां यथर्क्षमहिपर्वभैः ॥ ४६ ॥
 क्षेमधूर्तिवृहन्तौ तु आतरौ सात्वतं युधि ।
 द्रोणायाऽभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततश्चतुः ॥ ४७ ॥
 तयोस्तस्य च तद्युद्धमत्यद्भुतमिवाऽभवत् ।
 सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ४८ ॥
 राजानं तु तथाऽम्बष्ठमेकं युद्धाभिनन्दिनम् ।
 चेदिराजः शरानस्यन्क्रुद्धो द्रोणादवारयत् ॥ ४९ ॥
 ततोऽम्बष्ठोऽस्थिभेदिन्या निरभिद्यच्छलाकया ।
 स त्यक्त्वा मशरं चापं रथाङ्गमिमुपागमत् ॥ ५० ॥
 वार्धक्षेमिं तु बाष्पण्यं कृपः शारद्वतः शरैः ।
 अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्वाणैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५१ ॥

युद्ध करने लगे। उस महायुद्ध को देखकर दोनों
 पक्ष के योद्धा लोग परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए
 ॥३६॥३९॥महावीर दुर्मुख ने द्रोणाचार्य की ओर
 जात हुए महारथ। पुरुजित को बन्धदन्त बाण बरसा-
 कर रोका। महारथी पुरुजित ने क्रुपित होकर दुर्मुख
 की भीड़ों के मध्य में एक नाराच बाण मारा, जिससे
 दुर्मुख का मुखमण्डल नालयुक्त कमल के समान
 शोभायमान हुआ॥४०॥४१॥महारथी कर्ण ने आचार्य
 के सम्मुख जाते हुए छाल धजावाले कैकेयदेशीय
 पाँचों भाइयों को बाण वर्षा करके रोका। वे कर्ण
 के बाणप्रहार से अत्यन्त पीड़ित होकर उन पर बाणों
 की वर्षा करने लगे। कर्ण ने भी बारम्बार बाण बरसा-
 कर उनको अट्टम सा कर दिया। इस प्रकार कर्ण
 और कैकेयदेश के पाँचों भाई राजकुमार एक दूसरे
 के बाणों से घेरे, सारथी, रथ और धजा-सहित

अट्टम हो गये॥४२॥४४॥हि महाराज! आपके तीनों
 पुत्रों—दुर्जय, जय और विजय—ने नील, काश्य और
 जयत्सेन इन तीन वीरों को रोका। जैसे सिंह, बाघ
 और चीते के साथ भाख, भैसे और सौँझ का संग्राम
 हो वैसे ही आपके तीन पुत्रों के साथ उक्त तीनों
 वीरों का घोर युद्ध देखकर दक्षिणगण परम सन्तुष्ट
 हुए। क्षेमधूर्ति और वृहन्त इन दोनों भाइयों ने
 आचार्य की ओर जाते हुए सारत्त को तीक्ष्ण बाण
 बरसाकर रोका। जैसे जहल में सिंह के साथ दो
 मदनमत्त गजराजों का युद्ध हो वैसे ही सारत्त के
 साथ इन दोनों भाइयों का अद्भुत संग्राम होने लगा
 ॥४५॥४८॥क्रुपित चेदिराज ने असत्य बाण बरसा-
 कर युद्धप्रिय अम्बष्ठराज को द्रोण के सम्मुख जाने
 से रोका। राजा अम्बष्ठराज ने अस्थिभेदिनी शलाका
 के द्वारा चेदिराज को घायल कर दिया। उस दारुण

युध्यन्तौ कृपवाण्यौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ ।
 ते युद्धासक्तमनसो नाऽन्यां वुबुधिर कियाम् ॥ ५२ ॥
 सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् ।
 पर्यवारयदायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥ ५३ ॥
 स सौमदत्तेस्त्वरितश्चित्रेष्वसनकेतने ।
 पुनः पताकां सूतं च च्छत्रं चाऽपातयद्रथात् ॥ ५४ ॥
 अथाऽऽप्लुत्य रथात्तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा ।
 साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त्त वरासिना ॥ ५५ ॥
 रथं च खं समास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ।
 स्वयं यच्छन्हयान् राजन्व्यधमत्पाण्डवीं चमूम् ॥ ५६ ॥
 पाण्ड्यमिन्द्रमिवाऽऽयान्तमसुरान्प्रति दुर्जयम् ।
 समर्थः सायकौधेन वृषसेनो न्यवारयत् ॥ ५७ ॥
 गदापरिघनिस्त्रिंशपट्टिशायोधनोपलैः ।
 कडङ्गरैर्भुशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥ ५८ ॥
 मुसलैर्मुद्गरैश्चक्रेभिर्निदिपालपरश्वधैः ।
 पांसुवाताभिसलिलैर्भस्मलोष्ठतृणद्रुमैः ॥ ५९ ॥
 आनुदन्प्रलज्जन्भञ्जन्निघ्नन्विद्रावयन्क्षिपन् ।
 सेनां विभीषयन्नायाद् द्रोणप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥ ६० ॥
 तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः ।
 राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुपः ॥ ६१ ॥

बाण के प्रहार से चेदिराज रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े । उनके हाथ से धनुष और बाण भी गिर पड़ा । शारद्वत कृपाचार्य ने क्रुद्धक बाणों से कुपित वार्द्धक्षेमि को आगे बढ़ने से रोका । हे गजेन्द्र ! विचित्र युद्ध में निपुण और समरप्रिय कृपाचार्य तथा वार्द्धक्षेमि के युद्ध को जो लोग देख रहे थे वे सब उसमें आसक्त-चित्त होकर युद्ध को देखने लगे । वे लोग चित्र-लिखित से रह गये॥४९॥५२॥महाराथी सौमदत्ति ने आचार्य के यश को बढ़ति हुए महाराज मणिमान् को घेर लिया । उन्होंने बड़ी स्फूर्ति के साथ सौमदत्ति के धनुष, पञ्जा-पताका, छत्र को काटकर और सारथी को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया॥५३॥५४॥ तब

शत्रुदमन यूपकेतु बड़ी स्फूर्ति के साथ अपने रथ पर से कूद पड़े । उन्होंने तलवार के वार से मणिमान् के रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथी को नष्ट कर दिया । इसके पश्चात् यूपकेतु अपने रथ पर बैठकर, दूसरा धनुष लेकर, अपने हाथ से घोड़ों को भी हॉकने और तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की सेना को नष्ट करने लगे । इन्द्र जैसे देवासुर-युद्ध में असुरों को मारने के लिए दौड़े थे वैसे ही वेग से जाकर वृषसेन ने बाण-वर्षा से पाण्ड्यराज को रोका॥५५॥५७॥महावीर घटो-त्कच गदा, परिघ, खड्ग, पट्टिस, लगुङ्ग, शिला, मूल, मुद्गर, चक्र, निदिपाल, परशु, धूल, वायु, अग्नि, भस्म, कङ्कड़, तृण और वृक्ष आदि की वर्षा करके शत्रुसेना

तयोस्तदभवद्बुद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ।
 तादृग्यादहपुरा वृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥ ६२ ॥
 एवं द्वन्द्वशतान्यासन्त्यवारणवाजिनाम् ।
 पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च सङ्कुले ॥ ६३ ॥
 नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
 द्रोणस्याऽभावभावे तु प्रसक्तानां यथाऽभवत् ॥ ६४ ॥
 इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
 तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रततानि बहूनि च ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशतकवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

को बिहल करने, भगने, पीड़ा देना और नष्ट करने लगा । इस प्रकार विजयी होकर वह द्रोणाचार्य को और बढ़ा ॥ ५८६० ॥ तब राक्षसश्रेष्ठ अलम्बुष भी अत्यन्त क्रोध से बहुत से अस्त्र-शस्त्र वासनाकर और नाना प्रकार के मायायुद्ध करके घटे तक को रोकने लगा । पूर्व समय में शम्भरासुर और इन्द्र का जैसा घोर संग्राम हुआ था वैसा ही घोर संग्राम दोनों राक्षस करने लगे ॥ ६१६२ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार सैकड़ों-

सहस्रा रथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार योद्धा लोमहर्षण संग्राम करने लगे । हे महाराज ! उस समय द्रोणाचार्य के वध के लिए जैसा घोर संग्राम हुआ था वैसा ही संग्राम पहले न कभी देखा गया और न सुना गया । उस समय रणभूमि में चारों ओर अनेक घोर विचित्र और रौद्र युद्ध होने हुए दिखाई पड़ने लगे ॥ ६३६५ ॥

—०—

द्रोणपर्व का पञ्चमिर्वा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

अथ पट्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तेष्वेवं सन्निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
 कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः ॥ १ ॥
 किमर्जुनश्चाऽप्यकरोत्संशतकवलं प्रति ।
 संशतका वा पार्थस्य किमकुर्वत सञ्जय ॥ २ ॥
 सञ्जय उवाच—तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः ।
 स्वयमभ्यद्रवद्भीमं नागानीकेन ते सुतः ॥ ३ ॥
 स नाग इव नागेन गोवृपेणैव गोवृषः ।
 समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥

दृष्ट्वीसर्वो अध्यायः ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! सब योद्धा जब इस प्रकार रणभूमि में जाकर, परस्पर विभाग के अनुसार, द्वन्द्वयुद्ध करने लगे तब मेरे पक्ष के और पाण्डवों के पक्ष के वीरों ने कैसा युद्ध किया ? उधर

महावीर अर्जुन ने संशतकगण पर किस प्रकार अक्रमण किया और संशतकगण ने उनका किस प्रकार सामना किया ? ॥ १२ ॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! सुनिप, दोनों सेनाओं के योद्धाओं ने जब इस प्रकार अपने-

स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चाऽन्वितः ।
 अभिनत्कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष ॥ ५ ॥
 ते गजा गिरिसङ्काशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम् ।
 भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः ॥ ६ ॥
 विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः ।
 व्यधमत्तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः ॥ ७ ॥
 स तेषु विस्तृजन्वाणान्भीमो नागेष्वशोभत ।
 भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः ॥ ८ ॥
 ते भीमवाणाभिहताः संस्पृता विवभुर्गजाः ।
 गभस्तिभिरिवाऽर्कस्य व्योम्नि नानावलाहकाः ॥ ९ ॥
 तथा गजानां कदनं कुवार्णमनिलारमजम् ।
 क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्याच्छितैः शरैः ॥ १० ॥
 ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः ।
 क्षयं निनीर्षुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः ॥ ११ ॥
 स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम् ।
 नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयश्चिव ॥ १२ ॥
 तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रध्वजे स्थितम् ।
 भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः ॥ १३ ॥
 दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष ।
 चुक्षोभयिपुरभ्यागादहो मातङ्गमास्थितः ॥ १४ ॥

अपने प्रतिद्वन्दी को छोटकर युद्ध ठान दिया तब
 आपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन स्वयं हाथियों की सेना साथ
 लेकर भीमसेन का सामना करने पड़े थे । जैसे हाथी
 पर हाथी या सोंड़ पर सोंड़ आक्रमण करता है वैसे
 ही राजा दुर्योधन ने भीमसेन पर आक्रमण किया ।
 गमरनिपुण असाधारण गुजकलमणत्र धीर भीमसेन
 क्रोध करके हाथियों की सेना पर झपटकर दूट पड़े
 और शक्ति के साथ हाथियों को मारने, गिराने तथा
 भगाने लगा ॥ १५ ॥ परनाकार बड़े-बड़े हाथी भीमसेन
 के लोहमय बाणों के प्रहार में छिन्न-भिन्न होकर, मट-
 हान होकर, इधर-उधर भागने लगे । मणिलोह के
 आधी के वेग से नष्ट-भट हो जाया है वैसे ही ये हाथी

भीमसेन के प्रहार से पीड़ित होकर भागने लगे । सूर्यदेव
 उदय होकर जैसे भूगण्डल पर अपनी किरणें फैलाने हैं
 वैसे ही भीमसेन हाथियों पर बाणों की वर्षा करने लगा ।
 उनके बाणप्रहार से हाथियों के शरीर फट-फटकर
 रक्त से भीग गये । सूर्य की किरणों से ताल सम्प्रा-
 काट के आकाश में शोभायमान मेघों के समान वे
 हाथी दिगाई पड़ने लगे ॥ १६ ॥ भीमसेन को इस
 प्रकार हाथियों की सेना का नाश करते देखाकर
 दुर्योधन अत्यन्त क्रोध में उन पर बाण बरसाने लगा ।
 गाढवाट भीमसेन के नेत्र क्रोध में ताल हो रहे
 थे । ये दुर्योधन के प्राण देने के लिए उनको तीक्ष्ण बाण
 मारने लगा । भीम के बाणों में दुर्योधन का शरीर फट-फट

तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् ।
 कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयद्भृशम् ॥ १५ ॥
 तस्य कायं विनिर्भिद्य न्यमज्जद्धरणीतले ।
 ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाऽचलः ॥ १६ ॥
 तस्याऽऽवर्जितनागस्य स्लेच्छस्याऽधः पतिष्यतः ।
 शिरश्चिच्छेद् भस्त्रेण क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥ १७ ॥
 तस्मिन्निपतिने वीरे सम्प्राद्वत सा चमूः ।
 सम्भ्रान्ताश्चद्विपरथा पदातीनवमृद्वती ॥ १८ ॥
 तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
 प्राग्ज्योतिपस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्वत् ॥ १९ ॥
 येन नागेन मघवानजयद्वैत्यदानवान् ।
 तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्वत् ॥ २० ॥
 स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्वत् ।
 चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥ २१ ॥
 व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवम् ।
 वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत् ॥ २२ ॥
 पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत ।
 जानन्नञ्जलिकावेधं नाऽपाक्रामत पाण्डवः ॥ २३ ॥
 गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणाऽताडयन्मुहुः ।
 लालयामास तं नागं वधाकांक्षिणमव्ययम् ॥ २४ ॥

गया । वे क्रोध में विह्वल होकर भीमसेन पर, सूर्य
 की किरणों के समान चमकते, बाण चलाते लगे ।
 महापाण्डु भीमसेन ने क्रुद्ध होकर दो भट्ट बाणों से
 स्फूर्ति के साथ दुर्योधन की धजा में स्थित चिह्न जो
 मणिमय रत्नवर्चित नाग था उसे, और दुर्योधन के
 हाथ के धनुष को, काट डाला । तब दुर्योधन को
 भीमसेन के बल से अत्यन्त पीड़ित देखकर अङ्गराज
 हाथी पर बैठकर भीमसेन की ओर झपटे । महारार
 भीमसेन ने अङ्गाधिपति के हाथी को मेघ की तरह
 गरजते अति देखकर उसके मस्तक पर तीक्ष्ण बाण
 मारे । भीमसेन का चलाया हुआ एक बाण हाथी
 को फाड़ता हुआ पृथ्वी में प्रवेश हो गया । वह हाथी

वज्रात से फटे हुए पर्वत की तरह धूमती पर
 पड़ा । उसके मिले ही अङ्गाधिपति पृथ्वी पर
 गिरत सँभल गये, किन्तु इसी मध्य में भीमसेन ने
 स्फूर्ति के साथ एक भट्ट बाण से उनका
 डाला । महारार अङ्गराज की मृत्यु पर
 चारों ओर भागने लगी । हाथी, घोड़े और
 घोड़ा इधर उधर भाग खड़े हुए । उनके
 गये सहस्रों पेड़ लमिराही बिना आई हुई
 ॥ १४११ ॥ महारार । सत्रसेना
 ओर भागने लगी तब प्राग्ज्योतिपुष्प
 आपना हाथी बढ़ाकर वेग से भीमसेन
 वह हाथी इन्द्र के उस ऐरावत

कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाऽभ्रमत ।
 नागायुतबलः श्रीमान्कालयानो वृकोदरम् ॥ २५ ॥
 भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोऽभवत् ।
 भीमं करेणाऽवनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥ २६ ॥
 ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत ।
 करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्वा व्यमोचयत् ॥ २७ ॥
 पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः ।
 यावत्प्रतिगजायातं स्वले प्रत्यवैक्षत ॥ २८ ॥
 भीमोऽपि नागगात्रेभ्यो विनिःसृत्याऽपयज्जवात् ।
 ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवनमहान् ॥ २९ ॥
 अहो धिङ् निहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष ।
 तेन नागेन सन्त्रस्ता पाण्डवानामनीकनी ॥ ३० ॥
 सहसाऽभ्यद्रवद्राजन्यत्र तस्यौ वृकोदरः ।
 ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम् ॥ ३१ ॥
 भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् ।
 तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परन्तपाः ॥ ३२ ॥
 अवाकिरञ्छरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
 सविघातं पृथक्कानामङ्कुशेन समाहरन् ॥ ३३ ॥
 गजेन पाण्डुपञ्चालान्वयधमत्पर्वतेश्वरः ।
 तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥ ३४ ॥

था, जिस पर बैठकर इन्द्र ने दैत्य-दानवों को जीता था । क्रोध के मारे लाल-लाल नेत्र फाड़कर, दोनों पाँव उठाकर, सैँड़ सिकोड़कर वह गजराज भीमसेन की ओर इस प्रकार चला मानों उनको भस्म ही कर देगा । उसने उनके रथ और घोड़ों को चूर-चूर कर डाला ॥ १९, २० ॥ महावीर भीमसेन को अत्रालिक वेध-विद्या प्रतीत थी । इससे वे पैदल हो जाने पर भी जहाँ के तहाँ खड़े रहे । जब हाथी समीप पहुँच गया तब भीमसेन झपटकर उस हाथी के ही तले टिप गये । मार डालने की बात में लगे हुए उस हाथी को वे हाथ के प्रहार से पीड़ित करके विश्वामेन लगे । वह हाथी, उन्हें पकड़ने के लिए, उनके पीछे कुम्हार

के चाक की तरह चकर काटने लगा और भीमसेन उसी की आड़ में चारों ओर घूमने लगे ॥ २१, २५ ॥ इसके पश्चात् दम सहस्र मस्त हाथियों का बल रखने-वाले भीमसेन, उम हाथी की आड़ छोड़कर, सन्मुख आ गये । गजराज अमर पाकर, सैँड़ से भीमसेन की गर्दन छेपटकर, दोनों घुटनों से उन्हें गिराकर मार डालने को तैयार हुआ । तब उन्होंने चटपट सैँड़ की छेपट से अपने को छुड़ा लिया । अब वे फिर उसी की ओट में छिपकर उसके आक्रमण की राह देखने लगे । इसके पश्चात् महाबली भीमसेन उम हाथी की आड़ से निकलकर वेग से दूसरी ओर चले गये ॥ २६, २७ ॥ इसी समय मेना के सब हाथी

तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशाम्यते ।
 ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाव्रत् ॥ ३५ ॥
 तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाऽऽशुगामिना ।
 तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ॥ ३६ ॥
 सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्गमयोः पुरा ।
 प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः सन्निवृत्त्याऽपसृत्य च ॥ ३७ ॥
 पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्वा नागमपातयत् ।
 तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः ॥ ३८ ॥
 जघान द्विरदस्यं तं शत्रुं प्रचलितासनम् ।
 व्यवच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
 रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ।
 स कुञ्जरस्यो रथिभिः शुशुभे सर्वतोवृत्तः ॥ ४० ॥
 पर्वतेः वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः ।
 मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ ४१ ॥
 किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत ।
 ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम् ॥ ४२ ॥
 प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति ।
 शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ॥ ४३ ॥

“हाय ! धिक्कार ह हमें ! भीमसेन को गजराज ने मार टाला !” कह कहकर चिल्लाते लगे। इस चिल्लाहट से पाण्डवों की सेना ऐसी पीड़ित हुई कि सब लोग भागकर वहाँ पहुँचे जहाँ भीमसेन खड़े हुए थे ॥ २९॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! इस राजा युधिष्ठिर भीमसेन की हाथी के आक्रमण से मरा हुआ जानकर बहुत ही शोकावुल हुए । वे उसी समय घृष्टयुद्ध की साथ लेकर भगदत्त के सम्मुख पहुँचे आर चारों ओर से भगदत्त की घेरे उन पर सहस्र सहस्र अयन्त तीक्ष्ण वाण बरसाने लगे। भगदत्त ने अकुश के द्वारा ही उन वाणों को व्यर्थ करके, हाथी को प्रहार से उल्लेखित करके, दम भर में पाण्डवों और पाञ्चालों की बहुत सी सेना नष्ट घट कर दी । हे राजेन्द्र ! हम लोगों ने रणभूमि में वृद्ध राजा भगदत्त और उनके हाथी का अद्भुत पराक्रम देखा, उसे देखकर हमें बड़ा

ही प्रियम हुआ ॥ ३१॥ ३५ ॥ इसी समय दशार्ण देश के नरेश शीघ्रगामी पार्थगामी मद्रमत्त हाथी पर बैठकर वेग के साथ राजा भगदत्त के सम्मुख युद्ध के लिए आये । पूर्ण समय में भीमरूप, परदार और वृद्धों से शोभित पर्वत जैसे परस्पर टकराने थे जैसे ही वे दोनों गीर प्राणों का साह छोड़कर घोर युद्ध करने लगे। प्राग्ज्योतिषपति महाराज भगदत्त के गजराज ने आगे उठकर, फिर पीछे हटकर, घूमकर बड़े वेग से दशार्णपति के हाथी की पसलियों में टक्कर मारकर उसे हटा दिया। इसी मध्य में भगदत्त ने मूर्ध की किरण के समान चमकीले सात पने तीमर अपने शत्रु दशार्णपति की ओर उनके हाथी की उस प्रहार से दशार्णपति का आसन निचलित हो उठा ॥ ३५॥ ३९ ॥ ऊपर धनराज युधिष्ठिर ने रथसेना साथ लेकर भगदत्त की चारों ओर से घेर लिया। हाथी पर बैठे महावीर

अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ।
 बृहतः सैन्धवानश्चान्समुत्थाप्याऽथ साराधिः ॥ ४४ ॥
 तस्यौ सात्यकिमासाद्य सम्प्लुतस्तं रथं प्रति ।
 स तु लब्ध्वाऽन्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात् ॥ ४५ ॥
 निश्चक्राम ततः सर्वान्परिचिक्षेप पार्थिवान् ।
 ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ॥ ४६ ॥
 तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् ।
 ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ॥ ४७ ॥
 पेशावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः ।
 तेषां प्रद्रवतां भीमः पाञ्चालानामितस्ततः ॥ ४८ ॥
 गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान्समजायत ।
 भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ४९ ॥
 प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् ।
 तस्याऽभिद्रवतो वाहान्दस्तमुक्तेन वारिणा ॥ ५० ॥
 सिकत्वा व्यत्रासयन्नागस्तं पार्थमहरंस्ततः ।
 ततस्तमभ्यान्तूर्णं रुचिपर्वाऽऽकृतीसुतः ॥ ५१ ॥
 समग्नच्छरवर्षेण रथस्योऽन्तकसन्निभः ।
 ततः स रुचिपर्वाणं शरेणाऽनतपर्वणा ॥ ५२ ॥
 सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम् ।
 तस्मिन्निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः ॥ ५३ ॥

भगदत्त उन रथों से घिरकर पर्वत के ऊपर जङ्गल में प्रज्वलित अग्नि के समान शोभायमान हुए । चारों ओर से मण्डल बाँधकर सब रथों भगदत्त के ऊपर बाणों की निरन्तर वर्षा करने लगे । परन्तु भगदत्त उनके मध्य में घेरे बैठे रहने लगे । इसके उपरान्त युद्धदुर्मद प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त ने अपने हाथी को सात्यकि के रथ के पास पहुँचाया । गजराज ने सात्यकि के रथ को मूँड़ से छेड़कर दूर फेंक दिया, जिससे रथ के टुकड़े-टुकड़े हो गये । सात्यकि स्फूर्ति के साथ रथ से घृणी पर कूदकर वहाँ से भाग पड़े हुए ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनका गारपी भी सिन्धु देश के, घोड़ों की रास छोड़कर उनके पीछे ही भाग गया ।

अब वह गजराज उस रथों के घेरे से बाहर निकलकर राजाओं को मारने, फेंकने और रथों को तोड़ने-फोड़ने लगा । उस द्रोणगामी हाथी के आक्रमण से राजा लोग ऐसे व्याकुल और शक्तिहीन हो गये कि उन्हें उस एक हाथी के सैरुड़ों रूप दिग्वार देते लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ राजा भगदत्त जब अपने हाथी की सहायता से पाण्डवों और पाञ्चालों की सेना को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे तब सब सैनिक मिलसिद्ध तोड़ करके इधर-उधर भागने लगे । उस समय हाथियों और घोड़ों के चिड़ाने का घोर आर्तनाद सुनाई पड़ने लगा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! तब महारथी भीमसेन फिर भगदत्त के सम्मुख आये । भगदत्त का हाथी

चोक्तितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चाऽर्दयन्दिपम् ।
 त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः ॥ ५४ ॥
 सिपिचुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो जिघांसवः ।
 ततः पाण्यकुशांगुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः ॥ ५५ ॥
 प्रसारितकरः प्रायास्ततब्धकर्णक्षणोद्भुतम् ।
 सोऽधिष्ठाय पदा ब्राह्मन्युयुत्सोः सूतमारुजत् ॥ ५६ ॥
 युयुत्सुस्तु रथाव्राजन्नपाकामत्वरान्वितः ।
 ततः पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्दुतम् ॥ ५७ ॥
 सिपिचुर्भैरवान्नादान्विनदन्तो जिघांसवः ।
 पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तः सौभद्रस्याऽऽपुतो रथम् ॥ ५८ ॥
 स कुञ्जरस्यो विस्वजज्ञिपूनरिषु पार्थिवः ।
 बभौ रश्मीनिवाऽऽदित्यो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥ ५९ ॥
 तमार्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः ।
 त्रिभिस्त्रिभिर्द्वौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः ॥ ६० ॥
 सोऽतियत्नार्पितैर्वाणैराचितो द्विरदो बभौ ।
 संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥ ६१ ॥
 नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां प्रेरितोऽरिशरार्दितः ।
 परिचिक्षेप तान्नागः स रिपून्सव्यदक्षिणम् ॥ ६२ ॥
 गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान्वने ।
 आविष्टयत् तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥ ६३ ॥

मूढ़ में फँसे हुए मद में भीमसेन के बाहनों की भय-
 विह्वल काले लगे। भीमसेन के रथ के बोंदे रथ की
 त्रिवेनदश भाग पड़े हुए। उम मगध राजा कुन्ती
 के पुत्र रुनिपरी रथ पर बैठकर बाण बरसाने हुए
 गाक्षात् काट की तरह भीमसेन के पीछे दौड़े॥४७॥
 ५२॥पहाड़ी देश के राजा सुग्रीव ने नगराज नैलग्न
 बाण मारकर रचिरीस की मार गिराया। वीर रचि-
 परीस के मोर जाने पर महावीर अभिमन्यु, द्रौपदी के
 पोने पुत्र, चक्रितान, धृतराष्ट्र और युयुत्सु, ये सब
 उम हाथी की मार डालने के लिए भयानक मिह-
 नार के साथ जटभारा की तरह निरन्तर तीक्ष्ण बाण
 बरसाने हुए उसे स्थिति करने लगे॥५२॥५५॥

रणनिपुण महावीर भगदत्त ने पार्थिव, अंगुष्ठ और
 अंगुष्ठ के प्रहार में उत्तेजित करके उम हाथी को
 आगे बढ़ाया। भगदत्त के द्वारा मग्राजित वह भयानक
 हाथी मूढ़ फैलाकर, कानों और नेत्रों को संकुचित
 करके, बड़े वेग में चला। उसने अ.प्रमण करने
 युयुत्सु के माथी और बाहनों को नष्ट कर दिया।
 महावीर युयुत्सु ने स्कूर्ति के साथ रथ में कूदकर
 अपनी जान बचाई। उनको भागने पर पाण्डवपक्ष
 के योग्य अयन्त भयङ्कर मिहानार करने हुए नीलग्न
 बाणों की बरों में उम मग्राज को घायल करने
 लगे॥५५॥५८॥ शत्रुद्वन्द्व ! उम मगध आर्य पुत्र
 स्कूर्ति के साथ बड़े वेग में अभिमन्यु के रथ की ओर

क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः ।

वभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥ ६४ ॥

स नागराजः प्रवरांकुशाहतः पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप ।

भयं तदा रिपुषु समादधद्भृशं वणिग्जनानां क्षुभितो यथाऽर्णवः ॥ ६५ ॥

ततो ध्वनिर्द्विरदरथाश्चपार्थिवैर्भयाद् द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः ।

क्षितिं वियद्भयां विदिशो दिशस्तथा समावृणोत्पार्थिवसंयुगे ततः ॥ ६६ ॥

स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो भृशं जगाहे द्विपतामनीकिनीम् ।

पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे विरोचनो देववरूथिनीमिव ॥ ६७ ॥

भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद्रजः समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान् ।

तमेकनागं गणशो यथा गजान्समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः ॥ ६८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि सशतरुक्थपर्वणि भगदत्तपुत्रे पद्मविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

चले । हे राजेन्द्र ! अब महावीर भगदत्त हाथी के ऊपर से शत्रुओं पर बाण बरसाते हुए वैसे ही शोभायमान हुए जैसे अपनी किरणें फैलाते हुए सूर्यदेव उदय पर्वत पर शोभा को प्राप्त होते हैं । उधर अभिमन्यु ने बारह, युयुस्तु ने दस, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने और धृष्टकेतु ने तीन-तीन बाण मारकर उस गजराज को विह्वल और घायल कर दिया । इन वीरों ने बड़े पत्त और कौशल से उस हाथी को जो बाण मारे, उनसे वह सूर्य की किरणों से शोभित मेघ के समान जान पड़ा ॥ ५८ ॥ इससे पश्चात् अंकुश से सम्बलित वह भयङ्कर हाथी क्रुपित होकर अपने दाहने-बायें भाग की सेना को रींदकर, तैँड़े से पटक-पटक कर, नष्ट करने लगा । चरवाहा जैसे वन में डण्डे से पशुओं को पीटता है वैसे ही वीर भगदत्त बाणों से पाण्डवों की सेना को बारम्बार ताड़ित करने लगे । बाढ़ के आक्रमण से चिड़ाने हुए कौओं के समान पाण्डवों की सेना चिड़ा करके भाग गई ।

हुई ॥ ६२ ॥ ६४ ॥ हे महाराज ! उस समय भगदत्त का मस्त हाथी अंकुश की चोट से उत्तेजित होकर परदार पर्वत की तरह बड़े वेग से रणभूमि में विचरने लगा । जहाज पर बैठे हुए सौदागर जैसे अपने आस-पास समुद्र में तफ़ान उठाने वाली दारुण लहरें देखकर शक्ति और व्याकुल होते हैं वैसे ही शत्रुपक्ष के योद्धा लोग उस गजराज को देखकर व्याकुल हो उठे । भयभीत होकर भागने हुए हाथी, घोड़े, रथी और पैदल आदि के कोलाहल से पृथ्वीमण्डल, आकाशमण्डल और मय दिशाओं के मण्डल गूँज उठे । जैसे पूर्ण समय में दानवपति विरोचन ने सुरक्षित सुरसेना में प्रवेश होकर हलचल डाल दी थी वैसे ही हाथी सहित वीर भगदत्त ने शत्रुसेना के भीतर प्रवेश होकर हलचल मचा दी । धरती की धूल वायु के साथ आकाशमण्डल में छा गई । सब सेना उम अंधेर से ढक गई । सैनिकों को वह एक ही हाथी, वेग से अगण, करने के कारण, अनेक ग्य सा प्रतीत होने लगा ॥ ६५ ॥ ६८ ॥

द्रोणपर्व का दृष्टीसर्ग अध्याय समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच—यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।

तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद्रणे ॥ १ ॥

रजो दृष्ट्वा समुद्रतं श्रुत्वा च गजानिःस्वनम् ।

भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥ २ ॥

यथा प्राग्जोतिषो राजा गजेन मधुसूदन ।
 त्वरमाणो विनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैव निःस्वनः ॥ ३ ॥
 इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः ।
 प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥ ४ ॥
 स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽऽप्रतिगजो युधि ।
 सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतवर्मा जितकृमः ॥ ५ ॥
 सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चाऽनघ ।
 स पाण्डवबलं सर्वमथैको नाशयिष्यति ॥ ६ ॥
 न चाऽऽवाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति शक्तस्तं प्रतिवाधितुम् ।
 त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्जोतिषाधिपः ॥ ७ ॥
 दृप्तं संख्ये द्विषवलाद्वयसा चापि विस्मितम् ।
 अथैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ॥ ८ ॥
 वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः ।
 दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥ ९ ॥
 तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः ।
 संशतकाः समारोहन्सहस्राणि चतुर्दश ॥ १० ॥
 दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्तानां महारथाः ।
 चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चाऽनुगाः ॥ ११ ॥

सप्तदशसौ अध्यायः ॥ २७ ॥

मञ्जुष कहते हैं हे महाराज ! आप मुझसे अर्जुन
 के युद्धकीशल या वृत्तान्त पूछते हैं, मैं मैं वर्णन
 करता हूँ, सुनिष् । अर्जुन ने युद्धभूमि में भगदत्त की
 त्रिशु क्रियाओं में उठनेवाली रिक्त धूल देगकर
 और सैनिकों का कोलाहल सुनकर बाणुदेव ने कहा—
 हे केशव ! महावीर भगदत्त न जाने अपने गुरी
 हाथी को लेकर युद्ध के मैदान में आये हैं । उन्हीं
 में पराजित होकर सब मैदिक लोग चिड़ा रहे और
 भाग रहे हैं । महाराज भगदत्त का हाथी बड़ा रिक्त
 है और वे रथ भी इन्ट के समान पराक्रमी हैं ।
 हाथी पर मे युद्ध करनेवाले जिनने योद्धा पृथ्वी पर
 हैं, उन सबने भगदत्त अष्ट हैं ॥ १॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 वगैर वगैर दूसरा हाथी नहीं है । यह हाथी गेह-

मय कवच में सुरक्षित, कभी न धरनेवाला, अत्र-
 शत्रु के प्रहार और अग्नि-स्पर्श को सहनेवाला है ।
 उसे अत्र से नष्ट करना अमंभर नहीं तो दुःसाध्य
 अश्य है । मेरी समझ में यह अकेला हाथी ही
 आज हमारी मना को नष्ट करेगा । मेरे और आपके
 अनिच्छित और कोई भगदत्त तथा उनके हाथी को
 रोक नहीं सकता । इसलिए अब आप दीपना के साथ
 मेरा रथ भगदत्त के समुप ले चलिए । अपने हाथी
 के चर में और अपनी अम्भा तथा बाहुवत्त में
 अहङ्कारी भगदत्त को मैं आज स्वर्गभेजकर इन्ट का
 प्रिय अनिधि बनाऊँगा ॥ ५॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
 अर्जुन के ये वचन सुनकर महात्मा श्री कृष्ण ने रथ में भगदत्त
 की ओर हँस दिया । [महावीर अर्जुन जब भगदत्त

दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष ।
 आहूयमानस्य च तैरभवद्भूदयं द्विधा ॥ १२ ॥
 किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेदयेति चिन्तयन् ।
 इह वा विनिवर्त्तयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥
 तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य क्रुद्धह ।
 अभवद्भूयसी बुद्धिः संशतकवधे स्थिरा ॥ १४ ॥
 स सन्निवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः ।
 एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे ॥ १५ ॥
 सा हि दुर्योधनस्याऽऽसीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः ।
 अर्जुनस्य बधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६ ॥
 स तु दोलायमानोऽभूद् द्वैधीभावेन पाण्डवः ।
 वधेन तु नराग्न्याणामकरोत्तां मृपा तदा ॥ १७ ॥
 ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
 अस्तृजन्नर्जुने राजन्संशतकमहारथाः ॥ १८ ॥
 नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः ।
 न ह्या न रथो राजन्ष्टयन्ते स्म शरैश्चिताः ॥ १९ ॥
 तदा मोहमनुप्राप्तः सिन्धिवे हि जनार्दनः ।
 ततस्तान्प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजक्षिवान् ॥ २० ॥
 शतशः पाणयश्छिन्नाः सेपुज्यातलकार्मुकाः ।
 केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चाऽपतन्क्षितौ ॥ २१ ॥

के साथ युद्ध करने के अभिप्राय से उधर चले] तब
 महारथी त्रिगर्तदेशीय दत्त सहस्र और श्रीकृष्ण के
 अनुचर चार सहस्र, इस प्रकार चौदह सहस्र संशतक-
 गण युद्ध के लिए ललकारते हुए अर्जुन के पीछे
 चले ॥ १२ ॥ १३ ॥ इधर भगदत्त सब सेना का सहारा कर
 रहे थे और उधर संशतकगण युद्ध के लिए ललकार
 रहे थे । इस दुहरे सङ्कट में पड़ने से अर्जुन का हृदय
 हिंडोले के समान दोनों ओर डोलने लगा । वे यह
 सोचकर बहुत व्याकुल हुए कि अब क्या करना
 उचित है । यहाँ से लौटकर संशतकगण से युद्ध
 करके, अपना युधिष्ठिर को बनाने के लिए भगदत्त
 से जानर भिड़े ! हे महाराज ! बहुत देर सोचकर

अन्त को वीर अर्जुन ने संशतकों को ही मारने का
 निश्चय किया । वे उन्हीं की ओर लौट पड़े ॥ १२ ॥ १५ ॥
 अर्जुन का बध करने के लिए महावीर दुर्योधन और
 कर्ण ने ही सम्मति करके यह उपाय निकाला था कि
 एक ओर संशतकगण युद्ध करें और दूसरी ओर भगदत्त
 युद्ध करें । किन्तु वीर श्रेष्ठ अर्जुन ने पहले चिन्ता में
 पड़कर अन्त को संशतकबध का ही निश्चय करके
 उस कौशल को व्यर्थ कर दिया । उस समय महावीर
 संशतकगण पराक्रमी अर्जुन के ऊपर चारों ओर से
 तक्षिण असह्य बाण बरसाने लगे । उनके बाण मय
 दिशाओं में व्याप्त हो गये । उन बाणों के मध्य अर्जुन,
 श्रीकृष्ण, घोड़े और रथ सब अदृश्य हो गये । संशतक-

द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः ।
 हतारोहाः क्षितौ पेतुर्दिपाः पार्थशराहताः ॥ २२ ॥
 विप्रविद्धकुथा नागाच्छिन्नभाण्डाः परासवः ।
 सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम् ॥ २३ ॥
 सर्पिप्रासासिनखराः समुद्रपरश्वधाः ।
 विच्छिन्नबाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना ॥ २४ ॥
 बालादित्याम्बुजेन्द्रनां तुल्यरूपाणि मारिष्य ।
 सञ्छिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे ॥ २५ ॥
 जज्ज्वालाऽलङ्कृता सेना पत्निभिः प्राणिभोजनैः ।
 नानारूपैस्तदाऽमित्रान्कुद्धे निघ्नति फाल्गुने ॥ २६ ॥
 क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव ।
 धनञ्जयं भूतगणाः साधुसाधित्वपूजयन् ॥ २७ ॥
 दृष्ट्वा तत्कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः ।
 विस्मयं परमं गत्वा प्राञ्जलिस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥
 कर्मैतत्पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च ।
 दुष्करं समरे यत्ते कृतमयेति मे मतिः ॥ २९ ॥
 युगपच्चैव संप्राप्ते शतशोऽथ सहस्रशः ।
 पतिता एव मे दृष्टाः संशतकमहारथाः ॥ ३० ॥
 संशतकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः ।
 भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयन् ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि मशतकवधपर्वणि मशतकवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

गण के उम अट्टत परक्रम को देकर कृष्णनन्द
 शिमुष्य हो उठे । उनके इस प्रकार मोहित और पराजित
 से तर देकर अर्जुन ने बलाव छोड़ा । उम बलाव
 में प्रायः सभी सशस्त्रगण नष्टप्राय हो गये ॥ १६ ॥ २० ॥
 मरुद्धो-स्तदसौ बाण, धनुष, दोगियों, हाथ पाँर, पञ्जापै
 पोंडे, साएगी और रणो टिन्न मित्र होकर घृषी पर
 गिरने लगे । जिनके शरीर वृक्ष, पर्वत और मेघ के
 समान देग पड़ने से ऐसे महंगे मुनञ्जिव, मरारों
 और मरारों में नष्ट पीठपाने बड़े-बड़े हाथी अर्जुन
 के बाणों से नष्ट होकर घृषी पर गिरने लगे । अर्जुन
 के बाणों से हाथियों की मुँहे कट गई, मन्त्रक कट

गये और वे मरकर अपने मरारों सहित धरती पर
 भनाभम गिरने लगे । अर्जुन के मल्ल बाणों में कटे
 हुए और कटि, प्राण, रक्त, सुदृग, पशु आदि
 शरीरों में शोभित खीरों के हाथ घृषी पर बिट गये
 ॥ २१ ॥ २४ ॥ शत्रुमूर्ख, क्रमद और चन्द्रमण्डल के
 समान गोदाओं के मन्त्रक खीर अर्जुन के बाणों में कट-
 कटकर घृषी पर गिरने लगे । मरारों अर्जुन पुरित
 होकर जब इस प्रकार शत्रुगण का महार करने
 लगे तब शत्रुगण के गोदा लगे उनके प्राणनाशक
 बाणों में अदम्य पीड़ित हुए । क्रमदम की दृष्टि
 करनेवाले मन्त्रक की महार मरारों अर्जुन के गोदा

का संहार करते देखकर शत्रु-मित्र सब उनकी प्रशंसा करने लगे। महामति श्रीकृष्ण अर्जुन को इन्द्र के सदृश अद्भुत कर्म करते देखकर विस्मयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—हे धनञ्जय ! आज समरभूमि में तुमने जैसा अद्भुत कार्य किया है वह, मेरी समझ में, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों के लिए

भी दुष्कर है। तुमने एकसाथ सैंकड़ों-सहस्रों वीर सशस्त्रकों का संहार कर डाला, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। इस प्रकार बहुसंख्यक संशतकगण को विनष्ट करके महावीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से राजा भगदत्त की ओर रथ ले चलने के लिए कहा ॥ २५ ॥ ३ ॥

—०—

द्रोणपर्व का सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

सञ्जय उवाच—यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याऽश्वान्मनोजवान् ।

सम्प्रैपीक्षेमसञ्छन्नान्द्रोणानीकाय सन्त्वरन् ॥ १ ॥

तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वान्भ्रातृन्द्रोणतापितान् ।

सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ २ ॥

ततः श्वेतहयः कृष्णमव्रवीदजितं जयः ।

एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽह्वयतेऽच्युत ॥ ३ ॥

दीर्यते चोत्तरेणैव तत्सैन्यं मधुसूदन ।

द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशतकैरिदम् ॥ ४ ॥

किं नु संशतकान्हन्मि स्वान्क्षाम्यहिनादितान् ।

इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ ५ ॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्त्तयत् ।

येन त्रिगर्त्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विध्वा सप्तभिराशुगैः ।

ध्वजं धनुश्चाऽस्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥ ७ ॥

त्रिगर्त्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं पद्भिराशुगैः ।

साश्वं ससूतं परितः पार्थः प्रैपीद्यमक्षयम् ॥ ८ ॥

अष्टाईसवा अध्याय ॥ २८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महामति श्रीकृष्ण ने अर्जुन की इच्छा के अनुसार सुवर्णभूषित तेज घोड़ों की द्रोणाचार्य की सेना के मनुष्य चलाया। द्रोणाचार्य के वाणों में पीड़ित अपने भाइयों की सहायता और रक्षा के लिए महारथी अर्जुन चले। इसी समय महावीर सुशर्मा अपने भाइयों के साथ अर्जुन से युद्ध करने के लिए उनके पीछे दौड़े ॥ १२ ॥

तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे शत्रुदहन ! यह देखिए, अपने भाइयों सहित सुशर्मा युद्ध के लिए मुझे लटक रहा है। ऊपर उत्तर और आचार्य अपने तीक्ष्ण वाणों से हमारी सेना को मारकर भगा रहे हैं। मंत्रसंरक्षण ने इस प्रकार मेरे मन को दूरे सद्रूप में ढाँट रक्खा है। अब आप ही निचार करके मुझसे कहिए कि इस समय मेरा क्या करने पड़े ? [पहले

ततो भुजगसङ्काशां सुशर्मा शक्तिमायसीम् ।
 विश्वेपाऽर्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥ ९ ॥
 शक्तिं त्रिभिः शरैश्चित्त्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः ।
 सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्त्तयत् ॥ १० ॥
 तं वासवमिवाऽऽद्यान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
 राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ११ ॥
 ततो धनञ्जयो बाणैः सर्वानेव महारथान् ।
 आयाद्विनिघ्नन्कौरव्यान्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १२ ॥
 तस्य वेगसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ।
 नाऽशक्नुवन्स्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिवः प्रजाः ॥ १३ ॥
 संवेष्ट्यन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः ।
 सुपर्णपातवद्राजन्नायात्प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १४ ॥
 यत्तदाऽनामयज्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम् ।
 धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विपतामश्रुवर्धनम् ॥ १५ ॥
 तदेव तव पुत्रस्य राजन्दुर्धूतदेविनः ।
 कृते क्षत्रविनाशाय धनुरायच्छदर्जुनः ॥ १६ ॥
 तथा विश्वोभ्यमाणा सा पार्थेन तव चाहिनी ।
 व्यशीर्यत महाराज नौरिवाऽऽसाय पर्वतम् ॥ १७ ॥
 ततो दशसहस्राणि न्यवर्त्तन्त धनुष्मताम् ।
 मतिं कृत्वा रणे क्रूरां वीरा जयपराजये ॥ १८ ॥

सशस्त्रगण का सहार करके, या द्रोणाचार्य गुरु के बाणों में पीड़ित अपनी सेना की रक्षा करने ॥१३॥ श्रीकृष्ण ने अर्जुन के यत्न सुनकर त्रिगर्तनेश सुशर्मा की ओर रथ हॉक दिया । उस समय रणप्रिय अर्जुन ने सात बाणों में सुशर्मा को घायल करके उनकी पत्नी और धनुष की काट डाला और फिर छ बाणों से उनके घोड़े, सारथी और भाई को मार डाला ॥१८॥ यह देखकर महावीर सुशर्मा ने क्रोध में विह्वल होकर अर्जुन के ऊपर भयानक मर्माकार लोहमय शक्ति और श्रीकृष्ण के ऊपर तीक्ष्ण तोमर का प्रहार किया । अर्जुन ने सात बाणों में उस शक्ति और तोमर को काट डाला और बाण-वर्षा में सुशर्मा को

मूर्च्छित करके वे निरन्तर बाण छोड़ते हुए आगे बढ़े । कौरव-सेना के वीरों में से कोई भी उन्हें रोक नहीं सका ॥११॥ महाराजा महारथी अर्जुन अपने बाणों से बड़े-बड़े वीरों को मारकर मृते वन की जगहों-वाली अग्नि के समान रणभूमि में आगे बढ़े । मैदिक योग अर्जुन के अग्निप्रदो-मदश दारण बाणों के वेग को सत्ते में अक्षत हो उठे । महावीर अर्जुन अपने बाणों में मैदिकों का इस प्रकार महार करके गद्गद की तरह बड़े वेग में भगदत के मगसुग चले ॥१२॥ १४॥ उस समय सुदृढविजयी अर्जुन कायट-घ्न रत्न-वाले दृग्गवा दूधोदन के दोष में होनेवाले क्षत्रिय-महार के विष्णु, पाण्डवों के विष्णु कम्पागप्रद और

व्यपेतहृदयत्रासा आवव्रुस्तं महारथाः ।
 आर्च्छत्पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥ १९ ॥
 यथा नलवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः पट्टिहायनः ।
 मृद्रीयात्तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्वाच्चमूं तव ॥ २० ॥
 तस्मिन्प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः ।
 तेन नागेन सहसा धनञ्जयमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥
 तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्णाद्धनञ्जयः ।
 स सन्निपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः ॥ २२ ॥
 कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च ।
 संग्रामे चेतुर्वीरौ भगदत्तधनञ्जयौ ॥ २३ ॥
 ततो जीमूतसङ्काशास्त्रागादिन्द्र इव प्रभुः ।
 अभ्यवर्षच्छरैर्घेण भगदत्तो धनञ्जयम् ॥ २४ ॥
 स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः ।
 अप्राप्तमेव विच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् ॥ २५ ॥
 ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवार्य तत् ।
 शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च मारिष ॥ २६ ॥
 ततस्तु शरजालेन महताऽभ्यवकीर्य तौ ।
 चोदयामास तं नागं वधायाऽच्युतपार्थयोः ॥ २७ ॥
 तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवाऽन्तकम् ।
 चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २८ ॥

शत्रुओं की आँखों से शोक के आँसू बहाने लगे,
 गाण्डान धनुष को हाथ में लिये हुए थे । कोर-सेना
 के योद्धा लोग अर्जुन के बाणों से निहल होकर और
 भागकर, पर्वत से टकराई हुई नान की तरह, विपत्ति-
 प्रस्त होने लगे ॥ १५१७ ॥ उस समय क्रूरमणि दम
 सहस कोर-सेना के योद्धा, जय-नराज्य के लिए
 हृद निधय करते, अर्जुन को युद्ध के लिए वेधड़क
 लटकारने लगे । सब प्रकार की विपत्तियों को सहने-
 वाले अर्जुन, जैसे कोई गजराज कमल-पत्र में प्रवेश हो
 करके उसे दलमट डाले बैठे हो, शत्रु-सेना के भीतर
 प्रवेश होकर उसे नष्ट-भष्ट करने लगा ॥ १८१० ॥
 कीरवपश्च के गीनिक लोग इस प्रकार जब अर्जुन के

बाणों से मारे जाने लगे तब महारथी भगदत्त मुद्ध
 होकर, उसी गजराज पर बैठकर, अर्जुन की ओर
 बग से चले । पुरुषसिंह अर्जुन ने रथ पर बैठकर
 उन पर अक्रमण किया । रथ और हाथी पर से उन
 दोनों वीरों का घोर मराम होने लगा । महारथी भग-
 दत्त सुशिक्षित हाथी पर और महारथी अर्जुन सुस-
 ज्जिन रथ पर बैठकर अपना-अपना कौशल श्रियाने
 रणभूमि में बिचले लगे ॥ २१२३ ॥ महारथी भगदत्त
 भयसदृश गत मानव के ऊपर से इन्द्र की भाँति
 अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे ।
 युद्धविद्या-विशारद अर्जुन ने भी अपने बाणों से मध्य
 राह में भगदत्त के बाणों को काट करके उन पर बाण

सम्प्राप्तमपि नेयेप परावृत्तं महाद्विषम् ।

सारोहं मृत्युसात्कर्तुं स्मरन्धर्मं धनञ्जयः ॥ २९ ॥

स तु नागो द्विपरथान्ध्यांश्चाऽऽमृत्य मारिषं ।

प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनञ्जयः ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

वर्तमाने लगे। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त अनायाम ही अर्जुन के वाणों को काटकर सिंहनाद करते हुए कई प्रकार के वाणों से अर्जुन और श्रद्धिष्ण जी को पीड़ित करके उन्हें मार डालने का अभिलाषा से हाथी को आगे बढ़ाने लगे। महामति श्रीकृष्ण, यम के समान भयङ्कर भगदत्त के हाथी को आँते देखकर, शीघ्र रथ की लिये उसके दक्षिण पार्श्व में हट गये। महावीर अर्जुन चाहते तो इस सुयोग में उस हाथी

और उसके सवार भगदत्त की पीछे से मार डालते, किन्तु उन्होंने युद्ध के धर्म का विचार करके ऐसा नहीं किया। उस समय भगदत्त का भयानक हाथी कुपित होकर राह में पड़नेवाले असंख्य पैदलों, हाथियों, घोड़ों और रथों को रौंदने और तोड़ने-फोड़ने लगा। यह देखकर अर्जुन को बड़ा क्रोध चढ़ आया। उन्होंने उसे मार डाला॥२४॥३०॥

—०—

द्रोणपर्व का अष्टाईगवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

भूतराष्ट्र उवाच - तथा क्रुद्धः किमकरोद्भगदत्तस्य पाण्डवः ।

प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम् ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच - प्राग्ज्योतिषेण संसक्ताबुभौ दाशार्हपाण्डवौ ।

मृत्युदंष्ट्रान्तिकं प्राप्तो सर्वभूतानि मेनिरे ॥ २ ॥

तथा तु शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो ।

गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्ययोः ॥ ३ ॥

अथ काष्णायसैर्वाणैः पूर्णकार्मुकानिःसृतेः ।

अविध्यद्देवकीपुत्रं हेमपुङ्खेः शिलाशितेः ॥ ४ ॥

अग्निस्पर्शसमास्तीक्ष्णा भगदत्तेन चोदिताः ।

निर्भियं देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवामसः ॥ ५ ॥

उननीमग्रे अध्याय ॥ २९ ॥

भूतराष्ट्र ने कहा - हे गङ्गा ! अर्जुन ने इस प्रकार कुपित होकर भगदत्त का क्या किया ? और भगदत्त ने ही उनका क्या किया ? इस कृतान्त का वर्णन भिन्नार के माथ करणारागमत्रय ने कहा— ते मतमान ! महाराजी अर्जुन और श्रीकृष्ण जब भगदत्त के समीप पहुँचे तब सर्वत्र भगदत्त दिखा कि ये दोनों अब मृत्यु के मुण्ड में जाने में नहीं बच

सकते। महावीर भगदत्त हाथी पर बैठे बैठे श्रीकृष्ण और अर्जुन के ऊपर निग्नर बना चलाते लगे। ये अनामधन्य बदमाश, कानों तक श्रीचक्र, सुवर्ण-पुष्प-भूषित, शिवा पर निग्नर तीक्ष्ण कर्पाय गये वाणों से श्रीकृष्ण के मर्मस्थलों में पीड़ा पहुँचाने लगे। भगदत्त के चरणों से हुए अग्निपरी चाल श्रीकृष्ण के शरीर को नेदकर मृषी में प्रवेश होने लगा॥२॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा परिवारं निहत्य च ।
 लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥ ६ ॥
 सोऽर्करश्मिनि भांस्तीक्ष्णांस्तोमरान्वै चतुर्दश ।
 अप्रेषयत्सव्यसाची द्विधैकैकमथाऽच्छिनत् ॥ ७ ॥
 ततो नागस्य तद्वर्म व्यधमत्पाकशासनिः ।
 शरजालेन महता तद्वयशीर्यत भूतले ॥ ८ ॥
 शीर्णवर्मा स तु गजः शूरैः सुभृशमर्दितः ।
 बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥ ९ ॥
 ततः प्राग्योतिषः शक्तिं हेमदण्डमयस्सयीम् ।
 व्यसृजद्वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत् ॥ १० ॥
 ततश्छत्रं ध्वजं चैव छित्त्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः ।
 विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्समयन्पर्वतेश्वरम् ॥ ११ ॥
 सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः ।
 भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः ॥ १२ ॥
 व्यसृजत्तोमरान्मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च ।
 तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्तितम् ॥ १३ ॥
 परीवृतं किरीटं तद्यमयन्नेव पाण्डवः ।
 सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् ॥ १४ ॥
 एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम् ।
 अभ्यवर्षत्सगोविन्दं धनुरादाय भास्वरम् ॥ १५ ॥

४॥उस समय महारथी अर्जुन ने भगदत्त का धनुष काटकर उनकी रक्षा करनेवालों को मार डाला। अब वे उनके साथ खेल खेलने की तरह युद्ध करने लगे। रण-निपुण भगदत्त ने अर्जुन के ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण चौदह तोमर चलाये। उनके चलाये हुए प्रत्येक तोमर के अर्जुन ने तीन-तीन टुकड़े कर डाले॥५७॥ इसके पश्चात् भगदत्त के हाथी का कवच भी देखते ही देखते अपने बाणों से काट गिराया। अर्जुन के बाणों से कवच काट जाने पर उनके प्रहारों से यह महागजराज अत्यन्त-न्यथित हो उठा और जलधाराओं से स्नान किये हुए मेघहनि पर्वतराज की तरह शोभायमान हुआ। तब प्राग्योतिष के राजा भगदत्त ने

श्रीकृष्ण को छोहमय सुवर्णदण्डभूषित शक्ति मारी। रणनिपुण अर्जुन ने उसी समय स्फूर्ति के साथ उस शक्ति को बाणों से दो जगह से काट डाला। इसके पश्चात् भगदत्त के छत्र और पञ्जा को काटकर उनके अङ्गों में दस बाण मारे॥८१॥अर्जुन के पङ्कपत्र-शोभित तीक्ष्ण बाणों से घुरी तरह घायल होने के कारण भगदत्त को बड़ा क्रोध चढ़ आया। वे अर्जुन के मस्तक पर अमरस्य तोमर फेंककर बड़े जोर से सिंहनाद करने लगे। भगदत्त के बाणों से अर्जुन के सिर पर का किरीट मुकट पलट गया। महावीर अर्जुन ने उस उल्टे हुए किरीट को उधिन रीति से रखकर भगदत्त से कहा—हे प्राग्योतिषर!

तस्य पार्थो धनुश्छित्वा तूणीरान्सन्निकृत्य च ।
 त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ १६ ॥
 विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् ।
 अभिमन्त्र्याऽकुशं क्रुद्धो व्यस्तृजत्पाण्डवोरसि ॥ १७ ॥
 विस्मृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै ।
 उरसा प्रतिजग्राह पार्थ सञ्छाद्य केशवः ॥ १८ ॥
 वैजयन्त्यभवन्माला तदस्त्रं केशवोरसि ।
 पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वर्तुकुसुमोत्कटा ॥ १९ ॥
 ज्वलनाकैन्दुवर्णाभा पावकोज्ज्वलपल्लवा ।
 तथा पद्मपलाशिन्या वातकम्पितपत्रया ॥ २० ॥
 शुशुभेऽभ्यधिकं शौरिरितसीपुष्पसन्निभः ।
 ततोऽर्जुनः क्लान्तमनाः केशवं प्रत्यभापत ॥ २१ ॥
 अयुध्यमानस्तुरगान्तंयन्ताऽस्मीति चाऽनघ ।
 इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि ॥ २२ ॥
 यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे ।
 ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते ॥ २३ ॥
 सवाणः सधनुश्चाऽहं ससुरासुरमानुपान् ।
 शक्तो लोकानिमाञ्जेतुं तच्चाऽपि विदितं तव ॥ २४ ॥
 ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचाऽर्थवद्बचः ।
 शृणु गुह्यमिदं पार्थ पुरावृत्तं यथाऽनघ ॥ २५ ॥

तुम अब इस समय सब लोगों को एक बार सदा के
 लिए अच्छी प्रज्ञा देवलो; (क्योंकि अब तुम्हारी मृत्यु
 का समय आ गया है) ॥१२।१४॥ अर्जुन के इन
 वचनों को सुनकर महारथी भगदत्त अत्यन्त क्रोध
 में व्याकुल हो, चमत्कारी धनुष हाथ में लेकर, अर्जुन
 और श्रीकृष्ण के ऊपर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरमाने
 लगे । उस समय रणविशारद अर्जुन ने बड़ी स्फूर्ति
 में भगदत्त का धनुष और तर्रफ़म काटकर बहत्तर
 बाणों से उनके मर्मस्थलों को छेद टाटा । अर्जुन के
 तीक्ष्ण बाणों से मर्मस्थलों में अत्यन्त पीड़ित होने के
 कारण भगदत्त को बड़ा क्रोध हो आया । तब उन्होंने
 अर्जुन की शान्ति ताककर वैष्णव अस्त्र छोड़ा । महा-म

श्रीकृष्ण ने, अर्जुन की रक्षा करने के लिए, यह सर्व-
 शान्ति अमोघ वैष्णवास्त्र अपनी छाती पर रोक लिया ।
 [श्रीकृष्ण की आद में आ जाने में अर्जुन बच गये ।]
 वह वैष्णवास्त्र श्रीकृष्ण के यक्ष स्थल में वैजयन्ती
 माला के रूप में स्थित हुआ ॥१५।२१॥ उस
 समय महावीर अर्जुन ने अत्यन्त क्रोध पाकर
 श्रीकृष्ण में कहा—हे मधुमूढन ! आरने प्रतिज्ञा की
 थी कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा, केरत अर्जुन का रथ
 होंगा ।' फिर इस समय आरने अपनी उस प्रतिज्ञा
 को क्यों तोड़ दिया ? यदि विपत्ति या प्राण-मद्दट
 में पड़ा हुआ होता अथवा शत्रु का मानना करने में
 अमर्ष होता तो आर युद्ध कर सकते थे । किन्तु

चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः ।
 आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे ॥ २६ ॥
 एका मूर्तिस्तपश्चर्या कुरुते मे भुवि स्थिता ।
 अपरा पश्यति जगत्कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥ २७ ॥
 अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता ।
 शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकम् ॥ २८ ॥
 याऽसौ वर्षसहस्रान्ते मूर्तिरुत्तिष्ठते मम ।
 वराहंभ्यो वराज्श्रेष्ठांस्तस्मिन्काले ददाति सा ॥ २९ ॥
 तं तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा ।
 अयाचत वरं यन्मां नरकार्थाय तच्छृणु ॥ ३० ॥
 देवानां दानवानां च अवध्यस्तनयोऽस्तु मे ।
 उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥ ३१ ॥
 एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा ।
 अमोघमस्त्रं प्रायच्छं वैष्णवं परमं पुरा ॥ ३२ ॥
 अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु क्षमे ।
 नरकस्याऽभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद्विधिष्यति ॥ ३३ ॥
 अनेनाऽस्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः ।
 भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ ३४ ॥
 तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी ।
 स चाऽप्यासीद् दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥ ३५ ॥

मेरे जीवित रहते युद्ध करना कदापि आपका कर्तव्य नहीं है । आपसे यह ठिपा हुआ नहीं है कि गाण्डीय धनुष छेजर में देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सहित सब लोगों को परास्त कर सकना हूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ अतः श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! मैं तुममें एक बहुत ही गुप्त प्राचीन वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो । मैंने लोगों का हित और रक्षा करने के लिए अपनी मूर्ति को चार अशों में विभक्त किया है । उन चार मूर्तियों में एक मूर्ति पृथ्वी पर तपस्या करती है, दूसरी मूर्ति जगन् के उचिन् और अनुचिन् कर्मों का निरीक्षण करती है, तीसरी मूर्ति मनुष्यलोक में उन्नत होकर मनुष्यों के कर्म का गांभीर्य करती है और चौथी मूर्ति सहस्र

वर्ष की निद्रा के सुख का अनुभव करती है ॥ २५ ॥ २८ ॥ सहस्र वर्ष के पश्चात् वह चौथी मूर्ति जागरूक वरदान के योग्य व्यक्तियों को श्रेष्ठ वर देती है । उस समय पृथ्वी ने, मेरे वरदान के समय को जान-कर, अपने पुत्र नरकामुर के लिए मुझसे जो वर माँगा था, सो सुनो ॥ २९ ॥ ३० ॥ पृथ्वी ने मुझसे कहा—हे नारायण ! आपके वरसे मेरा पुत्र नरकामुर वैष्णव अस्त्र को प्राप्त करके देवता और दैत्य दोनों के हाथ में न मारा जा सके । मैंने कहा— हे पृथ्वी ! यह वैष्णव अस्त्र नरकामुर की रक्षा के लिए अमोघ हो । इसके प्रभाव में नरकामुर की कोई नहीं मार सकेगा तुम्हारा पुत्र इस अमोघ दिव्य अस्त्र में सुरक्षित रहने

तस्मात्प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम् ।
 नाऽस्याऽवध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥ ३६ ॥
 तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामितम् ।
 विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥ ३७ ॥
 वैरिणं जहि दुर्धनं भगदत्तं सुरद्विपम् ।
 यथाऽहं जघ्निवान्पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥ ३८ ॥
 एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना ।
 भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ॥ ३९ ॥
 ततः पार्थो महाबाहुरसम्भ्रान्तो महामनाः ।
 कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्षयत् ॥ ४० ॥
 स समाम्नाय तं नागं बाणो वज्र इवाऽचलम् ।
 अभ्यगात्सह पुङ्गेन बल्मीकमिव पन्नगः ॥ ४१ ॥
 स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः ।
 न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥ ४२ ॥
 सु तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ ।
 नदन्नार्त्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥ ४३ ॥
 ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
 अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः ॥ ४४ ॥
 बलीसञ्छन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः ।
 अक्षणोरुन्मीलनार्थाय वज्रपट्टो ह्यसौ नृपः ॥ ४५ ॥

के कारण सब लोकों के लिए दुराधर्ष और शत्रुसेना का संहार करने में समर्थ होगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अर्जुन ! पृथ्वी मुझसे यह वर पाकर चली गई । तभी से नरकासुर बड़ा ही दुर्धन हो उठा । महावीर प्राग्ज्योतिषपति भगदत्त ने उसी नरकासुर से यह अमोघ वैष्णवास्त्र प्राप्त किया था । त्रिशूल में इन्द्र, चन्द्र, रुद्र, वरुण आदि कोई ऐसा नहीं है, जिसका वध यह अस्त्र न कर सक्ता हो । इसी कारण मैंने अपनी प्रतिज्ञा की परमा न करके स्वयं इस अस्त्र के वेग को रोक लिया । देवदेवी महासुर भगदत्त इस समय उस वैष्णव अस्त्र से हीन हो गये हैं । अतएव जिम प्रकार मैंने नरकासुर को मारा था उसी प्रकार अब तुम इस

दारुण शत्रु को नष्ट करो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ महावीर अर्जुन ने यह सुनकर भगदत्त को मारने का निश्चय कर लिया । वे भगदत्त के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । अर्जुन ने धैर्य के साथ भगदत्त के हाथी को यमदण्ड-सदृश नाराच बाण मारा । सर्प जैसे बिल के भीतर प्रवेश होता है ऐसे ही अर्जुन का चलाया हुआ वह वज्रमदृश नाराच बाण उस हाथी के मन्तरु में प्रवेश हो गया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ भगदत्त उस हाथी को बारम्बार अर्जुन की ओर चलाने लगे, किन्तु जैसे दरिद्र की बीबी अपने पति की बातों पर ध्यान नहीं देती वैसे ही उस हाथी ने भी भगदत्त की चेष्टा पर ध्यान नहीं दिया । कुछ ही समय के पश्चात् उस हाथी का शरीर निश्चेष्ट

देववाक्यात्प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः ।
 छिन्नमात्रेऽशुके तस्मिन् रुद्धनेत्रो बभूव सः ॥ ४६ ॥
 तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान् ।
 ततश्चन्द्रार्धविम्बेन बाणेन नतपर्वणा ॥ ४७ ॥
 विभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः ।
 स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥ ४८ ॥
 शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह ।
 शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरांशुकम् ।
 नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४९ ॥

स हेममाली तपनीयभाण्डात्पपात नागाद्विरिसन्निकाशात् ।
 सुपुष्पितो मारुतवेगरुणो महीधराद्यादिव कर्णिकारः ॥ ५० ॥
 निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे ।
 ततोऽपरांस्तव जयकांक्षिणो नरान्वभञ्ज वायुर्वलवान्द्रुमानिव ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिकपर्वणि सशक्तवधपर्वणि भगदत्तवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

हो गया और वह दाँतों के बल पृथ्वी पर गिरकर,
 चिछा-चिछाकर, मर गया॥४२॥४३॥अर्जुनसे श्रीकृष्ण
 ने कहा कि इस राजा को वृद्ध अवस्थाने घेर रक्खा
 है । यह शूर है तो वड़ा बलवान्, किन्तु इसकी पलके
 इतनी लटक गई हैं कि आँखें खुली रखने के लिए
 इतने पलकों को पट्टी से बाँध रक्खा है॥४४॥४५॥
 यह सुनकर अर्जुन ने बाण से उस पट्टी को काट
 दिया; इससे भगदत्त की आँखों पर पलके गिर जाने
 के कारण वे कुछ भी देख न सके । अब अर्जुन ने
 अर्धचन्द्र बाण से भगदत्त का वक्ष स्थल फाड़ डाला ।
 तब भगदत्त के हाथ से धनुष और बाण छूटकर

गिर गये और उनका शरीर प्राणाहीन होकर गिर
 पड़ा । सन्ताड़ित पद्म-नाल से जैसे पत्ते झड़ जाते
 हैं वैसे ही भगदत्त के मस्तरु पर से बहुमूल्य पगड़ी
 गिर पड़ी॥४६॥४९॥अच्छी प्रकार झला हुआ कनेर
 का पेड़ जैसे उबड़कर परत के ऊपर से गिर पड़े
 वैसे ही सुवर्णमाल्य-भूषित भगदत्त का शरीर सुवर्ण-
 भूषण-भूषित हाथी पर से पृथ्वी पर गिर पड़ा । उस
 समय महावीर अर्जुन इन्द्रतुल्य महाबली इन्द्र के सखा
 और भगदत्त को मारकर वैसे ही कौरव-सेना के बीरों
 का संहार करने लगे जैसे आँधी बड़े-बड़े वृक्षों को
 तोड़ती और उखाड़ती चली जाती है॥५०॥५१॥

द्रोणपर्व का उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सङ्ग्रह उवाच - प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम् ।
 हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्त्तत ॥ १ ॥

तीसवाँ अध्याय ॥ ३० ॥

सङ्ग्रह पकड़ते हैं—हे राजेन्द्र ! अर्जुन इस प्रकार
 इन्द्र के प्रिय सखा भगदत्त को मारकर रणभूमि में

घूमने लगे । उस समय युधामन्यु और अचल नाम वाले
 दो गान्धारराज-नन्दन अर्जुन को, सम्मुख आकर,

ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरञ्जयौ ।
 अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥ २ ॥
 तौ समेत्यार्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ ।
 अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्मृशम् ॥ ३ ॥
 वृषकस्य हयान्सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् ।
 तिलशो व्यधमत्पार्थः सौवलस्य शितैः शरैः ॥ ४ ॥
 ततोऽर्जुनः शरघातैर्नानाप्रहरणैरपि ।
 गान्धारानाकुलांश्चक्रे सौवलप्रमुखान्पुनः ॥ ५ ॥
 ततः पञ्चशतान्वीरान्गान्धारानुयतायुधान् ।
 प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो वाणैर्धनञ्जयः ॥ ६ ॥
 हताश्चात्तु रथान्तूर्णमवतीर्य महाभुजः ।
 आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥ ७ ॥
 तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ ।
 शरवर्षेण वीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
 स्यालौ तव महारमानौ राजानौ वृषकाचलौ ।
 भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रवलाविव ॥ ९ ॥
 लब्धलक्षौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः ।
 निदाघवर्षिकौ मासौ लोकं घर्माशुभिर्यथा ॥ १० ॥
 तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ ।
 संश्लिष्टाह्नौ स्थितौ राजञ्जयानैकेपुणाऽर्जुनः ॥ ११ ॥

वाणार्थी में पीड़ित करने लगे । कभी सन्मुख से और कभी पीछे से वे अर्जुन के ऊपर वेगवानी तीक्ष्ण बाण चलाते लगे, जिनसे उनका शरीर घायत हो गया ॥ १३ ॥ अर्जुन ने क्रुद्ध होकर क्षण भर में तीक्ष्ण बाणों से गान्धार देश के राजकुमार वृषक के रथ के सारथी और घोड़ों को मार डाला और उनके धनुष, छत्र, छत्र और रथ को निच-निच कर कूट डाला । महारथी अर्जुन अनेक प्रकार के अस्त्रों और शस्त्रों से शत्रुनि आदि गान्धार देश के योद्धाओं को बारम्बार व्याकुल करने लगे । फिर अर्जुन ने पुनित होकर शत्रु तमि हुए पाँच मी गान्धारियों को क्षण भर में मार डिया । वृषक बड़ी गहर्त के साथ अर्जुन विना

घोड़ा के रथ में कूदकर, भाई के रथ पर जाकर, दूसरा धनुष लेकर युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥ और अर्जुन, एक ही रथ पर बैठे हुए, वृषक और अचल नाम के दोनों भाइयों को बारम्बार तीक्ष्ण बाण मारने लगे । पूर्ण समय में जैसे वृत्रासुर और वक्रासुर ने इन्द्र पर प्रहार किये थे वैसे ही वे दोनों भाई अर्जुन को तीक्ष्ण बाणों से घेरने लगे । जैसे गर्मी और वर्षा ऋतु के दो-दो महर्न ताप और जल के द्वारा मनुष्यों को अत्यन्त व्याकुल करने हैं वैसे ही वे दोनों वीर राजकुमार स्वयं प्रारंभ में वचकर अर्जुन पर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ १० ॥ इति पश्चात् अर्जुन ने एक ही रथ पर बैठे हुए दोनों भाइयों को एक ही बाण से मार डाला ।

तौ रथात्सिंहसङ्काशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ ।
 राजन्सम्पेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥ १२ ॥
 तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद्वन्धुजनप्रियौ ।
 यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ ॥ १३ ॥
 दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ ।
 भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ १४ ॥
 निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः ।
 कृष्णौ सम्मोहयन्मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥ १५ ॥
 लघुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः ।
 गदापरिघनिस्त्रिशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥ १६ ॥
 सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः ।
 क्षुराः क्षुरप्रणालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः ॥ १७ ॥
 चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च ।
 प्रपेतुः शतशो दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चाऽर्जुनं प्रति ॥ १८ ॥
 खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सूमरचित्रकाः ।
 ऋक्षाः शालावृका वृधाः कपयश्च सरीसृपाः ॥ १९ ॥
 विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति ।
 संकुञ्चान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च ॥ २० ॥
 ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
 विस्तृजन्निपुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥ २१ ॥

उसी समय वे सिंहदन्त्य लाल-लाल नेत्रों वाले, एक
 ही रूप और आकार के, दोनों भाई मरकर रथ पर
 से गिर पड़े । अत्यन्त पवित्र वीर-यश को पृथ्वी पर
 सब ओर फैलाकर वे दोनों वीर स्वर्ग को सिधारे
 ॥ ११ ॥ १३ ॥ महाराज ! इसके पश्चात् आपके पुत्र-
 गण संग्राम से न हटनेवाले, वन्धुजनप्रिय, दोनों मातुलों
 को मरकर गिरते देखकर आँसू बहाने लगे । माया-
 निपुण शकुनि ने जय देखा कि उनके दोनों भाई
 मारे गये तब वे श्रीकृष्ण और अर्जुन को मोहित करने
 के लिए माया-युद्ध करने लगे । उस समय शकुनि
 की माया के प्रभाव से सब दिशाओं और विदशाओं
 से अर्जुन के ऊपर लाठी, अयोधुद, पाँपर, शतग्री,

गदा, बेलन, खड्ग, शूल, मुद्गर, पट्टिशा, कम्पन, ऋष्टि,
 नखर, मुशल, परशु, क्षुर, क्षुरप्र, नालीका, वत्सदन्त,
 अश्विसन्धि, चक्र, विशिख, प्रास और अन्यान्य बहुत
 से शस्त्रों की वर्षा होने लगी ॥ १४ ॥ १८ ॥ गये, ऊँट,
 भैंसे, बाघ, सिंह, सूमर (एक प्रकार के मृग), चीते,
 रीछ, कुत्ते, गिद्ध, बानर, सर्प आदि बहुत से जीव
 भूम से व्याकुल और क्रोध से अन्धे होकर अर्जुन
 की ओर दीड़ते दिग्वाँ पड़ने लगे । तब दिव्य अस्त्रों के
 जाननेवाले अर्जुन [अस्त्रों से अभिमन्त्रित] बाण चला-
 कर उन जीवों को नष्ट करने लगे । अर्जुन के बाणों
 से पीड़ित होकर भयानक चीन्कार करते हुए वे मर-
 गकर यमपुर को जाने लगे ॥ १९ ॥ २० ॥ अब बहुत

ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्द्वैः ।
 विरुन्तो महारावान्विनेशुः सर्वतो हताः ॥ २२ ॥
 ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति ।
 तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन् ॥ २३ ॥
 तत्तमो भैरवं घोरं भयकर्तुं महाहवे ।
 उत्तमास्त्रेण महता ज्यौतिषेणाऽर्जुनोऽवधीत् ॥ २४ ॥
 हते नस्मिञ्जलौघास्तु प्रादुरान्भयानकाः ।
 अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथाऽर्जुनः ॥ २५ ॥
 प्रायुक्ताम्भस्ततस्तेन प्रायशोऽस्त्रेण शोपितम् ।
 एवं बहुविधा मायाः सौवलस्य कृताः कृताः ॥ २६ ॥
 जघानाऽस्त्रबलेनाऽऽशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।
 तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः ॥ २७ ॥
 अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा ।
 ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छेद्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिपु ॥ २८ ॥
 अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ।
 सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ २९ ॥
 द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवाऽऽसाद्य पर्वतम् ।
 द्रोणमेवाऽन्वपद्यन्त केचित्तत्र नरर्षभाः ॥ ३० ॥
 केचिद् दुर्योधनं राजन्नर्थमानाः किरीटिना ।
 नाऽपश्याम ततस्त्वेनं सैन्ये वै रजसाऽऽवृते ॥ ३१ ॥

ही घना अँघरे निस्तृत हो गया, जिसन अर्जुन क
 रथ को छिया छिया । उस अँघरे के भीतर से कठोर
 वाक्य कहकर अदृश्य जीव अर्जुन नी भर्त्सना करने
 लगे । अर्जुन ने ज्योतिर्मय अस्त्र का प्रयोग करके
 तुरन्त ही उस भयङ्कर अँघरे को दूर कर दिया । इसके
 पश्चात् भयानक जल के प्रवाह प्रकट हुए । अर्जुन
 ने वह जल सुखाने के लिए आदित्यास्त्र का प्रयोग
 किया । उस अस्त्र के प्रमान से प्राय सत्र जल सूख
 गया ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसी प्रकार महावीर अर्जुन ने हँसते
 हँसते अस्त्रविषा के बल से शकुनि की प्रकट की
 हुई सत्र मायाओं को नष्ट कर दिया । तब शकुनि
 अर्जुन के वाणप्रहार से पीड़ित होकर, बड़े स्फूर्ति

शाली बोझागले रथ पर बँठकर, कायरों की तरह
 रण छोड़कर भाग खड़े हुए ॥ २६ ॥ २८ ॥ अब महानाहु
 अर्जुन अपने हाथों की स्फूर्ति दिखाते हुए कौरव सेना
 पर बाण बरसाने लगे । जैसे गह्वा का प्रवाह पर्वत
 से टकराकर दो धाराओं में बँट जाता है वैसे ही
 कारण सेना अर्जुन के वाणों से पीड़ित होकर दो
 भागों में बँट गई । कुछ सेना आचार्य के समीप और
 कुछ सेना दुर्योधन के समीप चली गई । उस समय
 ऐसी धूल उड़ी कि अर्जुन को हम लोग देख नहीं
 पाते थे । केवल दक्षिण ओर निरन्तर गाण्डीय धनुष
 का घोर शब्द सुनाई पड़ रहा था । वह गाण्डीय का
 शब्द शब्द-दुन्दुभि और अन्य युद्ध के वाणों की

गाण्डीवस्य च निर्घोपः श्रुतो दक्षिणतो मया ।
 शङ्खदुन्दुभिनिर्घोपं वादित्राणां च निःस्वनम् ॥ ३२ ॥
 गाण्डीवस्य तु निर्घोपो व्यतिक्रम्याऽस्पृशद्विवम् ।
 ततः पुनर्दक्षिणतः संग्रामश्चित्रयोधिनाम् ॥ ३३ ॥
 सुयुद्धं चाऽर्जुनस्याऽऽसीदहं तु द्रोणमन्वियाम् ।
 यौधिष्ठिराभ्यनीकानि प्रहरन्ति ततस्ततः ॥ ३४ ॥
 नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत ।
 अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाऽभ्राणि मारुतः ॥ ३५ ॥
 तं वासवमिवाऽऽयान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
 महेष्वासा नरव्याघ्रा नोग्रं केचिद्वारयन् ॥ ३६ ॥
 ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम् ।
 स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३७ ॥
 तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः ।
 शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना दिशो दश ॥ ३८ ॥
 तुरगं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष्य ।
 विनिर्भिय क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ३९ ॥
 न च द्वितीयं व्यसृजत्कुञ्जराश्वनरेषु सः ।
 पृथगेकशरा रुणा निपेतुस्ते गतासवः ॥ ४० ॥

हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्च सर्वतः शराभिस्पृष्टैश्च हयैर्निपातितैः ।

तदाऽश्वगोमायुवलाभिनादितं विचित्रमायोधशिरो बभूव तत् ॥ ४१ ॥

ज्वनि से मिलकर आकाश में गूँज उठा ॥ २८ ॥ ३३ ॥
 हे महाराज ! उस समय दक्षिण ओर घोर संग्राम होने
 लगा । मैं द्रोणाचार्य के साथ था । धर्मराज युधिष्ठिर
 के वीर योद्धा कौरवपक्ष की सेना का संहार करने
 लगे । वर्षाकाल में वायु जैसे मेघों को टिन्न-भिन्न
 कर देती है वैसे ही अर्जुन अपने बाणों के प्रहार
 से शत्रुसेना को टिन्न-भिन्न करने और भगने लगे
 ॥ ३३ ॥ ३५ ॥ जल बसते हुए इन्द्र के समान बाणधर्या
 करनेवाले अर्जुन को आते देखकर कोई भी वीर उन्हें
 नहीं रोक सका । अर्जुन के बाणों की चोट से अत्यन्त
 व्यथित होकर कौरवपक्ष के वीर ऐसे भागे कि भागते
 समय अपने ही पक्ष के लोगों को रौंदते-कुचलते

आर मारते हुए चले जाते थे । अर्जुन के चलाये हुए
 कङ्कपत्राशोभित और शरीरों को काटनेवाले बाण
 टीडियों की तरह चारों ओर फैलने और गिरने लगे
 ॥ ३५ ॥ ३८ ॥ मर्ष जैसे विद्युत में प्रवेश होते हैं वैसे ही
 वे रक्त पानेवाले बाण घोड़ों, हाथियों, पैदलों और रथी
 लोगों के शरीरों को फाँड़कर पृथ्वी में प्रवेश होते हुए
 दिखाई देते थे । अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार
 हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को दूसरा बाण नहीं मारते
 थे; एक ही बाण लगने से वे जीव अत्यन्त व्यथित और
 प्राणहीन होकर पृथ्वी पर लोटने लगते थे । मेरे हुए
 मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों की लाशों से समरभूमि
 परिपूर्ण हो उठी । चारों ओर गीदद और कुत्ते की आ

पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत्तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः ।

स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जनास्त्यजन्ति बाहानपि पार्थपीडिताः ॥ ४२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभियेकपर्वणि संशप्तकपर्वणि शकुनिपल्याने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

हल कर रहे थे । इस प्रकार वह युद्धभूमि अत्यन्त भयानक और अद्भुत दिखाई पड़ने लगी । पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, मित्र मित्र को और स्वजन स्वजन

को छोड़कर आत्मरक्षा के लिए यत्न कर रहा था । अधिक क्या कहें, लोग अपने-अपने बाहनों की भी छोड़कर भागे चले जा रहे थे ॥ ३९, ४२ ॥

द्रोणपर्व का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - तेष्वर्नकेषु भस्त्रेषु पाण्डुपुत्रेण सञ्जय ।

चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः ॥ १ ॥

अनीकानां प्रभञ्जानामवस्थानमपश्यताम् ।

दुष्करं प्रतिसन्धानं तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥

मञ्जय उवाच - तथाऽपि तव पुत्रस्य प्रियकामा विशाम्पते ।

यशः प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः ॥ ३ ॥

समुद्यतेषु चाऽस्त्रेषु सम्प्राप्ते च युधिष्ठिरे ।

अकुर्वन्नायककर्मणि भैरवे सत्यभीतवत् ॥ ४ ॥

अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्ममितौजसः ।

सात्यकेशैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो ॥ ५ ॥

द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चालाः समंचोदयन् ।

मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून्सर्वानंचोदयन् ॥ ६ ॥

द्रोणं द्रोणमिति ह्येकं मा द्रोणमिति चाऽपरे ।

कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्युतमवर्त्तत ॥ ७ ॥

यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम् ।

तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्त्तत ॥ ८ ॥

इकतीसरा अध्यायः ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! जिस समय कौरव सेना छिन्न भिन्न हो गई और तुम लोग रण-भूमि छोड़कर भागने लगे उस समय तुम लोगों की क्या दशा हुई ? छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर भागती और शरणस्थान को न देखती हुई सेना को संभालना और एकत्र करना बहुत ही दुष्कर होता है । मेरे पक्ष के सेनापति ने यह कार्य कैसे किया ? तुम

मन वृत्तान्त विस्तार के साथ मुझ से कहो ॥ १।२॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! साधारण सैनिक लोग जब वे सिलसिले भाग खड़े हुए तब भी महाराज दुर्योधन का प्रिय और अपने यश की रक्षा करने के निमित्त श्रेष्ठ वीररणा द्रोणाचार्य के पीछे चले । अस्स-शस्त्र तन गये, युधिष्ठिर अपने योद्धाओं के साथ युद्धभूमि में उपस्थित हुए और भयानक युद्ध होने

तथा भागविपर्यासैः संग्रामे भैरवे सति ।
 वीराः समासदन्वीरान्कुर्वन्तो भैरवं रवम् ॥ ९ ॥
 अकम्पनीयाः शत्रूणां वभूवुस्तत्र पाण्डवाः ।
 अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः ॥ १० ॥
 ते त्वमर्पवशं प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्वचोदिताः ।
 त्यक्त्वा प्राणान्न्यवर्त्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे ॥ ११ ॥
 अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाऽभवत् ।
 दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम् ॥ १२ ॥
 न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम् ।
 दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा ॥ १३ ॥
 प्राकम्पतेव पृथिवी तस्मिन्वीरावसादने ।
 निवर्त्तता बलौघेन महता भारपीडिता ॥ १४ ॥
 घूर्णतोऽपि बलौघस्य दिवं स्तब्ध्वेव निःस्वनः ।
 अजातशत्रोस्तत्सैन्यमाविवेश सुभैरवः ॥ १५ ॥
 समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः ।
 द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्ना निशितैः शरैः ॥ १६ ॥
 तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनऽद्भुतकर्मणा ।
 पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥ १७ ॥
 तदद्भुतमभूयुद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तथा ।
 नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः ॥ १८ ॥

लगा । उस समय आपके पक्ष के वीर योद्धा लोग
 निर्भय अद्भुत कर्म करके अपना पराक्रम प्रकट करने
 लगे । कौरवपक्ष के महापराक्रमी वीर अरसर पाकर
 भीममेन, सात्यकि और भृष्टद्युम्न आदि पर आक्रमण
 करने लगे ॥ १५ ॥ क्रूरमति पाञ्चालगण “द्रोण को मारो,
 द्रोण को मारो” कहकर अपने पक्ष के लोगों को उत्तेजित
 करने लगे । वैसे ही आपके पुत्रगण “द्रोणाचार्य की
 रक्षा करो, द्रोणाचार्य की रक्षा करो” ऐसा कहकर
 अपने पक्ष के वीरों को आगे बढ़ने के लिए उन्माहित
 करते हुए प्रेरणा करने लगे । द्रोणाचार्य के जीवन
 को लेकर कौरवों और पाण्डवों में बाजी सी लगी गई ।
 पाण्डव लोग कहते थे कि द्रोणाचार्य को मारो और

कौरव लोग कहते थे कि द्रोणाचार्य को न मारने पाँवें
 ॥ १६ ॥ आचार्य द्रोण पाञ्चाल देश की रथ-सेना के
 जिम-जिसे अंश को अपने वंशों से उच्च-भिन्न करने
 लगते थे उस-उस अंश की रक्षा करने के निमित्त
 वीर भृष्टद्युम्न वहाँ पहुँच जाते थे । इस प्रकार मन
 सेना में उथल-पुथल मच गई और युद्ध ने भयानक
 रूप धारण कर लिया । वीर योद्धा लोग भयानक
 मिहनाद करते हुए अपने शत्रुओं पर आक्रमण करने
 लगे । पाण्डवों पर आक्रमण करना कौरवपक्ष के
 वीरों के लिए अभिमान सा हो उठा । कौरवों के
 दिये हुए कष्टों की स्मरण करके पाण्डव भयानक
 आक्रमण से शत्रुपक्ष की सेना को व्याकुल करते

ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम् ।
 शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन्कक्षमिवाऽनलः ॥ १९ ॥
 तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
 पूर्वाभिभापी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभापत ॥ २० ॥
 नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शराचिपा ।
 मयैकेन हि युद्धयस्व क्रुद्धः प्रहर चाऽऽशु माम् ॥ २१ ॥
 तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
 व्याकोशपद्माभमुखो नीलो विव्याध सायकैः ॥ २२ ॥
 तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिमिः ।
 धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च द्विपतः स न्यकृन्तत ॥ २३ ॥
 स प्लुतः स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्वर्मवरासिभृत् ।
 द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत्पतत्रिवत् ॥ २४ ॥
 तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात्सकुण्डलम् ।
 भल्लेनाऽपाहरद् द्रौणिः स्मयमान इवाऽनघ ॥ २५ ॥
 सम्पूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
 प्रांशुस्तपलपत्राभो निहतो न्यपतद्भुवि ॥ २६ ॥
 ततः प्रविष्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला ।
 आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ॥ २७ ॥

लगे॥८१०॥ पाण्डव लोग कुपित हाकर द्रोणाचार्य
 को मारने के लिए प्राणपण करके वीरतर सप्राप्त
 करने लगे । वह सप्राप्त पथर और लोहे की बर्षा
 के समान अत्यन्त भयङ्कर हों उठा । बड़े बड़े लोगों
 को भी, जिन्होंने पहले देस्ताओं और दानवों के घोर
 सप्राप्त देखे-सुने हैं, स्मरण नहीं आता कि कभी ऐसा
 भयङ्कर युद्ध हुआ था॥१११३॥उम वीर-सहाराकारी
 समर में सेना के वीरों में पृथ्वी अत्यन्त व्यथित होकर
 कौपिने लगी । चारों ओर घूमने फिरने हुए कौरवपक्ष
 के सैनिकों का कोलाहल आकाशमण्डल में गूँजन
 हुआ पाण्डव-सेना में छा गया । पाण्डवपक्ष के सैनिकों
 को सम्मुख देखकर द्रोणाचार्य सुतीक्ष्ण बाणों से
 छिन्न-भिन्न करने लगे । तब पाण्डव पक्ष के सेनापति
 धृष्टपुत्र मोक्ष से विह्वल होकर उनके सम्मुख आये
 और उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे । द्रोणाचार्य

और धृष्टपुत्र के उस अद्भुत समर को देखकर हम
 लोगों ने निश्चय कर लिया कि यह युद्ध अनुलनीय
 है॥१४१८॥इसके पश्चात् अग्निसदृश तेजस्वी महा-
 राज नील कौरव सेना को उसी प्रकार अपने बाणों
 से भस्म करने लगे जिस प्रकार से प्रज्वलित हुई अग्नि
 सूखी घास के ढेर को जलाती है । उनका धनुष ही
 ज्वाला था और बाण ही चिंगारियों के समान देख
 पड़ते थे । तब महाप्रतापी वीर अश्वत्थामा हँसते हुए
 नील के सम्मुख आकर कहने लगे—हे नील ! इन
 बहुत से योद्धाओं को अपने बाणों की अग्नि में तुम
 व्यर्थ भस्म कर रहे हो । इन्हें मारने से क्या फल
 प्राप्त होगा ? आओ, मुझ अकेले से ही युद्ध करो,
 शीघ्र ही कुछ होकर मुझ पर चार करो॥१५१२॥हे
 महाराज ! यह सुनकर महापराक्रमी और खिले हुए
 कमल के समान मुखवाले नील राजा ने कमल-वर्ण

अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः ।

कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति मारिष ॥ २८ ॥

दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली ।

संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि संग्रसकवधपर्वणि नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

कमल-लोचन अश्वत्थामा को कई तीक्ष्ण बाण मारे । महाबली अश्वत्थामा ने तुरन्त ही तीन भट्ट बाणों से नील के धनुष, ध्वजा और छत्र के दुकड़े-दुकड़े, कर डाले । तब नील रथ से क्रुदकर ढाल तलवार लेकर अश्वत्थामा का सिरकाटने के निमित्त पक्षी की भांति उनकी ओर झपटे । अश्वत्थामा ने भी हँसकर स्फूर्ति के साथ एक भट्ट बाण से नील का, सुन्दर नासिका से शोभित और गणिमय कुण्डलो से अलङ्कृत, मस्तक काट डाला ॥ २२ ॥ लम्बे, कमलवर्ण,

पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाले, कमल-लोचन नील जब पृथ्वी पर मरकर गिर पड़े तब पाण्डवों की सेना बहुत ही व्यथित हो उठी । पाण्डवपक्ष के योद्धा और महारथी लोग उस समय इस चिन्ता से अधीर हो उठे कि इस समय हमारी रक्षा कौन करेगा । क्योंकि महावीर अर्जुन तो दक्षिण-रणभूमि में दूर पर, बचे हुए संशप्तकों और नारायणी सेना के धीरों से, संग्राम कर रहे हैं । फिर वे कैसे हमारी रक्षा कर सकते हैं ॥ २६ ॥ २९ ॥

द्रोणपर्व का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

सञ्जय उवाच—प्रतिघातं तु सैन्यस्य नाऽमृष्यत वृकोदरः ।

सोऽभ्याहनद्वयं पृष्ट्वा कर्णं च दशभिः शरैः ॥ १ ॥

तस्य द्रोणः शितैर्वाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्वगैः ।

जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्मणयाशु जघान ह ॥ २ ॥

आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः पद्भिर्विशत्या समार्षयत् ।

कर्णो द्वादशभिर्वाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ ३ ॥

पद्भिर्दुयोधनो राजा तत एनमथाऽकिरत् ।

भीमसेनोऽपि तान्सर्वान्प्रत्यविध्यन्महाबलः ॥ ४ ॥

द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः ।

दुयोधनं द्वादशभिर्द्रौणिमष्टाभिराशुगैः ॥ ५ ॥

वतीसवाँ अध्याय ॥ ३२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त महावीर भीमसेन इस प्रकार अपनी सेना का सहाय होना न देख सक्ते के कारण आगे बढ़े । उन्होंने क्रुद होकर बाह्यिक को साठ और कर्ण को दस बाण मारे । द्रोणाचार्य ने भीमसेन के प्राण छेने के लिए उनके मर्मस्थलों में निरन्तर तीक्ष्ण धारवाले

उच्चैर्म बाण मारे । कर्ण ने बारह, अश्वत्थामा ने सात और दुयोधन ने छ; तीक्ष्ण बाण भीमसेन को मारे ॥ १ ॥ ४ ॥ तब भीम ने क्रुपित होकर स्फूर्ति दिखाते हुए द्रोणाचार्य को पचास, कर्ण को दस, दुयोधन को बारह और अश्वत्थामा को आठ बाण मारकर मिहनाद किया । इस प्रकार वे अजेडे ही उनके

आरावं तुमुलं कुर्वन्नभ्यवर्त्तत तान्रणे ।
 तस्मिन्सन्त्यजति प्राणान्मृत्युसाधारणीकृते ॥ ६ ॥
 अजातशत्रुस्तान्योधान्भीमं त्रातेत्यचोदयत् ।
 ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः ॥ ७ ॥
 युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
 ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः ॥ ८ ॥
 महेष्वासवरैर्गुप्ता द्रोणानीकं विभित्सवः ।
 समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ॥ ९ ॥
 तान्प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
 महारथानतिवलान्वीरान्समरयोधिनः ॥ १० ॥
 बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकान्पाण्डवा ययुः ।
 सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान् ॥ ११ ॥
 आसीच्छक्यसिसम्पातो युद्धमासीत्परश्वधैः ।
 प्रकृष्टमसियुद्धं च घमूव कटुकोदयम् ॥ १२ ॥
 कुञ्जराणां च सम्पाते युद्धमासीत्सुदारुणम् ।
 अपतत्कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाकिशराः ॥ १३ ॥
 नरो बाणविनिर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिप ।
 तत्राऽन्यस्य च सम्मर्दे पतितस्य विवर्मणः ॥ १४ ॥
 शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः ।
 अपरांश्चाऽपरे मृदन्वारणाः पतितान्नरान् ॥ १५ ॥

साथ सप्राप्त करने लगे । वह युद्धभूमि उस समय
 महाभयानक हो उठी । उस समय वहाँ मृत्यु बहुत
 ही सुलभ हो रही थी । धर्मराज युधिष्ठिर ने भीमसेन
 की रक्षा करने के निमित्त कई वीर योद्धाओं को भेजा
 ॥४७॥ अर्जुन, महेष्वास और मात्यकि आदि योद्धा
 सहायता करने के निमित्त भीमसेन के समीप पहुँचे ।
 भीमसेन आदि सब वीर मिलकर क्रोध के साथ आगे
 बढ़े और द्रोणाचार्य की सेना को मारने का उद्योग करने
 लगे । महारथी द्रोणाचार्य ने भी उन महावीर्यों की
 अकेले ही सामना किया ॥४८॥ उस समय कौरव
 लोग, राख्य की आवाज और मृत्यु का भय छोड़कर,
 पाण्डवों के सम्मुख आये । हाथी का सवार हाथी

के सवार को, रथी रथी को और घुड़सवार घुड़सवार
 को मारकर मारने लगा । वीर लोग शक्ति, बल
 और परशु आदि शस्त्रों के द्वारा परस्पर घोर प्रहार
 करने लगे । किमी-किमी का सिर नीचे हो गया और
 वह हाथी या घोड़े की पीठ से पृथ्वी पर गिर पड़ा ।
 कोई बाण लगने से मरकर रथ से धरती पर आ रहा ।
 किमी नर का शरीर टिन्न-भिन्न हो गया और वह
 चेत्यारहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, इसी मध्य में एक
 हाथी उमड़ी छान्नी पर होकर चला गया, जिसमें उसकी
 छान्नी और मन्दक चूर-चूर हो गया । इसी प्रकार
 अनेक प्रकार के हाथी इधर-उधर भागकर बहुत से
 जीवित, घायत, अश्वमे और मरे हुए लोगों को रौंदने

विपाणैश्चाऽवनिं गत्वा व्यभिन्दन् रथिनो बहून् ।
 नरान्नैः केचिदपरे विपाणालग्नसंश्रयैः ॥ १६ ॥
 वध्रमुः समरे नागा मृद्भन्तः शतशो नरान् ।
 काष्णीयसतनुत्राणान्नराश्वरथकुञ्जरान् ॥ १७ ॥
 पतितान्पोथयाश्चक्रुर्द्विपाः स्थूलनलानिव ।
 यद्यपत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥ १८ ॥
 ह्रीमन्तः कालसम्पर्कात्सुदुःखान्यनुशेरेते ।
 हन्ति स्माऽत्र पिता पुत्रं रथेनाऽभ्येत्य संयुगे ॥ १९ ॥
 पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्तत ।
 रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नच्छत्रमुर्व्या निपातितम् ॥ २० ॥
 युगाद्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः ।
 सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
 गजेनाऽऽक्षिप्य वलिना रथः सञ्चूर्णितः क्षितौ ।
 रथिना ताडितो नागो नाराचेनाऽपतरिक्षितौ ॥ २२ ॥
 सारोहश्चाऽपतद्वाजी गजेनाऽभ्यहतो भृशम् ।
 निर्मर्यादं महद्युद्धमवर्तत सुदारुणम् ॥ २३ ॥
 हा तात हा पुत्र सखे काऽसि तिष्ठ क धावसि ।
 प्रहराऽहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जितैः ॥ २४ ॥
 इत्येवमुच्चरन्ति स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः ।
 नरस्याऽश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २५ ॥

लगे॥११।१५॥कुछ हाथी बाणों के प्रहार से चुटियल
 होकर धरती पर गिर पड़े और अपने बड़े-बड़े दाँतों
 से बहुत से गिरे हुए रथों लोगों के शरीरों को फाड़ने
 लगे । कुछ हाथी दाँतों में लगे हुए नाराच बाणों से
 सिकड़ों मनुष्यों को घायल करते हुए इधर-उधर बिचलने
 लगे । हाथियों के दल इधर-उधर भागकर गिरे हुए
 घोड़ों, रथों, हाथियों और कवचधारी पैदलों को --
 मोटे नखुल के चम की तरह -- पाँव से कुचलते और
 रौंदते हुए चले जाते थे । अपनी बात पर दृढ़ राजा
 लोग काल के बश होकर गिद्धों के पहाँ की चिट्ठी
 हुई अयन्त ब्रह्मरथ धृष्ट-उपमा पर पड़े हुए थे॥१५॥
 १९॥उस समय मर्यादा तोड़कर मयानक युद्ध हो

रहा था । मोहवश पिता पुत्र को और पुत्र पिता को
 मार रहा था । चारों ओर रथों के टूटे हुए धुरे, बड़े
 हुए धनुष, ध्वजा और छत्र आदि का गिर-गिरकर
 ढेर होने लगा । कोई घेड़ा, जुएँ का आधा अंश बट
 जाने पर, बड़े वेग से भाग खड़ा हुआ । तलवार की
 मूठ पकड़े हुए हाथ और कुण्डल-मण्डित मुण्ड कट-
 कटकर गिरने लगे । महापराक्रमी हाथी विगड़ खड़े
 हुए और रथों को ग्रीव-खींचकर तोड़ने-फोड़ने लगे ।
 किमी-किमी स्थान पर हाथी के आक्रमण से घोड़े
 घायल हो-होकर अपने सवारों सहित धरती पर गिर
 रहे थे । इस प्रकार मर्यादा-हीन अयन्त भीषण संग्राम
 हो रहा था॥२०।२३॥ 'हाय तात ! हाय पुत्र ! हाय

उपाशाम्यद्रजो भौमं भीरुन्कश्मलमाविशत् ।
 चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ॥ २६ ॥
 अतीतेषुपथे काले जहार गदया शिरः ।
 आसीत्केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् ॥ २७ ॥
 नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् ।
 तत्राऽच्छिद्यत शूरस्य सखद्भो बाहुरुद्यतः ॥ २८ ॥
 सधनुश्चाऽपरस्यापि सशरः सांकुशस्तथा ।
 आक्रोशदन्यमन्योऽत्र तथाऽन्यो विमुखोऽद्रवत् ॥ २९ ॥
 अन्यः प्राप्तस्य चाऽन्यस्य शिरः कायादपाहरत् ।
 सशब्दमद्रवच्चाऽन्यः शब्दादन्योऽत्रसद्भृशम् ॥ ३० ॥
 खानन्योऽथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः ।
 गिरिशृङ्गोपमश्चाऽत्र नाराचेन निपातितः ॥ ३१ ॥
 मातङ्गो न्यपतद्भूमौ नदीरोध इवोष्णगे ।
 तथैव रथिनं नागः क्षरन्गिरिर्वाऽरुजन् ॥ ३२ ॥
 अभ्यतिष्ठत्पदा भूमौ सहाश्रं सहसाराथिम् ।
 शूरान्प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान्छिरोक्षितान् ॥ ३३ ॥
 वहून्प्याविशन्मोहो भीरुन्हृदयदुर्वलान् ।
 सर्वमाविग्रमभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३४ ॥

मित्र ! तुम कहाँ हो ! कहाँ भागे जा रहे हो ! इमं
 मारो ! उसे इस स्थान पर ले आओ ! इस व्यक्ति को
 मार डालो ! " — इम प्रकार की ओर अन्यान्य प्रकार
 की अनेक बातें चारों ओर सुनाई पड़ रही थीं ।
 हास्य, सिंहनाद, शङ्खनाद, आर्तनाद आदि गर्जनशब्द
 चारों ओर उठकर उस रणभूमि को भयानक बना
 रहे थे । मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीरों से
 रक्त का प्रवाह वह चला, जिससे पृथ्वी की उठी
 हुई धूल घैट गई । डरपोक मनुष्य उस दृश्य को देख-
 कार भयभीत हो गये । किमी गीर के रथ का पहिया
 शत्रु के रथ के पहिये में फँस गया जिससे, अन्य
 शत्रु मारने का अस्त्र न रहने के कारण, उसने
 गदाप्रहार करके शत्रु का सिर चूर्ण कर डाला । उम
 निराश्रय सप्ताम में आश्रयप्रार्थी वीर परस्पर के-
 क्षा-
 कर्षण, घृमेराजी और नग्न दन्त प्रहार आदि करके

युद्ध करने लगे । किमी गीर ने तलवार तानने के लिए
 हाथ उठाया, इसी समय शत्रु ने उस खड्ग-सहित
 हाथ के टुकड़े टुकड़े करके गिरा दिये । किसी-किसी
 के धनुष-बाण-अकुरु आदि शस्त्रों से शोभित हाथ
 टिल मिन्न होने लगे । कोई किसी के प्रति अपने
 हार्दिक निन्दे को प्रकट करने लगा । किमी योद्धा
 ने समर से भागकर जान बचाई और किसी ने अपने
 ममरुक्ष योद्धा का सिर काट डाला । कोई आर्तनाद
 करना हुआ वह बेग से भाग खड़ा हुआ । कोई
 अयत्न भयविह्वल होकर बिछाने लगा । कोई तीक्ष्ण
 बाणों में शत्रु को और कोई अपने ही पक्ष के योद्धा
 को मार रहा था ॥ २४ ॥ ३१ ॥ परमेश्वरानुसृत्य कोई
 गजराज चण की चोट वारकर वर्षाकाल के नदी के
 पटे हुए बगारे के समान गिर पड़ा । शत्रु ने युक्त पर्वत
 के समान मदमत अन्य एक हाथी रथी, घोड़े और

सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमवर्त्तत ।
 ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ॥ ३५ ॥
 नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान् ।
 कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः ॥ ३६ ॥
 सरो हंसा इवाऽऽपेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति ।
 गृहीताऽऽब्रवताऽन्योन्यं विभीता विनिकृन्तत ॥ ३७ ॥
 इत्यासीत्तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति ।
 ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः ॥ ३८ ॥
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्चैतान्यवारयन् ।
 ते त्वार्यधर्मसंरब्धा दुर्निवारा दुरासदाः ॥ ३९ ॥
 शरार्त्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
 ततो द्रोणोऽतिसंक्रुद्धो विस्तृज्यशतशः शरान् ॥ ४० ॥
 चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत्कदनं महत् ।
 तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष ॥ ४१ ॥
 वज्रसंह्लादसङ्काशस्त्रासयन्मानवान्वहून् ।
 एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान्वहून् ॥ ४२ ॥
 अभ्यायात्तत्र यत्राऽसौ द्रोणः पाण्डून्प्रमदति ।
 ताज्जशरौघान्महावर्त्तान्शोणितोदान्महाह्वान् ॥ ४३ ॥

सारथी को पीड़ित करता हुआ गवड़ा था । डरपोर
 दुर्बल हृदयवाले लोग रक्त से तर महारथों को मार-
 काट करते देखकर मोह को प्राप्त और मूर्च्छित होने
 लगे । सभी लोग उद्विग्न हो रहे थे । ऐसा अंधेरा
 था कि कुछ भी नहीं प्रतीत पड़ता था । कोई किसी
 को नहीं पहचानता था । सैनिकों की दौड़-धूप से
 उठी हुई धूल आकाशमण्डल में छा गई । समर में
 कोई नियम नहीं रहा ॥ ३१।३५॥ उधर पाण्डवपक्ष के
 सेनापति धृष्टद्युम्न सदा युद्ध का उत्साह रखनेवाले
 पाण्डवों और अन्य वीरों को “यही ठीक असर है”
 बरकर उत्तेजित करने लगे । बाहुबलसम्पन्न पाण्डव-
 गण सेनापति की आज्ञा के अनुसार शत्रुसेना का
 संहार करते हुए, राजहंस जैसे सरोवर में भिचरते हैं
 जैसे ही, रणभूमि में द्रोणाचार्य की ओर जा रहे थे ।
 आचार्य द्रोण के रथ के समुप “उसे परखें; भागे

नहीं; शङ्का न करो; उसे मार डालो” इत्यादि भयङ्कर
 शब्द सुन पड़ते थे ॥ ३५।३८॥ उधर से द्रोणाचार्य,
 कृपाचार्य, कर्ण, अध्यात्मा, जयद्रथ, शल्य, अर्जुन-
 देवीय विन्द और अनुविन्द आदि वीर पोद्दा लोग
 शत्रुपक्ष के वीरों को रोक्ने लगे । इधर अत्यन्त कुपित,
 दुर्धर्ष और दुर्निर्गम पाञ्चालगण और पाण्डवगण
 शत्रुओं के बाणप्रहार से अत्यन्त पीड़ित होकर वीर
 आर्थों के उर्म का विचार करके द्रोणाचार्य के समुप
 समर में लड़ रहे । इसके उपरान्त क्रोध से विह्वल
 होकर वीरधनु आचार्य महसों बाण बरसाकर चेदि,
 पाञ्चाट और पाण्डवगण को अत्यन्त पीड़ित करने
 लगे । उनकी प्रत्यक्षा की, वज्रपात के शब्द के समान
 मनुष्यों को भयविह्वल घना देनेवाली- पत्थि और ताल-
 पत्थि चारों ओर सुनाई पड़ने लगी ॥ ३८।४१॥ हे
 महाराज ! द्रोणाचार्य इस प्रकार पाञ्चाटों और पाण्डवों

तीर्णः संशसकान्हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ।
 तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ॥ ४४ ॥
 दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् ।
 संशसकसमुद्रं तमुच्छोष्याऽस्त्रगभस्तिभिः ॥ ४५ ॥
 स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरुनप्यभ्यतीतपत् ।
 प्रददाह कुरुनसर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ॥ ४६ ॥
 युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः ।
 तेन बाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ॥ ४७ ॥
 ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः ।
 केचिदार्त्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥ ४८ ॥
 पार्थबाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः ।
 तेषामुत्पतितान्कांश्चित्पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥ ४९ ॥
 न जघानाऽऽर्जुनो योधान्योधव्रतमनुस्मरन् ।
 ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ॥ ५० ॥
 कुरवः कर्ण कर्णेति हाहेति च विचुक्रुशुः ।
 तमाधिरधिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैपिणाम् ॥ ५१ ॥
 मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम् ।
 स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥ ५२ ॥
 प्रादुश्चक्रे तदाऽग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
 तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥ ५३ ॥

के दल का विनाश कर ही रहे थे इसी समय महा-
 वीर अर्जुन संशसकगण को हराकर, रुधिर रूप जल
 और बाण-समूह रूप आवृत से युक्त भयानक रण-
 शुण्ड में उत्तीर्ण होकर, वहाँ पर आ गये। हम लोगों ने
 महायशस्वी सूर्यतुल्य अर्जुन की वानरचिह्नयुक्त ध्वजा
 देखा ॥ ४२ ॥ ४५ पाण्डवदल के मध्यवर्ती, युगान्तकाल
 के सूर्य के समान प्रचण्ड, महावीर अर्जुन अखण्ड
 किरणों में संशसकगणों को मुखान्तर की तरह जला
 की तराने और पीड़ित करने लगे। जैसे प्रत्यक्षान्त में
 धूमकेतु उदय होकर सब प्राणियों को भयानक और
 भय करता है वैसे ही अर्जुन भी अत्यन्त से वीरों
 को जटाने लगे। हाथी, घोड़े, रथ आदि पर बैठे हुए

बाणगण अर्जुन के बाणों से मरकर गिरे लगे। उनके
 अङ्ग छिन्न-भिन्न और केश विपरीत हुए थे। कोई
 आनिनाद और कोई बोलार करने लगा। कई एक
 लोग अर्जुन के बाणों में तत्काल ही मरकर पृथ्वी पर
 गिर पड़े ॥ ४५ ॥ ४८ महावीर अर्जुन योद्धाओं के वीर-
 धर्म का विचार करके गिरे-पड़े और भागे हुए शत्रुओं
 को नहीं मारने थे। कौरवपक्ष के प्रायः सभी लोग
 विभिन्न और समर में विभूत होकर हाताकार करने
 और "हा कर्ण ! हा कर्ण !" चिल्लाते लगे ॥ ४८ ॥ ५१ ॥
 शरणापी वीरों का रोना-चिल्लाना सुनकर "मर्फीन
 होओ नहीं" कहकर कर्ण ने अर्जुन का मानना किया।
 उन्होंने अनेक ही अर्जुन के ऊपर अप्रिय अर्थ छोड़े

शरौघाञ्शरजालेन विदुधाव धनञ्जयः ।
 तथैवाऽऽधिरथिस्तस्य वाणाञ्ज्वलिततेजसः ॥ ५४ ॥
 अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद्विस्तृजञ्शरान् ।
 धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ५५ ॥
 विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः ।
 अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ॥ ५६ ॥
 तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।
 ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विपा भुजगा इव ॥ ५७ ॥
 रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवाऽनदन् ।
 ता भुजाधैर्महावेगा निस्तृष्टा भुजगोपमाः ॥ ५८ ॥
 दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति ।
 ता निकृत्य शरवातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः ॥ ५९ ॥
 ननाद बलवान्कर्णः पार्थाय विस्तृजञ्शरान् ।
 अर्जुनश्चापि राधेयं विध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ६० ॥
 कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैः शरैः ।
 ततः शत्रुञ्जयं हत्वा पङ्क्तिभिरजिह्वगैः ॥ ६१ ॥
 जहार सद्यो भलेन विपाटस्य शिरो रथात् ।
 पश्यतां धार्तराष्ट्राणामेकेनैव किरीटिना ॥ ६२ ॥
 प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः ।
 ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद्वैनतेयवत् ॥ ६३ ॥

॥५१॥५३॥चमकैले धनुष को घुमाकर तीक्ष्ण बाण
 बरसानेवाले कर्ण के बाणों को अर्जुन ने अपने बाणों
 से निष्फल करना आरम्भ किया। कर्ण भी अपने बाणों
 से अर्जुन के बाणों को रोकते और बाण-वर्षा करते
 हुए सिंहनाद करने लगे। इसी मध्य में धृष्टद्युम्न,
 भीमसेन और सात्यकि ने एक साथ कर्ण को तीन
 तीन बाण मारे ॥५३॥५६॥कर्ण ने अर्जुन के ऊपर
 बाण बरसाकर, उनके बाणों को व्यर्थ करके, तीन
 बाणों से धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकि के धनुष काट
 डाले। तब उक्त तीनों वीर, धनुष कट जाने से,
 निपहीन सर्प के समान हो गये। वे अपने-अपने रथ
 पर से कर्ण के ऊपर शक्ति चला करके सिंहनाद

करते लगे। न त्रिशैले नाग के समान प्रज्वलित अग्नि-
 शिखा सी शक्तियों बड़े उग से कर्ण की ओर चली।
 महावीर स्कृत्तिशाली कर्ण ने तीन तीन बाणों से मार्ग में
 ही प्रत्येक शक्ति के तीन तीन टुकड़े कर डाले ॥५६॥
 ५९॥फिर वे अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने सिंहनाद
 करने लगे। महावीर अर्जुन ने भी कर्ण को सात बाण
 मारकर अत्यन्त तीक्ष्ण भयानक बाणों से कर्ण के
 छेदे भाई को मार डाला। उसके पश्चात् छ बाणों
 से शत्रुञ्जय को मारकर एक भट्ट बाण से विपाट का
 सिर काट गिराया। इस प्रकार कर्ण के तीनों भाइयों
 को, कर्ण और दुर्योधन अदि के सम्मुख ही, अनेके
 ही अर्जुन ने मार डाला ॥५९॥६३॥अब महावीरशाली

वरासिना कर्णपक्षाञ्जघान दश पञ्च च ।
 पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय चाऽपरम् ॥ ६४ ॥
 विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वान् पञ्चभिः ।
 धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चाऽऽदाय भास्वरम् ॥ ६५ ॥
 जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैपधम् ।
 ततः खरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकम् ॥ ६६ ॥
 आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन्नरो ।
 शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः ॥ ६७ ॥
 सूतपुत्रं चतुःपट्या विध्वा सिंह इवाऽनदन् ।
 भल्लाभ्यां साधु मुक्ताभ्यां छित्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥ ६८ ॥
 पुनः कर्णं त्रिभिर्वाणैर्वाहोरुरसि चाऽपर्यत् ।
 ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः ॥ ६९ ॥
 निमज्जमानं राधेयमुज्जहूः सात्यकार्णवात् ।
 पत्न्यश्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोऽपरे ॥ ७० ॥
 कर्णमेवाऽभ्यधावन्त त्रास्यमानाः प्रहारिणः ।
 धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च ॥ ७१ ॥
 नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुप्सु रणे ।
 एवमेव महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ॥ ७२ ॥
 तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद्वज्रः ।
 पदातिरथनागाश्चा गजाश्चरथपत्तिभिः ॥ ७३ ॥

भीमसेन ने रथ से उतरकर, पक्षिराज गरुड़ की तरह झपटकर, खड्ग के प्रहार से कर्ण के पक्ष के पन्द्रह धीरों को देखते ही देवते मार डाला । फिर रथ पर बैठकर दूसरा धनुष हाथ में लेकर दस बाण कर्ण को, पाँच बाण कर्ण के सारथी को और घोड़ों को भी उन्होंने मारे । महाबली धृष्टद्युम्न ने भी पहले डाल-तलवार लेकर चन्द्रवर्मा और निपथ देश के राजा बृहत्क्षत्र का सिर काट डाला और फिर रथ पर बैठ-कर, दूसरा धनुष लेकर, सिंहनादपूर्वक और कर्ण को इफ़ीस बाण मारे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सात्यकि ने भी दूसरा धनुष लेकर सिंहनाद करके चौसठ बाणों से कर्ण को घायल किया । फिर दो भल्ल बाणों से उनका धनुष

काट डाला । इसके पश्चात् उनके दोनों हाथों में और वक्षस्थल में तीन बाण मारे । तब राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य और जयद्रथ ने आकर सात्यकि-रूप महा-सागर में डूबने हुए कर्ण का उद्धार किया । कर्ण के साथ के सैकड़ों पैदल, घोड़े, हाथी और रथी योद्धा अत्यन्त भयविह्वल होकर उन्हीं के पीछे भाग पड़े हुए ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ धर धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल और सहदेव सात्यकि की सहायता करने लगे । हे महाराज ! इस प्रकार आपके और पाण्डवपक्ष के वीरगण परस्पर मिनाश के लिए घोरतर संग्राम करने लगे । वे सब लोग प्राणघ्न मे युद्ध कर रहे थे । पैदल, रथी, हाथियों और घोड़ों के

रथिनो नागपत्न्यश्चै रथपत्नी रथद्विपैः ।

अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ॥ ७४ ॥

संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्न्यश्चापि पत्तिभिः ।

एवं सुकलिलं युद्धमासीत्क्रव्यादहर्षणम् ॥

महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविबर्धनम् ॥ ७५ ॥

ततो हता नररथवाजिकुञ्जरैरनेकशो द्विपररथपत्तिवाजिनः ।

गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथा हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्नयः ॥ ७६ ॥

रथैर्द्विपा द्विरद्वरैर्महाहया हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः ।

निरस्तजिह्वा दशनेक्षणाः क्षितौ क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७७ ॥

तथाऽपरैर्वहुकरणैर्वरायुधैर्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् ।

विपोथिता ह्यगजपादताडिता भृशाकुला रथमुखनेमिभिः क्षताः ॥ ७८ ॥

प्रमोदने श्वापदपाक्षिरक्षसां जनक्षये वर्त्तति तत्र दारुणे ।

महाबलास्ते कुपिताः परस्परं निषूदन्यन्तः प्रविचेरुजसा ॥ ७९ ॥

ततो बले भृशालुलिते परस्परं निरीक्षमाणे रुधिरौघसम्प्लुते ।

दिवाकरेऽस्तं गिरिमास्थिते शनैरुभे प्रयाते शिविराय भारत ॥ ८० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि सप्तशतकधर्मपर्वणि द्वितीयदिनसाहारे द्वाविंशोऽध्यायः ॥३२॥

समाप्त च सप्तशतकधर्मपर्व ।

सगर परस्पर मिड़ रहे थे । वहीं पर हाथी के सगर रथियों और पैदलों के साथ, जहाँ पर घुड़सगर के साथ घुड़सवार, कहीं हाथी के सगर से हाथी के सगर, वहीं रथी के साथ रथी और जहाँ पैदल के साथ पैदल घोर युद्ध कर रहे थे । यह सप्ताम मासा हारी पशु पक्षियों के आनन्द को बढ़ानेवाला और यमपुरी की बसानेवाला था ॥ ७१ ॥ ७५ ॥ मनुष्यों रथों, हाथियों और घोड़ों के द्वारा असुरय मनुष्य, हाथी, रथ और घोड़े नष्ट भ्रष्ट हो रहे थे । कहीं पर हाथी ने हाथी को, कहीं रथी ने रथी को, कहीं घोड़े ने घोड़े को, कहीं पैदल ने पैदल को, कहीं रथी ने हाथी को, कहीं हाथी ने घोड़े को और कहीं घोड़े ने मनुष्य को मार डाला । किसी की जीम कट गई, किसी के दाँत टूट गये, किसी के नेत्र निकल पड़े, किसी का बन्ध टूट गया और किसी के आभूषण गिर पड़े । इस प्रकार चारों ओर मृत्यु का साम्राज्य देख

पड़ता था । भयानक स्वरूपवाले बड़े बड़े हाथी अनेक शस्त्रधारी शत्रुओं के प्रहार से मारे गये । हाथियों के पाँशों से, घोड़ों की टाँगों से और रथों के पहियों से रौंदी गई, क्षत निक्षत और नष्ट होती हुई सब सेना अत्यन्त व्याकुल हो उठी । इस प्रकार मासाहारी पशु पक्षी और राक्षस आदि ने लिए आह्लादजनक, अत्यन्त भयानक, लोकाक्षयकारी सप्ताम उपस्थित होने पर महाबली गीरगण क्रोधविह्वल होकर मरुपूरुष एक दूसरे को मारते आर मारत हुए रणभूमि में विचरने लग । हे महाराज ! दोनों ओर भी सेना इस प्रकार रुधिर से तर आर छिन्न भिन्न हो गई । यन्त्रे हुए गीरगण एक दूसरे का मुख तारने लगे । इसी मध्य में सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच गये । तब दोनों पक्ष की सेनाएँ युद्ध बन्द करके धीरे-धीरे अपने अपने शिविर में विश्राम करने के लिए चली गई ॥ ७६ ॥ ८० ॥

—o—

द्रोणपर्व का चौत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

अथ त्रयविंशोऽध्याय ॥ ३३ ॥

सञ्जय उवाच — पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनाऽमितौजसा ।
 द्रोणे च मोघसङ्कल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
 सर्वे विध्वस्तनकवचास्तावका युधि निर्जिताः ।
 रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश ॥ २ ॥
 अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य सम्मते ।
 लब्धलक्षैः शौरिभिर्ना भृशावहसिता रणे ॥ ३ ॥
 श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गुनस्याऽमितान्गुणान् ।
 केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ४ ॥
 अभिशस्ता इवाऽभूवन्ध्यानमूकत्वमास्थिताः ।
 ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥
 प्रणयादभिमानाच्च द्विपद्वृद्धया च दुर्मनाः ।
 शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥ ६ ॥
 नूनं त्रयं बध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम ।
 तथा हि नाऽग्रहीः प्राप्तं समीपेऽयं युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥
 इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुः प्राप्तो रणे रिपुः ।
 जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥
 वरं दत्त्वा मम प्रीतः पश्चादिकृतवानमि ।
 आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्याऽऽर्याः कथञ्चन ॥ ९ ॥

तेनिसर्वे अध्याय ॥ ३३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! महातेजस्वी अर्जुन
 के पराक्रम से जब हमारा सेना भाग खड़ा हुई,
 द्रोणाचार्य का अभिप्राय पूर्ण नहीं हुआ और राजा
 युधिष्ठिर सुरक्षित ही रहे तब समर में जीते गये,
 काच हीन, धूलिधूसरित कौरव-वीर समरविजयी
 शत्रुओं के अचूक बाणों से घायल और उद्धिग्न होकर
 शर-उधर देगने लगे । शत्रुपक्ष के वीर उनकी
 हँसी उड़ाने लगे । इसके पश्चात् आचार्य की अनुमति
 से कौरवों ने युद्ध बन्द कर दिया । लोग अर्जुन के
 पराक्रम और गुणों की प्रशंसा करने लगे । कुछ
 लोग अर्जुन और श्रीकृष्ण की मित्रता की प्रशंसा कर
 रहे थे । उस समय कौरवगण सन्नाटे में आकर शान्त

हो गये ॥ १५॥ प्रातः काल हो जाने पर राजा दुर्योधन
 शत्रुपक्ष की उन्नति और विजय देखकर अत्यन्त दुःखित
 और व्याकुल हो सब योद्धाओं के सम्मुख प्रणयनोप,
 अभिमान और पाण्डवों के प्रति शत्रुता के साथ
 द्रोणाचार्य से यों कहने लगे—हे द्विजप्रेष्ठ ! हम
 लोग असह्य ही आपके शत्रुपक्ष में हैं; क्योंकि आपने
 युधिष्ठिर को सम्मुख पाकर भी नहीं पराड़ा । आप
 जिसे पराड़ना चाहें, वह यदि आपके समीप भी आ
 जाय तो बाहे देवगण के साथ मित्रकर भी पाण्डव
 उसकी रक्षा करें किन्तु उसे बचानहीं सकते, आपके
 हाथ से उसका छुटना नहीं हो सकता । आपने
 पहले प्रसन्न होकर मुझे वर दिया है, तो फिर अब

ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन्भारद्वाजोऽब्रवीन्नुपम् ।
 नाऽहंसे मां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥ १० ॥
 ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
 नाऽलं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥ ११ ॥
 विश्वसृग्यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथाऽर्जुनः ।
 तत्र कस्य वलं क्रामेदन्यत्र ऋग्वक्त्रात्प्रभोः ॥ १२ ॥
 सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
 अथैकं प्रवरं कञ्चित्पातयिष्ये महारथम् ॥ १३ ॥
 तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि ।
 योगेन केनचिद्राजन्नर्जुनस्त्वपनीयंताम् ॥ १४ ॥
 न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किञ्चन ।
 तेन युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः ॥ १५ ॥
 द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशतकगणाः पुनः ।
 आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १६ ॥
 ततोऽर्जुनस्याऽथ परैः सार्धं समभवद्रणः ।
 तादृशो यादृशो नाऽन्यः श्रुतो दृष्टोऽपि वा कचित् ॥ १७ ॥
 तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन्यरोचत ।
 चरन्मध्यन्दिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दशः ॥ १८ ॥
 तं चाऽभिमन्युर्वचनात्पितुर्ज्येष्ठस्य भारत ।
 विभेद दुर्भेदं संख्ये चकव्यूहमनेकधा ॥ १९ ॥

क्यों नहीं उसे पूर्ण करते ? आर्य पुरुष अपने भक्त को
 कभी निराश नहीं करते ॥ १० ॥ दुर्योधन के ये वचन
 सुनकर द्रोणाचार्य जी क्रुद्ध होकर कहने लगे —
 हे दुर्योधन ! मैं सदैव तुम्हारा भला करने की चेष्टा
 करता रहता हूँ, फिर भी तुम ऐसी बातें कह रहे हो !
 मेरे बारे में तुम्हारा ऐसा विचार करना उचित नहीं है ।
 देखो, अर्जुन के द्वारा रक्षित रहने पर महाराज युधिष्ठिर
 को पराङ्मना सर्वथा असम्भव है । अर्जुन के समीप
 रहने पर दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि सब
 मिलकर भी युधिष्ठिर को नहीं पराङ्ग कर सकते । जहाँ
 विश्व के विधाता स्वयं वासुदेव सहायक रूप से
 निराजमान हैं और महापराकामी अर्जुन सेनापति हैं,

वहाँ अतिरिक्त महाप्रसु शङ्कर के और किसी का
 बल कुछ काम नहीं कर सकता ॥ १० ॥ १२ ॥ अस्तु, मैं
 तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ कि आज पण्डितपक्ष के
 किसी एक श्रेष्ठ महाएवी योद्धा को मारूँगा; मेरी यह
 बात मिथ्या नहीं हो सकती । हे दुर्योधन ! आज मैं
 चक्रव्यूह की रचना करूँगा । इस व्यूह को देखता
 भी नहीं तोड़ सकते । तुम आज फिर किसी उपाय
 से अर्जुन को युधिष्ठिर के पास से दूर हटाने का
 उपाय करो । युद्ध की ऐसी कोई बात नहीं जिसे
 अर्जुन जानते न हों, या कर सकते न हों । अर्जुन
 ने इधर-उधर घूमकर, अनेक स्थानों से, युद्ध के
 सम्बन्ध की सब प्रकार की जानकारी प्राप्त कर ली

स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान्सहस्रशः ।
पट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशङ्कतः ॥ २० ॥

सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान्परन्तपः ।
वयं परमसंहृष्टाः पाण्डवाः शोककर्षिताः ।
सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्महि ॥ २१ ॥

पुत्रं पुरुषसिंहस्य सञ्जयाऽप्राप्तयौवनम् ।
रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥ २२ ॥

दारुणः क्षत्रधर्मोऽयं विहितो धर्मकर्तृभिः ।
यत्र राज्येऽसत्रः शूरा वाले शस्त्रमपातयन् ॥ २३ ॥

वालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत् ।
कृतात्मा बहवो जघ्नुर्बृहि गावल्गणे कथम् ॥ २४ ॥

विभिस्सता रथानीकं सौभद्रेणाऽमितौजसा ।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २५ ॥

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम् ।
तत्ते कात्स्येन वक्ष्यामि शृणु राजन्समाहितः ॥ २६ ॥

विक्रीडितं कुमारेण यथाऽनीकं विभिस्सता ।
आरुणाश्च यथा वीरा दुःसाध्याश्चापि विप्लवे ॥ २७ ॥

॥ १३ ॥ १५ ॥ महारथी द्रोणाचार्य के यों कहने पर देश
संशतकण फिर महारथी अर्जुन को युद्ध के लिए,
युद्धभूमि के दक्षिण भाग में, ललकारते लगे । इसके
पश्चात् सशतकण के साथ अर्जुन का भयानक समागम
होने लगा । वैसा युद्ध कभी किसी ने देखा-सुना न
होगा । इधर द्रोणाचार्य ने बड़े वक्ता के साथ चक्रव्यूह
बनाया । गव्यधू में तप्तनेत्रों ने गव्य के समान बह
व्यूह नेत्रों में चक्राचार्य उपज कर देनेवाला था ॥ १६ ॥
१८ ॥ उपर वीर कुमार अभिमन्यु, धर्मराज युधिष्ठिर
की अनुमति के अनुसार, घूम-फिरकर उस दुर्भेद्य
चक्रव्यूह को बारम्बार तोड़ने लगे । उनके पश्चात्
उन्होंने अपना दुष्कर कार्य करते हुए महारथी वीरों
का गंठार किया । फिर एक नाथ छ-महारथी वीरों
में अनेक युद्ध करके अन्त को, शस्त्र-हीन अमहाय
अवस्था में, दुःशामन के पुत्र के हाथों वे मारे गये ।
इस घटना में हमारे पक्ष के लोगों की बड़ा ही

सन्तोष और आनन्द हुआ । पाण्डव लोग और उनके
पक्ष के सब लोग अभिमन्यु की मृत्तु के शौर्य से
बहुत ही अर्पित हो उठे । इसके उपरान्त हम लोगों
ने विश्राम के लिए युद्ध बन्द कर दिया ॥ १९ ॥
पुत्रराष्ट्र ने कहा—हे मन्त्र्य ! अर्जुन का पुत्र महारथी
अभिमन्यु तो अभी पूर्ण रीति से युवा अवस्था का प्राप्त
भी नहीं हुआ था । उस होनहार बालक के मारे जान
का समाचार सुनकर मेरा हृदय शोक में फटा सा
जाना है ! राज्य की इच्छा रखनेवाले वीरों ने जिस
क्षत्रिय-धर्म के अनुसार उस बालक के ऊपर अश्र-
नम्र चलाये, वह क्षत्रिय-धर्म बड़ा ही दारुण है ! पूरे
गुरुओं ने क्षत्रिय धर्म को वैसा पौर बनाया है कि
पक्ष के लोगों ने अपना सुग्रीव और निःमद होकर
रण में शिरयनेवाले वीर अभिमन्यु को किस प्रकार
मारा । पुरातन अभिमन्यु ने मन्त्रियों की मना
की नष्ट करने के लिए जिस प्रकार मन्त्रियों में विषम

दावान्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणदुमे ।

वनौकसामिवाऽरण्ये त्वदीयानामभूद्भयम् ॥ २८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधसंक्षेपपर्वणे त्रयविंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

त्रिया और जिस प्रकार युद्ध में अपना प्रशसनीय पराक्रम प्रकट किया, सो सब मरे आगे वर्णन करो ॥२२॥२५॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप मुझ से जो वृत्तान्त पूछ रहे हैं, सो मैं विस्तार के साथ वर्णन करता हूँ, उसे सुनिए । शत्रुसेना का सहार करने के लिए वीर अभिमन्यु जिस प्रकार सप्राप्तभूमि में विचरते रहे, जिस प्रकार हमारे पक्ष के विजया

भिलाषी दुर्निगर दुर्दर्प वीरगण उनके प्रहार से क्षत विक्षत हुए, सो सब सुनिए । जिस प्रकार आपके पक्ष के योद्धा लोग वीर अभिमन्यु के पराक्रम और प्रहार से तृण गुल्म वृक्ष पूर्ण उनमें दावानल से घिरे हुए जनग्रासी जीव जन्तुओं के समान भय से विह्वल और उद्बिग्न हो उठे, सो सब मैं आपके आगे विस्तार के साथ कहता हूँ, मन लगाकर सुनिए ॥२६॥२८॥

द्रोणपर्व का तेतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच—समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः ।

सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥ १ ॥

सत्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया ।

नैव भूतो न भविता नैव तुल्यगुणः पुमान् ॥ २ ॥

सत्यधर्मरतो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुणैः ।

सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

युगान्ते चाऽन्तको राजज्ञानमदग्न्यश्च वीर्यवान् ।

रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सहशास्त्रयः ॥ ४ ॥

प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः ।

उपमां नाऽधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षिनौ ॥ ५ ॥

गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः ।

नकुलेऽप्रातिरूप्यं च शौर्यं च नियतानि पद ॥ ६ ॥

चौतासवाँ अध्याय ॥ ३४ ॥

सञ्जय कहते हैं हे महाराज ! श्रीकृष्ण सहित पाँचों पाण्डव ऐसे हैं कि सब देवता भी उनको नहीं परास्त कर सकते । ये सदा समर में उद्योग के साथ अद्भुत कर्म करनेवाले, कर्मों से अपनी श्रमशीलता और कष्टसहिष्णुता प्रकट करनेवाले हैं । हे महाराज ! उत्तम कर्म, बुद्धि, बुद्धि, कीर्ति, यश, श्री आदि की विशेषताओं में इस त्रिसुन में महात्मा कृष्ण के समान कोई पुरुष न हुआ है और न होगा । राजा युधिष्ठिर

भी सत्य, धर्म, तप, दान, ब्राह्मणभक्ति आदि सद्गुणों के कारण देवताओं को प्राप्त कर चुके हुए हैं ॥१॥३॥ लोग ऐसा कहते हैं कि प्रलय के समय का अन्तर्भार यमराज, यशस्वी परशुराम और रणभूमि में उपस्थित भीमसेन, ये तीनों एक से भयङ्कर हैं । प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करने में त्रिदे निपुण गाण्डीवधन्वा अर्जुन के समस्त वीर अनेक योद्धा मुझको पृथ्वी भर में नहीं देख पड़ता । नकुल में गुरुभक्ति, सम्मति को

श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्त्वरूपपराक्रमैः ।
 सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाऽश्विनोः ॥ ७ ॥
 ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
 अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसञ्चयाः ॥ ८ ॥
 युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
 कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९ ॥
 धनञ्जयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
 विनयात्सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥ १० ॥

श्रुतराष्ट्र उवाच— अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् ।
 श्रोतुमिच्छामि कात्स्न्येन कथमायोधने हतः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच— स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम् ।
 महान्तं बन्धुनाशं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ १२ ॥
 चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाऽभिकल्पितः ।
 तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ १३ ॥
 आरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
 सङ्घातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत्तदा ॥ १४ ॥
 कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णा विकृतध्वजाः ।
 रक्तान्वरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥ १५ ॥
 सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः ।
 चन्दनागुरुदिग्धाङ्गाः स्रग्विणः सूक्ष्मवाससः ॥ १६ ॥

गुप्त रक्ता, विनय, इन्द्रियदमन, अनुकरण निपुणता या सौन्दर्य और शूरता, ये छ श्रेष्ठ गुण सदा असङ्ख्य रूप से उनमें वर्तमान हैं॥१४॥सहदेव भी शास्त्रज्ञान, गाम्भीर्य, मधुर भाषण, सत्य, ग्य और पराक्रम में देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारों के तुल्य हैं। हे राजेन्द्र ! यासुदेव में और पाँचों पाण्डवों में जो पूर्वोक्त गुण अग्न-अग्न उपस्थित हैं, उन सभी श्रेष्ठ गुणों का समुदाय अकेले अभिमन्यु में देखा जाता था। राजा युधिष्ठिर का धैर्य, श्रौष्ठ्य जी का दमभार (चरित), भीमसेन का पराक्रम, अर्जुन का ग्य और विक्रम, नकुल की मधुरता और सहदेव का शास्त्रज्ञान, ये सब यों ही अभिमन्यु में देखा पड़ती थी॥१५॥श्रुतराष्ट्र

ने कहा—हे सञ्जय। यही रणदुर्जय अभिमन्यु किम प्रकार युद्ध के भेदान में मारा गया। मैं मन घृत्तान्त विलार के साथ सुनना चाहता हूँ॥११॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप दूमरे शोक को रोककर नैमलकर बैठिए। मैं आपके सुट्टों की मृदु का घृत्तान्त कहना हूँ, सुनिष्। आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह बना करके उमके मध्य में इन्द्रमदश नरेशों को म्यापित किया। उम व्यूह के द्वार पर मृदु के समान तेजस्वी राजपुत्रगण गढ़े किये गये। मन राजा और राजपुत्र मित्रकर उत व्यूह की रक्षा करने लगे॥१२॥१३॥मन की राज, रं त्या रक्ष की थी और ध्वजाओं के दण्ड सुवर्णसोभित थे। वरं, सुवर्ण-मणि-मण्डित

सहिताः पर्यधावन्त कार्णिं प्रति युयुत्सवः ।
 तेषां दशसहस्राणि वमूर्बुद्वधन्विनाम् ॥ १७ ॥
 पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
 अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः ॥ १८ ॥
 अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्योन्यस्य हिते रताः ।
 दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
 कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः ।
 देवराजोपमः श्रीमाञ्श्वेतच्छत्राभिसंवृतः ॥ २० ॥
 चामरव्यजनाक्षेपैरुदयन्निव भास्करः ।
 प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थिततनायकः ॥ २१ ॥
 सिन्धुराजस्तथाऽतिष्ठच्छ्रीमान्मेरुरिवाऽचलः ।
 सिन्धुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः ॥ २२ ॥
 सुतास्तव महाराज त्रिंशत्त्रिदशसन्निभाः ।
 गान्धारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ॥ २३ ॥
 पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः ।
 ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २४ ॥
 तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युनक्षपर्वणि चक्रव्यूहनिर्माणे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

मालाएँ पहने, शरीरों में चन्दन-अंगुर लगाये, लाल आभूषण और महान् रेखायाँ लाल बन्ध पहने, पुष्प मालाओं से अलंकृत और मरने-मारने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा किये हुए थे । ऐसे दस सहस्र राजपुत्र एकत्र होकर सग्राम करने के निचार से अभिमन्यु पर आक्रमण करने की आगे बढ़े ॥ १५ ॥ १८ ॥ ने सब परस्पर समान रूप से सुख दुःख का अनुभव करने लगे, समान साहस से परिपूर्ण, एक दूसरे के हित में निरत और सग्राम में एक दूसरे से बढ़कर काम करने लगे । स्पर्धा रखनेवाले वीर आपके पौत्र प्रियदर्शन लक्ष्मण की आगे करके स्थित हुए । श्वेत छत्र और चामरों की शोभा से उदय हो रहे सूर्य के सदृश जान पड़ने-

वाले इन्द्रतुल्य श्रीमान् राजा दुर्योधन महान्तर कर्ण, कृपाचार्य और दुःशासन आदि महारथियों के साथ उस सेना के मध्य में निराजमान हुए । उस सेना के अग्रभाग में सेनापति द्रोणाचार्य थे । सिन्धु देश के स्वामी वीर जयद्रथ उस सेना के मध्य में स्थिर सुमेरु पर्वत के समान देख पड़ते थे ॥ १८ ॥ २२ ॥ आपके देव-तुल्य तीस बुभार, अश्वत्थामा के साथ, वीर जयद्रथ के समीप स्थित थे । बृतक्रोडा में निपुण गान्धारराज शकुनि, शल्य और भूरिश्रमा आदि महारथी भी जयद्रथ के समीप अपने अपने रथों पर निराजमान थे । इस प्रकार व्यूहरचना के उपरान्त दोनों पक्षों के योद्धा जीवन का मोह छोड़कर भयानक युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ २५ ॥

द्रोणपर्व का चौतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥



अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सञ्जय उवाच—तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम् ।
 पार्थाः समभ्यवर्त्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥ १ ॥
 सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्यतः ।
 कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः ॥ २ ॥
 आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान् ।
 चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः ॥ ३ ॥
 युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चाऽपराजितः ।
 उत्तमौजाश्च दुर्धपो विराटश्च महारथः ॥ ४ ॥
 द्रौपदेयाश्च संरन्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान् ।
 केकयाश्च महावीर्याः सृञ्जयाश्च सहस्रशः ॥ ५ ॥
 एते चाऽन्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
 समभ्यधावन्सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः ॥ ६ ॥
 समीपे वर्त्तमानांस्तान्भारद्वाजोऽतिवीर्यवान् ।
 असम्भ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत् ॥ ७ ॥
 महौघः सलिलस्येव गिरिमास्ताद्य दुर्मिदम् ।
 द्रोणं ते नाऽभ्यवर्त्तन्त वेलामिव जलाशयाः ॥ ८ ॥
 पीड्यमानाः शरै राजन्द्रोणचापविनिः सृतैः ।
 न शोकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः ॥ ९ ॥
 तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्वलम् ।
 यदेनं नाऽभ्यवर्त्तन्त पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ॥ १० ॥

पैतृसर्गोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! द्रोणाचार्य के द्वारा सुरक्षित और दुर्द्धर्ष उस कौरव सेना से युद्ध करने के लिए भीमसेन आदि पाण्डवपक्ष के योद्धा आगे बढ़े । भीमसेन, नकुल-सहदेव आदि पाण्डव, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुन्तिभोज, राजा द्रुपद, वीर अभिमन्यु, शिखण्डी, उत्तमौजा, राजा विराट, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, चेदिपति शिशुपाल-नन्दन, क्षत्रधर्मा, बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, घटोत्कच, युधामन्यु, महाबलशाली कैकेय देश के पाँचों राजकुमार, सैकड़ों-सहस्रों सृञ्जयगण और अन्यान्य युद्धप्रिय अहनिपुण

वीरगण, युद्ध की अभिलाषा से, एकाएक द्रोणाचार्य की ओर चले ॥ १॥ ६॥ महाबलशाली द्रोणाचार्य भी स्थिर भाव से निकट आते हुए वीरों को बाणों की वर्षा करके रोकने लगे ॥ आप्रबल जलप्रवाह जैसे दुर्भेद्य परत को लौंघकर आगे नहीं जा सकता, अथवा समुद्र जैसे अपनी तटभूमि को लौंघ नहीं सकता वैसे ही पाण्डव पक्ष के वीरगण द्रोणाचार्य को लौंघकर आगे नहीं जा सकते थे । वे और सृञ्जयगण द्रोणाचार्य के चलाये हुए बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर उनके सममुख नहीं टहर सके । उस समय हम लोगों ने आश्चर्य के

तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
 बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम् ॥ ११ ॥
 अशक्यं तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः ।
 अविपद्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत् ॥ १२ ॥
 वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चाऽमितौजसम् ।
 अब्रवीत्परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः ॥ १३ ॥
 एत्य नो नाऽर्जुनो गर्ह्यथा तान तथा कुरु ।
 चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथञ्चन ॥ १४ ॥
 त्वं वाऽर्जुनो वा कृष्णो वा भिन्ध्यात्प्रशुभ्र एव वा ।
 चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १५ ॥
 अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि ।
 पितॄणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः ॥ १६ ॥
 धनञ्जयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात् ।
 क्षिप्रमखं समादाय द्रोणानीकं विशातय ॥ १७ ॥
 अभिमन्युवाच—द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि ।
 पितॄणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥ १८ ॥
 उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने ।
 नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्याश्चिदापदि ॥ १९ ॥
 युधिष्ठिर उवाच—भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं सञ्जनयस्व नः ।
 वयं त्वाऽनुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि ॥ २० ॥

साथ द्रोणाचार्य का अद्भुत नाङ्गल देखा॥८१०॥
 उस समय राजा युधिष्ठिर कुपित द्रोण को, काल के
 समान आते हुए देखकर, रोकने के लिए अनेक प्रकार
 के उपाय सोचने लगे । युधिष्ठिर ने यह सोचकर कि
 द्रोण को रोकने की शक्ति और किसी में नहीं है,
 अर्जुन और वासुदेव के समान वलरीयसम्पन्न अभि-
 मन्यु को वह कठिन कार्य सौंपने के अभिप्राय से
 उनसे कहा॥११॥१२॥हे वेद्य ! मेरी समझ में यह नहीं
 आता कि हम लोग इस दुर्भेद्य चक्रव्यूह को किस
 प्रकार तोड़ सकेंगे । अब तुम्हीं ऐसा उपाय करो कि
 अर्जुन आकर हम लोगों की निन्दा न करें । तुम,
 अर्जुन, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न इन चार मनुष्यों के अति-

रिक्त इस चक्रव्यूह को तोड़नेवाला और कोई नहीं
 देख पड़ता । इस समय तुम्होर पितृपक्ष और मातुल-
 पक्ष के सब लोग तथा सैनिकगण तुमसे बर माँगते
 हैं । तुम इन्हें बरदान दो । तुम अख-शख लेकर शीघ्र
 द्रोणाचार्य की सेना का संहार करो, नहीं तो संग्राम
 से लौटकर अर्जुन हम लोगों की अश्रय निन्दा करेंगे
 ॥१४॥१५॥अभिमन्यु ने कहा — हे महात्मन् ! मैं अपने
 पितृकुल के विजयी होने की अभिलाषा से शीघ्र ही
 द्रोणाचार्य के इस सुरक्षित सुदृढ़ भयानक सैन्यसागर
 में प्रवेश करूँगा । हे आद्य ! मुझे पिता ने इस व्यूह
 में प्रवेश होकर शत्रु सेना को नष्ट करने का उपाय तो
 बता दिया है, किन्तु यदि कोई आपत्ति आ पड़ी तो

धनञ्जयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे ।

प्रणिधायानुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतोमुखाः ॥ २१ ॥

भीम उवाच—अहं त्वानुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः ।

पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः ॥ २२ ॥

सकृद्भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः ।

वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान्वरान् ॥ २३ ॥

अभिमन्युरवाच—अहमेतत्प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम् ।

पतङ्ग इव संकुट्टो ज्वलितं जातवेदसम् ॥ २४ ॥

तत्कर्माऽथ करिष्यामि हितं यद्वंशयोर्द्वयोः ।

मातुलस्य च यत्प्रीतिं करिष्यति पितुश्च मे ॥ २५ ॥

शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि सङ्घशः ।

द्रक्ष्यन्ति सर्वभूतानि द्विपत्सैन्यानि वै मया ॥ २६ ॥

नाऽहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया ।

यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाऽथ मुच्यते ॥ २७ ॥

यदि चैकरथेनाऽहं समग्रं क्षत्रमण्डलम् ।

न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥ २८ ॥

युधिष्ठिर उवाच—एवं ते भापमाणस्य वलं सौभद्र वर्धताम् ।

यत्समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम् ॥ २९ ॥

रक्षितं पुरुषव्याघ्रैर्महेष्वासैर्महाबलैः ।

साध्यरुद्रमरुतुल्यैर्वस्त्रन्यादित्यविक्रमैः ॥ ३० ॥

मैं इस व्यूह की भीतर से बाहर नहीं निकल सकता ॥१७॥१९॥राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे बेटा । तुम इस व्यूह की तोड़कर हमारे लिए भीतर जाने का द्वार बना दो । तुम जब भीतर प्रवेश होओगे तो हम लोग भी तुम्हारे पीछे चलेगे । तुम युद्ध में अर्जुन के सट्टा हो । हम लोग सब ओर से तुम्हारी रक्षा करते हुए तुम्हारे पीछे ही रहेंगे॥२०॥२१॥भीमसेन ने कहा—हे बत्स । मैं, धृष्टद्युम्न सात्यकि, पाञ्चालगण, कैकेयगण, मत्स्यगण और सब प्रभद्रकगण तुम्हारे पीछे चलेगे । तुम एक बार व्यूह को तोड़ दोगे तो फिर हम लोग उसमें प्रवेश करके शत्रुपक्ष के बीरों को चुन-चुनकर मारेंगे॥२२॥२३॥अभिमन्यु ने कहा—

जैसे पतङ्ग जलती हुई अग्नि में प्रवेश करता है वैसे ही मैं कुपित होकर दुर्धर्प द्रोणाचार्य की सेना के भीतर अवश्य प्रवेश करूँगा । आज मैं पितृपक्ष और मातृपक्ष के लिए हितकर और यशस्वर कार्य करूँगा, अपने मामा और पिता का प्रिय अन्त्य ही करूँगा । इस समय सब प्राणि एक बालक के हाथ से शत्रुओं को नष्ट होते देखेंगे । यदि आज समर में मेरे सम्मुख कोई पुरुष जीवित बच जाय तो मैं माता सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुआ और अर्जुन का पुत्र नहीं । यदि मैं आज समरक्षेत्र में एक ही रथ पर बैठकर सम्पूर्ण क्षत्रिमण्डल के आठ आठ टुकड़े न कर मरा तो अर्जुन का पुत्र नहीं । यदि मैं

सञ्जय उवाच—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत् ॥ ३१ ॥

सुमित्राऽश्वान्रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय ॥ ३२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युप्रतिज्ञायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अकेला ही सब क्षत्रियों के धुरें न उड़ा दूँ तो मैं अर्जुन का वेटा नहीं॥२४॥२८॥राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे अभिमन्यु ! तुम आज साध्य, रुद्र, मरु-द्रण, वसुगण और आदित्यगण के समान पराक्रमी महावीरों के द्वारा सुरक्षित और दुर्द्धर्ष द्रोणाचार्य के सेनाध्यक्ष को तोड़ने का उसाह प्रकट कर रहे हो,

तुम धन्य हो । तुम्हारा बल बढ़े । सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर अभिमन्यु आश्चर्य अपने सारथी से कहने लगे कि हे सुमित्र ! शीघ्र ही मेरे रथ को द्रोणाचार्य की सेना के समुख ले चलो॥२८॥३२॥

—०—

द्रोणपर्व का पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

अथ पट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच—सौभद्रस्तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।

अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥

तेन सञ्चोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः ।

प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥

अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः ।

सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥

आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः ।

अत्यन्तसुखसंबृद्धस्त्वं चाऽयुद्धविशारदः ॥ ४ ॥

ततोऽभिमन्युः प्रहसन्सारथिं वाक्यमब्रवीत् ।

सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥

पेरावतगतं शक्रं सहाऽमरगणैरहम् ।

अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणांचितम् ।

योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽय विस्मयः ॥ ६ ॥

न ममैतद् द्विपत्सैन्यं कलामर्हति पण्डशीम् ।

अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥ ७ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय ॥ ३६ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर अभिमन्यु जब सारथी से आश्चर्य "चलो, चलो" कहने लगे तब सारथी ने कहा—हे आयुष्मन् ! इसमें सन्देह नहीं है कि पाण्डवों ने आपको यह बहुत भारी कार्य सौंप दिया है। पर मेरी

प्रायना यह है कि आप पहले क्षण भर इस बारे में विचार कर लीजिए कि यह कार्य आपके योग्य है या नहीं, फिर युद्ध में प्रवृत्त हूँ।॥१॥३॥आचार्य द्रोण कार्यनिपुण और अस्त्र-विद्या में निपुण हैं। आप अगो बालक और सुख में पले हुए हैं और वे बल-

पितरं चाऽर्जुनं युद्धे न भीर्मासुपयास्यति ।
 अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥ ८ ॥
 याहीत्येवाऽब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम् ।
 ततः संनोदयामास ह्यानाशु त्रिहायनान् ॥ ९ ॥
 नाऽतिदृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान् ।
 ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ॥ १० ॥
 द्रोणमभ्यद्रवन् राजन्महावेगपराक्रमम् ।
 तमुदीक्ष्य तथा यान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः ।
 अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥ ११ ॥
 स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः सुवर्णवर्माऽऽर्जुनिरर्जुनाद्वरः ।
 युयुत्सयाद्रोणमुखान्महारथान्समासदत्तिहृदिशिशुर्यथा द्विपान् ॥ १२ ॥
 ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
 आसीद्वाङ्म इवाऽऽवर्त्तौ मुहूर्त्तमुदधाविव ॥ १३ ॥
 शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
 संग्रामस्तुमुलो राजन्प्रावर्तत सुदारुणः ॥ १४ ॥
 प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयङ्करे ।
 द्रोणस्य निपतो व्यूहं भित्वा प्राविशदार्जुनिः ॥ १५ ॥
 तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसङ्घान्महाबलम् ।
 हस्त्यश्वरथपत्न्यौघाः परिववुरुदायुधाः ॥ १६ ॥

वान् तथा युद्धनिपुण है॥१॥यह सुनकर अभिमन्यु ने हैसते-हैसते कहा—हे सारथी ! क्षत्रियों की और द्रोणाचार्य की बात तो जाने दो, मैं देवगण सहित पुरावत पर बैठे हुए इन्द्र और सब प्राणियों के बन्द-नीय साक्षात् शङ्कर से भी रणभूमि में लोहा ले सकता हूँ । फिर इन क्षत्रियों के साथ युद्ध करने में मुझे क्या शङ्का हो सकती है ? आज यह सारी शत्रु-सेना मेरे सोलहवें अंश के समान भी नहीं है । ओरों की बात तो जाने दो, मैं अपने मामा साक्षात् विजय-विजयी कृष्णचन्द्र और पिता अर्जुन से भी युद्ध करने को तैयार हूँ । मुझे किञ्चित्प्राप्त भी भय नहीं है ॥१८॥हे राजेन्द्र ! इस प्रकार सारथी के वचनों की उपेक्षा करके अभिमन्यु बारम्बार यही कहने लगे कि

हे सूत ! दरी मत करो, शीघ्र मुझे द्रोणाचार्य की सेना के निकट ले चलो । सारथी ने व्याकुल मन से तीन-तीन वर्ष की अवस्था के, सुवर्णभूषित, अभिमन्यु के रथ के घोड़ों की द्रोणाचार्य की सेना की ओर हाँका । वे वायु के समान वेग से चलनेवाले घोड़े, सारथी के द्वारा हाँके जलने पर, शीघ्रता के साथ द्रोणाचार्य की सेना की ओर चले॥८॥१॥ कौरवगण अभिमन्यु को अपनी ओर आते देखकर, द्रोणाचार्य को आगे करके, उन्हें रोकने के विचार से शीघ्रता से आगे बढ़े । इधर पाण्डवपक्ष के योद्धा भी अभिमन्यु के पीछे-पीछे चले । जैसे सिंह का वचा झपटकर हाथियों के झुण्ड पर पहुँचता है वैसे ही कर्णिकारचिह्नयुक्त ध्वजा के सुवर्णमय दण्ड से शोभित

नानावादित्रनिनदैः श्वेडितोत्कुप्टगर्जितैः ।
 हुङ्कारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ १७ ॥
 धारैर्हलहलाशब्दैर्मागास्तिष्ठेहि मामिति ।
 असावहममित्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
 वृंहितैः सिञ्चितैर्हासैः करनेभिस्वनैरपि ।
 सन्नादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९ ॥
 तेषामाततां वीरः शीघ्रयोधो महाबलः ।
 क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद्राजन्मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥
 ते हन्यमाना विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
 अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥ २१ ॥
 ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः ।
 सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाऽध्वरे ॥ २२ ॥
 बद्धगोधांगुलित्राणान्सशरासनसायकान् ।
 सासिचर्मकुशाभीपून्सतोमरपरश्वधान् ॥ २३ ॥
 सगदायोगुडप्रासान्सर्पितोमरपट्टिशान् ।
 सभिन्दिपालपरिधान्सशक्तिवरकम्पनान् ॥ २४ ॥
 सप्रतोदमहाशङ्खान्सकुन्तान्सकचग्रहान् ।
 समुद्रक्षेपणीयान्सपाशपरिघोपलान् ॥ २५ ॥

रथ पर बैठे हुए, सुवर्णरत्नमय कवच से अलङ्कृत, अर्जुन से भी श्रेष्ठ वीर अभिमन्यु युद्ध के लिए द्रोणाचार्य आदि वीर महारथियों के सम्मुख पहुँचे। व्यूह की रक्षा के लिए यत्नशील कौरवगण उत्साहित होकर अभिमन्यु के ऊपर प्रहार करने लगे। नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा का भँवर जैसे समुद्र के जल में प्रवेश हो करके क्षण भर तुमुल भाव धारण करता है वैसे ही परस्पर प्रहार करते हुए वीरगण घमासान युद्ध करने लगे॥ १२। १४॥ इसी अवसर में महाबलशाली अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य के सम्मुख ही उस न्यूह को तोड़कर उसके भीतर प्रवेश किया। चतुरङ्गिणी सेना ने महावीर अभिमन्यु को शत्रुसेना के भीतर प्रवेश वीरों का संहार करते देख प्रसन्नतापूर्वक उत्साह के साथ उनको चारों ओर से घेर लिया। वीरगण अनेक प्रकार के बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगे। कोई खम ठोकता था,

कोई गम्भीर स्वर से गरज रहा था और कोई हुंकार कर रहा था। कहीं पर कोई वीर शत्रु से कह रहा था कि ठहर तो जा, ठहर तो जा। कहीं पर भीषण कोलाहल सुनाई पड़ रहा था। कहीं कोई यह कह रहा था कि भागना नहीं, कोई कहता था कि मेरे सम्मुख आओ। कोई कहता था कि ठहर जाओ। कोई कहता था कि यह मैं खड़ा हूँ, आओ, युद्ध करो। वीरगण वार-वार इसी प्रकार के वाक्य उच्चारण कर रहे थे। हाथी विचार रहे थे, घोड़े हिनहिना रहे थे। आभूषणों की खनखनाहट और झनझनाहट हो रही थी। हँसने का, धनुष का, हाथों का और रथों के पहियों का शब्द ऐसा हो रहा था कि उससे पृथ्वी-मण्डल गूँज उठा। हे महाराज ! इस प्रकार सब लोग अभिमन्यु की ओर चले॥ १५॥ १६॥ महाबली वीर स्मृति-शाली और मर्मज्ञ अभिमन्यु ने मर्मभेदी बाणों से उन

सकेयूराङ्गदान्वाहून्हृद्यगन्धानुलेपनान् ।
 सञ्चिच्छेदाऽऽर्जुनिस्तूर्णं त्वदीयानां सहस्रशः ॥ २६ ॥
 तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे भूः सुलोहितैः ।
 पञ्चाम्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गुरुडेनेव मारिष ॥ २७ ॥
 सुनासाननकेशान्तैरवणैश्चारुकुण्डलैः ।
 सन्दष्टौष्ठपुटैः क्रोधात्क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥ २८ ॥
 सचारुमुकुटोष्णीपैर्मणिरत्नविभूषितैः ।
 विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः ॥ २९ ॥
 हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः ।
 द्विपच्छिरोभिः पृथिवीं स वै तस्तार फाल्गुनिः ॥ ३० ॥
 गन्धर्वनगराकारान्विधिवत्कल्पितान्स्थान् ।
 वीषामुखान्विप्रिवेणून्यस्तदण्डकवन्धरान् ॥ ३१ ॥
 विजङ्घाकूवरास्तत्र विनेमिदशनानपि ।
 विचक्रोपस्क्रोपस्थान्भक्षोपकरणानपि ॥ ३२ ॥
 प्रपातितोपस्तरणान्हतयोधान्सहस्रशः ।
 शरैर्विशकलीकुर्वन्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ३३ ॥
 पुनर्द्विपान्द्विपारोहान्वैजयन्त्यंकुशध्वजान् ।
 तूणान्वर्माण्यथो कक्ष्या प्रैवेयांश्च सकम्बलान् ॥ ३४ ॥
 घण्टाः शुण्डाविषाणाम्राञ्छत्रमालाः पदानुगान् ।
 शरैर्निशितधाराग्रैः शात्रवाणामशातयत् ॥ ३५ ॥

शत्रुपक्ष के योद्धाओं को मरना आरम्भ कर दिया। पतङ्ग
 जैसे अग्नि में जल मरते हैं वैसे ही वे कौरवपक्ष के
 गीरसैनिक अनेक चिह्न से युक्त तीक्ष्ण बाणों के अग्रहार
 से पीड़ित और निराश होकर मरने और गिरने लगे।
 उस समय वह रणभूमि कुशों से बिड़ी हुई यज्ञवेदी
 के समान शत्रुओं के ऊँट हुए अङ्गों से व्याप्त हो गई
 ॥ २०।२२॥ अभिमन्यु ने उन लोगों के— गोह के चमड़े
 के घने अँगुलित्रों से शोभित, धनुष, बाण, दाल, तलवार,
 अकुश, अमीषु, तोमर, परश्वध, गदा, लघुद, प्रास,
 ऋष्टि, पट्टिश, मिन्द्रिपाल, परिध, शक्ति, कम्पन, प्रतोद,
 शङ्ख, कुन्त, कचप्रह, मुद्गर, क्षेपणां, पाश, उपल आदि
 विविध शस्त्रों से युक्त, केयूर, अद्भुत आदि आभूषणों

से अलङ्कृत और मनोहर चन्दन अङ्गराग आदि से
 चर्चित—हाथों को सहस्रों की सख्या में काट-काट
 कर ढेर लगा दिया ॥ २३।२४॥ रथि-रथि-सिक्त विशाल
 भुजाएँ गरुड के काटे हुए पाँच सिर के नागों के समान
 फड़कती हुई शोभित हो रही थीं। महावीर अभिमन्यु
 ने शत्रुओं के मस्तकों से पृथ्वीमण्डल को पाट दिया।
 ये मस्तक मनोहर नासिका, मुग्ध और केशों से शोभित
 थे, वे रमणीय कुण्डल माला मुकुट पगड़ी और मणि-रत्न
 आदि से निभूषित थे; ये कमल कुसुम से सुहाने और
 चन्द्र तथा सूर्य के सदृश प्रभापूर्ण थे; ये व्रणविहीन
 और पवित्र सुगन्ध से युक्त थे। ये शत्रुओं के मस्तक
 क्रोध के मोर दंतों से ओढ़ चरने हुए ही काट डाले

वनायुजान्पार्वतीयान्काम्बोजानथ वाहिकान् ।
 स्थिरवालधिकर्णाक्षाञ्जवनान्साधुवाहिनः ॥ ३६ ॥
 आरूढाञ्जिक्षितैर्योधैः शक्त्युष्टिप्रासयोधिभिः ।
 विध्वस्तचामरमुखान्विप्रविद्धप्रकीर्णकान् ॥ ३७ ॥
 निरस्ताजिह्वानयनान्निष्कीर्णान्त्रयकृद्धनान् ।
 हतारोहांश्छिन्नघण्टान्कव्यादगणमोदकान् ॥ ३८ ॥
 निकृत्तचर्मकवचाञ्शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् ।
 निपातयन्नश्ववरास्तावकान्स व्यरोचत ॥ ३९ ॥
 एको विष्णुरिवाऽचिन्त्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
 तथा निर्मथितं तेन त्र्यङ्गं तव बलं महत् ॥ ४० ॥
 यथाऽसुरबलं घोरं त्र्यम्बकेन महौजसा ।
 कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे ॥ ४१ ॥
 अभिनच्च पदात्थोघांस्त्वदीयानेव सर्वशः ।
 एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ॥ ४२ ॥
 भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवाऽऽसुरीं चमूम् ।
 स्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश ॥ ४३ ॥
 संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः ।
 पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विपज्ये ॥ ४४ ॥

गये थे और वे जीवित अमर्या में हित के प्रिय वचन
 कहनेवाले थे॥२७॥३०॥गन्धर्वनगर के समान जो
 विशाल रथ सुसज्जित थे उन्हें अभिमन्यु ने अपने बाणों
 से छिन्न-भिन्न कर डाला । उनके घुरे कट गये, विषेणु
 दण्ड और लुंआ आदि सब अङ्ग पृथक्-पृथक् हो गये ।
 उनके जङ्घा, कूबर, पहिये, आरे, आसन और अन्य
 सब वस्तुएँ अस्तव्यस्त और नष्ट-भ्रष्ट हो गये । इस
 प्रकार के बहुमूल्य रथों को अभिमन्यु ने खण्ड-खण्ड
 कर डाला॥३१॥३२॥उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणों से
 पताका, अंकुश, धजा आदि से शोभित हाथियों को,
 कवच और तर्कस आदि से अलङ्कृत उनके सवारों
 को और उनके चरणरक्षकों को मार-मारकर गिराना
 आरम्भ कर दिया । उनकी गर्दनो, कंधनरज्जु, कन्धल,
 घण्टा, छत्र, माला, सूँड़ और दाँत आदि को काट
 डाला । वनायु देश के, काम्बोज देश के, ग्राहीक देश के

और पहाड़ा घोड़े बड़े वेग से चलनेवाले थे; उनके
 नेत्र, कान, पूँछ आदि अङ्ग चञ्चल नहीं थे; उन पर
 शक्ति, ऋष्टि और प्राप्त आदि शक्तों से युद्ध करनेवाले
 सुशिक्षित योद्धा सवार थे । वे घोड़े अभिमन्यु के बाणों
 से मर-मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे॥३४॥३५॥उनके
 चामर और कलंगी आदि वस्तुएँ कट गईं, नेत्र और
 जीभें निकल आईं, पेट फट गये, आँतें बाहर निकल
 आईं, पीड़ा निकल पड़ी, गले की घण्टियाँ टूटकर
 गिर पड़ीं और उनके सवार मर गये । घोड़ों के कवच
 कट गये थे और वे मल मूत्र और रक्त से सने हुए
 थे । इस प्रकार घोड़े मर-मरकर मांसाहारी जीवों के
 आनन्द को बढ़ाने लगे॥३७॥३९॥जैसे भगवान् शङ्कर
 ने दुर्द्धर्ष असुर-सेना का संहार किया था वैसे ही
 विष्णुसदृश प्रभावशाली अभिमन्यु ऐसा दुष्कर कर्म
 करके कौरवपक्ष की चतुरङ्गिणी सेना का संहार करने

गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैपिणः ।

हतान्पुत्रान्पितृन्प्रातृन्वन्धून्सम्बन्धिनस्तथा ॥ ४५ ॥

प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो ह्यद्विपान् ॥ ४६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवचपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

लगे । वीर अभिमन्यु शत्रुओं के लिए असह्य पराक्रम प्रकट करके चारों ओर आपकी सेना के घेदल योद्धाओं को मारने लगे । हे राजेन्द्र ! आपके पुत्रों और उनके पक्ष के वीरों ने जय देखा कि अकेले अभिमन्यु तीक्ष्ण बाणों से उसी प्रकार शत्रुसेना का संहार कर रहे हैं जिस प्रकार रुद्र ने असुरों की भारी सेना का नाश किया था, तब वे व्याकुल होकर चञ्चल दृष्टि से इधर-उधर ताकने लगे । उनके मुख सूख गये, पसीना बहने लगा और रोंगटे खड़े हो गये । जय का उस्ताह जाता

रहा और वे भागने के लिए उत्साहित होकर प्राण बचाने की इच्छा से परस्पर नाम-गोत्र आदि का उच्चारण करके एक दूसरे को भागने के लिए पुकारने लगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ महाराज ! अधिकांश लोग मारे गये अपने पुत्र, पिता, माई, वन्धु, सम्बन्धी आदि को वहीं छोड़कर, घोंघे-हाथी आदि अपनी सवारियों को शोषणा से हॉककर, वीर अभिमन्यु के आगे से भाग खड़े हुए ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

द्रोणपर्व का छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सञ्जय उवाच—तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽऽमितौजसा ।

दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥ १ ॥

ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे ।

दृष्ट्वा द्रोणोऽत्रवीथोधान्परीप्सध्वं नराधिपम् ॥ २ ॥

पुराऽभिमन्युर्लक्षं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।

तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३ ॥

ततः कृतज्ञा वलिनः सुहृदो जितकाशिनः ।

त्रास्यमाना भयाद्वीरं परिव्रुस्तवाऽऽत्मजम् ॥ ४ ॥

द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौवल् ।

वृहद्वलो मद्रराजो भूरिभूरिश्रवाः शलः ॥ ५ ॥

सैतीसवाँ अध्याय ॥ ३७ ॥

सञ्जय कहते हैं - हे महाराज ! राजा दुर्योधन ने जय महापराक्रमी अभिमन्यु के बाणों से अपनी सेना को डिन्न-भिन्न होते और भागने हुए देखा तब वे अत्यन्त ही कुपित होकर, स्वयं अभिमन्यु से युद्ध करने के लिए चले । महारथी द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को अभिमन्यु के समीप जाते देखकर कहा—हे वीरो ! तुम लोग शीघ्र राजा दुर्योधन के साथ जाओ । वीर अभिमन्यु

हमारे समुल्लेख ही कौरव-सेना के वीरों का संहार कर रहे हैं । तुम लोग इसी समय अभिमन्यु को रोकने के लिए जाओ; मयभीत होओ नहीं, दुर्योधन वीर रक्षा करो ॥ १ ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! तब महावृद्धाष्टी रणविजयी अश्वज्ञानसम्पन्न वीर लोग दुर्योधन की सहायता करने के लिए आगे बढ़े । अचार्य द्रोण, अध्यात्मज्ञा, कृपा-चार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, वृहद्वल, शल्य, भूरि,

पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्जरान् ।
 सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६ ॥
 संमोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् ।
 आस्थादग्रासमिवाऽऽक्षिप्तं ममृषे नाऽर्जुनात्मजः ॥ ७ ॥
 ताञ्जरौघेण महता साश्वसूतान्महारथान् ।
 विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ८ ॥
 तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवाऽमिपैपिणः ।
 नाऽमृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ ९ ॥
 त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष्य ।
 व्यसृजन्निपुजालानि नानालिङ्गानि संघशः ॥ १० ॥
 तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः ।
 तांश्चैव प्रतिविब्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ११ ॥
 ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविपोपमैः ।
 परिववृर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥ १२ ॥
 समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तं बलार्णवम् ।
 दधारैकोऽर्जुनिर्वीणैर्वैलेव भरतर्षभ ॥ १३ ॥
 शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम् ।
 अभिमन्योः परेषां च नाऽऽसीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥ १४ ॥
 तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयङ्करे ।
 दुःसहो नवभिर्वाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ १५ ॥

भूरिश्रवा, शल, पौरव, वृषसेन आदि वीर योद्धा लोग निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे॥१४॥ इन वीरों ने बाणों की वर्षा से वीर अभिमन्यु को रोककर और मोहित सा करके दुर्योधन को बचा लिया । अपने मुख से छँने हुए कौर की भाति दुर्योधन का हाथ से निकल जाना अभिमन्यु से नहीं सहा गया । वे बाणवर्षा से घाड़ों और सारथी सहित उन महारथियों को विमुख करके घोर सिंहनाद करने लगे । द्रोण आदि महारथी, मास के लिए गरजते हुए सिंह के समान, अभिमन्यु के पराक्रम और सिंहनाद को नहीं सह सके॥१५॥ तब उन महारथियों ने चारों ओर से रथों के मध्य अभिमन्यु को घेरकर उन पर अनेक विद्युत्

तीक्ष्ण बाण बरसाना आरम्भ कर दिया । महापराक्रमी अभिमन्यु ने आकाशमार्ग में ही उन बाणों को अपने बाणों से काट डाला और फिर अपने तीक्ष्ण बाणों से उन वीरों को घायल किया । अभिमन्यु का यह कार्य देखकर दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ । तब द्रोण आदि महारथियों ने क्रोध के वश होकर, समर से विमुख न होनेवाले, अभिमन्यु को मारने के लिए विपथर सदृश बाणों से ज़िपा सा दिया॥१०॥ वीर अभिमन्यु ने अकेले ही तटभूमि के समान स्थिर रहकर, समुद्र के सदृश क्षोभ को प्राप्त, उम विशाल सेना को रोक । इस प्रकार परस्पर संहार करने में प्रवृत्त दोनों पक्ष के वीरों में से कोई भी समरभूमि से पीटे नहीं हटता

दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
 द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥ १६ ॥
 विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ।
 बृहद्वलस्तथाऽष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ १७ ॥
 भूरिश्रवास्त्रिभिर्वर्णैर्मद्रेशः पद्भिराशुगैः ।
 द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥ १८ ॥
 स तु तान्प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्वगैः ।
 नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
 ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवाऽऽत्मजैः ।
 विदर्शयन्वै सुमहच्छिश्नैरसकृतं वलम् ॥ २० ॥
 गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वायवकरैर्हयैः ।
 दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत् ॥ २१ ॥
 विव्याध दशभिर्वर्णैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
 तस्याऽभिमन्युर्दशभिर्हयान्सूतं ध्वजं शरैः ॥ २२ ॥
 बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोऽभ्यपातयत् ।
 ततस्तस्मिन्हते वीरे सौभद्रेणाऽश्मकेश्वरे ॥ २३ ॥
 संचचाल वलं सर्वं पलायनपरायणम् ।
 ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट् शलः ॥ २४ ॥
 शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः ।
 वृपसेनः सुपेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥ २५ ॥

या॥ १३।१४॥उस समय दु सह ने नव, दु शासन ने
 वारह, वृषाचार्य ने तीन, द्रोणाचार्य ने सत्रह, विविंशति
 ने सत्तर, कृतवर्मा ने सात, बृहद्वल ने आठ, अश्व
 त्थामा ने सात, भूरिश्रवा ने तीन, शन्य ने ४, शकुनि
 ने दो बाण और दुर्योधन ने तीन बाण अभिमन्यु को
 एक साथ मारे॥ १५॥ १८॥महाप्रतापी अभिमन्यु ने उन
 बाणों को सह लिया और फिर माना नृत्य करते पड़े
 तीन तीन बाण इन सत्र बीसों का मारे। राजा दुर्योधन
 आदि तीनों ने अभिमन्यु को इस प्रकार मय दिखाया
 तथापि वे न तो भयभीत हो हुए और न विचलित
 हो हुए। अभिमन्यु ने अत्यन्त कुपित होकर बाणपिघा
 की शक्ति दिखा दी। गरुड और वायु के समान वेग

से चलनेगले और सारथी के इच्छानुसार जानेवाले
 घोड़ों से युक्त रथ पर घटकर आते हुए अस्मकेश्वर
 का उन्होंने रोका। अस्मकेश्वर ने अभिमन्यु के सम्मुख
 आकर "ठहर जा ठहर जा" कहकर उनकी दस बाण
 मारे। महावीर अभिमन्यु ने हँसते हँसते दस बाणों
 से उनके सारथी, रथ के घोड़ों, ध्वजा, दोनों पादुओं,
 धनुष और मन्तरू को काटकर गिरा दिया॥ १९॥ २३॥
 यह देखकर अस्मकेश्वर की सारी सेना भाग खड़ी
 हुई। तब कर्ण, वृषाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि,
 शल, शन्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशति,
 वृपसेन, सुपेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, लन्घ्य,
 प्रमाड, दीर्घशेखन और दुर्योधन आदि योद्धा कुपित

वृन्दारको ललित्यश्च प्रवाहुर्दीर्घलोचनः ।
 दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६ ॥
 सोऽतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्वगैः ।
 शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥ २७ ॥
 तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिय चाऽऽशुगः ।
 प्राविशद्वरणीं वेगाद्वल्मीकमिव पन्नगः ॥ २८ ॥
 स तेनाऽतिप्रहारेण व्यथितो विह्वलस्त्रिव ।
 सञ्चाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाऽचलः ॥ २९ ॥
 तथाऽन्यैर्निशितैर्वाणैः सुपेणं दीर्घलोचनम् ।
 कुण्डभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद्वली ॥ ३० ॥
 कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्षयत् ।
 अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ॥ ३१ ॥
 स शराचिसर्वाङ्गः क्रुद्धः शकात्मजात्मजः ।
 विचरन्ददृशे सैन्ये पाशहस्त इवाऽन्तकः ॥ ३२ ॥
 शल्यं च शरवर्षेण समीपस्थमवाकिरत् ।
 उदक्रोशन्महाबाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥ ३३ ॥
 ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्वगैः ।
 शल्यो राजन्रथोपस्थे निपसाद मुमोह च ॥ ३४ ॥
 तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना ।
 सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥

होकर अकेले ही अभिमन्यु के ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ २३॥ २६॥ महापराक्रमी अभिमन्यु ने इन लोगों के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर कर्ण के ऊपर, कवच और देह को भेदनेवाला, एक महामयानक बाण छोड़ा । वह बाण कर्ण के कवच को तोड़कर पृथ्वी में वैसे ही प्रवेश हो गया जैसे विल में सर्प प्रवेश होता है । महावीर कर्ण उस दारुण प्रहार से अत्यन्त व्यथित और विह्वल होकर, भूकम्प के समय पर्वत के समान कम्पित हो उठा ॥ २७॥ २९॥ अब अभिमन्यु ने अत्यन्त कुपित होकर अन्य तीन तीक्ष्ण बाणों से दीर्घलोचन, सुपेण और कुण्डभेदी को घायल कर दिया । तब महावीर कर्ण ने अभिमन्यु को पचीस नाराच बाण

मारे । साथ ही अश्वत्थामा ने बीस और कृतवर्मा ने सात बाण मारे । सब सैनिकों ने देखा कि अभिमन्यु के शरीर भर में बाण लगे हैं और वे पाश हाथ में लिये यमराज के समान युद्धभूमि में विचर रहे हैं ॥ ३०॥ ३२॥ निकटवर्ती शल्य को बाणों से अदृश्य करके सम्पूर्ण कौरव-सेना को विभीषिका दिखाते हुए महाप्रतापी अभिमन्यु सिंहावाद करने लगे । उनके मर्मभेदी बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर शल्य रथ पर बैठ गये और अचेत हो गये ॥ ३३॥ ३५॥ हि राजेन्द्र ! आपके पक्षके सैनिकगण शल्य को बाणप्रहार से पीड़ित देख, सिंह-पीड़ित मृग के समान, द्रोणाचार्य के सम्मुख ही भाग खड़े हुए । उस समय देवता, चारण, सिद्ध,

संप्रेक्ष्य तं महाबाहुं स्वमपुङ्खैः समावृतम् ।
त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३६ ॥

स तु रणयशसाऽभिपूज्यमानः पितृसुरचारणसिद्धयक्षसङ्घैः।
अवनितलग्नैश्च भूतसङ्घैरतिविवर्धौ हुतमुग्रथाऽऽज्यसिक्तः॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

पितृगण और पृथ्वीतल के सब प्राणी अभिमन्यु के युद्ध-
कौशल और अस्त्र-शिक्षा की प्रशंसा करने लगे। हथिन-

कुण्ड में स्थित और आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान
वीर अभिमन्यु परम शोभा को प्राप्त हुए॥ ३६।३७॥

द्रोणपर्व का सैतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्र उ वच—तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः ।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन् ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच—शृणु राजन्कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत् ।
विभिस्ततो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम् ॥ २ ॥

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाऽऽशुगै रणे ।
शल्यवादवरजः क्रुद्धः किरन्वाणान्समभ्ययात् ॥ ३ ॥

स विद्वध्वा दशभिर्वाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम् ।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

तस्याऽर्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान् ।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥ ५ ॥

चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः ।
पताकां चक्रगोसारौ सर्वोपकरणानि च ॥ ६ ॥

लघुहस्तः प्रविच्छेद ददृशे तं न कश्चन ।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः ॥ ७ ॥

अइतीसवाँ अध्याय ॥ ३८ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय! वीर अभिमन्यु
जब इस प्रकार शत्रुपक्ष के महायुद्धर वीरों को विम-
र्दित करने लगे तब मेरे पक्ष के किन-किन वीरों ने
उनको रोका?॥१॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! वीर
अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य के बाहु-बल से सुरक्षित रथ-
सेना को पार करने की अभिलाषा से जिस प्रकार
युद्धक्रीड़ा की, सो सुनिए। शल्य के छोटे भाई ने
जब अपने बड़े भाई को अभिमन्यु के वाणों से अत्यन्त

व्यथित देखा तब वे क्रोध के मारे वाण बरसाते हुए
अभिमन्यु की ओर दौड़े। उन्होंने अभिमन्यु को
और उनके साथी तथा घोड़ों को दस वाण मारकर
सिंहनाद करते हुए छलकारा॥२॥सहचरिणाली
महावीर अभिमन्यु ने तीक्ष्ण वाण चलाकर एक साथ
उनके मस्तक, हाथों, पायों, रथ के चारों घोड़ों, छत्र,
ध्वजा, पताका और त्रिवेणु, तल्प, चक्र, युग, दूणीर,
अनुकर्ष और रथ की अन्यान्य सामग्री को तथा दो

वायुनेव महाशैलः सम्भ्रमोऽमिततेजसा ।
 अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन्सर्वतो दिशः ॥ ८ ॥
 आर्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्प्रणेदुः समन्ततः ।
 नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत ॥ ९ ॥
 शल्यभ्रातार्यथाऽऽरुणे बहुशस्तस्य सैनिकाः ।
 कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ १० ॥
 अभ्यधावन्त संकुद्धा विविधायुधपाणयः ।
 रथैरश्वैर्गजैश्चाऽन्ये पद्भिश्चाऽन्ये बलोकटाः ॥ ११ ॥
 बाणशब्देन महता रथनेमिस्त्रेण च ।
 हुङ्कारैः च्वेडितोत्कुष्ठैः सिंहनादैः सगर्जितैः ॥ १२ ॥
 ज्यातलव्रखनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम् ।
 ब्रुवन्तश्च न नो जीवनमोक्ष्यसे जीवितादिति ॥ १३ ॥
 तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव ।
 यो योऽस्मै प्राहर्त्तुं तं तं विव्याध पत्रिभिः ॥ १४ ॥
 सन्दर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च ।
 आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत ॥ १५ ॥
 वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनञ्जयात् ।
 अदर्शयत तत्कार्णिकः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥ १६ ॥
 दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः ।
 सन्दधद्विजंश्चैषून्निर्विशेषमदृश्यत ॥ १७ ॥

चक्ररक्षकों और सारथी का मस्तक काट डाला ।
 उस समय अभिमन्यु को कोई नेत्र तक उठाकर भी
 नहीं देख सकता था । महावीर शल्य के भाई के
 वल्ल और आमूषण अस्त-व्यस्त हो गये । आँधी से
 नष्ट किये गये पर्वत की भाँति जब उन्हें अभिमन्यु ने
 मार डाला तब सब सेना चारों ओर भागने लगी ॥ १५ ॥
 ८॥दर्शक लोग अभिमन्यु को इस अलौकिक कार्य
 को देखकर वाह-वाह कहकर उनकी प्रशंसा करने
 लगे । शल्य के छोटे भाई के मारे जाने पर उनके
 साथ की सेना के वीर योद्धा लोग कुपित होकर
 अभिमन्यु को अपने कुल, नाम और निवासस्थान का
 परिचय देते हुए बहुत से अज्ञ-शस्त्र तानकर उन पर

आक्रमण करने के लिए दौड़े । उन वीरों में से कुछ
 लोग रथों पर, कुछ लोग घोड़ों पर और कुछ लोग
 हाथियों पर सवार थे । कुछ लोग पैदल ही थे ।
 बाणों के चलने का शब्द, रथों के पहियों की घ-
 रघाहट, हुङ्कार, सिंहनाद, प्रत्यक्षा का शब्द, बाल-
 ध्वनि और गोर गर्जन चारों ओर छा गया । “आज
 तुम जीते जी हमारे हाथ से छुटकारा नहीं पा सकते!”
 यह कहते हुए शत्रुसेना के वीर अभिमन्यु के आगे
 गरजने लगे ॥ १६ ॥ उन लोगों के ये वचन सुनकर
 अभिमन्यु ने हँसते हँसते उन सब पर प्रहार किये ।
 जिसने उन पर पहले प्रहार किया उसको पहले और
 जिसने पीछे प्रहार किया उसको पीछे, उसी क्रम से,

चापमण्डलमेवाऽस्य विस्फुरद्विदृश्यत ।
 सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १८ ॥
 ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः ।
 महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः ॥ १९ ॥
 ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत्प्रियदर्शनः ।
 संमिमानयिपुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाऽप्ययुध्यत ॥ २० ॥
 मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत ।
 वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्शरदीव दिवाकरः ॥ २१ ॥
 शरान्विचित्रान्सुवहून्स्वमपुङ्खाञ्जिलाशितान् ।
 मुनोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥
 ध्रुवप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः ।
 नाराचैर्द्धचन्द्राभैर्भल्लैर्जलिकैरपि ॥ २३ ॥
 अवाकिरद्रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः ।
 ततस्तत्सैन्यमभवद्विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टविंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

वीर अभिमन्यु ने घायल किया । इस प्रकार विचित्र
 कौशल और स्फूर्ति दिखते हुए वीर अभिमन्यु कोमल
 भाव से युद्ध करने लगे । उन्होंने अपने पिता अर्जुन से
 और कृष्णचन्द्र से जो विचित्र अन्न प्राप्त किये थे
 उनका प्रयोग, उन्हीं की तरह, करना आरम्भ किया
 ॥ १४।१६॥ युद्ध के समय किसी को यह नहीं देख
 पड़ता था कि अभिमन्यु किस समय बाण निकालते
 हैं, किस समय धनुष पर चढ़ते हैं और किस समय
 छोड़ते हैं । अभिमन्यु का मण्डलाकार घूमता हुआ
 धनुष चारों ओर शरद्वंश के सूर्य के मण्डल के
 समान देख पड़ रहा था । उनकी प्रत्यक्षा का शब्द
 और तलघनि, वर्षाकाल के मेघमण्डल से निकल हुए,
 वज्र के शब्द के समान सुनाई पड़ रहा था ॥ १७।१९॥

हीमान्, असह्यशील, मानी, प्रियदर्शन अभिमन्यु
 वीरों का सम्मान करने के लिए बाणों और अस्त्रों के
 द्वारा उनसे युद्ध करने लगे । इसके पश्चात् वर्षाकाल
 व्यतीत हो जाने पर जैसे सूर्यदेव प्रचण्ड रूप धारण
 करते हैं वैसे ही महावीर अभिमन्यु पहले कोमल युद्ध
 करके क्रमशः प्रचण्ड युद्ध करने लगे । वे सूर्यकिरण
 के समान तीक्ष्ण, सुवर्णपुद्गुस्त, विचित्र बाणों को
 बरसाने लगे । सहस्रों ध्रुव, वत्सदन्त, विपाठ, अर्ध-
 चन्द्र, नाराच, मल्ल और अजलिक आदि अनेक प्रकार
 के बाणों से द्रोणाचार्य के सन्मुख ही उनकी रथ-
 सेना को छिन्न भिन्न करने लगे । कौरव-सेना इस
 प्रकार अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर
 युद्ध में भागने लगी ॥ २०।२४॥

द्रोणपर्व का अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — द्रैधीभवति मे चित्तं भिया लुप्टया च सञ्जय ।

मम पुत्रस्य यत्सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥

विस्तरेणैव मे शंस सर्व गावल्गणे पुनः ।

विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवाऽसुरैः सह ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम् ।

एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत्तुमुलो रणः ॥ ३ ॥

अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिन्दमान् ।

रथस्थो रथिनः सर्वास्तावकानभ्यवर्षयत् ॥ ४ ॥

द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्वलम् ।

दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥ ५ ॥

नानानृषान्पुत्रसुतान्सैन्यानि विविधानि च ।

अलातचक्रवत्सर्वाश्चरन्वाणैः समार्पयत् ॥ ६ ॥

निघ्नन्नमित्रान्सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् ।

अदर्शयत् तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्याऽमितौजसः ।

समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥ ८ ॥

अथाऽब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।

हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥

घटयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।

अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥ १० ॥

उत्तालीसर्गो अध्याय ॥ ३० ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महारथी अभिमन्यु के पराक्रम से अपने पुत्र की सेना के नष्ट और विमुख होने का समाचार सुनकर मुझे शोक भी हो रहा है और सन्तोष भी हो रहा है । अतः तुम, असुरों के साथ स्कन्द भगवान् के युद्ध के समान, कौरव सेना के साथ अभिमन्यु के युद्ध का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बहो ॥ १॥ २॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महारथी अभिमन्यु ने अजेले ही जिस प्रकार बहुत से योद्धाओं के साथ घोर युद्ध किया, सो सब मैं विस्तार के साथ आपके सम्मुख वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनिए । महापराक्रमी अभिमन्यु उसाह के साथ रथ पर घंटकर युद्ध का उत्साह रखनेवाले शत्रु-नाशन कौरवपक्ष के वीरों पर बाणों की वर्षा करने लगे

अभिमन्यु घुमाई जानेवाली जलती हुई लकड़ी की भाँति घूमकर द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, शल्य, अश्वत्थामा, भोज-राज, बृहद्वल, दुर्योधन, भूरिश्रमा, शकुनि और अन्यान्य बहुत से राजाओं, राजपुत्रों और सैनिकों को बड़ी स्फूर्ति के साथ अपने बाणों से पीड़ित करने लगे ॥ ३॥ ६॥ उस समय वे इतनी शीघ्रता से विचर रहे थे कि शत्रुपक्ष के लोगों को जान पड़ता था कि अनेक मूर्तियों धारण किये वे चारों ओर उपस्थित हैं । हे राजेन्द्र ! महतेजस्वी अभिमन्यु को इस प्रकार अमाधारण रणकौशल दिगाने देखकर कौरव-सेना के लोग काँप उठे ॥ ७॥ ८॥ इसी समय महारथी प्रतापी द्रोणाचार्य अभिमन्यु के अमाधारण रणकौशल को देखकर, प्रसन्न होकर दुर्योधन के मर्मस्थल को चोट

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
 नन्दयन्सुहृदः सर्वान्राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
 नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम् ।
 वन्धून्सम्बन्धिनश्चाऽन्यान्मध्यस्यान्सुहृदस्तथा ॥ १२ ॥
 नाऽस्य युद्धे समं मन्ये कश्चिदन्यं धनुर्धरम् ।
 इच्छन्हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥
 द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवाऽत्मजः ।
 आर्जुनिं प्रति संकुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥
 अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद्वाह्निकं नृपः ।
 दुःशासनं मद्वराजं तांस्तथाऽन्यान्महारथान् ॥ १५ ॥
 सर्वमूर्धाभिपिक्तानामाचार्यो ब्रह्मविष्णुः ।
 अर्जुनस्य सुतं मूढं नाऽयं हन्तुमिहेच्छति ॥ १६ ॥
 न ह्यस्य समरे युद्धयेदन्तकोऽप्याततायिनः ।
 किमङ्ग पुनरेवाऽन्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥
 अर्जुनस्य सुतं त्वेप शिष्यत्वादभिरक्षति ।
 शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥ १८ ॥
 संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
 आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम् ॥ १९ ॥
 एवमुक्तास्तु ते राजा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
 संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥

पहुँचाते हुए, कृपाचार्य से कहने लगे—हे आचार्य !
 यह देखो, पाण्डवों के प्रसिद्ध पुत्र महावीर अभिमन्यु
 धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीमसेन तथा अ-
 न्यान्मध्यस्थान्धन, सगन्धी और मध्यस्थ लोगों को
 सन्तुष्ट करके जा रहे हैं । मेरी सम्मति में इस समय
 इस बालक के समान समरनिपुण धनुर्धर योद्धा यहाँ
 पर दूसरा नहीं है । यह महावीर चाहे तो सहज ही
 सम्पूर्ण कौरव-सेना का नाश कर सकता है; किन्तु
 न-जाने वह ऐसा क्यों नहीं करता ॥ ११ ॥ आचार्य
 के वचन सुनकर दुर्योधन ने अभिमन्यु पर क्रोध हो
 द्रोणाचार्य की ओर देखकर कर्ण, वाह्निक, दुःशासन,
 शल्य और अन्य अपने अनुयायियों से कहा—हे

सुहृदो ! देखो, सब क्षत्रियों के गुरु और ब्रह्मवेत्ताओं
 के शिरोमणि आचार्य ममता और मोह के बश होकर
 ही अर्जुन के पुत्र को मारना नहीं चाहते ॥ १४ ॥
 मैं सत्य कहता हूँ, आचार्य यदि शत्रु को मारने के
 लिए उद्यत होकर तत्परता के साथ युद्ध करें तो मनुष्य
 की कौन कहे, यमराज भी बच नहीं सके । किन्तु
 अर्जुन इनके प्रिय शिष्य हैं । शिष्य, पुत्र और उनकी
 सन्तान को धर्मात्मा लोग क्रोध की दृष्टि से देखते हैं,
 इसी लिए आचार्यजी अभिमन्यु की रक्षा कर रहे हैं ।
 इस प्रकार आचार्य के द्वारा रक्षित होने के कारण ही
 अभिमन्यु अपने को वीर्यशाली समझ रहा है । अतएव
 अब हम लोग मिलकर इस पौरुषाभिमान बालक को

दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
 अत्रवीत्कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥
 अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
 मिपतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम् ॥ २२ ॥
 असिष्याम्यथ सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ।
 उत्क्रुश्य चाऽब्रवीद्वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥ २३ ॥
 श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ ।
 गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवल्लोकान्न संशयः ॥ २४ ॥
 तौ च श्रुत्वा मृतो व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोज्झवाः सुताः ।
 एकाह्वा ससुहृद्गर्गाः क्लृब्धाद्वास्यन्ति जीवितम् ॥ २५ ॥
 तस्मादस्मिन्हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
 शिवेन मां ध्याहि राजन्नेप हन्मि रिपूंस्तव ॥ २६ ॥
 एवमुक्त्वाऽनदद्राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
 सौभद्रमभ्ययात्क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २७ ॥
 तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिन्दमः ।
 अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः पङ्क्तिं शत्या समार्षयत् ॥ २८ ॥
 दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
 अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २९ ॥
 तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
 चरमाणावयुद्धयेतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥

शीघ्र ही मार डालो ॥ १७।१९॥ दुर्योधन के ये वचन
 सुनकर सब वीर योद्धा लोग क्रोधपूर्वक अभिमन्यु को
 मारने के विचार से शीघ्रता के साथ द्रोणाचार्य के
 सन्मुख ही अभिमन्यु की ओर दौड़े। उस समय
 दुःशासन ने दुर्योधन से गर्व के साथ कहा—हे राजेन्द्र !
 राहु जैसे सूर्य को ग्रस लेता है वैसे ही मैं इस समय
 सम्पूर्ण पाण्डवों और पाण्डवों के सन्मुख ही अभिमन्यु
 को मार डालूँगा। इसके पश्चात् अभिमानी अर्जुन
 और कृष्ण दोनों भरे हाथ से अभिमन्यु के शत्रु को
 प्राप्त हो जाने का ममाचार पाकर अस्व ही अने
 प्राण दे देगे ॥ २०।२१॥ फिर कृष्ण और अर्जुन की
 शत्रु की मूर्चना सुनकर पाण्डु के अन्य क्षेत्रज्ञ पुत्र

और उनके वधु बान्धव, कापों की तरह, शक्तिहीन
 और शोकाकुट होकर निःसन्देश एक ही दिन में
 शत्रु को प्राप्त हो जायेंगे। हे महाराज ! इस प्रकार
 एक अभिमन्यु के नष्ट होने से ही आपके सब शत्रुओं
 का नाश हो जायगा। अतएव आप भरे मङ्गल और
 विजय की कामना कीजिए। मैं अकेला ही आपके
 शत्रुओं का सहार किये डालना हूँ। हे महाराज !
 आपके पुत्र दुःशामन ने यों कहकर ऊँचे रथ से
 सिंहनाद किया। ये अत्यन्त कुपित होकर अभिमन्यु
 के सन्मुख पहुँचकर उन पर बाणगर्ष करने लगे ॥ २५।
 २७॥ महारथी अभिमन्यु ने भी उनको लक्ष्यम बाण
 मारे। महाराजकी दुःशामन मृद होकर मरमत

अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां क्रकचमहानकभेरिशिराणाम् ।

निनदमतिभृशं नराः प्रचकुर्वणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवचपर्वणि दुःशासनयुद्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

गजराज की भाति अभिमन्यु के साथ घोर संग्राम करने लगे । इसके उपरान्त रथ-शिक्षा में निपुण दोनों की दाहने-बायें विचित्र मण्डलाकार गतियों से रथ घुमाते हुए एक दूसरे पर प्रहार करने लगे । उस समय

सैनिक लोग चारों ओर पणव, मृदङ्ग, दुन्दुभि, क्रकच, महानक, भेरी, झंझर और शङ्ख बजाने हुए घोर सिंहनाद करने लगे ॥ २८।३१ ॥

—०—

द्रोणपर्व का उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

सञ्जय उवाच - शरविक्षतगात्रस्तु प्रत्यभिन्नमवस्थितम् ।

अभिमन्युः स्मयन्धीमान्दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥

दिष्टया पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम् ।

निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २ ॥

यत्सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।

कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभापितः ।

अक्षकूटं समाश्रित्य सौवलस्याऽऽत्मनो बलम् ॥ ४ ॥

तत्त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः ।

परवित्तापहारस्य क्रोधस्याऽप्रशमस्य च ॥ ५ ॥

लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्याऽत्याहितस्य च ।

पितृणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ॥ ६ ॥

तत्त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद्धि महात्मनाम् ।

स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ ७ ॥

शासितास्म्यथ ते वाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

अद्याऽहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥

चार्त्तसंगो जय्याय ॥ ४० ॥

मक्षय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! यद्यपि वीर अभिमन्यु के सब अङ्ग कट-फट गये थे तथापि वे धर्म के साथ आगे शत्रु दुःशामन से कहने लगे— हे निष्फल क्रोध करनेवाले अधर्मी वीराभिमानी पुरुष ! यही बात जो आज समर-भूमि में यह है कि तुम भेरी आँखों के आगे आ गये ॥ १।२॥ तुमने जो भेरी

सभा में महाराज धृतराष्ट्र के समुख कटुवचन कहकर धर्मराज को कुपित किया था और शकुनि-कल्पित कपट-वृत्त में अपने बाहुबल के मद से मत्त होकर महानीर भीमसेन को जो बुझास्य कहे थे, उसका परिणाम आज तुमको मिलेगा । हे दुर्बुद्धि कौरव ! आज अभी बहुत ही दौरी तुमको पराई सम्पत्ति हड़प कर

अमर्षितायाः कृष्णायाः कांक्षितस्य च मे पितुः ।
 अथ कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ॥ ९ ॥
 न हि मे मोक्ष्यसे जीवन्त्यदि नोत्सृजसे रणम् ।
 एवमुक्त्वा महाबाहुर्वाणं दुःशासनान्तकम् ॥ १० ॥
 सन्दधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम् ।
 तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥ ११ ॥
 जगाम सह पुङ्गेन बल्मीकमिव पन्नगः ।
 अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२ ॥
 शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः ।
 स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥
 दुःशासनो महाराज कश्मलं चाऽविशन्महतम् ।
 सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥ १४ ॥
 रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम् ।
 पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥
 पञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथाऽनदन् ।
 वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥ १६ ॥
 प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः ।
 अपश्यन्स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥
 अत्यन्तवैरिणं हसं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ।
 धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥

जाने को, क्रोध, अशान्ति, लोभ, अज्ञान, द्रोह, अति
 साहस का और मेरे उग्रधनुर्धर पिता और चाचा के
 राज्यहरण का उग्र प्रतिकूल प्राप्त होगा ॥ १॥ ॥ मैं समर
 में सब सेना के सम्मुख ही तुमको अपने बाणों से मार-
 कर अमर्षणशील द्रौपदी और भीमसेन के ऋण से
 मुक्त हो जाऊँगा; अपने पिता की इच्छा पूर्ण करूँगा
 और तुम्हें वीर पाण्डवों को युधित करने का और सम्पूर्ण
 अधर्म का फल भोगना पड़ेगा । यदि तुम युद्ध छोड़-
 कर मेरे सम्मुख से भागन गये तो आज किसी प्रकार
 जीने नहीं बच सकते । हे महाराज ! अभिमन्यु ने
 इस प्रकार मर्सेना करके दुःशासन को अग्नि के
 समान तेजःपुत्र और बाण के सदृश शीघ्रगामी एक

दारुण बाण मारा । अभिमन्यु के धनुष से छूटा हुआ
 वह बाण दुःशासन के जत्रुस्थान को भेदकर पुङ्ग
 सहित पृथ्वी के भीतर बैसे ही प्रवेश हो गया जैसे
 सर्प विष्ट के भीतर प्रवेश हो जाता है ॥ ८॥ १२॥ फिर
 वीर अभिमन्यु ने धनुष को बान तक खींचकर
 अत्यन्त तीक्ष्ण पचीस बाण दुःशासन को मारे । वीर
 दुःशामन अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त घायल और
 व्यथित होकर मुँहटित हो रथ पर गिर पड़े । उग्र
 समय सारथी उन्हें अवेत देखकर उनका रथ मर्म-
 भूमि में शीघ्र ही हटा ले गया ॥ १२॥ १५॥ यह देग-
 कर पाण्डवगण, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, पाञ्चालगण,
 पंचिकगण और राजा विराट सभी अभिमन्यु की प्रशंसा

धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः ।
 सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्शिखण्डिनौ ॥ १९ ॥
 केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृञ्जयाः ।
 पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
 अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं विभित्सवः ।
 ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥
 जयमाकांक्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
 तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयङ्करे ॥ २२ ॥
 दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।
 पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशङ्कतम् ॥ २३ ॥
 प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं निघ्नन्तं शात्रवान्गणे ।
 अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥ २४ ॥
 सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।
 ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥
 अभ्यवर्पत संकुद्धः पुत्रस्य हितकृत्तव ।
 तस्य चाऽनुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेपुभिः ॥ २६ ॥
 अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।
 अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिल्पमुखैः ॥ २७ ॥
 अविध्यत्त्वरितो राजन्द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः ।
 तं तथा नाऽशक्तकश्चिद् द्रोणाद्वारयितुं रथी ॥ २८ ॥

और घोर सिंहवाद करने लगे । पाण्डवपक्ष के सैनिक
 सन्तुष्ट होकर युद्धभूमि में अनेक प्रकार के बाजे बजाने
 लगे और प्रधान शत्रु दुःशासन को हरनेवाले कुमार
 अभिमन्यु का पराक्रम देखकर बड़े ही चकित हुए ।
 धर्म, यायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों की मूर्तियों के
 चिह्न में अलङ्कृत राजाओंवाले रथों पर बैठे हुए
 द्रौपदी के पाँचों पुत्र, पराक्रमी सात्यकि, चैत्रिनान,
 धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकेयजकुमार, धृष्टकेतु, मत्स्य-
 देश के योद्धा, पाञ्चाल देश के सैनिक और सुप्रय-
 ग्ग युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के साथ द्रोणाचार्य की
 सेना को त्रिज-भिन्न करने के लिए बड़े बेग के साथ
 समरभूमि में आगे बढ़े । इन समय सप्ताम ने कर्ण

न हटनेवाले और विजय की इच्छा रखनेवाले दोनों
 पक्षों के बीच तुल्य युद्ध करने लगे ॥ १५।२॥ इम
 प्रकार भयानक मगर उपस्थित होने पर राजा दुर्यो-
 धन ने वीरवर कर्ण से कहा — हे अङ्गराज ! देवो,
 वह मर्त्य के समान तेजस्वी प्रतापी वीर दुःशामन
 रणभूमि में शत्रु-सेना का संहार करके अन्न को
 अभिमन्यु के पक्ष में रहे हैं और पाण्डवगण महारथी
 मित्र की तरह युद्ध होकर अभिमन्यु की रक्षा करने
 के लिए बेग में युद्धभूमि में चले आ रहे हैं ॥ २३।
 २५॥ हे राजेन्द्र ! तब दुर्योधन के परमहर्षि वीर
 कर्ण ने कुपित होकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों में अभि-
 मन्यु को घायल किया और उनके अनुगामी पूर्वज

आरुजन्तं रथवातान्वज्रहस्तात्मजात्मजम् ।
 ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मान्नी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥
 सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ।
 सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
 समरे शत्रुदुर्धर्ममभिमन्युमपीडयत् ।
 स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनाऽस्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
 समरेऽमरसङ्काशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।
 ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भलैरानतपर्वभिः ॥ ३२ ॥
 छित्त्वा धनूपि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।
 धनुर्भण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविपोमैः ॥ ३३ ॥
 सच्छत्रध्वजयन्तारं साऽश्वमाशु स्मयन्निव ।
 कर्णोऽपि चाऽस्य चिक्षेप बाणान्तन्नतपर्वणः ॥ ३४ ॥
 असम्भ्रान्तश्च तान्सर्वानगृह्णात्फाल्युनात्मजः ।
 ततो मुहूर्तात्कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
 स ध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत् ।
 ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥
 सौभद्रमभ्ययान्तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ।
 तत उच्चुकुशुः पार्थास्तेपां चानुऽचरा जनाः ।
 वादित्राणि च सञ्जघ्नुः सौभद्रं चाऽपि तुष्टुवुः ॥ ३७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युप्रपञ्चणि कर्णदुःशासनपराभवे नृत्वारिणोऽप्याय ॥ ४० ॥

वीरों को भी वे तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे ।
 आचार्य के सम्मुख जाने की इच्छा रखनेवाले महावीर
 अभिमन्यु ने शक्ति के साथ कर्ण को तिहत्तर तीक्ष्ण
 बाण मारे और फिर कौरवपक्ष के श्रेष्ठ रथियों को भी
 वे शस्त्रप्रहार से व्यथित करने लगे । किन्तु कौरव-
 सेना का कोई भी योद्धा उस समय मलावीर अभि-
 मन्यु को द्रोणाचार्य के सम्मुख जाने में रोक नहीं
 सका ॥ २५ ॥ २९ ॥ उस समय सब योद्धाओं की अपेक्षा
 अभिमान्नी, विजयाभिप्रायी, परशुराम के शिष्य, महा-
 वीर पर्ण सैन्धवों श्रेष्ठ बाणों और शरों से अभिमन्यु
 को पीड़ित करने लगे; किन्तु महापराक्रमी देवुन्य
 अभिमन्यु उममें तनिक भी व्यथित नहीं हुए । वे

शिला पर पड़े किये गये आनतपर्व बहुत से भल बाणों
 से वीरों के धनुष काटकर बन्धपूर्वक कर्ण के ऊपर
 निरन्तर सैन्धवों बाण छोड़ने लगे । अभिमन्यु के धनुष
 से छूटे हुए उन मर्ष-सदृश बाणों ने कर्ण के हृत्त्र,
 ध्वजा, सारथी और घोड़ों को नष्ट कर दिया ॥ २९ ॥
 ३४ ॥ तब महावीर कर्ण ने अभिमन्यु को बाण मारे ।
 उन्होंने अनायाम ही उन बाणों के प्रहार की सट
 लिया और क्षण भर में देगने ही देगने एक ही बाण
 से कर्ण की ध्वजा और धनुष आदि काटकर पृथ्वी पर
 गिरा दिये । उस समय कर्ण के भाई, अपने भाई की
 दशा देखकर, मुदद धनुष लेकर अभिमन्यु पर आक्रमण
 करने की दीद । कर्ण की दुर्दशा देखकर अनु

चरो सहित पाण्डवगण ज़ोर से सिंहनाद करने, बाजे । बजाने और अभिमन्यु की प्रशंसा करने लगे ॥ ३४ ॥ ३७ ॥
 द्रोणपर्व का चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच—सोऽतिगर्जन्धनुष्पाणिर्ज्या विकर्षन्पुनः पुनः ।
 तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥ १ ॥
 सोऽविध्यद्दशभिर्वाणैरभिमन्युं दुरासदम् ।
 सच्छत्रध्वजयन्तारं साऽश्वमाशु सम्यन्निव ॥ २ ॥
 पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुपम् ।
 दृष्ट्वाऽर्पितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताऽभवन् ॥ ३ ॥
 तस्याऽभिमन्युरायम्य सम्यन्नेकेन पत्रिणा ।
 शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात्प्रापतद्भुवि ॥ ४ ॥
 कर्णिकारमिवाऽऽधूतं वातेनाऽऽपतितं नगात् ।
 भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन्कणों व्यथां ययौ ॥ ५ ॥
 विमुग्धीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः ।
 अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाऽभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥
 ततस्तद्विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमतु ।
 कुङ्क्षोऽभिमन्युरभिनत्तिग्मतेजा महारथः ॥ ७ ॥
 कर्णस्तु बहुभिर्वाणैरर्च्यमानोऽभिमन्युना ।
 अपायाजवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥ ८ ॥
 शलभैरिव चाऽऽकाशे धाराभिरिव चाऽऽवृते ।
 अभिमन्योः शरै राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ९ ॥

इकतालीसवाँ अध्याय ॥ ४१ ॥

सञ्जय कहते हैं हे राजेन्द्र ! कर्ण के भाई ने बार-बार गरजकर और धनुष की डोरी मीचकर स्फूर्ति के साथ अभिमन्यु और कर्ण के रथों के मध्य में आकर दस बाण छोड़े, जिनसे अभिमन्यु का सारथी और घोड़े घायल हो गये और छत्र तथा च्वजा जर्जर हो गई । महावीर अभिमन्यु को, अपने पिता और पितामह के समान अलौकिक कार्य करके, अन्त में कर्ण के भाई के बाणों से पीड़ित होते देखकर क्रोध-गण अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥ १ ॥ ३ ॥ अब महावीर अभिमन्यु ने दर्प के साथ एक बाण मारकर कर्ण के भाई

का सिर काटकर गिरा दिया । अभिमन्यु को बाण से निहत भाई को, वायुवेग के द्वारा जड़ से उखड़कर पर्वत से गिरनेवाले कर्णिकार वृक्ष की तरह, रथ से पृथ्वी पर गिरते देखकर वीर कर्ण बहुत ही व्यथित हुए ॥ ४ ॥ ६ ॥ कर्ण को इस प्रकार रण से विमुख करके वीर अभिमन्यु कङ्कपत्रशोभित असंख्य बाणों की वर्षा करते हुए अन्य वीरों की ओर चले और क्रोध के साथ उस विस्तृत चतुरङ्गिणी कौरव-सेना को छिन्न-भिन्न करने लगे । अभिमन्यु के बाणों से निद्र और व्यथित होकर वीर कर्ण वड़े वेग से रणभूमि से हट गये ।

तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः ।
 अन्यत्र सैन्यवाद्राजन्न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥
 सौभद्रस्तु ततः शङ्खं प्रध्माय पुरुषर्षभः ।
 शीघ्रमभ्यपतत्सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥
 स कक्षेधिरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
 मध्यं भारत सैन्यानामार्जुनिः प्रववर्तत ॥ १२ ॥
 रथनागाश्वमनुजानर्दयन्निशितैः शरैः ।
 सम्प्रविश्याऽकरोद्भूमिं कवन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥
 सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः ।
 खानेवाऽभिमुखान्घ्नन्तः प्राट्वजीवितार्थिनः ॥ १४ ॥
 ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः ।
 निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जगुराशु वसुन्धराम् ॥ १५ ॥
 सायुधाः सांगुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
 दृश्यन्ते वाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥
 शराश्चापानि खट्वाश्च शरीराणि शिरांसि च ।
 सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन्सहस्रशः ॥ १७ ॥
 सोपस्करैरधिष्ठानैरीपादण्डैश्च बन्धुरैः ।
 अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्वहुधा पतितैर्युगैः ॥ १८ ॥
 शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः ।
 चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥ १९ ॥

यह देखकर सब सेना विशृङ्खल होकर प्राण लेकर हथर-
 उधर भागने लगी॥६॥८॥अभिमन्यु के, जलधारा और
 टीढ़ीदल के समान, असंख्य बाणों से आकाश-मण्डल
 व्याप्त हो गया। बाणों के अतिरिक्त और कुछ भी
 नहीं देख पड़ता था। कौरवपक्ष की सेना अभिमन्यु के
 तीक्ष्ण बाणों से जर्जर होकर भाग खड़ी हुई। केवल
 पराक्रमी योद्धा सिन्धुराज जयद्रथ अपने स्थान से नहीं
 हटे॥९॥१०॥तब महावीर अभिमन्यु शङ्ख बजाने हुए
 कौरव-सेना में प्रवेश होकर सूची घास को जलाने-
 वाली प्रचण्ड अग्नि के समान बाणों की अग्नि से शत्रु-
 सेना को भस्म करने लगे। उन्होंने क्षण भर में असं-
 ख्य रथियों, हाथियों, घोड़ों, हाथी-घोड़ों के सवारों

और पैदल योद्धाओं को छिन्न भिन्न करके पृथ्वी को
 कण्ठों और छाशों से व्याप्त कर दिया॥११॥१२॥
 कौरवपक्ष के सैनिक लोग अभिमन्यु के बाण-प्रहार से
 अत्यन्त व्याकुल और पीड़ित होकर प्राणरक्षा के लिए
 बड़े वेग से चारों ओर भागे और ऐसे व्याकुल हुए कि
 अपने ही दल के लोगों को मारने लगे। अभिमन्यु
 के चलोंय हुए निम विपाठ नाम के बाण रथों, हाथियों
 और घोड़ों को नष्ट करके पृथ्वीतल में गिरने लगे।
 शस्त्र, अंगुलित्राण, गदा और अङ्गद आदि सुवर्ण के
 अलङ्कारों से अलङ्कृत सहस्रों कटी हुई भुजाएँ,
 असंख्य बाण, धनुष, त्वङ्ग, मनुष्यों के शरीर और
 मान्य तथा कुण्डल आदि से शोभित सिर पृथ्वी पर बिट

निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते ।
 अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनाऽऽसीत्सुदारुणा ॥ २० ॥
 वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम् ।
 प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥ २१ ॥
 स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत् ।
 सौभद्रश्चाऽद्रवत्सेनां घ्नन्वराश्वरथद्विपान् ॥ २२ ॥
 कक्षमग्निरिवोत्प्लव्यो निर्दहंस्तरसा रिपून् ।
 मध्ये भारत सैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥
 विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चाऽपि भारत ।
 तं तदा नाऽनुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते ॥ २४ ॥
 आददानं गजाश्वानां नृणां चाऽऽयुं पि भारत ।
 क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्य मध्यन्दिने यथा ॥ २५ ॥
 अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विपद्मपान् ।
 स वासवसमः संख्ये वासवस्याऽऽत्मजात्मजः ॥
 अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

गये ॥ १४१ ॥ आदर के देर रणों के दृढ़कर गिरे हुए
 दिव्याभरणभूषित आसन, ईशादण्ड, अक्ष, चक्र, युग,
 शक्ति, धनुष, चक्र, डाल, तलवार, बाण, असंख्य
 मृत क्षत्रियों की लाशें, मर हुए हाथी और घोड़े
 गिरने के कारण वह रणभूमि क्षण भर में अगम्य
 और बड़ी भयङ्कर सी हो उठी ॥ १८२ ॥ मोर जाते हुए
 और घायत राजपुत्रों तथा क्षत्रियों के आर्तनाद की
 ऐसी घोर प्रकीर्ति उठी कि उगे सुनकर कायरों के
 कलेजे काँप उठे । उस समय महावीर अभिमन्यु अम-
 र्य शत्रुसेना, रथ, घोड़े और हाथी आदि का महार-
 ण द्रोणपर्व का इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

कारके कौरव सेना के भीतर प्रवेश होकर अग्नि जैसे
 मूवे हुए जङ्गल को जलाती ही धीमे ही शत्रुओं को
 नष्ट करते हुए इधर-उधर परिभ्रमण करने लगे ॥ २१ ॥
 २३। मिना के इधर-उधर भागने से ऐसी धूल उड़ी
 कि उनके मोरे हम लोग अगम्य हाथियों, घोड़ों और
 मनुष्यों के मध्य में उन प्राणनाशक पराक्रमी अभिमन्यु
 को ढंग नहीं पाते थे । किन्तु क्षण भर के पश्चात् ही
 महावीर अभिमन्यु मध्याह्निकाल के मध्य के समान, अपने
 प्रताप से, शत्रुओं को तराते हुए उस अगम्य सेना के
 मध्य प्रवृत्त होकर बहुत ही शोभमान हुआ ॥ २४ ॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम् ।
 युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥
 गाहमानमनीकानि सदश्वेध त्रिहायनेः ।
 अपि योषिष्ठिरास्तेन्यात्कश्चिदन्यपनद्वली ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ ।
 धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥ ३ ॥
 धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाऽभ्यपतन्रणे ।
 तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥ ४ ॥
 अभ्यद्रवन्परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
 तान्दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन् ॥ ५ ॥
 ततस्तद्विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद्वलम् ।
 जामाता तव तेजस्वी संस्तंभयिपुराद्रवत् ॥ ६ ॥
 सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः ।
 स पुत्रश्छिनः पार्थान्सहसैन्यानवारयत् ॥ ७ ॥
 उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
 वार्धक्षत्रिरुपासेधत्प्रवणादिव कुञ्जरः ॥ ८ ॥
 धृतराष्ट्र उवाच—अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे सञ्जयाऽऽहितम् ।
 यदेकः पाण्डवान्कुङ्क्षान्पुत्रप्रेप्सूनवारयत् ॥ ९ ॥
 अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे ।
 तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाऽग्न्यं महात्मनः ॥ १० ॥
 किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो ततः ।
 सिन्धुराजो हि येनैकः पाण्डवान्समवारयत् ॥ ११ ॥
 सञ्जय उवाच—द्रौपदीहरणे यत्तन्नीमसेनेन निर्जितः ।
 मानात्स तप्तवान्राजा वरार्थी सुमहत्तपः ॥ १२ ॥

बयालीसवें अध्याय ॥ ४२ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने पूछा हे सञ्जय ! अत्यन्त सुखी, बाहुबल का अहङ्कार रखनेवाले, रणनिपुण अभिमान्यु ने तीन तीन वर्ष के बहुमूल्य घोड़ों से शोभित रथ पर बैठकर प्राणपण से युद्ध करने के लिए जब समरसागर में प्रवेश किया तब पाण्डवसेना का कौन-कौन वीर उनके साथ गया? ॥ १२ ॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, शिखण्डी, मत्स्यदेश के वीर, सात्यकि, विराट, द्रुपद, कैकेय और धृष्टकेतु आदि अभिमान्यु के आभीमत्यजन लोग उनकी रक्षा करने के लिए उनके साथ साथ युद्ध के मैदान में चले । कौरव-सेना के योद्धा लोग पाण्डव-

पक्ष के तीरों को युद्धभूमि में आते देखकर नहीं से भाग गया ॥ १५ ॥ तब उग्र धनुष धारण करनेवाले महातेजस्वी आपके दामाद जयद्रथ, कौरव सेना को स्थिर और युद्ध के लिए उत्साहित करने की इच्छा से, दिव्य अस्त्र का प्रयोग करते हुए पुत्ररत्नल पाण्डवों को रोककर भक्त गजराज की भाँति युद्धभूमि में परिभ्रमण करने लगे । जयद्रथ को जीतकर व्यूह के भीतर प्रवेश होना पाण्डवों और उनके पक्ष के वीरों के लिए अशक्य हो गया ॥ १५ ॥ धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महाबाहु जयद्रथ ने अकेले ही, मेरे पुत्रों के हित की इच्छा से, क्रोधी बली पाण्डवों को व्यूह के

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सः ।
 क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसन्ततः ॥ १३ ॥
 देवमाराधयच्छर्वं गृणन्ब्रह्मा सनातनम् ।
 भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम् ॥ १४ ॥
 स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाऽऽह हरः सिन्धुपतेः सुतम् ।
 वरं वृणीष्व प्रीतोऽसि जयद्रथ किमिच्छसि ॥ १५ ॥
 एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः ।
 उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान् ॥ १६ ॥
 पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान् ।
 वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत ॥ १७ ॥
 एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाऽब्रवीत् ।
 ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थ धनञ्जयम् ॥ १८ ॥
 वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान् ।
 एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाऽबुध्यत पार्थिवः ॥ १९ ॥
 स तेन वरदानेन दिव्येनाऽस्त्रवलेन च ।
 एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २० ॥
 तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान्भयमाविशत् ।
 परांस्तु तत्र सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत् ॥ २१ ॥
 दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम् ।
 उत्क्रुश्याऽभ्यद्रवन् राजजन्येन यौधिष्ठिरं बलम् ॥ २२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युपर्वणि जयद्रथयुद्धे द्विचतुरिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

बाहर ही रोककर बड़ा भारी कार्य किया। मुझे जयद्रथ का बल-वीर्य बहुत ही अद्भुत जान पड़ता है। तुम उनके युद्ध के वृत्तान्त का वर्णन विस्तरपूर्वक करो। सिन्धुराज जयद्रथ ने जैन सा दान, हवन, यज्ञ या तप किया था, जिसके प्रभाव से वे अकेले ही कोयल पाण्डवों को युद्ध में परास्त कर सकें ॥ १९ ॥ सन्त्रय ने कहा—हे राजेन्द्र! जयद्रथ ने जब द्रौपदी को हर ले जाने की पुनर्छा की थी तब भीमसेन ने उन्हें परास्त किया था। उस अवमान से बुझित होकर जयद्रथ ने इन्द्रियों को विषयों से रोक करके, भूय-प्यास भूय-व्यास आदि के वृष्ट सहकर, घोर तपस्या और वेदशास्त्रों के

वर की प्राप्ति के लिए महादेव की आराधना की ॥ १९ ॥ भक्त प्रसन्न होकर भगवतीपति ने जयद्रथ पर दया करके उनसे दामन में कहा—हे जयद्रथ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छा के अनुसार वरदान माँग लो। तब जयद्रथ ने प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—हे महादेव! मैं आपके वरदान के प्रभाव से अकेला ही रथ पर बैठकर महावृद्धाली पौष्टों पाण्डवों को परास्त कर सकूँ ॥ १९ ॥ ॥ १० ॥ शङ्कर ने कहा—हे सिन्धुराज! मैं जर देता हूँ कि तुम अर्जुन के अतिरिक्त सब पाण्डवों को [एक दिन] युद्ध में परास्त कर सकोगे। हे राजेन्द्र! महादेव के ये वचन सुनकर "बहुत अच्छा" कहकर

जयद्रथ जाग पड़े । वीर जयद्रथ ने शङ्कर के उसी वरदान के प्रभाव से ही और दिव्य अश्वों के बल से ही उस दिन अकेले ही पाण्डवों को परास्त किया [और ब्यूह के भीतर नहीं जाने दिया]॥१८।२०॥
हे महाराज ! उस समय जयद्रथ के ज्ञान-निर्घोष और

तन्ध्वनि को सुनकर शत्रुपक्ष के क्षत्रिय भयविह्वल और कौरवपक्ष के वीर प्रसन्न तथा उत्साहित हो उठे । कौरवपक्ष के वीरगण ब्यूह की रक्षा का भार जयद्रथ को सौंपकर, साहस के साथ धनुष चढ़ाकर, राजा युधिष्ठिर की सेना के सम्मुख चले॥२१।२२॥

द्रोणपर्व का वयाटीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच—यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम् ।

शृणु तत्सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत् ॥ १ ॥

तमूहुर्वाजिनो वज्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः ।

विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः ॥ २ ॥

गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम् ।

तस्याऽभ्यशोभयत्केतुर्वाराहो राजतो महान् ॥ ३ ॥

श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च ।

स वभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाऽम्बरे ॥ ४ ॥

मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तमयस्सयम् ।

वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवाऽऽवृतम् ॥ ५ ॥

स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान्बहून् ।

तत्त्वण्डं पूरयामास यद्वयदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥

स सात्वर्किं त्रिभिर्वाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।

धृष्टद्युम्नं तथा पृष्टया विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥

द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् ।

केकयान्पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥

तैतालीसवाँ अध्याय ॥ ४३ ॥

सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र ! आप मुझे सिन्धु-राज जयद्रथ के पराक्रम के बारे में पूछ रहे हैं, इसलिए जिस प्रकार जयद्रथ ने पाण्डवों से युद्ध किया और उन्हें आगे बढ़ने से रोका वह सब वृत्तान्त मैं कहता हूँ; सुनिए । गन्धर्वनगर के सदृश, विविध अलङ्कारों से अलंकृत, स्फूर्तिशाली और सारथी के आशार्थीन सिन्धु देश के बड़े डील-ढौलशाले घोड़ों से युक्त, रथ पर चढ़कर वीर जयद्रथ मोर्चों के समीप पहुँचे । उनके रथ के ऊपरी भाग में चौड़ी का बना हुआ

वराहचिह्न ध्वजा के ऊपर शोभायमान था॥१।३॥वे श्वेत छत्र, पताका और चागर आदि राजकीय चिह्नों से आकाशमण्डल में स्थित चन्द्रमा के समान शोभा को प्राप्त हुए । हारि, मोती, मणि, स्वर्ण आदि से भूषित लोहमय उनके रथ का वरूथ (रथवेष्टन) ज्योतिष्कमण्डली से आवृत आकाश के समान जान पड़ता था । इसके पश्चात् वीर जयद्रथ ने धनुष चढ़ाकर बहुत से बाण बरसाये और अभिमन्यु ने ब्यूह के जिस स्थान को अपने शस्त्रों की वर्षा से रहित करके

युधिष्ठिरं तु ससत्या ततः शेषानपानुदत् ।
 इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ९ ॥
 अथाऽस्य शितपीतेन भल्लेनाऽऽदिश्य कार्मुकम् ।
 चिच्छेद प्रहसन् राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥
 अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
 त्रिव्याध दशभिः पार्थ तांश्चैवाऽन्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११ ॥
 तत्तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
 धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥
 सोऽन्यदादाय वलवान्सज्जं कृत्वा च कार्मुकम् ।
 भीमस्याऽपातयत्केतुं धनुरश्वान् च मारिष ॥ १३ ॥
 स हताश्वदवप्लुत्य छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
 सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥
 ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति वादिनः ।
 सिन्धुराजस्य तत्कर्म प्रेक्ष्याऽश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५ ॥
 संक्रुद्धान्पाण्डवानेको यद्वधाराऽस्त्रतेजसा ।
 तत्तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाऽभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥
 सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
 पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥ १७ ॥
 यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः ।
 पाण्डवाश्चाऽन्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥ १८ ॥

राह कर ली थी उस स्थान को फिर सेना के द्वारा
 पूर्ण कर दिया ॥ ११ ॥ जयद्रथ ने सात्यकि को तीन,
 भीमसेन को आठ, धृष्टद्युम्न को साठ, त्रिराट राजा
 को दस, राजा द्रुपद को पाँच, शिखण्डी को दस,
 युधिष्ठिर को सत्तर, वैजयगण को पचास बाण और
 द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को तीन-तीन बाण मारकर
 अन्यान्य वीरों को असह्य बाणों से पीड़ित करना
 आरम्भ किया । जयद्रथ की यह अद्भुत शक्ति देख
 कर लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥ १२ ॥ महाप्रतापी
 युधिष्ठिर ने हँसते-हँसते तीक्ष्ण भट्ट बाण से जयद्रथ
 का धनुष काट डाला । उन्होंने क्षण भर में दूसरा
 धनुष लेकर धर्मराज को दस बाण और अन्य वीरों

को तीन-तीन बाण मारे । तब महावीर भीमसेन ने
 जयद्रथ की शक्ति देखकर शीघ्रता के साथ तीन-
 तीन भट्ट बाणों से उनका धनुष, ध्वजा और छत्र आदि
 काट डाले ॥ १३ ॥ १४ ॥ पराक्रमी सिन्धुराज ने उभी
 क्षण अन्य धनुष पर डोरी चढ़ाकर भीमसेन की ध्वजा,
 धनुष और घोड़े को नष्ट कर दिया । महाबाहु भीम-
 सेन उम बिना घोड़ों के रथ में उतरकर सात्यकि के
 रथ पर चले गये । उस समय ऐसा जान पड़ा कि
 सिंह पर्वत के ऊपर चढ़ रहा है । हे राजेन्द्र ! आपके
 सैनिकों ने जयद्रथ के इस कार्य को देखकर अत्यन्त
 आह्लाद के साथ ऊँचे स्वर में उनको शावारी देने
 लगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ गीर सिन्धुराज ने अनेक ही क्रोध-

यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाऽहितः ।

तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

विह्वल पाण्डवों को अपने बाहुबल और अस्त्र-शस्त्र के प्रभाव से रोक लिया, यह देखकर सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। पहले महावीर अभिमन्यु ने अपने पक्ष के योद्धाओं को साथ ले, कौरव पक्ष के असंख्य हाथियों को मारकर, पाण्डवों को व्यूह के भीतर जाने का जो मार्ग दिखलाया था वह मार्ग जयद्रथ ने इस समय अपने कौशल और शिव के वरदान के प्रभाव से

बन्द कर दिया। मत्स्य, पाञ्चाल, कैकेय और पाण्डव-गण वड़े यत्न से युद्ध करते-करते जयद्रथ के समीप पहुँचे; किन्तु जयद्रथ के प्रभाव और पराक्रम को किसी प्रकार न सह सकने के कारण कुल नहीं कर सके। उस समय पाण्डवपक्ष के वीरों ने द्रोणाचार्य की सेना के व्यूह को तोड़ने की जितनी चेष्टाएँ कीं, उन्हें जयद्रथ ने अनायास ही विफल कर दिया॥ १६।१९॥

द्रोणपर्व का तेलासीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

अथ चतुर्धत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सञ्जय उवाच—सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।

सुघोरमभवयुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥

प्रविश्याऽथाऽऽर्जुनिः सेनां सत्यसन्धो दुरासदः ।

व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥

तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् ।

यथा प्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३ ॥

तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत ।

सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४ ॥

रथव्रजेन संरुद्धस्तैरभिःस्तथाऽऽर्जुनिः ।

वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ५ ॥

तस्य विव्याध बलवाञ्छरैरश्वानजिह्मगैः ।

वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥

चवालीसवाँ अध्याय ॥ ४४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! जयद्रथ ने जय प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले पाण्डवों को जब इस प्रकार बाहर ही रोक दिया तब दोनों पक्ष के वीर भयानक संग्राम करने लगे। महातेजस्वी अभिमन्यु शत्रुसेना के भीतर प्रवेश करके जैसे ही शत्रुसेना को मथने लगे जैसे कोई बड़ा भारी मच्छ समुद्र के जल को मथता है। उस समय कौरवपक्ष के वीरगण प्रधानता के अनुसार अभिमन्यु पर आक्रमण करने के

लिए उनकी ओर चले॥ १।३॥ अभिमन्यु के साथ कौरवों का भयानक युद्ध होने लगा। कौरव निरन्तर बाणवर्षा करने लगे। उन्होंने रथों के मध्य में अभिमन्यु को घेर लिया। अभिमन्यु ने कुपित होकर कई बाण कर्णनन्दन वृषसेन को मारे, उनके सारथी को मार डाला, धनुष काट डाला और उनके रथ के घोड़ों को भी घायल कर डाला। वायुवेगगामी वोड़े सहसा अचेत वृषसेन को युद्धस्थल से लेकर भाग

तेनाऽन्तरेणाऽभिमन्योर्यन्ताऽपासारयद्रथम् ।
 रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधुसाध्वितिं चुक्रुशुः ॥ ७ ॥
 तं सिंहमिव संकुञ्चं प्रमथन्तं शरैररीन् ।
 आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥
 सोऽभिमन्युं शरैः पट्टया रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ।
 अब्रवीच्च न मे जीवजीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥
 तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना ।
 विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० ॥
 वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
 परिव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥ ११ ॥
 विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
 तमुद्धमभवद्रौद्रं सौभद्रस्याऽरिभिः सह ॥ १२ ॥
 तेषां शरान्सेव्वसनाञ्जरीराणि शिरांसि च ।
 सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ १३ ॥
 सखद्वाः सांगुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः ।
 अपश्यन्त भुजाश्लिघ्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥
 स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महामुजैः ।
 वर्ममिश्रमभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥
 उपस्करैरधिष्ठानैरिपादण्डकवन्धुरैः ।
 अक्षैर्विमथितैश्चक्रेर्मयैश्च बहुधा युगैः ॥ १६ ॥

खड़े हुए॥४॥६॥इसी मध्य में अभिमन्यु के रथ को
 लेकर उनका सारथी भी अन्यत्र चला गया। महारथी
 वीर लोग अभिमन्यु का पराक्रम देखकर प्रसन्नता-
 पूर्वक 'साधु-साधु' कहकर बड़ा कोलाहल करने लगे।
 कुपित सिंह के समान झपटकर बाणों से शत्रुसेना
 का विनाश करते हुए अभिमन्यु को आगे बढ़ते देख
 शीघ्रता के साथ वीर वसातीय उनके समुल पड़ूँचे।
 वसातीय ने रक्षित के साथ सुवर्णपुष्पयुक्त तीक्ष्ण साठ
 बाण अभिमन्यु को मारकर कहा — हे वीर कुमार !
 मेरे उपस्थित रहते तुम कदापि समर में जीते-जी छुट-
 कारा नहीं प्राप्त कर सकते॥७॥तब अभिमन्यु ने
 अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से लोह-कवचधारी वीर

वसातीय का वक्षःस्थल वीर डाला। वसातीय मरकर रथ
 से पृथ्वी पर गिर पड़े। उनको मृत्यु देखकर कौरवक्ष के
 वीरगण अपने-अपने अनेकानेक प्रकार के धनुष चढ़ा-
 चढ़ाकर दौड़े। उन्होंने अभिमन्यु को, मार डालने के
 विचार से, चारों ओर से घेर लिया। उस समय युद्ध बहुत
 ही भयानक हो उठा॥१०॥१२॥महावीर अभिमन्यु ने
 क्रोध से पिहल होकर उनके धनुष, बाण आदि अस्त्र-
 शस्त्र, कलेबर और मान्यमण्डित तथा कुण्डलों से अलङ्कृत
 मल्लक कटना आरम्भ कर दिया। इधर-उधर चारों
 ओर स्रग्, अंगुलित्राण, पट्टिश और परश्व आदि
 से युक्त और सुवर्ण के अलङ्कारों से अलङ्कृत कटे हुए
 हाथ पड़े हुए थे। उस समय रणभूमि माला, आभू-

अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः ।
 रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाऽभवन्मही ॥ १७ ॥
 निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः ।
 जययुद्धैर्दृता भूमिदारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥
 दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।
 रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९ ॥
 काञ्चनं यद्यदस्याऽऽसीद्वर्म चाऽऽभरणानि च ।
 धनुषंश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥
 तं तदा नाऽशकत्कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुतम् ।
 आददानं शरैर्योधानमध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

इति श्री महामारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पण, वस्त्र, ध्वजादण्ड, ढाल, तलवार, हार, मुकुट, छत्र, चामर, आसन, ईशादण्ड, रथों के जुएँ, टूटे हुए पहिये, युग, अनुकर्ष, पताका, घोड़े, सारथि, टूटे हुए रथ तथा मेरे हुए हाथियों-घोड़ों से परिपूर्ण हो उठी ॥ १३ ॥ मरभूमि उस समय विजयाभिलाषी महाबली पराक्रमी अनेक देशों के राजाओं की लाशों से परिपूर्ण और इसी से भयङ्कर दिखाई पड़ने लगी । अभिमन्यु क्रुद्ध होकर शत्रुसेना को विदीर्ण करते हुए इधर-उधर परिभ्रमण करने लगे । उस समय

अभिमन्यु को कोई देख नहीं सकता था; क्योंकि वे स्फूर्ति के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान जा रहे थे । हे महाराज ! हम लोग केवल अभिमन्यु का सुवर्ण-मण्डित कवच, आभूषण, मण्डलाकार धनुष और बाण ही देख पाते थे । सूर्य जैसे किरणों से सब लोकों को ढक लेते हैं वैसे ही तेजस्वी अभिमन्यु अपने बाणों से वीरों का व्याप्त करते हुए देख पड़ते थे । सेना के मध्य में स्थित, सूर्य के समान तप रहे, अभिमन्यु को उस समय कोई स्थिर दृष्टि से देख भी नहीं सकता था ॥ १८ ॥ २१ ॥

द्रोणपर्व का चत्वारिंशोऽध्याय समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

सञ्जय उवाच—आददानस्तु शूराणामायुष्यभवदार्जुनिः ।
 अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान्काल इवाऽऽगते ॥ १ ॥
 स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो वली ।
 अभिमन्युस्तदाऽनीकं लोडयन्समदृश्यत ॥ २ ॥
 प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः ।
 सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ॥ ३ ॥

पैतालीसर्वो अध्याय ॥ ४५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! जैसे प्रलयकाल आ जाने पर काल सब प्राणियों के जीवन का संहार करता है वैसे ही इन्द्र-सदृश पराक्रमी अभिमन्यु बड़े-

बड़े योद्धाओं को मारने लगे । उस समय शत्रुसेना को विदलित करते हुए अभिमन्यु की अपूर्व शोभा हुई । व्याघ्र जैसे झपटकर मृग को पकड़ ले वैसे ही

सत्यश्रवसि चाऽऽक्षिते त्वरमाणा महारथाः ।
 प्रग्रहा विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४ ॥
 अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः ।
 स्पर्धमाना समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥
 क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
 जग्राह तिमिरासाय क्षुद्रमत्स्यानिवाऽर्णवे ॥ ६ ॥
 ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
 न ते प्रतिन्यवर्त्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥
 महाप्राहृष्टहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
 समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवाऽर्णवे ॥ ८ ॥
 अथ रुक्मरथो नाम मन्त्रेश्वरसुतो वली ।
 व्रस्तामाश्वासयन्सेनामव्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
 अलं त्रासेन वः शूरा नैव कश्चिन्मयि स्थिते ।
 अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥
 एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
 सुकल्पितेनोद्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥
 सोऽभिमन्युं त्रिभिर्वाणैर्विध्वा वक्षस्यथाऽनदत् ।
 त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥
 स तस्येव सनं छित्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
 भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्नु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥

अभिमन्यु ने शत्रुसेना के म्यूह में प्रवेश करके सव्य-
 धरा को पकड़ लिया और पृथ्वी पर उनको लीबना
 आरम्भ किया ॥ ११ ॥ तब कर पक्ष के सत्र योद्धा अनेक
 प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर बड़े वेग से अभिमन्यु के
 समीप पहुँचे और "मैं पहले उसे मारूँगा, मैं पहले
 वार करूँगा" कहकर ने अभिमन्यु को मारने के लिए
 उद्यत हुए । समुद्र के भीतर निमि नाम का मत्स्य जैसे
 ठोड़ी मछलियों को निगल लेता है वैसे ही बुभार
 अभिमन्यु उन क्षत्रियों और सुभटों को मार-मारकर
 गिराने लगे ॥ १२ ॥ जैसे सत्र नदियों समुद्र में जाकर
 समा जाती हैं वैसे ही युद्ध से युवा न मोड़नेवाले
 अरागित अभिमन्यु के समीप पहुँचकर कोई भी

जीवित नहीं छोड़ता था । उस समय कौरवपक्ष के
 सैनिक लोग उसी प्रकार अत्यन्त भयविह्वल होकर
 कौंपने लगे जिस प्रकार महाप्राह से पकड़ा गया मनुष्य
 कौंपता है और तफ़ान के भयङ्कर वेग से क्षोभ को
 प्राप्त समुद्र के मध्य में झूती हुई नाव डगमगाती है
 ॥ १३ ॥ अब पराक्रमी निभर्ष मद्राज शल्य के पुत्र
 वीर रुक्मरथ ने भागती हुई सेना को धैर्य देकर उत्ते-
 जित करते हुए कहा—हे वीर क्षत्रियो ! सैनिक लोगो !
 भयभीत होओ नहीं । क्यों भागने हो ? मेरे जिते जी
 अभिमन्यु तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते । मैं निःसन्देह
 इन्हें जिते-जी ही पकड़ दूँगा ! सुमज्जित सुवर्णमण्डित
 रथ पर बैठे हुए रुक्मरथ बड़े वेग से अभिमन्यु के

दृष्ट्वा रुक्मरथं रुष्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
 जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥
 संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः प्रहारिणः ।
 वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥
 तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
 आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १६ ॥
 शूरैः शिक्षाचलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
 दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥
 छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
 वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥ १८ ॥
 सुवर्णपुङ्खैरिपुभिर्नीनालिङ्गैः सुतेजनैः ।
 अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात्ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥
 ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
 आचितं समपश्याम श्वाविधं शल्लैरिव ॥ २० ॥
 स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवाऽर्दितः ।
 गान्धर्वमल्लमायच्छद्रथमायां च भारत ॥ २१ ॥
 अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
 तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनाऽमोहयताऽहितान् ॥ २२ ॥
 एकधा शतधा राजन्दश्यते स्म सहस्रधा ।
 अलातचक्रवत्संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥

समुल्ल पङ्क्ति । उन्होंने अभिमन्यु के हृदय में और दाहनी तथा बाईं भुजा में तीन-तीन बाण मारकर घोर सिंहनाद किया॥१॥१२॥अभिमन्यु ने उसी समय उनका धनुष, दोनों हाथ और सुन्दर नयन-नाक तथा भृकुटि से शोभित सिरबाणों से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया । रण-दुर्मद शल्य-पुत्र के प्रिय राज-कुमारगण सुवर्णखचित ध्वजा से शोभित रथों पर बैठे हुए थे । उन्होंने जब रुक्मरथ की मृत्यु देखी तब कुपित होकर, ताल-प्रमाण सुदृढ धनुष तान-तानकर, चारों ओर से अकेले अभिमन्यु को घेर लिया । शस्त्र-विद्या में सुशिक्षित, तरुण, अत्यन्त असह्यशील वीरों ने घेरकर अपने बाणों से अभिमन्यु को छा लिया॥१३॥

१६॥यह देखकर राजा दुर्योधन बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने समझ लिया कि अब अभिमन्यु जीते नहीं बच सकते । राजपुत्रों में अनेक प्रकार के चिह्नों से सुवर्ण-सुवर्णपुङ्ख-शोभित बाणों से क्षण भर में अभिमन्यु की लिप्ता सा दिया । हमें उनका रथ, ध्वजदण्ड और सारथी, सब टीढ़ीदल से घिरे हुए खेत की तरह देख पड़ते थे॥१७॥१८॥उस समय अंकुश की चोट खाते हुए हाथी की भांति अत्यन्त घायल और इसी से क्रुद्ध होकर अभिमन्यु ने गान्धर्व अल्ल का प्रयोग करके माया प्रकट की । महावीर अर्जुन ने घोर तप करके तुम्बुरु आदि गन्धर्वों से वह अद्भुत दिव्य अल्ल प्राप्त कियापा । उस अल्ल का प्रयोग करते ही शत्रुसेना मोहित

रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परन्तपः ।
 विभेद शतधा राजञ्जरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥
 प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषिता निशितैः शरैः ।
 राजन्प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥
 धनूंष्यश्वाश्रियन्तृंश्च ध्वजान्बाहूँश्च साङ्गदान् ।
 शिरांसि च शितैर्वाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ २६ ॥
 चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
 राजपुत्रशतं तद्वत्सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥
 कुद्धाशीविपसङ्काशान्सुकुमारान्सुखोचितान् ।
 एकेन निहतान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८ ॥
 रथिनः कुञ्जरानश्वाल्पदातींश्चापि मज्जतः ।
 दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात्तममर्पितः ॥ २९ ॥
 तयोः क्षणमित्राऽऽपूर्णः संग्रामः समपथत ।
 अथाऽभवत्ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वाणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

हो गई । अभिमन्यु ने रफूति के साथ गन्धर्व अश्व
 छोड़कर ऐसा अद्भुत कौशल दिखलाया कि बड़े बड़े
 योद्धा चकित रह गये। ये अलानचक्र भी भाति कभी एन,
 कभी सो और कभी सहस्र रूप धारण करिये हुए से
 देख पड़ते थे ॥ २१ ॥ २३ ॥ फिर उन्होंने रथसञ्चालन-
 कला और अस्त्र-माया के द्वारा राजाआ का मोहा-
 मिभूत करके उनके शरीरों के टुकड़े टुकड़े करना
 प्रारम्भ किया । सान पर रक्खे गये येने बाणों के प्रहार
 से शरीरों के प्राण निमल्वर परलेख सिधारते और
 मृत शरीर पृथ्वी पर गिरते जाते थे । इसके पश्चात्
 अभिमन्यु ने तीक्ष्ण धारवाले बाणा से कुछ राजकुमारों
 के धनुष, रथ के घोड़े, सारथी, पञ्जा, अस्त्रादि
 आभूषणों से शोभित बाहु और सिर काटना प्रारम्भ

कर दिया ॥ २४ ॥ २६ ॥ जैसे पाँच वर्ष के पुराने फल-
 युक्त आम के पेड़ टूट-टूटकर गिरते हैं वैसे ही एक-
 सी राजकुमारों का अभिमन्यु ने बाणों से मार गिराया ।
 उस समय एकमात्र अभिमन्यु के पराक्रम से क्रुद्ध सर्प
 सदृश, सुखभोग के योग्य, एक सी जवान और शर
 राजकुमारों की मृत्यु होते देखकर राजा दुर्योधन बहुत
 ही भयभीत हो गये । अभिमन्यु को रथियों, हाथियों,
 घोड़ों और पैदल सेना का सहार करते देखकर,
 क्रोधान्ध होकर, खप दुर्योधन शीघ्रता के साथ उनके
 सम्मुख पहुँचे। उन दोनों वीरों का असम्पूर्ण अद्भुत युद्ध
 कुछ समय तक बहुत ही भयङ्कर होता रहा । इतने
 में ही वीर अभिमन्यु के बाणों से अत्यन्त पीड़ित और
 व्याधित होकर राजा दुर्योधन वहाँसे हट गया ॥ २७ ॥ ३० ॥

द्रोणपर्व ५ पैतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

अथ पट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
 संग्रामं तमलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १ ॥

अश्रद्धेयमिवाऽऽश्चर्यं सौभद्रस्याऽथ विक्रमम् ।

किन्तु नाऽत्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥

दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते ।

सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच—संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः ।

पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विपज्ये ॥ ४ ॥

हतान्भ्रातृन्पितृन्पुत्रान्सुहृत्सम्बन्धिवान्धवान् ।

उत्सृज्योत्सृज्य सञ्जग्मुस्स्वरयन्तो ह्यद्विपान् ॥ ५ ॥

तान्प्रभग्नास्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्वृहद्वलः ।

कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माऽथ सौवलः ॥ ६ ॥

अभ्यधावन्सुसंकुद्धाः सौभद्रमपराजितम् ।

ते तु पौत्रेण ते राजन्प्रायशो विमुखीकृताः ॥ ७ ॥

एकस्तु सुखसंवृद्धो वाल्यादर्पाञ्च निर्भयः ।

इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥

तमन्वगेवाऽस्य पिता पुत्रगृह्णी न्यवर्त्तत ।

अनुदुर्योधनं चाऽन्ये न्यवर्त्तन्त महारथाः ॥ ९ ॥

तं तेऽभिपिपिचुर्वाणैर्मैघा गिरिमिवाऽम्बुभिः ।

स तु तान्प्रममाथैको विष्वक्वातो यथाऽम्बुदान् ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! तुम बहुतों के साथ एक के संग्राम करने और बराबर विजयी होने की बात बारम्बार कह रहे हो । मुझे तो इस समय अभिमन्यु का ऐसा पराक्रम और बाहुबल विश्वास के अयोग्य और अत्यन्त अद्भुत प्रतीत हो रहा है । किन्तु वास्तव में यह है कि जिनका एकमात्र अवलम्बन धर्म ही है, उनका ऐसा अद्भुत पराक्रम होना कुछ असम्भव नहीं है । चाहे जो हो, अब यह बताओ कि उन एक सौ राजकुमारों की मृत्यु और दुर्योधन के विमुख होने पर मेरी सेना की क्या अवस्था हुई ? उसने किस प्रकार अभिमन्यु का सामना किया ॥ १ ।

३॥ सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आपके पक्ष के महारथियों के सुख सुख गये, दृष्टि चञ्चल हो उठी, रोंगटे खड़े हो गये और बराबर पसीना बह चला । उस समय उनके मन में विजयी होने का उसाह

किञ्चित्मात्र भी नहीं रहा । सब लोग भागने का निश्चय करके मरे हुए भाई, पिता, पुत्र, मित्र, सुहृद्, सम्बन्धी, भाई बन्धु आदि को छोड़ छोड़कर अपने हाथी घोड़े आदि को शीघ्रता से हौंककर उधर-उधर भागने लगे । उधर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, वृहद्वल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि अपनी सेना को छिन्न-भिन्न देखकर, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, अभिमन्यु पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े । किन्तु वीर अभिमन्यु ने इन सभी वीरों को एक-एक करके युद्ध से विमुख सा कर दिया ॥ ४॥ तब तेजस्वी, राजकुमार लक्ष्मण बालस्वभाव और अभिमान के कारण निर्भय चित्त से अभिमन्यु के सन्मुख पहुँचे । पुनः स्नेहके कारण उनकी सहायता और रक्षा के लिए राजा दुर्योधन भी उनके पीछे पहुँचे । अन्यान्य महारथी वीर योद्धा भी राजा दुर्योधन के साथ चले । मेघ-

पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
 पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥ ११ ॥
 अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम् ।
 आससाद् रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमित्र द्विपम् ॥ १२ ॥
 लक्ष्मणेन तु सङ्गम्य सौभद्रः परवीरहा ।
 शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्वाहोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ १३ ॥
 संकुञ्चो वै महाराज दण्डाहतइवोरगः ।
 पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभापत ॥ १४ ॥
 सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि ।
 पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥
 एवमुक्त्वा ततो भङ्गं सौभद्रः परवीरहा ।
 उद्वहर्हं महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसन्निभम् ॥ १६ ॥
 स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम् ।
 सुनसं सुभ्रु केशान्तं शिरोऽहार्पात्सकुण्डलम् ॥ १७ ॥
 लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुकुर्भुजनाः ।
 ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥
 हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
 ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्वलः ॥ १९ ॥
 कृतवर्मा च हार्दिक्यः पटुथाः पर्यवारयन् ।
 तांस्तु विध्वा शितैर्वाणैर्विमुखीकृत्य चाऽऽर्जुनिः ॥ २० ॥

मण्डल जैसे पर्वत पर जल बरसाता है वैसे ही य सत्र
 थीर अभिमन्यु के ऊपर बाण बरसाने लगे । रात्रि जैसे
 मेघों को तितर-वितर कर देती है वैसे ही अभिमन्यु
 भी उस विशाल सेना को और उन वीरों को उन्म
 थित करने लगे ॥ ८१ ॥ १० ॥ हमके उपरान्त जैसे मनगला
 हाथी अन्य हाथियों से जाकर भिड़ता है वैसे ही वीर
 अभिमन्यु भी — अपने पिता के साथ उपस्थित, धनुष
 ताने हुए, अत्यंत दुर्धर्ष, कुश्र के पुत्र के समान
 सुन्दर और प्रियदर्शन लक्ष्मण के मर्षण पहुँचे ।
 लक्ष्मण ने अभिमन्यु के बगल और दोनों मुजाओं
 में अनेक तीक्ष्ण बाण मारे । दण्ड की चोट मारकर
 पुनित शिरों के समान अत्यंत मुद्ध वीर अभि-

मन्य ने आपके पीछे लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण !
 मैं तुमको अभी यमपुरी भेजता हूँ । इसलिए तुम अच्छी
 तरह इस लोक को एक बार देख लो । मैं तुमको तुम्हारे
 भाई-भग्न्यों के मनुष्य ही पाठ के गाठ में पहुँचाता
 हूँ ॥ ११ ॥ १५ ॥ महाराज ! इतना बहकर वीर अभि-
 मन्यु ने उम्मी समय केचुप छोड़े हुए सत्र के समान
 चमकीली और भयानक मउ बाण निशान्तर उसमें
 लक्ष्मण का, सुन्दर नामिका ध्रुवकी केग और कुण्डलों
 में रोशिन, मिर काट डाला ॥ १६ ॥ १७ ॥ लक्ष्मण की
 मृत्यु देगसर मव थीरमण हाहाकार करने लगे । सत्र
 और मोथ में अगिर होकर सत्र दुर्योधन ऊँचे
 में पुकारकर मत्र राजाओं से करने लगे —

वेगेनाऽभ्यपतत्कुङ्कः सैन्धवस्य महद्वलम् ।
 आवद्भुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥ २१ ॥
 कलिङ्गाश्च निपादाश्च काथपुत्रश्च वीर्यवान् ।
 तत्प्रसक्तमिवाऽत्यर्थं युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ २२ ॥
 ततस्तत्कुञ्जरानीकं व्यधमद्दृष्टमार्जुनिः ।
 यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्छतशोऽम्बरे ॥ २३ ॥
 ततः काथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् ।
 अथेतरे सन्निवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४ ॥
 परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्बुः ।
 तान्निवार्याऽऽर्जुनिर्वाणैः काथपुत्रमथाऽर्दयत् ॥ २५ ॥
 शरौघेणाऽप्रमेयेण त्वरमाणा जिघांसया ।
 सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥ २६ ॥
 सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाऽश्वान्न्यपानयत् ।
 कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चाऽस्त्रबलेन च ।
 युक्ते तस्मिन्हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन् ॥ २७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि लक्ष्मणस्ये पटुचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

क्षत्रियो ! तुम लोग मिलकर शीघ्र ही इस दुष्ट बालक
 अभिमन्यु को मार डालो । तब कुपित होकर द्रोणाचार्य,
 कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, वृहद्वल और कृतर्मा,
 इन छ महारथियों ने अभिमन्यु को चारों ओर से
 घेर लिया । अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाणों से इन छहों
 वीरों को घायल करके हटा दिया । फिर उन्होंने बड़े
 वेग से सिन्धुराज जयद्रथ की सेना के भीतर प्रवेश
 किया ॥ १८।२१ ॥ कलिङ्गदेश के योद्धा, निपादगण
 और पराक्रमी काथनन्दन उन सबने हाथियों का दल
 अगि करते, अभिमन्यु की राह रोक दी । तब दोनों
 ओर से अत्यन्त भीषण संग्राम होने लगा । महाबाहु
 अभिमन्यु ने बहुत ही दुर्मेघ दुर्द्वर्ष हाथियों की सेना
 को छिन-भिन्न करना आरम्भ कर दिया । उस समय
 ऐसा जान पड़ने लगा मानों प्रचण्ड आँधी आकाश-

मण्डल में बड़े वेग से मेघों को तितर बितर कर रही
 है । काथनन्दन ने बाणवर्षा से अभिमन्यु को रोकने
 का बड़ा यत्न किया । इसी समय द्रोणाचार्य आदि
 छहों महारथी फिर जाकर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते
 हुए अभिमन्यु से युद्ध करने लगे ॥ २१।२५ ॥ अभिमन्यु
 ने अपने बाणों के असह्य प्रहारों से उक्त छहों वीरों
 को विमुख सा करके काथनन्दन को बहुत ही पीड़ित
 किया और फिर अनेक प्रकार के बाणों से उनका
 छत्र आर ध्वजा काट डाली, सारथी और घोड़ों को
 मार डाला तथा धनुष, बाण और बज्रकुल समेत उनकी
 भुजाएँ नाट डाली । इसके उपरान्त श्रेष्ठ कुल, शील,
 ज्ञान, वीर्य और कीर्ति से युक्त, अलबलसम्पन्न काथ-
 नन्दन को मार गिराया । यह देखकर प्रायः अन्य सब
 वीरगण भयविह्वल होकर समर से हट गये ॥ २५।२७ ॥

द्रोणपर्व का छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

भृतराष्ट्र उवाच—तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।

।

कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १ ॥
 आजानेयैः सुवलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
 प्लवमानमिवाऽऽकाशे के शूराः समवारयन् ॥ २ ॥
 सञ्जय उवाच—अभिमन्युः प्रविश्यैतांस्तावकान्निशितैः शरैः ।
 अकरोत्पार्थिवान्सर्वान्विमुखान्पण्डुनन्दनः ॥ ३ ॥
 तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च सवृहद्वलः ।
 कृतवर्मा च हार्दिक्यः पट्टथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥
 दृष्ट्वा तु सैन्यवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
 सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥
 सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षद्भाराम्बुभिः ।
 तालमात्राणि चापानि विकर्पन्तो महाबलाः ॥ ६ ॥
 तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
 व्यष्टम्भयद्वणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥
 द्रोणं पञ्चाशताऽविध्यद्विंशत्या च वृहद्वलम् ।
 अशीत्या कृतवर्माणं कृपं पट्टथा शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
 रुक्मपुङ्गवैर्भहावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
 अविध्यदृशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥
 स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
 फाल्युनिर्द्विपतां मध्ये विव्याध परमेपुणा ॥ १० ॥

सैतालीसव्यो अध्याय ॥ ४७ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा हे सञ्जय ! अपने कुल
 के अनुग्रह अद्भुत कार्य करनेवाले, व्यूह के भीतर
 प्रवेश हुए-हुए, नवयुवक, अपराजित, मग्न से कर्मा भी
 विमुख न होनेवाले अभिमन्यु को तीन वर्ष के, बलशाली,
 श्रेष्ठ जानि और देश के घोड़ों से युक्त रथ पर बैठ
 कर जैसे आकाशमण्डल में सूर्य भ्रमण करते हैं वैसे
 ही रणभूमि में भ्रमण करते देवकर किन-किन राशियों
 ने उनका मामला किया ॥ १२ ॥ मञ्जय ने कहा—
 हे महाराज ! अभिमन्यु ने व्यूह के भीतर जा करके
 आपके पक्ष के राजाओं और सेनिकों को जय तीक्ष्ण
 बाण मारकर रण से हटा दिया तब कुपित होकर
 द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, वृहद्वल और

कृतवर्मा इन छ. महारथियों ने अभिमन्यु को चारों
 ओर से घेर लिया । मिथुराज जयद्रथ को द्वार-रक्षा
 का भार सौंपा गया था, इसी लिए अवशिष्ट सैनिक
 लोग धर्मराज युधिष्ठिर की सेना को रोकने के लिए
 उभर चले ॥ १५ ॥ अन्यत्र वीर भी ताल के प्रमाण
 बढ़-बढ़े धनुष चढ़ाकर अभिमन्यु के ऊपर निरन्तर
 पड़े बाण छोड़ने लगे । अभिमन्यु ने उन रणविधा-
 विदारद और मर शिवाओं में निपुण वीरों को अपने
 रणसौशल से आश्चर्य में डाल दिया और बाणरसों
 करके बिहल कर दिया । उन्होंने द्रोणाचार्य को पचास,
 वृहद्वल को बीस, कृतवर्मा को अम्मी, कृपाचार्य को
 साठ और अश्वत्थामा को कानों तक ग्रीवकर मुरग-

पातयित्वा कृपस्याऽश्वान्स्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
 अथैनं दशभिर्वाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ११ ॥
 ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्द्धनम् ।
 पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद्वली ॥ १२ ॥
 तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या धुद्रकाणां समार्षयत् ।
 वरं वरमभित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥
 स तु वाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत् मारिप ।
 पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥
 पृथ्वा शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजैः ।
 उग्रैर्नाऽकम्पयद्विध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥
 स तु द्रौणिं त्रिससत्या हेमपुङ्खैरजिह्वगैः ।
 प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥
 तस्मिन्द्रोणो वाणशतं पुत्रशृङ्गी न्यपातयत् ।
 अश्वत्थामा तथाऽष्टौ च परीप्सन्पितरं रणे ॥ १७ ॥
 कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान्कृतवर्मा च विंशतिम् ।
 बृहद्वलस्तु पञ्चाशत्कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥
 तांस्तु प्रत्यवधीत्सर्वान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
 तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥
 तं कोसलानामधिपः कर्णिनाऽताडयच्छृदि ।
 स तस्याऽश्वान्ध्वजं चापं सूतं चाऽपातयत्क्षितौ ॥ २० ॥

पुस्तपुस्त वेगशाली दस वाण मारे॥६॥९॥किर शत्रुदल
 के मध्य में बड़ा स्फूर्ति के साथ पीले रङ्ग के, पने,
 कर्णी नाम के कई एक फिरेट वाण वीर कर्ण के कान
 में मारे । इसके उपरान्त कृपाचार्य के पार्ष्वरक्षक
 दोनों सारथियों को और घोड़ों को मारकर, उनके
 वक्षःस्थल में दारुण दस वाण मारकर, उन्हें बिहल
 कर दिया॥१०॥१॥किर आपने पुत्र और अन्य वीरों
 को मनुगु ही अभिमन्यु ने कौरवकुल की कीर्ति को
 बढ़ाने वाले पुन्दारक नाम के महावीर को मार डाला ।
 अभिमन्यु को इस प्रकार निर्भय भाव में कौरवराक्ष
 के प्रधान-प्रधान वीरों का संहार करते देखकर अश्व-
 त्थामा ने उनकी परास धुद्रक नाम के नाशक वाण

मारे । अभिमन्यु ने भी आपके पुत्रों के सन्तुग ही
 शीघ्रता के साथ तीक्ष्ण वाणों से अश्वत्थामा को पीड़ित
 किया । उन्होंने सुवीर्य साठ वाणों से अभिमन्यु की
 घायल किया, पर वे मैनाक पर्वत के समान तनिक
 भी विचलित न हुए । अश्वत्थामा ने फिर सुशर्णपुस्त-
 पुस्त तिहत्तर वाण अभिमन्यु को मारे॥१२॥१६॥
 पुत्रसत् आचार्य द्रोण ने एक सौ, पिता के हिमरी
 अश्वत्थामा ने माट, कर्ण ने चौदह भद्र वाण, शत-
 वर्मा ने चौदह भद्र वाण, बृहद्वल ने पचास भद्र
 वाण और कृपाचार्य ने दस भद्र वाण एक साथ अभि-
 मन्यु को मारे । अभिमन्यु ने भी उन सबको दम-
 दम वाण मारे॥१७॥१९॥कोसलेधर शृद्वल ने कर्णी

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
 इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हनुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
 स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्वलम् ।
 हृदि विव्याध वाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥
 वभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम् ।
 सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥ २३ ॥
 तथा बृहद्वलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद्रणे ।
 द्यष्टम्भयन्महेष्वासो योधांस्तत्र शराम्बुभिः ॥ २४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्वलवधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

बाण से अभिमन्यु को वक्षःस्थल में घायल किया । उन्होंने क्रुद्ध होकर रक्षित के साथ उनकी पत्नी, धनुष, सारथी और घोड़ों को नष्ट करने पृथ्वी पर गिरा दिया । रथ न रहने पर टाल लताग्र लेकर बृहद्वल ने अभिमन्यु का कुण्डलमण्डित सिर काटने का निवार किया । तब अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाण मारकर

उनका हृदय फाड़ डाला । इससे वे प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । उस समय बटु वक्त्र कहते हुए, खड्ग-धनुष धारण किये, दस सहस्र राजा युद्ध में पीट दिखकर भाग खड़े हुए । महावीर अभिमन्यु बृहद्वल को मारकर अपने पैन बाणों से शत्रुसेना को लामित करते हुए युद्ध के मैदान में भ्रमण करने लगे ॥ २० ॥ २४ ॥

द्रोणपर्व का सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच—स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः ।
 शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत्क्रोपयन्भृशम् ॥ १ ॥
 प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्विरथ तं पुनः ।
 शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २ ॥
 कर्णं चाऽप्यकरोत्कुड्यो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ।
 कर्णोऽपि विवभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः ॥ ३ ॥
 तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधरेण समुक्षितौ ।
 वभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

अष्टात्वीसवाँ अध्याय ॥ ४८ ॥

सञ्जय ने कहा हे राजेन्द्र ! महावीर अभिमन्यु ने कर्ण के कान में दुवारा तीक्ष्ण कर्णिक बाण मारकर पचास बाणों से उनको जर्जर कर दिया । महारथी कर्ण ने अभिमन्यु के प्रहार से विह्वल और क्रोधान्व होकर उनकी उन्ने ही बाण मारे । उन बाणों से घायल होकर अभिमन्यु अर्धव शोभा को

प्राप्त हुए । उन्होंने भी क्रोध करके कर्ण को अभिमन्यु उम बाण मारे । अभिमन्यु के दारुण बाणों के प्रहार में कर्ण के अङ्ग बट-पट गये और उनसे रक्त की धारा बह चली, जिसमें कर्ण की भी अर्ध शोभा हुई । एक दूसरे के बाणों से घायल होकर, रक्त से भरी हुए, दोनों धीरे धीरे हुए डाक के पैद के समान

अथ कर्णस्य सचिवान्पटु शूरांश्चित्रयोधिनः ।
 साश्वसूतध्वजरथान्सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥
 तथेतरान्महेष्वासान्दशभिर्दशभिः शरैः ।
 प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥
 मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा पद्भिरजिह्वागैः ।
 साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७ ॥
 मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
 धुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विस्तृजञ्शरान् ॥ ८ ॥
 तस्य दौःशासनिर्विध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
 सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चाऽर्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥
 ततो दौःशासनिं कार्ष्णिगर्विध्वा सप्तभिराशुगैः ।
 संरम्भाद्रकनयनो वाक्यमुच्चैरथाऽब्रवीत् ॥ १० ॥
 पिता तवाऽऽहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा ।
 दिष्ट्या त्वमपि जानीये योद्धुं न त्वथ मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥
 एतावदुक्त्वा वचनं कर्मरपरिमार्जितम् ।
 नाराचं विससर्जाऽस्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥
 तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्वा शल्यं त्रिभिरताडयत् ।
 तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥

जान पड़ने लगे॥१॥१॥महाबाहु अभिमन्यु ने कर्ण
 के छः महाबली अमात्यों को, सारथी को और घोड़ों
 को मार डाला तथा धनुष, ध्वजा और रथ काट डाले।
 उन्होंने अन्य महावीरों को भी दस-दस बाणों से
 घायल किया। अभिमन्यु ने वास्तव में यह बहुत ही
 अद्भुत कार्य किया। फिर उन्होंने छः बाणों से मगध-
 राज के पुत्र को मार डाला। इसके पश्चात् तरुण
 अवस्थावाले अश्वकेतु को, सारथी और घोड़ा सहित,
 यमपुर भेज दिया। हाथी पर सवार मार्तिकावतक
 भोज का सिर एक चुपचाप बाण से काटकर वीर अभि-
 मन्यु घोर सिंहनाद करने लगे॥१४॥उस समय वीर
 दुःशासन का पुत्र अभिमन्यु के समुल आया। उसने
 तीक्ष्ण चार बाण अभिमन्यु के घोड़ों को, एक बाण
 सारथी को और दस बाण अभिमन्यु को मारे। महा-
 पराक्रमी अभिमन्यु ने दुःशासन के पुत्र के बाणप्रहार

से कुपित होकर उसको दस बाण मारे; फिर क्रोध
 से लाठ नेत्र करके वे ऊँचे स्वर से कहने लगे --
 हे दुःशासन के प्रिय पुत्र! तुम्हारे पिता बड़े डरपोर
 हैं जो संग्राम से भाग खड़े हुए। बड़ी बात तो यह है
 कि जो तुम क्षत्रिय-धर्म को जानते हो और युद्ध करने
 के लिए प्रस्तुत हो। किन्तु स्मरण रखो कि मेरे हाथ
 से कदापि जिते नहीं बच सकते। महावीर अभिमन्यु
 ने दुःशासन के पुत्र से यों कहकर बहुत ही तीक्ष्ण,
 चमकीला, खच्छ किया हुआ एक नाराच बाण धनुष
 पर चढ़ाकर शत्रु पर छोड़ा। किन्तु महापराक्रमी
 अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ तीन तीक्ष्ण बाणों से
 उस नाराच को राह में काट डाला॥१५॥१६॥अभिमन्यु
 ने अश्वत्थामा के रथ की ध्वजा काटकर वीर शल्य
 को तीन बाण मारे। शल्य ने धैर्य के साथ उस प्रहार
 को सहकर गृद्धपत्रयुक्त नव बाण अभिमन्यु के हृदय

हृद्यसम्भ्रान्तवद्राजस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
 तस्याऽऽर्जुनिर्ध्वजं छित्वा हत्वोभौ पाणिंसारथी॥ १४ ॥
 तं विव्याधाऽऽस्यसैः पद्भिः सोऽपाक्रामद्रथान्तरम्
 शत्रुञ्जयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥
 सूर्यभासं च पञ्चैतान् हत्वा विव्याध सौवलम् ।
 तं सौवलस्त्रिभिर्विध्वा दुर्योधनमथाऽब्रवीत् ॥ १६ ॥
 सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः ।
 अथाऽब्रवीत्पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥ १७ ॥
 पुरा सर्वान्प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः ।
 ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वास्तान्प्रत्यभापत ॥ १८ ॥
 अस्ति वाऽस्याऽन्तरं किञ्चित्कुमारस्याऽथ पश्यत
 अण्वप्यस्याऽन्तरं हृद्य चरतः सर्वतोदिशम् ॥ १९ ॥
 शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत
 धनुर्मण्डलमेवाऽस्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥
 सन्दधानस्य विशिग्वाऽशीघ्रं चैव विमुञ्चतः ।
 आरुजन्नपि मे प्राणान्मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१ ॥
 प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा ।
 अति मां नन्दयत्येव सौभद्रो विचरन्रणे ॥ २२ ॥

में मारे। शल्य का यह कर्म बहुत ही अद्भुत जान पड़ा। तब युद्धनिपुण अभिमन्यु ने रक्षति के साथ शल्य का धनुष काटकर उनके पार्श्वरक्षक सारथियों को मार डाला और फिर लोहमय छ बाण मारकर शल्य को पीड़ित किया। अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित शल्य वह रथ छोड़कर दूसरे रथ पर सवार हो गये ॥ १३।१५॥ समरनिपुण अभिमन्यु ने शीघ्र ही शत्रु-ञ्जय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास, इन पाँचों वीरों का वध करके शत्रुनि को कई बाण मार कर बिह्वल कर दिया। शत्रुनि ने अभिमन्यु को तीन तीक्ष्ण बाण मारकर राजा दुर्योधन ने कहा—हे राजेन्द्र ! अब हमें चाहिए कि सब लोग मिलकर अभिमन्यु का वध करें; क्योंकि यह हमसे एक एक को मारे डालता है। हे महाराज ! इसी समय कर्ण ने द्रोणाचार्य से कहा—हे महान् ! यह वीर बालक हम

लोगों में से हर एक को युद्ध से हटा करके संपूर्ण सेना का सहारा कर रहा है। इसलिए आप तुरन्त ही इसके प्राण छेने का कोई उपाय बताओ॥ १५।१८॥ महावीर द्रोणाचार्य ने यह सुनकर कीरवपक्ष के सन वीरों को सुनाकर कहा—हे वीरो ! देगो, इस कुमार का कैसा युद्धकौशल है; कहीं प्रहार करने का तनिक भी अग्रश नहीं देग पड़ता। इस वीर बालक की रक्षति तो देगो। यह बालक चारों ओर भिचर रहा है, पर कहीं किञ्चित्मात्र भी प्रहार करने का अग्रर नहीं देता। यह बालक सब बातों में अपने पराक्रमी पिता अर्जुन के ही तुल्य है। यह ऐसी रक्षति का साथ तरकम से बाण निकालता, धनुष पर चढ़ाना और चलाता है कि रथ के मार्गों में केन्द्र मण्डलाकार धनुष ही देख पड़ता है। शत्रुदमन महावीर अभिमन्यु बाणप्रहार में मुझे जर्जर, पीड़ित और मोहित

अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः ।
 अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥
 न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः ।
 अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहाऽऽर्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥
 स्यातांव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।
 तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥
 क्षिपवन्ति हृदयं मेऽय घोराः पावकतेजसः ।
 तमाचार्योऽववीत्कर्णं शनैः प्रहसन्निव ॥ २६ ॥
 अभेद्यमस्य कवचं युवा चाऽऽशुपराक्रमः ।
 उपदिष्टा मया चाऽस्य पितुः कवचधारणा ॥ २७ ॥
 तामेव निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरञ्जयः ।
 शक्यं त्वस्य धनुश्छेतुं ज्यां च बाणैः समाहितैः ॥ २८ ॥
 अभीपृश्च ह्यांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
 एतत्कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ॥ २९ ॥
 अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात्प्रहरणं कुरु ।
 सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुगासुरैः ॥ ३० ॥
 विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ।
 तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्त्तनस्त्वरन् ॥ ३१ ॥
 अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ।
 अश्वानस्याऽवधीन्द्रो जोगौतमः पार्ष्णिसारथी ॥ ३२ ॥

सा कर रहा है तथापि इसका ऐसा अद्भुत पराक्रम
 देखकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है ॥ १८२२ ॥
 कौरवपक्ष के बड़े-बड़े वीर योद्धा कुपित होकर, लाख
 लाख यत्न करने पर भी, प्रहार करने का अवसर नहीं
 देख पाते; यह देखकर मुझे बड़ा आह्लाद हो रहा
 है । ऐसे अपूर्व युद्धकौशल के कारण यह वीर बालक
 वीरों में सब से अधिक मान प्राप्त करने के योग्य है ।
 महावीर अभिमन्यु ऐसी स्रष्टि के साथ अपने वपों
 की वर्षा से सब दिशाओं को व्याप्त कर रहा है कि
 इसमें और अर्जुन में कुछ भी भेद नहीं देख पड़ता ।
 महावीर कर्ण ने अभिमन्यु की भार से अत्यन्त पीड़ित
 होकर फिर द्रोणाचार्य से कहा—हे आचार्य ! युद्ध

छोड़कर भाग जाना वीर क्षत्रियों का धर्म नहीं है,
 इसी कारण अभिमन्यु के बाणों से व्यथित होकर
 भी मैं रणभूमि में उपस्थित हूँ । इस तेजस्वी कुमार
 के अग्निसदृश प्रज्वलित परम दारुण बाण मेरे हृदय
 को पीड़ित कर रहे हैं ॥ २३, २४ ॥ कर्ण के ये वचन
 सुनकर महारथी द्रोणाचार्य हँसकर कहने लगे—हे
 कर्ण ! अभिमन्यु का कवच सुदृढ़ और अभेद्य है ।
 फिर यह अभी जवान और पुर्जीला है, शीघ्र ही पराक्रम
 नहीं सकता । मैंने इसके पिता पराक्रमी अर्जुन की
 कवच पहनने की सवगुप्त बातें और विधियें बतला
 दी हैं । उन सब गुप्त उपायों को यह बालक भी भली-
 भाँति जानता है । एक उपाय यह है कि यत्न के

शेषास्तु छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ।
 त्वरमाणास्त्वरकाले विरथं पणमहारथाः ॥ ३३ ॥
 शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ।
 स छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३४ ॥
 खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ।
 मार्गैः स कौशिकाग्रैश्च लाघवेन बलेन च ॥ ३५ ॥
 आर्जुनिर्व्यचरद्दयोक्षि भृशं वै पक्षिराडिव ।
 मर्येव निपतत्येष सासिरित्पूर्व्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥
 विव्यधुस्तं महेश्वातं समरे छिद्रदर्शिनः ।
 तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरम् ॥ ३७ ॥
 क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ।
 राधेयो निशितैर्वाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥
 व्यसिचर्मपुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात्पुनः क्षितिम् ।
 आस्यितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं कुड्डोऽभ्यधावत ॥ ३९ ॥

स चक्रेणूज्वलशोभिताङ्गो बभावतीवोज्वलचक्रपाणिः ।
 रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४० ॥
 स्तुतरुधिरकृतैकरागबन्धो भ्रुकुटिपुटाकुलितोऽतिसिंहनादः ।
 प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्युर्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ॥ ४१ ॥
 इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टमोऽर्शाऽध्यायः ॥ ४८ ॥

साथ बाण मारकर इमका धनुष और धनुष की डोरी काटी जा सकती है; और अर्माप, रथ के घोड़े तथा पार्श्वरक्षक सारथी मारे जा सकते हैं । हे कर्ण ! यदि तुमने हो सके तो यह कार्य कर डालो; इस प्रकार अभिमन्यु को पहले दक्ष हीन करके फिर प्रहार करो । तुम भलीभाँति समझ लो कि जबतक इसके हाथ में धनुष है तबतक सब देवता और देव मिलकर भी इसे परास्त नहीं कर सकते । अतएव यदि तुम अभिमन्यु को परास्त करना चाहते हो तो उसे रथ हीन करके उसका धनुष काट डालो ॥ २६ ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! महारथी द्रोणाचार्य की सम्मति मानकर कर्ण ने स्फूर्ति के साथ बाणार्पण करने हुए अभिमन्यु के धनुष को शीघ्रता के साथ काट डाला । भोज ने अभिमन्यु के रथ के घोड़ों को मार डाला । कृपाचार्य ने उनके पार्श्वरक्षक

साथियों को मार गिराया । इस प्रकार अभिमन्यु का धनुष काट जाने पर शेष वीरगण उन पर बाण बरसाने लगे । हे राजेन्द्र ! उस समय वे निर्देय छहों महारथी स्फूर्ति से एक साथ अकेले बालक अभिमन्यु पर प्रहार करने लगे ॥ ३१ ॥ ३४ ॥ धनुष और रथ न रहने पर भी वीर अभिमन्यु ने वीर क्षत्रिय का धर्म नहीं छोड़ा । वीर महाराथियों ने तो धर्म को छोड़ दिया; परन्तु बालक अभिमन्यु ने नहीं छोड़ा । असहाय अभिमन्यु डाल-तलवार लेकर, आकाशमार्ग में उड़कर, गरुड़ की भाँति स्फूर्ति के साथ बलपूर्वक कौशिक (सर्वतोभद्र) आदि वैतों से घूमते हुए शत्रुसेना का संहार करने लगे । छिद्रदर्शी महाधनुर्धर लोग वीर अभिमन्यु को देखकर और यह समझकर कि यह खड्गधारी बालक मुझ पर ही प्रहार करने आ रहा है, उनकी तीक्ष्ण

बाण मारने लगे॥३४॥३७॥इसी समय शत्रुदमन द्रोणाचार्य ने स्फूर्ति के साथ नाराच बाण से अभिमन्यु के खड्ग की मणिमय मूठ काट डाली। इसी समय कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों से ढाल भी काट डाली। इस प्रकार धनुष-बाण या ढाल-तलवार कुछ भी न रहने पर वीर अभिमन्यु ने पृथ्वी पर आकर हाथ में चक्र ले लिया। अब ये क्रुद्ध सिंह की तरह द्रोणाचार्य की ओर शपटे। तब चक्र की उज्ज्वल रेणु से शोभित अङ्गुली चक्र-

पाणि अभिमन्यु की बड़ी शोभा हुई। वे उस समय चक्र हाथ में लिये हुए अपने मामा वासुदेव के समान जान पड़ने लगे। क्षण भर तक वीर अभिमन्यु का रूप बहुत ही भयावना हो उठा। महातेजस्वी सिंह-नाद करते हुए वीरों के मध्य में खड़े हुए अभिमन्यु के शरीर से रक्त बह रहा था, जिससे उनके वस्त्र लाल हो रहे थे। मौंहें टेढ़ी करके शत्रुसंता को ओर देखते हुए अभिमन्यु की बड़ी शोभा हुई॥३७॥४१॥

द्रोणपर्व का अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

अथ एकोनपञ्चाशत्तमेऽध्यायः ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच—विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः ।

रराजाऽतिरथः संख्ये जनार्दन इवाऽपरः ॥ १ ॥

मारुतोद्भूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम् ।

वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥ २ ॥

तच्चक्रं भृशमुद्दिग्धाः सञ्चिच्छिदुरनेकधा ।

महारथस्ततः कार्णिः स जग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥

विभ्रनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चाऽरिभिः कृतः ।

अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥ ४ ॥

स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव ।

अपाक्रामद्रथोपस्यादिक्रमांस्त्रीन्नरर्षभः ॥ ५ ॥

तस्याऽश्वान्गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।

शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत्समदृश्यत ॥ ६ ॥

ततः सुवलदायादं कालिकेयमपोथयत् ।

जघान चाऽस्याऽनुचरान्गान्धारान्सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥

उनचासर्गो अध्याय ॥ ४९ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! महावीर अभिमन्यु उस समय चक्र हाथ में लेकर संग्राम में दूसरे विष्णु के समान शोभा को प्राप्त हुए। उनके बिलेरे हुए बाल वायु में उड़ रहे थे। उनके हाथ में ऊपर उठा हुआ चक्र बहुत ही शोभायमान हो रहा था। उस समय कोई भी अभिमन्यु को नेत्र उठाकर नहीं देख सकता था। व्याकुल हुए-हुए राजाओं ने अभिमन्यु के उस चक्र को गण्ड-गण्ड कर डाला॥१॥३॥तब

अभिमन्यु गदा लेकर अश्वत्थामा की ओर दौड़े। उन्होंने, प्रखलित अग्नि के समान, उस गदा को देखकर रथ पर से कूदकर अपनी जान बचाई। तब महारथीर अभिमन्यु ने गदा के प्रहार से अश्वत्थामा के घोड़ों, पार्ष्णक्षक सारथियों और रथ को चूर-चूर कर डाला। बाणों से सब शरीर टिटा हुआ होने के कारण स अभिमन्यु अत्यन्त ही शोभित होने लगे॥४॥६॥इसके उपरान्त अभिमन्यु ने सुवल के पुत्र कालिकेय को मार



पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश ।
 केकयानां रथान्सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥ ८ ॥
 दौःशासनी रथं साश्वं गदया समपोथयत् ।
 ततो दौःशासनिः कुह्रो गदामुद्यम्य मारिष ॥ ९ ॥
 अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
 तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ १० ॥
 भातृव्यौ सम्प्रजहाते पुरेव व्यस्कान्धकौ ।
 तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ श्रितौ ॥ ११ ॥
 इन्द्रध्वजाविशोत्तृष्टौ रणमध्ये परन्तपौ ।
 दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ १२ ॥
 उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।
 गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ॥ १३ ॥
 विचेता न्यपतद्भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
 एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४ ॥
 क्षोभयित्वा चमूं सर्वा नलिनीमिव कुञ्जरः ।
 अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥ १५ ॥
 तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
 दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्मये ॥ १६ ॥

वारके उनके अनुचर गान्धार देश के सप्तहत्तर घोड़ाओं को उसी गदा से मार गिराया । फिर वसतीया दस रथी, केकय देश के सात रथी और दस हाथी मार-वार अभिमन्यु ने गदा की चोट से दौःशासन के पुत्र के रथ और घोड़ों को नष्ट कर दिया ॥ ७९ ॥ महावीर दुःशामन का पुत्र भीषण गदा तानकर “टहर-टहर” फटता हुआ अभिमन्यु की ओर दीहा । पहले समय में महादेव और अश्वत्थामा ने जैसे भवानक गदायुद्ध किया था वैसे ही अभिमन्यु और दुःशामन का पुत्र दोनों, एक दूसरे के प्राण लेने के लिए, गदाप्रहार करते लगे । ये दोनों और परस्पर गदा का बार करके इन्द्रध्वज की मोति अनेक हो पृथ्वा पर गिर पड़े ॥ १० ॥ १२ ॥ इसी समय में कौरवों की कीर्ति को बढ़ाने के दौःशामन के पुत्र ने उठते हुए अभिमन्यु के मन्त्रक में वेग से गदा मारी । इतनी देर तक अनेक ही युद्ध

करने-करते अभिमन्यु पर गये थे, उन पर दुःशामन के पुत्र ने जोर से मस्तक में गदा मारी । उस प्रहार से अभिमन्यु के प्राण निकल गये और उनका चेतनाहीन शरीर पृथ्वा पर गिर पड़ा । हे महाराज ! कमठ-वन की जैसे गजराज नष्ट-भष्ट कर डाले वैसे ही सम्पूर्ण शत्रु-सेना को मथकर अन्त की ओरके वीर अभिमन्यु पड़े वीरों के द्वारा अर्धमूर्च्छित मारे गये । व्याधों के हाथ में मारे गये जङ्गली गजराज की मोति पृथु की प्राप्ति हुए अभिमन्यु बहुत ही शोभायमान हुए ॥ १३ ॥ १५ ॥ उस समय आपके पक्ष के तम मन्त्रारथियों ने समर-भूमि में मरे पड़े हुए महावीर अभिमन्यु को घेर लिया । प्रीतिपूरे में जङ्गल की जलजल सुने हुए दावानट के समान, वीरवन्धन की नशकत अन्न हुए सूर्य के समान, राहु-मन्त्र धन्त्रमा के समान, मृते हुए मनुज के समान और वृक्षों की डालें तोड़कर

विमृद्य नगशृङ्गाणि सन्निवृत्तमिवाऽनिलम् ।
 अस्तङ्गतमिवाऽऽदित्यं तप्त्वा भारत बाहिनीम् ॥ १७ ॥
 उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
 पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८ ॥
 तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
 मुदा परमया युक्ताश्चक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥ १९ ॥
 आसीत्परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते ।
 इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥
 अन्तरिक्षे च भूतानि प्राकोशन्त विशाम्पते ।
 दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाऽम्बरात् ॥ २१ ॥
 द्रोणकर्णमुखैः पद्भिरुत्तराष्ट्रमहारथैः ।
 एकोऽयं निहतः शेते नैव धर्मो मतो हि नः ॥ २२ ॥
 तस्मिन्विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
 यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३ ॥
 रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
 उत्तमाङ्गैश्च शूराणां आजमानैः सकुण्डलैः ॥ २४ ॥
 विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
 चामरैश्च कुधाभिश्च प्रविष्टैश्चाऽम्बरोत्तमैः ॥ २५ ॥
 तथाऽश्वनरनागानामलङ्कारैश्च सुप्रभैः ।
 खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६ ॥

रुक्मी हुई औंधी के समान पड़े हुए पूर्णचन्द्र के सदृश
 सुवर्णवाले, सुन्दर अलङ्कारों से शोभित अभिमन्यु की
 इस प्रकार जीवित देखकर आपके पक्ष के मंत्र महारथी
 बहुत प्रसन्न होकर वारम्बार सिंहनाद करने लगे १६।
 १७। हे महाराज ! कौरवों को बड़ा ही हर्ष उत्पन्न
 हुआ; किन्तु अन्य वीरों के नेत्रों से आँसुओं की धारा
 बह चली । उस समय आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा
 के समान, पृथ्वी पर पड़े हुए अभिमन्यु की देव्यकर
 आकाशचारी सिद्ध आदि प्राणी चिह्ना-चिह्नाकर कहने
 लगे—महावीर द्रोणाचार्य और कर्ण आदि कौरवपक्ष
 के छः महारथियों ने मित्र्यकर इस ओरके वीरबालक
 को मारा है । हमारी सम्पत्ति में यह घोर अयम हुआ

है ॥ २०। २१। हे महाराज ! मेरे हुए अभिमन्यु रणशय्या
 पर पड़े हुए थे और उनके चारों ओर सुवर्णपुष्पशुभा
 वाण, वीरों के कुण्डल-शोभित कंठे हुए मस्तक, विचित्र
 पर्णदियाँ, पताका, चामर, विचित्र कम्बलानन, उत्तम
 आयुध, रथ, घोड़े, हाथी, हाथियों और घोड़ों के अल-
 ङ्कार, कुचुल छोड़े रियेले मणों के समान म्यान से
 निकली हुई तन्त्राएँ, धनुष, कटी हुई शक्तियाँ, क्रुधि,
 कम्पन, क्राम और पडिश आदि शस्त्र-अस्त्र विगरे हुए
 पड़े थे । इनसे यह पृथ्वीमण्डल पूर्णचन्द्र और प्रह-
 नक्षत्र-तारागण से युक्त आकाश-मण्डल के समान शो-
 भायमान हो रहा था ॥ २३। २४। अभिमन्यु के वाणों से
 सगर समेत मरकर गिरे हुए, रक्त में सने हुए, केवल

चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यष्टिप्रासकम्पनैः ।
 विविधैश्चाऽऽयुधैश्चाऽन्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २७ ॥
 वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
 सारोहैर्विपमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८ ॥
 सांकुशैः समहामात्रैः सर्वमायुधकेतुभिः ।
 पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥
 पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
 हृदैरिव प्रक्षुभितैर्हृतनागै रथोत्तमैः ॥ ३० ॥
 पदातिसङ्घैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
 भीरूणां त्रासजननी घोररूपाऽभवन्मही ॥ ३१ ॥
 तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
 तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाऽभवद्वयथा ॥ ३२ ॥
 अभिमन्यौ हते राजजिह्मशुकेऽप्राप्तयौवने ।
 सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥
 दीर्यमाणं वलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
 अजातशत्रुस्तान्वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥
 स्वर्गमेव गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
 संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥ ३५ ॥
 इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
 धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन्दुःखमपानुदत् ॥ ३६ ॥

अन्तिम आस ले रहे घोड़ा नी लाशों से यह रणभूमि
 अत्यन्त अगम्य हो रही थी । महाजत, अकुश, घण्टा,
 चर्म, आयुध और झण्डों से शोभित तथा अभिमन्यु
 के बाणों से निहत पर्वताकार, हाथी परे पड़े थे ।
 सारथी और रथी की लाशों से पूर्ण, विलुप्तकुण्ड के
 समान, बिना घोड़ों के रथ जहाँ तहाँ टूटे पड़े थे ।
 हाथों में शस्त्र पकड़े प्राणहीन पैदलों के शरीर स्र
 ओर देरों देख पड़ते थे । इन सबसे वह रणभूमि उस
 समय बड़ी भयावनी हो रही थी ॥ २८।३१ ॥ हे राजेन्द्र !
 चन्द्र-सूर्य के सदृश तेजस्वी बालक अभिमन्यु जन
 युत्यु की प्राप्ति होकर युद्धक्षेत्र में गिर पड़े तब कीरव-
 पक्ष के वीर अत्यन्त आश्चर्य और पाण्डवपक्ष

लोग अत्यन्त शोकविह्वल हो उठे । पाण्डवों की सेना
 युधिष्ठिर के सम्मुख ही प्राण छेकर ऊपर-ऊपर भागने
 लगी । अभिमन्यु की मृत्यु होने के कारण योद्धाओं
 को ऊपर-ऊपर भागते देखकर महाराज युधिष्ठिर ने
 कहा—हे वीर क्षत्रियो ! समरनिपुण महाराष्ट्र अभि-
 मन्यु युद्ध से पीछे नहीं हटे, बल्कि शत्रुओं के हाथ
 से मरकर स्वर्गलोक को चले गये हैं । फिर तुम क्यों
 भागे चले जा रहे हो ? भागो नहीं, भयभीत होओ
 मत, हम लोग शीघ्र ही शत्रुओं को परास्त करेंगे ॥ ३२।
 ३५ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुन के समान प्रभावशाली
 प्रतापी महावीर अभिमन्यु समाप्त में विप्रेते सूर्य के समान
 सूर्य के अनेक राजकुमारों को मारकर स्वर्ग को

युद्धे ह्याशीविपाकारान् राजपुत्रान् रणे रिपून् ।
 पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७ ॥
 हत्वा दशसहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
 कृष्णार्जुनसमः कार्पिणः शकलोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥
 रथाश्वनरमातङ्गान्विनिहत्य सहस्रशः ।
 अवितृतः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
 गतः पुण्यकृताँल्लोकाञ्छाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

गये है । दस सहस्र सेना सहित महारथी कौशलेश्वर
 बृहद्वल को मारकर वीर अभिमन्यु इन्द्रलोक को गये
 हैं । सहस्रों रथों, रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदल
 सेना का संहार करके वे पुण्यकर्मों कुमार अपने पुण्य
 से जीते हुए उन सनातन लोकों में पहुँचे हैं, जिन्हें
 पुण्यात्मा लोग प्राप्त करते हैं । इसीलिए वीर अभिमन्यु

कदापि शोचनीय नहीं है । महातेजस्वी अभिमन्यु ऐसा
 विकट युद्ध और मार-काट करके भी तृप्त नहीं हुए
 थे; इस कारण उनकी मृत्यु शोचनीय नहीं है ।
 हे नरनाथ ! धर्मराज युधिष्ठिर ने ऐसे वचन कहकर
 अपने पक्ष के दुःखित वीरों का दुःख दूर किया
 और उन्हें धैर्य दिया ।] ॥ ३६, ३९ ॥

द्रोणपर्व का उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सञ्जय उवाच—वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः ।

निवेशायाऽभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ १ ॥

निरीक्षमाणास्तु वयं परे चाऽऽयोधनं शनैः ।

अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥ २ ॥

ततो निशाया दिवसस्य चाऽशिवः शिवारुतैः सन्धिरवर्तताऽद्भुतः ।

कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥ ३ ॥

वरासि शिवतृष्टिवरूथचर्मणा विभूषणानां च समाक्षिपन्प्रभाः ।

दिवं च भूमिं च समानयन्निव प्रियां तनुं भानुरूपेति पावकम् ॥ ४ ॥

महाभ्रकूटाचलशृङ्गसन्निभैर्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः ।

सर्वैजयन्त्यंकुशवर्मयन्तुर्भिर्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः ॥ ५ ॥

पंचामशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र ! इस प्रकार शत्रुपक्ष
 के श्रेष्ठ वीर अभिमन्यु को मारकर, शत्रुओं के बाणों
 से पीड़ित और रक्त में नहाये हुए, ग्लानिग्रस्त हम
 लोग सायद्वाट को शिवाय करने के लिए अपने ढेरों
 की लांटे । छाल काल के गमान्मय का विषय अन्तः-

चत के शिवर पर पहुँच गया । दिन और रात्रि की
 सन्धि का समय आ पहुँचा । चारों ओर गीदड़ों का
 अमङ्गलमूचक शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥ १ ॥ ३ ॥ कमलः
 सूर्यदेव ने चर्मरत्ने सजा, शक्ति, क्रुष्टि, कल्प, दाट
 और अट्टहारों की आभा को हरकर — अन्तरिक्ष और

हते श्वरेश्चूर्णितपत्युपस्करैर्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः	।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः पुरैस्त्रिऽमित्रहतैर्नराधिप	॥ ६ ॥
रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः	।
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनैर्धरा वभौ घोरविरूपदर्शना	॥ ७ ॥
प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः	।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा क्षितावनाथा इव शेरते हताः	॥ ८ ॥
अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा वकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः	।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः पिशाचसङ्घाश्च सुदारुणा रणे	॥ ९ ॥
त्वचो विनिर्भिय पिबन्वसामसृक् तथैव मज्जाः पिशितानि चाऽश्नुवन् ।	
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः	॥ १० ॥
शरीरसङ्घातवहा ह्यसृग्जला रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्घा	।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी	॥ ११ ॥
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा प्रवर्तिता योधवरैस्तदा नदी	।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी	॥ १२ ॥
पिबन्ति चाऽश्नन्ति च यत्र दुर्दशाः पिशाचसङ्घास्तु नदन्ति भैरवाः ।	
सुनन्दिताः प्राणमृतां भयङ्कराः समानभक्षाः श्वसृगालपक्षिणः	॥ १३ ॥
तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम्	।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम्	॥ १४ ॥

पृथी को एकाकार सा करते हुए—अपने प्रिय शरीर
आँसु में प्रवेश किया। उस समय हम लोग और हमारे
शत्रुपक्ष के लोग दोनों ही, सन्नाम में विमोहित हो
होकार, रणभूमि को देखते हुए धीरे-धीरे अपने-अपने
शिबिर को चले। हम लोगों ने देखा कि समरभूमि
ऐसे हाथियों की लाशों से परिपूर्ण और दुर्गम हो
रही है, जो आकाश को छूने लगे परतगिखर के
समान हैं और पताका, अङ्कुर, घण्टा, काच और
सरासों सहित मेरे पड़े हैं। रथी, सारथी, विभूषण,
घोड़े, पार्श्वसारथी, पलाश, केतु आदि से शून्य और
टूटे-फूटे बड़े-बड़े रथ इधर-उधर पड़े हुए थे। शत्रु-
पक्ष के वीरों के बाणों ने उन रथों को तोड़-फोड़
डाला था और वे उजड़े लुटे हुए नगर के समान प्रतीत
होते थे॥४१॥ शरीरों के बाणों से सवासों सहित ऐसे

घोड़े मेरे पड़े थे, जो विविध बहुमूल्य आभूषणों से
अलङ्कृत थे, जिनकी जीभें, दाँत, नेत्र और आँतें
बाहर निकली हुई थीं और जिन्होंने समरभूमि को
बहुत ही भयानक बना रक्खा था। बहुमूल्य ढाल,
आसन, वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र आदि से विभूषित और अमूल्य
शय्या पर लेटने के योग्य वीरगण हाथी, घोड़े, रथ
आदि वाहनों और अनुचरों सहित अनाथ की तरह
पृथी पर पड़े हुए थे॥४२॥ मीमण आकार के गीदड़,
कुत्ते, कावे, बगले, भिड़, गरुड़, भेड़िये, चीते, रक्त
पनिगले पक्षी, राक्षस, पिशाच आदि आनन्द के
साथ युद्ध में निहत प्राणियों की गाल फाड़कर मांस,
मज्जा और चर्चा खा रहे थे। अनेकों मांसभोजी राक्षस
आदि एक दूसरे से लाशें छीनते, ईसते, गाने और
ताड़ियाँ बजाने थे॥४३॥ वह राजेन्द्र। वीरों के शस्त्र-

अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं निपातितं शक्रसमं महाबलम् ।

रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युनक्षपर्वणि तृतीयदिवसावहारे समरभूमिर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

प्रहार से उत्पन्न, दुस्तर बैतरणी नदी के समान भयानक, रक्त की नदी रणभूमि में बह रही थी । रथ उसमें नाव-डोंगी आदि के समान जान पड़ते थे, हाथी पर्वत से प्रतीत होते थे और मनुष्यों के कटे हुए सिर कमल से देख पड़ते थे । मांस की कीचड़ हो रही थी । विविध अस्त्र शस्त्र मालाओं के समान उसमें बह रहे थे । अधमेरे और मेरे लोगों के शरीरों से परिपूर्ण वह भयानक नदी रणक्षेत्र के मध्य में बह रही थी । भीषण आकारवाले गंदह, कुत्ते और अन्य अनेक

मांसाहारी पशु-पक्षी बड़े आनन्द के साथ उस नदी में मांस खाते और रक्त पीते हुए भयङ्कर स्वर से चिल्ला रहे थे । सैनिकों ने सन्ध्या के समय इन्द्रसदृश, भूषणों से विहीन, मृत महावीर अभिमन्यु को देखा कि हव्य-विहीन यज्ञ के अग्नि के समान लुप्त हुए पड़े हैं । उस यमपुरी को बढ़ानेवाली, नाचते हुए कवचों से परिपूर्ण, भयानकी रणभूमि को क्रमशः छोड़ करके सब योद्धा अपने-अपने शिबिर में गये ॥ १११५ ॥

— ० —

द्रोणपर्व का पञ्चासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच—हृते तस्मिन्महावीर्यं सौभद्रे रथयूथपे ।

विमुक्तारथसन्नाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥

उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् ।

तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।

अभिमन्यौ हृते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३ ॥

द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया ।

भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽस्तौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥

यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।

प्रभग्ना विनिवर्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥

अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।

क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥

इक्यावनवौ अध्याय ॥ ५१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इस प्रकार महारथी अभिमन्यु की मृत्यु हो जाने पर पाण्डवपक्ष के सब वीर योद्धा रथ, कवच और धनुष आदि रखकर महाराज युधिष्ठिर के चारों ओर बैठकर उभी भयानक युद्ध का ध्यान करते हुए अभिमन्यु की स्मरण करने लगे । धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने वीर भतीजे की मृत्यु से

अत्यन्त कातर और दुःखित होकर विलाप करने लगे—॥ ११३॥ ॥ महाराज ! अभिमन्यु मेरा प्रिय और हित करने की इच्छा से देवताओं के लिए भी दुर्मेघ द्रोणाचार्य की मना के व्यूह में ऐसे प्रवेश हो गया था जैसे गाँवों के घृष्ट में मिह प्रवेश करे । जिसके पराक्रम से महाधनुर्धर रणदुर्मद अय-शर-

'स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।
 प्राप्य दौःशासनं कार्पणः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७ ॥
 कथं ब्रूयामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।
 सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥
 किं स्विद्वयमपेतार्थमक्लिष्टमसमञ्जसम् ।
 तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनञ्जयौ ॥ ९ ॥
 अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
 प्रियकामो जयाकांक्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥
 न लुब्धो वुध्यते दोषोल्लोभान्मोहात्प्रवर्त्तते ।
 मधुलिप्सुर्हि नाऽपश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११ ॥
 यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
 भूषणेषु च सोऽस्माभिर्वालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥
 कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
 सदश्व इव सम्बाधे विपमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥
 नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनुशयीमहि ।
 वीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥
 अलुब्धो मतिमान्हीमान्क्षमावान् रूपवान्बली ।
 वपुष्मान्मानकृद्बीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५ ॥

विशारद शत्रुपक्ष के महारथी योद्धा समर से भाग
 खड़े हुए, जिसने हमारे प्रधान शत्रु दुःशासन को
 समर के मध्य छोड़ी ही देर में मूर्च्छित और विमुख
 कर दिया था और जो अनायास ही द्रोणाचार्य के
 सेना-रूप महासागर के पार पहुँच गया था, वह रण-
 पण्डित वीर अभिमन्यु दुःशासन के पुत्र से युद्ध करके
 उसके हाथों मारा गया ! ॥१५॥ अब आज मैं किस
 प्रकार पुत्र-सल अर्जुन और, पुत्र को न देखकर
 अत्यन्त कातर, सुभद्रा को अपना मुख दिखलाऊँगा ?
 श्रीकृष्ण और अर्जुन यहाँ आकर सुझसे अभिमन्यु के
 बारे में पूछेंगे तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगा ? मैंने ही
 जयलभ और अपने प्रिय की इच्छा से यह श्रीकृष्ण,
 अर्जुन और सुभद्रा के लिए दुःखदायक अप्रिय कार्य
 किया है! लोभ के वश हुआ-हुआ पुरुष कभी दोष नहीं
 जान सकता; वह लोभ और मोह के वश होकर दोष-

पूर्ण कार्य करने लगता है । मैं राज्य के लोभ के वश
 होकर ही ऐसे अनिष्ट का विचार नहीं कर सका ॥८॥
 ११॥ हाय ! सुकुमार बालक अभी सुन्दर भोग, भोजन,
 शयन, सगरी, वस्त्र, आभूषण आदि प्राप्त कर सकने
 के योग्य था उसी को मैंने इतने बड़े सुद्ध का भार सौंप-
 कर सबके आगे भेज दिया । सुशिक्षित सौधा घोड़ा
 जैसे विपम सङ्कट में पड़कर उससे नहीं उबरता वैसे
 ही सप्राप्त के विषय में अनभिज्ञ बालक अभिमन्यु भी
 रण में जाकर शत्रु के मुख से नहीं बच सका । आज
 हम लोग यदि स्वयं प्राण दे करके अभिमन्यु के साथ
 पृथ्वी पर नहीं लेंदेंगे तो अमर्य ही क्रुद्ध अर्जुन की
 कोपदृष्टि की अग्नि में मरम हो जायेंगे ॥१२॥ १४॥ जो
 अर्जुन अत्यन्त सन्तोषी, लोभहीन, बुद्धिमान्, लज्जा-
 शील, क्षमाशाली, सुस्प, मानी, औरों का सम्मान
 करनेवाले, सत्यपरायण, धीर, महाबली और पराक्रमी

यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्युजितकर्मणः ।

निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥

महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥

परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।

तस्याऽस्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली ॥ १८ ॥

भयं तु सुमहत्प्राप्तं धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ।

पार्थः पुत्रवधात्कुङ्क्षः कौरवाञ्शोपयिष्यति ॥ १९ ॥

क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयकारकः ।

व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन्हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥

न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं न चाऽमरत्वं न सुरैः सलोकता ।

इमं समीक्ष्याऽप्रतिवीर्यपौरुषं निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

हैं; जिनके श्रेष्ठ और अद्भुत कार्यों की प्रशंसा पण्डित-
गण किया करते हैं; जिन महावीर ने हिरण्यपुर के
रहनेवाले इन्द्र के वैरी निगलनरुच और कालकेय असुरों
का संहार किया; जिन्होंने क्षण भर में अनुरों सहित
पुल्लोम-नन्दन को मारा और जो शरण गत शत्रु को
भी अमरदान करते हैं उनके पुत्र बली अभिमन्यु की
रक्षा हम लोग नहीं कर सके । ॥ १५ ॥ १८ ॥ हमको बार-
बार धिक्कार है। महाबली धृतराष्ट्र के पुत्रों के लिए अर्द्ध
ही महाभय का समय आ गया है । पुत्र के मोर जाते

के कारण क्रोधान्ध होकर महावीर अर्जुन अर्द्ध ही
सब कौरवों का नाश कर डालेंगे । क्षुद्र लोग जिसके
सहायक हैं वह सब क्षुद्र और अपने कुल का संहार
करानेवाला दुरात्मा दुर्योधन अर्द्ध शोक करता हुआ
अनुचित रीति से मारा जायगा । हाय ! इस असाधारण
गौरवसम्पन्न अभिमन्यु को इस प्रकार रणभूमि में पड़े
हुए देखकर मुझे जय, राज्य, देवशरीर या इन्द्रपद
की प्राप्ति भी प्रीतिदायक नहीं । ॥ १९, २१ ॥

— ० —

द्रोणपर्व का इक्यावनवौं अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

सङ्गम उवाच—अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृपिः ॥ १ ॥

अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।

अत्रवीच्छ्लोकसन्तप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥ २ ॥

वाचनार्थे अध्याय ॥ ५२ ॥

मन्त्रय वहते हैं—हे महाराज ! युधिष्ठिर इम
प्रकार विचार कर ही रहे थे कि यहाँ पर महर्षि कृष्ण
द्वैपायन व्यास आ गये । राजा युधिष्ठिर ने महामा व्यास

को दर्शने ही उठकर विभिपूर्वक उनका सम्कार और
पूजन किया। व्यासजी जब आगमन पर बैठ गये तब, भतीजे
की मृत्यु से शोकविह्वल, युधिष्ठिर बैठकर दीनभाव में

अधर्मयुक्तैर्वहुभिः परिवार्य महारथैः ।
 युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥ ३ ॥
 बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
 अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥
 मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वां सञ्जनयस्व नः ।
 प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन्सैन्यवेन निवारिताः ॥ ५ ॥
 ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
 इदं चैवाऽसमं युद्धमीदृशं यत्कृतं परैः ॥ ६ ॥
 तेनाऽस्मि भृशसन्तप्तः शोकचापसमाकुलः ।
 शमं नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ७ ॥
 सञ्जय उवाच—तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
 उवाच भगवान्ध्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ८ ॥
 ध्यास उवाच—युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
 व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ९ ॥
 स्वर्गमेव गतः शूरः शत्रून्हत्वा बहून्रणे ।
 अवालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥
 अनतिक्रमणीयो वै विधिरेव युधिष्ठिर ।
 देवदानवगन्धर्वान्मृत्युर्हरति भारत ॥ ११ ॥
 युधिष्ठिर उवाच इमे वै पृथिवीपालाः शरते पृथिवीतले ।
 निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः ॥ १२ ॥

वेदव्यास से कहने लगे—हे भगवान् ! बालक अभि-
 मन्यु को युद्ध में कई महाधनुर्धर महारथियों ने मिलकर
 अधर्मयुद्ध करके मार डाला ॥ १३ ॥ वह बालक और
 बालबुद्धि होने पर भी वीर था और शत्रुपक्ष के वीरों
 को मारनेवाला था । युद्ध करते समय उस असहाय
 बालक को शत्रुओं ने अनीति से मारा । मैंने अभिमन्यु
 से कहा था कि तुम इस व्यूह के भीतर हमारे प्रवेश
 होने की राह बना दो । मेरी आज्ञा के अनुसार व्यूह
 को तोड़कर अभिमन्यु भीतर प्रवेश कर गया । हम
 लोग उसके पीछे शत्रुसेना के भीतर प्रवेश होने लगे,
 तो द्रुपद जयद्रथ ने राह रोक दी; हमें भीतर नहीं जाने
 दिया । क्षत्रियों का यह नियम है कि वे समान युद्ध

[एक के साथ एक या अनेक के साथ अनेक] करते
 हैं; किन्तु शत्रुओं ने घमासान युद्ध करके अभिमन्यु
 को मार डाला । यही मुझे बड़ा सन्ताप है । मेरे नेत्रों
 से शोक के आँसू बह रहे हैं । मैं धारम्बार अभिमन्यु
 के मरण को मोच रहा हूँ । मुझे किसी प्रकार भी
 शान्ति नहीं प्राप्त होती ॥ १४ ॥ सञ्जय कहते हैं कि
 भगवान् महर्षि वेदव्यास ने शोकानुल राजा युधिष्ठिर
 को इस प्रकार तिलाप और सन्ताप करते हुए देखकर
 कहा—हे सब शास्त्रों में निपुण धर्मपुत्र ! तुम सहीरे
 महात्मा और ज्ञानी पुरुष विपत्ति में कभी व्याकुल नहीं
 होते । यह महावीर कुमार रण में बहुत से शत्रुओं को
 मारकर, जिसको कोई बालक नहीं कर सकता उम

नागायुतवलाश्चाऽन्ये वायुवेगवलास्तथा ।
 त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥ १३ ॥
 नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित् ।
 विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोवलसमन्विताः ॥ १४ ॥
 जेतव्यमिति चाऽन्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
 अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः ॥ १५ ॥
 मृता इति च शब्दोऽयं वर्त्तते च ततोऽर्थवत् ।
 इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥
 निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशङ्गताः ।
 राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥
 अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
 कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः कथं संहरते प्रजाः ॥ १८ ॥
 हरत्यमरसङ्काशं तन्मे ब्रूहि पितामह ।
 सञ्जय उवाच—तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
 आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः ॥ १९ ॥
 व्यास उवाच—अत्राऽप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
 अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥
 स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
 अप्रसङ्गतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः ॥ २१ ॥

अद्भुत कार्य को करके, खर्गलोक को गया है हे युधिष्ठिर !
 विधाता का यह मृत्युरूप विधान अलप्य है । हे भारत !
 देवता, दानव, गन्धर्व आदि सबको एक दिन अमर्य
 ही मृत्यु के वश होना पड़ता है ॥ ८।११ ॥ युधिष्ठिर ने
 कहा—हे महामा जी ! ये महापुत्रों नरपतिगण मर-
 कार सेना के मध्य पृथ्वील पर पड़े हुए हैं । इनमें
 कोई दस सहस्र हाथियों का बल स्वनेपाले थे और
 कोई वायु के समान वेग और बल से सम्पन्न थे । ये
 सब परस्पर युद्ध करके मरे हैं । इन्हें युद्ध में मारनेवाला
 कोई भी योद्धा जगत् में नहीं देगा पड़ता । ये सब
 पराक्रमी थे और तरोबट से भी सम्पन्न थे । इनके
 हृदय में सदैव शत्रुओं को जीतने का विचार बना रहता
 था । ये युद्ध से भागना या हारना जानते ही न थे; किन्तु

ये ही ये इस समय, आयु समाप्त हो जाने से, मरे पड़े
 हैं । इनके मरण से आज मृत्यु का नाम सार्थक हुआ
 ॥ १२।१६ ॥ ये शूर, कोधी और मानी राजपुत्र शत्रु
 के वशीभूत होकर काल के शिकार बन गये हैं और
 निश्चेष्ट निरभीमान होकर पृथ्वी पर पड़े हैं । हे ऋषि-
 वर ! इन मारे गये राजाओं को देखकर मेरे हृदय में
 यह संशय उत्पन्न हुआ है कि यह मृत्यु कौन है; क्या
 है ? इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है और यह किसलिए
 प्रजा का महार करती है ? आप कृपा करके यह सब
 वृत्तान्त वर्णन करके मेरे मशय को दूर कीजिए ॥ १६।
 १८ ॥ भगवन् यह कहते हैं कि धर्मराज ने महर्षि से जब
 यह प्रश्न किया तब उन्हें आश्वासन देने के लिए
 महर्षि कहने लगे—हे नरश्रेष्ठ ! पूर्ण समय में महर्षि

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
 ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात्स्नेहवन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥
 समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।
 धन्यमाख्यानसायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥ २३ ॥
 पवित्रमरिसङ्घघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
 यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदं तथा ॥ २४ ॥
 श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः ।
 पुत्रानायुष्मतो राज्यभीहमानैः श्रियं तथा ॥ २५ ॥
 पुरा कृतयुगे तात आसीद्राजा ह्यकम्पनः ।
 स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥ २६ ॥
 तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले ।
 श्रीमान्कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥ २७ ॥
 स शत्रुभिः परितुष्टो बहुधा रणमूर्धनि ।
 व्यस्यन्वाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥ २८ ॥
 स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः ।
 शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥
 स राजा प्रेतकृत्यानि तस्य कृत्वा शुचाऽन्वितः ।
 शोचन्नहनि रात्रौ च नाऽलभत्सुखमात्मनः ॥ ३० ॥
 तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम् ।
 आजगामाऽथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥ ३१ ॥

नारद ने राजा अकम्पन से जो वर्णन किया था वह प्राचीन इतिहास में तुमको सुनाता है । राजा अकम्पन को भी इसी प्रकार अत्यन्त अमल पुत्रशोक हुआ था । अब मैं मृत्यु की उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ । इस उपाख्यान को सुनने से स्नेहवन्धन-जनित दुःख शोक से तुम्हारा छुटकारा हो जायगा ॥ १९, २० ॥ हे पुत्र ! यह उपाख्यान बहुत ही पवित्र, शत्रुनाशक, महामङ्गल-मय, आयु को बढ़ानेवाला, शोक को मिटानेवाला, पुष्टिर्दक, वेदपाठ के समान फल देनेवाला और श्रेष्ठ है । तुम इसे मन लगाकर सुनो । हे राजेन्द्र ! आयु-पान्थ पुत्र, राज्य और सम्पत्ति की इच्छा रखनेवाले मामलों, शत्रियों और वैश्यों को नित्य प्रातःकाल

यह उपाख्यान सुनना चाहिए ॥ २१ ॥ पूर्व समय में, संख्युग में, अकम्पन नाम के एक प्रतापी नरेश थे । वे युद्धभूमि में शत्रुओं के वशीभूत हो गये । उनके पुत्र का नाम हरि था । वह नारायण के समान बलशाली, श्रीमान्, अस्त्र-शस्त्र चलने में निपुण, बुद्धि-मान् और इन्द्र के समान था । वह भी युद्धक्षेत्र में जाकर शत्रुओं के मध्य विर गया । वह दायियों, पक्षों और मनुष्यों के ऊपर असंख्य बाणों की वर्षा करके, अत्यन्त दुष्कर कार्य करने के उपरान्त, शत्रुओं के हाथ से मारा गया ॥ २६, २९ ॥ शत्रुओं के हाथों अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु हुई देखकर क्रोध और शोक से व्याकुल राजा अकम्पन रणभूमि से अपनी राजधानी

स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् ।
 पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत्तदा ॥ ३२ ॥
 तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः ।
 शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥
 मम पुत्रो महावीर्यं इन्द्रविष्णुसमद्युतिः ।
 शत्रुभिर्वहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥ ३४ ॥
 क एष मृत्युर्भगवन्किं वीर्यवलपौरुषः ।
 एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ॥ ३५ ॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः ।
 आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥
 नारद उवाच—शृणु राजन्महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम् ।
 यथावृत्तं श्रुतं चैव मयाऽपि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥
 प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः ।
 असंहृतं महतेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥
 तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव ।
 चिन्तयन्न ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ॥ ३९ ॥
 तस्य रोपान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
 तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता ॥ ४० ॥
 ततो दिवं भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम् ।
 चराचरं जगत्सर्वं ददाह भगवान्प्रभुः ॥ ४१ ॥

में आये । यहाँ पुत्र का क्रिया-कर्म करके राजा अक-
 म्पन दिन-रात चिन्ता करते हुए शोक से अत्यन्त
 विह्वल रहने लगे । उन्हें किसी प्रकार भी शान्ति नहीं
 प्राप्त होती थी । इसी मध्य में एक दिन देवर्षि नारद
 उनके पुत्रशोक का समाचार जानकर, उन्हें धैर्य देने
 के लिए, उनके समीप आया ॥ ३० ॥ राजा ने देवर्षि
 नारद को आते हुए देखकर यथोचित उपचार से
 भक्ति के साथ उनकी पूजा की । फिर शत्रुओं के
 विजयी होने का और अपने पुत्र के मारे जाने का
 वृत्तान्त विस्तार के साथ कहकर अकम्पन ने कहा —
 हे भगवन् ! शत्रुओं ने पराक्रम प्रकट करके मेरे महा-
 बली पुत्र को मार डाला है । अब आप कृपा कर

मुझे कहिए कि यह मृत्यु कौन और क्या है ? इसका
 पराक्रम और पौरुष कितना और कैसा है ? मैं इसका
 समाचार जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ । हे धर्म-
 राज ! वरदानी देवर्षि नारद अकम्पन राजा का प्रश्न
 सुनकर पुत्रवियोग से उत्पन्न शोक को मिटानेवाले
 इस उपाख्यान का वर्णन करने लगे ॥ ३२ ॥ ३५ ॥
 नारद ने कहा — हे राजेन्द्र ! मैंने इस विस्तृत उपा-
 ख्यान को जिस प्रकार सुना है, उसी प्रकार तुम्हारे
 आगे वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो । लोक-
 पितामह ब्रह्माजी ने पहले प्रजा की सृष्टि की । उसके
 पश्चात् इस जगत् को जैसे का तैसा बना हुआ देख-
 कर, विनष्ट न होते देख, उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई ।

ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
 महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥
 ततो रुद्रो जटी स्याणुर्निशाचरपतिर्हरः ।
 जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ ४३ ॥
 तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया ।
 अघ्रवीत्परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥ ४४ ॥
 किं कुर्म कामं कामार्हं कामाज्जातोऽसि पुत्रक ।
 करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ॥ ४५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

बहुत सोचने पर भी वे सृष्टिसंहार के उपाय के बारे में कुछ निश्चय नहीं कर सके ॥ ३६ ॥ ३९ ॥ तब उनके मन में क्रोध उत्पन्न हुआ । उस क्रोध के प्रभाव से, अन्तरिक्ष से, एक दारुण अग्नि उत्पन्न हुआ जो संसार के सब देशों को जलाने के लिए चारों ओर विस्तृत होने लगा । इस प्रकार कमलासन ब्रह्मा ने क्रोध के आवेश से सब जगत् को भयविह्वल बनाकर ज्वालामाला से व्याप्त चराचर जगत् और आकाशमण्डल को भस्म कर देना

चाहा ॥ उस अग्नि में चराचर प्राणी जलने लगे ॥ ४० ॥ ४२ ॥ तब जटाजूटधारी निशाचरपति महादेवजी ब्रह्माजी के शरणागत हुए । महादेवजी को प्रजा के हित की कामना से आया हुआ देखकर, तेज के प्रभाव से प्रजालित होकर, ब्रह्माजी कहने लगे - हे वत्स ! तुमने मेरी इच्छा के अनुसार ही जन्म लिया है । तुम बरदान के योग्य हो । इसलिए वतलाओ, तुम्हारा मनोरथ क्या है ? मैं तुम्हारा प्रिय करने का प्रस्तुत हूँ ॥ ४३ ॥ ४५ ॥

द्रोणपर्व का वाचनार्थ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

स्याणुरुवाच—प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो ।
 त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥ १ ॥
 तास्तवेह पुनः क्रोधात्प्रजा दहन्ति सर्वशः ।
 ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन्प्रभो ॥ २ ॥
 ब्रह्मोवाच—संहर्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति ।
 पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥
 इयं हि मां सहा देवी भारती समचनुदत् ।
 संहारार्थं महादेव भारेणाऽभिहता सती ॥ ४ ॥

तिरपनर्थो अध्याय ॥ ५३ ॥

महादेव ने ब्रह्मा से कहा—हे विभो ! इस प्रजा की सृष्टि करने के लिए आपने ही पहले यत्न किया और अनेक प्रकार के जीवों की उत्पत्ति तथा पालन आपके ही द्वारा हुआ है । हे प्रभो ! वही प्रजा इस समय आपके क्रोध की अग्नि से भस्म हुई जा रही है । हे भगवन् ! यह देखकर मेरे मन में दया हो गई है । इसलिए प्रसन्न होकर अपने इस क्रोध को शान्त कीजिए ॥ १ ॥ २ ॥ ब्रह्मा ने कहा—हे महादेव ! मैं जगत्

ततोऽहं नाऽधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा ।

संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥

रुद्र उवाच—संहारार्थं प्रसीदस्व मा रूपो वसुधाधिप ।

मा प्रजाः स्थावराश्चैव जङ्गमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥

तव प्रसादाद्भगवान्निदं वत्तैत्रिधा जगत् ।

अनागतमतीतं च यच्च सम्प्रति वर्तते ॥ ७ ॥

भगवन्क्रोधसन्दीप्तः क्रोधादग्निमवास्तृजत् ।

स दहत्यश्मकूटानि हुमांश्च सरितस्तथा ॥ ८ ॥

पल्वलानि च सर्वाणि सर्वे चैव तृणोलपाः ।

स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥

तदेतद्भस्मसान्द्रतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

प्रसीद भगवन्स त्वं रोपो न स्याद्वरो मम ॥ १० ॥

सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथञ्चन ।

तस्मान्निवर्त्ततां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥

तत्पश्यदेव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया ।

यथेमे प्राणिनः सर्वे निर्वर्त्तन्तस्तथा कुरु ॥ १२ ॥

अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः ।

आदिदेव नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ॥ १३ ॥

मा विनश्येजगन्नाथ जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

प्रसादाभिमुखं देवं तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥

भर का सहार नहीं करना चाहता । मेरी इच्छा नहीं कि यह कार्य इस प्रकार हो, किन्तु पृथ्वी के हित की कामना से ही मुझे क्रोध उत्पन्न हो आया है । इस पृथ्वी ने भारी भार से पीड़ित होकर प्राणियों का विनाश करने के निमित्त मुझसे ही अनुरोध किया था । किन्तु मैं सम्पूर्ण जगत् का सहार का कुछ उपाय नहीं सोच सका । इसी कारण मेरे अन्तःकरण में क्रोध का उदय हो आया है ॥ ३ ॥ महादेव ने कहा— हे विश्वनाथ ! विश्व सहार के लिए उत्पन्न हुए क्रोध को आप प्रसन्न होकर शान्त कीजिए, सब चराचर जगत् का सहार न कीजिए । आपकी कृपा से यह भूत, भविष्य और वर्तमान त्रिविध जगत् बना रहे ।

आपने क्रोध के उस होकर जो यह अग्नि उत्पन्न की है वह नदी, पत्थर, वृक्ष, पल्लव, घास घूस आदि सब स्थावर और जङ्गम जगत् को भस्म निये डलती है । आप मुझ पर प्रसन्न होकर यही वरदान दीजिए कि आपका क्रोध शान्त हो ॥ ६ ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आपने जो सृष्टि की थी वह भस्म हुई जा रही है, इसलिए आप अपने इस तेज को अपने में ही लीन कर लीजिए । प्रजा के हित की कामना करके इसका कोई और उपाय सोचिए । आप ऐसा कीजिए जिसमें ये प्राणी बने रहें, सृष्टि की जड़ नष्ट न हो और प्रजा का अत्यन्त अभाव न हो जाय ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे देवताओं के ईश्वर ! आपने मुझे प्रजापालन के कार्य में नियुक्त

नारद उवाच— श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे ।
 तेजः सन्धारयामास पुनरेवाऽन्तरात्मनि ॥ १५ ॥
 ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः ।
 प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥ १६ ॥
 उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोपजं तथा ।
 प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥ १७ ॥
 कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना ।
 कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥ १८ ॥
 सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता ।
 सम्यमाना च साऽवेक्ष्य देवौ विश्वेश्वराबुभौ ॥ १९ ॥
 तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः ।
 मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥ २० ॥
 त्वं हि संहारबुद्ध्याऽथ प्रादुर्भूता रूपो मम ।
 तस्मात्संहार सर्वास्त्वं प्रजाः सज्जडपण्डिताः ॥ २१ ॥
 मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।
 एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥ २२ ॥
 दध्यौ चाऽत्यर्थमवला प्ररोद च सुस्वरम् ।
 पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः ।
 सर्वभूतहितार्थाय तां चाऽप्यनुनयत्तदा ॥ २३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युनखपर्वणि मृत्युनखने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

किया है । [फिर आपकी इस प्रजा पर दया नहीं आती ।] आप मुझ पर प्रसन्न हैं, इसी से मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि आप इस सृष्टि का नष्ट न होने दें ॥ १३ ॥ १४ ॥ नारद जी ऋषि कहते हैं— हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् सप्त लोकों के पितामह ब्रह्मा ने, प्रजा के हित के लिए बड़े गये, शिव के वचन सुनकर उस मोक्षरूप तेज को फिर अग्नि में लीन कर लिया । इस प्रकार अग्नि का उपमहार करके ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए प्रवृत्त-धर्म की और मोक्ष के लिए निवृत्त-धर्म की कल्पना की । तब क्रोध से उत्पन्न अग्नि का उप-संहार करते समय ब्रह्मा के इन्द्रिय छिद्रों से एक अद्भुत यी उत्पन्न हुई । उसके अङ्गों का रङ्ग पाग, लाल और पिङ्गल था । उमरा मुख, जिह्वा और नत्र लाल थे । उसके कानों में तारे हुए मुख के कुण्डल थे और अङ्गों में मुख के आभूषण थे ॥ १५ ॥ १६ ॥ उमरा ने प्रकट होकर दक्षिण दिशा में आश्रय लिया । यह ब्रह्मा और शङ्कर को देखकर जब सुमकराती हुई दक्षिण दिशा में खड़ी हुई तब त्रिधाता ने "मृत्यु" नाम से उसको सम्बोधन करते कहा— तुम इस प्रजा का संहार करो । मेरी संहार बुद्धि के द्वारा, मेरी ही क्रोध से तुम्हारा जन्म हुआ है इसलिए तुम मेरी आज्ञा से जड़-चेतन सब प्रजा का नाश करो । ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १९ ॥ २० ॥ नारद जी कहते हैं— कमल-यौनि ब्रह्मा के ये वचन सुनकर, अण भर सोचता,

वह कमलनयनी मृत्यु देवी खेद के कारण रोने लगी । को अपने हाथों में ही रोक लिया । अनुनय करके वे उसके नेत्रों से आँसुओं की बूँद गिरने लगीं । पितामह मृत्यु को सन्तुष्ट करने लगे ॥२२॥२३॥
ब्रह्मा ने सब प्राणियों के हित के लिए उन आँसुओं

— ० —

द्रोणपर्व का तिरपनत्रौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

नारद उवाच—विनीय दुःखमवलला आत्मन्येव प्रजापतिम् ।

उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवाऽऽवर्जिता पुनः ॥ १ ॥

मृत्युरुवाच—त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर ।

क्रूरं कर्माऽऽहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २ ॥

विभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन्प्रभो ।

प्रियान्पुत्रान्वयस्यांश्च भ्रातृन्मातृः पितृन्पतीन् ॥ ३ ॥

अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेष्वेभ्यो विभेम्यहम् ।

कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुविन्दवः ॥ ४ ॥

तेभ्योऽहं भगवन्भीता शरणं त्वाऽहमागता ।

यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥

कायेन विनयोपेता मूर्धोदघ्नखेन च ।

एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥ ६ ॥

इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर ।

प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन्प्रभो ॥ ७ ॥

त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम् ।

तत्र तपस्ये तपस्तीव्रं तवैवाऽऽराधने रता ॥ ८ ॥

न हि शक्यामि देवेश प्राणान्प्राणभृतां प्रियान् ।

हर्तुं विलपमानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥ ९ ॥

चौवनत्रौ अध्याय ॥ ५४ ॥

नारदजी कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! उस स्त्री ने दुःख छोड़कर, हाथ जोड़कर, लता की भाँति नम्र होकर ब्रह्मा जी से कहा— हे महात्मा जी ! आपने मुझ पापीयस्ती स्त्री की सृष्टि क्यों की ? मैं जान बूझकर मृद की भाँति ऐसा अहित और क्रूर कर्म कैसे करूँगी ? मैं अधर्म से भयभीत होती हूँ, इसलिए आप कृपा करके मुझे यह आज्ञा न दीजिए ॥ १॥३॥ जिनके परमप्रिय पुत्र, मित्र, भाई, पिता और पति आदि को मैं नष्ट करूँगी ये अस्य ही मेरा अनिष्ट चाहेंगे । हे भगवन् ! कष्ट-

वियोग से दुःखित प्राणियों के नेत्रों से जो आँसु गिरेंगे उन्हीं से भयभीत होकर मैं शरण में आई हूँ । मैं हाथ जोड़कर आप से निवेदन करती हूँ कि आप मुझ पर प्रसन्न हों; मैं कदापि यमराज के भवन में नहीं जा सकूँगी ॥ ३॥५॥ हे पितामह ! आप कृपा करके मेरा यह मनोरथ पूर्ण कीजिए । मैं धेनुकाश्रम में जाकर अत्यन्त कठोर तप के द्वारा अपनी आराधना करना चाहती हूँ । आप कृपा करके मुझे इसकी आज्ञा दीजिए । मैं आपसे यह वर चाहती हूँ कि आप मुझे यह कार्य न

ब्रह्मोवाच—मृत्यो सङ्कल्पिताऽसि त्वं प्रजासंहारहेतुना ।
 गच्छ संहार सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥ १० ॥
 भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत् ।
 भवत्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥ ११ ॥

नारद उवाच—एवमुक्ताऽभवत्प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
 संहारे नाऽकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥ १२ ॥
 तूष्णीमासीत्तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ।
 प्रसादं चाऽगमत्क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥ १३ ॥
 स्मयमानश्च देवेशो लोकान्सर्वानवेक्ष्य च ।
 लोकास्त्वासन्यथापूर्वं दृष्टास्तेनाऽपमन्युना ॥ १४ ॥
 निवृत्तरोपे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
 सा कन्याऽपि जगामाऽथ समीपात्तस्य धीमतः ॥ १५ ॥
 अपस्तृत्याऽप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
 त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥ १६ ॥
 सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् ।
 सा तदा ह्येकपादेन तस्यौ पद्मानि पौडश ॥ १७ ॥
 पञ्च चाऽवदानि कारुण्यात्प्रजानां तु हितैपिणी ।
 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः सन्निवर्त्य सा ॥ १८ ॥
 ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
 तस्यौ पद्मानि पट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥ १९ ॥

सौंपें । विलाप करते हुए प्राणियों के प्रिय प्राणों को मैं नहीं हर सकूंगी । इस अधर्म से आप मेरी रक्षा कीजिए॥६॥९॥ब्रह्मा ने कहा—हे मृत्यु ! तुम्हारी उत्पत्ति ही प्रजा के नाश के लिए हुई है । इससे तुम, मेरी आज्ञा के अनुसार, जाकर सब प्रजा का संहार करो; इस विषय में अधिक मोचविचार मत करो । सब लोगों का नाश अस्य ही होगा; यह टल नहीं सकता । तुम मेरी आज्ञा का पालन करो । इसके लिए कोई तुम्हारी निन्दा नहीं करेगा॥१०॥११॥नारद जी कहते हैं—ब्रह्मा के ये वचन सुनकर, अत्यन्त भयविह्वल हो, हाथ जोड़कर मृत्युदेवी ब्रह्मा की ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी रही । संसार के भले के लिए लोकसंहार

करना वह किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सगी॥१२॥ पितामह ब्रह्मा क्षणभर शान्त रहे, फिर शीघ्र ही हँसते हुए लोकरक्षा के लिए सुप्रसन्न हुए । इस प्रकार लोक-पितामह ब्रह्मा ने जब क्रोध त्याग दिया तब सब प्राणी अपमन्यु से वचनकर पहले की ही भाँति प्रसन्न होगये । वह कन्या मृत्युदेवी प्रजासंहार करना अङ्गीकार न करके, ब्रह्मा से विदा होकर, वहाँ से चली और शीघ्र ही धेनुकाश्रम में पहुँचकर कठोर तपस्या करने लगी ॥१३॥१४॥सब इन्द्रियों को योग्य विषयों से हटाकर वह घोर तप करने लगी । प्रजा के हित की कामना से वह इकौन पद्म वर्ष तक एक पौंव से खड़ी रही॥१५॥१६॥फिर इकौन पद्म वर्ष तक दूसरे

ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ।
 पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम् ॥ २० ॥
 अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च साऽनयत् ।
 धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥ २१ ॥
 सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैषिता ।
 तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥ २२ ॥
 पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।
 तपोविशेषैर्वहुभिः कर्षयद्देहमात्मनः ॥ २३ ॥
 ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।
 तस्थौ चाऽश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥ २४ ॥
 पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुराऽयजन् ।
 तत्राऽगुष्टेन सा तस्थौ निखर्व परमा शुभा ॥ २५ ॥
 पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा ।
 अपाकर्षत्स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥ २६ ॥
 अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे ।
 तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥ २७ ॥
 ततस्ताम्रवीक्षीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
 सौम्येन मनसा राजन्प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥ २८ ॥
 मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसीति ह ।
 ततोऽब्रवीत्पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥ २९ ॥
 नाऽहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाऽऽक्रोशतीस्तथा ।
 एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥ ३० ॥

पौंव से खड़ी रही । फिर अयुत पद्म वर्ष तक मृगों के साथ विचरती रही । इसके पश्चात् स्वच्छ जल-वाली पवित्र नन्दा नदी में जाकर नियमपूर्वक एक सहस्र आठ वर्ष तक जल के भीतर रहकर उसने समय बिताया । इस प्रकार नन्दा तीर्थ में निष्पाप होकर वह पहले पवित्र कौशिकी तीर्थ में पहुँची । वहाँ केवल वायुभक्षण और जल पी करके फिर नियम ग्रहण-पूर्वक उसने घोर तप किया ॥ १९॥ २० ॥ फिर पञ्चगङ्गा तीर्थ और वेतस तीर्थ में जाकर, विशेष तप करके, शरीर

सुखाया । उसके पश्चात् भागीरथी और प्रधान तीर्थ महामेरु में जाकर, प्राणायामपरायण होकर, शिला की भाँति निश्चेष्ट भाव से वह तप करती रही । इसके उपरान्त हिमाचल के शिखर पर पहुँचकर, उँगली पर सारे शरीर का भार देकर, निखर्व वर्षों तक यह तप करती रही । फिर वह कन्या पुष्कर, गोकर्ण-तीर्थ, नैमिषतीर्थ, मलयतीर्थ आदि में यथेष्ट नियम ग्रहण करके अपने शरीर को सुखाती रही । इस प्रकार वह अनन्य भक्ति के साथ एकाग्रचित्त से

अधर्मभयभीताऽस्मि ततोऽहं तप आस्थिता ।
 भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाऽभयमव्ययम् ॥ ३१ ॥
 आर्त्ता चाऽनागसी नारी याचामि भव मे गतिः ।
 तामब्रवीत्ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥ ३२ ॥
 अधर्मो नाऽस्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः ।
 मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथञ्चन ॥ ३३ ॥
 तस्मात्संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।
 धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥ ३४ ॥
 लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते ।
 अहं च त्रिविधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥ ३५ ॥
 यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेप्ससि ।
 सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिर्दिदं विभुम् ॥ ३६ ॥
 पुनरेवाऽब्रवीद्वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा ।
 यद्येवमेतत्कर्तव्यं मया न स्याद्दिना प्रभो ॥ ३७ ॥
 तवाऽऽज्ञा मूर्ध्निमे न्यस्ता यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
 लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥ ३८ ॥
 अह्नीश्चाऽन्योन्यपरुषा देहं भिन्नुः पृथग्विधाः ।
 ब्रह्मो गच्छ—तथा भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः ॥
 अधर्मस्ते न भविता नाऽपध्यास्याम्यहं शुभे ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा की आराधना करती रही॥३१॥३२॥तब भग
 वान् ब्रह्मा बहो आये और दान्त तथा प्रसन्न मन से
 पूछने लगे — हे मृत्यु ! तुम किसलिए ऐसी कठोर
 तपस्या कर रही हो ॥३२॥३३॥मृत्यु ने कहा—
 हे भगवान् ! सब प्रजा स्थिर और एकाग्रचित्त से सुख
 रहकर अपना समय व्यतीत कर रही है । वह वाक्प-
 द्दारा भी परस्पर किसी का अपकार नहीं करती ।
 मैं किसी प्रकार उसका विनाश नहीं कर सकूंगी ।
 मैं आपसे यही वर माँगती हूँ । मैं अयम से डरकर
 ही यह घोर तपस्या कर रही हूँ । अतएव आप मुझे
 अनय प्रदान कीजिए । मेरा कोई अपराध नहीं है ।
 मैं इसी भय से व्याकुल हो रही हूँ । प्रार्थना करती
 हूँ कि आप कृपा करके मुझे आश्रय दें॥३२॥३२॥

हे राजेन्द्र ! तब त्रिकालज्ञ ब्रह्मा ने कहा—हे कन्या !
 इस चराचर प्रजा का सहार करने से तुमको किञ्चित्-
 मात्र भी अधर्म या पाप नहीं होगा । मेरा वचन कभी
 भी मिथ्या नहीं होने का । अतएव तुम निर्भय होकर
 चारों प्रकार की प्रजा का सहार करो । तुम्हें सना-
 तन धर्म पत्रित करेगा । लोकपाल यमराज, व्याधियों,
 देवगण और मैं, ये सब तुम्हारी सहायता करेंगे ।
 मैं तुमको यह भी वर देता हूँ कि तुम यह कर्म करने
 से निष्पाप और रजोगुण हीन होकर परम प्रसिद्धि
 प्राप्त करोगी॥३२॥३६॥तब उस कन्या ने प्रणाम-
 पूर्ण ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और हाथ जोड़कर
 कहा—हे ब्रह्मन् ! यदि मेरे विना यह कार्य नहीं
 हो सकता हो तो, विवश होकर, मैं आपकी इस

यान्यश्रुविन्दूनि करे ममाऽऽसंस्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः ।
 ते मारयिष्यन्ति नरान्गतासूत्राऽधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥ ४० ॥
 नाऽधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा ।
 धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री तस्मात्प्राणान्सर्वथेमात्रियच्छ ॥ ४१ ॥
 सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोपौ सन्त्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् ।
 एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो मिथ्या वृत्तान्मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२ ॥
 तेनाऽऽत्मानं पावयस्वाऽऽत्मना त्वं पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात् ।
 तस्मात्कामं रोपमप्यागतं त्वं सन्त्यज्याऽन्तः संहरस्वेति जीवान् ॥ ४३ ॥
 नारद उवाच—सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशाच्छापाद्भीता बाढमित्यब्रवीत्तम् ।
 सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ॥ ४४ ॥
 मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः ।
 सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम् ॥ ४५ ॥
 सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते गत्वा वृत्ताः सन्निवृत्तास्तथैव ।
 एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा वृत्ता देवा मर्त्यवद्राजसिंह ॥ ४६ ॥
 वायुभीमो भीमनादो महौजा भेत्ता देहान्प्राणिनां सर्वगोऽसौ ।
 नो वाऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः ॥ ४७ ॥

आज्ञा को शिरोधार्य करती हूँ । यदि धर्म से यह
 कर्तव्य है तो फिर मुझे भय नहीं है; किन्तु आप
 मेरा एक निषेधन सुनिए । लोभ, क्रोध, अमूया,
 ईर्ष्या, क्रोध, मोह, निर्लज्जता और परस्पर कही गई
 कटोर बाणी ये भिन्न भिन्न इन्द्रियवृत्तियों लोगों के
 शरीर को क्षीण करती रहा करेगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा ने
 कहा—हे मृत्यु ! तुम जो कहनी हो बही होगा ।
 अब तुम प्रजा के संहार में लग जाओ । इससे तुम
 न तो अधर्म में ही लित होगी और न मेरे ही द्वारा
 तुम्हारा अनिष्ट होगा । तुम्हारे औसुओं की जो बुँदें
 मेरे हाथों में गिरी हैं वे जीवों के शरीरों में व्याधि
 रूप से प्रकट होकर उनके प्राणों को नष्ट करने में
 तुम्हारी सहायता करेंगी । इसमें तुम्हें किसीतुमात्र
 भी अधर्म नहीं होगा । अब तुम भयभीत होओ मत ।
 तुम प्राणियों का धर्म हो, धर्म की स्वामिनी हो । तुम
 धर्मरायण और धर्म का कारण होकर धर्मधारणपूर्वक
 सब प्राणियों के जीवन-संहार में लग जाओ ॥ ३९ ॥

४१ ॥ काम और क्रोध में बची रहकर सब प्राणियों
 के जीवन को हरो । इसमें तुम्हें अक्षय धर्म होगा ।
 [जो लोग धर्मात्मा हैं वे मृत्यु को प्राप्त होकर भी
 अमर रहेंगे और] जो दुराचारी हैं उन्हें उनका अधर्म
 ही नष्ट करेगा । तुम मेरी आज्ञा का पालन करके अपने
 आत्मा को पवित्र करो । तुम अपने अन्तःकरण में
 आये हुए काम और क्रोध को त्याग करके, समदर्शी
 होकर, जीवों का संहार करो । पुण्य बुद्धि से इस
 कार्य को करोगी तो पवित्र रहोगी और अमरत्वप्राप्त का
 ग्रहण करोगी तो अपने को पाप में मग्न करोगी । यह
 समझकर, मेरी आज्ञा के अनुसार, निर्भय होकर अपने
 कर्तव्य का पालन करो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ नारदजी कहते हैं—
 हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् उम कन्या ने अपना नाम
 'मृत्यु' होने में उद्धिष्ट होकर और 'कहा न मानने
 में ब्रह्माजी शाप न दे दें' इस भय से तत्काल ही
 ब्रह्मा की आज्ञा स्वीकार कर ली । हे महाराज ! यही
 मृत्यु काम क्रोध-हीन होकर, निर्विशेष भाव में अन्त-

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टास्तस्मात्पुत्रं मा शुचो राजसिंह
 स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो नित्यं स्म्यान्वीरलोकानवाप्य ॥ ४८ ॥
 त्यक्त्वा दुःखं सङ्गतः पुण्यकृद्भिरेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम्
 प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम् ॥ ४९ ॥
 आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे नैतान्मृत्युर्दण्डपाणिर्हि नस्ति
 तस्मान्मृतान्नाऽनुशोचन्ति धीरा मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्
 इत्थं सृष्टिं देवकलुषां विदित्वा पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥

द्वितीय उवाच — एतच्छ्रुत्वाऽर्थवद्वाक्यं नारदेन प्रकाशितम् ।

उवाचाऽकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥ ५१ ॥

व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगन्मृपिसत्तम ।

श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥

तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः ।

जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥

पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च ।

अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥ ५४ ॥

काल में सब प्राणियों के जीवन का नष्ट करती है । सभी प्राणियों की मृत्यु होती है । रोग कहलानेवाली व्याधियाँ प्राणियों के ही शरीर से उत्पन्न होती हैं और उनके द्वारा प्राणियों को अत्यन्त म्यथा होती है । अतएव अन्तकाल में प्राणियों का प्राण वियोग होते देखकर तुम उन प्राणियों के लिए वृथा शोक न करो । प्राण-नाश होने पर सब इन्द्रियों प्राणियों के साथ परलोक में जाती हैं और अपने अपने कार्य को सम्पन्न करके फिर लौट आती हैं । मनुष्यों की ही भाँति देवगण भी परलोक में जाकर अपना अपना कार्य करते हैं ; अर्थात् इन्द्र आदि देवता भी मनुष्यों की भाँति मनुष्यलोक में आते और अनेक कर्म करने स्वर्गलोक को लौट जाते हैं ॥ ४४ ॥ ४६ ॥ योत्स्व, भीम-नाद, मर्वचारी, उग्र, अनन्तेज से सम्पन्न प्राणायुस्य प्राणियों के शरीर को ही प्राणों से अलग कर देता है । उमका गमन-आगमन नहीं है । हे राजेन्द्र ! देवताओं की भी मर्त्यमंज्ञा है ; उन्हें भी मृत्यु नहीं छोड़ती । इसमें अब तुम अपने पुत्र की मृत्यु के लिए वृथा शोक मत करो । वह सुलोक में श्रीरा के मनोहर लोक पाकर,

दुःखहीन होकर, पुण्य करनेवाले पुण्यात्माओं के साथ आनन्द कर रहा है । हे महाराज ! प्रजा की यह मृत्यु देवनिर्दिष्ट है । समय आने पर मृत्यु ही प्राणियों का सहार करती है । अन्यत्र द्वारा किसी की मृत्यु होने की कल्पना उन्हीं मूढ़ पुरुषों की है, जो मृत्यु के इस रहस्य को नहीं जानते । वास्तव में अपनी मृत्युका कारण प्राणी आप ही हैं ; मृत्यु डण्डा हाथ में लेकर किसी को नहीं मारने आती । जो लोग दुस्मिमान हैं वे, यह जानकर कि ब्रह्माजी ने ही सब प्राणियों की मृत्यु उत्पन्न की है और कभी न कभी अवश्य ही मृत्यु होगी, मृत पुरुषों के लिए कर्मा शोक नहीं करते । हे राजेन्द्र ! तुमको अब प्रतीत हो गया है कि प्राणियों की मृत्यु देव-निर्दिष्ट है । अब तुम पुनः पुनः पुनः की मृत्यु के लिए शोक करना छोड़ दो ॥ ४७ ॥ ५० ॥ महाराज अग्रमन ने प्रिय सखा नारद के ऐसे यथार्थ वचन सुनकर कहा हे भगवन् ! इस इतिहास के सुनने से मेरा शोक जाना रहा । मैं प्रसन्न होकर अपने को वृन्तार्थ समझ रहा हूँ । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ व्यास जी कहते हैं कि महाराज अग्रमन का पुत्रशोक

एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिरः ।
 क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥ ५५ ॥
 सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः ।
 अभिमन्युः परान्हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥
 युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे ।
 असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः ॥ ५७ ॥
 विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ।
 तस्मात्परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव ।
 अप्रमत्तः सुसन्नद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसत्रदेवतुष्यश्चाशक्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दूर करके देवर्षि नारदजी वहाँ से नन्दन वन को चले गये। हे धर्मराज। इस इतिहास को स्वयं सुनने अथवा अन्य किसी को सुनाने से धन की प्राप्ति होती है। इससे पढ़ने, सुनने या सुनाने से पुण्य होता है, यश प्राप्त होता है, आयु की वृद्धि होती है और अन्त समय स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। हे राजेन्द्र। तुमने इस परमार्थ-पूर्ण तत्त्वज्ञानसहायक इतिहास को सुन लिया। अब क्षत्रियधर्म, वीरों की परमगति और मृत्यु का

रहस्य सोचकर धैर्य धारण करो। चन्द्रमा के अंश से उपमन्याप महारथी अभिमन्यु युद्ध-भूमि में असह्य वीर क्षत्रियों के आगे सम्मुख युद्ध करके, शत्रुसेना का सहार करते करते, शत्रुओं के खड्ग, गदा, शक्ति और धनुष-बाण के प्रहार से मरकर फिर चन्द्रलोक को चला गया। अतएव हे पाण्डव। अपने माइयों के साथ धैर्य धारण करके शोक हीन होकर, साधन और सु-सज्जित होकर, फिर शत्रुओं से युद्ध करो॥५३॥५८॥

द्रोणपर्व का चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

अथ पथपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

सञ्जय उवाच— श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्मण्यनुपमानि च ।
 धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाधैनमथाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
 युधिष्ठिर उवाच— गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिभविक्रमाः ।
 स्थाने राजर्षयो ब्रह्मघ्ननघाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥
 भूय एव तु मां तथैवैवोभिरभिवृंह्य ।
 राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥ ३ ॥
 कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः ।
 राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद्वाचान्प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥

पनपनवाँ अध्याय ॥ ५५ ॥

सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि हे महाराज! मृत्यु की उत्पत्ति और उसके अद्भुत कार्य का वर्णन सुनकर राजा युधिष्ठिर सन्तुष्ट हुए। व्यामदेव की प्रसन्न। मयराटी और निष्पाप अनेक राजर्षि हो गये हैं।

करके उनसे धर्मराज ने कहा—हे भगवन्! पूर्व समय में इन्द्र के ममान पराक्रमी, पुण्यागा, माननीय, मयराटी और निष्पाप अनेक राजर्षि हो गये हैं।

व्यास उवाच — शैव्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः ।
 सखायौ तस्य चैत्रोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ॥ ५ ॥
 तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्ष्या
 विधिवच्चाऽर्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोपतुः सुखम् ॥ ६ ॥
 तं कदाचित्सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता ।
 दुहिताऽभ्यागमत्कन्या सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥ ७ ॥
 तयाऽभिवादितः कन्यामभ्यनन्दयथाविधि ।
 तत्सलिलङ्गाभिराशीर्भिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥ ८ ॥
 तां निरीक्ष्याऽब्रवीद्वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव ।
 कस्येयं चञ्चलपाङ्गी सर्वलक्षणसम्भता ॥ ९ ॥
 उताऽहो भाः खिदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम्
 श्रीर्हीः कीर्तिभृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १० ॥
 एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत् ।
 ममेयं भगवन्कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥
 नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप ।
 भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥
 ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम् ।
 पर्वतस्तु सुसंकुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

ऐसे कितने राजर्षियों को मृत्यु में नष्ट किया है । आप फिर अग्नि यषार्थ और शोक को दूर करनेवाले बचन सुनाकर मेरा सन्ताप दूर कीजिए । प्राचीन राजर्षियों के कर्मों का वर्णन करके मुझे दादम वैराग्य । पुण्यात्मा राजर्षियों ने ब्राह्मणों को कौन-कौन और कितनी दक्षिणाएँ दी हैं । यह सब मुझमें कहिए ॥ १॥ ॥ व्यास जी ने कहा—हे धर्मराज ! राजा शैव्य के एक पुत्र था, जिसका नाम सृञ्जय था । महर्षि पर्वत और नारद सृञ्जय के सखा थे । एक दिन दोनों ऋषि सृञ्जय से मित्रों के लिए उनके भजन में गये । सृञ्जय ने आदरपूर्वक दोनों ऋषियों की विधिपूर्वक पूजा की । दोनों ऋषि अप्रमत्त सन्तुष्ट होकर बड़े सुख में कुछ दिनों तक राजा के भजन में रहे । एक दिन राजा सृञ्जय उनके साथ सुख में बैठे हुए थे, इसी समय राजा की एक परम सुन्दरी अधिवाहिता कन्या ने यहाँ आ-

कर राजा को प्रणाम किया । राजा ने भी अभिनन्दनपूर्वक उसे आशीर्वाद दिया ॥ ५॥ ॥ अत्र महर्षि पर्वत ने हँसकर कहा—हे राजेन्द्र ! यह श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त चञ्चलनयनी कन्या किसकी है ! यह सूर्य की प्रभा है, या अग्नि की शिखा है, अथवा चन्द्रमा की कान्ति है ! इनमें से कोई नहीं है तो आश्चर्य हो श्री, हाँ, कीर्ति, पुष्टि, पुष्टि या सिद्धि में से कोई न कोई होगा ॥ १०॥ ॥ महाराज सृञ्जय ने देवर्षि पर्वत के बचन सुनकर कहा—हे मित्र ! यह कन्या मेरी ही है । यह श्रेष्ठ कन्या अब योग्य वर चाहती है ॥ ११॥ इसी समय देवर्षि नारद राजा से कह उठे—हे राजेन्द्र ! यदि तुम कन्यादान करके कन्यायाग प्राप्त करना चाहते हो तो मुझे यह कन्या, भार्या बनाने के लिए, दे दो । राजा सृञ्जय ने प्रमत्त होकर सुन्न हो उठे अपनी कन्या देना स्वीकार कर दिया । तब देवर्षि पर्वत ने क्रोधान्वित होकर देवर्षि नारद

हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि ।
 यस्माद्वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥ १४ ॥
 एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः ।
 मनोवाग्बुद्धिसम्भापादन्ता चोदकपूर्वकम् ॥ १५ ॥
 पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम् ।
 न त्वेषां निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥ १६ ॥
 अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि ।
 तस्मात्त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना ॥ १७ ॥
 अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्यतुस्तत्र तौ तदा ।
 अथ सोऽपि नृपो विप्रान्पानाच्छादनभोजनैः ॥ १८ ॥
 पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः ।
 तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित्पुत्रमीप्सवः ॥ १९ ॥
 तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
 सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥ २० ॥
 तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत् ।
 तुभ्यं प्रसन्ना राजपे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१ ॥
 वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम् ।
 तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ॥ २२ ॥
 यशस्विनं कीर्त्तिमन्तं तेजस्विनमरिन्दमम् ।
 यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥

से कहा—देखो, पहले मैं मन हा मन मैं इस क'या की
 भार्यारूप से प्राप्त कर चुका हूँ । पाछे से तुमने इसे
 माँग लिया । इससे मैं तुमको शाप देता हूँ कि तुम
 अपनी इच्छानुसार स्वर्ग को न जा सोगे ॥ १२।१४॥
 यह सुनकर नारद ने भा कहा—यह मेरी पत्नी है,
 ऐसा मन से विचार करना, मुख से कहना और बुद्धि
 से निश्चय करना, सत्य (प्रतिज्ञा), जल छोड़कर
 कन्यादान होना (अग्नि का साक्षी होना) और पाणि
 ग्रहण के मन्त्रों का पढ़ा जाना, ये ही विग्रह के लक्षण
 प्रसिद्ध हैं । किन्तु इनका होना ही किसी कन्या के
 किसी पुरुष की स्त्री होने के लिए यथेष्ट नहीं है ।
 नास्तर में सप्तपदी-गमन (सात गोंरे फिरना) ही विग्रह

का पूर्णता है । तुमने इस क'या का नरण मन से ही
 किया था, वास्तव में तुम्हारे साथ इसका विग्रह नहीं
 हुआ था । फिर भी तुमने अयायपूर्वक मुझे शाप दिया ।
 इससे मैं भी तुमको शाप देता हूँ कि तुम मेरे बिना
 स्वर्गलोय नोन जा सोगे । हे धर्मराज ! इस प्रकार
 दोनों महर्षि परस्पर शाप दकर उही राजा के भयन
 में रहने लगे ॥ १५।१८॥ इधर पुत्र का कामना से नर
 पति सृञ्जय मिशुद्ध हृदय हारर बढ़े यत्न से, खाने पीने
 की सामग्री और उल आदि देकर, ब्राह्मणों की आराधना
 काले लगे । एक दिन वेद वेदाङ्ग के पारदर्शी स्वाध्याय
 निरत ब्राह्मणों ने राजा सृञ्जय पर प्रसन्न होकर, उही
 पुत्र देने की कामना से, देवर्षि नारद के समाप जा

सुवर्णप्रीविरित्येवं तस्य नामाऽभवत्कृतम् ।
 तस्मिन्वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥
 कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् ।
 गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥
 शय्यासनानि यानानि स्थालीपिठरभाजनम् ।
 तस्य राज्ञोऽपि यद्वेष्टम बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥ २६ ॥
 सर्वं तत्काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।
 अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥
 सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।
 केचित्तत्राऽब्रुवन्राज्ञः पुत्रं गृहीम वै स्वयम् ॥ २८ ॥
 सोऽस्याऽऽकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे ।
 न तस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥
 राजपुत्रं तथाऽऽजन्तुः सुवर्णप्रीविनं वलात् ।
 गृहैनमनुपायज्ञा नीत्वाऽरण्यमचेतसः ॥ ३० ॥
 हत्वा विशस्य चाऽपश्यँल्लुब्धा वसु न किञ्चन ।
 तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद्वरदं वसु ॥ ३१ ॥

कर कहा—हे ब्राह्मण ! आप राजा सुञ्जय को उनकी
 इच्छा के अनुरूप एक पुत्र रत्न दीजिए । ब्राह्मणों की
 प्रार्थना स्वीकार करके नारद ने महाराज सुञ्जय से
 कहा—हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण लोग सन्तुष्ट होकर तुम्हारे
 एक पुत्र उत्पन्न होने की इच्छा करते हैं । अब तुम
 बनलाओ, क्या पुत्र चाहते हो ? तुम्हारा कल्याण
 होगा ॥ १८।२॥ राजा सुञ्जय ने हाथ जोड़कर कहा—
 हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मैं आपके घर
 में सप्त गुणों से अलंकृत, कीर्तिशाली, यशस्वी, महा-
 पराक्रमी एक पुत्र प्राप्त करूँ । विशेषतः यह हो कि
 उस वाक्क का मन्त्र-मूत्र शूक्र-रूप, पसीना आदि
 सप्त सुवर्णमय हो । नारद ने सुञ्जय राजा की प्रार्थना
 स्वीकार कर ली और उन्हें उनकी इच्छा के अनु-
 सार वरदान दिया । राजा सुञ्जय के यहाँ सोई ही
 दिनों में, उनकी इच्छा के अनुरूप, पुत्र उत्पन्न
 हुआ । यह पुत्र पृथ्वीमण्डल में सुवर्णप्रीवी के नाम से
 प्रसिद्ध हुआ । महर्षि नारद के वरदान से वह पुत्र

क्रमशः अपरिमित धन का अधिकारी हो गया । उस
 पुत्र के द्वारा राजा सुञ्जय ने अपने यहाँ की सप्त
 वस्तुओं की सुवर्णमय बना लिया ॥ २२।२५॥ ममया-
 नुनार उन राजा के यहाँ घर, दीवार, दुर्ग, ब्राह्मण-
 शाला, अतिथिशाला, शय्या, आसन, स्थान, यात्री
 आदि सप्त पान सुवर्णमय हो गये और दिन पर दिन
 लक्ष्मी बढ़ने लगी । कुछ दिनों के उपरान्त दस्युओं
 को राजकुमार के द्वारा सुवर्ण उत्पन्न होने का समा-
 चार प्रतीत हुआ । उन्होंने राजकुमार की देवदत्त,
 दल बोधकर, राजा का अनिष्ट करना विचार । उन
 दस्युओं में से किसी-किसी ने कहा—हम स्वयं
 जाकर राजपुत्र को पकड़ लेंगे । वह राजपुत्र ही
 सुवर्ण की वान है । अतएव उमे पकड़ लेने का यत्न
 करना ही हमारा परम कर्तव्य है ॥ २५।२७॥ हमने
 उपरान्त लोग के यशस्वी दस्युगण एक दिन राज-
 भवन में प्रवेश हो गये और राजकुमार सुवर्णप्रीवी
 को पकड़कर वन की ओर भाग गये । राजकुमार

दस्यवश्च तदाऽन्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः ।
 हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाऽद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥
 असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः ।
 तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥
 विललाप सुदुःखार्त्तो बहुधा करुणं नृपः ।
 विलपन्तं निशम्याऽथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥
 प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य सन्निधौ ।
 उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥
 सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तद्विबोध युधिष्ठिर ।
 कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥ ३६ ॥
 यस्य चैते वयं गेहे उपिता ब्रह्मवादिनः ।
 आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥
 संवर्त्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
 यस्मै राजर्षये प्रादाद्धनं स भगवान्प्रभुः ॥ ३८ ॥
 हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः सर्वैः ।
 यस्य सेन्द्रामरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
 देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
 यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चाऽऽसन्परिच्छदाः ॥ ४० ॥
 यस्य सर्वं तदा ह्यन्नं मनोभिप्रायगं शुचि ।
 कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चाऽन्नार्थिनो द्विजाः ॥ ४१ ॥

को वे डाकू पकड़ तो ले गये परन्तु आगे क्या करना चाहिए, इसका निश्चय बहुत सोचकर भी वे न कर सके । अन्त को कर्त्तव्यमिदं होकर उन्होंने राजकुमार के शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डाले, परन्तु उससे उन्हें किञ्चित्मात्र भी सोना नहीं मिला । राजकुमार की मृत्यु होते ही वरदान से प्राप्त होनेवाले धन की भी सम्भावना न रही । तब वे मूर्ख डाकू मोह-वश, एक दूसरे को उस धन का अपहरण करनेवाला समझकर, एक दूसरे को मारने लगे । इस प्रकार उन डाकूओं ने उस अद्भुत राजकुमार को मारकर आप ही अपनी हत्या कर ली और अन्त को सब नरकगामी हुए ॥ २९।३३॥ इधर राजा सृञ्जय, वरदान से प्राप्त,

अपने पुत्र को नष्ट देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और वरुण खर से विलाप करने लगे । पुत्रशोक से दुःखित राजा के समीप जाकर महर्षि नारद बहने लगे—
 हे सृञ्जय ! हम लोग ब्रह्मवादी महर्षि हैं । यद्यपि हम सदा तुम्हारे भजन में रहते हैं, किन्तु तुम भी एक दिन मर जाओगे और विषयभोग और मनोरथों से तुम्हारी तृप्ति न होगी । हे सृञ्जय ! हमने सुना है कि अविश्वित के पुत्र महाप्रतापी राजा मरुत्त को भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा है । बृहस्पति की स्पर्धा करके महर्षि सप्त ने उनको यज्ञ कराया था । भगवान् शङ्कर ने राजा मरुत्त को विविध यज्ञ करने के लिए हिमवान् पर्वत का एक सुवर्णमय भाग दे दिया था । यज्ञ के अन्त

पयो दधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।
 यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥ ४२ ॥
 ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते ग्रहणान्वेदपारगान् ।
 मरुतः परिवेष्टारो मरुतस्याऽभवन्ग्रहे ॥ ४३ ॥
 आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।
 यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसम्पदः ॥ ४४ ॥
 हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक्कलुसैर्दिवौकसः ।
 ऋषीणां च पितॄणां च देवानां सुखजीविनाम् ॥ ४५ ॥
 ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
 शयनासनपानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥
 तत्सर्वममितं वित्तं दत्तं त्रिप्रेभ्य इच्छया ।
 सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥ ४७ ॥
 श्रद्धधानो जितलोकान्गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।
 सप्रजः सनृपामाल्यः सदारापत्यवान्धवः ॥ ४८ ॥
 यौवनेन सहस्राब्दं मरुतो राज्यमन्वशात् ।
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९ ॥
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चेत्येति व्याहरन् ॥ ५० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकाये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

मैं बृहस्पति और इन्द्र आदि सब देवता उन राजा के साथ बैठते थे। उनके यहमण्डप का सब सामान सुवर्ण-मय था॥३३॥४०॥राजा मरुत के यज्ञ के समय भोजन की इच्छा से आये हुए ब्राह्मण और द्विज (क्षत्रिय और वैश्य भी) इच्छानुरूप दूध, दही, घी, मिठाई, मक्ष्य, भोज्य पदार्थ खा-पीकर खुश होते थे। वेदपाठी प्रसन्न चित्त ब्राह्मणगण इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण पाते थे। राजर्षि मरुत के यज्ञ में मरुद्गण अथवा सब देव-गण भोजन के समय सब वस्तुएँ परोस्ते थे। विश्वेदेवा उनके सभासद थे। पराक्रमी राजा मरुत के यज्ञों में विधिपूर्वक दी हुई घी की आहुतियों से प्रसन्न देवगण उनके राज्य भर में अच्छी तरह जल बरसते थे, जिससे बहुत अन्न उत्पन्न होता था॥४०॥४५॥वे राजर्षिष्ठ

ब्रह्मचर्य-पालन, वेदपाठ और श्राद्ध आदि करके सदैव ऋषियों, देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट रखते थे। राजा मरुत ब्राह्मणों को उनकी इच्छा के अनुसार अमित शय्या, आसन, सगारियों और दुस्त्यज सुवर्ण का ढेर देकर सन्तुष्ट किया करते थे। देवराज इन्द्र सदैव उनके शुभाचिन्तक थे। राजा मरुत अपनी प्रजा को पुत्र के समान सुख से रखकर श्रद्धापूर्वक यज्ञ करने से प्राप्त अक्षय लोकों में पहुँचे और वहाँ अपने पुत्रों का फल भोगने लगे। उन्होंने सहस्र वर्ष तक युवा रहकर अपनी प्रजा, पुत्र, स्त्री, वस्तु वान्धव आदि के साथ राज्य किया। हे सृज्य ! धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य अथवा धर्म, अर्थ, काम और बल में तुममें अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा राजा मरुत भी मृत्यु

से नहीं बच सके । अतएव तुम अपने उस पुत्र का । ब्राह्मणों को दक्षिणा ही दी॥४५॥५०॥
शोरु मत करो, जिसने न तो यज्ञ ही किये और न

—०—

द्रोणपर्व का पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

अथ पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

नारद उवाच— सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम् ॥ १ ॥
यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्राह्मणुरोहितान् ।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः ॥ २ ॥
प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विपञ्चयः ।
एतत्सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद्भनागमम् ॥ ३ ॥
धर्मेणऽऽराधयन्देवान्वाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा ।
सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरञ्जयत् ॥ ४ ॥
यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम् ।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिव्रत्सरान् ॥ ५ ॥
हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन्पुरा ।
ग्राहान्कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान्वहून् ॥ ६ ॥
कामान्वर्षति पर्जन्यो रूपाणि विविधानि च ।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ॥ ७ ॥
सहस्रं वामनान्कुब्जान्नक्रान्मकरकच्छपान् ।
सौवर्णान्विहितान्दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ॥ ८ ॥
तत्सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाह्वले ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ९ ॥

छपनवाँ अध्याय ॥ ५६ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय ! बहुत ही दुर्द्वर्ष और अद्वितीय वीर राजा सुहोत्र को भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा है । वे ऐसे प्रतापी थे कि देवता लोग भी उनकी ओर नेत्र तर्क उठाकर नहीं देख सकते थे । उन्होंने धर्म के अनुसार राज्य का अधिकार प्राप्त करके यह नियम कर रखा था कि वे ऋत्विक् ब्राह्मण और पुरोहित आदि का सम्मान करते, उनसे अपने हित के उपदेश पूछते और उन्हीं के मत पर चलते थे । सुहोत्र को यह विदित हुआ कि प्रजापालन, दान, यज्ञ और

शत्रुओं को जीतना ही क्षत्रिय का धर्म है । इस धर्म के पालन में धन की आवश्यकता देखकर राजा ने धर्म के अनुसार धन प्राप्त करने की इच्छा की॥१॥३॥ विभिपूर्वक देगण की आराधना करने और बाहुबल से शत्रुओं को हराकर वे म्लेच्छों और डाकुओं से रिक्त पृथ्वीमण्डल का राज्य करते थे । उन्होंने अपने गुणों से सब प्राणियों को सन्तुष्ट कर रखा था । उनके राज्य में प्रति वर्ष मेघों से सुवर्ण की वर्षा होती थी । उनके राज्य में नदियाँ थी उनमें ग्राह आदि जलजीव

सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
 पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ॥ १० ॥
 काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान् ।
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्प्यथाः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि पौडशराजर्षये पश्यश्चाशक्तमोऽध्याय ॥ ५६ ॥

भी सुवर्णमय थे । उन नदिया का सुवर्ण सर्वसाधारण
 की सम्पत्ति था ॥४॥६॥मेघों से सुवर्णमय ग्राह और
 केरुड़े, अनेक प्रकार की मछलियाँ आदि अद्भुत बहु
 मूल्य पदार्थ बरसते थे । उनके राज्य में जोसों लम्बी-
 चौड़ी बानलियाँ थीं । हे राजेन्द्र ! अपने राज्य म सहस्रों
 सुवर्णमय ग्राह, मगर, मच्छ, कच्छ आदि देखकर स्वयं
 राजा सुहोत्र को बड़ा क्रिस्मय हुआ । उन्होंने कुरुजाङ्गल
 क्षेत्र में जाकर यज्ञ करना आरम्भ कर दिया और उन
 यज्ञों में ब्राह्मणों को अपने राज्य का वह अपरिमित सुवर्ण
 दे डाला । महाराज सुहोत्र ने इसी प्रकार सहस्र अथ-

मेघ यज्ञ, एक सौ राजसूय यज्ञ, क्षत्रियों के करने के
 अन्य अनेक पुण्यदायक यज्ञ तथा निरन्तर अन्यान्य
 काम्य (किसी कामना से किये जानेवाले) और
 नैमित्तिक (किसी कारण से किये जानेवाले) कर्म
 किये । हे सृज्य ! वे राजा सुहोत्र भी नहीं बचे ।
 सत्य, तप, दान और दया में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे
 पुत्र से अधिक पुण्यात्मा राजा सुहोत्र को भी एक
 दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा । अतएव तुम
 अपने उस पुत्र का शोक मत करो जिसने न यज्ञ
 किये न दक्षिणा दी और न वेद ही पढ़ा ॥७॥१२॥

द्रोणपर्व का उपपन्ना अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५७ ॥

नारद उवाच—राजानं पौरवं वीरं मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥
 तस्याऽश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात्समीयुषाम् ।
 शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नाऽऽसीत्संख्या विपश्चिताम् ॥ २ ॥
 वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः ।
 सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥
 नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः ।
 नित्योद्योगैश्च क्रीडन्निस्तत्र स्म पारिर्हिताः ॥ ४ ॥

सत्तावनरौ अध्याय ॥ ५७ ॥

नारद ने कहा— हे सृज्य ! सुना है कि महा-
 तेजस्वी पुरुषर्षी राजा अज्ञ को भी मृत्यु ने नहीं
 छोड़ा । उन राजर्षि ने दस लाख एक रत्न के चैन
 गोदे ब्राह्मणों को दान किये थे । उनके अश्वमेध यज्ञ
 में अनेक देशों से वेदपाठी, शास्त्रज्ञ, विधि के जानने-

वाले और ब्रह्मज्ञ अमन्य ब्राह्मण पण्डितों का समागम
 हुआ था । वे सभी वेदज्ञ, विद्वान्, ब्रह्मचारी, उदार,
 प्रियदर्शन ब्राह्मण राजा अज्ञ के यहाँ उत्तम भोजन,
 वस्त्र, गृह, शय्या, आसन, सवारी और दक्षिणा पाकर
 बहुत ही प्रसन्न हुए । नट, नृत्य करनेवाले, गन्धर्व,

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽस्यकालयत् ।
 द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥
 सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा ।
 यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥
 धूर्युजाश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः ।
 शतं शतसहस्राणि स्वर्णमाली महात्मनाम् ॥ ७ ॥
 गवां सहस्रानुचरान्दक्षिणामत्यकालयत् ।
 हेमशृङ्गयो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥
 दासीदासखरोष्ट्रांश्च प्रादादाजाविकं बहु ।
 रत्नानां विविधानां च त्रिविधांश्चाऽन्नपर्वतान् ॥ ९ ॥
 तस्मिन्संवितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
 तत्राऽस्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १० ॥
 अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः ।
 गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्याऽऽसन्सार्वाकामिकाः ॥ ११ ॥
 स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 अयज्ज्वानमदाक्षिणयमभिश्चेत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजर्वाये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

स्वर्णचूड़ाधारी सेनक, आरती करनेवाले लोग नित्य सेना और क्रीड़ा आदि के द्वारा उन ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया करते थे॥१॥ राजा ने प्रत्येक यज्ञ में यथा-समय ब्राह्मणों को अपार दक्षिणा दी थी । राजा ने दक्षिणा में सुवर्णमण्डित मनगड़े दस सहस्र हाथी दिये, पञ्चा-पताका सहित सुवर्णमय दस सहस्र रथ दिये और सुवर्णमय अलङ्कारों से भूषित सहस्रों कन्याएँ दी थीं । उन्होंने रथ, हाथी, घोड़े, घर, खेत, सुवर्ण-मालाओं से भूषित लाखों गाय-बैल और सहस्रों दास-दासियों दक्षिणा में दी थीं । पुण्यतर के जानेनेवाले विद्वानों का कथन है कि राजा ने सुवर्ण से जिनके सींग मढ़े थे, चौंदा से गुर मढ़े थे, योंमें वी दोगनी

आर बठड़े जिनके साथ थे, ऐसी बढ़िया दुधार सहस्रों गाय और दासियों, दास, गह्वर, ऊँड़, गन्धरी, पेड़ आदि असंख्य पशु, बहुविधिरत्न और अन्नों के पर्वत—यज्ञों की दक्षिणा में—सुपात्र ब्राह्मणों को दिये थे । उन यात्रिक राजा अङ्ग ने अपने धर्म के अनुसार शत्रु इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले और निर्दोष यज्ञ दिये थे । तुमसे अधिक धर्मात्मा, दानी, दयालु और सत्य निष्ठ और तुम्हारे पुत्र की अपेक्षा पुण्यात्मा राजा अङ्ग को भी एक दिन मृत्यु के मुर में जाना ही पड़ा । अतएव तुम अपने उस पुत्र का शोक मत करो, जिसने न यज्ञ किये, न दक्षिणा दी और न वेद ही पढ़ा॥८॥१२॥

— ० —

द्रोणपर्व या सत्तावनवो अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अथ अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

नारद उवाच—शिविमौशीनरं चापि मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत्पर्यवेष्टयत् ॥ १ ॥
 साट्टिद्वीपार्णववनानां रथघोषेण नादयन् ।
 स शिविर्वै रिपूत्रित्यं मुख्यान्निघ्नन्सपत्नजित् ॥ २ ॥
 तेन यज्ञैर्वहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः ।
 स राजा वीर्यवान्धीमानवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३ ॥
 सर्वमूर्धाभिपिक्तानां सम्मतः सोऽभवद्युधि ।
 अयजच्चाऽश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥
 निरर्गलैर्वहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः ।
 हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोत्राविभिस्तथा ॥ ५ ॥
 विविधां पृथिवीं पुण्यां शिवित्राह्णसात्करोत् ।
 यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥
 यावत्यः सिकता गाह्वयो यावन्मेरोर्महोपलः ।
 उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च ।
 तावतीरददद्वा वै शिविरौशीनरोऽध्वरे ॥ ७ ॥
 नो यन्तारं धुरस्तस्य कश्चिदन्यं प्रजापतिः ।
 भूतं भव्यं भवन्तं वा नाऽध्यगच्छन्नरोत्तमम् ॥ ८ ॥
 तस्याऽऽसन्निविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ॥ ९ ॥

अष्टावनवौ अध्यायः ॥ ५८ ॥

नारद ने कहा — हे सृज्य ! हमने सुना है कि उशीनर के पुत्र महाप्रतापी राजा शिवि को भी एक दिन मृत्यु के मुग में जाना पड़ा है। सब शत्रुओं को जीतकर उन्होंने पर्वत-द्वीप-समुद्र-वन-सहित इस पृथ्वीमण्डल पर अपना अधिकार कर लिया था। वे अपने रथ के दाय से पृथ्वीमण्डल को केसात हुए दिग्विजय कर चुके थे। राजा शिवि ने दिग्विजय में बहुत सा धन प्राप्त करने के पश्चात् अनेक प्रकार के यज्ञ किये, जिनमें ब्राह्मणों को बहुत-बहुत दक्षिणा दी गई थी। उन्होंने युद्ध में अन्य मनुष्यों की हिमा किये बिना ही बहुत सा धन प्राप्त किया था। सब शत्रुपक्षेष्ट मूर्धाभिपिक्त राजा लोग शिवि को युद्ध में

अपने समान और मनुनीय समझते थे। ॥ १ ॥ भूमिमा शिवि ने अपने बाहुबल से पृथ्वीमण्डल के राजाओं को जीत लिया और फिर निर्विघ्नरूप से बहुकल्पदायक अश्वमेध यज्ञ किया था। उन्होंने उस यज्ञ में हाथी, घोड़े, मृग, गाय, बकरे, भेड़ आदि पशु और मच्छर कीटि निष्कमुखा तथा जीरिहा के लिए सम्पूर्ण भूमि भी ब्राह्मणों को दे दी थी। वर्षों में जिनकी बुद्धि पृथ्वी पर गिनी है, आज्ञासमण्डल में जितने नारे हैं, गङ्गा में जितने वायु के बल हैं, सुमेरु पर्वत पर जितने दिग्ग-मण्ड हैं और समुद्र में जितने रत्न और जीव-जन्तु हैं उनकी ही अच्युत गांयें उन्होंने यज्ञ में दान की कीं ॥ २ ॥ आत्मगान् ब्रह्म ने भूत, भविष्य और वर्तमान में ऐसा

हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः ।
 शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥
 नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाहृदाः ।
 तस्यऽऽसन्यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥
 पिवत स्नात स्वादध्वमिति यद्रोचते जनाः ।
 यस्मै प्रादाद्वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥
 अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः ।
 यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥
 एतांलुब्ध्वा वरानिष्टाञ्जिबिः काले दिवं गतः ।
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरस्त्रया ॥ १४ ॥
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्प्यथाः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति व्याहरन् ॥ १५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि पेंडशराजकायै अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

प्रतापी कोई राजा अपनी सृष्टि में नहीं देख पाया, जो महाराज शिवि के कार्यभार को सँभाल सके। नरपति शिवि ने अनेक प्रकार के यज्ञ किये थे, जिनमें सब प्रार्थियों की इच्छाएँ पूर्ण की गई थीं। ८।९॥ उन यज्ञों में खन्ने (यूप), आसन, घर, दीवार, फाटक आदि सब सुवर्ण के थे। खाने-पाने की सब सामग्री स्वादिष्ट बनी थी। हजारों-लाखों की संख्या में प्रियदादी विद्वान् ब्राह्मण उपस्थित हुए थे। यज्ञस्थल में दुग्ध-ग्ही के तालाब भरे हुए थे, अन्न के पर्वत के समान ढेर लगे थे। नाना प्रकार की खाने-पाने की वस्तुएँ भरी पड़ी थीं। चारों ओर यही सुन पड़ता था “कि स्नान करो, खाओ,

पियो” उन दानी राजा के धर्मकायों से सन्तुष्ट होकर रुद्रदेव ने यह कहकर उनकी वरदान दिया था कि हे राजेन्द्र ! तुम्हारी सम्पत्ति, श्रद्धा, कीर्ति, धर्म-कर्म, सब प्राणियों का तुम पर स्नेह का भाव और स्वर्ग अक्षय हो। इस प्रकार इच्छा के अनुरूप वरदान प्राप्त करके नरपति शिवि भी, समय आने पर, स्वर्गलोक को गये। हे सृज्य ! सत्य, तप, दया और दान में तुमसे अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा राजा शिवि को भी शून्य ने नहीं छोड़ा। अतएव तुम उस पुत्र के लिए बुरा शोक मत करो, जिसने न यज्ञ किये, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही किया। १०।१५॥

द्रोणपर्व का अष्टावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

अथ एकोनपण्डितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

नारद उवाच—रामं दाशरथिं चैव मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवोरसान् ॥ १ ॥
 असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि ।
 यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशापितुरच्युतः ॥ २ ॥

उनसठवाँ अध्याय ॥ ५९ ॥

नारद ने कहा—हे महाराज ! हमने सुना है कि राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को भी एक दिन

मृत्यु के वश होना पड़ा। मय प्रजा महामा रामचन्द्र को अपने सगे पुत्र से भी बढ़कर प्यार करती थी।

वने वनितया सार्धमवसहृद्धमणाग्रजः ।
 जघान च जनस्थाने राक्षसान्मनुजर्षभः ॥ ३ ॥
 तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश ।
 तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४ ॥
 जहार भार्या वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम् ।
 तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥ ५ ॥
 जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।
 सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥
 जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।
 स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥
 व्याप्य कृत्स्नं जगत्कीर्त्या सुरर्विगणसेवितः ।
 स प्राप्य विविधं राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥
 आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
 निर्गलं सजारूढ्यमश्वमेधं च तं विभुः ॥ ९ ॥
 आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
 अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥
 क्षुत्पिपासेऽजयद्रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
 सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥
 अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्वभौ ।
 ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥ १२ ॥
 पृथिव्यां सहवासोऽभूद्रामै राज्यं प्रशासति ॥ १२ ॥

सब गुणों से अत्यन्त महानिजस्वी रामचन्द्र ने पिता
 की आज्ञा के अनुसार स्त्री के साथ चोदह वर्ष तक
 वनवास किया । वहाँ जनस्थान में रहते समय वहाँ
 के निवासी तपस्वियों की रक्षा के लिए उन्होंने चोदह
 सहस्र राक्षसों को मारा। ११॥ वहीं रहने के समय
 गन्धर्व और राम दोनों भाइयों को माया में मोहित
 करके राक्षसराज रावण, राम की प्यारी पत्नी, सीता
 को हर ले गया । महाबलीशाली श्रीरामचन्द्र ने रावण
 के उस आराधन में अत्यन्त क्रुश होकर उस पर
 पड़ाई कर दी और अन्त में उस शत्रुओं में न हारने-

वाले, देवता-देवियों के लिए अप्रिय, देव-ब्राह्मण-क्षेत्री
 दुरात्मा रावण को और उसके बराबर भर की बुद्धिमान
 में मार डाला। १२॥ राजा के हितैषी, देवविगण-सेवित,
 दाना आदि के द्वारा सम्मानित रामचन्द्र की पवित्र
 उज्ज्वल कीर्ति अब तक पृथ्वीमण्डल भर में व्याप्त
 हो रही है । सब प्राणियों के हितैषी महात्मा राम-
 चन्द्र ने बहुविध राज्य प्राप्त करके धर्म के अनुसार
 प्रजा को शासन किया था । उन्होंने महापुत्र अश्व-
 मेध किया । गृन्धारा आदि में इन्द्र तृप्त कर दिये
 गये थे । रामचन्द्र ने और भी कई प्रकार के यज्ञ किये

नाऽहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ।
 प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ १३ ॥
 पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदाऽनर्थाश्च नाऽभवन् ॥ १४ ॥
 दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।
 वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥
 हव्यं कव्यं च त्रिविधं निष्पूर्त्तं हुतमेव च ।
 अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥
 नाऽप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाऽकाले ज्वलनोऽदहत् ।
 अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाऽभवंस्तदा ॥ १७ ॥
 शिष्टेष्टप्राज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाऽभवन् ।
 स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणशिताम् ॥ १८ ॥
 प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः ।
 सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥
 न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन् ।
 श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥
 आजानुबाहुः सुभुजाः सिंहस्कन्धो महाबलः ।
 दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
 सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत् ।
 रामो रामो राम इति प्रजानामभवत्कथा ॥ २२ ॥

॥७॥१०॥यज्ञकाल में भूल व्यास को जीतकर वे सब प्रकार की व्याधियों से मुक्त अर्थात् नीरोग थे । असाधारण गुणवान् और अपने तेज से प्रकाशमान रामचन्द्र उस समय सब प्राणियों से बढ़कर शोभायमान हुए । महात्मा राम को राज्य ऐसा था कि पृथ्वी पर ऋषि, देवता और मनुष्य एकत्र रहा करते थे । प्राणियों के शरीर में तेज, प्राण, अपान, उदान और सगान वायु की क्रमी न थी॥११॥१२॥सब तेजस्वी पदार्थ प्रकाशमान थे, कोई निस्तेज नहीं दिखाई पड़ता था । कभी कोई अनर्थ या अनिष्ट नहीं होता था । सब प्रजा पूर्ण आयु का उपभोग करती थी । कोई युवा अस्था में नहीं मरता था । वेदोक्त विधि के अनुसार दिये गये विविध हव्य, कव्य, निष्पूर्त और आहुत

सामग्री को देवगण प्रसन्नता के साथ ग्रहण करते थे । रामचन्द्र के राज्य में डाँस मच्छर और खूनी जानवर आदि का उत्पात नहीं था । न तो कोई जल में डूबता था और न कोई अग्नि में जलकर मरता था । राज्य भर में कोई धर्महीन, लोभी या मूर्ख देखने को नहीं था । सब वर्णों की प्रजा सदा सज्जनयों, अपने-अपने इष्ट कार्य में लगी रहती थी और अपने-अपने कर्तव्य का पालन करती रहती थी॥१४॥१५॥जिस समय जनस्थान में राक्षसों ने खाहा स्वधा और पूजा का लोप करना प्रारम्भ कर दिया था उस समय महात्मा रामचन्द्र ने ही उन्हें मारकर पितरों और देवताओं को स्वाहा-स्वधा और पूजा फिर दिखाई दी । रामचन्द्र के राज्य-काल में मनुष्यों के सहस्र (अर्थात् बहुत) पुत्र होते

रामाद्रामं जगद्भूद्रामे राज्यं प्रशासति ।
 चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥
 आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाऽष्टधा ।
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥
 पुत्रापुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 अयज्जानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति व्याहरन् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

ये और सब सहस्र वर्ष तक जीवित रहते थे । वड़े को छोटे का आदर नहीं करना पड़ता था ॥ १८।२० ॥ इयाम-वर्ण, लाल नयनोंवाले, मरत हाथी के समान पराक्रमी, सिंह-स्कन्ध, आजानुबाहु, बली, सबके हितैषी राम ने युग रहकर ग्यारह सहस्र वर्ष तक राज्य किया । उनके राज्यकाल में सब प्रजा राम का ही नाम जपा करती थी और सम्पूर्ण जगत् अत्यन्त सुन्दर हों रहता था । महाराम रामचन्द्र ने अन्त को अपने दो पुत्रों और छः भतीजों को राज्य बाँट दिया । उनके पश्चात्

अथ भर के स्वेदज, अण्डज, उड्गिद् और जरायुज जाति के चतुर्विध प्राणियों को साथ लेकर वे स्वर्ग को चले गये ॥ २०।२४ ॥ हे सृज्य ! तप, सत्व, दया और दान में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से कहीं अधिक पुण्यात्मा महात्मा रामचन्द्र को भी सृष्ट्य की मर्यादा माननी पड़ी है । अतएव अब तुम उस पुत्र के लिए वृथा शोक मत करो, जिसने न यह किया न दक्षिणा दी और न वेदाध्ययन ही किया ॥ २४।२५ ॥

द्रोणपर्व का उनमठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

अथ पष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

नारद उवाच—भगीरथं च राजानं मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ॥ १ ॥
 यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः ।
 राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥
 सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ।
 रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३ ॥
 सहस्रमश्वैश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः ।
 अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चाद्जाविकम् ॥ ४ ॥
 तेनाऽऽक्रान्ता जनौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत् ।
 उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याऽङ्गे निपमाद ह ॥ ५ ॥

नाटयौ अध्यायः ॥ ६० ॥

नारद ने कहा महाराज भगीरथ वड़े प्रतापी थे; पर उन्हें भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा । भगीरथ ने इन्ने यज्ञ किया थे कि उनके यज्ञों के सुवर्ण के समान गाँव के तट पर दूर-दूर तक थे । उन्होंने भी

राजाओं और राजपुत्रों को परामर्श करके सुवर्ण के आभूषणों में अड्डहून दम न्याय सुन्दरी कन्याएँ प्राप्त कीं; पर कन्याएँ एक-एक रथ पर बैठी हुई थीं और प्रत्येक रथ में चार-चार उत्तम अड्डहून घोड़े

तथा भार्गीरथी गङ्गा उर्वशी चाऽभवत्पुत्रा ।
 दुहितृत्वं गता राज्ञः पुत्रत्वमगमत्तदा ॥ ६ ॥
 तां तु गार्थां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
 पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्युवादिनः ॥ ७ ॥
 भार्गीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
 गङ्गा समुद्रगा देवी व्रत्रे पितरमीश्वरम् ॥ ८ ॥
 तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलंकृतः ।
 सम्यक्परिग्रहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥ ९ ॥
 यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्राऽऽत्मनः प्रियम् ।
 भार्गीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राऽददद्दृशी ॥ १० ॥
 नाऽदेयं ब्राह्मणस्याऽऽसीद्यस्य यत्स्यात्प्रियं धनम् ।
 सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥
 येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
 तेनाऽवस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वा राजमीश्वरम् ॥ १२ ॥
 स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्प्यथाः ॥ १३ ॥
 अयज्ज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति व्याहरन् ॥ १४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकण्ठे पष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

जुते हुए थे । प्रत्येक रथ के पीछे सुवर्णमालाभूषित
 सौ हाथी थे । प्रत्येक हाथी के माथे सहस्र घोड़े और
 प्रत्येक घोड़े के साथ सुवर्णालङ्कृत सौ गजें थीं ।
 गजों के साथ बहुत सी बहुमूल्य बकरियाँ अथवा
 भेड़ें थीं ॥ १४ ॥ राजा भार्गीरथ के भारी दक्षिणा देने
 के समय इतनी भीड़ हुई कि उस भीड़ के आक्रमण
 से व्यथित और व्याकुल होकर भगवती गङ्गा उन राजा
 की गोद में बैठ गई । तभी से थे, भार्गीरथ की कन्या
 के अर्प में भार्गीरथी नाम से प्रसिद्ध हुई है । पुत्र के
 समान ही गङ्गा ने भार्गीरथ के पुरखों को नरक से
 उबारा है । भगवती भार्गीरथी जिस स्थान पर राजा
 भार्गीरथ की जाँघ पर बैठ गई थीं, वह स्थान उर्वशी-
 तीर्थ के नाम से अब तक प्रसिद्ध है । हे सृञ्जय !
 देवता, मनुष्य और पितृगण के आगे सूर्यसदृश तेजस्वी
 मधुरभाषी गन्धर्वगण इस गाथा को गाते हैं ॥ १६ ॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार भगवती गङ्गा ने इक्ष्वाकुकुल-
 चूड़ामणि, बहुत बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों के करनेवाले,
 महात्मा भार्गीरथ की अपना पिता बनाया है । भार्गीरथ की
 यज्ञशाला की इन्द्र और वरुण आदि लोकपाल सुशोभित
 करते थे और सब प्रकार के यज्ञ के विघ्नों को मिटाते थे ।
 ब्राह्मण लोग जहाँपर जिस वस्तु की माँगने थे वहाँपर उसी
 समय वह वस्तु उन्हें भार्गीरथ राजा देते थे। कोई ऐसी वस्तु
 नहीं थी, जिसे राजा ब्राह्मणों को अदेय समझते हों । वे
 महात्मा अन्त को ब्राह्मणों के प्रसाद से ब्रह्मलोक को
 गये ॥ ७ ॥ ११ ॥ मरीचिप महर्षिगण, मोक्ष और स्वर्ग की
 प्राप्ति के लिए, सूर्य के समान ब्रह्मविद्या और कर्मकाण्ड
 में निपुण महात्मा भार्गीरथ के समीप आते और उनकी
 उपासना करते थे ॥ १२ ॥ हे सृञ्जय ! सत्य, दया, दान
 और तप में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर
 पुण्यात्मा भार्गीरथ भी मृत्यु से नहीं बचे । इस कारण

यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।
 राजानं दृढधन्वानं दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥
 येऽपश्यन्भूरिदाक्षिण्यं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।
 पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ॥ १० ॥
 स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिवताऽश्रीत खादत ।
 स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकाण्डे एकपठितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

दिलीप ने रथ पर चढ़कर जल के ऊपर युद्ध किया था; उनके रथ के पहिये जल में नहीं डूबते थे। यह एक अद्भुत कार्य था, जिसे अन्य राजा लोग नहीं कर सकते थे। दिलीप के अतिरिक्त यह अद्भुत क्षमता और बिल्ली में नहीं थी। दृढ़धनुर्धर, सत्यवादी, बहुत दक्षिणा देकर यज्ञ करनेवाले राजा दिलीप के दर्शन भर जिन मनुष्यों ने किये थे उन्हें भी स्वर्गलोक प्राप्त हुआ था। राजा दिलीप के महल में संदेव धनुष की डोरी का शब्द,

वेदपाठ की घुमि और भोजन करो, खाओ, पियो इत्यादि का शब्द सुनाई पड़ता था॥ ७१ ॥ हे सृञ्जय! वे तुम्हारी अपेक्षा थोड़े सत्यवादि, तपस्वी, दयालु और दानी तथा तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा राजा दिलीप भी मृत्यु के मुख में जाने से नहीं बचे। इस कारण अब तुम अपने उम पुत्र की मृत्यु का बड़ा शोक मत करो जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही किया॥ ११ ॥ १२ ॥

द्रोणपर्व का इसठळीं अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

अथ द्विपठितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

नारद उवाच—मान्धाता चैयौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
 देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥
 ये देवावाश्विनौ गर्भोत्पितुः पूर्वं चकपेतुः ।
 मृगयां विचरन् राजा तृपितः क्लान्तबाहनः ॥ २ ॥
 धूमं दृष्ट्वाऽगमत्सत्रं पृथदाज्यमवाप सः ।
 तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३ ॥
 गर्भाद्धि जहत्तुर्देवावाश्विनौ भिपजां वरौ ।
 तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥ ४ ॥

बासठळीं अध्याय ॥ ६२ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय! सुनने में आता है कि युवनाश्व के पुत्र और सब देवताओं, दानवों और मनुष्यों की जीतनेवाले प्रतापी राजा मान्धाता को भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना पड़ा था। वे अपने

पिता की कोख से उत्पन्न हुए थे और स्वयं अश्विनी-कुमारों ने उन्हें पिता के पेट से निकाला था। उसका वृत्तान्त यों है कि मान्धाता के पिता युवनाश्व एक समय शिकार खेलने के लिए वन में गये थे। वहाँ

अन्योन्यमब्रुवन्देवाः कमयं धास्यतीति वै ।
 मामेवाऽयं धयत्वग्रे इति ह स्माऽऽह वासवः ॥ ५ ॥
 ततोऽगुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत्पयोऽमृतम् ।
 मां धास्यतीति कारुण्याद्यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥ ६ ॥
 तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याऽद्भुतं कृतम् ।
 ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महत्तमनः ॥ ७ ॥
 तस्याऽऽस्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चाऽस्त्ववत्
 अपिवत्पाणिमिन्द्रस्य सा चाऽप्यह्नाऽभ्यवर्धत ॥ ८ ॥
 सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान् ।
 इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाहा स व्यजीजयत् ॥ ९ ॥
 धर्मात्मा धृतिमान्वीरः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ।
 जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥
 असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत् ।
 उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥
 तत्सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ।
 सोऽश्वमेधशतैरिष्टा राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥
 अददद्रोहितान्मत्स्यान्ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते ।
 ह्यैरण्यो जनोत्सेधानायताञ्शतयोजनम् ॥ १३ ॥

उनके बाह्य धर गये और उन्हें स्वयं भी तृप्ता लगी ।
 दूर से यज्ञ का धुआँ देखकर वे एक यज्ञशाला में पहुँचे ।
 वहाँ उन्हें कलश में रखवा हुआ मन्त्रों से पवित्र
 "गृपदात्रय" प्राप्त हुआ । वे उमी को पी गये । उमरेक
 प्रभार से शूरनाश्व के गूर्य-महेश तेजस्वी गर्भ देग
 पड़ा ॥ १३ ॥ दिव्यताओं के बीच अधिनीकुमारों ने राजा
 की यह दशा देखकर, उनके प्राणों की रक्षा के लिए
 उनकी कोम को काटकर एक परम सुन्दर कुमार बाहर
 निकाला, और उसे राजा की गोद में बिठा दिया ।
 देवतुष्य बटशाली नये कुमार को पिता की गोद में
 बैठे देग सर परस्पर कहने लगे कि यह अभी का उगन
 हुआ बाटक नया पीकर जियेगा । तब इन्द्र ने कहा—
 'ये बाटक मुझसे जियेगा । इतना कहते ही इन्द्र की
 उँगलियों में अमृतमय दूध उगन हो गया । इन्द्र ने

करुणा करके कहा या कि यह बाटक मेरी उँगलियों
 जियेगा; सो उनके "मान्धाता" इस कथन के अनुसार
 देवताओं ने शूरनाश्व के पुत्र का नाम मान्धाता ही
 रख दिया ॥ १३ ॥ अद्भुत नामशक्ति "मान्धाता" बाटक
 के मुख में इन्द्र के हाथ में दूध और धी की धाराएँ
 गिरने लगी । इन्द्र का हाथ पीने के कारण मान्धाता
 में दिव्य शक्ति का सञ्चार हुआ और वे निस्स प्रति
 शीघ्रता के साथ बढ़ने लगे । वे चाण्ड दिन में बारह
 वर्ष के बाटक के समान हो गये । महापराक्रमी मान्धाता
 ने एक ही दिन में सम्पूर्ण पृथ्वीपण्डित की जीत
 लिया ॥ १३ ॥ धर्मोत्सा, धीर, मत्स्यवादी, जितेन्द्रिय
 और महापराक्रमी मान्धाता ने जनमेजय, सुधन्वा, गय,
 पूरु, बृहद्रथ, अग्नि और नृग आदि बड़े-बड़े पराक्रमी
 नराजियों को बाटक और धनुष की महायत्ना में

बहुप्रकारान्सुखादून्भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान् ।
 अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥
 भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः ।
 घृतहृदाः सूपपक्वा दधिफेना गुडोदकाः ॥ १५ ॥
 रुरुधुः पर्वतान्नयो मधुक्षीरवहाः शुभाः ।
 देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥
 विप्रास्तत्राऽऽगताश्चाऽऽसन्वेदवेदाङ्गपारगाः ।
 ब्राह्मणा ऋषयश्चाऽपि नाऽऽसन्स्तत्राऽविपश्चितः ॥ १७ ॥
 समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः ।
 स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामाऽस्तं तदा नृपः ॥ १८ ॥
 गतः पुण्यकृतां लोकान्ध्याप्य स्वयंशसा दिशः ।
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १९ ॥
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 अयज्जानमदाक्षिण्यमभिश्चेत्येति व्याहरन् ॥ २० ॥

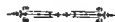
इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि पौंडराजकर्णये द्विपठितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

जीत लिया। जहाँ से सूर्य का उदय होता है और जहाँ पर उनका अस्त होता है वहाँ से वहाँ तक युवनाश्व के पुत्र महाराज मान्धाता का क्षेत्र कहलाता है। मान्धाता ने सौ अश्वमेध और इतने ही राजसूय यज्ञ किये थे। उन्होंने यज्ञ की दक्षिणा में ब्राह्मणों को सुवर्ण-पूर्ण रोहित और मत्स्य देश दान किये थे, जो बहुत ऊँचे और श्रेष्ठ समझे जाते थे। उनके भीतर पश्चिम दिशा की खानें थीं॥१०॥११॥उनके यज्ञ में नाना प्रकार के भक्ष्य-भोज्य अन्न के पर्वत ऐसे ऊँचे, ढेर लगे हुए थे। ब्राह्मणों के अतिरिक्त जो और लोग आये हुए थे वे भी उन स्वादिष्ट आहारों से तृप्त होकर परम आनन्द को प्राप्त हुए थे। उस यज्ञशाला में अनेक प्रकार की खाने-पीने की सामग्रियों के पर्वतकार ढेर लगे थे। घी के कुण्ड, दही का फेन, विविध भोज्य पदार्थों की कीचड़ और गुड़ का जल जिनमें था ऐसी मधु-क्षीर-वाहिनी नदियाँ अब के पर्वतों को घेरे हुए

थीं। उनके यज्ञ में असंख्य देवता, असुर, मनुष्य, नाग, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी आदि प्राणी आये थे। वेद और वेदाङ्ग के पण्डित ब्राह्मणों और ऋषियों का बड़ा भारी जमघट था। वहाँ कोई ऐसा न था, जो शास्त्रों का ज्ञाता न हो॥१४॥१५॥महातेजस्वी मान्धाता समुद्रों समेत घन रह पूर्ण समग्र पृथ्वीमण्डल ब्राह्मणों को देकर और सब दिशाओं में अपनी पवित्र उज्ज्वल कीर्ति फैलाकर अन्त को स्वर्गप्राप्ति हुए। वे यह शरीर त्यागकर अपने पुण्य से जीते हुए लोकों में गये॥१८॥१९॥हे सृज्य ! तप, सत्य, दया, दान में तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से बढकर पुण्यात्मा महाराज मान्धाता भी जब मृत्यु के मुख में जने से नहीं बचे तब तुमको अपने उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक न करना चाहिए, जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही किया॥१९॥२०॥

—०—

द्रोणपर्व का बासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥



अथ त्रिपष्टिनमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

नाद उवाच—ययातिं नाहुपं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
 राजसूयशतैरिष्टा सोऽश्वमेधशतेन च ॥ १ ॥
 पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
 अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः ।
 अग्निष्टोमैश्च त्रिविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥ २ ॥
 अब्राह्मणानां यद्विक्तं पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।
 तत्सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥ ३ ॥
 सरस्वती पुण्यतमा नदीनां तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च ।
 ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे घृतं पयोदुदुहुर्नाहुपाय ॥ ४ ॥
 व्यूहे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम् ।
 चतुर्धा व्यभजत्सर्वा चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
 यज्ञैर्नानाविधैरिष्टा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम् ।
 देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥ ६ ॥
 देवारण्येषु सर्वेषु विजहाराऽमरोपमः ।
 आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥ ७ ॥
 यदा नाऽभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित् ।
 ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद्वनम् ॥ ८ ॥

तिरस्रवौ अध्याय ॥ ६३ ॥

नारद ने कहा—हे सृञ्जय ! सुना जाता है कि
 महाराज नहुप के पुत्र ययाति भी मृत्यु के मुख में जाने
 में नहीं बचे । उन महाराम ने सो अश्वमेध, मी राजसूय,
 सो वाजपेय, सहस्र पुण्डरीक, याग, इतने ही अतिरात्र,
 असंख्य चातुर्मास्य, त्रिविध अग्निष्टोम यज्ञ और बहुत
 दक्षिणावाले अन्य अनेक यज्ञ करके ब्राह्मणदेवी मन्त्रियों
 की सम्पत्ति और पृथ्वी जो कुछ थी सो सब उनसे
 छीनकर ब्राह्मणों को दे दी थी ॥ १३ ॥ राजा ययाति
 जिस समय पुण्य यज्ञ कर रहे थे उस समय पवित्र
 नदी सरस्वती, समुद्र, नदी, पर्वत आदि सब जल की
 जगह दुग्ध-दही देकर उनकी सहायता करते थे ।
 ययाति ने देवासुर संग्राम के समय देवताओं की सहा-
 यता की थी और यज्ञ के समय सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल

के चार भाग करके चारों ऋषिजों को दे दिये थे ।
 उन्होंने बहुत से यज्ञ किये । उनके शर्मिष्ठा और (शुक्र
 की कन्या) देवयानी नाम की दो पत्नियाँ थीं, जिनके
 गर्भ से धर्मानुसार उन्होंने कई पुत्र उत्पन्न किये ॥ १४ ॥
 देवसदृश राजा ययाति, दूसरे इन्द्र की भाँति, अपनी इच्छा
 के अनुसार सब लोकपालों के उद्यानों में सर किया करते
 थे । बहुत समय तक त्रिपयभोग करने पर भी जब
 उनकी त्रिपयवामना शान्त नहीं हुई तब वेद-शास्त्र
 के जानेवाले राजा ययाति एक गाथा गाते हुए खियों
 सहित वन को चले गये । बानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश
 करते समय ययाति ने जो गाथा गाई थी वह यह
 है कि “पृथ्वीमण्डल भर पर धान्य, यव, सुर्ण, पशु,
 स्त्री आदि जितनी भोग की सामग्री है वह सब यदि

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
 नाऽलमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ९ ॥
 एवं कामान्परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च ।
 पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० ॥
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरत्वया ।
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्पथः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति व्याहरन् ॥ ११ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये त्रिपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

एक ही मनुष्य को भोग करने के लिए मिल जाय तो भी उसे तृप्ति नहीं होगी । यह जानकर मनुष्य को वैराग्यपूर्वक शान्ति का मार्ग ग्रहण करना चाहिए।” महाराज ययाति इस प्रकार विरक्त होकर, सब विषयों की वासना छोड़कर, धैर्यधारणपूर्वक वन को चले गये । वन को जाने समय उन्होंने छोटे बालक पूरु को राज्य सौंप दिया था॥७१०॥हे सृज्य ! वन

में जाकर हरि को भजते हुए अन्त समय वे भी मृत्यु के वशवर्ती हुए । तुमसे तप, दया, दान और सत्य में अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा महाराज ययाति को भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा । इसलिए तुम आने उस पुत्र की मृत्यु का शोक न करो, जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और न वेद ही पढ़ा॥११॥

द्रोणपर्व का तिरसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

अथ चतुःपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

नारद उवाच—नाभागमम्बरीपं च मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् ॥ १ ॥
 जिगीपमाणाः संग्रामे समन्ताद्वैरिणोऽभ्ययुः ।
 अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाऽशिवा गिरः ॥ २ ॥
 बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च ।
 छत्रायुधध्वजरथांश्छित्त्वा प्रासान्गतवयथः ॥ ३ ॥
 त एनं मुक्तसन्नाहाः प्रार्थयन्नीवितैपिणः ।
 शरण्यमीयुः शरणं तवाऽऽस्म इति वादिनः ॥ ४ ॥

चौसठवाँ अध्याय ॥ ६४ ॥

नारद ने कहा—हे सृज्य ! सुनते हैं कि प्रतापी महाराज अम्बरीप को भी मृत्यु ने नहीं छोड़ा । राजा अम्बरीप ने अकेले ही दस लाख वीर राजाओं से युद्ध किया था । अस्त्र-शस्त्र के युद्ध में निपुण, घोरदर्शन वैरी राजाओं ने जय प्राप्त करने की अभिलाषा से युद्धभूमि में चारों ओर से कटु वचन कहते-

कहते अम्बरीप को घेर लिया था । किन्तु अम्बरीप ने अपने बाहुबल, स्फूर्ति और अस्त्रबल से उन सबको परास्त कर दिया । उन शत्रुओं के छत्र, शस्त्र, ध्वजा, रथ, वाहन आदि को नष्ट कर दिया, बहुतों को मार भी डाला । इस प्रकार वे सब शत्रु अम्बरीप के अधीन हो गये । मृत्यु से जो शत्रु बच रहे थे वे अपने

स तु तान्वशगान्कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम् ।
 ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथाऽनघ ॥ ५ ॥
 वुमुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा ।
 तस्मिन्यज्ञे तु विप्रेन्द्राः सन्तुष्टाः परमार्चिताः ॥ ६ ॥
 मोदकान्पूरिकापूपान्स्वादुपूरुणांश्च शङ्कुलीः ।
 करम्भान्पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥
 सूपान्मैरेयकापूपान्रागखाण्डवपानकान् ।
 मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ॥ ८ ॥
 घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च ।
 फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥ ९ ॥
 मादनीयानि पापानि विदित्वा चाऽऽत्मनः सुखम् ।
 अपिवन्त यथाकामं पानपा गीतवादिनैः ॥ १० ॥
 तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षात्रा हृष्टाः पठन्ति च ।
 नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥
 तेषु यज्ञेष्वम्बरीपो दक्षिणामत्यकालयत् ।
 राज्ञां शतसहस्राणि दशप्रयुतयाजिनाम् ॥ १२ ॥
 हिरण्यकवचान्सर्वांश्चेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
 हिरण्यस्यन्दनारूढान्सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३ ॥
 ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
 मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान्राजपुत्रशतानि च ॥ १४ ॥

प्राण बचाने के लिए, कच पेंकर "हम आपके शरणगत हैं" कहते हुए, अम्बरीष के आश्रय में आ गये॥१।४॥महाबलशाली इन्द्र-सदृश राजा अम्बरीष ने इस प्रकार सब राजाओं को अपने अधीन करने सारी पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लिया और फिर शास्त्रविधि के अनुसार सैकड़ों यज्ञ किये । उन यज्ञों में जो लोग आये थे उनको अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन कराये गये थे । विधिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा की गई थी और वे लोग अच्छी तरह स्वादिष्ट, अनेक प्रकार के, लड्डू, पूरी, पुए, कचोड़ी, करम्भ (दही-चिउरा), पृथुमृद्वीक, अच्छी तरह बनाये गये विभिन्न अन्न, कच्ची रमोई, भैर्यक (मदिरा), रागखाण्डव,

शरन्न, और अनेक प्रकार की मिठाइयाँ, घी, मधु, दुग्ध, दही, जल, रमि फल, कन्द मूल आदि विविध पदार्थ खा पीकर परम प्रसन्न होते थे । मद्य-पान को पापजनक जानकर भी सुखप्राप्ति के लिए बहुत से लोग इच्छानुसार मदिरा पीते थे और प्रसन्नतापूर्वक गाते बजाते थे॥१०॥मदिरा और अन्य नशों को खा-पीकर नशे में मस्त रहने मनुष्य, अम्बरीष की प्रशंसा से पूर्ण, कपिता और गाथा गाते और हर्ष के मारे नाचने लगते थे । हे रात्रेन्द्र ! प्रतापी अम्बरीष ने अपने यज्ञों में बहुत दक्षिणा दी थी । उन्होंने ने विद्वान् ब्राह्मणों को दस अयुत यज्ञ करानेवाले एक लाख ऐसे राजा दान किये थे, जो सुवर्ण के

सदण्डकोशनिचयान्ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
 नैवं पूर्वं जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चाऽपरे ॥ १५ ॥
 यदम्बरीपो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
 इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥
 स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 अयज्ज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चैत्येति व्याहरन् ॥ १७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि पौडशराजकाये चतुःपठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

कवच, श्वेत छत्र और कल्लंगी से शोभित थे सुवर्ण-
 मय रथों पर सवार थे और जिनके साथ उनके सब
 अनुचर आदि भी थे । अम्बरीष ने यह अद्भुत ही
 काम किया जो दण्ड-कोप-सामग्रीसहित मूर्धाभिविक्त
 सैकड़ों राजा और राजपुत्र दक्षिणा में दे डाले ।
 महर्षियों ने प्रसन्न होकर कहा था कि राजा अम्बरीष
 ने जैसी अपरिमित दक्षिणा दी और अद्भुत यज्ञ किये,
 वैसी दक्षिणा न किसी ने दी होगी और न कोई आगे

दे मकेगा॥११।१६॥हे सृञ्जय । वे राजा अम्बरीष
 भी अन्त का मृत्यु के अर्धान हुए । तप, सत्य, दया,
 दान में तुमसे बड़े हुए और तुम्हारे पुत्र से अधिक
 पुण्यात्मा राजा अम्बरीष भी जन्म मृत्यु से नहीं बचे तब
 तुमको उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक नहीं करना
 चाहिए जिसने न यज्ञ किया, न दक्षिणा दी और
 न वेदाध्ययन ही किया॥१७॥

—०—

द्रोणपर्व का चौसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

अथ पञ्चपठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

नारद उवाच—शशबिन्दुं च राजानं सृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
 ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान्सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥
 तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
 एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ॥ २ ॥
 ते कुमारः पराक्रान्ताः सर्वे नियुक्तयाजिनः ।
 राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥
 हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
 सर्वेऽश्वमेधैरीजाना कुमारः शशबिन्दवः ॥ ४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय ॥ ६५ ॥

नारद जी कहते हैं—हे सृञ्जय ! सुना जाता
 है कि महाप्रतापी राजा शशबिन्दु भी मृत्यु से नहीं
 बचे । सत्यविक्रमी श्रीमान् शशबिन्दु ने अनेक प्रकार
 के बड़े-बड़े यज्ञ करके देवताओं और ब्राह्मणों को
 सन्तुष्ट किया था । शशबिन्दु के एक लाख रानियों
 थी । एक-एक रानी के गर्भ से राजा के एक-एक

सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे । वे राजकुमार अत्यन्त
 पराक्रमी, वेदशास्त्रविशारद, हिरण्यकवचों से भूषित
 और श्रेष्ठ धनुर्धर योद्धा थे । उन राजकुमारों ने भी
 पृथक्-पृथक् विधिपूर्वक बहुत से अश्वमेध यज्ञ और
 अन्य प्रकार के दस-दस लाख यज्ञ किये थे॥१।४॥
 राजा शशबिन्दु ने स्वयं अश्वमेध करके उसकी दक्षिणा

तानश्चमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत्पिता ।
 शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५ ॥
 राजपुत्रं तदा कन्यास्नपनीयस्वलंकृताः ।
 कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥ ६ ॥
 रथे रथे शतं चाऽश्वा वलिनो हेममालिनः ।
 अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥
 एतद्धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे ।
 शशिबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥
 वाक्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे ।
 ते तथैव पुनश्चाऽन्ये तावन्तः काश्चनाऽभवन् ॥ ९ ॥
 भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः ।
 तस्याऽश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥
 तुष्टपुष्टजनाकीर्णां शान्तविघ्नमनामयाम् ।
 शशिबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥
 स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्प्यथाः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभिश्चेत्येति व्याहरन् ॥ १२ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि पौडशराजकीये पञ्चपण्डितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

मैं वै सब अपने पुत्र ब्राह्मणों को दे डाले । प्रत्येक
 राजकुमार के साथ और भी बहुत कुछ सामान था ।
 एक-एक राजपुत्र के साथ सां-सी रथ, हाथी, घोड़े
 और मणि-सुवर्ण आदि से अलङ्कृत कन्याएँ भी थीं ।
 प्रत्येक कन्या के साथ सां हाथी थे । प्रत्येक हाथी
 के साथ सां रथ थे । प्रत्येक रथ के साथ सुवर्णमाल्य
 भूषित महावली श्रेष्ठ सां घोड़े थे । प्रत्येक घोड़े के साथ
 सहस्र गायें थीं । प्रत्येक गाय के साथ पञ्चास भेड़ें थीं ।
 ८॥ हि सृञ्जय ! राजा शशबिन्दु ने अश्वमेध यज्ञ करके
 इस प्रकार ब्राह्मणों को अपार धन दिया था । साधा-
 रणतः लोगों के अश्वमेध यज्ञ में जितने लकड़ी के खम्भे
 होते हैं उतने ही लकड़ी के खम्भे तो शशबिन्दु के
 यज्ञ में थे ही, किन्तु उनके अतिरिक्त उतने ही सुवर्ण
 के खम्भे (यूपा) भी थे । शशबिन्दु के महायज्ञ में इतनी

सामग्री तैयार की गई थी कि कोस भर के ऊँचे, पर्वता-
 कार, खाने-पीने की सामग्री के, तेरह ढेर खिला-पिला
 चुम्बने पर अन्त को बच रहे थे । उनके राज्यकाल
 में यह पृथ्वीमण्डल शान्ति से परिपूर्ण था; कहीं कोई
 विघ्न, अनर्थ या व्याधि नहीं देख पड़ती थी । सर्वत्र
 हृष्ट-पुष्ट मनुष्य दिखाई पड़ते थे । राजा शशबिन्दु बहुत
 समय तक इस प्रकार राज्य करके अन्त में स्वर्ग को
 चले गये ॥ ९॥ ११॥ हि महाराज ! तप, सत्य, दया, दान
 में तुममें श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा
 प्रतापी महाराज शशबिन्दु भी जब मृत्यु से नहीं बच
 सके तब फिर तुम उस पुत्र की मृत्यु का घृणा शोक
 क्यों करते हो, जिसने न यज्ञ किये, न दक्षिणा दी और
 न वेदपाठ ही किया ॥ १२॥

— ० —

द्रोणपर्व का पैमठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

अथ पटुपटितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

नारद उवाच—गयं चाऽऽमूर्त्तरयसं मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनो भवत् ॥ १ ॥
 तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात्ततो ववे वरं गयः ।
 तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥
 गुरुणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
 स्वधर्मेणाऽविहिंस्याऽन्यान्धनमिच्छामि चाऽक्षयम् ॥ ३ ॥
 विप्रेषु ददत्तश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः ।
 अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥ ४ ॥
 अन्नं मे ददत्तः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
 अविघ्नं चाऽस्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥ ५ ॥
 तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
 गयो ह्यवाप्य तत्सर्वं धर्मेणाऽरीनजीजयत् ॥ ६ ॥
 स दर्शपौर्णमासीभ्यां कालेष्वाग्रयणेन च ।
 चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चाऽवासदक्षिणैः ॥ ७ ॥
 अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सराज्ज्ञतम् ।
 गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥
 शतं निष्कसहस्राणि गवां चाऽप्ययुतानि पट् ।
 उत्थायोत्थाय स प्रादात्परिसंवत्सराज्ज्ञतम् ॥ ९ ॥

छासठवौ अध्याय ॥ ६६ ॥

नारद जी ने कहा—हे सृज्य ! सुना जाता है कि अमूर्त्तरया के पुत्र महाराज गय को भी मृत्यु ने नहीं छोड़ा । उन महात्मा ने सौ वर्ष तक हवन से बचा हुआ अन्न ही खाकर जीवन धारण किया था । महाराज गय के इस उच्छृण्व नियम को देखकर अग्निदेव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और वरदान देने के लिए उनके समीप आकर कहने लगे—“मैं प्रसन्न हूँ, मुझसे वरदान माँगे” । राजा गय ने अग्निदेव से कहा—हे अग्निदेव ! मेरी इच्छा है कि मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुजन के प्रसाद से सब वेदशास्त्रों का धर्म जान जाऊँ । औरों की हिसान करके मैं अपने धर्म से अक्षय धन का अधिकारी हो जाना चाहता हूँ । मैं नित्य

श्रद्धापूर्वक ब्रह्मणो को धन दे सकूँ और अपने वर्ण की सुन्दरी धर्मपत्नियों के गर्भ से मेरे उत्तम सन्तान उत्पन्न हो । सदा धर्म में ही मेरा मन लगा रहे और धर्मपालन में कभी कोई विघ्न न हो” ॥ १॥ ५॥ राजा गय के ये वचन सुनकर अग्निदेव बहुत ही सन्तुष्ट हुए और इच्छानुरूप वरदान देकर अन्तर्धान हो गये । राजा गय ने अग्निदेव की कृपा और वरदान के प्रभाव से अभिलषित विषय पाकर अपने शत्रुओं को परास्त किया । इसके उपरान्त उन्होंने सौ वर्ष की दीक्षा लेकर धर्मानुसार दर्शपौर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य आदि अनेक श्रेष्ठ यज्ञ किये और ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया । सौ वर्ष तक नित्य प्रातःकाल उठकर

नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
 ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥ १० ॥
 सौवर्णा पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम् ।
 विप्रेभ्यः प्राददद्राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥ ११ ॥
 जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः ।
 गयस्याऽऽसन्समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥
 सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा ।
 ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥
 ससमुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
 नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ॥ १४ ॥
 भूतग्रामाश्च विविधाः सन्तृप्ता यज्ञसम्पदा ।
 गयस्य सदृशो यज्ञो नाऽस्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥ १५ ॥
 पट्त्रिंशद्योजनायामा त्रिंशद्योजनमायता ।
 पश्चात्पुरश्चतुर्विंशद्वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥ १६ ॥
 गयस्य यजमानस्य मुक्ता वज्रमणिस्तृता ।
 प्रादात्स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ॥ १७ ॥
 यथोक्ता दक्षिणाश्चाऽन्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः ।
 यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८ ॥
 कुल्या कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।
 वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥

वे ब्राह्मणों को एक लाख सत्तर हजार गौएँ, दस हजार
 घोड़े और एक लाख निष्क सुवर्ण दान करते थे ।
 प्रति नक्षत्र में नक्षत्र-दक्षिणा देते और सोम तथा अङ्गिरा
 के समान बहुत से विविध यज्ञ करते थे ॥ १० ॥ राग्य
 राजा ने अश्वमेध यज्ञ के अन्त में ब्राह्मणों को सुवर्ण
 की वेदियों (चबूतों) वनवाकर दान की थीं । उन
 वेदियों में असंख्य मणि-रत्न भी थे । उस यज्ञ में बहुत
 से रत्नों से शोभित, सब प्राणियों के मन को मोहनेवाले,
 बहुमूल्य, सुवर्ण के खम्भे (यूप) थे । महाराज गय में
 यज्ञ के समय में प्रसन्नचित्त ब्राह्मणों और अन्यान्य
 प्राणियों को उत्तम भोजन कराये थे । समुद्र, वन,
 दीप, नदी, नद, नगर, देश, स्वर्ग और आकाशमण्डल

में रहनेवाले अनेक प्रकार के सब जीव महाराज गय
 के यज्ञ में सब प्रकार से तृप्त और सन्तुष्ट होकर कहने
 लगे थे कि महाराज गय के यज्ञ के समान और किसी
 का यज्ञ कभी नहीं हुआ । महात्मा गय के यज्ञ की
 वेदी तीस योजन चौड़ी, छत्तीस योजन लम्बी, चौबीस
 योजन आगे और पीछे विस्तृत थी ॥ ११ ॥ उसमें
 असंख्य मणि, मोती, हरे स्थान-स्थान पर जगमगा रहे
 थे । महाराज गय ने ब्राह्मणों को वस्त्र, आभूषण और
 पहलू कहे अनुसार दक्षिणाएँ दी थीं । उनका यज्ञ समाप्त
 होने पर सबको, देखेकर, खिला-पिलाकर भोजन-
 सामग्री के पच्चीस पर्वत बराबर ढेर, दुग्ध और रस
 की कई नदियों और खसों तथा आभूषणों की कई

यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
 वटश्चाऽक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २० ॥
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुत्प्यथाः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्रैत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकाये पट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

देरियाँ बच रही थीं । ऐसा अद्भुत यज्ञ करने के ही प्रभाव से महाराज गय की कीर्ति तीनों लोकों में प्रसिद्ध है । जहाँ गय ने यज्ञ किया था उस स्थान पर अक्षय-वट और पवित्र ब्रह्मसरोवर अब तक उपस्थित हैं । इन्हीं के कारण गय का नाम जगत् में प्रसिद्ध हो रहा है ॥ १७।२०॥ हे सृज्य ! तप, सत्य, दया, दान में तुमसे

अधिक और तुम्हारे पुत्र से बढकर पुण्यात्मा धर्मोत्तम महाराज गय को भी अन्त को मृत्यु के वश होता पड़ा । इसलिए अब तुम अपने उस पुत्र की मृत्यु का शोक मत करो, जिसने न यज्ञ ही किया, न दक्षिणा दी और न वेदपाठ ही पढ़ा ॥ २१ ॥

— o —

द्रोणपर्व का छठासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

अथ सप्तपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

नारद उवाच — सांक्रुतिं रन्तिदेवं च मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 यस्य द्विशतसाहस्रा आसन्सूदा महात्मनः ॥ १ ॥
 रहानभ्यागतान्विप्रानतिथीन्परिवेषकाः ।
 पक्वापकं दिवारात्रं वराहममृतोपमम् ॥ २ ॥
 न्यायेनाऽधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
 वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विपतो वशे ॥ ३ ॥
 उपस्थिताश्च वशवः स्वयं यं शंसितव्रतम् ।
 बहवः स्वर्गमिच्छन्तो विधिवत्सत्रयाजिनम् ॥ ४ ॥
 नदी महानसाग्रस्य प्रवृत्ता चर्मराशितः ।
 तस्माच्चर्मण्वती पूर्वमग्निहोत्रेऽभवत्पुरा ॥ ५ ॥
 ब्राह्मणेभ्योऽददन्निष्कान्सौवर्णान्स प्रभावतः ।
 तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ॥ ६ ॥

सप्तपष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

नारद जी कहते हैं—हे सृज्य ! सुना जाता है कि महामति रन्तिदेव की भी मृत्यु हुई । दानी रन्तिदेव राजा के यहाँ रसोई बनाने और परोसनेवाले दो लाख अनुचर थे । ये लोग राजा के यहाँ आनेवाले अतिथि-अभ्यागतों और भूखे-प्यासों के लिए निस

सुन्दर रसोई बनाते और उनके आगे परोसते थे । रन्तिदेव ने न्याय से उपाजित किया हुआ बहुत सा धन ब्राह्मणों को दे डाला था । उन्होंने वेद पढ़े थे और क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध करके शत्रुओं को वश में कर लिया था ॥ १।३॥ रन्तिदेव के यज्ञदीक्षा लेने

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान्निष्कान्सहस्रशः ।
 ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ७ ॥
 अल्पं दत्तं मयाऽथेति निष्ककोटिं सहस्रशः ।
 एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत्सम्प्रदास्यति ॥ ८ ॥
 द्विजपाणिप्रियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत् ।
 भविष्यति न सन्देह एवं राजाऽददद्भु ॥ ९ ॥
 सहस्रशश्च सौवर्णान्वृषभान्गोशतानुगान् ।
 साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥ १० ॥
 अध्वर्धमासमददद्ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः ।
 अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥ ११ ॥
 ऋषिभ्यः करकान्कुम्भान्स्थालीः पिठरमेव च ।
 शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥ १२ ॥
 वृक्षांश्च विविधान्दद्यादन्नानि च धनानि च ।
 सर्वं सौवर्णमेवाऽऽसीदन्तिदेवस्य धीमतः ॥ १३ ॥
 तत्राऽस्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
 रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुपीम ॥ १४ ॥
 नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि ।
 धनं च पूर्णमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥ १५ ॥

पर, स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छासे, बहुत से यज्ञपशु स्त्रय उनके समीप आ जाते थे । उनके अग्निहोत्र यज्ञ में इतने पशु मोरे गये थे कि उनके रस्तोर्ध्वर से, मोरे गये पशुओं के चमड़ा से, जो रक्त निराला उससे अत्यन्त पवित्र श्रेष्ठ चर्मणती नदी प्रकट हुई । महाराज रन्तिदेव बारम्बार यह कहते हुए कि “तुमने निष्क देता हूँ, तुमने निष्क देता हूँ” ब्राह्मणों को सहस्र निष्क दान करते थे और इतने पर भी जा लोग मच रहते थे उन्हें सामान्य दानर सुवर्ण निष्क ही देते थे । उन ऐसे दानी थे कि एक एक दिन में सहस्र लाखों करोड़ों निष्क दानर भी यह खेद किया करते थे कि मैंने आज थोड़ा ही दान दिया, अब आर ब्राह्मण वहाँ मित्रे जिनसे मैं दान दूँ, दान लेने वाले ब्राह्मणों को दान न देने से मुझ चिरस्थायी महादुःख होगा,—

यही सोचकर राजा बहुत सा द्रव्य दान किया करते थे । हे सुश्रव ! सहस्र सुवर्ण के बेल, सौ गाँव और एक सा आठ सुवर्णमुद्रा इतने को एक निष्क कहते हैं ॥ १५ ॥ राजा रन्तिदेव सो गर्व कर प्रत्येक पक्ष में ऐसे करोड़ों निष्क ब्राह्मणों को देते थे । उनके वहाँ सब सामान सुवर्ण का था । ये ऋषियों, ब्राह्मणों को सुवर्ण की बनी अग्निहोत्र की सामग्री, यज्ञ की सामग्री, करि (करक), घड़े, थाले, पीठे, शय्या, आसन, सवारियाँ, महल, मन्त्रान, विविध फल फलों के वृक्ष और अन्न आदि सामग्री दान किया करते थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ रन्तिदेव की उस अत्रैकिक समृद्धि और सम्पत्ति को देवकीर पुराण इतिहास के ज्ञानाओं ने यह गाया गाई है कि “महाराज रन्तिदेव का ऐसा विभव और धन-सम्पत्ति कुबेर के भवन में भी नहीं देख पड़ती, मनुष्यों

व्यक्तं वस्त्रोक्तसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः ।
 सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमातिथिर्वसेत् ॥ १६ ॥
 आलभ्यन्त तदा गात्रः सहस्राण्येकविंशतिः ।
 तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १७ ॥
 सूपं भूयिष्ठमश्वध्वं नाऽद्य मांसं यथा पुरा ।
 रन्तिदेवस्य यत्किञ्चित्सीवर्णमभवत्तदा ॥ १८ ॥
 तत्सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
 प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १९ ॥
 कव्यानि पितरः काले सर्वकामान्द्विजोत्तमाः ।
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्मदतरस्वया ॥ २० ॥
 पुत्रापुण्यतरस्तुभ्यं सापुत्रमनुत्प्यथाः ।
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वेत्येति व्याहरन् ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकाये सप्तपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

के यहाँ की कौन कहे ! महाराज रन्तिदेव के भवन
 तो सुवर्ण रत्न की खान हैं ।" रन्तिदेव के भवन में
 इतने अधिक अतिथि-अभ्यागत आते थे कि उनके
 भोजन के लिए इक्कीस सहस्र गाँधे मारी जाती थीं ॥ १४ ।
 १७ ॥ सुन्दर चमकीले मणिकुण्डल पहने हुए रसोइये
 उत्तम-उत्तम भोजन तैयार करके अतिथियों से पुकार-
 पुकारकर कहते थे कि 'अच्छी तरह मांस आदि भक्षण
 कीजिए । आज का मांस पहले का सा नहीं बना है, बहुत
 बढ़िया बना है ।' महाराज रन्तिदेव के यहाँ जितना
 सुवर्ण या वह सब उन्होंने यज्ञ करते समय ब्राह्मणों

को बाँट दिया था । उनके यज्ञों में देवता प्रत्यक्ष आकर
 हव्य ग्रहण करते थे, पितृगण कव्य ग्रहण करते थे
 और ब्राह्मण याचक आदि सब यथेष्ट पदार्थ पाकर प्रसन्न
 होते थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे सृज्य ! महाराज रन्तिदेव तप,
 दया, दान और सत्य में तुमसे बड़े हुए और तुम्हारे
 पुत्र से अधिक पुण्यात्मा थे; तथापि उन्हें भी मृत्यु के
 मुख में जाना ही पड़ा । इसलिए अब तुम अपने पुत्र की
 मृत्यु के लिए वृथा शोक मत करो, जिसने न यज्ञ
 ही किये, न दक्षिणा ही दी और न वेद ही पढ़ा ॥ २१ ॥

— ० —

द्रोणपर्व का सड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अथ अष्टपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

नारद उवाच—दौष्यन्ति भरतं चापि मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान्यः शिशुर्वने ॥ १ ॥
 हिमावदातान्यः सिंहास्रखदंष्ट्रायुधान्वली ।
 निर्वीर्यास्तरसा कृत्वा विचकर्षे ववन्ध च ॥ २ ॥

अवसठवाँ अध्याय ॥ ६८ ॥

नारद ने कहा — हे सृज्य ! महाप्रतापी दुष्यन्त
 के पुत्र भरत को भी मरना ही पड़ा । वे महाप्रतापी
 बान्यासस्था में ही वन में ऐसे अद्भुत कार्य करते थे जो
 और मनुष्यों के लिए सर्वथा दुष्कर थे । वे वर्ष के समान

क्रूरांश्चोग्रतरान्याघ्रान्दमित्वा चाऽकरोद्वशे ।
 मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः ॥ ३ ॥
 व्यालादींश्चाऽतिवलवान्सुप्रतीकान्गजानपि ।
 दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्छुष्कास्यानकरोद्वशे ॥ ४ ॥
 महिषानप्यतिवलो वलिनो विचकर्ष ह ।
 सिंहानां च सुदसानां शनान्याकर्षयद्वलात् ॥ ५ ॥
 वलिनः स्मरान्खड्गान्नानासत्त्वानि चाप्युत ।
 कृच्छ्रप्राणं वने बध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥
 तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनाऽस्य कर्मणा ।
 तं प्रत्यपेधजननी मा सत्त्वानि विजीजहि ॥ ७ ॥
 सोऽश्वमेधशतेनेष्टा यमुनामनु वीर्यवान् ।
 त्रिशताश्चान्सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥
 सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
 पुनरीजे महायज्ञैः समासवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥
 अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्टा विश्वजिता अपि ।
 वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ॥ १० ॥
 इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान्धनैः ।
 सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥

श्वेत और नख तथा दाढ़ी ही जिनके शस्त्र हैं ऐसे महाबली
 मिहोको अपनेबाहुबल से पछाड़कर खींचते हुए ले आते
 और बाँधते थे । क्रूरप्रकृति अत्यन्त उग्र व्याघ्रों को
 हराकर वश में कर लेना उनके बाये हाथ का कर्तव्य
 था । मैंने सिल और लाय के रङ्ग की छाल बूँदों से
 युक्त जिनकी खाल होती है ऐसे चीतों को पकड़कर
 वे वश में कर लेते थे ॥ ११ ॥ बहुत से विपरीत सपों
 और बली गजराजों को पकड़कर उनके दाँत उखाड़
 डालते थे और उन मृग्य मुखवाले वशवर्ती जीवों को
 अधमरा करके छोड़ देते थे । बड़े-बड़े बली गैंसों को
 पकड़कर खींचते थे और सैकड़ों बल-ह्रास सिंहों को
 पकड़कर खींचते थे । स्मर, गेंडे आदि अनेक बली
 वनजन्तुओं को पकड़ कर लाते, बान्धते और वश में
 करके छोड़ देते थे । उन जीवों की जान भर बच जाती

थी । तपोवन के रहनेवाले ऋषियों ने बालक भरत
 के ऐसे अद्भुत कर्म देखकर उनका नाम 'सर्वदमन'
 रख दिया था । भरत की माता शाकुन्तला उन्हें सदा
 मना किया करती थी कि हे पुत्र ! इस प्रकार वन के
 जीवों को केस मत दो ॥ ४७ ॥ महाराज भरत जब
 बड़े हुए तब उन्होंने यमुना के तट पर सौ अश्व-
 मेध, सरस्वती नदी के तट पर तीन सौ अश्वमेध और
 गङ्गा के तट पर चार सौ अश्वमेध यज्ञ किये । इसके
 पश्चात् उन्होंने फिर सहस्र अश्वमेध और राजसूय
 यज्ञ किये और उनमें ब्राह्मणों को बहुत बड़ी-बड़ी
 दक्षिणाएँ दीं । भरत जी ने अग्निष्टोम, अतिरात्र, विश्व-
 जित् और सहस्रों वाजपेय यज्ञ करके देवताओं को
 सन्तुष्ट कर दिया । राजा भरत ने हम प्रकार अमंल्य
 यज्ञ किये और ब्राह्मणों को अपरिमित धन देकर

जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशः ।
 यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥
 समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः ।
 अलंकृतात्राजमानान्सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥
 हैरण्यानश्चान्दिरदान्स्थानुप्लानजाविकम् ।
 दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥ १४ ॥
 ग्रामान्ग्रहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान् ।
 कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥
 चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः ।
 स चेन्ममार सृज्य चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १६ ॥
 पुत्रापुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 अयज्जानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येति व्याहरन् ॥ १७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकाण्डे अष्टपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

प्रसन्न कर दिया। उन्होंने यह भी दक्षिणा में आचार्य कण्व को एक सहस्र विशुद्ध सुवर्ण के बने हुए कमल दिये थे॥८॥१२॥उनके यज्ञ में सुवर्ण के बने हुए यूप इतने बड़े थे कि उनका घेरा सो व्याम (व्याम = चार हाथ) का था। इन्द्र आदि देवताओं ने आकर ब्राह्मणों के साथ उनके यूप की स्थापना की थी। राजा भरत ने अलङ्कारों से अलङ्कृत रत्नमण्डित सुवर्ण-शोभित असंख्य हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, बकरे, भेड़ें, दासी-दास, धन, धान्य, वस्त्रों सहित दुधार गायें, गौब, घर, गेन, विविध वस्त्र और सैकड़ों करोड़

अयुत सुवर्णमुद्राएँ ब्रह्मणों को दान की थीं। वे चक्रवर्ती, शत्रुओं को जीतनेवाले, स्वयं अपराजित और उस्ताही महात्मा भरत भी एक दिन मृत्यु के मुख में चले गये॥१२॥१६॥हे सृज्य ! तुमसे बढ़कर तपस्वी, दानी, दयालु, सत्यवादी और तुम्हारे पुत्र से बढ़कर पुण्यात्मा भरत को भी जब मरना ही पड़ा तब तुम्हें अपने उस पुत्र की मृत्यु का वृथा शोक कभी न करना चाहिए, जिसने न यह ही किया, न दक्षिणा ही दी, न वेद ही पढ़ा॥१६॥१७॥

- ० -

द्रोणपर्व का अष्टसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

नारद उवाच—पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृज्य शुश्रुम ।
 यमभ्यपिञ्चन्ताम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥
 यत्नतः प्रथितेत्युतुः सर्वानभिभवन्पृथुः ।
 क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ॥ २ ॥

उनत्तरवाँ अध्याय ॥ ६९ ॥

नारद ने कहा—हे सृज्य ! सुना जाता है न उनसे राजसूय यज्ञ कराया था और आपस में कि राजा वेन के पुत्र महाराज पृथु को भी एक सम्पत्ति करके, उसी अस्तर पर, भारत के सम्राट् के रैन मृत्यु के अधीन हो जाना पड़ा था। महर्षियों पद पर उनका अभिषेक किया था। महाप्रतापी पृथु

पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।
 ततो राजेति नामाऽस्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥
 अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद्वैन्यस्य कामधुकं ।
 सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ४ ॥
 आसन्निहरणमया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः ।
 तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥
 फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च ।
 तेषामासीत्तदाऽऽहारो निराहाराश्च नाऽभवन् ॥ ६ ॥
 अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः ।
 न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥
 प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां नाऽभवत्तदा ।
 यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥
 तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः ।
 पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाऽभवत् ॥ ९ ॥
 तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः ।
 शस्त्रैः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥
 पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन् ।
 सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पिताऽसि नः ॥ ११ ॥

ने अपने बाहुबल से पृथ्वीमण्डल के सब वीर राजाओं को परास्त कर दिया था । महर्षियों ने यह कहकर उनका सार्थक नामकरण किया था कि ये महाराज हम सबको प्रथित (प्रसिद्ध) करेंगे इसलिए इनका नाम पृथु होगा । ये हम प्राणियों की क्षत (शत्रुओं या डाकुओं-चोरों के आक्रमण में होनेवाले शस्त्रकृत घात) से रक्षा करेंगे इसलिए ये क्षत्रिय हैं और इनका क्षत्रिय पद सार्थक है । हे सृष्ट्रय ! महाराज पृथु को देवजर सब प्रजा ने कहा था कि हम सब इनके अनुरागी हैं, इसी से प्रजा-रक्षण गुण होने के कारण वे राजा हुए। १।३॥ महाराज पृथु के राज्यकाल में यह पृथ्वी विना जेतें ही सब अन्न उत्पन्न करती थी और कामधेनु के समान प्रजा को उसकी इच्छानुसार वस्तुएँ देती थी । सब गायें कामधेनु थीं । कमल मधुपूर्ण

रहते थे । कुश सुवर्णमय थे और उनका स्पर्श सुखदायक था । लोग उन्हीं के बने वस्त्र पहनते और उन्हीं की शय्या पर लेटते थे । कोई प्राणी भूखा नहीं रहता था, लोग वृक्षों के अमृततुल्य स्वादिष्ट मधुर फल खाते थे। १।६॥ उस समय के मनुष्य नीरोग और निर्भय थे; उनकी सब इच्छाएँ पूर्ण होती थीं । मनुष्य इच्छानुसार वृक्षों के तले या पर्वतों की कन्दराओं में रहते थे । उस समय पृथ्वी पर राष्ट्र और पुर आदिक विभाग नहीं हुआ था । सब प्रजा इच्छानुसार प्रसन्नता-पूर्ण जहाँ चाहें वहाँ रहती थी । महाराज पृथु जब समुद्र-यात्रा करते तब जल स्तम्भन हो जाता था । इसी प्रकार पर्वत आदि भी उन्हीं यथेष्ट मार्ग दे दिया करते थे । फाटक आदि के भीतर रथ जाते समय उनके रथ की ऊँची छत्रा कमी नहीं टूटी। १।९॥ महाराम

देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान्वरान् ।

यैर्वयं शाश्वतीस्तृतीर्वर्त्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥

तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः ।

शरांश्चाऽप्रतिमान्घोरांश्चिन्तयित्वाऽत्रवीन्महीम् ॥ १३ ॥

एहेहि वसुधे क्षिप्रं क्षैरेभ्यः कांक्षितं पयः ।

ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य ययेप्सितम् ॥ १४ ॥

वसुधोवाच—दुहितृत्वेन मां वीर सङ्कल्पयितुमर्हसि ।

तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद्वशी ॥ १५ ॥

ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा ।

तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः ॥ १६ ॥

साऽतिष्ठद्वत्सला वत्सं दोग्धपात्राणि चेच्छती ।

वत्सोऽभूत्पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाऽभवत्तदा ॥ १७ ॥

छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम् ।

उदयः पर्वतो वत्सो मेरुदोग्धा महागिरिः ॥ १८ ॥

रत्नान्योपधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा ।

दोग्धा चाऽऽसीत्तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम् ॥ १९ ॥

असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा ।

दोग्धा द्विमूर्धा तत्राऽऽसीद्वत्सश्चाऽऽसीद्विरोचनः ॥ २० ॥

प्रतापी पृथु एक समय अपनी सभा में सुखपूर्वक विराजमान थे, इसी समय वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, नाग, सप्तर्षि, पुण्यजन (यक्ष), गन्धर्व, अस्त्रा, पितर आदि सब उनके समीप जाकर कहने लगे—हे महाराज ! आप सम्राट हैं, क्षत्रिय हैं, हमारे रक्षक, पिता और राजा हैं । आप प्रभु हैं, इसलिए हम सब अनुगत प्रजा को हमारी इच्छा के अनुसार वर दीजिए, जिनसे वृक्ष होकर हम लोग सदा सुख से रहें ॥ १० ॥ १२ ॥ तब महारानी पृथु ने उन्हें यथेष्ट वर देना स्वीकार कर लिया । इसके उपरान्त अपना दिव्य आजगव धनुष और उग्र बाण लेकर, क्षण भर सोचकर, उन्होंने पृथ्वी से कहा—हे धरित्री ! इधर आओ, तुम्हारा कन्यागण हो । तुम शीघ्र इस प्रजा को, इच्छा के अनुरूप, दुग्ध दो । तब मैं प्रजा को, इसकी प्रार्थना

के अनुसार अन्न देकर सन्तुष्ट करूँगा । और जो तुम मेरी आज्ञा नहीं मानोगी तो मैं अभी इन जाणों से तुम्हारे दुक्कड़े दुक्कड़े कर डालूँगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ पृथ्वी ने भयभीत होकर कहा—हे भद्र ! मुझे आज से आप अपनी कन्या समझिए । हे वीर ! आप वत्स, पात्र, दुहने-वाले और दुग्ध आदि की कल्पना कर दीजिए, तो मैं सबको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दे दूँगा । नारद जी कहते हैं—हे सृजय ! तब पृथु राजा ने गोरूपिणी पृथ्वी को दुहने का सब प्रबन्ध कर दिया । संसार के सब प्राणी निम्नलिखित प्रकार से पृथ्वी को दुहने लगे । सबसे पहले दुहने की इच्छा से वृक्ष आदि (वनस्पति) पृथ्वी के समीप आये । वत्सवत्सला गाय का रूप रखे हुए पृथ्वी, दुहनेवाले और दुहने के पात्र को चाहती हुई, खड़ी ही थी । वनस्पतियों में पुष्पित शाल वृक्ष

कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले ।
 स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाऽभवत्पृथुः ॥ २१ ॥
 अलावुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुन्धरा ।
 धृतराष्ट्रोऽभवद्दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः ॥ २२ ॥
 सप्तर्षिभिर्वह्ना दुग्धा तथा चाऽह्निष्टकर्मभिः ।
 दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट् ॥ २३ ॥
 अन्तर्धानं चाऽऽमपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट् ।
 दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चाऽऽसीद्वृषध्वजः ॥ २४ ॥
 पुण्यगन्धान्पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन् ।
 वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः ॥ २५ ॥
 स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम् ।
 वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धाऽन्तकस्तदा ॥ २६ ॥
 एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट् ।
 यैर्वर्त्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः ॥ २७ ॥
 यज्ञैश्च विविधैरिष्टा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
 सन्तर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः ॥ २८ ॥
 हैरण्यानकरोद्राजा ये केचित्पार्थिवा भुवि ।
 तान्ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्चमेधे महामखे ॥ २९ ॥

बटङ्गा बना, पाकर का पेड दुहनेवाला बना, ऋटे हुए
 वृक्ष का फिर पनप आना ही दुग्ध और उदुम्बर (गलर)
 पात्र हुआ ॥ १५१८ ॥ पर्वत जब पृथ्वी को दुहने लगे
 तब उदयाचल बटङ्गा बना और महापर्वत सुमेरु दुहने-
 वाला हुआ । उन्होंने रत्न और ओपधिरूप दुग्ध को
 प्रमत्तमय पात्र में दुह लिया । उसका पश्चात् यम
 देवताओं ने इन्द्र को बटङ्गा और मृत्यु को दुहनेवाला
 बनाकर प्रियतेजोमय वस्तुओं को लकड़ी के पात्र में दुह
 लिया । असुरों ने त्रिलोचन को बटङ्गा और शुक्राचार्य को
 दुहनेवाला बनाकर आममय पात्र में मायाव्य दुग्ध दुह
 लिया ॥ १८१२० ॥ मनुष्यों ने स्वायम्भुव मनु को बटङ्गा
 और रथ महाराज पृथु को दुहनेवाला बनाकर घृध्वी-
 तन्मय पात्र में खेती और अन्नव्य दुग्ध दुह लिया ।
 नागराज ने महानाग तक्षक को बटङ्गा और नागराज

धृतराष्ट्र को दुहनेवाला बनाकर अलावु-पात्र में त्रिवर्ण्य
 दुग्ध दुह लिया । अह्निष्टकर्म सप्तर्षियों ने राजा सोम
 को बटङ्गा और बृहस्पति को दुहनेवाला बनाकर
 छन्दोमय पात्र में ब्रह्मस्वरूप वेदमय दुग्ध दुह लिया
 ॥ २१२३ ॥ यज्ञों ने वृषभज शकर को बटङ्गा और
 कुवर को दुहनेवाला बनाकर आमपात्र में अन्तर्धान-
 त्रिधाव्य दुग्ध दुह लिया । गन्धर्वों और अप्सराओं
 ने चित्ररथ को बटङ्गा और विश्वरुचि को दुहनेवाला
 बनाकर पद्म पात्र में पुण्य सुगन्धव्य दुग्ध दुह लिया ।
 पितरों ने वैवस्वत को बटङ्गा और यम को दुहने-
 वाला बनाकर रजतपात्र में स्वधा मय्य दुग्ध दुह
 लिया ॥ २४२५ ॥ हे सुश्रव ! इस प्रकार सभी
 प्राणियों ने अपने-अपने बटङ्गे की सहायता में
 अपने-अपने पात्र में अपनी-अपनी अर्घ्य यन्तु दुह

पट्टिनागसहस्राणि पट्टिनागशतानि च ।
 सौवर्णानकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान्ददौ ॥ ३० ॥
 इमां च पृथिवीं सर्वां मणिरत्नविभूषिताम् ।
 सौवर्णीमकरोद्राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥
 स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
 पुत्रात्पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ ३२ ॥
 अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्रैत्यति व्याहरन् ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकथ्ये एकोनमसतितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

ली, जिससे कि अब तक उनका निर्वाह हो रहा है । को दान कर दी थी । हे सृञ्जय ! महाराज पृथु
 महाप्रतापी पृथु ने बहुत मे यज्ञ करके, सब प्राणियों तुमसे अधिक मत्स्यनिष्ठ, दयालु, दानी और तपस्वी
 को उनके अभीष्ट पदार्थ देकर, सन्तुष्ट कर दिया । थे आर तुम्हारे पुत्र से बढ़कर धर्मात्मा थे; किन्तु उन्हें
 उन्होंने अश्वमेध यज्ञ में पृथ्वी पर के सब पदार्थों की भी एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा ।
 सुवर्णमयी प्रतिमूर्तियाँ बनवाकर ब्राह्मणों को दान इसलिए अब तुम अपने उम पुत्र की मृत्यु का घृणा
 कर दी थीं । उन्होंने सुवर्ण के छासठ महत्सो हाथी शोक मत करो, जिमने न यज्ञ ही किया, न दक्षिणा
 बनवाकर ब्राह्मणों को दान किये थे । इसी प्रकार ही दी और न वेद ही पढ़ा ॥ २७३३ ॥
 मणि-रत्न-पूर्ण और सुवर्णमयी पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणों

—०—

द्रोणपर्व का उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

अथ मसतिनमोऽध्याय ॥ ७० ॥

नारद उवाच—रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।
 जामदग्न्योऽप्यतियशा अविर्तुतो मरिष्यति ॥ १ ॥
 यः स्माऽऽयमनुपयंति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
 न चाऽऽसीद्विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥ २ ॥
 यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाऽद्भुवन् ।
 ततोऽवधीत्कार्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥
 क्षत्रियाणां चतुःपट्टिमयुतानि सहस्रशः ।
 तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाऽजयत् ॥ ४ ॥

मत्तरवाँ अध्याय ॥ ७० ॥

नागद ने कहा—हे सृञ्जय ! महायज्मवी, शूर नहीं उत्पन्न हुआ । उन्होंने पृथ्वी का पापग्रस्त भार
 और शूर, परशुराम को तो तुम जानने ही होंगे । वे भी उतारने के लिए अश्व-शस्त्र धारण कर सकते थे । उनके
 एक दिन आरक्ष्य ही करेंगे और अन्त समय तक जीवन- श्रेष्ठ चरित्र में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । एक
 समय वृन्तवीर्य के पुत्र गच्छसाद्रु अर्जुन ने, क्षत्रिय- समाज के माथ उनके रिता के आश्रम में पहुँचकर बच-

ब्रह्माद्विपां चाऽथ तस्मिन्महस्त्राणि चतुर्दश ।
 पुनरन्यात्रिजग्राह दन्तकूरं जघान ह ॥ ५ ॥
 सहस्रं मुसलेनाऽहन्सहस्रमसिनाऽवधीत् ।
 उद्वन्धनात्सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६ ॥
 दन्तान्भंक्त्वा सहस्रस्य कर्णात्त्रासा न्यकृन्तत ।
 ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥
 शिष्टान्वध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिन्न च ।
 गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद्दक्षिणेन च ।
 गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहया समरे हता ॥ ८ ॥
 सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते ।
 पितुर्वधामर्पितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९ ॥
 निजघ्ने दशसाहस्रान्नामः परशुना तदा ।
 नह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥ १० ॥
 भृगौ रामाऽभिधावेति यदाऽऽकन्दन्दिजोत्तमाः ।
 ततः काश्मीरदरदान्कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥
 अङ्गवङ्गकलिङ्गाश्च विदेहांताम्रालिसकान् ।
 रक्षोवाहान्वीतिहोत्रास्त्रिगर्तान्मार्तिकावतान् ॥ १२ ॥
 शिबीनन्यांश्च राजन्यान्देशान्देशान्सहस्रशः ।
 निजघान शितैर्वाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

पूर्व अग्निहोत्र की गाय के जाने का प्रथम क्रिया
 और मुनि पर जमदग्नि पर भा आक्रमण क्रिया । उम समय
 परशुराम जी घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे । लड़ने
 पर उन्हें यह वृत्तात्त विदित हुआ । तब उन्होंने क्रोधा
 होकर उस महत्सज्जह अजुन की मांग डाला, जिस
 कभी कोई शत्रु युद्ध में नहीं जात सका था ॥ १३ ॥
 परशुराम जी ने उसी मिलमित्रे म मृगुप्रस्त चौमठ
 महत्स अयुत क्षत्रियों का एक धनुष की महायना म
 नष्ट कर दिया । उमके पश्चात् और मा ब्राह्मणद्विपी
 हुए चौदह सहस्र क्षत्रियों को मारा । महावीर परशुराम
 ने निग्रहपूर्वक सहस्र क्षत्रियों को मृत्यु में और इन
 दो क्षत्रियों को मृद्ग से मारा । उन्होंने महत्स क्षत्रियों
 को वृक्षा की डालों में फँसी देकर और सहस्र क्षत्रिया

को जल में डुबाकर मार डाला । सहस्र क्षत्रियों के
 दाँत तोड़ डाल और महत्स क्षत्रिया के कान काट
 लिये । उन्होंने उंचे हुए हैहयवशी क्षत्रियों का गोंध
 कर मार डाला और उनके मस्तक तोड़ दिये ॥ १४ ॥
 मान महत्स क्षत्रियों को दण्ड स्वरूप उन्होंने कङ्का
 धुआँ पिगाया । पिता न मार जाने में कुपित महामनि
 परशुराम ने गुणावती के उत्तर और खाण्डव उन न
 दक्षिण जो स्थान है वहाँ शतमहाम वीर रह्यो को
 रथ, हाथी, घोड़े आदि सहित मरग म मार डाला ।
 उम समय परशुराम ने क्षत्रियों के चरे हुए मृदु रचन
 और "हे परशुराम ! दीदो, रनाओ" यह ब्राह्मणा-
 सहित पिता की पुकार स्मरण करके परशु म दम
 महत्स क्षत्रिया को सहार कर डाला ॥ १५ ॥ और म

कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः ।
 इन्द्रगोपकर्णम्य वन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥
 रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च ।
 सर्वानष्टादश द्वीपान्वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥
 ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
 वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥ १६ ॥
 सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम् ।
 ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ॥ १७ ॥
 रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः ।
 ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान्हेमभूषणान् ॥ १८ ॥
 निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम् ।
 कश्यपाय ददौ रामो ह्यमेधे महामखे ॥ १९ ॥
 त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
 इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २० ॥
 सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽप्यहृत द्विजः ।
 रामं प्रोवाच गिर्गच्छ वसुधातो ममाऽज्ञया ॥ २१ ॥
 स कश्यपस्य वचनात्प्रोत्सार्य सरितां पतिम् ।
 इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन्ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥
 अध्यावसद्गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ।
 एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥ २३ ॥

प्रतापी परशुरामजी ने इसके उपरान्त क्षत्रिय-कुत्र पर
 क्रोध करके काश्मीर, दारद, कुन्ति, लुद्रक, मालव,
 अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोत्राह, वीत-
 ङ्ग, त्रिगर्भ, मार्तिन्धर, शिवितथा अन्य-न्य देशों
 के शत-सहस्र-कोटि क्षत्रियों को तीक्ष्ण बाणों से यम-
 पुरी भेज दिया ॥ ११ ॥ १३ ॥ वीरवृद्ध और दृढ़दरी फल
 के रक्त के गन्तुओं के रक्त का प्रवाह बहाकर उन्होंने
 उसमें कई सरोवर भर दिये और अष्टारहों द्वीपों को
 अपने यज्ञ में कर लिया । उसका पश्चात् मैकड़ों
 महायज्ञ किये, निम्नके समाप्त होने पर ब्राह्मणों को
 वहाँ वहाँ दक्षिणाएँ दीं । उनके यज्ञ में जो वेदी सुवर्ण
 की बनी थी वह घर्तोंम हाथ ऊँची थी और विधि-

पूर्वक बनाई गई थी । उस वेदी में सैंकड़ों रत्न थे
 और सैंकड़ों पताकाएँ लगी हुई थी । गाँव के और
 वन के असंख्य पशुओं से पूर्ण यह समग्र पृथ्वी परशु-
 राम ने आचार्य कश्यप को दक्षिणा में दे दी थी । पृथ्वी
 को दायु रूप क्षत्रियों से शून्य और शिष्ट जनों से
 परिपूर्ण करके अश्वमेध महायज्ञ में परशुराम ने कश्यप
 को दक्षिणा में सुवर्णभूषणमण्डित एक लाख गजराज
 दान किये थे ॥ १४ ॥ १८ ॥ चित्तनन्दन । परशुराम
 ने इस प्रकार इन्द्रासि वार इस पृथ्वी को क्षत्रिय हीन
 करके मैकड़ों यज्ञ किये और मारी पृथ्वी ब्रह्मणों
 को दान कर दी । महर्षि कश्यप ने मातों द्वारा पूर्ण
 परशुराम में स्मर उनसे कहा - हे राम ! तुम यह

जामदग्न्यो ह्यतिथशा मरिष्यन्ति महाश्रुतिः ।
 त्वया चतुर्भद्रतरः पुण्यात्पुण्यनरस्तव ॥ २४ ॥
 अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
 एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः ।
 मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृज्य ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि योद्धशराजकीये ममन्तिमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

दृष्टा मुद्रको दे चुके हो इमल्लिण, मेरी आज्ञा के अनु-
 सार, इस वृद्धी में निकलकर अन्यत्र जाकर रहे॥ १०॥
 २१॥ हे महाराज! ब्राह्मण की आज्ञा मानकर श्रेष्ठ योद्धा
 परशुराम ने बाणप्रहार में ममुद्र को उसकी सीमा में
 हटा दिया और वे महेंद्राचल पर्वत पर जाकर रहने
 लगे॥ इस प्रकार संकटों गुणों में अलङ्कृत, तेजस्वी, यशस्वी
 और भृगुवंश की कीर्ति को बढ़ानेवाले परशुराम भी
 एक दिन अरण्य में रहे॥ २२॥ हे राजेन्द्र ! मत्स्य,

तप, दया, दान में तुममें श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र में
 अधिक पुण्यात्मा परशुराम को भी एक दिन मलना
 पड़ेगा । अतएव अय तुम अपने उस पुत्र की मृत्यु के
 द्विष्ट वृथा शोक मत करो, जितने न यज्ञ ही किया न
 दक्षिणा ही दी और न वेद ही पढ़ा । देखो, तुममें मय
 बानों में श्रेष्ठ, मय गुणों में अलङ्कृत, प्रतापी राजर्षि
 लोग मृत्यु के यश हुए हैं और ऐसे ही संकटों राजा
 और प्रतापी लोग आगे चलकर मरेगा॥ २५॥

द्रोणपर्व का मत्स्योऽध्याय समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

अथ एकममन्तिमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

श्याम उवाच—पुण्यमाग्न्यानमायुष्यं श्रुत्वा योद्धशराजिकम् ।
 अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमामीत्स सृज्यः ॥ १ ॥
 तमव्रवीत्तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः ।
 श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाश्रुते ॥ २ ॥
 आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव ।
 स गवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृज्यस्तदा ॥ ३ ॥
 गतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाग्न्यानमुत्तमम् ।
 गजपीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥
 विमयेन हते शोके तममीवाऽर्कनेजसा ।
 विषाप्माऽस्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ ५ ॥

नारद उवाच — दिष्टयाऽपहतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि ।
 तत्तत्प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥ ६ ॥

सृञ्जय उवाच — एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान्मम ।
 प्रसन्नो यस्य भगवान्न तस्याऽस्तीह दुर्लभम् ॥ ७ ॥

नारद उवाच — मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा ।
 उद्धृत्य नरकात्कप्रात्पशुवत्प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥

व्याम उवाच — प्रादुरासीत्तनः पुत्रः सृञ्जयस्याऽद्भुतप्रभः ।
 प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥

ततः सङ्गम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः ।
 ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १० ॥

अकृतार्थश्च भीतश्च न च सान्नाहिको हतः ।
 अयञ्चा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥ ११ ॥

शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्याऽरीन्सहस्रशः ।
 अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः ॥ १२ ॥

ब्रह्मचर्येण यान्कांश्चित्प्रज्ञया च श्रुतेन च ।
 इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान्गतः ॥ १३ ॥

विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः ।
 न तु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः ॥ १४ ॥

इसमें यज्ञ करने वाले, दक्षिणा देने वाले, प्राचीन राजर्षियों का वृत्तान्त वर्णन किया गया है। मर्य जन्मे अन्धकार को नष्ट कर देने हैं वैसे ही इन उपाख्यानों के सुनने में उत्पन्न हुए ज्ञान और विस्मय ने मेरे शोक को दूर कर दिया है। मैं निष्ठाप हो गया हूँ, मेरी सब व्याथा जाती रही। वनाइए, अब मैं क्या करूँ॥३॥५॥ यह सुनकर नारद ने कहा—हे राजेन्द्र ! बड़ी धान जो तुम्हारे हृदय से पुत्रशोक जाता रहा। अब तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँगो। जो तुम चाहोगे वह पाओगे। हम ऋषि लोग मिथ्यावादी नहीं हैं॥६॥ सृञ्जय ने कहा—हे भगवन् ! आप मुझ पर प्रमत्त हैं, इमी में मैं कृतवृत्त हो गया। आप जिस पर प्रमत्त हो उसके लिए दुर्लभ ही क्या है॥जानकर नारद ने कहा—हे राजेन्द्र ! डाकुओं ने वृथा

तुम्हारे पुत्र की हत्या का है। मैं उसे, यज्ञवल्कि में निहत पशु की भाँति, कष्टदायक नरक में उठाकर फिर तुमको देता हूँ॥८॥व्यास जी कहते हैं—प्रमत्त ऋषि नारद के तपोबल के प्रभाव में सृञ्जय का यह पुत्र, कुबेर के बालक के समान अद्भुत प्रभा में सम्पन्न होकर, सृञ्जय के सन्मुख प्रकट हो गया। अपने पुत्र की पाकर राजा सृञ्जय बहुत ही प्रमत्त हुए। उन्होंने इसके उपरान्त बहुत से श्रेष्ठ यज्ञ किये और उनमें ब्राह्मणा की बहुत दक्षिणाएँ दीं॥९॥१०॥हे युधिष्ठिर ! सृञ्जय का पुत्र सुवर्णप्राची अष्टनाग और प्राणभय से भयभीत हुआ हुआ था। वह न तो युद्ध-विद्या में निपुण था और न युद्ध में मारा ही गया था। उसने न तो यज्ञ ही किया था और न उसके पक्ष में न्याय ही उपनष्ट हुई थी। इन्हीं कारणों से देवर्षि

वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे ।
 गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वस्य युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥
 पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम् ।
 न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम् ॥ २५ ॥
 सम्पूज्य मनसा विद्वान्विशोकोऽभ्यूधुधिष्ठिरः ।
 पुनश्चाऽचिन्तयद्दीनः किंस्विदक्ष्ये धनञ्जयम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारतेद्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराज्ञकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ समाप्तमभिमन्युवधपर्व ।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि शोक त्यागकर श्रेय
 के लाभ का यत्न करता रहे । प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द,
 प्रिय कार्य और उत्साह, इनको विद्वान् लोग शौच
 (पवित्रता) कहते हैं । शोक अपवित्रता का रूप है ।
 यह जानकर उठो, अपने को पवित्र और एकाग्र
 बनाओ, शोक मत करो ॥ १८।२०॥ तुम मृत्यु की
 उत्पत्ति, अनुपम तप, सब प्राणियों में समभाव और
 सृज्य के मेरे हुए पुत्र का फिर जी उठना इत्यादि
 वृत्तान्त सुन चुके । हे महाराज ! यह सब जानकर
 तुम शोक मत करो । अब मैं जाता हूँ । मेरा कहा
 स्वीकार करो । अब भगवान् वेदव्यास वहीं अन्त-
 र्धान हो गये ॥ २१।२३॥ मेष विहीन आकाश के
 ममान प्रभा से युक्त, वागीश्वर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ,
 वेदव्यास जी युधिष्ठिर को समझाकर चले गये ।
 महेन्द्रतुल्य पराक्रमी, न्याय से धनोपार्जन करनेवाले,
 पहले के राजाओं के यज्ञों का वृत्तान्त सुनकर और
 मन ही मन में उनकी प्रशंसा करके युधिष्ठिर शोक-
 हीन हो गये । किन्तु फिर ये दीन भाव से यह चिन्ता
 करने लगे कि अर्जुन के आने पर उनसे क्या कहूँगा
 ॥ २१।२६॥

द्रोणपर्व का इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७१ ॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

सञ्जय उवाच—तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये ।
 आदित्येऽस्तं गते श्रीमान्सन्ध्याकाल उपस्थिते ॥ १ ॥
 व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ
 हत्वा संशप्तकव्रातान्दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः ॥ २ ॥
 प्रायात्स शिविरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम् ।
 गच्छन्नेव च गाविन्द साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥
 किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक्च सज्जति केशव ।
 स्यन्दन्ति चाऽप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाऽप्युत ॥ ४ ॥

वहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७२ ॥

मन्त्रप भूतराष्ट्र में कहते हैं - हे महाराज !
 प्राणियों का संहार करनेवाला यह भयङ्कर दिन व्यतीत
 हो गया और भगवान् भास्कर अस्ताचल पर पहुँच
 गये । मर गया हो गई । हे भरतश्रेष्ठ ! दोनों ओर की
 सेनाएँ युद्ध बन्द करके अपने-अपने शिविर को चली

गईं । ऊपर अर्जुन भी दिव्य अस्त्रों के द्वारा संशप्तक-
 सेना का संहार करके, विजय दिलानेवाले रथ पर बैठे
 हुए, अपने शिविर को चले । मार्ग में जाने-जाने अर्जुन
 गदगद स्वर में श्रीकृष्णचन्द्र जी से कहने लगे—॥ १३॥
 हे गोविन्द ! मेरा हृदय इस समय क्यों अकारण भय-

अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयात्रापऽसर्पति ।
भुवि ये दिक्षु चाऽत्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम् ॥ ५ ॥

बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्व एवाऽघशंसिनः ।
अपि स्वस्ति भवेद्राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥ ६ ॥

वासुदेव उवाच—व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति ।
मा शुचः किञ्चिदेवाऽन्यत्तत्राऽनिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥

मञ्जय उवाच—ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने ।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥

ततः स्वशिविरं प्राप्तौ हतानन्दं हतस्त्रिपम् ।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥

ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिविरं परवीरहा ।
वीभत्सुरव्रीत्कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥

नदन्ति नाऽय तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन ।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाऽऽम्बुरैः सह ॥ ११ ॥

वीगा नैवाऽय वाद्यन्ते शम्भा तालस्वनैः सह ।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च ॥ १२ ॥

स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममाऽनीकेषु वन्दिनः ।
योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते हाधोमुखाः ॥ १३ ॥

कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाऽभिवदन्ति माम् ।
अपि स्वस्ति भवेद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥

बिहल हो रहा है। मेरे मुख में अन्धरी तरह बात नहीं निकलती, आज कौण रह है, शरीर शिथिल हो रहा है, रथ पर घटे रहा नहीं जाता। मेरे हृदय में एक अगाध अनिष्ट-निन्ता उत्पन्न हुई है, वह किसी प्रकार दूर नहीं होती। पूर्ण पर और मन्त्र दिशाओं में अत्यन्त उम अनिष्टमन्त्रका उद्गार देगा पढ़ते हैं, वे मुझे भयविहल कर रहे हैं। भद्रि-बन्धुओं सहित महागज युधिष्ठिर ने युद्धापूर्वक हेमि न ग ॥ ६ ॥ कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ! माधवो सहित भर्मात्र मनुमान्त ही हेमि। हम विषय में मन्देह और शोक मन करो। वही और दो वृत्त अनिष्ट हो मन्त्रादौ ॥ ७ ॥ मञ्जय कहते हैं—इसके पथ पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने रणभूमि के निवर्त

सन्ध्यावन्दन किया। फिर दोनों मित्र रथ पर घटकर युद्ध की बातें करते हुए अपने शिविर के समीप पहुँचे। अपने शत्रुओं का नाश करके दुष्कर कर्म करनेवाले अर्जुन और श्रीकृष्ण ने अपने शिविर को देखा तो यह नष्ट-व्यथ और निराश्रित देख पड़ा। हमने अर्जुन का हृदय धक्कने लगा ॥ ८ ॥ १० ॥ उच्छान्त व्याकुल होकर पड़ा हे जनार्दन ! आज मङ्गलमय गुरही, नगाड़े, शङ्ख आदि बाजे नहीं बज रहे हैं। कन्नाड और वीणा बजाकर गरिब लोग मातल गीत नहीं गाते। मेरे शिविर में कदोबन नहीं, स्तुति के मनोरम पद नहीं पढ़ते। योद्धा लोग मुझे देखते ही मिर झुकाकर दुर्गम और चले जाते हैं। वे पढ़ते की भक्तिमग्न अभिनन्दन

नहि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम् ।
 अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥
 सर्वेषां चैव योधानां सामन्थं स्यान्ममाऽच्युत ।
 न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह ।
 रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥ १६ ॥
 सङ्गय उवाच—एवं सङ्कथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिविरं स्वकम् ।
 ददृशाते भृशस्वस्थान्पाण्डवान्नष्टचेतसः ॥ १७ ॥
 दृष्ट्वा भ्रातृश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः ।
 अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥
 मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते ।
 न चाऽभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥
 मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः ।
 न च वस्तस्य भेत्ताऽस्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥ २० ॥
 न चोपदिष्टस्तस्याऽऽसीन्मयाऽनीकाद्विनिर्गमः ।
 कञ्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥ २१ ॥
 भित्त्वाऽनीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि ।
 कञ्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥
 लोहिताश्वं महाबाहुं जातं सिंहमिवाऽद्रिषु ।
 उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३ ॥

करके मेरे आगे, रण में किये गये, अपने कर्मों का । हो रहे हैं । उदाम अर्जुन ने भीतर पहुँचकर मय
 वर्णन नहीं करते । हे माधव ! आज यह क्या बात । भाइयों आर पुत्रों को देखा, किन्तु अभिमन्यु नहीं
 है । मेरे सन भाई तो सकुशल हैं न ? रजनों ने । देव पड़े । तब व्याकुल होकर अर्जुन ने कहा — हे
 व्याकुल देवकर मेरे मन का भाव शुद्ध नहीं होता, । और उदामी झलक रही है । और अभिमन्यु मुझे यहाँ
 अनिष्ट की आशा है । और भी खबर पकड़नी जानी है । । और कहीं नहीं देव पड़ता । तुम लोग कोई मेरा अभि-
 पाञ्चालराज द्रुपद, राजा विराट और मेरे पक्ष के । नन्दन नहीं करते॥१७॥१८॥मैंने सुना है कि आज
 अन्य योद्धा सबके सन सकुशल हैं न ? आज मुझे । । मैंने अभिमन्यु को उम व्याह के भीतर जाने का
 रण में आते देवकर और अभिमन्यु हैंमना हुआ, । । मैंने अभिमन्यु को उम व्याह के भीतर जाने का
 अपने भाइयों के साथ, पहले की भौति मुझे लेने के । । मैंने अभिमन्यु को उम व्याह के भीतर जाने का
 किये क्यों नहीं आता ॥११॥१२॥मन्त्रय कहते हैं— । । मैंने अभिमन्यु को उम व्याह के भीतर जाने का
 अर्जुन और श्रीकृष्ण इस प्रकार बातचीत करते हुए । । मैंने अभिमन्यु को उम व्याह के भीतर जाने का
 शिविर के भीतर गये । भीतर जाकर दोनों ने देखा । । मैंने अभिमन्यु को उम व्याह के भीतर जाने का
 कि चारों भाई पाण्डव बहुत ही व्याकुल और उदाम । । मैंने अभिमन्यु को उम व्याह के भीतर जाने का

सुकुमारं महेष्वासं वासवस्याऽऽत्मजात्मजम् ।
 सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४ ॥
 सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च ।
 अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत्कालमोहितः ॥ २५ ॥
 सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः ।
 विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ २६ ॥
 बाष्पेर्धीदयितं शूरं मया सततलालितम् ।
 यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ २७ ॥
 मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेश्वणम् ।
 मत्तद्विरदविक्रान्तं सिंहपोतमिवोद्धतम् ॥ २८ ॥
 स्मिनाभिभाषिणं दान्तं गुरुवाक्यकरं सदा ।
 बाल्येऽप्यतुलकर्मणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥ २९ ॥
 महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
 भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥
 कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
 युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विपतां भयवर्धनम् ॥ ३१ ॥
 स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितृणां जयगृह्णिनम् ।
 न च पूर्वं प्रहर्त्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥ ३२ ॥
 यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।
 रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ॥ ३३ ॥

बाणक को शत्रु सेना के भीतर तो नहीं भेज दिया ।
 शत्रुनाशन अभिमन्यु शत्रुओं के व्यूह को तोड़कर,
 भीतर प्रवेश होकर, वहाँ शत्रुओं के हाथ से युद्ध में
 मारा तो नहीं गया ॥ २० ॥ २१ ॥ शीघ्र उत्तरलाओ, लोहित-
 लोचन, महाबाहु, जङ्गली सिंह शिशु के तुल्य और
 उषेन्द्र के समान पराक्रमी गीर बालक अभिमन्यु युद्ध
 में मारा तो नहीं गया । बतलाओ, सुकुमार, महायोद्धा,
 इन्द्र का पात्र और मेरा प्रिय अभिमन्यु युद्ध में मारा
 तो नहीं गया । सुभद्रा और द्रौपदी के प्रिय पुत्र और
 श्रीकृष्ण तथा कुन्ती के दुलारे अभिमन्यु को किसी
 ने मार तो नहीं डाला । जिसे बाल ने मोहित कर
 दिया है । पराक्रम, ज्ञान और माहात्म्य में वृष्णिगीर

श्रीकृष्ण के समक्ष महावीर अभिमन्यु क्या मारा गया ।
 ॥ २३ ॥ २४ ॥ सुभद्रा का प्यारा पुत्र, मेरा दुलारा, शूर-
 श्रेष्ठ अभिमन्यु यदि मुझे देखने को न मिला तो मैं
 अपने प्राण दे दूँगा । कीमल धुँवरगले वालों से रोहित,
 बालक, मृग नयन, मस्त हाथा के समान पराक्रमी, सिंह-
 शास्त्र के समान वीर, मन्द मुमकान के साथ मधुर
 भाषण करनेवाले, शान्त, बड़े बूढ़ों की आज्ञा का
 पालन करनेवाले, विनीत, बालरूपन में भी अद्भुत क्रम
 करनेवाले, प्रियवादी, मत्सर रहित, महाउसाही, महा-
 बाहु, कमलदल के तुल्य त्रिशूल नयनोंवाले, भक्तों पर दया
 करनेवाले अभिमन्यु को मैं न देख पाऊँगा तो अपने प्राण
 अर्पण दे दूँगा । नीच प्रवृत्तियों में दूर रहनेवाले, वृत्तज्ञ,

मयाऽध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् ।
 प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च ॥ ३४ ॥
 यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।
 सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम् ॥ ३५ ॥
 अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
 तन्त्रीखनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥ ३६ ॥
 अभृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
 रूपं चाऽऽप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥
 अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
 अभिवादनदक्षं तं पितृणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥
 नाऽद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।
 सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥ ३९ ॥
 भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।
 शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥ ४० ॥
 तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ।
 यः पुरा बोध्यते सुतः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥
 बोध्यन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः ।
 छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद्वदनं शुभम् ॥ ४२ ॥

ज्ञानी, अलखिया मे निपुण, युद्ध में पीठ न दिखा देने-
 वाले, युद्धप्रिय, शत्रुओं को भयभीत करनेवाले स्वजनों
 को प्रिय और हित करने में तत्पर, अपने पितृकुल
 की जय के लिए यत्नशील, शत्रु पर पहले प्रहार न
 करनेवाले, युद्ध में कभी न व्याकुल होनेवाले अपने
 प्रिय पुत्र अभिमन्यु को यदि मैं न देख पाऊँगा तो
 अपने प्राण दे दूँगा॥ २७३३॥ रथी योद्धाओं की गणना
 के समय मैंने उस महारथी की गणना करते हुए कहा
 था कि उसमें अन्य महारथियों से आधा गुण अधिक
 है । उसी नयपुत्र, बाहुबल में अद्वितीय और प्रसन्न
 तथा श्रीकृष्ण के परम प्रिय अभिमन्यु को यदि मैं न
 देख पाऊँगा तो अस्व ही अपने प्राण दे दूँगा । बालक
 अभिमन्यु के सुन्दर ललाट, नासिका, नयन, भ्रुकुटी
 और होठों से शोभित मुखचन्द्र को विना देखे मेरे

हृदय को शान्ति न प्राप्त होगी । वीणा की ध्वनि
 और कोयल के शब्द के समान मधुर अभिमन्यु की
 बोली सुने बिना मेरे हृदय को कभी शान्ति नहीं प्राप्त
 हो सकती॥ ३३३७॥ उम वीर को देन दुर्लभ अमा-
 धाण रूप बिना देखे मेरे हृदय को शान्ति नहीं प्राप्त
 होगी । प्रणाम करने में निपुण और पितृगण के आज्ञा-
 कारी अभिमन्यु को आज यदि मैं नहीं देख पाऊँगा
 तो मुझे कभी शान्ति न प्राप्त होगी । हाय ! वह
 सुकुमार वीर महामन्यु शय्या पर लेटने के योग्य सनाथ
 अभिमन्यु युद्धभूमि में अनाथों की भाँति पड़ा हुआ
 होगा । पहले कामठ शय्या पर शयन करने के समय
 जिसके समीप सुन्दर स्त्रियाँ रहती थीं, वही इस समय
 धूल में पड़ा होगा और चारों ओर गिरदियों उमे घेरे
 हुए होंगी॥ ३७४१॥ जिसको पहले मृत-मागध वन्दि-

नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।
 हा पुत्र काऽवितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥
 भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ।
 सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ॥ ४४ ॥
 स्वभाभिर्मोहिता रम्या त्वयाऽत्यर्थं विराजते ।
 नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥
 शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।
 एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग्गथां ॥ ४६ ॥
 दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ।
 कञ्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥
 स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।
 स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥
 असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम् ।
 पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः ॥ ४९ ॥
 नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः ।
 इह मे स्यात्परित्राणं पिनेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥
 इत्येवं विलपन्मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः ।
 अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्त्रीयो माधवस्य च ॥ ५१ ॥
 सुभद्रायां च संभूतो न चैव वक्तुमर्हति ।
 वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥

जन स्तुति-गीतों से जगते थे उसी के आसपास आज
 दूरी मात्साहारी जीव अनिष्ट स्वर में बोल रहे होंगे ।
 जिसका सुन्दर मुख लज्जालायक के योग्य था, उसी के
 मुख को आज रणभूमि की रज मलिन करेगी । हाय
 पुत्र ! मैं तुम्हारा मुख देखकर तृप्त नहीं हुआ था;
 किन्तु मैं ऐसा अभाग्य हूँ कि काल तुमको बलपूर्वक
 मेरे समीप से लिये जा रहा है । पुण्यात्मा लोग जहाँ
 जाते हैं वह अपनी काजित मे रमणीय यमराज की
 समयनी पुरी आज तुम्हें पाकर अत्यन्त शोभायमान हो
 रही होगी । निर्भय होकर युद्ध करनेवाले तुम प्रिय
 अतिथि को पाकर यमराज, वरुण, कुवेर और इन्द्र
 आदि लोकपाल तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ ४१४६ ॥ सञ्जय

कहते हैं कि हे महाराज ! जहाज टूटने पर उस पर
 सवार डूबना हुआ सौदागर जैसे विलाप करता है वैसे
 ही अत्यन्त दुःख के साथ विलाप करके अर्जुन ने
 युधिष्ठिर से पूछा—हे कुरुनन्दन ! वीर अभिमन्यु श्रेष्ठ
 वीरो से युद्ध करते-करते शत्रुसेना का विनाश करके
 सम्मुखयुद्ध में मारा तो नहीं गया ? बहुत से महारथी
 योद्धा मिलकर यत्नपूर्वक उससे युद्ध कर रहे होंगे और
 उस समय उम अकेले बालक ने सहायता के लिए
 भेरा स्मरण किया होगा ॥ ४६ ॥ ऐसा जान पड़ता
 है कि कर्ण, द्रोण, कृपाचार्य प्रमुख विपक्षियों के नीक्षण
 बाणों से पीड़ित वह बालक अवश्य ही “हे पिता ! दीड़ो,
 मेरी रक्षा करो !” कहकर बहुत विलाप कर रहा होगा

अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ।
 कथं वाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ॥ ५३ ॥
 स्वस्तीये वासुदेवस्य मम पुत्रऽक्षिपञ्चरान् ।
 यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याऽभिनन्दति ॥ ५४ ॥
 उपायान्तं रिपून्हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति ।
 नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥ ५५ ॥
 शौभयन्मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः ।
 सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥
 रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनक्ष्यति ।
 सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ॥ ५७ ॥
 द्रौपदी चैव दुःखाते ते च वक्ष्यामि किं त्वहम् ।
 वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥
 सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम् ।
 हसनां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥
 युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुता वीरानुपालभन् ।
 अशक्नुवन्तो वीभत्सुं वालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥
 किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां वलम् ।
 किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥

और उसी समय नीचहृदय शत्रुओं ने मिलकर उसे मार डाला होगा। अथवा वह मेरा पुत्र और श्रीकृष्ण का भानजा है, इसलिए उसने कभी ऐसे दान वचन न कहे होंगे। मेरा हृदय अदय ही वज्र का बना हुआ है, जो महाबाहु रक्तानयन वीर बालक अभिमन्यु को न देखकर टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता ॥ ५९, ५९ ॥
 हाय! नृशंस नीच धनुर्धर शत्रुओं ने श्रीकृष्ण के भानजे और मेरे पुत्र बालक अभिमन्यु को मर्मभेदी तीक्ष्ण बाण कैसे मारे। जब मैं शत्रुओं को मारकर आता था तब वह उत्साही वीर बालक सदैव आगे बढ़कर मेरे समीप आता और मेरा अभिनन्दन करता था; किन्तु आज वह क्या मुझे नहीं देखता? आज वह मेरे समीप आकर अभिनन्दन क्यों नहीं करता? अवश्य ही वह इस समय रक्त से तर होकर पृथ्वी पर मरा पड़ा होगा।

अकाश से गिरे हुए सूर्य की भाँति क्रान्तिपूर्ण अपने अङ्गा की आभा से वह रणभूमि की शोभा बढ़ा रहा होगा। मुझे सुभद्रा के लिए बड़ा शोक हो रहा है, क्योंकि वह युद्ध से न भागनाले अपने वीर पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर अवश्य ही शोकपीड़ित होकर प्राण दे देगी। हाय! आज अभिमन्यु को न देखकर सुभद्रा और द्रौपदी मुझे क्या कहेंगी और मैं हों उन दुःख से पीड़ित देवियों से क्या कहूँगा ॥ ५९, ५९ ॥
 मेरा हृदय वज्र का बना हुआ है, जो अपनी बहू उत्तरा को शोक से पीड़ित होकर रिलप करते देख टुकड़े-टुकड़े न हो जायगा। मैंने लाटते समय हर्ष और गर्व से भरे हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों का सिंहनाद सुना है और श्रीकृष्ण ने भी सुना है कि वैश्या-पुत्र युयुत्सु इस प्रकार कौरवों से तिरस्कार-पूर्ण मत्सनायक्य बह रहे थे कि

सिंहवन्नदथ प्रीता शोककाल उपस्थिते ।
 आगमिष्यति व क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥
 अधमो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम् ।
 इति तान्परिभाषन् वैश्यापुत्रो महामतिः ॥ ६३ ॥
 अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः ।
 किमर्थमेतन्नाऽऽख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ॥ ६४ ॥
 अधाशं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान्महारथान् ।
 पुत्रशोकार्दितं पार्थ ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥ ६५ ॥
 निरुह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ।
 मैवमित्यब्रवीत्कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६६ ॥
 सर्वेषामेव वै पन्था शूराणामनिवर्तिनाम् ।
 क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥
 एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
 विहिता सर्वशास्त्रैर्गतिर्मतिमतिमतां वर ॥ ६८ ॥
 ध्रुव हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम् ।
 गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६९ ॥
 एतच्च सर्ववीराणां कांक्षितं भरतर्षभ ।
 संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद ॥ ७० ॥

'हे अमी महारथियो ! तुम जोग अर्जुन का हारान में
 अममर्थ होकर अनेक महापराजय का क्या मारकर
 जलिन नहीं होते ॥ ५८ ॥ ६० ॥ ॥ ७० ॥ तुम ही देर क
 पथात्तुम्ह पाण्डवों का पराक्रम देखने को मित्र जायगा
 तुम लोगों ने युद्धभूमि में श्रीकृष्ण अर अर्जुन का अप
 राध किया है इसलिए तमसे शोक करना चाहिए
 क्योंकि तुम्हारे सिर पर मृग्य समारह । तुम शोक करने
 के लिये क्या प्रसन्न हो रहे हो और पिहनाज कर
 रहे हो । तुम लोगों को शीघ्र ही अपने पापजम का
 परिणाम मित्रगा । तुमने मारा अधम किया है, उसका
 परिणाम तुम्हें क्यों न प्राप्त होगा ।' महामति युयुत्सु
 कोप और दुःख में परिपूर्ण होकर, शस्त्र खबर, यहाँ
 में चले गये । हे श्रीकृष्ण ! तुमने युयुत्सु के सुग मे
 यथाने सुनकर युद्धभूमि में हा मुझसे क्या नहीं कहा ।

म उत ताव प्रवृत्ति महारथियों को उसी समय, वही,
 अपन जणों की अग्नि में मस कर देता ॥ ६१ ॥ ६५ ॥
 मज्जय कहते हैं कि आँवों में आँसू भरे हुए, पुत्रशोक
 से पीड़ित, चिन्तित अर्जुन को पकड़कर, उनसे तीव्र
 शोक को ज्ञात करते हुए, श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार
 समझाने लग — ह पाथ ! इस प्रकार शोक ॥ कानर
 मत हाओ । युद्ध में न भागना शरीर की, विगोपकर
 हम जोग जैसे मल जीविकायात्रे शत्रियों की, एक
 दिन यही गति हानी है । हे बुद्धिमान ! मे अग्र अर्जुन ।
 जा जोग शूर है, इन्कर युद्ध करत है, उनका जिन
 धर्मशस्त्रविशाल विद्वानों ने यही गति निश्चित की है ।
 नो शूर क्षत्रिय रण में पीट नहीं दिखते उनका युद्ध
 में मरना निश्चित और स्वभाविक है । वीरकुमार अभि
 मयु उही अग्र जयों को गया है जहाँ पुण्या मा लोग

स च वीरानरणे हत्वा राजपुत्रान्महाबलान् ।
 वीरैराकाक्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१ ॥
 मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः ।
 धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ ७२ ॥
 इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम ।
 त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥
 एतांश्च वचसा साम्रा समाश्वासय मानद ।
 विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥
 एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाऽद्भुतकर्मणा ।
 ततोऽब्रवीत्तदा भ्रातृन्सर्वान्पार्थः सगद्गदान् ॥ ७५ ॥
 स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः ।
 अभिमन्युर्यथा वृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७६ ॥
 सनागस्यन्दनहयान्द्रक्ष्यध्वं निहतान्मया ।
 संग्रामे सानुबन्धांस्तान्मम पुत्रस्य वैरिणः ॥ ७७ ॥
 कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम् ।
 सौभद्रो निधनं गच्छेद्वज्रिणाऽपि समागतः ॥ ७८ ॥
 यथेवमहमज्ञास्यमशक्तान्क्षणे मम ।
 पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालन्मया गुप्तो भवेत्ततः ॥ ७९ ॥
 कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
 नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥ ८० ॥

जाया करते हैं ॥६५।६९॥ हे भरतकुल-तिलक !
 सभी वीर लोग यह चाहते हैं कि सम्मुख-संग्राम में
 युद्ध करते-करते उनकी मृत्यु हो । वीर अभिमन्यु रण
 में महाबली राजपुत्रों को मारकर युद्ध करते-करते
 उस मृत्यु से मरा है, जिसकी वीर लोग इच्छा रखने
 हैं । हे पुरुषसिंह ! तुम शोक मत करो । धर्मसंस्थापक
 महापुरुषों ने युद्ध में मरना क्षत्रियों का धर्म निश्चिन
 किया है । देखो, ये सब तुम्हारे भाई और सुहृद
 तुम्हें शोकविह्वल देखकर व्याकुल हो रहे हैं । इन्हें
 समझाओ, दादस बंधाओ । जानने के योग्य सब बातें
 तुम जानते ही हो । तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना
 चाहिए ॥७०।७४॥ अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णचन्द ने-

जब इस प्रकार समझाया तब महावीर अर्जुन गद्गद
 स्वर से अपने भाइयों से कहने लगे—महाबाहु, ऊँचे
 बन्धोंवाले, कमलनयन वीर अभिमन्यु की मृत्यु का
 वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ । जिन्होंने मेरे पुत्र को
 मारा है वे शीघ्र ही संग्राम में देखोगे कि उनके दल के
 हाथी, घोड़े, रथ और योद्धा मेरे वाणों से नष्ट होंगे ।
 तुम लोग अख-शस्त्र चलाते में निपुण हो । तुम लोग
 शस्त्र लिए उपस्थित थे । तुम्हारे आगे तो इन्द्र भी
 अभिमन्यु की हत्या नहीं कर सकते थे ॥७५।७८॥
 यदि मैं जानता कि तुम सब पाण्डव और पाञ्चाल-
 गण मेरे पुत्र अभिमन्यु की रक्षा न कर सकोगे तो मैं
 स्वयं कहीं न जाकर उसकी रक्षा करता । तुम लोग

अहो वः पौरुषं नाऽस्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः ।
 यत्राऽभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ॥ ८१ ॥
 आत्मानमेव गह्वरं यदहं वै सुदुर्वलान् ।
 युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरून्कृतनिश्चयान् ॥ ८२ ॥
 आहोस्त्रिभूषणार्थाय वर्मशस्त्रायुधानि वः ।
 वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥ ८३ ॥
 एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान् ।
 न स्माऽशक्यत वीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ॥ ८४ ॥
 तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।
 पुत्रशोकाभिसन्तप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८५ ॥
 न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
 अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८६ ॥
 सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ ।
 बहुमानात्प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ॥ ८७ ॥
 ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
 राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञार्पणी अर्जुनकोपे द्विमतनितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

रप पर बैठकर बाण-तर्फी कर रहे थे, तब भी कैसे
 शत्रुपक्ष के योद्धा तुम्हें हटा करके अभिमन्यु को मार
 सके ! आज मुझे प्रतीत हो गया कि तुम लोगों में पौरुष
 और पराक्रम किसित्तामत्र भी नहीं है॥७०॥८१॥
 यदि ऐसा न होता तो तुम्हारी आँखों के आगे ही शत्रु
 लोग अभिमन्यु की हत्या कैसे कर पाते ! अथवा मुझे
 अपनी ही निन्दा कतनी चाहिए । तुम दुर्बल, भीरु,
 कच्चे निधववाले पर विश्वास करके मैं क्यों सशस्त्र-
 गण में मुद्द करने गया था ! तुम लोग मेरे पुत्र की
 रक्षा नहीं कर सके तो क्या ये कवच, शस्त्र, धनुष-
 बाण आदि केवल दिग्बाने के लिए ही तुमने धारण
 कर रखे हैं॥८२॥८३॥ तुम लोग क्या जनना में
 यद-यदकर चीरता की बातें करना ही जानते हो ।
 यहमूल्य खूब धारण किये हुए वीर अर्जुन इतना

कहकर जान्त हो रहे । काल के समान क्रुद्ध और
 पुत्रशोक से अत्यन्त पीडित विह्वल अर्जुन बारम्बार श्वास
 ले रहे थे । उनके नेत्रों में शोक और क्रोध के मारे
 आँसू भरे हुए थे । केवल बड़े भाई युधिष्ठिर और
 महात्मा श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन के और सब
 सुहृद्वर्ग उनमें बान करने की कौन कहे, उनकी ओर
 देख तक भी नहीं सकते थे । ये दोनों महानुभाव सब
 समय सब अवस्थाओं में अर्जुन के हितचिन्तक, प्रिय,
 उनके हृदय के भाव को पहचाननेवाले और अनुगत थे ।
 अर्जुन भी उन्हें बहुत मानते और प्यार करते थे । ये
 ही उस समय अर्जुन में कुछ कह सकते थे । अब पुत्र-
 शोक से अत्यन्त पीडित और क्रुद्ध कमलनयन अर्जुन
 में महाराज युधिष्ठिर की कहने लगे॥८४॥८५॥

— ० —

द्रोणपर्व का बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर उवाच — त्वयि याते महाबाहो संशतकवलं प्रति ।
 प्रयत्नमकरोत्तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १ ॥
 व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः ।
 प्रतिव्यूह्य रथानीकं यत्तमानं तथा रणे ॥ २ ॥
 स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते ।
 अस्मानभिजगामाऽऽशु पीडयन्निशितैः शरैः ॥ ३ ॥
 ते पीडयमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
 प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेजुं तत्कुत एव तु ॥ ४ ॥
 वयं त्वप्रतिमं वीर्यं सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
 उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ५ ॥
 स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् ।
 असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ६ ॥
 स तवाऽस्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
 प्राविशत्तद्वलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥ ७ ॥
 ते नु याता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
 प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥
 ततः सैन्धवको राजा ध्रुवस्तत जयद्रथः ।
 वरदानेन रुद्रस्य सर्वाङ्गः समवारयत् ॥ ९ ॥

तिहत्तरवो अध्याय ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर ने कहा — हे महाबाहु अर्जुन ! तुम जब सशतक-सेना को मारने गये थे तब द्रोणाचार्य ने मुझे पकड़ने के लिए बड़ी-बड़ी चेष्टाएँ की थीं । [व्यूह बना करके] आचार्य जब मुझे पकड़ने का यत्न करने लगे तब हम लोग भी अपनी सेना को व्यूहरचना-पूर्णक शत्रुओं के सम्मुख खड़ा करके उनके आक्रमण को रोकने की चेष्टा करने लगे । मेरे पक्ष के बहुत से रथियों ने द्रोणाचार्य को कटने से रोका और मैं भी सुरक्षित हो गया, तब द्रोणाचार्य अपने तीक्ष्ण बाणों से हमारी सेना को पीड़ित करते हुए हम लोगों की ओर बढ़े ॥ १३ ॥ उस समय हम लोगों को आचार्य ने इतना दुःख दिया कि हम लोग उनकी सेना के व्यूह

को क्या तोड़ने, उनकी ओर नेत्र उठाकर देखने में भी असमर्थ हो गये । तब मैंने व्याकुल होकर अर्द्ध-तीय योद्धा कुमार अभिमन्यु से कहा कि हे पुत्र ! तुम द्रोणाचार्य की सेना के इस व्यूह को तोड़कर हमारे लिए भीतर प्रवेश होने का मार्ग बना दो । हम लोगों की प्रेरणा से, उत्तम प्रकृति के बहुमूल्य योद्धे को तरह, पराक्रमी अभिमन्यु ने अमह भार होने पर भी उसे अपने ऊपर ले लिया ॥ १४ ॥ गरुड़ जैसे समुद्र में प्रवेश होने वैसे ही वह बालक तुम्हारी सिखाई हुई अश्वविद्या के बल से, अपने बाहुबल के सहारे, शत्रुसेना के भीतर प्रवेश हो गया । हम लोग अभिमन्यु के पीछे जा रहे थे । जिस राह से अभिमन्यु

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च ।
 कृतवर्मा च सौभद्रं पङ्कथाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥
 परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि वालो महारथैः ।
 यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥
 ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
 संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाऽभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥
 स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् ।
 अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥
 राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चाऽलक्षितान्वहून् ।
 बृहद्वलं च राजानं स्वर्गेणाऽऽजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥
 ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।
 एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥
 स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।
 ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥
 हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद्भुवि ।
 विपणवदनाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ १७ ॥
 नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैश्वर्यस्परम् ।
 प्रतिलभ्य ततः संज्ञा वासविः क्रोधमूर्छितः ॥ १८ ॥

व्यूह के मानर गया था उमा राह से हम लोग भी
 भीतर जाने का प्रयत्न करने लगे । उस समय छुट
 पराक्रमा सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ न, रथ के दिये
 हुए परदान के प्रभाव से, हम सबको बाहर ही रोना
 दिया । बहुत यत्न करने पर भी हम उसे नहीं हटा
 सके ॥ ७३ ॥ उधर महारथा द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण,
 अश्वत्थामा, कौशलराज बृहद्वल और कृतवर्मा, इन
 छ महारथियों ने अकेले ही पाँच अभिमन्यु का चारों
 ओर घेर लिया । महाबाहू अभिमन्यु उन लोगों ने
 यथाशक्ति युद्ध करता रहा किन्तु अंत को कई
 महारथियों ने मिलकर उसका रथ नष्ट कर दिया ।
 दुःशामन का पुत्र गदाधर उड़ा स्फूर्ति से रथ हान
 अभिमन्यु के समीप पहुँचा । मद्धत में पड़ कर अभि
 मन्यु को, पैदल देववर दुःशासन के पुत्र ने मार

डाला ॥ १० ॥ ११ ॥ धार्मिक श्रेष्ठ अभिमन्यु ने पहले सहस्रो
 हाथियों, घोड़ों, रथियों और पैदल सिपाहियों को
 मारा । उसके पश्चात् आठ सहस्र रथी, नव सौ हाथी,
 दो सहस्र श्रेष्ठ घोड़ा राजपुत्र उर्मेक हाथ से मार गये ।
 अभिमन्यु के बाणों ने बहुत से अलक्षित वीर राजाओं,
 राजपुत्रों और क्षत्रिय योद्धाओं का मृत्यु हुई । उर्मेक
 महापराक्रमा जोशराश बृहद्वल को भी उत्प्रेरक मग्न
 मर म मारा । इस प्रकार घमासान युद्ध करने और
 अद्भुत पराक्रम दिखाने पर वह स्वर्ग को दिखा गया ।
 ठ भाई ! हमारे शोक को बढ़ानेवागी यह युद्ध इस
 प्रकार हुआ है ॥ १३ ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर
 पुत्र सल अर्जुन शोक से व्याकुल हो उठे और "हाय !
 पुत्र !" कहकर, लम्बी श्वास लेकर, गिर पड़े । तब
 मज नीर लोग चारों ओर से उनको घेरकर उठामा

कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ।
 पाणिपाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् ॥ १९ ॥
 उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ।
 अर्जुन उवाच—सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ।
 न चेद्रथमयाद्भीतो धार्तराष्ट्रान्प्रहास्यति ॥ २० ॥
 न चाऽस्माञ्छरणं गच्छेत्कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् ।
 भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१ ॥
 धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् ।
 पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२ ॥
 रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योरस्यन्ति केचन ।
 अपि द्रोणकृपौ राजञ्छादयिष्यामि ताञ्छरैः ॥ २३ ॥
 यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः ।
 मा स्म पुण्यकृताँह्लोकान्प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥ २४ ॥
 ये लोका मातृहन्तृणां ये चापि पितृघातिनाम् ।
 गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा ॥ २५ ॥
 साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम् ।
 ये च निक्षेपहर्तृणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥
 भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम् ।
 ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥

से एक दूसरे की ओर निहारने लगे । कुछ देर के पश्चात् अर्जुन की होश आया । वे उस समय क्रोध के मोरे जर से प्रसित हुए प्रत्यक्ष की भाँति बाँध रहे थे और बारम्बार लम्बी श्वास ले रहे थे । हाथ से हाथ मलकर, दाँत कटकटाकर, उन्मत्त की तरह देखने हुए अर्जुन कहने लगे—हे धर्मराज ! हे बंधी ! मैं तुम लोगों के आगे यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि काठ प्रातः काल अस्त्र ही जयद्रथ को मार डालेगा । यदि जयद्रथ प्राणों की रक्षा के लिए, भयभीत होकर, दुर्योधन आदि को छोड़कर हम लोगों की, पुरुषोत्तम कृष्ण की अथवा हे महाराज ! आपकी शरण में न आ गया तो अस्त्र ही मैं कल प्रातः काठ उमड़ो मार डालेगा ॥ १६।२॥ हुए जयद्रथ को साथ पट्टे की मित्रता भुगकर दुर्योधन

का प्रिय करना चाहता है । वही नीच पापी मेरे पुत्र के वध का कारण है । इसलिए काठ मैं अस्त्र ही उसे मारूँगा । युद्धभूमि में जो कोई उसकी रक्षा करने के लिये मुझसे युद्ध करेगा उसे—चाहे द्रोणाचार्य हों और चाहे कृपाचार्य—मैं अस्त्र ही अपने तीक्ष्ण बाणों का लक्ष्य बनाऊँगा ॥ २२।२॥ चाहे धैर्य पुरुषों ! यदि मैं काठ संग्राम में यह कार्य न करूँ तो मुझे वे लोक न प्राप्त हों जिनमें पुण्यात्मा और शूरवीर क्षत्रिय जाते हैं । यदि मैं कल जयद्रथ को न मारूँ तो उन्हीं लोगों में जाऊँ जिनमें माता-पिता की हत्या करनेवाले, गुरु स्त्री मानी, बुगदवार, मज्जनों में डाल रखेवाले और उन्हें ब्रूया काट कर लगाकर उनकी निन्दा करनेवाले पापी जाते हैं । यदि मैं कल जयद्रथ को न मारूँ तो उन्हीं लोगों में

पायसं वा यवाक्षं वा शाकं कृसरमेव वा ।
 संयात्रापूपमांसानि ये च लोका वृथाऽश्रताम् ॥ २८ ॥
 तानह्यायाऽधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ।
 वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥
 अवमन्यमानो यान्याति वृद्धान्साधून्गुरुंस्तथा ।
 स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाऽग्निं च या भवेत् ॥ ३० ॥
 याऽप्सु श्लेष्मपुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः ।
 तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३१ ॥
 नम्रस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिर्येगतिः ।
 उत्कोचिनां मृपोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ॥ ३२ ॥
 आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिर्शंसिनाम्
 भृत्यैः सन्दिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥
 असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्रताम् ।
 तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३४ ॥
 संश्रितं चापि यस्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम् ।
 न विभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चाऽपकारिणम् ॥ ३५ ॥
 अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च ।
 अनर्हंभ्यश्च यो दद्याद्बृषलीपतये तथा ॥ ३६ ॥

जाऊँ जिनमें किसी की धरोहर मार लेनेवाले, विश्वास-
 पाती, पर-खी-गामी, दूसरे की निन्दा करनेवाले, ब्रह्महत्या
 और गोहत्या करनेवाले तथा देवता पितर अतिथि अग्नि
 आदि को दिये बिना अकेले ही पायस यवान्न साग
 कृसर (ग्विचड़ी या तिलचावल) सयाव (हलवा)
 पुये मास आदि खानेवाले पातकी जाते हैं ॥ २४२९ ॥
 यदि कल में जयद्रथ का वध न करूँ तो उन्हीं लोकों
 में जाऊँ जिनमें वेदपाठी ब्रह्मचारी ब्राह्मण का और
 वृद्धजन गुरुजन साधुजन आदि का अन्यास करने-
 वाले जाते हैं । यदि कल में जयद्रथ के प्राण न ले दूँ
 तो वही कष्टदायक नरक-गति मुझे भी प्राप्त हो जो
 ब्राह्मण गाय और अग्नि को पाँव से छूनेवालों और
 जल में धुँकने या मल मूत्र त्याग करनेवालों की होती
 है । नृशंसात्मक होकर स्नान करनेवाला, अतिथि-अभ्यागत

को विमुख करनेवाला, रिश्वत लेनेवाला, असत्य बोलने-
 वाला, धोखा देनेवाला, वञ्चक, अपनी पूर्व स्थिति
 या कार्यों को छिपाकर अन्यथा प्रकट करनेवाला, घृष्ट
 सूचना देनेवाला, भूल्य पुत्र स्त्री आश्रितजन आदि
 के सम्मुख उन्हें दिये बिना अकेले मिर्दा अग्नि
 खानेवाला जिस बुरी गति को प्राप्त होना है वही
 गति मेरी हो, यदि मैं कल जयद्रथ का वध न करूँ
 ॥ २९३४ ॥ जो नीच प्रकृति का पुरुष अपने आश्रित
 अन्ते स्वभाववाले और आज्ञा-पात्रन करनेवाले का
 त्याग कर देता है, उसका पालन-पोषण नहीं करना
 अथवा अपने साथ उपकार करनेवाले की निन्दा
 करता है, उम्मी की सी बुरी गति भी हो।
 मैं जयद्रथ का वध की प्रतीक्षा करने न करूँ ।
 नीच सुपात्र यक्ष्मी को श्राद्ध की दान-मान्य

मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः ।
 तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्भन्यां जयद्रथम् ॥ ३७ ॥
 मुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम् ।
 पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ॥ ३८ ॥
 ये चाऽऽवर्ज्यतां लोकाः स्वपतां च तथोपसि ।
 शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३९ ॥
 एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते ।
 पणमासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम् ॥ ४० ॥
 दिवा मैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते ।
 अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥
 अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः ।
 रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥ ४२ ॥
 या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम् ।
 आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥
 ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाहदाति न ।
 तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ ४४ ॥
 धर्मादपेता ये चाऽन्ये मया नात्राऽनुकीर्तिताः ।
 ये चाऽनुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥
 यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।
 इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥ ४६ ॥

न देनेवाला और अयोग्य तथा शूद्र। या रजस्वला
 कन्या से विवाह करनेवाले ब्राह्मणों को। आदम में भोजन
 करनेवाला। मदिरा पानेवाला, लोक और शास्त्र की
 मर्यादा को तोड़नेवाला, कृतघ्न तथा अपने स्वामी
 की निन्दा करनेवाला जिस बुरी गति को प्राप्त होता
 है वही। गति मेरी भी है, यदि मैं कल जयद्रथ के
 वध की प्रतिज्ञा पूर्ण न करूँगा। ३५।३७। यदि मैं कल
 जयद्रथ को न मारूँ तो मेरी भी वही गति है। जो
 मद्य पीकर (चापें हाथ में) भोजन करनेवाले या
 गौद में रणकर गानेवाले, पन्नाद के आसन पर बैठने-
 वाले, तिन्दुक में दन्त करनेवाले, प्रातः काल तक

वाले ब्राह्मण, कायर क्षत्रिय, जिस गौद में एक ही
 कूय है और कोई वेदपाठी न रहता हो। उम गीव
 में झः महानि तक रहनेवाले, शास्त्र की निन्दा करने-
 वाले, दिन तो मैथुन करने और सोनेवाले, किसी
 के घर में अग्नि लगा देनेवाले, किसी को त्रिप मित्र
 देनेवाले और अग्निहोत्र न करनेवाले की होती है
 ॥३८।४१॥ जल पीती हुई गाय को हँका देनेवाले,
 रजस्वला गमन करनेवाले कन्या विक्रय करनेवाले,
 पुणेहिता और मेरावृत्ति करनेवाले ब्राह्मण, मुग्ध-
 मैथुन करनेवाले और ब्राह्मण को कुल देने की प्रतिज्ञा
 करने पीछे लोभ के मोर न देनेवाले मनुष्य की जो
 बुरी गति होती है वही गति मेरी भी है, यदि मैं कल

यद्यम्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयाम्यति ।

इहैव स प्रवेष्टाऽहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥

असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा ।

चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्तदपि मम रिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ॥ ४८ ॥

यदि विशति रसातलं तदग्न्यं त्रियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।

तदपि शरशतैरहं प्रभाते भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।

तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद्विबम् ॥ ५० ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।

प्रदध्मौ तत्र संकुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ॥ ५१ ॥

स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना भृशं सुपूर्णो दरनिःसृतध्वनिः ।

जगत्सपातालवियद्दिगीश्वरं प्रकम्पयामास युगालये यथा ॥ ५२ ॥

ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासत्सहस्रशः ।

सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महारमना ॥ ५३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अजुनप्रतिज्ञाया त्रिमसतिनवोऽध्याय ॥ ७३ ॥

जयद्रथको न मार्त्तः ॥ ४२, ४४ ॥ जिन अरमियाका उछेव
नर चुका हैं और जिन पापिया का उछेव नहीं किया,
उन मन्त्री सी सुरा गति मेरी हो यदि मैं कल जयद्रथ
को न मार्त्तः । मैं यह दूसरी प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि
कल दिन दूने मे पहले पापी जयद्रथ जीता जागता
रहा तो मैं यही अग्नि म जल मर्त्तः । मैं सय कहता हूँ
कि असुर, देवता, मनुष्य, पक्षी, नाग, पितर, निगाचर,
शस्त्रि, देवर्षि और चराचर जगत्, कोई भी कल मेरे
शत्रु जयद्रथ की रक्षा नहीं कर सकता ॥ ४५, ४८ ॥
अभिमन्यु की मृत्यु का मृत्युकारण जयद्रथ चाहे भाग
कर रसातल में प्रवेश हो रहे, चाहे आकाश में चला
जाय, चाहे देवलोक अथवा दैत्यलोक में भाग जाय,
तथापि काट प्रात काट होंगे हाँ मैं अरथ ही अपने
पिने भैरुङ्गा वाणों में उमरा मिर काट डारूंगा ।

द्रोणपर्व का निहत्तरगो अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७३ ॥

अथ चतु ममन्तिनवोऽध्याय ॥ ७४ ॥

मञ्जय उवाच - श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जययच्छिनाम् ।

चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः ॥ १ ॥

इतना कहकर गीर अर्जुन ने दाहने बाँये बड़े जोर
में गण्डीव रतुप की डोरी बजाई । यह गाण्डीव का
शब्द सत्र शब्दों को दबाकर आनाशमण्डल तरा
पहुँच गया । अर्जुन जब इस प्रकार प्रतिज्ञा कर चुके
तब श्राकृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य शब्द बजाया । अत्यन्त
कुपित अर्जुन ने भी उनके साथ ही अपना दिव्य
देवदत्त शब्द बजाया ॥ ४९, ५१ ॥ श्रीकृष्ण के मुख की
वायु से परिपूर्ण पाञ्चजन्य के छिद्र में जो शब्द
निजग उमने पाताल, स्वर्ग, दिशाओं के मण्डल और
द्विपार्गों को प्रलयकाल की भाँति काँटा दिया । उस
ममय पाण्डवों के शिर में अर्जुन की प्रतिज्ञा सुन-
कर महर्षी गार्ग्य और शब्द बजने लगे, मन्त्री गार्ग्य
हर्ष और उमाह में सिंहनाद करने लगे ॥ ५२, ५३ ॥

शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाऽभिपरिप्लुतः ।
 मज्जमान इवाऽगाधे विपुले शोकसागरे ॥ २ ॥
 जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन्वहु ।
 स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥
 अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत् ।
 योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना ॥ ४ ॥
 स निनीपति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम् ।
 तत्स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वष्टं जीवितेऽसया ॥ ५ ॥
 अथवाऽस्त्रप्रतिवलाह्रात मां क्षत्रियर्षभाः ।
 पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते सन्दत्त ममाऽभयम् ॥ ६ ॥
 द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेश्वाल्हिकाः ।
 दुःशासनादयः शक्ताह्रातुं मामन्तर्कदितम् ॥ ७ ॥
 किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता ।
 न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः ॥ ८ ॥
 प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद्भयम् ।
 सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः ॥ ९ ॥
 वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना ।
 तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः ॥ १० ॥

चोहत्तराँ अध्याय ॥ ७४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! पुत्र की मृत्यु का
 बदला लेने के लिए उद्यत पाण्डवों का वह महाशब्द
 सुनकर द्रुपद ने जाकर जयद्रथ को सब वृत्तान्त कह
 सुनाया । सुनते ही व्याकुल होकर जयद्रथ उठ बैठे ।
 वे शोक के मारे अत्यन्त दुःखित हुए । वे उस समय
 मानों अयाह अपार शोक के समुद्र में डूबने लगे ।
 जयद्रथ बहुत सोच-विचारकर उभी समय अपने डेरे
 से वहाँ पर गये जहाँ दुर्योधन और मव राजा बैठे हुए
 थे ॥ १॥ ३॥ अर्जुन से भयभीत हुए हुए जयद्रथ सब थोर
 राजाओं के सम्मुख विलाप करते हुए, लज्जित भाव
 से, कहने लगे—हे राजाओ ! पाण्डु की छी कुन्ती
 के गर्भ से कर्मा इन्द्र के द्वारा उत्पन्न दुर्गम अर्जुन
 ने अजले ही मुझसे मार डालने की प्रतिज्ञा की है ।

आप लोगों का कल्याण हो, मैं अपने प्राण बचाने के
 लिए अभी अपने देश को जाता हूँ । अपना हे श्रेष्ठ
 क्षत्रियो ! आप सब लोग मिलकर अपने अस्त्रबल के
 प्रभाव से मेरी रक्षा करीजिए । अर्जुन मेरे प्राण लेना
 चाहता है, आप लोग मेरी रक्षा करने की प्रतिज्ञा मुझे
 दें । द्रोणाचार्य, कृपाचार्य कर्ण, दुर्योधन, शल्य,
 बाह्यक और दुःशासन आदि योद्धा चाहें तो साक्षात्
 काल के हाथ से भी मुझे छुड़ा सकते हैं । तो फिर
 क्या मार डालने के लिए उद्यत अरेले अर्जुन से आप
 मव राजा लोग मुझे नहीं बचा सकते । पाण्डवों की
 प्रतिज्ञा और हर्षयन सुनकर मैं बहुत ही भयभीत हो
 गया हूँ । मृत्यु के मुख में जानवाले मनुष्य की तरह
 मेरे अङ्ग सिथिल हो रहे हैं ॥ ७४॥ अथवा ही पाण्डव-

तन्न देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोऽगराक्षसाः ।
 उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं कुत एव नराधिपाः ॥ ११ ॥
 तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः ।
 अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥ १२ ॥
 एवं विलम्बमानं तं भयाद्व्याकुलचेतसम् ।
 आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥
 न भेतव्यं न रव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ ।
 मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद्युधि ॥ १४ ॥
 अहं वैकर्त्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
 भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृपसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥
 पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
 सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥ १६ ॥
 दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाऽप्युदायुधः ।
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौव्रलः ॥ १७ ॥
 एते चाऽन्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
 ससैन्यास्त्वाऽभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ १८ ॥
 त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते ।
 स कथं पाण्डवेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥ १९ ॥
 अशौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
 यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम् ॥ २० ॥

धन्वा अर्जुन ने मेरे वध की प्रतिज्ञा की है इस कारण,
 शोक करने के समय भी, पाण्डव हर्ष प्रकट करते हुए
 सिंह की तरह गरज रहे हैं । मेरे विचार में तो मनुष्यों की
 कौन कहें, सब देवता, गन्धर्व, असुर, नाग, राक्षस
 आदि भी सब मिलकर अर्जुन की प्रतिज्ञा को कदापि
 मिया नहीं कर सकते । इसलिए आप लोग मुझे अनुमति
 दीजिए कि मैं अपने प्राण लेकर अपने घर चला जाऊँ ।
 आप लोगों का कल्याण हो । मैं यहाँ से भागकर कहीं
 अन्यत्र जाऊँगा तो पाण्डव लोग मुझे यहाँ देख ही न
 पावेंगे ॥ १०१२॥ मय और शङ्का से व्याकुल जयद्रथ
 को इस प्रकार विलाप करते हुए देखकर अपने कार्य
 को ही श्रेष्ठ माननेवाले राजा दुर्योधन यों कहकर उन्हें

सानत्वना देने लगे — हे पुरुषसिंह ! तुम भयभीत
 होओ मत । इतने वीर क्षत्रियों के मध्य में तुम रहोगे फिर
 कौन मुझसे भी मैं तुम पर आक्रमण करने का साहस
 कर सकेगा । देवों में, वीर कर्ण, चित्रसेन, विविंशति,
 भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्धर्ष वीर वृपसेन, पुरुमित्र,
 जय, भोज, काम्बोजराज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु
 विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, सशख कलिङ्गराज,
 अवन्ति देश के दोनों भाई विन्द और अनुविन्द, द्रोणा-
 चार्य जी और अश्वत्थामा, शकुनि तथा और भी अनेक
 देशों के राजा लोग अपनी अपनी सेना साथ लेकर
 तुम्हारी रक्षा करेंगे । तुम अपने अन्तःकरण से यह
 चिन्ता दूर कर दो ॥ १३११॥ तातुम स्वयं भी तो श्रेष्ठ

सञ्जय उवाच—एवमाश्वासितो राजन्पुत्रेण तव सैन्धवः ।
 दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २१ ॥
 उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते ।
 उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥
 निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
 मम ब्रवीतु भगवान्विशेषं फाल्गुनस्य च ॥ २३ ॥
 विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
 अर्जुनस्याऽऽत्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥

द्रोण उवाच —सममाचार्यकं तात तव चैवाऽर्जुनस्य च ।
 योगाद् दुःखोपितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः ॥ २५ ॥
 न तु ते युधि सन्त्रासः कार्यः पार्थात्कथञ्चन ।
 अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नाऽत्र संशयः ॥ २६ ॥
 न हि मद्बाहुयुतस्य प्रभवन्त्यमरा अपि ।
 व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति ॥ २७ ॥
 तस्माद्युद्धयस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय ।
 पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥
 अधीत्य विधिवद्वेदानमयः सुहुतास्त्वया ।
 इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युर्भयङ्करः ॥ २९ ॥
 दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु ।
 भुजवीर्याजिताँल्लोकान्दिव्यान्प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥ ३० ॥

रथों और शूर हो । फिर क्यों पाण्डवों से इतना भयभीत हो रहे हो ? मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना तुम्हारी रक्षा करने के लिए जी म्मोलकर युद्ध करेगी । हे वीर सिन्धुराज ! तुम मत भयभीत होओ ॥ २९ ॥ मञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! मिथु देश के राजा जयद्रथ को इस प्रकार सान्त्वना देकर राजा दुर्योधन उन्हें साथ लिए हुए रात्रि को ही द्रोणाचार्य के स्थान पर पहुँचे । आचार्य को प्रणाम करके दोनों बैठ गये । तब जयद्रथ ने विनीत भाव से कहा—हे आचार्य ! निशाने पर बाण मारने, दूर नरु बाण चलाने, रुद्धि और रद्द प्रहार करने में अर्जुन में और मुझमें क्या अन्तर है ? आप इंग करके मुझे बताइए ॥ २९ ॥

द्रोणाचार्य ने कहा—हे तान ! अर्जुन और तुम दोनों ही मेरे शिष्य हो और मैंने तुम दोनों को बाण विद्या की एक सी शिक्षा दी है । किन्तु अर्जुन ने अधिक अभ्यास करके और कष्ट सहकर तुममें अधिक निपुणता प्राप्त कर ली है । इसी कारण अर्जुन तुममें सब बातों में बढ़कर हैं । परन्तु युद्ध में अर्जुन में तुम्हें विरुद्ध न भयभीत होना चाहिए ; क्योंकि इस भय में तुम्हारी रक्षा कर्त्तव्य । मेरे बाहुबल मे रक्षित पुरुष का देवता भी कुछ नहीं सिगाड़ सकते । मैं फल ऐसे व्यूह की रचना करूँगा, जिसे अर्जुन किसी प्रकार नहीं तोड़ सकेगा । इसलिए तुम निर्भय होकर युद्ध करो । हे महारथी ! अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करके बाण

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः ।
 अहं च सह पुत्रेण अधुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥
 पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः ।
 परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥
 तपस्तप्त्वा तु याँल्लोकान्प्राप्नुवन्ति तपस्विनः ।
 क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥ ३३ ॥
 एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः ।
 अपानुदन्नयं पार्थायुद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥
 ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाऽप्यासीद्विशम्पते ।
 वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाग्रासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

दादे की राह पर चलो॥२५॥२८॥तुमने विधिपूर्वक
 वेदों को पढ़ा है, तुम अभिहोत्र करते हो। आरं बहूत
 से यज्ञ भी कर चुके हो। तुम तो सब प्रकार कृतार्थ
 हो चुके हो। अब तुम्हें मृत्यु में न भयभीत होना चाहिए।
 यदि तुम अर्जुन से युद्ध करके मारे भी जाओगे तो
 मन्द मनुष्यों के लिए दुर्लभ और महामाय से प्राप्त
 होनेवाले मनुष्य शरीर का प्राप्त होना सफल होजायगा;
 तुम बाहुबल से जीते हुए दिव्य लोकों में जाओगे।
 अपने मन में अच्छी प्रवृत्ति समझ लो कि यादव,
 कौरव, पाण्डव, मैं और मेरा पुत्र कोई अमर नहीं है;
 सबको एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही होगा।

बली काल किसी को नहीं छोड़ेगा। हम सब लोग बारी-
 बारी से मृत्यु को प्राप्त होंगे और अपने-अपने कर्मों को
 साथ ले जायेंगे। तपस्वी लोग कठोर तपस्या करके
 जिन लोकों को जाते हैं उन्हीं लोकों को क्षत्रिय-धर्म
 का पालन करनेवाले वीर पुरुष भी प्राप्त करते हैं॥२९॥
 ३३॥आचार्य के ये वचन सुनने से सिन्धुराज जयद्रथ
 को आश्रय मिला। उन्होंने अर्जुन का भय छोड़कर
 युद्ध करने का निश्चय कर लिया। हे महाराज! उस
 समय कौरव-सेना के लोग भी प्रसन्न होकर कोलाहल
 और सिंहनाद करने लगे। चारों ओर बाजे बजने
 लगे॥३४॥३५॥

द्रोणपर्व का चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

मञ्जय उवाच—प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
 वासुदेवो महाबाहुर्धनञ्जयमभाषत ॥ १ ॥
 भ्रातृणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
 सैन्धवं चाऽस्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥ २ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७५ ॥

मञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! इधर महामा
 श्रीकृष्ण, अर्जुन के प्रतिज्ञा करने पर, उससे बोले —
 हे अर्जुन ! तुमने न मुझसे ही सम्मति ली और न
 भाइयों की ही सम्मति पूरी और जयद्रथ के मारे
 की दुष्कार प्रतिज्ञा कर बैठे। यह तुमने बड़े ही साहस
 का कार्य किया है। यह बहुत असह्य बोझ तुमने अपने

असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
 कथं तु सर्वलोकस्य नाऽवहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥
 धार्तराष्ट्रस्य शिविरे मया प्रणिहिताश्वराः ।
 त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥
 त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो
 सिंहनादः सवादित्तः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥
 तेन शब्देन विव्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्यवाः ।
 नाऽकस्मात्सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥
 सुमहाज्जशब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
 आसीन्नागाश्वपत्नीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७ ॥
 अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमात्तो धनञ्जयः ।
 रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥
 तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवनस्तव ।
 प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥
 ततो विमनसः सर्वे व्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
 आसन्सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥
 अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिविरमात्मनः ।
 आयास्तौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥
 स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वानैः श्रेयसीं कियाम् ।
 सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद्राजसंसदि ॥ १२ ॥

सिर पर उठा लिया है । मुझे यही चिन्ता है कि कहीं
 प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सजने पर हम लोग लोगों के उप-
 हास के पात्र न हों । ॥११॥ मैंने जिन युवकों को
 दुर्योधन के शिविर में भेजा था, वे यहाँ मे शीघ्र ही
 आकर मुझसे यहाँ का सब समाचार कहेंगे हैं । उन-
 का कहना है कि तुमने जब जयद्रथ के मारने की प्रतिज्ञा
 की तब यहाँ लेनिगले मिहनाद और बाजों के शब्द
 सुनकर धृतराष्ट्र के सत्र पुत्र बटन मयभीन हुए और
 जयद्रथ भी व्याकुल हो गया । वे लोग सोचने लगे कि
 शत्रु शिविर में अस्मत्कृत यह मिहनाद क्यों हो रहा
 है । इसका कोई कारण अत्यन्त ही है । इसके उपरान्त
 पौरव लोग युद्ध के लिए सुसज्जित होने लगे ॥१२॥

उनके शिविर में युद्ध के लिए प्रस्तुत होने लगे हाथी,
 घोड़े, रथ और पैदल आदि का शब्द सुनाई पड़ने
 लगा । वे लोग यह सोचकर युद्ध की तैयारी करने लगे
 कि अभिमन्यु के मारे जाने की सूचना में सोमाकुल
 अर्जुन क्रोधाग्नि होकर रात्रि को ही आक्रमण कर देगा ।
 हे अर्जुन ! कौरवों ने भी अपने दूतों से सुधारी जयद्रथ-
 वध की प्रतिज्ञा और उसे पूर्ण करने के लिए मीमंसे
 खाना सुन लिया है । तब क्षुद्र मृगों की भाँति दुर्योधन
 के अनुचर और राजा जयद्रथ उदाम हो गये ॥१३॥
 इसके पश्चात् मिन्धु-सौवीर देश का राजा जयद्रथ अने
 अनुचरों के साथ दानभाव में दुर्योधन की राजमहल
 में गया । यहाँ मन्त्रणा के समय अने सचिव भी

मामसौ पुत्रहन्तेति श्रोऽभियाता धनञ्जयः ।
 प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥
 तां न देवा न गन्धर्वा नाऽसुरोरगराक्षसाः ।
 उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥
 ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनञ्जयः ।
 पदं कृत्वाऽऽभ्याल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥
 अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।
 अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि गृहान्प्रति ॥ १६ ॥
 एवमुक्तस्त्ववाक्शीपों विमना स सुयोधनः ।
 श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवाऽन्वपद्यत ॥ १७ ॥
 तमार्तमभिसम्प्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
 मृदु चाऽऽत्महितं चैव सापेक्षमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥
 नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
 योऽर्जुनस्याऽस्त्रमन्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९ ॥
 वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
 कोऽर्जुनस्याऽग्रतस्तिष्ठेत्साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २० ॥
 महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
 पदातिनां महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ २१ ॥
 दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
 जघानैकशथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २२ ॥

सम्प्रति य सोचनर राजसभा मज्ज दुर्योधन से कहने
 लगा कि हे राजे द्र ! मुझे ही अपने पुत्र का मृत्यु का
 कारण जानकर कल प्रातः काल अर्जुन मुझे मारने के
 लिए युद्ध करेंगे । उन्होंने अपना सारा सेना का मध्य
 में मेरे मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा की है मुझे विश्वास है कि
 देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस आदि कोई भी अर्जुन
 का प्रतिज्ञा की टाल नहीं सक्ता ॥ १३ ॥ १४ ॥ इसपर
 अब आप लोग मेरा रक्षा का उपाय बताइए । ऐसा
 न हो कि अस्तर पाकर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरा
 कर ले । आप लोग जो उपाय उचित समझें सो कर ।
 यदि आप लोग मर्त्य भेति मेरा रक्षान कर सके तो हे
 कुरुनन्दन ! मुझे आज्ञा बताइए, मैं अपने घर चला जाऊँ

॥ १५ ॥ १६ ॥ यादुल हुए हुए जयद्रथ ने यों कहने पर
 दुर्योधन ने उदास होकर सिर झुका लिया और तब सोच
 में पड़ गया । दुर्योधन को अत्यन्त चिन्तित देखकर
 राजा जयद्रथ को मल, अपने हित के आक्षेपपूर्ण उचन
 इस प्रकार कहने लगा—हे महाराज ! आपके दल में
 मुझे कोई ऐसा पराक्रमी योद्धा नहीं देख पड़ता जो
 महायुद्ध में अपने अस्त्र से अर्जुन का अल का रोक
 सके । वासुदेव जिनके सहायक हैं वे अर्जुन ही ग्रह
 गाण्डीव धनुष को मण्डलाकार घुमाये तब उनमें आंग
 कौन ठहर सकेगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ साक्षात् देवराज इन्द्र
 भी तो नहीं ठहर सके । सुना जाता है कि पुरातन
 अर्जुन ने किसी समय पेंदल ही महेश्वर का निमिष पवन

समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
 सामरानपि लोकांस्त्रीन्हन्यादिति मतिर्मम ॥ २३ ॥
 सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातुं रक्षितुं वा महात्मना ।
 द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४ ॥
 स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्राऽर्थितोऽर्जुन ।
 संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५ ॥
 कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः ।
 कृपश्च मद्राजश्च पडेटेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६ ॥
 शकटः पद्मकश्चाऽधो ब्यूहो द्रोणेन निर्मितः ।
 पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपाश्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥
 स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिन्धुराट् स सुदुर्मदः ।
 धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥ २८ ॥
 अविपद्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ पडूथाः ।
 एतानजित्वा पडूथान्नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥ २९ ॥
 तेषामेकैकशो वीर्यं यण्णां त्वमनुचिन्तय ।
 सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥
 भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै ।
 मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्ध्यै ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चमस्तित्तमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

पर पुत्र किया था । उन्होंने इन्द्र के कहने से अकेले ही हिरण्यपुर के रहनेवाले महत्ता दानवों को मार डाला था । मेरी समझ में तो बुद्धिमान् वासुदेव के माथ वीर अर्जुन देवगण सहित त्रिभुवन को भी नष्ट कर सकते हैं । इसी कारण मैं प्रार्थना करता हूँ कि या तो आप यह प्रतिज्ञा कीजिए कि अपने वीर पुत्र अश्वत्थामा सहित महान्मा द्रोणाचार्य मेरी रक्षा करेंगे और या मुझे यहाँ मैं अपने घर जान कर सम्पत्ति दीजिए ॥ २१ ॥ २४ ॥ अर्जुन । राजा दुर्योधन ने स्वयं द्रोणाचार्य ने जयद्रथ की रक्षा करने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना की है । देवों, द्रोणाचार्य ने तुम्हारी प्रतिज्ञा स्वीकार करके जयद्रथ के प्राण बचाने की तैयारी आरम्भ कर दी है । राव योद्धा और उनके रथ, युद्ध के लिए, अभी मैं

उद्यत हो रहे हैं । द्रोणाचार्य ने विचित्र ब्यूह की रचना की है; उसके पिछले आधा भाग पद्मब्यूह है और आगे का आधा भाग शकटब्यूह । पद्मब्यूह का जो अंश है उसके मध्य में एक और सूचीमुख ब्यूह बनाया गया है । उसी सूचीब्यूह के पिछले भाग में जयद्रथ रहेंगे । कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय वृषसेन, कृपाचार्य और शन्यय छः महारथी उम ब्यूह के अग्र-भग की रक्षा करेंगे ॥ २५ ॥ २८ ॥ हे पार्थ ! ये छहों महारथी धनुर्विद्या, अस्त्रकौशल, वीर्य, दम और कस में अद्वितीय और दूरदर्श हैं । हे अर्जुन ! तुम इन छहों में से प्रत्येक के चतुर्वीर्य के बारे में अलग अलग विचार करने देना । फिर जब ये छहों मिलकर युद्ध करेंगे तब इन्हे महज मैं जीत लेना सर्वथा अनम्भ होना ।

अतएव मैं मन्त्रणा निपुण, दूरदर्शी, बुद्धिमान्, हितैषी ' उपाय मोचूँगा॥२८॥३१॥
मन्त्रियों के साथ फिर कार्यमिद्धि और अपने हित का

द्रोणपर्व का पञ्चदशोऽध्याय समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

अथ पटुमत्ततिनोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अर्जुन उवाच

पटुध्वान्तार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान्वलाधिकान् ।
तेषां वीर्यं ममाऽर्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैपिणा ॥ २ ॥
द्रोणस्य मिपतश्चाऽहं सगणस्य विलप्यतः ।
मूर्धनं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥
यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः ।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवाः सहेश्वराः ॥ ४ ॥
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागरादयः ।
द्यौर्वियत्पृथिवी चैवं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥
ग्राम्यारण्यानि भूतानि स्यावराणि चराणि च ।
त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ६ ॥
तथाऽपि वाणैर्निहतं श्रो द्रष्टासि रणे मया ।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवाऽऽयुधमालभे ॥ ७ ॥
यस्य गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः ।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ८ ॥
तस्मिन्द्युतमिदं वद्धं मन्यते स सुयोधनः ।
तस्मात्तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥ ९ ॥

द्विदशोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव ! दुर्योधन के जिन छः महारथियों को आप बहुत बलवान् मानते हैं वे, मेरी बुद्धि में, सब मिलकर भी मेरे बराबर नहीं हैं । मैं तो समझता हूँ कि उनका बल-वीर्य मेरे आधे बल-वीर्य के बराबर भी नहीं है । हे मधुसूदन ! आप देखेंगे कि मैं जयद्रथ को मारने की अभिलाषा से इन मयों अश्व-शस्त्रों को अपने अस्त्र-शस्त्रों से निष्फल कर दूँगा । अपने अनुचरों सहित द्रोणाचार्य एवं देवने रहेंगे और मैं अपने वाणों से जयद्रथ का सिर काट-

कर गिरा दूँगा॥१॥३॥यदि माध्यगण, ग्यारहों रुद्र, आठों वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्वेण, इन्द्र, विश्वदेवा, अन्य लोकपालगण, पितर, गन्धर्व, गरुड, मगुद, स्वर्ग, आकाश, यह पृथ्वी, सब दिशाएँ, दिक्पाल देवता, गौर के और वन के सब जीव, स्यावर और जङ्गम प्राणी एकत्र हो करके सिन्धुराज जयद्रथ की रक्षा करेंगे तो भी बल प्राप्त आप मेरे वाणों से रण में उमड़ेंगे मरा हुआ ही देखेंगे॥२॥और श्री-कृष्ण ! मैं यह बात मत्स्य की मागध राजा के

द्रष्टासि श्वो महेष्वासान्नाराचैस्तिग्मतैजितैः ।
 शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान्मया युधि ॥ १० ॥
 नरनागाश्चदेहेभ्यो विस्त्रविष्यति शोणितम् ।
 पतद्भयः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥ ११ ॥
 गाण्डीवप्रेषिता वाणा मनोऽनिलसमा जवे ।
 नृनागाश्चान्विदेहासून्कर्तारश्च सहस्रशः ॥ १२ ॥
 यमात्कुवेराद्गरुणादिन्द्राद्गुड्राच्च यन्मया ।
 उपात्तमस्त्रं घोरं तद् द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥ १३ ॥
 ब्राह्मेणाऽस्त्रेण चाऽस्त्राणि हन्यमानानि संयुगे ।
 मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याऽभिरक्षिणाम् ॥ १४ ॥
 शरवेगसमुत्कृतै राज्ञां केशव मूर्धभिः ।
 आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥ १५ ॥
 कव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान् ।
 सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥ १६ ॥
 बह्वागस्कृत्कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः ।
 मया सैन्धवको राजा हतः स्वाऽशोचयिष्यति ॥ १७ ॥
 सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे ।
 मया सराजकं वाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

शस्त्र छूकर कहता हूँ । हे केशव ! उस पापी जय-
 द्रथ की रक्षा करनेवाले महारथी द्रोणाचार्य के ऊपर
 ही मैं सबसे पहले आक्रमण करूँगा । दुष्ट दुर्योधन
 का विश्वास है कि द्रोणाचार्य के ऊपर ही उमकी
 हार-जीत निर्भर है । इसलिए उन्होंने द्रोणाचार्य की सेना
 के अग्रभाग को चीर करके मैं जयद्रथ के समीप
 पहुँचूँगा । कल आप देखेंगे कि वज्रपात से जैसे पर्वतों
 के शिखर फटते हैं वैसे ही बड़े-बड़े वीर योद्धा मेरे
 तीक्ष्ण वाणों से निर्दीर्ण हो होकर युद्धभूमि में गिर
 रहे हैं । गिरते हुए और गिरे हुए मेरे तीक्ष्ण वाणों
 से विदीर्ण-देह नर, हाथी, घोड़े आदि के शरीरों से
 रक्त की नदी बह चलेगी ॥ ८१ ॥ मेरे गाण्डीव धनुष
 से छूटे हुए, मन और वायु के समान वेग से जल-
 वाले, तीक्ष्ण वाण सहस्रों मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों

के जीवन को नष्ट करेंगे । इस महायुद्ध में योद्धा
 लोग मेरे उन महावीर अस्त्रों को देखेंगे जिन्हें मैंने
 इन्द्र, यम, कुबेर, रुद्र और वरुण आदि देवताओं
 से प्राप्त किया है । हे श्रीकृष्ण ! कल आप देखेंगे कि
 जयद्रथ की रक्षा करनेवालों के अस्त्रों को मैं ब्रह्मास्त्र
 के प्रयोग से नष्ट करूँगा ॥ १२ ॥ १४ ॥ कल मैं
 आप देखेंगे कि मैं अपने बाणों के वेग से राजाओं
 के सिर काटकर उनसे रणभूमि को पाट दूँगा । मैं
 मासाहारी जीवों को तप्त करूँगा, शत्रुपक्ष की सेना
 को मार भगाऊँगा, मित्रों को प्रसन्न करूँगा और जय-
 द्रथ को मारूँगा । बहुत से अपराध करनेवाला, निन्दित
 सम्बन्धी, पापदेश में उत्पन्न राजा जयद्रथ मेरे हाथ
 से मरकर अपने आश्रयियों को शोक में डालेगा ।
 मिथुदेश के सब दूध मात के खानेवाले, पापाचारी

तथा प्रभाते कर्त्तामि यथा कृष्ण सुयोधनः ।
 नाऽन्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ १९ ॥
 गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाऽहं नरर्षभ ।
 त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया ॥ २० ॥
 तत्र प्रसादाद्भगवन्किं नाऽवाप्तं रणे मम ।
 अविपद्यं हृषीकेश किं जानन्मां विगर्हसे ॥ २१ ॥
 यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम् ।
 एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२ ॥
 माऽवमंस्या ममाऽस्त्राणि माऽवमंस्था धनुर्दृढम् ।
 माऽवमंस्था बलं बाह्वोर्माऽवमंस्था धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
 तथाऽभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च ।
 तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४ ॥
 ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु सन्नतिः ।
 श्रीर्ध्रुवाऽपि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ २५ ॥
 सन्नय उवाच — एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमारमना ।
 सन्दिदेशाऽर्जुनो नर्दन्वासविः केशवं प्रभुम् ॥ २६ ॥
 यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद्रथो मम ।
 तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यत्तम् ॥ २७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये पट्मसतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

क्षत्रिय अपने राजा जयद्रथ के साथ मेरे बाणों से
 मर-मरकर यमपुर को जायेंगे । हे श्रीकृष्ण ! कल
 प्रातः काल मैं ऐसा अद्भुत कर्म करूँगा जिससे दुर्यो-
 धन को मानना पड़ेगा कि त्रिभुवन में मेरे बराबर
 दूसरा योद्धा नहीं है । मेरा गाण्डीव दिव्य धनुष है,
 मैं स्वयं युद्ध करनेवाला हूँ और आप मेरे सारथी हैं ।
 फिर मैं किसे परास्त नहीं कर सकता । हे भगवन् !
 आपकी कृपा में मैंने ममर में कहीं विजय नहीं पाई ।
 मुझे अनेक दुर्दैव जानकर भी, मेरे अमल पराक्रम
 को जानकर भी, आप क्या मेरा निरस्कार कर रहे
 हैं ॥ १५-२१ ॥ चन्द्रमा में बिह्व और समुद्र में जल
 जैसे स्थिर है वैसे ही मेरा प्रतिज्ञा भी अटल है ।

हे बाणदेव ! आ ! मेरी, मेरे अलों की, दृढ़ दिव्य
 धनुष की ओर मेरे बाणधूल की अवमानना न कीजिए ।
 मैं संग्राम में इस प्रकार जाऊँगा कि किसी से नहीं
 हारूँगा और सत्रसे जीत लूँगा । मेरी मत्स्य प्रतिज्ञा
 है । आप जयद्रथ को मरा हुआ ही समझिए । ब्राह्मण
 में सत्य, मन्त्रों में नधत्ता, यज्ञ में श्री और नारायण
 में त्रय नित्य निरन्तर त्रिराजमान है ॥ २२-२५ ॥ मन्त्र
 कहते हैं कि हे महाशत्रु ! श्रीकृष्ण से जो कहकर आप
 अपने पराक्रम का वर्णन करने के उपरान्त, अपनी
 शक्ति पर विश्वास करके अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण !
 आप ऐसा उद्योग कीजिए जिसमें प्रातः काल होने ही
 मुझे रथ नैवार मित्र और मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो ॥ २६-२७ ॥

द्रोणपर्व का द्रिचत्तरां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

अथ सप्तमस्तोत्रमोऽध्याय ॥ ७७ ॥

सज्जय उवाच—तां निशां दुःखशोकार्तां निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
 निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ ॥ १ ॥
 नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवा ।
 व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद्भविष्यति ॥ २ ॥
 ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिर्शंसिनः ।
 सकवन्धस्तथाऽऽदित्ये परिघः समदृश्यत ॥ ३ ॥
 शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः ।
 चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥
 चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः ।
 प्रतिस्रोतःप्रवृत्ताश्च तथा गन्तु समुद्रगाः ॥ ५ ॥
 रथाश्चनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
 क्रठ्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥
 वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह ।
 तान्दृष्ट्वा दारुणान्सर्वानुत्पातान्लोमहर्षणान् ॥ ७ ॥
 सर्वे ते व्यथिता सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ ।
 श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥
 अथ कृष्ण महाबाहुरब्रवीत्पाकशासनि ।
 आश्वासय सुभद्रा त्वं भगिनी स्तुषया सह ॥ ९ ॥

सतहत्तरौ अध्याय ॥ ७७ ॥

सज्जय कहते हैं—हे महाराज ! दुःख और शोक से पादित अर्जुन और श्रीकृष्ण ने यह रात्रि जागकर हा व्यतीत कर दी । वे क्रुद्ध सर्प की भाँति आस लेते रहे । इस प्रकार नर और नारायण को अत्यन्त कुपित जानकर इन्द्र आदि सब दैत्या बहुत हा व्याकुल और व्यथित होकर सोचने लगे कि इसका परिणाम क्या होगा । कौन सी दुर्घटना, कौन सा महा अनर्थ होने वाला है ॥ १॥२॥ उस समय अत्यन्त दारुण आँधी घूट उड़ाती हुई तेग से चलकर घोर अमङ्गल का सूचना देने लगा । आदित्यमण्डल में कण्ठ और मण्डल (परिघ) देख पड़ने लगा । त्रिनाभेयों के दारुण उन्नाघात शब्द होने लगे, कड़क कड़ककर विजयियों गिरने

लगीं । परंत वन सहित पृथ्वा बारम्बार काँपने लगा । वड पड़े जल-जलुआ ये निवासस्थान समुद्र क्षोभ की प्राप्त होने लग । नदियों की धाराएँ उल्टा बहने लगीं । मासाहारा जावों को आनदित और यमपुरी की परिपूर्ण करने के लिए रथिया, हाथियों, घड़ों और पदलों के दोनों हाँठ पड़कर लगे । सप्त वाहन एक साथ मग्न मूल त्याग करते हुए रुदन करने लग ॥ ३॥७॥ इन दारुण उत्पातों को देखकर और महाबली अर्जुन की उग्र प्रतिज्ञा का समाचार सुनकर आपके पक्ष के सप्त यादवा तेग और सैनिक लोग अत्यन्त ही व्यथित और विनम्र हो गये ॥ ७॥ ८॥ इधर महावीर अर्जुन ने कृष्ण चद्र से कहा—हे केशव ! आप जाकर अपनी यष्ट

स्तुपां चाऽस्या वयस्याश्च विगोकाः कुरु माधव ।
 साम्रा सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥ १० ॥
 ततोऽर्जुनग्रहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
 भगिनीं पुत्रशोकार्त्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥
 मा शोकं कुरु वाष्णेयि कुमारं प्रति मस्तुपा ।
 सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥ १२ ॥
 कुले जातस्य वीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः ।
 सदृशं मरणं होतस्तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥
 दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
 क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४ ॥
 जित्वा सुबहुशः शत्रून्प्रेषयित्वा च मृत्यवे ।
 गतः पुण्यकृतां लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥
 तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयाऽपि च ।
 सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः ॥ १६ ॥
 वीरसूवीरपत्नी त्वं वीरजा वीरवान्धवा ।
 मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७ ॥
 प्राप्स्यते चाऽप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः ।
 अस्याऽवलेपस्य फलं ससुहृद्गणवान्धवः ॥ १८ ॥

सुभद्रा, बहुत उत्तरा आर उमरी सखिया का ममज्ञा है,
 उनका शोक दूर काजिए। मामयाक्य, म योपदेश
 आदि के द्वारा निम्ना प्रकार उनको दृढम बनाइए
 ॥१०॥ अर्जुन न यों रुद्धे पर अत्यन्त 'यादु'
 कुणव द्र अर्जुन न घर म गये आर वहाँ पुत्र शोक
 से पीडित, व्यादु, अपना बहन सुभद्रा की इस प्रकार
 समझाने लगे—सुना बहन । तुम आर तुम्हारी बहु
 उत्तरा दोनों ही वीर कुमार अभिमन्यु की मृत्यु न
 लिए शोक मत करो। ह सुभद्रा । काय के द्वारा सभी
 प्राणियों का एक दिन यही गति होता है। उत्तम कु
 मे उपलब्ध वीर क्षत्रियश्रेष्ठ अभिमन्यु की मृत्यु उसका योग्य
 हो हुई है, समुखयुद्ध में युद्ध करते करते मरना क्षत्रियो
 चित मृत्यु है। इसलिए तुम पुत्र का मृत्यु का शोक
 मत करो। मैं तो इसे उमर लिए बड़े भाग्य की बात
 मानता हूँ, जो पिता के तुल्य पराक्रमी वीर महारथी

अभिमन्यु क्षत्रियधर्म के अनुसार उस गति को प्राप्त
 हुआ, जिसका सत्र क्षत्रिय इच्छा करते हैं। नहुत से
 शत्रुओं का नाश कर और मारकर वीर अभिमन्यु उन
 अक्षय लोकों को गया है जहाँ पुण्य मा लोग जाते हैं
 और सत्र प्रकार की इच्छाएँ पूर्ण होती हैं ॥११॥
 मज्जन लोग तप, ब्रह्मचर्य, वेद शास्त्र के अध्ययन और
 प्रज्ञा आदि सत्कर्मों के द्वारा जो गति प्राप्त करने का
 उद्योग करते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्र को प्राप्त हुई
 है। हे सुभद्रा ! तुम वीर वाक्क की माना, वीर पति
 की पत्नी, वीर पिता का पुत्री और वीर भाई की बहन
 हो। इसलिए तुम्हें अपने पुत्र का शोक न करना
 चाहिए। उसको परमगति प्राप्त हुई है। हे बहन !
 तुम धर्म धरो, पापमति वाक्क की घात करनेवाला जय
 द्रव्य बहुत शीघ्र अपने इष्ट मित्र अनुचर आदि सहित
 अपने मित्रों का पत्र भोगेगा। यह राजा विजयनात हाते

व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत ।
 नहि मोक्षयति पार्थास्त प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥
 श्वः शिरः श्रोण्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम् ।
 समन्तपञ्चकाद्वाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥
 क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
 यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चाऽन्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥
 व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत् ।
 गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२ ॥
 अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान् ।
 सहस्रशो रिपून्हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥
 आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये शृशम् ।
 श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥ २४ ॥
 यत्पार्थेन प्रतिज्ञातं तत्तथा न तदन्यथा ।
 चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥

यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा रजनिचराः पतगा सुरासुराश्च ।
 रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं न स भविता सह तैरपि प्रभाते ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राश्चामनं सप्तमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

ही पापी जयद्रथ इन्द्र की अमरावती पुरी में भी जाकर
 क्यों न अपनी जान बचाना चाहे, परन्तु अर्जुन के
 हाथ में जीता नहीं रहेगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ यह निश्चित
 समझो कि कब के दिन जयद्रथ का मिर धड़ पर न रहेगा
 इसलिए शोक करना छोड़ा, रुदन करना बंद करो ।
 फिर यह भी विचार करने देवो कि वह गीर राज्य
 जन्म प्रकार क्षत्रियधर्म का पापन करते करते श्रेष्ठ गति
 को प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार हम लोग और अन्य
 सब शस्त्रधारी लोग पूरा दिन उसी गति का पहुँचेंगे ।
 चाँड़ी छानी और बड़ी बाहुओंवाला महावीर अभिमन्यु
 अमन्य दानुओं के आगे में नहीं हटा और युद्ध करते
 करते महर्षी दानुओं को मारकर रथों को गया है ॥ २० ॥

२३ ॥ इसलिए तुम सब शास्त्र सन्ताप करना छोड़ो ।
 हे उहन् ! अपनी गतिना वह को दाढ़म वैधाओं और
 रथों शोक करना छोड़ो । प्रातः काल दानु के मोर जाने
 की सूचना सुनने से तुम्हारा शोक दूर हो जायगा ।
 अर्जुन ने जो प्रतिज्ञा की है वह अत्यन्त पूर्ण होगी,
 वह कदापि मिथ्या नहीं है सत्य है । तुम्हारे पनि जो
 करना चाहते हैं वह कदापि निष्फल नहीं हाना । मैं
 फिर कहता हूँ कि यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, राक्षस,
 पक्षी, दाना, शैव आदि सब मिश्रकर युद्धभूमि में जय
 द्रथ की रक्षा करेंगे, तो भी वह प्रातः काल उन मयके
 माय जयद्रथ जीवित नहीं रह सकना ॥ २४ ॥ २५ ॥

द्रोणपर्व का सप्तमस्तमोऽध्याय समाप्त हुआ ॥ ७७ ॥

अथ अष्टमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

मन्त्रय उवाच—एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केदारस्य महात्मनः ।

सुभद्रा पुत्रशोकार्ता विललाप सुदुःखिना ॥ १ ॥
 हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्याऽसि संयुगम् ।
 निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥ २ ॥
 कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम् ।
 मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना ॥ ३ ॥
 नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम् ।
 सुशिरोग्रीववाहंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम् ॥ ४ ॥
 चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम् ।
 भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम् ॥ ५ ॥
 शयनीयं पुरा यस्य स्पृध्यास्तरणसंवृतम् ।
 भूमावथ कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ॥ ६ ॥
 योऽन्वास्यते पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः ।
 कथमन्वास्यते सोऽथ शिवाभिः पतितो मृधे ॥ ७ ॥
 योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधवन्दिभिः ।
 सोऽथ कव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते ॥ ८ ॥
 पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो ।
 पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनाऽस्यनाथवत् ॥ ९ ॥
 अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तयाऽनघ ।
 मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमथ यमक्षयम् ॥ १० ॥

अट्टस्तर्गो अध्याय ॥ ३८ ॥

मञ्जय कटाई किं हे मनेन्द्र । पुत्रशोक से
 विद्वज् और अत्यन्त दुःखित सुभद्रा, अट्टा के य
 य १५ सुनकर इस प्रकार विचार करने लगी हाथ
 पुत्र । तुम तो अपने पिता के तुल्य पराक्रमी थे, फिर
 कैसे ममान मे शत्रुओं का हाथ से मारे गए । नीच
 सम्य के समान मौर्या, सु द र्शनी और शिवा नेत्र
 मे नो गित तुम्हारा मनोहर मुख आज युद्धभूमि की
 धूल मे भगा हुआ कैसा दिख रहा है । असह्य
 हा मय नेत्र देम रहे होंगे कि सुंदर निर, रंग,
 कट कर्ण, पीढ़ा (), लंबाई () मि और मनेन्द्र
 लोचने मे लोभायन न, मनेन्द्र शरमे गये हुए गर्वों
 के पोसे मे अट्टा, नूर, ममान मे लोचन हटने

था । तुम पूरा पर उदय हुए चन्द्रमा के समान पड़े
 हुए हो ॥ १॥ २॥ ३॥ ४॥ ५॥ ६॥ ७॥ ८॥ ९॥ १०॥
 भी, तुम्हारे सुन्दर अङ्ग अभी परिपूर्ण हुए थे । पहले
 जो बहुमन्य काम्य प्राप्तनीय विभीषणोदारी युग राध्या
 पर लगे थे, वही युग भाग्य के नाथ तुम आज कैसे
 बचा मे बिचे हुए युद्धभूमि मे पड़े हुए हो । और
 मिट्टियों तुम हो गये हुए हो ॥ १॥ २॥ ३॥ ४॥ ५॥ ६॥ ७॥ ८॥ ९॥ १०॥
 कट की सुन्दर निरों से रहती थी और प्रमत्तित
 मृत शरीर पड़ी लगे हनुत्वेर विमर्श उदयना
 विचार करने थे, वही तुम आज युद्धभूमि मे पड़े हुए
 हो और लम्पट की शीर मुद्रा के पागे और घेर लगे
 मे निद्रा रहे हो । हाथ पुत्र । १॥ २॥ ३॥ ४॥ ५॥ ६॥ ७॥ ८॥ ९॥ १०॥

विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च ।
 तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम् ॥ ११ ॥
 धिग्वलं भीमसेनस्य धिक्पार्थस्य धनुष्मताम् ।
 धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग्वलम् ॥ १२ ॥
 धिक्रेकयास्तथा चेदीन्मत्स्यांश्चैवाऽथ सृञ्ज्यान् ।
 ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम् ॥ १३ ॥
 अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतस्त्रिपम् ।
 अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥
 स्वन्नीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
 कथं त्वाऽतिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यथ निपातितम् ॥ १५ ॥
 एहोहि तृपितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिवाऽऽशु मे ।
 अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृतायाश्च दर्शने ॥ १६ ॥
 हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं खम् इवाऽसि मे ।
 अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥ १७ ॥
 इमां ते तरुणीं भार्यां तवाऽऽधिभिरभिष्टुताम् ।
 कथं सन्धारयिष्यामि विवत्तामिव धेनुकाम् ॥ १८ ॥
 अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक ।
 विहाय फलकाले मां सुगृह्णां तव दर्शने ॥ १९ ॥

और यादव तुम्हारे सहायक थे, फिर किसने किस प्रकार अनाथ की भाँति तुमकी मार डाला ? हाथ निष्पाप पुत्र ! मुझ अभगिन के नेत्र तुमको देखकर तृप्त नहीं होते थे । इसलिए तुम्हें देवने को अस्व ही आज मैं यमराज की पुरी को जाऊँगी ॥ ८१ ॥
 पुत्र ! तुम्हारे विशाल नेत्र, मनोहर केश, सुगन्धित मुख और मधुर वचनों से युक्त व्रणशून्य मुखमण्डल को अब मैं फिर कब देखूँगी ? भीमसेन के बल, अर्जुन की धनुर्विद्या, यादवों और पाञ्चालों के बाहुबल तथा कैनेय-मत्स्य सृञ्जय आदि देशों के वीरों को धिक्कार है, जो वे युद्धभूमि में तुम्हारी रक्षा नहीं कर सके । मेरे नेत्र शोक के आँसुओं से व्याकुल हैं ॥ ११ ॥
 १२ ॥ अभिमन्यु को न देखने के कारण आज मुझे सारी पृथ्वी अन्धकारमयी और मूनी देख पड़ रही

है । तुम वासुदेव के भानजे, अर्जुन के वीर पुत्र और अतिरथी थे । सप्राप्तभूमि में तुम्हारे मृत शरीर की मैं कैसे देख सकूँगी ! हे पुत्र ! अब ओ आओ, तुम्हें भूम लगी होगी, मेरे स्तनों में दुग्ध भरा हुआ है । मुझ मन्दभागिनी की गोद में बैठकर दुग्ध पी लो । मैं तुम्हें देखकर तृप्त नहीं हुई हूँ ॥ १४ ॥
 हाथ वीर ! तुम खम् के मिले हुए धन की भाँति दिखाई पड़कर अचानक नष्ट हो गये । अहो, मनुष्य शरीर अनित्य और जल में उठनेवाले बुलबुले की तरह चञ्चल है । हे पुत्र अभिमन्यु ! तुम्हारी यह तरुणी भार्या उत्तरा, तुम्हारे शोक से, व्याकुल हो रही है । वृषभ हीन गाय की भाँति विलखनी हुई इस बहु को मैं किस प्रकार समझाऊँगी और रक्खूँगी ? अहो पुत्र ! सङ्घट के समय में मुझे छोड़कर तुम चले गये हो । जब पुत्र

नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा ।
 यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ २० ॥
 यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् ।
 चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥ २१ ॥
 कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
 सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २२ ॥
 या गतिर्युद्धयमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
 हत्वाऽरीन्निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ॥ २३ ॥
 गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः ।
 नैवेशिकं चाऽभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥ २४ ॥
 ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निर्धिं निदधतां च या ।
 या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५ ॥
 ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः ।
 एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥
 राज्ञां सुचरितैर्यां च गतिर्भवति शाश्वती ।
 चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥ २७ ॥
 दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम् ।
 पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥
 व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
 अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २९ ॥

के होने का फल मिलने का समय आया। तब तुम मुझे दर्शनों की तरफ़ती हुई छोड़ चले व्रमे ! काल की गति को बड़े-बड़े बुद्धिमान भी नहीं जान सकते ॥ १७ ॥
 १८ ॥ कौन जानता या कि केशव ऐसे महायक रक्षक के रहने तुम यों अनाथ की भाँति संग्राम में मारे जाओगे ! अच्छा, जाओ पुत्र ! यज्ञ करनेवाले, दानी, जितेन्द्रिय, आत्मज्ञानी माक्षण, ब्रह्मचारी, पुण्य तीर्थों में स्नान करनेवाले, कृतज्ञ, उदारचित्त, गुरुसेवा-परायण और सहस्र दक्षिणा दान करनेवाले धर्मात्माओं की जो गति होती है वही श्रेष्ठ गति तुमको भी प्राप्त हो । संग्राम में पीठ न दिखानेवाले योद्धा लोग युद्ध में शत्रुओं को मारकर मरने पर जो गति प्राप्त करते हैं

वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ २० ॥ २१ ॥ सहस्र गोदान करनेवालों, यज्ञ के लिए दान करनेवालों, सब सामग्री सहित गृह-दान करनेवालों की जो शुभ गति होती है, आश्रय देने योग्य निर्धन ब्राह्मणों को धन-रत्न दान करनेवालों, निरभिमन और सन्यासियों की जो गति होती है; अथवा दण्डनीय पापियों को उचित दण्ड देनेवालों की जो गति होती है, वही गति तुम्हें प्राप्त हो । व्रतधारी मुनियों को ब्रह्मचर्य पालन करने से और पतिव्रताओं को पति की सेवा से जो गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें प्राप्त हो ॥ २४ ॥ २५ ॥ सदाचार का पालन करके राजा लोग जिस श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं, चाहे आश्रमों के लोग अपने-अपने धर्म का

कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च ।
 गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं ब्रज पुत्रक ॥ ३० ॥
 मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा ।
 स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३१ ॥
 ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम् ।
 परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं ब्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥
 साम्रा ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः ।
 नाऽरुन्तुदानां धमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३३ ॥
 मधुमांसनिवृत्तानां मदाद्भस्मात्तथाऽनृतात् ।
 परोपतापत्यक्तानां तां गतिं ब्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥
 ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः ।
 यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं ब्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥
 एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्षिताम् ।
 अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराट्सहितां तदा ॥ ३६ ॥
 ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः ।
 उन्मत्तवत्तदा राजन्विसंज्ञा न्यपतन्निश्चितौ ॥ ३७ ॥
 सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः ।
 सिक्त्वाऽम्भसा समाश्रास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः ॥ ३८ ॥

पालन करके और पुण्यात्मा लोग पुण्य की रक्षा करके
 जो सनातनी गति प्राप्त करते हैं, वही गति तुम्हें भी
 प्राप्त हो। दीन जनों पर दया करनेवाले, सदा सबको
 बौटकर खानेवाले और उल प्रपञ्च या चुगली न करने
 वाले जिस गति को प्राप्त करते हैं वही गति तुम्हें
 प्राप्त हो। जो लोग व्रत नियम आदि का पालन करते
 हैं, धर्मात्मा हैं, गुरुजन की सेवा करते हैं और अतिथि
 को मित्र नहीं जाने देते उन्हें जो गति प्राप्त होती
 है वही शुभ गति तुम्हें प्राप्त हो॥२७।२९॥रुद्र और
 मङ्गल के समय जो अपने को सँभाले रहते हैं, शोक
 की अग्नि में जलकर भी धैर्य को नहीं छोड़ते, सदा
 माता पिता की सेवा करते रहते हैं और अपनी स्त्री
 के अतिरिक्त अन्य स्त्री की ओर नेत्र उठाकर नहीं
 देखते, उन्हें जो गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें प्राप्त

हो। ऋतुमाल में अपनी स्त्री का सहगम करनेवालों
 और परस्त्री गमन से विमुख मनीषी पुरुषों को जो
 गति प्राप्त होती है वही गति तुम्हें प्राप्त हो॥३०।३२॥
 जो ईर्ष्याशून्य पुरुष सबको समदृष्टि से देखते हैं,
 किसी को मर्मपीड़ा नहीं पहुँचाते और जो क्षमा-
 शील हैं उनको जो गति प्राप्त होती है वही गति तुम्हें
 प्राप्त हो। जो लोग मदिरा नहीं पीते, मांस आदि भक्षण
 नहीं करते, मद, दम्भ, असत्य, पर सन्ताप और
 अन्वय से बचे रहते हैं, उन्हें जो गति प्राप्त होती
 है वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो। लोक लज्जा का खयाल
 रखनेवाले, सब शत्रुओं के ज्ञाता, ज्ञान से ही तृप्त,
 जितेन्द्रिय सज्जनों को जो गति प्राप्त होती है वही
 गति तुम्हें प्राप्त हो॥३३।३५॥शोक से पीड़ित होकर
 सुभद्रा दीन भाव से इस प्रकार विलप कर रही थी, इसी

विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम् ।
 भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥
 सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम् ।
 गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥
 ये चाऽन्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने ।
 सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥
 कुर्याम तद्वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
 कृतवान्याह गच्छैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥
 एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
 पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिन्दमः ॥ ४३ ॥
 ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान्कृष्णो बन्धूस्तथाऽर्जुनम् ।
 विवेशाऽन्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्वथाऽऽलयम् ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

समय उत्तरा की साथ लिए द्रौपदी भी वहाँ आ गई । वे
 सब बहुत विलाप करके रुदन करने लगीं । वे अत्यन्त
 दुःख से उन्मत्त सी और अचेत होकर पृथ्वी पर गिर
 पड़ीं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अत्यन्त दुःखित श्रीकृष्ण ने दुःख से
 विद्वज सुभद्रा की अनेक उपचारों से अचेत किया ।
 जल छिड़कर ये उनको होश में लाये । इसके पश्चात्
 कृष्णचन्द्र ने अचेत सी, रुदन करती बौपती, दुई, पृथ्वी
 पर लोट रही सुभद्रा से कहा । हे गहन ! तुम पुत्र के
 लिए शोक मत करो । और हे पाञ्चाली द्रौपदी ! तुम
 उत्तरा की समझाओ । क्षत्रियश्रेष्ठ गीर अभिमन्यु उस
 प्रशमनीय गति की प्राप्त हुआ है जिसके लिए क्षत्रिय
 लोग सदा इच्छुक रहते हैं ॥ ३८ ॥ ४० ॥ वरानने ।

मैं तो यही चाहता हूँ कि हम लोगों के कुल में और
 जितने पुरुष हैं वे यशस्वी अभिमन्यु की सी गति पायें ।
 हम लोग और हमारे पक्ष के सब लोग मित्रकर जो
 कर सकते हैं वह तुम्हारे अकेले महारथी पुत्र ने कर
 दिया था है । इसलिए उसकी मृत्यु कदापि शोचनीय
 नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ कृष्णचन्द्र इस प्रकार अपनी गहन,
 द्रौपदी और उत्तरा की समझा बुझाकर अर्जुन के समीप
 गये । वहाँ राजाओं, मित्रों और अर्जुन की विश्राम करने
 के लिए आज्ञा देकर वे स्वयं विश्राम करने के लिए
 अन्तःपुर में गये । और सब लोग भी अपने-अपने
 डेरा में विश्राम करने के लिए गये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

द्रोणपर्व का अष्टोत्तरांश अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७८ ॥

अथ एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

मङ्गप उवाच - ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याऽप्रतिमं विभुः ।
 स्पृष्ट्वाऽम्भः पुण्डरीकाक्षः स्यण्डिले शुभलक्षणो ॥ १ ॥

उन्नामीनी अध्याय ॥ ७९ ॥

मङ्गप कहते हैं—इसके उपरान्त महात्मा श्रीकृष्ण
 अर्जुन के डेरे में गये । वहाँ राय गौर घोड़े उन्नामि
 सुन्दर स्थान में वैश्वदेव के राजाओं के कुलों की

शुभलाख्या विप्राईं निरिषिपूर्वक मङ्गप मान्य, अभुन,
 मन्थर्य्य अदि में उसे अर्जुन के वर के उमके धारों
 और श्रेष्ठ दास रहने । इसके पश्चात् अर्जुन जब जग-

सन्तस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसन्निभैः ।
 ततो माल्येन विधिवल्लजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥ २ ॥
 अलञ्चकार तां शय्यां परिवार्याऽऽयुधोत्तमैः ।
 ततः स्पृष्टोदके पार्थं विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥
 दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं वलिम् ।
 ततः प्रतीमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥ ४ ॥
 अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
 स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभापत ॥ ५ ॥
 सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय ब्रजाम्यहम् ।
 स्थापयित्वा ततो द्वास्यान्गोप्तृंश्चाऽऽत्तायुधान्नगान् ॥ ६ ॥
 दारुकानुगतः श्रीमान्विवेश शिविरं स्वकम् ।
 शिश्ये च शयने शुभ्रे बहु कृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥
 पार्थाय सर्वं भगवाञ्शोकदुःखापहं विधिम् ।
 व्यदधात्पुण्डरीकाक्षस्तेजोयुतिविवर्धनम् ॥ ८ ॥
 योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेपामीश्वरेश्वरः ।
 श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियङ्करः ॥ ९ ॥
 न पाण्डवानां शिविरे कश्चित्सुप्त्राप तां निशाम् ।
 प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥ १० ॥
 पुत्रशोकाभितसेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
 सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥ ११ ॥

स्पर्श आचमन आदि कर चुके तब विनीत परिचारक
 नित्य रात्रि को दी जानेवाली रुद्र की बलि ले आये ।
 अब अर्जुन ने महादेव की पूजा की और बलि दी ।
 इसके उपरान्त प्रसन्नचित्त से उन्होंने गन्ध-माला आदि
 से श्रीकृष्ण की पूजा की और उन्हें भी रात्रि के योग्य
 उपहार अर्पण किये ॥ १५ ॥ अब अर्जुन को साधुनाद
 देकर कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ! तुम्हारा कल्याण
 हो, अब तुम जाकर विश्राम करो । मैं भी तुम्हारे कल्याण
 के लिए जाता हूँ । अर्जुन के हितचिन्तक भगवान्
 वासुदेव द्वार पर सशस्त्र सावधान द्वाग्पालों को तैनात
 करके, दारुक सारथी को साथ लिये हुए, अपने शिविर
 में गये । वहाँ श्वेत शय्या पर लेट करके महायशस्वी

विष्णुस्वरूप भगवान् कृष्णचन्द्र बहुत से कर्तव्यों के
 बारे में निश्चय करने लगे । उन्होंने अर्जुन के शोक-दुःख
 को मिटानेवाली और तेज तथा धृति को बढ़ानेवाली
 व्यवस्था योगबल के द्वारा कर दी ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! उस
 रात्रि को पाण्डवों के शिविर में किसी को भी निद्रा
 नहीं आई । सब लोग इस प्रकार सोचते रहे कि पुत्र-
 शोक से पीड़ित वीर अर्जुन ने कल प्रातः काल जयद्रथ
 को मारने की प्रतिज्ञा की है । महाबाहु शत्रुदमन अर्जुन
 उम अपनी प्रतिज्ञा को किस प्रकार पूर्ण करेंगे ! पुत्रशोक
 से निहल होकर अर्जुन यह बड़ी दुष्कर प्रतिज्ञा कर
 बैठे हैं । एक तो जयद्रथ रथ्य साधारण योद्धा नहीं
 है, उस पराधुर्योग ने अपने पराक्रमी भाइयों, महारथी

तत्कथं नु महाबाहुर्वामत्रिः परवीरहा ।
 प्रतिज्ञां मफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥
 कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
 स च राजा महावीर्यः पारयत्पर्जुनः स ताम् ॥ १३ ॥
 पुत्रशोकाभिनसेन प्रतिज्ञा महती कृता ।
 भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥ १४ ॥
 धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।
 स हत्वा सैन्धवं संगमे पुनरेतु धनञ्जयः ॥ १५ ॥
 जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्पर्जुनो व्रतम् ।
 श्रोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥
 न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनञ्जयः ।
 धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥
 तन्मिहि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः ।
 यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद्यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥
 फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वीरन् ।
 एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९ ॥
 कृच्छ्रेण महता राजन्रजनी व्यत्यवर्त्तत ।
 तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ २० ॥
 स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।
 अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतवन्धुना ॥ २१ ॥

योद्धाओं और असत्य मेना जो जयद्रथ की रक्षा के निमित्त नियुक्त कर रक्का है। हम लोग यही चाहते हैं कि महाबली अर्जुन युद्ध में जयद्रथ और अब शत्रुओं को मार कर, प्रतिज्ञाभंग्य महात्मन से उत्तीर्ण होंकर, विजयी और सुखी हों॥ १०११४॥ जो पल के जयद्रथ का गध नहीं कर पायेगे तो अवश्य ही जल्मी हुई चिता में अपने प्राण दे देगे, क्याकि अजुन कभी अपनी प्रतिज्ञा को टाल नहीं सकते॥ ११४१७॥ धर्मराज युधिष्ठिर की सम्पूर्ण विजय अजुन के ऊपर ही निर्भर है। यदि अर्जुन अपने प्राण दे देगे तो फिर धर्मपुत्र युधिष्ठिर भी जीवित नहीं रह सकेगे। इसलिए यदि हमने कुछ दान, हवन या पुण्य किया है तो उसके फल से अर्जुन

अपने शत्रुओं पर विजय पावे। हे राजेन्द्र। इस प्रकार आप में कहकर, अर्जुन की जय की इच्छा रखते हुए, गीरो ने वह रात्रि बड़े कष्ट से व्यतीत की॥ १७॥ २०॥ शहर उसी रात्रि को श्रीकृष्ण ने जागकर और अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण करके अपने सारथी से कहा—हे दारुक! पुत्र बध से शोकालु अर्जुन ने कल जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है। उसकी सूचना पाकर दुर्योधन, अपने मन्त्रियों से सम्मति करके, ऐसा उपाय करेगा जिसमें अर्जुन युद्ध में जयद्रथ का गध न कर सके। दुर्योधन की कई अक्षौहिणी सेना और पुत्र सहित सब अस्त्रों के ज्ञाता द्रोणाचार्य अवश्य जयद्रथ की रक्षा करेंगे॥ २०१२३॥ आचार्य जिसकी

जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।
 तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥ २२ ॥
 यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।
 अक्षौहिण्यो हिताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम् ॥ २३ ॥
 द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।
 एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
 सोऽपि तं नोत्सहेताऽऽजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।
 सोऽहं श्वस्तत्कारिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः ॥ २५ ॥
 अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।
 न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥ २६ ॥
 कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममाऽर्जुनात् ।
 अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्त्तमपि दारुक ॥ २७ ॥
 उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत्तथा ।
 अहं विजित्य तान्सर्वान्सहसा सहयद्विपान् ॥ २८ ॥
 अर्जुनार्थं हनिष्यामि सकर्णान्ससुयोधनान् ।
 श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥
 धनञ्जयार्थं समरे पराक्रान्तस्य दारुकं ।
 श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥ ३० ॥
 साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।
 श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥
 मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थं निपातिताम् ।
 श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३२ ॥

रक्षा करे उसे, दैत्य और दानवों के अहङ्कार को
 मिटानेवाले, अद्वितीय वीर इन्द्र भी नहीं मार सकते।
 परन्तु मैं कल वह उपाय करूँगा जिससे सूर्य के अस्त
 होने से पहले ही अर्जुन जयद्रथ को मार लेंगे। स्त्री-
 मित्र-सजातीय बन्धु-बान्धव आदि कोई भी मुझे अर्जुन
 से बढ़कर प्रिय नहीं है॥२४॥२७॥ मैं क्षण भर भी इस
 पृथ्वी को अर्जुन के बिना नहीं देख सकूँगा। अतएव
 चाहे जिस तरह हो, कल अवश्य ही अर्जुन की प्रतिज्ञा
 पूर्ण होगी। मैं स्वयं, अर्जुन के लिए, सहसा चतुर-

क्षिणी सेना सहित कर्ण और दुर्योधन आदि सबको
 जीतकर मार डालूँगा। हे दारुक ! कल अर्जुन के
 लिए मैं स्वयं युद्ध करूँगा और तीनों लोकों के निवासी
 मेरे पराक्रम को देखेंगे। मैं कल सहस्रों राजाओं, सैकड़ों
 राजपुत्रों और चतुरक्षिणी सेना को मार भगाऊँगा। मैं क्रुद्ध
 होकर तुम्हारे आगे ही अर्जुन के लिए अपने सुदर्शन
 चक्र से उन राजाओं की सेना को मार गिराऊँगा॥२७॥
 ३१॥ कल देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस और
 त्रिभुवन के सब प्राणी जान लेंगे कि मैं अर्जुन का

ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ।
 यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चाऽनु स मामनु ॥ ३३ ॥
 इति सङ्कल्प्य तां बुद्ध्या शरीरार्थं ममाऽर्जुनः ।
 यथा त्वं मे प्रभानायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥ ३४ ॥
 कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय ब्रज संयतः ।
 गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ॥ ३५ ॥
 आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ।
 स्थानं च कल्पयित्वाऽथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥
 वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः ।
 छत्रं जाम्बूनदैर्जालैर्कज्ज्वलनसप्रभैः ॥ ३७ ॥
 विश्वकर्मेकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान् ।
 बलाहकं मेघपुष्पं शैव्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥
 युक्तान्वाजिवरान्यत्तः कवची तिष्ठ दारुक ।
 पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्पभेणैव पूरितम् ॥ ३९ ॥
 श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम् ।
 एकाह्वाऽहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥
 भ्रातुः पैतृवसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ।
 सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा वीभत्सुराहवे ॥ ४१ ॥
 पश्यतां धार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ।
 यस्य यस्य च वीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ।
 आशंसे सारथे तत्र भविताऽस्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥

मित्र हैं । जो अर्जुन का शत्रु है वह मेरा भी शत्रु है और जो अर्जुन का मित्र है वह मेरा भी मित्र है । तुम निश्चित समझो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है, हम दोनों मित्र “एक प्राण दो देह” हैं ॥ ३१ ॥ ३४ ॥ हे दारुक ! तुम प्रातः काल होते ही मेरे श्रेष्ठ सुसज्जित रथ को लेकर मेरे साथ युद्धभूमि में चलना । रथ पर गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष-बाण आदि शस्त्र और युद्ध की सत्र सामग्री रख लेना । उसमें रथ की शोभा बढ़ाने वाले गरुड़ से अलङ्कृत भज्जा और छत्र लगा देना । सूर्य और अग्नि के समान चमकीले, विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित सुवर्णजाल में शोभित बलाहक, मेघपुष्प,

शव्य और सुप्राण नाम के चारों घोड़े जोतकर, कवच पहन करके, तुम रथ पर तैयार रहना ॥ ३४ ॥ ३९ ॥ श्वोही तुम्हें मेघगर्जन सदृश मेरे पाञ्चजन्य शङ्ख का गम्भीर शब्द सुन पड़े ल्याही तुम मेरे से मेरे समीप आ जाना । हे दारुक ! मैं अपने पुँफेरे भाई अर्जुन के सत्र दुःख और कष्ट को एरा ही दिन में, शत्रुवध करके, शान्त कर दूँगा । मैं सत्र प्रस्तर से ऐसा यत्न करूँगा कि दुर्योधन आदि के सम्मुख ही अर्जुन दुष्ट जयद्रथ को मार लेंग । मुझे पूर्ण आशा है कि युद्धभूमि में कल अर्जुन जिस-जिस मारने का यत्न करेगे उसे उसे मार डालेंगे ॥ ३९ ॥ ४२ ॥ दारुक ने कहा—हे पुरोचन ! स्वयं

दारुक उवाच—जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः ।

यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥

एवं चैतत्करिष्यामि यथा मामनुशाससि ।

सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसंभाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

आप जिसका रथ हॉकते हैं उस भाग्यशाली की जय । मैं सब कार्य करूँगा । कल सुप्रभात होगा और अर्जुन होना सर्वथा निश्चित है । उसकी हार कहीं से हो सकती , अवश्य ही विजय प्राप्त करेंगे॥४३।४४॥
है । आपने मुझे जो आज्ञा दी है उसी के अनुसार ही

द्रोणपर्व का उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७९ ॥

अथ अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच—कुन्तिपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनञ्जयः ।

प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन्मुमोहाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ १ ॥

तं तु शोकेन सन्तप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम् ।

आससाद् महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः ॥ २ ॥

प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनञ्जयः ।

न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा ॥ ३ ॥

प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ ।

न चाऽऽसने स्वयं बुद्धिं धीमत्सुन्यधात्तदा ॥ ४ ॥

ततः कृष्णो महातेजा जानन्पार्थस्य निश्चयम् ।

कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत् ॥ ५ ॥

मा विपादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः ।

कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ ॥ ६ ॥

किमर्थं च विपादस्ते तद् ब्रूहि द्विपदां वर ।

न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः ॥ ७ ॥

अस्सीवाँ अध्याय ॥ ८० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! उधर अचिन्त्य-पराक्रमी अर्जुन अपनी की हुई प्रतिज्ञा को और जयद्रथ की रक्षा के लिये की हुई दुर्योधन की सम्पत्ति को सोचते-सोचते कुछ निद्रित हो गये । अब शोकपीडित अर्जुन के निकट खमावस्था में गरुडध्वज श्रीकृष्ण आये । भक्ति और प्रेम से परिपूर्ण अर्जुन सदा, सभी अस्थानों में, उठकर श्रीकृष्ण का आदर करते थे ।

उस समय भी श्रीकृष्ण को देखकर उन्होंने उठकर उनका आदर-सत्कार किया और बैठने के लिए उन्हें सुन्दर आसन दिया । किन्तु आप आसन पर नहीं बैठे, खड़े ही रहे॥१।४॥महातेजस्वी कृष्णचन्द्र ने अर्जुन के मन की बात को जानकर बैठकर कहा—हे पार्थ ! तुम नेत्र न करो । यह बली काल घटन ही दुर्जय है । काल ही सब प्राणियों की भविष्यता के लिए

यत्तु कार्यं भवेत्कार्यं कर्मणा तत्समाचर ।
 हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनञ्जय ॥ ८ ॥
 शोचन्नन्दयते शत्रून्कर्षयत्यपि बान्धवान् ।
 श्रीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुर्महसि ॥ ९ ॥
 इत्युक्तो वासुदेवेन वीभत्सुरपराजितः ।
 आवभापे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत् ॥ १० ॥
 मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता ।
 श्रोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव ॥ ११ ॥
 मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाऽच्युत ।
 पृष्ठतः सैन्धवः सर्वैर्गुप्तो महारथैः ॥ १२ ॥
 दश त्रैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः ।
 हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया ॥ १३ ॥
 ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः ।
 कथं शक्येत सन्द्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः ॥ १४ ॥
 प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव ।
 प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवति मद्विधः ॥ १५ ॥
 दुःखोपायस्य मे वीर विकांक्षा परिवर्त्तते ।
 द्रुतं च यानि सविता तत एतद्रूचीन्महम् ॥ १६ ॥

विश्व करता है । हे नरश्रेष्ठ ! बलशाली तू, तू मे
 क्यों खेद कर रहे हो - तू मे श्रेष्ठ जानी हो । जो
 बुद्धिमान है वे कदापि शोक नहीं करते । तू मे
 भी शोक नहीं करना चाहिए । शोक मे सब कार्य
 नष्ट हो जाते हैं । अपने कर्तव्य का पालन करो ।
 जो मनुष्य हाथ पर हाथ रखे केवल शोक ही किया
 करता है उसका वह शोक ही शत्रु है । हे मित्र !
 शोक करनेवाला मनुष्य अपने शत्रुओं को प्रमत्त
 और बान्धवों को दुखी करता है । वह स्वयं भी मार
 मिटता है । इसलिए तू शोक मत करो ॥ १० ॥ यह
 सुनकर अर्जुन ने कहा - हे श्रीकृष्ण ! मैं प्रतिज्ञा
 कर चुका हूँ कि अपने पुत्र की हत्या के मूल कारण
 दुर्मति जयद्रथ को कष्ट अश्व मारूँगा । यह निश्चित
 है कि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होने देने के लिए दुर्यो-
 धन आदि कीरव कुटुम्बी न रखेंगे । वे जयद्रथ

को सारा सेना के पाठे रखेंगे और उनके पक्ष के
 सब महारथी मिलकर उसकी रक्षा करेंगे ॥ १० ॥ १२ ॥
 हे श्रीकृष्ण ! दुर्योधन की अत्यन्त दूरजैय ग्यारह अक्षौ-
 हिणी सेना, जो मरने से बची है, जयद्रथ की रक्षा
 करेगी और सब महारथी भी उसे बचाने का उद्योग
 करेंगे । ऐसी दशा में दुरा मा जयद्रथ के समीप तक
 मैं कैसे पहुँचूँगा और उसे देखूँगा ? विशेषकर इन
 दिनों सूर्य के दक्षिणायन होने के कारण दिन छोटा
 होता है । इससे, इतने थोड़े समय में, इतनी सेना को
 नष्ट करके जयद्रथ तक पहुँचना असम्भव जान पड़ता
 है । जब तक वह दृष्ट मुझे नहीं मिलेगा और इसी
 कारण मैं उसको नहीं मार सकूँगा, तब मेरी प्रतिज्ञा
 कैसे पूर्ण होगी ? प्रतिज्ञा पूर्ण न होने पर मुझ सा
 गानी पुरुष कैसे जीना रह सकता है ? हे वीर !
 इस समय दुःख विनाश की मेरी आशा नष्ट भी हो

शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
 संस्पृश्याऽम्भस्ततः कृष्णः प्राङ्मुखः समवास्थितः ॥ १७ ॥
 इदं वाक्यं महातेजा वभाषे पुष्करेक्षणः ।
 हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥ १८ ॥
 पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
 येन सर्वान्मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥
 यदि तद्विदितं तेऽद्य श्रो हन्तासि जयद्रथम् ।
 अथाऽज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २० ॥
 तं देवं मनसा ध्यात्वा जौषमास्त्र धनञ्जय ।
 ततस्तस्य प्रसादान्त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥ २१ ॥
 ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याऽम्भो धनञ्जयः ।
 भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥
 ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
 आत्मानमर्जुनोऽपश्यद्गगने सहकेशवम् ॥ २३ ॥
 पुण्यं हिमवतः पार्दं मणिमन्तं च पर्वतम् ।
 ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४ ॥
 वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ।
 केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५ ॥
 प्रेक्षमाणो बहून्भावाञ्जगामाऽद्भुतदर्शनान् ।
 उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम् ॥ २६ ॥

रही है । प्रातःकाल होने में अब देर नहीं है, इसी से मैं आपसे यह कह रहा हूँ ॥ १७ ॥ १८ ॥ महाराज ! अर्जुन के शोक का कारण सुनकर श्रीकृष्ण आचमन करके, पूर्वमुख होकर, आमन पर बैठ गये । इसके पश्चात् वे अर्जुन के हित और जयद्रथ के वध के लिए इस प्रकार कहने लगे — हे अर्जुन ! देवादिदेव महादेव ने जिसके द्वारा सब देवों का नाश किया था यह दिव्य मनान्त पाशुपत अस्त्र यदि तुझे सम्पन्न है तो उसकी सहायता से कल्प तुम अवश्यही जयद्रथ को मार सकेगें । यह अस्त्र तुम एक बार शङ्कर से प्राप्त कर चुके हो; किन्तु यदि उसे भूल गये हो तो इस समय एकाग्र मन से उस अस्त्र की प्राप्ति के लिए

भगवान् शङ्कर का ध्यान करो । तुम उनके भक्त हो, इस कारण उनकी कृपा से ही वह महान् दिव्य अस्त्र अदृश्य तुम्हें प्राप्त होगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ यह सुनकर अर्जुन ने आचमन किया और पृथ्वी पर बैठकर वे एकाग्रचित्त से शङ्कर का ध्यान करने लगे । कुछ समय में शुभ ब्राह्म मुहूर्त (चार घण्टे रात्रि रहे) उपस्थित होने पर अर्जुन ने अपने की कृष्णचन्द्र के साथ आचमन-मार्ग में जाते हुए देखा । श्रीकृष्ण उनका दाहना हाथ पकड़े हुए थे और वे वायु के समान वेग से उपेतिक-मण्डलीपूर्ण, सिद्ध-चारण-मंथिन आकाशमार्ग द्वारा जाकर पवित्र हिमालय पर्वत के शिखर और मणिमन्त पर्वत पर पहुँचे ॥ २२ ॥ २३ ॥ अनेक प्रकार के अद्भुत रूप

कुवेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
 संरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७ ॥
 सदापुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
 सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥ २८ ॥
 पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।
 मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९ ॥
 हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौपधिविदीपितान् ।
 तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥ ३० ॥
 स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् ।
 ब्रह्मतुङ्गनदीश्चाऽन्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१ ॥
 स तुङ्गं शतशृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
 पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ ३२ ॥
 वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
 अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥
 तस्मिंश्शैले व्रजन्पार्थः सकृष्णः समवैक्षत ।
 शुभैः प्रसवणैर्जुष्टां हेमधातुविभूषिताम् ॥ ३४ ॥
 चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।
 समुद्रांश्चाऽद्भुताकारानपश्यद्बहुलाकारान् ॥ ३५ ॥
 वियन्त्र्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
 विस्मितः सह कृष्णेन क्षितौ वाण इवाऽभ्यगात् ॥ ३६ ॥

दरपते हुए धर्मात्मा अर्जुन उत्तर दिशा में चले । उन्होंने
 श्वेत पर्वत देखा; कुंभेर की विहार-वाटिका में पद्मा से
 शोभित सुन्दर संसार देखा । फिर सर्वदा फलने-
 फलनेवाले वृक्षों से शोभित और स्फटिक शिलाओं
 से अलङ्कृत अगाध जलवाली, श्रेष्ठ नदी गङ्गा की
 देखा । गङ्गा-तट पर अनेक मिह, व्याघ्र और अनेक
 प्रकार के मृग विचर रहे थे; पवित्र आश्रम शोभाय
 गान थे और पक्षी उड़ रहे थे ॥ २७-२९ ॥ उसके आगे
 उन्होंने मन्दराचल के विविध स्थानों को देखा । उनमें
 किन्नरों के गाने का शब्द गूँज रहा था अनेक ओपधियों
 के प्रकाश से परिपूर्ण सुवर्ण-चौदी के शिखर और फले
 हुए कल्पवृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । फिर अञ्जन-

राशि के तुल्य काल पर्वत देखा । आगे ब्रह्मतुङ्ग पर्वत,
 अनेक नदियों, अनेक देश, अनेक नगर, बहुत ऊँचे
 शतशृङ्ग पर्वत, शर्यातिवन, पवित्र अश्वशिरा ऋषि का
 स्थान, आथर्वण ऋषि का स्थान, वृषदंश शैल और
 महामन्दर पर्वत देखा । उस पर्वत पर अप्सराएँ और
 किन्नर विहार कर रहे थे ॥ ३०-३१ ॥ उस पर्वत पर जाते-
 जाते अर्जुन सहित श्रीकृष्ण ने देखा कि यह पृथ्वी-
 मण्डल पवित्र झरनों और सुवर्ण आदि धातुओं की
 भावों से युक्त तथा चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित
 हो रहा है; अनेक नगर माला की तरह हमे घेरे हुए
 हैं । उन्होंने अनेक रत्नों के आकार और अद्भुत आकार-
 वाले समुद्रों को भी देखा । धनुष से छूटे हुए बाण की

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विपम् ।
 अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३७ ॥
 समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
 तपोनित्यं महात्मानमपश्यद्बृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥
 सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
 शूलिनं जटिलं गौरं बल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥
 नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
 पार्वत्या सहितं देवं भूतसङ्घैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥
 गीतवादित्रसन्नादैर्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
 बलिगतास्फोटितोत्कृष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥
 स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
 गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥
 वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
 पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥
 लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
 मनसः परमं योनिं खं बायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४४ ॥
 स्वष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
 देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥ ४५ ॥
 योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम् ।
 चराचरस्य स्वष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६ ॥

तरह श्रीकृष्ण सहित अर्जुन आकाश, अन्तरिक्ष, स्वर्ग
 और पृथ्वी पर विचरते हुए आर्ध्र्य के साथ सब दृश्य
 देखते जा रहे थे ॥ ३४-३६ ॥ इसके उपरान्त अर्जुन ने
 एक बहुत बड़ा निशाल पर्वत देखा, जिसकी दीप्ति ग्रह
 नक्षत्र-चन्द्रमा सूर्य और अग्नि के समान थी । उसी
 प्रज्वालित अग्नि के समान पर्वत पर अर्जुन को, सदा
 तपस्या में निरत, देवदेव महात्मा शङ्कर देख पड़े । अर्जुन
 को उनका तेज एकत्र प्रकाशमान सहस्र सूर्यों के प्रकाश
 सा जान पड़ा । वे सिर पर जटाजूट और हाथ में त्रिशूल
 धारण किये हुए थे । वे बल्कल और मुगटाल पहने
 हुए थे । उनके एक सहस्र नेत्र थे और अङ्ग विचित्र
 थे । महापराक्रमी महादेव के समीप पार्थवी देवी और

तेजस्वी भूतगण उपस्थित थे ॥ ३७-४० ॥ उन गणों में
 से कोई गा रहा था, कोई बजा रहा था, कोई जोर
 से बोल रहा था, कोई हँस रहा था, कोई नृत्य कर रहा
 था, कोई इधर-उधर टहल रहा था, कोई ताल ठोक
 रहा था और कोई ऊँचे स्वर से चिल्ला रहा था । आसपास
 पत्रि सुगन्ध गरी हुई थी । ब्रह्मवादी ऋषि लोग दिव्य
 स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ४१-४२ ॥ अत्र
 प्राणियों की रक्षा करने वाले, ईशान, बरदान्नी, शिव
 को देखते ही कृष्णचन्द्र ने अर्जुन के साथ सनातन
 ब्रह्म का उच्चारण करते-करते पृथ्वी पर सिर रखकर
 उन्हें प्रणाम किया । लोकों के आदि, विश्वकर्मा, जन्म
 रहित, ईशान (जिनकी इच्छा अप्रतिहत है), अव्यय

कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
 वचन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥ ४७ ॥
 यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः ।
 तमजं कारणात्मानं जगत्तुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥
 अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽप्यवन्दत ।
 ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४९ ॥
 ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणानुभौ ।
 सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ५० ॥
 स्वागतं वो नरश्रेष्ठानुत्तिष्ठतां गतकृमौ ।
 किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥ ५१ ॥
 येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवां तत्साधयामि किम् ।
 त्रियतामात्मानः श्रेयस्तत्सर्वं प्रददामि वाम् ॥ ५२ ॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
 वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ५३ ॥
 भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ॥ ५४ ॥
 नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
 कृष्णार्जुनावचतुः—पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥
 महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये ।
 ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्यकघातिने ॥ ५६ ॥

(विकाररहित), प्रवृत्ति और निवृत्ति के कारणस्वरूप,
 उत्पत्तिस्थान, आकाशरूप, वायुरूप, सब प्रकार के
 वेगों के आश्रयस्थल, जलधाराओं को उत्पन्न करनेवाले,
 पृथ्वी की परमप्रकृति, देव दानव यक्ष और मनुष्यों का
 शासन करनेवाले, योग और योगियों के परम आश्रय,
 प्रत्यक्ष परब्रह्म, ब्रह्मज्ञानियों के इष्टदेव, जगत् की सृष्टि
 और संहार करनेवाले, काल के समान दारुण कोषवाले,
 महात्मा, इन्द्र के ऐश्वर्य आदि और सूर्य के प्रताप
 आदि गुणों के उत्पत्तिस्थान महादेव को श्रीकृष्ण और
 अर्जुन ने मन-वाणी-काया से प्रणाम किया और वे
 उन जन्मरहित कारण स्वरूप शङ्कर की शरण में गये
 जिनकी शरण में मूक्ष अध्यात्म पद के ज्ञान को खोजने-
 वाले विद्वान् लोग जाते हैं ॥ ४३-५६ ॥ अर्जुन भी उन्हें

मय प्राणियों के आदि और भूत भविष्य वर्तमान का
 उत्पत्तिस्थान जानकर भक्तिपूर्वक वारम्बार प्रणाम करने
 लगे । नर और नारायण दोनों को आये हुए देखकर,
 प्रमत्त होकर, हैंसते हुए देवादित्य शङ्कर कहने लगे—
 हे नर-श्रेष्ठ वीरों ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ । उठो,
 तुम्हारी सब थकन जाती रहे । बोलो, क्या चाहते
 हो ! यहाँ तुम जिस कार्य की सिद्धि के लिए आये
 हो, उसे मैं अस्य सिद्ध करूँगा । तुम अपने कन्याण
 का वर माँगो, मैं वह तुम्हें देने को उत्पन्न हूँ ॥ ४८ ।
 ५२ ॥ महादेव के वचन सुनकर महात्मा श्रीकृष्ण और
 अर्जुन उठे और हाथ जोड़कर, भक्तिपूर्वक, उनकी
 स्तुति करने लगे । अब श्रीकृष्ण और अर्जुन ने कहा—
 भग (सबसे प्रभु), शर्व (संहार करनेवाले), रुद्र, वर-

कुमारगुखे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
 पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा ॥ ५७ ॥
 विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते ।
 नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥
 होत्रे पोत्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे ।
 अचिन्त्यायाऽम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥ ५९ ॥
 वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ।
 तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाऽजिताय च ॥ ६० ॥
 विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्त्य तिष्ठते ।
 नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥ ६१ ॥
 ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च ।
 नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२ ॥
 नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
 नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३ ॥
 सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।
 नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च ।
 भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥ ६४ ॥
 सञ्जय उवाच—एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः ।

प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दानी, पशुपति, उग्र, कपर्दी, महादेव, भीम, व्यम्बक,
 शान्तरूप, ईशान, दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने-
 वाले, अन्धकासुर को मारनेवाले, कुमार कासिकेय के
 पिता, नीलग्रीव, वेधा, पिनाकी, हविष्य (यज्ञ में भाग
 प्राप्त करनेवाले), सत्यस्वरूप, विभु (व्यापक), विलोहित,
 धूम्र, व्याध, अपराजित, सच प्राणिमो में श्रेष्ठ, सर्व-
 जयी, नीलशिखण्ड, शूली, दिव्यचक्षु, होना, पाता
 (रक्षक), त्रिनेत्र, वसुरेता, अचिन्त्यस्वरूप, अम्बिका
 पति, सर्वदेववन्दित, वृषध्वज, मुण्ड, जटाजूटधारी,
 ब्रह्मचारी, जल में तपस्या करनेवाले, ब्रह्मण्य, अजित,
 विश्वात्मा, विश्वसृष्टा और विश्व में व्याप्त मृत्युक्षय को
 प्रणाम है॥५३॥६१॥आप सेवनीय हैं, सब प्राणियों के

अथवा प्रमथ भूतगण आदि के प्रभु और वेद-मुख हैं,
 आपको हम प्रणाम करते हैं । सर्वस्वरूप, शङ्कर, शिव
 (मोक्ष देनेवाले), वाचस्पति, प्रजापति, विश्वपति और
 महत् जनों के पति रुद्र को हमारा प्रणाम है । आपके
 सहस्रों सिर, सहस्रों हाथ, सहस्रों नेत्र और सहस्रों
 चरण हैं । आपके कर्म असंख्य हैं । आप मृत्युरूप
 हैं । आपको हम प्रणाम करते हैं । हिरण्यवर्ण, हिरण्य-
 कवचधारी, महलों पर दया करनेवाले जगदीश्वर को
 हम प्रणाम करते हैं । हे प्रभो ! ऐसी कृपा कीजिए
 जिससे हमारी इच्छा पूर्ण हो॥६२॥६४॥सञ्जय कहते
 हैं -- इस प्रकार स्तुति करके अर्जुन सहित श्रीकृष्ण,
 अख की प्राप्ति के लिए, शङ्करको प्रसन्न करने लगे॥६५॥

द्रोणपर्व का अस्तीर्ष अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८० ॥

अथ एकाशीतितमेऽध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच - ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्बुधभध्वजम् ।
 ददशोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥
 तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना ।
 ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ २ ॥
 ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः ।
 इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥
 ततः पार्थस्य विज्ञाय वरायें वचनं तदा ।
 वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥
 स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेऽस्मितम् ।
 येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम् ॥ ५ ॥
 सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ ।
 तत्र मे तच्छनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥
 येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः ।
 तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७ ॥
 तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिपदैः सह ।
 प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥
 निर्दिष्टं यद्वृषाङ्गेन पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।
 तौ जग्मतुरसम्भ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥
 ततस्तौ तत्सरो गत्वा सूर्यमण्डलसन्निभम् ।
 नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥

इत्यामीनां अध्यायः ॥ ८१ ॥

सञ्जय ने कहा - हे महाराज ! हाथ जोड़े हुए महाबलवान् अर्जुन ने प्रसन्नचित्त होकर, सम्पूर्ण तेजों के आधार, शङ्करजी की ओर सादर भक्तिपूर्ण दृष्टि से देखा। उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा कि वासुदेव ने उनकी ओर से रात्रि की जो त्रिभिर्पूर्वक पूजोपहार रत्न को अर्पण किया था वह यहाँ, शङ्कर के समीप उपस्थित है। तब मन ही मन शङ्कर और नारायण वनार कृष्णचन्द्र की पूजा करते अर्जुन ने महर्षि ने कहा मैं आपसे दिव्य पाशुपत अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ। अर्जुन के अन्तःकरण का भाव जानकर मुस्कराते

हुए श्रीशङ्कर ने कृष्णचन्द्र और अर्जुन से कहा— हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम्हारा मनोरथ मैंने जान लिया है। जिस कार्य के लिये तुम यहाँ आये हो, उसके पूर्ण होने का वरदान मैं तुमको देता हूँ। पहले मैंने जिनसे समर में देवताओं के वैरी दानवों का सहार किया था वे दिव्य धनुष और बाण यहाँ, निरुद्ध ही, अमृतमय दिव्य सरोवर में रक्खे हुए हैं। तुम जाकर उस उत्तम धनुष और बाण को ले आओ। शीतलानन्द दोनों वीर 'बहुत अच्छा' कहकर, शिव के गणों के साथ, उस दिव्य सरोवर पर गये।

द्वितीयं चाऽपरं नागं सहस्राशिरसं वरम् ।
 वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥
 ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याऽम्भः कृताञ्जली ।
 तौ नागावुपतस्याते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥
 गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद्ब्रह्म शतरुद्रियम् ।
 अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥
 ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ
 धनुर्वाणश्च शत्रुघ्नं तद् द्वन्द्वं समपद्यत ॥ १४ ॥
 तौ तज्जगहतुः प्रीतौ धनुर्वाणं च सुप्रभम् ।
 आजहतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ १५ ॥
 ततः पाश्चाद्दृष्ट्वाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्त्तत ।
 पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्र बलवाङ्गीललोहितः ॥ १६ ॥
 स तद्गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्यौ स्थानं समाहितः ।
 विचकर्षाऽथ विधिवत्सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥
 तस्य मौर्वी च मुष्टिं च स्थानं चाऽऽलक्ष्य पाण्डवः ।
 श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ १८ ॥
 स सरस्येव तं बाणं मुमोचाऽतिबलः प्रभुः ।
 चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन्सरसि तद्धनुः ॥ १९ ॥

शिवजी का बताया हुआ वह सरोवर सैम्बो आश्वर्य
 जनक दिव्य ऐश्वर्यो से युक्त, सर्वार्थमाधन और पवित्र
 था । सूर्यमण्डलसदृश उस सरोवर के समीप असम्भ्रान्त
 भाव से जाकर नरनारायण ऋषिय के अवतार कृष्णचन्द्र
 और अर्जुन ने देखा कि जल के भीतर दो भयङ्कर
 नाग बैठे हैं । एक नाग अत्यन्त भयङ्कर और एक हा
 सिर का है, किन्तु दूसरा नाग अग्नि के समान प्रज्वलित
 है और उसके एक सहस्र सिर हैं ॥ ११ ॥ तब वेदज्ञ
 कृष्णचन्द्र और अर्जुन ने आचमन करने हाथ जोड़कर
 शङ्कर को प्रणाम और स्मरण किया और शतरुद्रा के
 मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया । वे दोनों महात्मा, शङ्कर
 की अपरम्पार महिमा जानकर, प्रणामपूर्वक उन दोनों
 नागों की आराधना करने लगे । तब वे दोनों महानाग
 शङ्कर के प्रभाव से देखते ही देखते शत्रुओं का नाश
 करनेवाले दिव्य धनुष और बाण वन गया ॥ १२ ॥ १४ ॥

तुरन्त ही प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने श्रेष्ठ
 प्रभा से युक्त धनुष बाण उठा लिया और लानर शङ्कर
 के आगे रख दिया । इसके उपरान्त शिव के पार्श्वभाग
 से पिङ्गललोचन तपोमूर्ति बलवान् नील लोहित एक
 ब्रह्मचारी प्रकट हुआ, जो कि शिव का ही दूसरा रूप
 था । उस ब्रह्मचारी ने वह श्रेष्ठ धनुष हाथ में लेकर,
 एकाग्रता के साथ लीक पैंतरे से खड़े होकर, विधिपूर्वक
 बाण चढ़ाकर धनुष की खींचा । अचिन्त्यपराक्रमी
 अर्जुन न ध्यान के साथ उसका धनुष पकड़ना, डोरी
 खींचना और पैंतरे से खड़े होना देखा और शिवजी
 के उच्चारण किय हुए अक्ष मन्त्र का स्मरण कर लिया
 ॥ १५ ॥ १८ ॥ महाबली प्रभु शङ्कर ने उस बाण को उसी
 सरोवर में छोड़ा और उसने पश्चात् वह धनुष भी
 उसी सरोवर में डाल दिया । स्थितिशाक्तिसम्पन्न अर्जुन ने
 शङ्कर की प्रसन्न देववर अपने अन्त कर्ण में, पहले

ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा ।
 वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ॥ २० ॥
 मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति ।
 तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद्धरं भवः ॥ २१ ॥
 तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम् ।
 ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥ २२ ॥
 संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत ।
 वयन्दत्तुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥
 अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन्भवेनाऽर्जुनकेशवौ ।
 प्रातौ स्वशिखिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ २४ ॥
 तथा भवेनाऽनुमतौ महासुरनिघातिना ।
 इन्द्राविष्णु यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकाक्षिणौ ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एवमर्जुनमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

यन में जो शङ्कर का दर्शन हुआ था और उन्होंने सन्तुष्ट होकर पाशुपत अस्त्र के माथ जो वर दिया था, उसे स्मरण किया और मन ही मन में कहा कि हे शङ्कर ! यह आपका दिया हुआ वर और दिव्य अस्त्र मुझे भी प्राप्त हो । अर्जुन के अन्तःकरण के भाव को जानकर अन्तर्यामी महर्षि ने प्रसन्नतापूर्वक पाशुपत अस्त्र के माथ ही यह वर दिया कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो ॥ १०, १२, १॥ दुर्धर्ष अर्जुन ने इस प्रकार शङ्कर से फिर दिव्य पाशुपत अस्त्र पाकर निश्चय कर लिया कि

हम कृतार्थ हो गये । अर्जुन के शरीर में उस समय आनन्द के मोर रोमाञ्च हो आया । इसके उपरान्त अर्जुन और कृष्ण चन्द्र दोनों ने परम प्रसन्न होकर देवा-दिदेव महादेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया । फिर दोनों ही, शङ्कर की अनुमति लेकर, प्रसन्नतापूर्वक यन्त्रे ही अपने शिखिर को लट्टि जैसे जम्भासुर के वध के लिए महासुरनाशक शङ्कर की अनुमति लेकर प्रसन्नचित्त इन्द्र और विष्णु अपने लोक को गये ॥ २१, २५ ॥

— ० —

द्रोणपात्र का इत्यामीर्षो अय्याय ममाम हुआ ॥ ८१ ॥

अथ दिशानिमोऽध्याय ॥ ८२ ॥

मन्त्रय उवाच तयोः संवदतोरेवं कृष्णदाम्कयोस्तथा ।
 साऽत्यगाद्रजनी राजद्रथ राजाऽन्वबुध्यत ॥ १ ॥
 पठन्ति पाणिम्वनिका मागधा मधुपर्किकाः ।
 वेतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥

वयामीर्षो अध्याय ॥ ८२ ॥

मन्त्रय कहने लगे—हे भरतपुत्र-निष्क ! पूर्वोक्त प्रकार से भविष्य और दारुण मागधी की कत्त हो रहा ही भी कि रात्रि स्थिति हो गई । प्रसन्न होकर ही मृत मगध-सैन्य अथ भुविगच्छ करने लगे-

शिव का प्रगने लगे । वैश्वदेव मृत आदि मातृ दे-देह प्रगनी मृत मने हुए पुरुषोत्तम प्रगनी की मृति मने लगे । मृत्यु कायें शक्ति मृत मने लगे और मने लगे मर मने लगे मने लगे,

नर्तकाश्चाऽप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः ।
 कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥
 मृदङ्गा झङ्गरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः ।
 आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥ ४ ॥
 एवमेतानि सर्वाणि तथाऽन्यान्यपि भारत ।
 वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधु शिक्षिताः ॥ ५ ॥
 स मेघसमनिघोषो महाञ्जशब्दोऽस्पृशद्विषम् ।
 पार्थिवप्रवरं सुसं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥
 प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महाहं शयनोत्तमे ।
 उत्थायाऽवश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७ ॥
 ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च ।
 स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥
 भद्रासनेषूपविष्टः परिधायाऽम्बरं लघु ।
 सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
 उत्सादितः कपायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः ।
 आप्लुतः साधिवासेन जलेन ससुगन्धिना ॥ १० ॥
 राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम् ।
 जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥
 हरिणा चन्दनेनाऽङ्गमुपलिप्य महाभुजः ।
 स्रग्वी चाऽङ्किष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ १२ ॥

जिनमें कुरुवंश की प्रशंसा और गुणों का वर्णन था ॥ १ ।
 ३॥ मृदङ्ग, झङ्गरा, भेरी, पणव, डङ्के, गोमुख, पटह,
 नगाड़े और शङ्ख आदि बाजे बजने लगे । चतुर और
 बाजे बजाने में निपुण पुरुष प्रसन्नचित्त होकर इन
 तथा अन्य बाजों को अच्छे ढँग से बजाने लगे । इन
 बाजों का मेघगर्जन-तुल्य भारी शब्द आकाशमण्डल
 में गूँज उठा । उससे निद्रागत राजेन्द्र युधिष्ठिर जाग
 पड़े ॥ ४ ॥ ६॥ महामूल्य उत्तम शय्या पर सुखपूर्वक निद्रा-
 गत राजा युधिष्ठिर उठकर प्रातःकाल के आवश्यक
 कार्यों से निवृत्त होने के लिए स्नानगृह में गये । तब
 श्वेत वस्त्र पहने, युवा, स्नान किये हुए एक सौ आठ
 स्नानकरानेवाले कर्मचारी लोग भरे हुए सुवर्ण के घड़े

लेकर धर्मराज की सेवा में उपस्थित हुए । लघु वस्त्र
 पहने हुए राजा युधिष्ठिर सुन्दर आसन पर बैठ गये ।
 स्नान करानेवालों ने चन्दन से सुगन्धित और मन्त्रों से
 अभिमन्त्रित करके खच्छ जल से उन्हें भलीभाँति स्नान
 कराया । बलवान् सुशिक्षित स्नानकरानेवालों ने कपाय
 ओपधियाँ से औटाये हुए जल से भलीभाँति मल-मल
 कर राजा को स्नान कराया । फिर केवड़े आदि के
 वसाये हुए सुगन्धित जल से उनका शरीर शुद्ध किया
 गया ॥ ७ ॥ १०॥ इसके पश्चात्, जल सुखाने के लिए,
 महाराज युधिष्ठिर ने सिर पर राजहंस के समान श्वेत
 पगड़ी लपेट ली । सप्त अङ्गों में हरिचन्दन और अङ्ग-
 राग लगकर, माल्य पहनकर, नखीन वस्त्र धारण करने

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः ।
 तत्राऽग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३ ॥
 समिद्धिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा ।
 मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम यहात्ततः ॥ १४ ॥
 द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः ।
 ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद्व्राह्मणर्षभान् ॥ १५ ॥
 दान्तान्वेदव्रतस्नातान्सनातानवभृथेषु च ।
 सहस्रानुचरान्सौरान्सहस्रं चाऽष्ट चाऽपरान् ॥ १६ ॥
 अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः ।
 तान्द्विजान्मधुसर्पिभ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥ १७ ॥
 प्रादात्काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः ।
 अलंकृतं चाऽश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १८ ॥
 तथा गाः कपिला दोग्ध्रीसवत्साः पाण्डुनन्दनः ।
 हेमशृङ्गा रौप्यखुरा दत्वा तेभ्यः प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥
 खस्तिकान्वर्धमानांश्च नन्धावर्ताश्च काञ्चनान् ।
 माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥ २० ॥
 पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा ।
 खलंकृताः शुभाः कन्या दधितर्पिर्मधूदकम् ॥ २१ ॥
 मङ्गल्यान्पक्षिणश्चैव यज्ञाऽन्यदपि पूजितम् ।
 दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो ब्राह्मणं कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥ २२ ॥

महाबाहु युधिष्ठिर महाचार व अनुमार पूरमुख हो
 हाथ जोड़कर गायत्री का जाप करने लगे । अब वे
 अग्निहोत्रशाला में, जहाँ अग्निदेव प्रज्ज्वलित हो रहे थे,
 विनीत भाव से गये । यहाँ मन्त्र पढ़कर लक्षियों
 और गायत्री आहुतियों में अग्नि की आगधना करके
 वे बाहर निकले ॥ १३ ॥ १४ ॥ अग्निरुप दूधरा दत्त ने
 जाकर पुरुरहित युधिष्ठिर ने यदवायी, घृष्ट, जिन-
 दिष्ट, वेदनाम्नान, यज्ञान्त में अनेक वाग आशुय
 भान किये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों के दर्शन किये । यहाँ
 युधिष्ठिर के माथे गदा रहनेवाले मूर्खोंसमक एक
 महान और अन्य आठ महान ब्रह्मण उपस्थित थे ।
 १५ ६ ६, श्री, मङ्गल-कायों में काम आनेवाले श्रेष्ठ दत्त,

अक्षत, फल, दूध आदि मासिक पदार्थों में ब्राह्मणों
 के द्वारा खस्तिपाठ कराने प्रत्येक ब्राह्मण की उल्लेख
 एक एक निष्क सुवर्ण दक्षिणा दी और उनकी प्रद-
 क्षिणा की । इसके अनतिरिक्त उन्हें आभूषणों में अ-
 द्युत एक भी घोड़े, उत्तम वस्त्र, अतिरिक्त दक्षिणा,
 बटखों सहित ऐसी दूधार करिगा गऊएँ दीं, जिनके
 गीम सुवर्ण में और गुर चोटी में मँडे हुए थे । इसके
 पश्चात् खस्तिक निहयुक्त पात्र, रुचक, सुवर्ण के
 मण्डुलित आर्धशत, माता, जन्म के भरे हुए घड़े, प्रज-
 न्ति अग्नि, अधस्तुत गाय, रुचक (एक प्रकार का
 नींबू), रोचना, पण्डरी प्रसार अन्दरून शुभकर्मिणी
 कन्या, दही, घी, माह, जल, मङ्गलदायी पत्थी तथा

ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः ।
 सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥ २३ ॥
 परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदमृद्धिमत् ।
 विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजन्तुर्वरासनम् ॥ २४ ॥
 तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः ।
 उपाजन्तुर्महाहर्षाणि प्रेम्णाः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥
 मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
 रूपमासीन्महाराज द्विपतां शोकवर्धनम् ॥ २६ ॥
 चामरैश्चन्द्रशम्याभैर्हैमदण्डैः सुशोभनैः ।
 दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २७ ॥
 संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
 उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥ २८ ॥
 ततो मुहूर्तादासीत्तु स्यन्दनानां खनो महान् ।
 नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २९ ॥
 ह्लादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
 नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ ३० ॥
 ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः ।
 शिरसा वन्दनीयं तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥
 कुण्डली वद्धनिखिंशः सन्नद्धकवचो युवा ।
 अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्यो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥

अन्य पूजनीय पदार्थों को देखकर और छकर राजा
 युधिष्ठिर बाहर की व्योम्नी में आये ॥ २० ॥ २१ ॥
 उनके परिचारकों ने सुवर्ण का सर्वतोभद्र सिंहासन
 लाकर रग दिया । उस दिव्य सिंहासन की विश्व-
 कर्मने बनाया था । उस पर कोमल बहुमूल्य विछाना
 बिछा हुआ था । जिस पर श्वेत रत्न की चादर पड़ी
 हुई थी । मोती, मणि, वैदूर्य आदि बहुमूल्य रत्न उसमें
 जड़े हुए थे । उस सिंहासन पर जब युधिष्ठिर बैठे
 तब अनुचरगण श्वेत बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण ले
 आये । वस्त्र और आभूषण पहन लेने पर युधिष्ठिर
 का रूप शत्रुओं के शोक की वदनेवाला देग पड़ा ॥ २३ ॥ २४ ॥
 अश्वत्थामा चन्द्रकिरण-सदृश, सुवर्णदण्ड-

युक्त, बहुमूल्य सुन्दर चामर डुलाने उनकी सेवा
 करने लगे । उस समय वे चमकती हुई बिजलियों
 से शोभित मेष के समान जान पड़ने लगे । स्त-
 गण स्तुति करने लगे, वन्दीजन वन्दनागान गाने लगे
 और गीत गन्धर्व गंधर्व गीत गाकर उन्हें प्रमत्त करने
 लगे । क्षण भर तक वन्दीजनों का शब्द गुंजता रहा ।
 इसके पश्चात् रथों की घरघराहट, घोड़ों की टापों
 की आवाज, हाथियों के घण्टों का शब्द, शङ्खनाद
 और मनुष्यों के शब्दों का शब्द ऐसा हुआ कि उगम
 वहाँ की पृथ्वी मानों काँप उठी ॥ २७ ॥ २८ ॥
 दोधूय देर के पश्चात् सुमण्डल-मण्डित, कमर में तलवार लटकाये
 हुए, कवचधारी, नयनवक्त्र द्वारा राजा ने यहाँ आ कर

न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने ।
 सोऽब्रवीत्पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनेव माधवम् ॥ ३३ ॥
 अर्घ्यं चैवाऽऽसनं चाऽस्मै दीयतां परमार्चितम् ।
 ततः प्रवेश्य वाष्णोयमुपवेश्य वरासने ॥ ३४ ॥
 पूजयामास विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

के घुटने टेककर बन्दनीय युधिष्ठिर को प्रणाम करके निवेदन किया कि हे महाराज ! महामा वासुदेव यहाँ पधार हैं । पुरुषसिंह युधिष्ठिर ने कहा—उनका स्वागत करो और उनको श्रेष्ठ आसन लाकर दो ।

जब श्रीकृष्णको भीतर लाकर श्रेष्ठ आसन पर बिठाया गया तब युधिष्ठिर ने उनका सत्कार किया । श्रीकृष्ण ने भी धर्मराज का सत्कार किया ॥ ३१ ॥ ३५ ॥

—०—

द्रोणपर्व का वयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८२ ॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच—ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम् ।
 उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १ ॥
 सुखेन रजनी व्युष्टा कञ्चित्ते मधुसूदन ।
 कञ्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाऽच्युत ॥ २ ॥
 वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छयुधिष्ठिरम् ।
 ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३ ॥
 अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम् ।
 विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥
 चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम् ।
 शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥ ५ ॥
 युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम् ।
 युधामन्युं सुबाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥
 एते चाऽन्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
 उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चाऽऽसने शुभे ॥ ७ ॥

तिगमीगो अध्याय ॥ ८३ ॥

सञ्जय कहते हैं कि युधिष्ठिर ने अभिनन्दन करके कहा । हे श्रीकृष्ण ! रात्रि को कुछ कष्ट तो नहीं हुआ ! आपकी शान्तिस्थिती तो ठीक है । श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर से कुछ प्रश्न करके कहा—हे सोम्य ! आपने दर्शनों से मैं प्रसन्न हो गया हूँ । हे महाराज !

इसी समय द्वारपालने आकर निवेदन किया कि महाराज के दर्शनों के लिए सब सुन्दर आये हुए हैं । युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर वह द्वारपाल उन लोगों को ले आया । राजा विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज, युयुत्सु, महारथी राजा द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, मह-

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ ।
 कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८ ॥
 ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम् ।
 अब्रवीत्पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ९ ॥
 एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवाऽमराः ।
 प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥
 त्वं हि राज्यविनाशं च द्विपद्भिश्च निराक्रियाम् ।
 क्लेशांश्च विविधान्कृष्ण सर्वास्तानपि वेद नः ॥ ११ ॥
 त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल ।
 सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥
 स तथा कुरु बाष्पेय यथा त्वयि मनो मम ।
 अर्जुनस्य यथा सत्या प्रणिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ १३ ॥
 स भवांस्तारयत्वस्माद्दुःखामर्षमहार्णवात् ।
 पारं तितीर्षतामद्य ह्रवो नो भव माधव ॥ १४ ॥
 नहि तत्कुरुते संख्ये रथो रिपुबधोयतः ।
 यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥
 यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीजनार्दन ।
 तथैवाऽस्मान्महाबाहो वृजिनात्त्रातुमर्हसि ॥ १६ ॥
 त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान्पाण्डवान्कुरुसागरे ।
 समुद्धर प्लवो भूत्वा शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥

देव, चेवितान, केविय देश के राजा, कौरव युयुत्सु,
 पाश्चात्तनय उत्तर्माजा, सुबाहु, युधामन्यु और द्रौपदी
 के पाँचों पुत्र तथा अन्य अनेक सुहृद युधिष्ठिर के
 समीप आये। उन्होंने सबको बैठने की आज्ञा दी।
 वे लोग युधिष्ठिर को यथायोग्य प्रणाम करके यथोचित
 बहुमूल्य आसनों पर बैठ गये॥१॥आमहाबली श्रीकृष्ण
 और मात्यकि दोनों एक ही आसन पर बैठे। अतः उन
 सबको सुनाकर राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित
 करके, मधुर स्वर में कहा—हे कृष्णचन्द्र ! मम देवता
 जैमे इन्द्र के आश्रित हैं, यैमे ही हम लोग एक आपका
 ही आश्रय लेकर युद्ध में विजय और सुख चाहते हैं॥८॥
 १०॥आप भरी भौति जानते हैं कि शत्रुओं ने किम

प्रकार हमारा राज्य छीन लिया, अपमान किया, हमें
 वन की भेज दिया और हमने कैसे-कैसे क्लेश प्राप्त
 किये हैं। हे सर्वके ईश्वर ! हे भक्तवत्सल ! हे मधु-
 सूदन ! हमारे सब सुख और हमारी स्थिति सब आपके
 ही ऊपर निर्भर है। सो अब आप ऐसा उपाय कीजिए,
 जिसमें अर्जुन की जयद्रथ-रथ की प्रणिज्ञा पूर्ण हो
 और मेरे हृदय में आपकी भक्ति अटल बनी रहे। हे
 श्रीकृष्ण ! आप नौकास्वरूप होकर हम दुःख और
 क्रोध के महासागर में हमें पार लगाइए॥११॥१२॥
 युद्ध में तत्पर रथी भी वह कार्य नहीं कर सकता जो
 आप, मात्स्यी वनकर, कर रहे हैं। हे जनार्दन ! यैमे
 आप सब आश्रितों में बाढ़ों की रक्षा करने के योग्य

नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन ।
 विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ १८ ॥
 नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम् ।
 वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत्सत्यं कुरु माधव ॥ १९ ॥
 इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि ।
 तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २० ॥
 तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ।

सामरेण्यपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः
सामान्यधरः कश्चिद्यथा पार्थो धनञ्जयः ॥ २१ ॥

वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः ।
 शरासनधरः काश्चिद्यथा पादो यमलोचनः ॥ २३ ॥

वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तिं महद्विदुः
युद्धशौण्डः सदाऽमर्षी तेजसा परमो नृणाम् ॥ २२ ॥

स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः
॥ २३ ॥

स युवा वृषभस्कन्धा दीपयानु ॥ २३ ॥
सिंहर्षभगतिः श्रीमान्द्रिपतस्त हनिष्यति
विजिह्वन्महा कन्वीसत्वोर्जनः ।

अहं च तत्करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः । ॥ २४ ॥

अहं च तत्कारण्यामि यथा कुतस्तु ॥ २४ ॥
धार्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धृष्टद्युम्नसि त्रिविन्ध्यतटे ॥

अथ तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम् ।
॥ ३५ ॥

अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्यतेऽर्जुनः ॥ २५ ॥

अपुनर्दर्शनं मागामपुमिः क्षत्स्यताऽपुनः ।
तस्याऽयं गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा ।

तस्याऽयं गृध्राः श्येनाश्च चण्डगानादिवत्तानि ।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चाऽन्ये पुरुषादकाः ॥ २६ ॥

यद्यस्य देवा गोक्षारः सेन्द्राः सर्वे तथाऽप्यसौ ।
अक्षयिष्यन्ति मासान् यं चाऽन्य उरुसदृशः ॥ ३७ ॥

राजधानीं यमस्याऽथ हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २७ ॥

हो इस मद्ध में हमारी रक्षा कीजिए । हे महाबाहू !
हे शङ्ख-चक्र-महाधर ! हम लोग नौका हीन अथाह
कौरव-सागर में डूब रहे हैं, आप नौकालम्प होकर
उभरें हमें उबारिए । हे देवेन्द्र ! हे ईश ! हे मना-
तन ! हे मंदार करनेवाले ! हे शिष्य ! हे शिष्य !
हे देव ! हे वृष्ण ! हे बभ्रुवर्ध ! हे पुत्रोत्तम ! आपकी
प्रणाम है । देखिए नाद में मे तुन चुका है कि आप
पुमान नारायण करि है, वर के देनेवाले है, साक्ष
भुवर भाएल करनेवाले शिष्य हैं और सेठ है । मैं
आप नाद के कथन को सदा कीजिए ॥ १५ ॥
महा के काय मुष्टि के दो कहेन पर मेमनेन
सदस मीनरी मरयेन अं वृण कहेन मने — हे शत्रुघ्न !

देवताओं सहित तीनों लोकों में अर्जुन के समान धनु-
र्धर योद्धा दूसरा नहीं है। ये वीरगान्ध, अश्वारू-
कमी, महाप्रवी, युद्धनिपुण, कौपी और तेजस्वी हैं।
वृषभकण्ठ, महाबाहू, महाप्रवी, मित्र और भीम के
समान चरित्रवाले अर्जुन अत्यन्त आदर के शत्रुओं को
मारोगे॥२॥०१॥३॥में बड़ी उपाय करेगा जिसमें भी-
शेष अर्जुन दुर्गोष्ठन की मना को उम्मी प्रसार में नष्ट
करेगा जिस प्रकार में अग्नि स्थान के देव को भय
कर देनी है। अर्जुन आज अपने बानों में उस सुत,
पारी, अभिमन्यु की मृत्यु के मृत-संग, जयद्रथ को
उम्मी मर्ग में भेजे जिसमें कोई संदेह नहीं होगा।
आज उम्मीक लम्ब की मित्र, वरु, और भीम मर-

निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति ।

विशोको विज्वरो राजन्भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्राकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

मास-भोजी अन्य पिशाच राक्षस आदि अशुभ भक्षण करेंगे ॥ २४ ॥ २६ ॥ यदि आज इन्द्र आदि सब देवता भी मिलकर जयद्रथ की रक्षा करेंगे तो भी वह दुर्मति

अशुभ मारा जायगा । आज दुष्ट जयद्रथ को मारकर अर्जुन आपसे मिलेंगे । आप शोक और सन्ताप त्यागकर शान्त हों ॥ २७ ॥ २८ ॥

द्रोणपर्व का तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८३ ॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

सञ्जय उवाच—तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद्धनञ्जयः ।

दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥

तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्ध्याऽग्रतः स्थितम् ।

तमुत्थायाऽर्जुनं प्रेम्णा सखजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥

मूर्ध्नि चैनमुपाधाय परिष्वज्य च बाहुना ।

आशिपः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान् ।

यादृशूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥

तमब्रवीत्ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।

दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥

ततस्तत्कथयामास यथादृष्टं धनञ्जयः ।

आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ॥ ६ ॥

ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।

नमस्कृत्य वृषाङ्गाय साधु साध्वित्यथाऽब्रुवन् ॥ ७ ॥

अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।

त्वरमाणाः सुसन्नद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥

चौरासीवाँ अध्याय ॥ ८४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज । इस प्रकार युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण की बातचीत हो ही रही थी कि इसी समय सुहृदों सहित राजा युधिष्ठिर के दर्शन करने के लिए अर्जुन वहाँ पर आए । उस दृष्टि में प्रवेश कर, प्रणाम करके, सम्मुख खड़े हुए अर्जुन को युधिष्ठिर ने आसन से उठकर प्रेमपूर्वक छाती में लगा लिया । फिर आशीर्वाद देकर, उनका सम्मान मूर्धन्य, हस्त

द्वय धर्मशान्ति करने लगे — हे भाई अर्जुन ! आज सामान में अशुभ तुम्हें भारी रिजब प्राप्त होगी ; क्योंकि तुम्हारे मुख की कान्ति ऐसी ही उज्ज्वल है और श्रीकृष्ण भी तुम पर अत्यन्त ही प्रसन्न हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
 हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥
 रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
 जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ।
 तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ॥ १० ॥
 रथं रथवरस्याऽऽजौ वानरर्षभलक्षणम् ।
 स मेघसमनिर्घोषस्तसकाञ्चनसप्रभः ॥ ११ ॥
 वभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद्यथा ।
 ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः ॥ १२ ॥
 कृताहिकाय पार्थाय न्यवेदयत् तं रथम् ।
 तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ॥ १३ ॥
 चापवाणधरो बाहं प्रदक्षिणमवर्तत ।
 तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ॥ १४ ॥
 स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ।
 जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ॥ १५ ॥
 अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ।
 स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ॥ १६ ॥
 विवभौ विमलोऽर्चिष्मान्मेराविव दिवाकरः ।
 अन्वारुहतुः पार्थ युयुधानजनार्दनौ ॥ १७ ॥

दृश्य देखा है । [सज्जय वहते हैं कि हे महाराज !]
 अब अपने सुहृदों के आश्रयन के लिए रात्रि का वह
 सत्र वृत्तान्त अर्जुन ने कह सुनाया, जिस प्रकार वे
 शिर से जाकर मिले थे और उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त
 किया था । यह वृत्तान्त सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य
 हुआ । सबने सिर झुकाकर शङ्कर को प्रणाम किया
 और अर्जुन को साधुगद देकर हर्ष प्रकट किया ॥ १७ ॥
 इसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने सब भई वन्धुओं को
 युद्ध-यात्रा करने की आज्ञा दी । वे लोग शीघ्रनापूर्वक
 सुसज्जित होकर प्रसन्नता के साथ युद्ध करने के लिए
 चल दिये । महावीर सायकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन—
 युधिष्ठिर को प्रणाम करके—हर्ष और उत्साह के साथ
 उम भयन से बाहर निकले । वीर सायकि और कृष्ण—

चन्द्र जी एक ही रथ पर बैठकर अर्जुन के डेरे पर
 पहुँचे ॥ ८१ ॥ यहाँ पहुँचकर शास्त्र के जाननेवाले श्री-
 कृष्ण ने अर्जुन के, मानरचिह्नयुक्त ध्वजा से अलङ्कृत,
 श्रेष्ठ रथ को तैयार किया । मेघ के समान गम्भीर शब्द
 करनेवाला, तपे हुए सुवर्ण की सी कान्ति से युक्त,
 सुमज्जित वह श्रेष्ठ रथ बालसूर्य के ममान शोभा देने
 लगा । अर्जुन जब सत्र नित्य कृत्य कर चुके तब श्री-
 कृष्ण ने उनके मर्मीप जाकर कहा—हे अर्जुन ! ध्वजा-
 पताका युक्त तुम्हारा रथ तैयार है ॥ १० ॥ १३ ॥ अब महा-
 वली अर्जुन ने सुवर्ण-रथ और किरीट पहना, धनुष-
 वाण लिया, रथ की प्रदक्षिणा की और तब वे उस
 पर सवार हुए । उम समय तप किया और अग्रया
 । मे वृद्ध, कर्मकाण्डी, सदाचारी, जितेन्द्रिय ब्राह्मण लोग

शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ।
 अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन् रश्मिर्विदां वरः ॥ १८ ॥
 मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ।
 स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ॥ १९ ॥
 सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन्यथा शशी ।
 सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ॥ २० ॥
 सहाऽम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ।
 ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ॥ २१ ॥
 प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ।
 सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधानिःस्वनः ॥ २२ ॥
 युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ।
 तमनु प्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ॥ २३ ॥
 ववौ संहर्षयन्पार्थं द्विपतश्चाऽपि शोषयन् ।
 ततस्तस्मिन्क्षणे राजन्विबिधानि शुभानि च ॥ २४ ॥
 प्रादुरासन्निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
 पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष्य ॥ २५ ॥
 दृष्ट्वाऽर्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
 युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥
 युयुधानाऽद्य युद्धे मे दृश्यन्ते विजयो ध्रुवः ।
 यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

स्तुतिपूर्ण जयमूचक आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन करने लगे । श्रेष्ठ रथी अर्जुन उस विजयदापन और युद्धमन्त्रों से अभिमन्त्रित सुवर्णमय रथ पर बैठकर सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्थित सूर्यनारायण के समान अर्पित शोभा को प्राप्त हुए ॥ १३१ ॥ आशर्वाति के यज्ञ में आते हुए इन्द्र के साथ जैसे अधिनीषुमार गये थे वैसे ही अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण और मायि भी रथ पर मगधर हुए । युद्धासुर के रथ के लिये जाने समय मानत्रि ने जैसे इन्द्र के घोड़े की राम पकड़ा थी वैसे ही सारणी के कार्य में चतुर महा मायि कृष्ण ने भी अर्जुन के घोड़े की राम हाथ में ली । चन्द्रमा जैसे अँधेरे का नाश करने वाला शुभ और शुक्र के साथ जाने

हैं, अथवा इन्द्र जैसे तारक असुर के समग्र में वरण और सूर्य के साथ गये थे, वैसे ही शत्रुनाशन वीर अर्जुन, जयद्रथ-वध के लिये सार्वत्रिक और श्रीकृष्ण के साथ भी रथ पर बैठकर रणक्षेत्र को चले ॥ १७॥ १९॥ वाजे उज्ज्वल लग, माङ्गलगीतों और स्तुतियों का पाठ किया जाने लगा । माग्यों और मूला के स्तुतिपाठ का शब्द, जयशब्द, आशीर्वाद, पुण्याह-पाठ आदि का शब्द, पक्ष होकर उन गीतों की प्रमत्तता और उन्माद को बढ़ाने लगा । उस समय पवित्र सुगन्धित अनुकूल वायु पाण्डवों को प्रमत्त और उनके शत्रुओं को शोकाकुल पुण्य कर्मे लगा । इससे 'इन्द्र' । उस समय पाण्डवों की विजय के सूचक, और वीरता के लिये उमंग पैदा करने, शक्ति

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
 वियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥
 यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
 तथैव सुमहत्कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥
 स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
 यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत्तथा ॥ ३० ॥
 न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत् ।
 वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥
 त्वयि चाऽहं पराश्वस्तः प्रशुभ्रे वा महारथे ।
 शक्तयुगं सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२ ॥
 मय्यपेक्षा न कर्त्तव्या कथञ्चिदपि सात्वत ।
 राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥ ३३ ॥
 नहि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
 किञ्चिद्व्यापद्यते तत्र यत्राऽहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
 एवमुक्तस्तु पाथेन सात्यकिः परवीरहा ।
 तथेत्युक्त्वाऽगमत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ समाप्तं प्रतिज्ञापर्व ।

सगुन दिखाई पड़ने लगे ॥ २१२५ ॥ अपने दक्षिण ओर
 विजयसूचक सगुन देखकर अर्जुन ने महाधनुर्धर सात्य-
 कि से कहा—हे युयुधान ! मुझे इस समय जो शकुन
 देख पड़ते हैं, उनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि आज
 के युद्ध में मेरी विजय अश्वय होगी । अब मैं वहाँ
 जाता हूँ जहाँ सिंधुराज यमलोक को जाने के लिए मेरे
 पराक्रम की प्रतीक्षा कर रहा है ॥ २६१२८ ॥ किन्तु जय-
 द्रथ का वध करना जैसे मेरा आवश्यक कर्तव्य है,
 वैसे ही धर्मराज की रक्षा करना भी है । इसलिए आज
 तुम धर्मराज की रक्षा करो; यह कार्य मैं तुमको सौंपता
 हूँ । इसमें सन्देह नहीं है कि मेरे ही समान तुम भी

उनकी रक्षा कर सकोगे । तुम श्रीकृष्ण के समान परा-
 कर्मी हो, साक्षात् इन्द्र भी तुमको युद्ध में परास्त नहीं
 कर सकते ॥ २९१३१ ॥ महारथी प्रशुभ्र या तुम यदि
 महाराज युधिष्ठिर की रक्षा का काम अपने ऊपर ले
 लो तो फिर मैं निश्चिन्त होकर जयद्रथ को मार दूँगा ।
 मेरे लिए तुम कुछ चिन्ता न करना । मेरे रक्षक श्री-
 कृष्ण हैं । तुम सब प्रकार से धर्मराज की ही रक्षा
 करना । जहाँ मेरे साथ महाबाहू श्रीकृष्ण हैं वहाँ
 किसी प्रकार की निपत्ति नहीं आ सकती । अर्जुन
 के यों कहने पर शत्रुदमन यादवश्रेष्ठ सात्यकि युधिष्ठिर
 के समीप चले गये ॥ ३२१३५ ॥

द्रोणपर्व का चौदासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८४ ॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच - श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
 अभिमन्यौ हते तत्र के वाऽयुद्धवन्त मामकाः ॥ १ ॥

विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
 अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ॥ ११ ॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते ।
 द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ॥ १२ ॥
 वितण्डालापसंछापैर्दुतवादित्रवादितैः ।
 गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥ १३ ॥
 उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
 सूत तस्य गृहे शब्दो नाऽद्य द्रौणेयथा पुरा ॥ १४ ॥
 द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्त्तकाश्च ये ।
 अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥
 विन्दानुविन्दयोः सायं शिविरे यो महाध्वनिः ॥ १६ ॥
 श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेङ्गसु ।
 नित्यं प्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान् ॥ १७ ॥
 नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ।
 ससतन्तुन्वितन्वाना याजका यमुपासते ॥ १८ ॥
 सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ।
 ज्याघोपो ब्रह्मघोपश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ ॥
 द्रोणस्याऽऽसीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् ।
 नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत्स्वनः ॥ २० ॥

नहीं सुन पड़ता । महाधनुर्धर आरंभे पुरों के परम
 सहायक अश्वत्थामा के घर में सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय
 और वैश्य शिष्य बने हुए रहते थे । वितण्डा (अपना
 पक्ष स्थापित न करके दूसरे के पक्ष पर आक्षेप करना)
 आलाप (भाषण), सलाप (दो मनुष्यों की परस्पर
 बात-चीत), द्रुतगति से बाजे बजाकर और मनोहर
 गीत गाकर लोग दिन रात उनकी सेवा किया करते
 थे । बहुत से कौरव, पाण्डव और यादव उनकी उपा-
 सना किया करते थे । उन अश्वत्थामा के भजन में भी
 आज पहले का सा मनोहर मधुर शब्द नहीं सुन पड़ता
 ॥ ११ ॥ शिष्या अश्वत्थामा के यहाँ जो नृत्य करने
 गाने वाले सदा रहते थे उनका भी शब्द आज नहीं
 सुन पड़ता । विन्द और अनुविन्द के शिविर में तथा

जेनेयराजकुमारों के भजन में सायङ्काल को नित्य जो
 महाध्वनि सुन पड़ती थी वह आज नहीं सुन पड़ती । उनके
 यहाँ नित्य आनन्दित मनुष्यों का कोलाहल और नृत्य-
 करने गाने वालों के ताल और गीत की ध्वनि जो सुन
 पड़ती थी, उसका आज कहीं पता नहीं । सौमदत्त
 के पुत्र श्रुतनिधि के घर में पहले यज्ञ करने वाले याज्ञिक
 सदा उपस्थित रहते थे, किन्तु आज यहाँ उनका शब्द
 नहीं सुनाई पड़ता ॥ १५ ॥ महात्मा द्रोणाचार्य के
 भजन में नित्य जां वेद पाठ का शब्द, प्रत्यक्षा की
 ध्वनि, तोमर-खड्ग आदि अस्त्रों की झनझार और रथों
 की घरघराहट सुन पड़ती थी, वह आज नहीं सुन
 पड़ती । वहाँ अनेक देशों से आये हुए लोग नाना
 प्रकार के गीत गाने और बाजे बजाते थे । आज वह

वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ।
 यदाप्रभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छन्नार्दनः ॥ २१ ॥
 आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ।
 ततोऽहमंत्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ २२ ॥
 वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।
 कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनाऽतिगाः ॥ २३ ॥
 शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम् ।
 हितार्थमभिजल्पन्तं न तवाऽस्ति रणे जयः ॥ २४ ॥
 प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषमं सर्वधन्विनाम् ।
 अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नाऽन्वपद्यत ॥ २५ ॥
 ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
 अन्ववर्त्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २६ ॥
 न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति ।
 सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७ ॥
 शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
 अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति सञ्जय ॥ २८ ॥
 एतेषां मतमादाय यदि वर्त्तत पुत्रकः ।
 सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥ २९ ॥
 श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिवन्धुप्रियंवदाः ।
 कुलीनाः संमताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ३० ॥

शब्द भी नहीं सुन पड़ता है । हे सञ्जय ! महात्मा श्रीकृष्ण जिस समय उपप्लव्य नगर से, शान्ति की इच्छा से, सत्र प्राणियों के कल्याण के निमित्त सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये थे उस समय मैंने मन्दगति दुर्योधन से कहा था कि "हे दुर्योधन ! इस समय श्रीकृष्ण के द्वारा पाण्डवों से सन्धि कर ले । मेरी गति से सन्धि करने का यहाँ ठीक अवसर है, इस अवसर को हाथ से न जाने दो । मेरी बात को स्वीकार कर ले । शान्ति के लिए प्रार्थना करनेवाले श्रीकृष्ण का कष्ट न मानेगि, तो हित के लिए वे जो उपदेश कर रहे हैं उसे टाल दोगे, तो युद्ध में किसी प्रकार तुम्हें जय नहीं प्राप्त हो सकेगा" ॥१९१२॥दि

सञ्जय ! सन्धि करने के निमित्त मैंने इस प्रकार बारम्बार दुर्योधन से अनुरोध किया—किन्तु उस दुर्मति ने काल-वश होकर मेरी बात टालकर, कर्ण और दुःशासन के कहने के अनुसार, श्रीकृष्ण को नाहीं कर दी । मैं, बुद्धिमान् विदुर, द्रोण, गार्गीय, जयद्रथ, मोम-दत्त, नितामह भीष्म, अश्वत्थामा, शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, धर्मा मा इत्याचार्य तथा अन्य हमारे बुद्धिमान् भाई वन्धु सभी ने जुए का विरोध किया था ॥२५॥२६॥ यदि इन सब हितैषियों की और मेरी सम्मति की मेरा पुत्र दुर्योधन मान लेता तो [कभी यह कुट क्षय न होता;] यह बहुत समय तक जीवित रहकर राज्य भोगता । उसने, इष्ट-मित्र भी

धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
 प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥
 अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च ।
 तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३२ ॥
 वियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि ।
 सन्ति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३३ ॥
 शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः ।
 द्रोणस्याऽथ विकर्णस्य बाह्लीकस्य कृपस्य च ॥ ३४ ॥
 अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम् ।
 त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते ॥ ३५ ॥
 कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान्ब्रूयादतोऽन्यथा ।
 कृष्णो न धर्मं सञ्छात्यसर्वे ते हि तदन्वयाः ॥ ३६ ॥
 मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम् ।
 नाऽन्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
 इत्यहं विलपन्सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान् ।
 न च मे श्रुतवान्मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ३८ ॥

आनन्द करते । मैं बारम्बार समझार दुर्बोधन से कहा था कि हे पुत्र ! पाण्डव लोग सरलहृदय, मधुरभाषी, अपने जातिगालों और माइयों से प्रिय वचन बोलनेवाले, कुलीन, मिलकर चलनेवाले और बड़े प्राज्ञ हैं; उन्हें सुख प्राप्त होगा । जो पुरुष धर्म पर दृष्टि रखता है वह इस लोक में सर्वत्र सुख भोगना है और मरने पर परलोक में भी उसमें शान्ति और कल्याण प्राप्त होता है ॥ २९, ३१ ॥ हे पुत्र ! धर्मात्मा पाण्डव जो बात स्वीकार कर लेंगे उसे कदापि मिथ्या नहीं करेंगे । उन्हें भी यह राज्य प्राप्त होना चाहिए । यह समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी, तुम्हारे ही समान, उनके भी पिता पिता-मह की है । इस पर तुम्हारा और उनका एक सा अधिकार है । [यदि तुम्हें यह शङ्का हो कि राज्य प्राप्त होने पर शक्तिशाली होकर पाण्डव तुम्हारा राज्य छीन लेंगे, तो तुम्हारी यह शङ्का निर्मूल है ।] पाण्डव लोग धर्म को नहीं छोड़ सकते । मेरे सजातीय वृद्धजन ऐसे हैं कि जिनका बड़ा पाण्डव सुनें और मानेंगे ।

शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोण, विकर्ण, बाह्लीक, इषाचार्य तथा भरतवश के अन्य सब श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे हित के निमित्त पाण्डवों से जो कुछ कहेंगे उसे पाण्डव स्वीकार कर लेंगे । पूर्वोक्त पुरुषों में से तुम ऐसा किसे समझते हो, कि वह तुम्हारे हित के विरुद्ध कार्य करने के लिए पाण्डवों से अनुरोध करेगा ? ॥ ३२, ३५ ॥ फिर श्रीकृष्ण तो काभी धर्म को छोड़ने के नहीं । पाण्डव-गण उन्हीं के अनुयायी हैं । तुम धर्मपूर्वक, श्रीकृष्ण के कहने से, पाण्डवों को उनका राज्य दे दो और यह शङ्का छोड़ दो कि राज्य प्राप्त करके बली पाण्डव अधिक शक्तिशाली हो जायेंगे और मेरा भी राज्य छीन लेंगे । पाण्डव धर्मात्मा हैं, वे मेरी बात स्वीकार कर लेंगे — जो स्वीकार कर लेंगे उसके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे । हे सज्जन ! मैंने विलप करते-करते इस प्रकार दुर्बोधन से बारम्बार कहा था; किन्तु यह मूढ़ तो काल के बश हो रहा था; इसी से उसने मेरी बात नहीं सुनी । अब-एव मुझे स्पष्ट जान पड़ रहा है कि इस घोर सपना

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः ।
 उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥ ३९ ॥
 धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्पः शिखण्डी चाऽपराजितः ।
 अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥ ४० ॥
 चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः ।
 द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४१ ॥
 यमौ च पुरुपव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः ।
 क एताञ्जातु युध्येत लोकेऽस्मिन् नै जिजीविषुः ॥ ४२ ॥
 दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान्प्रसहेद्वा परान्मम ।
 अन्यो दुर्योधनारकर्णाच्छकुनेश्चापि सौवलात् ॥ ४३ ॥
 दुःशासनचतुर्थानां नाऽन्यं पश्यामि पञ्चमम् ।
 येषामभीषुहस्तः स्याद्विष्वक्सेनो रथे स्थितः ॥ ४४ ॥
 सन्नद्धश्चाऽर्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः ।
 तेषामथ विलापानां नाऽयं दुर्योधनः स्मरेत् ॥ ४५ ॥
 हतौ हि पुरुपव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै ।
 तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शनात् ॥ ४६ ॥
 दृष्ट्वा फलनिर्वृतिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
 सेनां दृष्ट्वाऽभिभूतां मे शौनेयेनाऽर्जुनेन च ॥ ४७ ॥
 शून्यान् दृष्ट्वा रथोपस्थानमन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
 हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८ ॥

मैं हमारे पक्ष का कोई भा जीवित नहीं उच सन्ता ॥ ३६।३८॥ जिस पक्ष म भागसेन, अर्जुन, यादव श्रेष्ठ
 बार सात्यकि, दुर्धर्ष धृष्टद्युम्न, अपराजित शिखण्डा,
 पाञ्चालकुमार उत्तमाजा, दुर्जय युवामयु, अश्मक, केकेय,
 सौमक के पुत्र क्षत्रधर्मी, चेदिराज, चेचितान, काश्य
 के पुत्र अभिभू, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, राजा विराट,
 महारथी द्रुपद, पुरुपसिंह नकुल और सहदेव आदि
 योद्धा हैं और सम्मति देनेवाले सहायकमाशात् कृष्णचन्द्र
 हैं, उस पक्ष का विरुद्ध — युद्ध में जाने का इच्छा रखने
 वाला—कोन पुरुष खड़ा हो सन्ता ह १ दिव्य अश्वों
 का प्रयोग करनेवाले रणनिपुण पाण्डवपक्ष के गीरों
 के पराक्रम और प्रहार को अतिरिक्त दुर्योधन, कर्ण,

दू शासन आर शकुनि का आर कौन सह सन्ता ह १
 मुझे तो इस समय इन चार पुरुषों के अतिरिक्त पाँचवाँ
 ऐसा कोई अपने दल में नहीं देख पड़ता, जो कुपित
 पाण्डवों के गणप्रहार को सह सने, या उनका सामना
 ही कर सके ॥ ३९।४२॥ ह सञ्जय १ स य तो यह है
 कि साक्षात् कृष्णचन्द्र जिस पक्ष के सारथी और वहना
 माननया सहायक हैं और सुसाजित वक्त्रधारा गीर
 अर्जुन याद्धा हैं, वह पक्ष कभी युद्ध में हार नहीं सन्ता ।
 तुम कहते हो कि पुरुपसिंह भीष्म और द्रोण दोनों
 मारे जा चुके हैं । इस समय न जाने दुर्योधन मेरे
 पक्ष के विनाश और शिक्षा को स्मरण करके पश्चात्ताप
 कर रहा होगा ॥ ४३।४६॥ भविष्यदर्शी नीतिज्ञ विदुर

दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाऽऽचक्ष्व लज्जयेत् ॥ ८५ ॥
इति श्री महाभारत द्वापराध्याये धृतराष्ट्रस्य पञ्चमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

के मन की क्या अवस्था थी ? तुम वर्णन करने में निपुण हो, हमट्टिए सब घृतांत टीक-टीक कहो । हे तात ! यह निश्चिन वान है कि मोरे पुत्र और योद्धा लोग अद्भुत-कर्मी अर्जुन या अपकार करके उनके पराक्रम और प्रहार को किमी प्रकार नहीं सह सकते । अभिमन्यु के मोरे जान में अर्जुन के कुपित होने पर दुर्योधन, कर्ण, दृ. सामन और शकुनि ने क्या कहा और अपना क्या कर्तव्य निचारा ! हे तात ! लोभी, दुर्मति, क्रोध से विश्रुत-मग्निष्क, राज्य की आकांक्षा करनेवाले, मद, मन्द, म मर पूर्ण दुर्योधन के अन्वय में शुद्ध में जो कुछ परिणाम निकल, मो मुझने करो । दुर्योधन आदि ने उम समय अश्ली नीति को ग्रहण किया या दूनीति की ग्रहण किया या ॥ ५०१ ॥

सप्तम उवाच—दन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शितान् ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव तपनयो महान् ॥ १ ॥
गनोदके मेतुवन्धो यादृकनादृगयं तव ।
विलापो निष्कलो राजन्मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥

अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याऽद्भुतो विधिः ।

मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत्पुरातनम् ॥ ३ ॥

यदि त्वं हि पुरा द्यूतात्कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

निवर्त्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ४ ॥

युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि ।

निवर्त्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥

दुर्योधनं चाऽविधेयं वधीतेति पुरा यदि ।

कुरुनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥

न ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः ।

पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चाऽन्येऽपि नराधिपाः ॥ ७ ॥

स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे ।

वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥

त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम् ।

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चाऽन्वगा मतम् ॥ ९ ॥

तत्ते विलपितं सर्वं मया राजनिशामितम् ।

अर्थे निविशमानस्य विपमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥

द्विधासीनौ अच्यय ॥ ८६ ॥

सख्य ने कहा—हे महाराज ! मैंने युद्ध की सय घटनाएँ प्रत्यक्ष देखी हैं । आप सावधान होकर सुनिए, मैं सय वृत्तान्त कहता हूँ । वास्तव में आपका ही इसमें सारा दोष है । हे भरतश्रेष्ठ ! जल की बाढ़ निकल जाने पर पुल बंधने की चेष्टा के समान आपका यह विचार इस समय निष्फल है । इसलिए अब आप शोक न कीजिए । हे राजेन्द्र ! काल का अद्भुत विधान किसी प्रकार टल नहीं सकता । इस होनी को देव ने पहले ही निश्चित कर दिया था । इसलिए अब आप व्यर्थ शोक न कीजिए ॥ १३ ॥ हे कुन्तु-श्रेष्ठ ! पहले ही यदि आप युधिष्ठिर को और अपने पुत्रों को दत्तक्रीडा न करने देते तो कभी यह गद्गद न उग-सित होता; आपको यह दुःखदायक दृश्य न देना पड़ता । फिर, युद्ध होने के पहले ही यदि आप कुन्ति कीर्यों और पाण्डवों को समझा बुझाकर शान्त कर देते तो यह आगति कदापि न आती । यदि आप पहले

ही कहा न माननेवाले दुर्योधन को पकड़कर कारागार में डाल देते और कीर्यों को विनाश के मुख में जाने से बचा लेते तो यह अनर्थ न होता । सय पाण्डव, पाञ्चाल, यादव और अन्य राजा खोग जानते हैं कि यह महा अनर्थ आपकी विपम बुद्धि के दोष से ही हुआ है ॥ १४ ॥ यदि आप विना के योग्य कार्य करते दुर्योधन को [समझाकर या दण्ड देकर] सुमार्ग पर लगाने और धर्म के अनुसार कार्य करने अर्थात् पाण्डवों को ही उनके भाग्य का राग्य दे देते तो आपको कभी इस गद्गद का सामना न करना पड़ता । आप बहुत ही चतुर कहलाते हैं; किन्तु आप मनाने धर्म का त्याग करके दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के मत पर चले । हे राजेन्द्र ! मैं आपको यह सब विचार सुन चुका । आप बड़े राजपरोधी हैं, आपका यह विचार विप विपे दृष्ट मधु के समान होता है ॥ १५ ॥ आप जैसा समझ रहे हैं कि इस अनर्थ में आपके पुत्र का ही

नाऽमन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा ।
 न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥ ११ ॥
 अजानात्स यदा तु त्वां राजधर्मादभ्यच्युतम् ।
 तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥ १२ ॥
 परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे ।
 तस्याऽनुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥
 पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदाऽनघ ।
 अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥
 पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा ।
 ततश्चाऽप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥
 तेषां तत्तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम् ।
 यत्पिठयाद्भ्रंशिता राज्यान्त्वयेहाऽऽमिषगृद्धिना ॥ १६ ॥
 यत्पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान्गर्हयसे नृप ।
 बहुधा व्याहरन्दोपायं तदद्योपपद्यते ॥ १७ ॥
 न हि रक्षन्ति राजानो युद्धयन्तो जीवितं रणे ।
 चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥ १८ ॥
 यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरो ।
 रक्षेरन्को नु तां युद्धयेच्चमूंमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥

सारा दोष है, आपका नहीं है सो जने सुन लिया ।
 श्रीकृष्ण पहले राजा युधिष्ठिर, भाग्य या द्रोण को उतना
 नहीं मानते थे जितना कि आपने । किन्तु जब से
 उनको यह प्रतीत हो गया कि आप ऊपर से तो धर्म
 की बातें कहते हैं किन्तु हृदय से राज्य के लोभी
 और अधर्मी पुत्र के पक्षपाती हैं तब से श्रीकृष्ण
 की दृष्टि से आप गिर गये हैं । हे महाराज । मरी
 सभा में आपने पुत्र आदि ने पाण्डवों को उचित अनु-
 चित वचन कहे और आप उनकी अपक्षा ही करत
 रहे, उसी का यह परिणाम आपने मिल रहा है ॥ ११ ।
 ॥ १३ ॥ हे भरतश्रेष्ठ । आपन यदि पिता पितृमह के राज्य
 को इस प्रकार छीन लेने की चेष्टा न की होती, तो
 वीर पाण्डव सम्पूर्ण पृथ्वी जीतकर आपने अर्पण कर
 देते । कारणों के राज्य और यश को पहले शत्रुओं

ने छीन लिया था । पाण्डु न ही शत्रुओं को जीतकर
 उस यश और राज्य को प्राप्त किया था । धर्मोभा
 पाण्डवों ने उस यश और राज्य को और भी अधिक
 बढ़ाया था । किन्तु अपने राज्य के लोभ में पड़कर
 पाण्डवों को उनके पैतृ राज्य से अछूटा किया,
 पाण्डु और पाण्डवों को उस कार्य की निष्फल कर
 डाला ॥ १४ ॥ ॥ १६ ॥ चाहे जो हो, इस समय युद्ध-काल
 में जो आप अपने पुत्रों की निन्दा करते हैं और अनेक
 प्रकार से उनके दोषों का वर्णन कर रहे हैं, सो वह सब
 व्यर्थ ही है । राजा लोग युद्ध छानकर फिर रण में जीवन
 की समता नहीं रखते । इस समय आपके पक्ष के
 पराक्रमी वीर क्षत्रियश्रेष्ठ जीवन का मोह छोड़कर,
 पाण्डवों की सेना में प्रवेश करके, युद्ध कर रहे हैं ।
 श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि और भीमसेन जैसे वीरश्रेष्ठ

येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
 येषां च सात्यकियोद्धा येषां योद्धा वृकोदरः ॥ २० ॥
 को हि तान्निपहेद्योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः ।
 अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥
 यावन्तु शक्यते कर्तुमन्तरङ्गैर्जनाधिपैः ।
 क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत्कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥
 यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसङ्कटम् ।
 कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत्सर्वं शृणु तत्त्वतः ॥ २३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सञ्जयवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

अद्वितीय वीर जिस सेना के सरक्षक हैं, उससे अति-
 रिक्त वीर कौरवों के और कौन छोड़ा लेसकता है ॥ १७ ॥
 १९ ॥ जिस दल के योद्धा अर्जुन, सात्यकि और भीम-
 सेन हैं तथा जिस पक्ष के मन्त्री श्रीकृष्णचन्द्र हैं,
 उस पक्ष के पराक्रम को वीरश्रेष्ठ कौरवों और उनके
 साथी क्षत्रियों के अतिरिक्त और कौन मनुष्य सह

सकता है ? हे महाराज ! प्रहार और आक्रमण के अवसर
 को जाननेवाले और क्षत्रिय धर्म में निरत शूर मनुष्य
 जितना कर सकते हैं उतना वीर कौरव कर रहे हैं ।
 पुरुषसिंह पाण्डवों के साथ कौरवों का जैसा घोर संग्राम
 हुआ है उसका वर्णन मैं विस्तार पूर्वक कहता हूँ, आप
 ध्यान देकर सुनिए ॥ २० ॥ २३ ॥

द्रोणपर्व का छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८६ ॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच—तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।

स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राकामद्व्यूहितुं ततः ॥ १ ॥

शूराणां गर्जतां राजन्संकुद्धानाममर्षिणाम् ।

श्रूयन्ते स्म गिरिशिखाः परस्परवधैषिणाम् ॥ २ ॥

विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च ।

विनिःश्वसन्तः प्राकोशन्केदानीं स धनञ्जयः ॥ ३ ॥

विकोशान्सुत्सरूनन्ये कृतधारान्समाहितान् ।

पीतानाकाशसङ्काशानसीन्केचिच्च चिक्षिपुः ॥ ४ ॥

सप्तासीनैः अध्याय ॥ ८७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! रात्रि व्यतीत होने
 पर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपनी सेनाओं को
 लेकर शकटव्यूह की रचना करने लगे । उम समय
 वहाँ गरजते हुए, क्रोधी, अमहन्शील, शूर और पर-
 स्पर वध करने के लिए उद्यत-योद्धाओं की विचित्र
 वोलियों सुन पड़ने लगीं । कोई धनुष चढ़ाकर, कोई

धनुष की डोरी साफ करते और चास लेते हुए चिछाने
 लगे कि इस समय अर्जुन कहाँ हैं । कुछ लोग ध्यान
 से विनीं हुई, धारदार, जल के मोरे आकाश की भाँति
 चमकीली, सुन्दर मूढवाली तलवारों के साथ फेंकने
 लगे ॥ १ ॥ ३ ॥ महारथों शिक्षित वीर लोग, संग्राम के लिए
 उपन होकर, चारों ओर तन्बारों और धनुषों के पैर

चरन्तस्त्वसिमार्गाश्च धनुर्मार्गाश्च शिक्षिया ।
 संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५ ॥
 सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः ।
 समुत्क्षिप्य गदाश्चाऽन्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम् ॥ ६ ॥
 अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिधैर्बाहुशालिनः ।
 चक्रुः सस्वाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः ॥ ७ ॥
 नानाप्रहरणैश्चाऽन्ये विचित्रस्त्रगलंकृताः ।
 संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः ॥ ८ ॥
 काऽर्जुनः क स गोविन्दः क च मानी वृकोदरः ।
 क च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा ॥ ९ ॥
 ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन्वाजिनः स्वयम् ।
 इतस्ततस्तान् चयन्द्रोणश्चरति वेगितः ॥ १० ॥
 तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वहवनन्दिषु ॥ ११ ॥
 भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाऽब्रवीत् ।
 त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः ॥ १२ ॥
 अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा ।
 शतं चाऽश्वसहस्रानां रथानामयुतानि पट् ॥ १३ ॥
 द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश ।
 पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः ॥ १४ ॥
 गन्धूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाय तिष्ठत

दिखते दिखाई पड़ने लगे । कुछ गीर चन्दन लगी हुई,
 घण्टा-भूषित और सुगन्ध हारि आदि से अलङ्कृत गदाएँ
 उठाकर अर्जुन की पूछने लगे । कुछ बाहुबल-सम्पन्न
 योद्धा, लठे हुए इन्द्रध्वज-सदृश, परिध उठाकर आकाश
 की अगताश-हीन बनाने लगे ॥ ७ ॥ विचित्र मालाएँ
 पहने हुए अन्य योद्धा लोग संग्राम के लिए प्रस्तुत
 होकर, अनेक प्रकार के शस्त्र हाथ में लेकर, अपने-
 अपने स्थान पर खड़े हो रणभूमि में पुकारने लगे कि
 अर्जुन कहाँ है ? अभिमानि भीमसेन कहाँ हैं ? गोविन्द
 कृष्ण कहाँ हैं ? और उनके मन सुहृद पाञ्चाल आदि
 क्यों हैं ? उस समय अपना दिव्य शस्त्र बजाकर रथ
 रथ के घोड़ों की शीघ्रता से चलने हुए आचार्य द्रोण

श्वर-उधर ब्यूह में सेना स्थापित करते हुए वेग से
 जाते दिखाई पड़ रहे थे ॥ ८ ॥ युद्ध-प्रिय सन सेना
 जब उचित स्थान पर तैनात हो चुकी तब द्रोणाचार्य
 ने कहा—हे जयद्रथ ! तुम, सौमदत्त के पुत्र, महारथी
 कर्ण अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन और कृपाचार्य, ये
 लोग एक लाख घोड़े, साठ सहस्र रथ, चोदह सहस्र
 मदमत गजराज और इक्कीस सहस्र वक्चधारी पैदल
 सेना लेकर मुझसे छः कोस के अन्तर पर ठहरो ।
 वहाँ पर इस प्रकार चतुराङ्गिणी सेना और छः महा-
 रथियों के मध्य में तुम रहोगे; तब इन्द्र सहित देवता
 भी तुम पर आक्रमण न कर सकेंगे, पाण्डवों की तो
 कोई बात ही नहीं है । अब तुम निर्भय होकर अपने

तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः ।
 किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव ॥ १५ ॥
 एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः ।
 सम्प्रायात्सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः ॥ १६ ॥
 वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः ।
 चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥ १७ ॥
 जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
 ते चैकसप्तसाहस्रास्त्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १८ ॥
 मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
 नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥
 अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
 अग्रतः सर्वसैन्यानां युद्धयमानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥
 ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजौ ।
 सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २१ ॥
 दीर्घौ द्वादशगव्यूतिः पश्चार्धे पञ्चविस्तृतः ।
 व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥
 नानानृपतिभिर्वारिस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
 रथाश्च राजपत्न्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥
 पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
 सूचीपद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ २४ ॥

स्थान पर जाओ॥११॥१५॥मञ्जव कहते हैं—हे महा-
 राज ! आचार्य के इस कथन से धैर्य धर करके सिन्धुपति
 जयद्रथ, उन महारथियों के साथ, निर्दिष्ट स्थान को
 गये। उनके साथ गान्धार देश के योद्धा, उनके शरीर-
 रक्षक हीनर, चले। ये लोग काच पहने, साधारण,
 घोड़ों पर सवार और हाथों में प्रास (एक शस्त्र)
 लिए हुए थे। हे राजेन्द्र ! जयद्रथ स्व के सुशिक्षित
 योद्धे कर्णों और सुवर्ण के आभूषणों से भरे हुए
 थे। जयद्रथ के साथ भली भौति अट्टहूत, सिन्धु
 देश के तीन सहस्र और अन्य मान महस्र योद्धे थे,
 जिन पर सशस्त्र योद्धा सवार थे॥१६॥१८॥हे राजेन्द्र !
 आपके पुत्र दुर्मर्षण, देव महस्र मन्त्र हाथियों की सेना

लेकर, सत्र सैनिकों के आगे युद्ध करने के लिए वहाँ
 हुए। उनके उन हाथियों का आकार भयानक और
 कर्म बड़े ही शीघ्र थे। उन पर युद्ध-निपुण योद्धा सवार
 थे। आपके पुत्र दुःशामन और विकर्ण दोनों ही,
 जयद्रथ की रक्षा के निमित्त, आगे की सेना में स्थित
 हुए। महात्मी द्रोणाचार्य ने स्वयं महावर्गी अमंगल थीर
 राजाओं को तथा स्व, योद्धे, हाथी और पैदल सेना
 को उचित स्थान पर तैनात करके एक दृढ़ोप व्यूह
 बनाया। उस व्यूह का अग्र भाग टूटने के आसार
 का चीड़ा था और पिछवा भाग एक अग्र कर्म
 के आसार का था। यह व्यूह आगे की सेना को
 लम्बा और लीट्टे दम कोम चीड़ा था॥१९॥२०॥महाराज

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह द्रोणो व्यवस्थितः ।
 सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥
 अनन्तरं च काम्बोजो जलसन्धश्च मारिष ।
 दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥ २६ ॥
 ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
 व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥
 तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
 जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥
 शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
 अनु तस्याऽभवद्भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥ २९ ॥
 श्वेतवर्माऽम्बरोष्णीपो व्यूढोस्को महाभुजः ।
 धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्यो क्रुद्ध इवाऽन्तकः ॥ ३० ॥
 पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
 द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३१ ॥
 सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
 द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं शुब्धार्णवोपमम् ॥ ३२ ॥
 स शैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् ।
 प्रसेद्व्यूहः क्षितिं सर्वाभिति भूतानि मेतिरे ॥ ३३ ॥
 बहुरथमनुजाश्चपत्तिनागं प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।
 अहितहृदयभेदनं महद्वै शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथधर्पणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्तार्शतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

द्रोणाचार्य ने पीठे के पञ्चव्यूह के भीतर एक आरिचित्र
 व्यूह बनाया । वह सूचीमुख व्यूह था । वह व्यूह
 बहुत ही गुप्त और दुर्गम था । सूचीमुख के द्वार पर
 महाधनुर्धर कृतवर्मा उसकी रक्षा के लिए नियुक्त थे ।
 उसके पश्चात् क्रमशः काम्बोजराज, जलसन्ध और
 उनके पश्चात् महाराज दुर्योधन और कर्ण थे । युद्ध
 से कदापि न हटने वाले एक लाख वीर योद्धा शकटव्यूह
 के अग्र भाग की रक्षा करने लगे ॥ २५-२७ ॥ असंख्य
 सेना साथ में लिये हुए राजा दुर्योधन उन योद्धाओं
 के पीछे थे । राजा जयद्रथ उसके पीछे गूढ़ सूची
 व्यूह के पार्श्वभाग में थे । द्रोणाचार्य स्वयं शकटव्यूह

के अग्रभाग में रहकर उसकी रक्षा करने लगे । श्वेत
 कनक, उग्र, पगड़ी आदि पहने, चौड़ी छातीवाले,
 महागद्गद द्रोणाचार्य युद्ध काल की भौंति अपने रथ
 पर बैठे हुए वात्स्यार धनुष की डोरी बजा रहे थे ।
 वहीं उस सेना के रक्षक और सञ्चालक थे ॥ २८-
 ३० ॥ वेदी तथा मृगशाला के चिह्नों से युक्त पत्रा
 और लाल रक्त के घोड़ों से शोभित द्रोणाचार्य का
 रथ देखकर सब कौरवों को अपार हर्ष हुआ । शोभ
 को प्राप्त समुद्र के समान, द्रोणाचार्य के वनाये, उस
 व्यूह को देखकर सिद्धों और चारणों को बड़ा ही
 विस्मय हुआ । मन प्राणी अपने अन्त करण में कहने

लगे कि यह सैनिकों का विशाल व्यूह पर्वत-समुद्र वन-सहित सम्पूर्ण पृथ्वी को भी नष्ट कर सकता है । बहुत रथ, रथी, हाथी, घोड़े और पैदल सेना से परिपूर्ण, महा कोलाहल से भयङ्कर, अद्भुत, आप

ही अपनी उपमा और शत्रुओं के हृदय को दहला देने-वाला वह शकटव्यूह देखकर राजा दुर्योधन को वर्ण प्रसन्नता हुई॥३१३४॥

— ० —

द्रोणपर्व का सत्तासीर्वा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८७ ॥

अथ अष्टाशीर्षितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

सञ्जय उवाच — ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष

ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥ १ ॥

अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने ।

प्रध्मापितेषु शङ्खेषु सन्नादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥

अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु ।

रौद्रे मुहूर्त्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥

वलानां वायसानां च पुरस्तात्सव्यसाचिनः ।

बहुलानि सहस्राणि प्राक्कीडंस्तत्र भारत ॥ ४ ॥

मृगाश्च घोरसन्नादाः शिवाश्चाऽशिवदर्शनाः ।

दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५ ॥

सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः ।

चच्चाल च मही कृत्वा भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥

विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करकर्पिणः ।

बवुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥

नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।

पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञो तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥

अष्टासीर्वा अध्याय ॥ ८८ ॥

सञ्जय कहते हैं — हे महाराज ! आपके पक्ष की सब सेना जय व्यूह में उचित स्थान पर स्थापित हो चुकी; चारों ओर भेरी मृदङ्ग डङ्के आदि बजने लगे; सेना का कोलाहल और बाजा का शब्द आकाश-मण्डल तक गूँज उठा, लोमहर्षण शङ्ख नाद रणभूमि में व्याप्त हो गया; और हाथों में शङ्ख लेकर कौरव-गण युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए, तब उस रौद्रमुहूर्त्त में सबके साम्मुख अर्जुन आये॥१३॥उनकी सेना के आगे-आगे झुण्ड के झुण्ड सदसों कीएँ परिभ्रमण कर रहे थे; माँसाहारी राक्षसनिपाते पशु-पक्षी कीड़ा सी

कर रहे थे । अशुभ रूपवाली गिददियों हमारी सेना के चलते समय मार्ग में, उसके दक्षिण भाग में, घोर शब्द करने लगीं और मृगों के झुण्ड भी विकट शब्द करके अनुभ की सूचना देने लगे । उम भयानक जनसंसार के उपस्थित होने पर यज्ञभूमि के साथ आकाश से जलनी हुई महर्षि उन्कारें गिरने लगीं । सम्पूर्ण पृथ्वी घोरभार कीपने लगी॥४॥अर्जुन जिन समय मंगलभूमि में आये उम समय कङ्कदियों उड़ानी हुईं रगीं और भी चपने लगीं । श्वर प्युट-रचना में निपुण नकुल के पुत्र शतानीक और धृष्टद्युम्न दोनों

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च ।
 त्रिभिरश्वमहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥
 अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव ।
 अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥
 अथ गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम् ।
 अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥
 अथ पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ।
 विपक्तं मयि दुर्धर्ममश्मकूटमिवाऽश्मनि ॥ १२ ॥
 तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकांक्षिणः ।
 युष्यामि संहतानेतान्यशो मानं च वर्धयन् ॥ १३ ॥
 एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
 महेष्वासैर्वृतो राजन्महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १४ ॥
 ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
 दण्डपाणिरिवाऽसह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥
 शूलपाणिरिवाऽक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।
 युगान्ताग्निरिवाऽर्चिष्मान्प्रधक्ष्यन्वै पुनः प्रजाः ॥ १६ ॥
 क्रोधामर्षवलोद्भूतो निवातकवचान्तकः ।
 जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन्महाव्रतम् ॥ १७ ॥
 आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
 शुभ्रमाल्याम्बरधरः खड्गदश्वारुकुण्डलः ॥ १८ ॥

शूरवीर पाण्डवों की सेना के ब्यूह की रचना करने लगे। अर्जुन ने राजेन्द्र । उधर आपके पुत्र दुर्मर्षण ने भी एक सहस्र रथ, सौ हाथी, तीन सहस्र घोड़े और दस सहस्र पैदल साथ लेकर सब सेना से तीन सहस्र गज आगे खड़े होकर कहा— हे श्रीर ! तटभूमि जैसे समुद्र के किनारे की रोकती है उसे ही आज हमें युद्ध में दुर्मर्षण की अर्जुन को आगे नहीं बढ़ने देना । आज सन लोग अर्जुन को उम्मी प्रसार मुझे टकरा कर रुकने देखेंगे जिस प्रकार चट्टान में पत्थर अटक जाता है । हे सम्राट की आज्ञा रत्नवाले वीरों ! तुम सन लोग खड़े खड़े कीतक देखना । मैं अकेला ही अब इन सब एकत्र होकर अनिग्रही पाण्डवों के वीरों से युद्ध करूँगा और अपने यश और मान को बढ़ाऊँगा ॥ १९ ॥ शहीद महाराज ! महारथी वीरों के साथ इस प्रकार कहते हुए महाधनुर्धर वीर दुर्मर्षण अपने स्थान पर डटकर खड़े हुए । उधर पञ्चधारी इन्द्र के तुल्य, दण्डपाणि यमराज के समान असह्य, काल से प्रेरित हुए मृत्यु के समान अनिरीय, शङ्कर के समान अक्षोभ्य, पाशधारी वरुण के समान नीर अर्जुन प्रलयनाश के ज्वालामाला युक्त अग्नि के समान क्रोध और तेज से प्रज्वलित देख पड़ने लगे । ऐसा जान पड़ता था कि मानों वे सन जगत को भस्म कर डालेंगे । क्रोध, अमर्ष और वज्र से प्रचण्ड, युद्धनिनयी, निगानकवच दानवों का नाश करनेवाले अर्जुन उस समय अपनी

रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।
 विधुन्वन्गाण्डिवं संख्ये वभौ सूर्य इवोदितः ॥ १९ ॥
 सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनञ्जयः ।
 व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥
 अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष ।
 प्राध्मापयत्पाञ्चजन्यं शङ्खप्रवरमोजसा ॥ २१ ॥
 तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते ।
 आसन्संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥
 यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् ।
 तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥
 प्रसुप्तुवुः शक्रन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः ।
 एवं संवाहनं सर्वमाविशमभद्रलम् ॥ २४ ॥
 सीदन्ति स्म नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
 विसंज्ञाश्चाऽभवन्केचित्केचिद्राजन्वितत्रसुः ॥ २५ ॥
 ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
 अकरोद्वयादितास्यश्च भीषयस्तव सैनिकान् ॥ २६ ॥
 ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चाऽऽनकैः सह ।
 पुनरेवाऽभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥ २७ ॥

सत्य प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए उद्यत देख पड़े ।
 नारायण के अतार श्रीकृष्ण के साथ नर के अ
 तार अर्जुन अपने रथ पर, उदय हुए सूर्य के समान,
 शोभायमान हो रहे थे । वे कवच, मणिमय कुण्डल,
 सुवर्णमय किरीट-मुकुट, श्वेत माला और वस्त्र पहने
 हुए थे । उनके अङ्गों में अङ्गद आदि आभूषण
 जगमगा रहे थे । गाण्डीय धनुष को कम्पायमान करते
 हुए वीर अर्जुन ने सेना के अग्र भाग में आकर इतनी
 दूरी पर अपना रथ खड़ा कराया, जहाँ से शत्रुसेना
 के मध्यभाग में घाण मारा जा सकता था ॥ १९-२० ॥
 अग्र महाप्रतापी अर्जुन ने जोर में अपना शङ्ख बजाया ।
 साथ ही महात्मा यासुदेव ने भी अपना श्रेष्ठ पाञ्च-
 जन्य शङ्ख बड़े जोर में बजाया । उन दोनों वीरों के
 शङ्ख-नाद को सुनते ही आर्यवी सेना में हलचल सी

मच गई । सैनिकों के रोंगटे खड़े हो गये, लोग काँप
 उठे और अचेत हो गये । बिजली की बड़ब
 सुनकर लोग जैसे भयभीत हो जाते हैं वैसे ही वीर
 सेना के लोग उन शङ्खों का महानाद सुनकर भय
 भीत हो गये । हाथी-घोड़े आदि वाहन व्याकुलता और
 भय के मारे मल मूत्र त्याग करने लगे । हे महाराज !
 इस प्रकार गहनों सहित आपसी सन्न सेना व्याकुल
 हो उठी ॥ २०-२१ ॥ उन शङ्खों का दारुण शब्द सुनकर
 कुछ लोग निद्रल हो उठे, कुछ भय के मारे अचेत हो
 गये और कुछ भाग गड़े हुए । हे भरतश्रेष्ठ ! उस समय
 अर्जुन के रथ की चञ्चल पर स्थित यानर भी, राजा पर
 स्थित अन्य भयानक प्राणियों के साथ, मुग धैर्य
 और महानाद करता हुआ आगे के मैदानों को भयभीत
 कराने लगा । अब आर्यवी सेना में मैदानों का

नानावादित्रसंज्ञादैः क्षेडितास्फोटिताकुलैः ।
 सिंहनादैः समुत्कुप्यैः समाधूतैर्महारथैः ॥ २८ ॥
 तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
 अतीव हृष्टो दाशार्हमववीत्यांकशासनिः ॥ २९ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

उसाह और हर्ष बढ़ाने के लिए सह्य, भेरा, मृदङ्ग, नगाड़े आदि बाजे बजाये जाने लगे। अनेक प्रकार के बाजों के शब्द, गम ठोंकने के शब्द, गर्जन और मिहनाद, चिल्लाने और पुकारने के शब्द और

महारथी वीरों के रथ सञ्चालन के शब्द से गणभूमि परिपूर्ण हो उठी। हे राजेन्द्र ! कायरों के हृदय में भय का सञ्चार करनेवाले उस तुमुल शब्द से अत्यन्त हर्षित होकर अर्जुन श्रीकृष्ण से यों कहने लगे ॥ २५।२९ ॥

द्रोणपर्व का अष्टासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८८ ॥

अथ एकोनत्रतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अर्जुन उवाच - चोदयाऽश्वान्दृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ।
 एतद्भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥ १ ॥
 सञ्जय उवाच - एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
 अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥
 स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः ।
 एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥
 ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
 परानवाकिरत्पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥ ४ ॥
 ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
 अवाकिरन्वाणजालैस्तत्र कृष्णधनञ्जयो ॥ ५ ॥
 ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
 शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ६ ॥
 उद्भ्रान्तनयनेर्वक्त्रैः सन्दृष्टोऽपुष्टैः शुभैः ।
 सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ७ ॥

नवासीवाँ अध्याय ॥ ८९ ॥

अर्जुन ने कहा - हे श्रीकृष्ण ! जिस स्थान पर यह दुर्मर्षण गया हुआ है उसी स्थान पर मेरा रथ ले चले। मैं इस गज-सेना को टिक्-भिन्न करना हुआ शत्रुओं की सेना के भीतर प्रवेश होऊँगा ॥ १ ॥ सञ्जय बहते हैं - हे राजेन्द्र ! अर्जुन के यों कहने पर कृष्ण ने रथ को दुर्मर्षण के समीप ले जाने

के लिए घोड़ों को हाँक दिया। इसके पश्चात् अर्जुन वीरों की सेना में अत्यन्त भयानक युद्ध करने लगे। उस मराम में अमर्य रथी, पैदल, हाथी और घोड़े मरे गये। पर्वत पर मेघ जैसे जम्हात बरमाने दे गये हैं अर्जुन भी शत्रु-सेना के ऊपर निम्नतर बाणों की वर्षा करने लगे ॥ २ ॥ शीर-रक्ष के रथी और

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
 विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ८ ॥
 तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिराणि च ।
 संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥ ९ ॥
 शिरसां पततां राजञ्छब्दोऽभूद्भुसुधातले ।
 कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥
 ततः कवन्धं किञ्चित्तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
 किञ्चित्त्वह्निं विनिकृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ११ ॥
 पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
 अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयशृङ्गिनः ॥ १२ ॥
 हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
 बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥ १३ ॥
 अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
 तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाऽभवत् ॥ १४ ॥
 अन्योऽन्यमपि चाऽऽजघ्नुरात्मानमपि चाऽपरे ।
 पार्थभूतमन्यन्त जगत्कालेन मोहिताः ॥ १५ ॥
 निष्ठनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
 शयाना बहवो वीराः कीर्त्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥ १६ ॥

महारथी भी वासुदेव और अर्जुन के ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा सी करने लगे । तब अर्जुन ने क्रोध करके अपने को रोकनेवाले हानु-पक्ष के रथी योद्धाओं के सिरों को बाण मारकर धड़ों से अलग करना आरम्भ कर दिया । होंठ चबा रहे, लाल-लाल नेत्र निकाले, कुण्डलों और शिराबाणों से शोभित शरों के वटे हुए सिर युद्धभूमि में बिठ गये । चारों ओर बिखरे हुए योद्धाओं के सिर दलित कमलों के वन के समान शोभायमान हुए । [रक्त से भीगे हुए सुनहरे कवच विजली से शोभित मेघों के समान जान पड़ते थे ।] पके हुए ताड़ के फल गिरने से जैसा घोर शब्द होता है वैसा ही घोर शब्द वीरों के सिर फट-फटकर गिरने से सुनाई पड़ रहा था ॥ ११ ॥ वीरों के कवच उठ गये हुए और कोई धनुष हाथ में छिपे और कोई स्थान से तटमार निकाले प्रहार के छिपे उपन देग पड़ने

लगे । जय की आकांक्षा से युद्ध करनेवाले वीरगण अर्जुन को परास्त करने के उद्योग में इतने तन्मय थे कि उन पुरुषश्रेष्ठों के सिर फट-फटकर गिर पड़ते थे और उन्हें उनकी सूचना भी न होती थी । घोड़ों के सिर, हाथियों की सूँढ़ें, वीर पुरुषों के सिर और हाथ फट फटकर पृथ्वी पर इनने गिरे कि उनसे रण-भूमि बिछ गई ॥ ११ ॥ १२ ॥ महाराज ! उस समय आपके भैरवियों को मारी रणभूमि अर्जुनमयी सी दिव्यार्थ पड़ने लगी । वे "यह अर्जुन है", "कहाँ अर्जुन है!", "यहाँ अर्जुन है" इस प्रकार के अनेक वचन बहते हुए परस्पर ही एक दूसरे को, अर्जुन जानकर, मारने लगे । किमी-किमी ने व्याकुल होकर आप ही अपने को शस्त्र मार दिया । इस प्रकार काल में मोहित वीरगण के योद्धा गर्व अर्जुन को ही देखने लगे । रक्त से भीगे हुए, अनेक वीरगण समरशय्या में पड़े हुए थे । ये

सभिन्दिपालाः सप्राप्ताः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः ।
 सनिर्व्यूहाः सनिखिंशाः सशरासनतोमराः ॥ १७ ॥
 सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
 महाभुजगसङ्काशा वाहवः परिघोपमाः ॥ १८ ॥
 उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति सञ्चेष्टन्ति च सर्वशः ।
 वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेष्ठुभिः ॥ १९ ॥
 यो यः स्म समरे पार्थ प्रतिसञ्चरते नरः ।
 तस्य तस्याऽन्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥ २० ॥
 नृत्पतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा ।
 न कश्चित्तत्र पार्थस्य दृढशोऽन्तरमण्वपि ॥ २१ ॥
 यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् ।
 लाघवात्पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ २२ ॥
 हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च ।
 अभिनत्फाल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥ २३ ॥
 आवर्त्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः ।
 प्रमुखे तिष्ठमानं च न किञ्चिन्न निहन्ति सः ॥ २४ ॥
 यथोदयन्त्रै गगने सूर्यो हन्ति महत्तमः ।
 तथाऽर्जुनो गजानीकमवधीत्कङ्कपत्रिभिः ॥ २५ ॥
 हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत ।
 अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥ २६ ॥

दारुण वेदना से अत्यन्त पीड़ित होकर अपने-अपने
 बाणधरो को पुकारने और कराहने लगे ॥ १७ ॥
 भिन्दिपाल, प्रास, शक्ति, ऋष्टि, परशु, निर्व्यूह, राङ्ग,
 धनुष, तोमर, बाण और गदा आदि शस्त्रों से शोभित,
 कारचक्र और अद्भुत आदि आभूषणों से अलङ्कृत
 वीरों के हाथ अर्जुन के बाणों से कट-कटकर पृथ्वी
 पर गिर रहे थे । ये महानाग और वेगन के मग्न
 हाथ उठते, गिरते और नड़पते हुए दिखाई पड़ रहे थे
 ॥ १७ ॥ जो-जो वीर पुरुष अर्जुन के मनुष्य जानकर
 उनसे भिदना पा, उम-उम के शरीर में अर्जुन के काल-
 राक्षस बाण प्रवेश हो जाते थे । रथ-मार्ग में नृत्य गा
 करनेवाले शीप्रगामी और शकृत्स, गी अर्जुन इस प्रकार

धनुष घुमा रहे थे कि उन पर प्रहार करने का तनिक
 भी अवसर नहीं देख पड़ता था । अर्जुन अपने हाथों
 की शक्ति दिवाने हुए इतने शीघ्र बाण निकालते, धनुष
 पर चढ़ते, निशाना तारते और बाण छोड़ते थे कि सब
 देगनेवालों के आश्चर्य की कमी नहीं थी ॥ २० ॥
 वीर-वर अर्जुन अपने बाणों से एक साथ ही हाथी,
 महावन और घोड़ा को, घोड़े और सागर को तथा
 रथी और सारथी को मार गिराते थे । पराक्रमी अर्जुन
 उम समय आते हुए, आगे हुए, मुड़ कर रहे और
 मनुष्य गंदे हुए, ज़िमी भी शत्रु को नहीं छोड़ते थे;
 मभी को मात-कायर गिरा रहे थे । उदय हो रहे
 नन्दन जैसे अपनी शिष्टों में गदरे और को नष्ट

यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।
 तथा धनञ्जयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ २७ ॥
 तत्तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परन्तप ।
 प्रभञ्जं द्रुतमाविश्रमतीव शरपीडितम् ॥ २८ ॥
 मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत ।
 प्रकल्प्यमानं तत्सैन्यं नाऽशक्तप्रतिवीक्षितुम् ॥ २९ ॥
 प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः ।
 कशापाण्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ३० ॥
 चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः ।
 सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चाऽर्जुनार्दिताः ॥ ३१ ॥
 पाण्ण्यगुष्ठांकुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे ।
 शरैः सम्मोहिताश्चाऽन्ये तमेवाऽभिमुखा ययुः ॥ ३२ ॥
 तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे एकोनववतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

करते हैं वैसे ही प्रतापी वीर अर्जुन ने कङ्कपत्रशोभित
 तीक्ष्ण बाणों से शत्रुपक्ष के हाथियों के दल को मार-
 कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । अर्जुन के बाणों से छिन्न-
 भिन्न हाथियों के झुण्ड के झुण्ड आपकी सेना के
 मध्य पड़े हुए थे । उनसे वह रणभूमि प्रलयकाल में
 पर्वतों से परिपूर्ण भूमि सी दिखाई पड़ने लगी ॥ २७ ॥
 २८ ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय क्रोध से विह्वल महा-
 वीर अर्जुन शत्रुओं के लिए दोपहर के सूर्य के समान
 अत्यन्त ही दुर्निरीक्ष्य हो उठे । कौरव-सेना के योद्धा
 लोग उनके बाणों से अत्यन्त ही पीड़ित और शङ्कित
 होकर, व्याकुल होकर, रणभूमि को छोड़कर भागने
 लगे । आधी जैसे मेघमण्डल को छिन्न-भिन्न कर देती
 है वैसे ही महावीर अर्जुन भी कौरव-सेना को मारकर

भागने लगे । उनके बाणों की मार से भगाई जा रही
 आपके पुत्र की सेना अर्जुन की ओर देख भी नहीं
 सकती थी ॥ २७ ॥ २९ ॥ रथी और घुड़सवार योद्धा लोग
 अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर कोड़े, धनुष-कोटि,
 डङ्कार, कशा और पाणियों के प्रहार आदि से, डँट-
 कर, पुचकारकर अपने घोड़ों को भगाते हुए भागने
 लगे । जो हाथियों पर सवार थे वे पाणियों, पौन के
 अँगूठे और अङ्कुश के प्रहार से हाथियों को चलाते
 हुए प्रवल वेग से भागने लगे । बहुत से लोग अर्जुन
 के बाणों की मार से ऐसे व्याकुल हो उठे कि वे
 मोहित होकर अर्जुन की ही ओर जाने लगे । हे
 राजेन्द्र ! इस प्रकार आपके पक्ष के वीर लोग उत्साह-
 हीन होकर व्याकुल हो उठे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

द्रोणपर्व का नवासीसौ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८९ ॥

अथ नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

धृतपाट् उवाच—तस्मिन्प्रभग्ने सैन्याग्ने वध्यमाने किरीटिना ।
 के तु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनञ्जयम् ॥ १ ॥
 आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः ।
 द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच— तथाऽर्जुनेन सम्भग्रे तस्मिंस्तव वलेऽनघ ॥ ३ ॥
 हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥
 पाकशासनिनाऽभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः ॥
 न तत्र कश्चित्संग्रामे शशाकाऽर्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥
 ततस्तव सुतो राजन्हृष्टा सैन्यं तथा गतम् ॥
 दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायाऽर्जुनमभ्यगात् ॥ ५ ॥
 स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः ॥
 जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥
 नागानीकेन महता असन्निव महीमिमाम् ॥
 दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥
 न्हादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ॥
 ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥
 भूर्दिशश्चाऽन्तरिक्षं च शब्देनाऽसीत्समावृतम् ॥
 स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥
 तान्हृष्टा पततस्तूर्णमंकुशैरभिचोदितान् ॥
 व्यालम्बहस्तान्संरब्धान्सपक्षानिव पर्वतान् ॥ १० ॥
 सिंहनादेन महता नरसिंहो धनञ्जयः ॥
 गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः ॥ ११ ॥

नन्वेयं अध्याय ॥ ९० ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा— हे सञ्जय ! महावीर अर्जुन
 जब इस प्रकार हमारी सेना का सहार करते लगे तब
 कौन-कौन वीर उनके सम्मुख युद्ध करने को आये ?
 अथवा सब वीर हारकर, निकलमनोरथ होकर, शरद
 गृह के भीतर ही प्रवेश हो गये और दीवार के
 समान अटल द्रोणाचार्य की आड़ लेकर सबने अपने
 प्राण बचाये ॥ ११२॥ मञ्जय ने कहा— हे राजेन्द्र !
 महावीर अर्जुन इस प्रकार आपके वीरों को हराकर
 अपना पराक्रम प्रकट करने लगे । आपकी सेना के
 अनेक वीर मारे गये, सब सैनिक निरुत्साह होकर
 भागने पर ही उतारू हो गये । उन्हें अर्जुन अपने
 तीक्ष्ण बणों से मारने लगे । उस समय कोई भी अर्जुन
 की ओर नेत्र उठाकर देख नहीं सकता था ॥ ११॥

आपके पुत्र महावीर दुःशासन अपने सैनिकों की ऐसी
 दुर्दशा देखकर, क्रोध से रिझल हो, युद्ध के लिए
 अर्जुन की ओर बेग से चले । सुर्य का कणच और
 सुर्य का ही शिरसाण धारण किये हुए पराक्रमी
 महावीर दुःशासन ने बहुत सी गजसेना के द्वारा
 अर्जुन को घेर लिया । ऐसा जान पड़ता था कि वे
 अपनी गजसेना से घृचीमण्डल को भ्रम लेंगे ॥ ५॥
 आहधियों के गडों में पड़े हुए घण्टों के शब्द,
 शङ्खनाद, प्रत्यक्षा के शब्द, गीरों के सिंहनाद और
 हाथिया के शब्द से घृचीमण्डल, आनाशमण्डल और
 सब दिशाएँ गूँज उठीं । हे महाराज ! कुछ समय
 तक सुराज दुःशामन बहुत ही भयङ्कर देख पड़े ।
 अरुण के प्रहार से प्रेरित होकर सँड़ उठायें हुए क्रुद्ध

महोर्मिणमिवोद्धृतं श्वसनेन महार्णवम्	।
किरीटी तद्गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा	॥ १२ ॥
काष्ठातीत इवाऽऽदित्यः प्रतपन्स युगक्षये	।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरञ्जयः	॥ १३ ॥
खुरशब्देन चाऽश्वानां नेमिघोषेण तेन च	।
तेन चोत्क्रुष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च	॥ १४ ॥
नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च	।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च	॥ १५ ॥
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः	।
शरैराशीविपस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना	॥ १६ ॥
ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः	।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः	॥ १७ ॥
आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना	।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाऽद्रयः	॥ १८ ॥
अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च	।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद्वयनदन्मुहुः	॥ १९ ॥
गजस्कन्धगतानां च पुरुपाणां किरीटिना	।
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भङ्गैः सन्नतपर्वभिः	॥ २० ॥
सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले	।
पद्मानामिव सङ्घतैः पार्थश्चक्रे निवेदनम्	॥ २१ ॥

हाथियों को, पक्षयुक्त पर्वतों के समान, चारों ओर से आते देखकर वीर अर्जुन ने बड़े जोर से सिंहनाद किया। फिर वे बाणों की वर्षा करने शत्रुपक्ष की गजसेना का संहार करने लगे॥ ८।१॥ रात्रि-सञ्चालित तरङ्गपूर्ण उमड़े हुए समुद्र के समान उस गज-सेना के मध्य, महामगर के समान, अर्जुन ने प्रवेश किया। प्रलयकाल में आकाश में तप रहे सूर्य-नारायण के समान शत्रुदमन अर्जुन उस समय सब दिशाओं में बाण-वर्षा करते दिखाई पड़ने लगे। उस समय घाड़ों की टापों के शब्द, रथों के पहियों के शब्द, लोगों के चिछाने के शब्द, धनुष की टेंगरियों के शब्द, अनेक प्रकार के बाणों के शब्द, पाशवन्ध और देव-

दत्त नामक शङ्खों के शब्द और गाण्डीव धनुष के शब्द से मनुष्य और हाथी अवेत से हो गये; उनका वेग घीमा पड़ गया॥ १२॥ १६॥ मर्ष के डसने के समान जिनका स्पर्श है ऐसे बाण मारकर अर्जुन उन हाथियों को छिन्न-भिन्न करने लगे और वे सब हाथी चिछा-चिछाकर परस्ते पर्वतों की भाँति नष्ट होने लगे। वीर अर्जुन के असंख्य बाण एक साथ आकर उनके शरीरों में प्रवेश होते थे। अन्य अनेक हाथी दाँतों की जड़, मस्तक, मूँद, कपोल आदि स्थानों में अर्जुन के असंख्य बाण लगने पर क्रीड़ा पक्षियों की भाँति बार-बार चिछाने लगे। हाथियों पर बैठे हुए योद्धाओं के सिरों को भी वीर अर्जुन अपने अलग्न ही तीक्ष्ण

यन्त्रवद्धा विक्रवा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
 भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २२ ॥
 केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा ।
 द्वौ त्रयश्च त्रिनिर्मिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २३ ॥
 अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
 सारोहा न्यपतन्भूमौ हुमवन्त इवाऽचलाः ॥ २४ ॥
 मोर्वी ध्वजं धनुश्चैव युगमीपां तथैव च ।
 रथिनां कुट्टयामास भलैः सन्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥
 न सन्दधन्न चाऽऽर्कपन्न विमुञ्चन्न चोद्वहन् ।
 मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन्पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥
 अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
 मुहूर्त्तान्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७ ॥
 उरिथतान्यगणेष्वपि कवन्धानि समन्ततः ।
 अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ २८ ॥
 सचापाः सांगुलित्राणाः सखद्गाः साङ्गदा रणे ।
 अदृश्यन्त भुजाश्लिङ्गा हेमाभरणभूषिताः ॥ २९ ॥
 सुपस्करैरधिष्ठानैरीपादण्डकवन्धुरैः ।
 चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भद्रैश्च बहुधा युगैः ॥ ३० ॥

मल्ल बाणों से काट काटकर पृथ्वी पर गिराने लगे ।
 हाथियों पर सवार वीरों के कुण्डल मण्डित सिर जब
 काट-काटकर पृथ्वी पर गिरने लगे तब ऐसा जान पड़ा
 मानों अर्जुन कमल के फूलों में रणचण्डी की पूजा
 कर रहे हैं ॥ १७-१९ ॥ हाथी जब व्याकुल होकर
 पीड़ित होकर इधर-उधर भागने लगे तब नाना प्रकार
 के शस्त्रों की चोट खाये हुए, कवन-हीन, घायल और
 रक्त से स्नान किये हुए अनेकों सैनिक लोग शक्ति-
 हीन होने के कारण हाथियों के होठों पर से नीचे
 लटकने लगे । अर्जुन के केवल एक ही बाण से दो-दो
 तीन-तीन शत्रु घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे,
 अर्जुन के नाराच बाण हाथियों के शरीरों में प्रवेश
 हो जाते थे । ये हाथी मुख से रक्त-वमन करते हुए
 अपने सवार के सहित पृथ्वी पर गिर पड़ते थे, जिन्हें

देखकर ऐसा जान पड़ता था कि वृक्षयुक्त पर्वत के
 शिखर फट-फटकर गिर रहे हैं ॥ २०-२४ ॥ महावीर
 अर्जुन अपने सन्नत-पर्व-शोभित मल्ल बाणों के द्वारा रथी
 योद्धाओं के धनुषकोटि होरी, धनुष, ध्वजा, उनके रथ का
 युग और ईपा आदि को काट रहे थे । नहीं जान पड़ता
 था कि अर्जुन कब तक से बाण निकालते हैं, कब
 धनुष पर बढ़ाते हैं, कब उसे खींचते और कब
 छोड़ते हैं । केवल यही देख पड़ता था कि ये धनुष
 को मण्डलाकार घुमाते हुए रणभूमि में चारों ओर
 नृत्य सा कर रहे हैं । अर्जुन के नाराच बाण बहुत
 ही गहरे प्रवेश हो जाने के कारण मुख से रक्त उग-
 लते हुए सहस्रों हाथियों का क्षण भर में पृथ्वी पर
 ढेर हो गया ॥ २५-२७ ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय सम-
 क्षेत्र में अमर्य कवन्ध उठ खड़े हुए । ये कवन्ध यहाँ

चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
 स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ ३१ ॥
 निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
 अदृश्येत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२ ॥
 एवं दुःशासनवलं वध्यमानं किरीटिना ।
 सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥
 ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
 द्रोणं त्रातारमाकांक्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

चारों ओर भयङ्कर युद्ध करते हुए दिखाई पड़ने लगे । धनुष, अङ्गुलित्राण, खड्ग आदि शस्त्रों और अह्मद आदि सुवर्णमय आभूषणों से युक्त हाथ चारों ओर कटे हुए पड़े थे ॥ २८१२९ ॥ समरभूमि में सर्वत्र सुन्दर सामग्री से युक्त छिन्न-भिन्न आसन, ईपादण्ड, रथ घन्धन, टूटे हुए पहिये, जुए, टुकड़े-टुकड़े हो गये रथ, महाध्वजा, असंख्य माला, आभूषण, वस्त्र, मोरे गये हाथी-बोहड़े और धनुष-बाण-दाल-तन्त्रवार आदि

धारण किये मृत वीर क्षत्रिय पड़े हुए थे; इससे वह रणभूमि बहुत ही भयङ्कर दिखाई पड़ रही थी । हे महाराज ! इस प्रकार अर्जुन के बाणों से नष्ट हो रही दुःशासन की सेना अपने नायक सहित व्यथित होकर भाग खड़ी हुई । दुःशासन भी अर्जुन के बाणों से पीड़ित और भयविह्वल होकर, अपनी सेना के सहित शकटव्यूह के भीतर प्रवेश हो गये और रक्षा के लिए महात्मा द्रोणाचार्य की शरण में पहुँचे ॥ ३१॥३४ ॥

द्रोणपर्व का नव्वेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९० ॥

अथ एकनवनित्तमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

मन्त्रय उवाच—दुःशासनवलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
 सिन्धुराजं परीप्सन्त्रै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥
 स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
 कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्याऽनुमतेऽब्रवीत् ॥ २ ॥
 शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन्स्वास्ति चैव वदस्व मे ।
 भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥
 भवान्पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
 तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥

इत्यानेत्रोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

मन्त्रय कहते हैं—हे महाराज ! महारीर अर्जुन इस प्रकार दुःशासन की सेना का नष्ट करके जयद्रथ पर आक्रमण करने के लिए आचार्य की सेना के सम्मुख मेम मे चले । द्रोणाचार्य व्यूह के द्वार पर गई हुए थे । उनके समीप पहुँचकर अर्जुन ने, कृष्णकण्ठ की अनु-

मति के अनुसार, हाथ जोड़कर कहा—हे प्रभु ! आप मेरी भगई की इच्छा करें और अपने मुण मे 'स्वास्ति' कहकर मुझे आशीर्वाद दे । मे आगे प्रयास मे ही इस दुर्गव व्यूह के भीतर प्रवेश होना चाहता हूँ ॥ १॥३॥४ ॥ अतः मेरी निता के समान है,

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयाऽनघ ।
तथाऽहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५ ॥
तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।

निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥ ६ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्तस्तदाऽऽचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।

मामजित्वा न वीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ ७ ॥

एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।

सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन्वै ससारथिम् ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातान्द्रोणस्याऽऽचार्य सायकैः ।

द्रोणमभ्यद्रवद्वाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥

विव्याध च रणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते ।

क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥

तस्येपूनिपुभिश्छित्वा द्रोणो विव्याध ताबुमौ ।

विपाग्निज्वलितप्रण्यैरिपुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥

इयेष पाण्डवस्तस्य वाणैश्छेतुं शरासनम् ।

तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

द्रोणः शरैरसम्भ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाऽऽशु वीर्यवान् ।

विव्याध च ह्यानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥

अर्जुनं च शरैर्वीरः समयमानोऽभ्यवाकिरत् ।

एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद्भुजः ॥ १४ ॥

धर्मराज के समान हैं, [पुरोहित धीम्य] और महात्मा श्रीकृष्ण के समान हैं। हे तात ! आपके लिए जैसे अश्वत्थामा हैं वैसे ही मैं भी हूँ। आप जैसे उनकी रक्षा करते हैं वैसे ही मेरी भी रक्षा कीजिए। मैं आपकी कृपा से युद्धभूमि में सिन्धुराज जयद्रथ को ही मारना चाहता हूँ। हे प्रभो ! मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिए ॥४॥६॥सञ्जय कहते हैं कि महावीर द्रोणाचार्य ने अर्जुन के ये वचन सुन कर मुसकराकर कहा—ह अर्जुन ! तुम मुझे पहले जिते बिना जयद्रथ को नहीं मार सकते। अब हँसते हँसते द्रोणाचार्य ने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को और उनके रथ, घोड़े, शस्त्रा और सारथी को दक दिया ॥१॥७॥तब अर्जुन ने अपने बाणों से आचार्य के

बाणों को व्यर्थ करके अपने भयङ्कर बाणों से उन्हें पीड़ित किया। इसके पश्चात् गुरु के चरणों में, सम्मान के लिए, क्षत्रियधर्म के अनुसार उन्होंने नव बाण मारे। ॥९॥१०॥द्रोणाचार्य भी अपने बाणों से अर्जुन के बाण काट कर प्रज्वलित अग्नि और त्रिप के सदृश भया-नक बाणों से श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को घायल करने लगे। उस समय अर्जुन ने अपने बाणों से गुरु का धनुष काट डालना चाहा। वे यह विचार कर ही रहे थे कि कभी न व्याकुल होने वाले द्रोणाचार्य ने इसी मय्य में अपने बाणों से अर्जुन के धनुष की डोरी काट डाली और फिर उनके घोड़ों और सारथी को घायल करके उनकी घना में भी कई बाण मारे।

विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
 मुमोच पट्टशतान्वाणान्पृथ्वीत्वैकमिव द्रुतम् ॥ १५ ॥
 पुनः सप्तशतानन्यान्सहस्रं चाऽनिवर्तिनः ।
 चिक्षेपाऽयुतशश्चाऽन्यांस्तेऽघ्नन्द्रोणस्य तां चमूम् ॥ १६ ॥
 तैः सम्यगस्तैर्वलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
 मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १७ ॥
 विसूताश्चध्वजाः पेतुः सञ्छिन्नायुधजीविताः ।
 रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥ १८ ॥
 चूर्णिताक्षिसदम्भानां वज्रानिलहुताशनैः ।
 तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेदमनाम् ॥ १९ ॥
 पेतुरश्वसहस्राणि प्रहृतान्यर्जुनेषुभिः ।
 हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २० ॥
 रथाश्चद्विपत्न्योधाः सलिलौघा इवाऽद्भुताः ।
 युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥

तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं कुरुप्रवीरान्युधि निष्टपन्तम् ।

स द्रोणमेघः शरवृष्टिवैगैः प्राच्छादयन्मेघ इवाऽर्करश्मीन् २२ ॥

अथाऽत्यर्थं विसृष्टेन द्विपतामसुभोजिना ।

आजग्मे वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनञ्जयम् ॥ २३ ॥

अर्जुन के ऊपर द्रोणाचार्य बाण बरसा ही रहे थे कि अर्जुन ने अपने धनुष पर दूसरी डोरी चढ़ा दी । सब अर्खों के जाननेवालों में श्रेष्ठ अर्जुन ने आचार्य को अपनी रक्षा दिखाने के लिए, और उनसे बढ़कर कार्य करने के लिए, एक साथ एक ही बाण की तरह छः सौ बाण लेकर छोड़े ॥ १११५ ॥ फिर न लौटने वाले अन्य सात सौ बाण, फिर एक सहस्र बाण और फिर दस सहस्र बाण छोड़े । वे बाण द्रोणाचार्य की सेना का महार करने लगे । अर्जुन के बाणों से घायल और प्राणहीन होकर अमर्य मनुष्य, हाथी और घोड़े रणभूमि में गिरने लगे । अर्जुन के बाणप्रहार से रथी योद्धा एकाएक अर, पन्ना, सारथी और घोड़े आदि में रहित होकर, अत्यन्त पीड़ित होकर, मर-मरकर रथों पर से गिरने लगे ॥ १६ ॥ लाटनके बाण लगने से बड़े-बड़े हाथी, वज्राघात से फटे हुए पर्यन्तशिखर की भौति,

और भी से छिन्न भिन्न मेघमण्डल की तरह और अभि से जले हुए भवन की तरह एकाएक पृथ्वी पर गिरने लगे । हिमालय के ऊपर में जलधारा के वेग से पीड़ित हँसों के झुण्ड की भीति सहस्रों घोड़े अर्जुन के बाणों से मरकर गिरने लगे । प्रलयकाल के सूर्य की किरणों के समान अर्जुन के अश्व और बाणों से मरे हुए अमर्य योद्धा, हाथी और घोड़े जलराशि के समान गिरने लगे । तब बाणलग्न किरणों के द्वारा युद्धभूमि में कीरपक्ष की सेना को भस्म करते हुए सूर्यमण्डल अर्जुन को मेघतुल्य द्रोणाचार्य ने बाणवर्षा-लग्न जलधारा से ढक लिया । मेघ जैसे सूर्य की किरणों को ठिपा ले, धीमे ही द्रोणाचार्य ने अपने बाणों के गन्ध में अर्जुन के रथ को ठिपा दिया ॥ १७ ॥ २२ ॥ अब द्रोणाचार्य ने शत्रुओं के बाण को हटनेवाया एक नारायण बाण अर्जुन की छाती तककर बड़े वेग से चलाया । भूकम्प के

अर्जुन उवाच—गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
 न चास्ति स पुमाल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥ ३४ ॥

सञ्जय उवाच—एवं ब्रुवाणो वीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः ।
 त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥

तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
 अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं वलम् ॥ ३६ ॥

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
 काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनञ्जयमवारयन् ॥ ३७ ॥

तेपां दशसहस्राणि रथानामनुयायिनाम् ।
 अभीपाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ॥ ३८ ॥

मावेच्छका ललितथाश्च केकया मद्रकास्तथा ।
 नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः ॥ ३९ ॥

कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः ।
 भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति ॥ ४० ॥

पुत्रशोकाभिसन्तप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवाऽन्तकम् ।
 त्यजन्तं तुमुले प्राणान्सन्नद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४१ ॥

गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
 महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२ ॥

ततः प्रवृत्ते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
 अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥

हो सोकरे॥२९॥३१॥अब आचार्यको दाहनीऔर छोड़-
 कर अर्जुन बाण-बर्षा करते हुए आगे बढ़ गये । उनको
 अन्यत्र जाते देखकर द्रोणाचार्य ने कहा—॥३२॥३३॥
 हे अर्जुन ! इस समय तुम मुझसे युद्ध करना छोड़कर
 कहाँ जा रहे हो ? तुम तो संग्राम में शत्रु की जीते
 बिना कभी हटते नहीं । इस समय यह क्या बात है ?
 अर्जुन ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप भरे गुरदेव हैं,
 शत्रु नहीं हैं । मैं आपका पुत्रनुष्य शिष्य हूँ । विशेष-
 कर इस लोक में ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं जो युद्ध
 में पराक्रम के द्वारा आपको परास्त कर सके॥३४॥
 सञ्जय कहते हैं—जयद्रथ-वध के लिए उत्सुक अर्जुन
 यों कहते हुए शक्ति के साथ आगे बढ़े और आपकी

सेना को नष्ट करने लगे । पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु
 और उत्तमौजा दोनों वीर भी, अर्जुन के रूप के पहियों
 की रक्षा करते हुए, उनके पीछे पीछे आपकी सेना
 के व्यूह में प्रवेश हुए । हे महाराज ! पुत्रशोक से
 सतप्त, क्रुद्ध, मृत्यु के समान भयङ्कर, विचित्र युद्ध
 में निपुण, प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करते हुए,
 यूथपति गनराज के तुल्य पराक्रमी महाधनुर्धर अर्जुन
 जब इस प्रकार वेग से कौरव सेना के भीतर प्रवेश
 होकर उसका सहार करने लगे, तब कौरवपक्ष के
 वीर जय, यादवश्रेष्ठ शूतर्मा, काम्बोज और शुभाशु
 ने उनका सामना किया॥३५॥३६॥उस समय इन
 वीरों के अनुगामी दस गहग श्रेष्ठ रागी अर्जुन की

जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् । न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥ ४४ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिव्रमे एतन्वर्तितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

रोजने चले । उनके साथ हा अभापाह शूरसेन, शिपि, वसाति, मोखेछत्र, ललित्य, कैत्रय, मद्रन आदि देशों के गार योद्धा नारायणी सेना, गोपालगण और पहले कर्ण न जिन्हें परास्त किया था वे, शूरश्रेष्ठ काम्योज देग क नीर उसाह के साथ प्रसन्नत पूर्वक द्रोणाचार्य को आगे करने अर्जुन को रोजने लगे ॥ ३८॥४२॥

उस समय परस्पर युद्ध करने के लिए उद्यत कौरव पक्ष के उक्त योद्धा आर अर्जुन घोर सप्राप्त करने लगे । रोग जो जैसे ओषध आदि उपचार रोजते हैं उसे ही जयद्रथ को मारने के लिए आते हुए वार अर्जुन को वे सत्र याद्धा मिलकर रोजने लगे ॥ ४३॥४४॥

— ० —

द्रोणपर्व या इक्ष्वाक्यपर्वोऽध्याय समाप्त हुआ ॥ ९१ ॥

अथ दिनवर्तितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

सञ्जय उवाच — सत्रिच्छस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ॥ १ ॥
 द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥
 किरन्निपुगणांस्तीक्ष्णान्सरज्मीनिव भास्करः ।
 तापयामास तत्सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥ २ ॥
 अश्वो विद्धो रथविद्धः सारोहः पातितो गजः ।
 छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चकैर्विनाकृताः ॥ ३ ॥
 विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्त्तानि समन्ततः ।
 इत्यासीन्तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥
 तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्वगैः ।
 अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥
 सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसङ्गरः ।
 अभ्यद्रवद्रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥

वानेपर्वो अध्यायः ॥ ९२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजे द्र ! इस प्रकार जन कौरव पक्ष के वीरों ने पराक्रमी अर्जुन को घेर लिया और द्रोणाचार्य भी उनका पाठा करते हुए शीघ्रता क माथ आगे बढ़े, तब अर्जुन उसी प्रकार सूर्य विरण तुल्य तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं की अत्यन्त सतप्त करने लग जिस प्रकार व्याधियों देह को पीड़ा पहुँचाना हैं । अर्जुन क दारुण बाणप्रहार से कौरवपक्ष के घोड़े घायल होने लगे, रथ टिन्न भिन्न होने लगे, सवारों सहित बड़े बड़े क्षापी पृथ्वी पर गिरने लगे, वीरों

के सिर पर के छत्र बट-बटकर गिरने लगे और रथों के पहियों के टुकड़े टुकड़े होने लगे । अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर सत्र सैनिक इधर-उधर प्राण ले-छेकर भागने लगे । हे नरनाथ ! महावीर अर्जुन जब घनघार सप्राप्त करने लगे तब उनके बाणों के अतिरिक्त युद्ध भूमि में और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था ॥ १॥४॥ उस समय वे अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने की अभि लाषा से सीधे जानेवाले ताक्ष्ण बाणों के द्वारा कौरव सेना को कँपाते हुए प्रतापी द्रोणाचार्य की ओर चले

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिन्निरजिह्वगैः ।
 अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वामं समार्पयत् ॥ ७ ॥
 तं तूर्णमिव वीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
 अभ्यधावदिपूनस्यन्निपुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥
 तस्याऽऽशु क्षितस्तन्महान्हि भलैः सन्नतपर्वभिः ।
 प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥
 तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याऽऽचार्यकं युधि ।
 यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद्यदर्जुनः ॥ १० ॥
 क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः ।
 द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥
 अर्जुनः शरवर्षं तद्ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष ।
 प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्वाणान्निशातयन् ॥ १२ ॥
 द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतबाहनमार्दयत् ।
 वासुदेवं च सप्तत्या बाहोरुरसि चाऽऽशुगैः ॥ १३ ॥
 पार्थस्तु प्रहसन्धीमानाचार्यं सशरौघिणम् ।
 विस्त्रजन्तं शितान्वाणानवारयत् तं युधि ॥ १४ ॥
 अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ ।
 आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोरिथितम् ॥ १५ ॥
 वर्जयन्निशितान्वाणान्द्रोणचापविनिःसृतान् ।
 किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत् ॥ १६ ॥

॥५॥६॥महावीर द्रोण ने अपने शिष्य अर्जुन के ऊपर मर्मभेदी और संधि निशाने पर जानेवाले पचीस बाण छोड़े । अस्त्रविद्या के जाननेवालों में मुख्य वीर अर्जुन ने बाणों के द्वारा आचार्य के बाणों का वेग रोक दिया । फिर वे इसीप्रकार से आगे बढ़े । उन्होंने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते हुए सन्नतपर्व-युक्त भट्ट बाणों से द्रोणाचार्य के भट्ट बाणों को काट डाला ॥७॥९॥हि राजेन्द्र ! उस समय हमने आचार्य की ऐसी अद्भुत शिक्षा और कुशलता देखी कि युवा अर्जुन यत्न करके भी उनके शरीर में एक बाण तक नहीं छुआ सके । महामेघ जैसे असंख्य जलधाराएँ बरसानी हैं वैसे ही द्रोणक मेघ अर्जुनक पर्वत पर बाणों की वर्षा करते ही दिग्विषट्कृत था ।

पराक्रमी अर्जुन इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए । उन्होंने अपने बाणों से द्रोण के बाणों की वर्षा को रोक दिया । द्रोणाचार्य ने अर्जुन को पचीस और धी-कृष्ण को, छातों तथा भुजाओं में, सत्तर बाण मारे ॥१०॥१३॥अर्जुन ने भी हँसते-हँसते बाणवर्षा करनेवाले आचार्य के प्रहाराँ को निष्फल कर दिया । प्रलयकाल के अग्नि के समान प्रज्वलित होकर दुर्धर्ष हो रहे द्रोणाचार्य के बाणों की चोट बचाकर अर्जुन भोज की सेना को नष्ट करने लगे । द्रोणाचार्य के धनुष में निकलते हुए बाण अवश्य थे, इसी कारण अर्जुन उन्हें बचा गया । मिलाकर पर्वत के समान अटल द्रोणाचार्य में बचते हुए वे धनुर्या और काम्योज-

सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
 अभ्ययाद्वर्जयन्द्रेणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥
 ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम् ।
 अविध्यत्तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥
 तमर्जुनः शतेनाऽऽजौ राजन्विव्याध पत्रिणाम् ।
 पुनश्चाऽन्यैस्त्रिभिर्वाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥
 भोजस्तु प्रहसन्पार्थ वासुदेवं च माधवम् ।
 एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ २० ॥
 तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ।
 शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविपसन्निभैः ॥ २१ ॥
 अथाऽन्यच्चनुरादाय कृतवर्मा महारथः ।
 पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥
 पुनश्च निशितैर्वाणैः पार्थ विव्याध पञ्चभिः ।
 तं पार्थो नवभिर्वाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥
 दृष्ट्वा विपक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति ।
 चिन्तयामास बाष्पेण्यो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २४ ॥
 ततः कृष्णोऽग्नवीत्पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम् ।
 कुरु सम्यन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥
 ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वाऽर्जुनः शरैः ।
 अभ्यगाजव्रनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥ २६ ॥

नरेश सुदक्षिण के सम्मुख पहुँचे । व इन दोनों के
 मध्य में हो गये ॥ १४ ॥ अतएव कृतवर्मा ने निर्भय
 भाव से कङ्कपत्रयुक्त दस बाण अर्जुन को मारे । अर्जुन
 ने कृतवर्मा को पहले पैना एक बाण मारकर फिर
 तीन बाण मारे । अब मुमुरारते हुए कृतवर्मा ने श्री-
 कृष्ण और अर्जुन को पचीस पचीस बाण मारे । अर्जुन
 ने उसी समय कृतवर्मा का धनुष काट डाला और
 क्रोधित सर्प के समान, अग्निशिखा के आकारगले,
 इक्कीस बाण मारे ॥ १८ ॥ १९ ॥ महारथी कृतवर्मा ने तुल्य
 ही दूसरा धनुष लेकर, अर्जुन की छाती ताककर,
 पाँच बाण पहले और पाँच बाण उसके पश्चात् मारे ।
 महावीर अर्जुन ने भी कृतवर्मा की छाती में नव बाण

मारे । श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कृतवर्मा के साथ बहुत
 समय तक युद्ध करते देखकर सोचा कि हम लोगों को
 अब अधिक देर न करनी चाहिए । तब वे अर्जुन से बोले-
 हे पार्थ ! कृतवर्मा के साथ दया का व्यवहार करने का आ-
 वश्यकता नहीं । सम्यन्ध का विचार छोड़कर अभी इनको
 मारो ॥ २२ ॥ २३ ॥ महाबाहू अर्जुन ने श्रीकृष्ण का कहा
 मानकर स्रुति से बाण मारकर कृतवर्मा को मूर्च्छित
 कर दिया । अब वे काम्बोज-सेना के भीतर प्रवेश हुए ।
 [कृतवर्मा तुल्य ही सावधान हो गये और] अर्जुन
 को काम्बोज सेना के भीतर गये देखकर उन्होंने अर्जुन
 के चक्ररक्षक पात्रालेदशीय युधामन्यु और उत्तमीजा
 को आगे नहीं जाने दिया । उन्होंने युधामन्यु को

अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने ।
 विधुन्वन्सशरं चापं पाश्चाल्याभ्यां समागतः ॥ २७ ॥
 चक्ररक्षौ तु पाश्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ ।
 पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥ २८ ॥
 तावविध्यत्ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः ।
 त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥ २९ ॥
 तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
 त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥
 सश्चिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च ।
 अथाऽन्यच्छनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ॥ ३१ ॥
 कृत्वा विधनुपौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत् ।
 तावन्धे धनुपी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ॥ ३२ ॥
 तेनाऽन्तरेण वीभत्सुर्विवेशाऽमित्रवाहिनीम् ।
 न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥ ३३ ॥
 धार्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ ।
 अनीकान्यर्दयन्युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
 नाऽवधीत्कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिस्तूदनः ।
 तं दृष्ट्वा तु तथाऽऽयान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ॥ ३५ ॥
 अभ्यद्रवत्सुसंकुद्धो विधुन्वानो महद्भुजः ।
 स पार्थं त्रिभिरानर्च्छत्सतत्या च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥
 क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत् ।
 ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३७ ॥

तीन और उत्तमौजा को चार तीक्ष्ण बाण मारे॥२६॥
 २९॥तब उन दोनों धीरों ने कृतवर्मा को दस-दस
 बाण मारे तथा वैसे ही तीन तीन बाण और मारकर
 कृतवर्मा के रथ की ध्वजा और धनुष काट डाला ।
 यह देखकर कृतवर्मा बहुत ही कुपित हुए और उन्होंने
 तुरन्त ही दूसरा धनुष लेकर उन दोनों धीरों के धनुष
 काट डाले और उनपर अमर्य बाणों की वर्षा की ।
 वे दोनों धीर भी अन्य धनुष लेकर, उन पर डोरी
 चढ़ाकर, कृतवर्मा को तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे॥३०॥

३२॥इसी मध्य में महावीर अर्जुन शत्रु-सेना के भीतर
 प्रवेश हो गये । युधामन्यु और उत्तमौजा ने कौरव-
 सेना के भीतर प्रवेश होने की बहुत बहुत चेष्टाएँ की,
 पर कृतवर्मा के बाणों की चोट से वे कृतकार्य नहीं
 हो सके । अर्जुन कौरव-सेना में प्रवेश करके शत्रु
 के साथ उसे मारने लगा । कृतवर्मा को सम्पूर्ण पाकर
 भी उन्होंने उसे जीविन से रहित नहीं किया॥३१॥
 राजा श्रुतायुध ने जब अर्जुन को कौरव सेना के भीतर
 प्रवेश होने देखा तबने क्रुद्ध होकर धनुष पकाने हुए

आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।
 स तं न ममृषे राजन्पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥ ३८ ॥
 अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्षयत् ।
 तस्याऽर्जुनो धनुश्छित्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३९ ॥
 आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः ।
 अथाऽन्यद्भनुरादाय स राजा क्रोधमूर्छितः ॥ ४० ॥
 वासविं नवभिर्वाणैर्वाहोरुरसि चाऽपर्यत् ।
 ततोऽर्जुनः समन्नेव श्रुतायुधमरिन्दमः ॥ ४१ ॥
 शरैरनेकसाहसैः पीडयामास भारत ।
 अश्वांश्चाऽस्याऽवधीन्तूर्णं सारथिं च महारथः ॥ ४२ ॥
 विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः ।
 हताश्वं रथमुत्तृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३ ॥
 अभ्यद्रवद्रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
 वरुणस्याऽऽत्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४ ॥
 पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ।
 तस्य माताऽब्रवीद्राजन्वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥
 अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ।
 वरुणस्त्वब्रवीत्प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥
 दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनाऽवध्यो भविष्यति ।
 नाऽस्ति चाऽप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथञ्चन ॥ ४७ ॥

उसी क्षण उनके सम्मुख पहुँचे । उन्होंने अर्जुन को तीन
 और श्रीकृष्ण को सत्तर बाण मारकर एक झुप बाण से
 अर्जुन की ध्वजा काट डाली। यह देखकर अर्जुन बहुत ही
 क्रुपित हुए और गजराज के ऊपर अक्रुश-प्रहार की
 तरह श्रुतायुध के ऊपर उन्होंने छुकी हुई पोरवाले
 नये बाण चलाये । अर्जुन का पराक्रम देखकर क्रुपित
 श्रुतायुध ने अर्जुन को सतहत्तर नासक बाण मारे ॥ ३५ ॥
 अर्जुन ने क्रोध से निहल होकर श्रुतायुध का
 धनुष काट डाला और तरफों के दुकड़े दुकड़े कर
 दिये । फिर सात बाण श्रुतायुध की छाती में मारे ।
 अर्जुन का पराक्रम देखकर महावीर श्रुतायुध क्रोध के
 मोरे अत्यन्त अजीर हो उठे । उन्होंने उसी समय दूसरा

धनुष लेकर नर बाण अर्जुन के हाथों में और छाती
 में मारे । इसी समय में महाबली शत्रुदमन अर्जुन ने
 एक साथ सहस्रा बाणों की वर्षा करते करते शत्रु के
 सारथी और रथ के घोड़ों की मार गिराया । अब
 अर्जुन ने श्रुतायुध को सतहत्तर बाण और मारे । सारथी
 और घोड़े न रहने पर राजा श्रुतायुध बहुत ही क्रुपित
 हुए । ये रथ से उतरकर, गदा हाथ में लेकर अर्जुन
 के रथ के सम्मुख दौड़े ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे राजेन्द्र ! श्रुता
 युध लोकपाल वरुण के पुत्र थे । शीतल जलवाली
 महानदी पर्णाशा उनकी माता थी । पर्णाशा ने वरुण
 से यह वर माँगा था कि मेरा पुत्र किसी शत्रु से न
 मारा जा सके । वरुण ने प्रसन्नतापूर्वक कहा — हे

सर्वेणाऽवश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे ।
 दुर्धर्पस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥
 अस्त्रस्याऽस्य प्रभावाद्द्वै व्येतु ते मानसो ज्वरः ।
 इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद्गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥ ४९ ॥
 यामासाद्य दुराधर्पः सर्वलोके श्रुतायुधः ।
 उवाच चैनं भगवान्पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥
 अयुद्धयति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति ।
 हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥ ५१ ॥
 न चाऽकरोत्म तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः ।
 स तथा वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥ ५२ ॥
 प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनाऽसेन वीर्यवान् ।
 नाऽकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवाऽनिलः ॥ ५३ ॥
 प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।
 जघान चाऽऽस्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४ ॥
 हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपथत ।
 गदां निवर्त्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ॥ ५५ ॥
 हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत ।
 खेनाऽख्णेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ५६ ॥
 अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप ।
 क्षिता श्रुतायुधेनाऽथ तस्मात्तमवधीदृता ॥ ५७ ॥

श्रेष्ठ नदी ! मैं यह दिव्य अस्त्र देता हूँ । इसके प्रभाव में
 तुम्हारा पुत्र समर में अग्र्य होगा । हे भद्र ! मनुष्य
 कदापि अग्र्य या अमर नहीं हो सकता । पृथ्वी पर
 जन्म लेनेवाले को अग्र्य ही काल के गाल में
 जाना पड़ता है । अस्तु, मैं तुमको यह वर देता हूँ
 कि तुम्हारा पुत्र रणभूमि में अग्र्य होगा । तुम अपने
 मन से चिन्ता दूर करो ॥ ४४ ॥ ४९ ॥ यह कहकर वरुण
 ने मन्त्र के माध एक दिव्य गदा श्रुतायुध को दी ।
 उसी गदा के प्रभाव से श्रुतायुध पृथ्वी पर दुर्जय हो
 उठे । जिस समय वरुण ने श्रुतायुध को गदा दी
 थी उसी समय यह भी कह दिया था कि देगो, जो
 कोई युद्ध न करता हो उस पर इस गदा का वार न

करना । यदि वार करोगे तो यह गदा उलटकर तुम्हारे
 ही ऊपर गिरेगी ॥ ४९ ॥ ५१ ॥ समय पड़ते ही काल-
 मोहित होकर श्रुतायुध ने वरुण के वचनों की श्रद्धा
 नहीं की — ये उस वीर-घातिनी गदा को कृष्णचन्द्र
 के ऊपर चला बैठे । पराक्रमी भगवान् कृष्ण ने उस
 गदा का प्रहार अपने सुदृढ़ कंधे पर रोजा । विस्फा-
 ल पर्वत जैसे प्रचण्ड आँधी में नहीं कोपता जैसे
 ही उस गदा के प्रहार में श्रीकृष्ण भी विचलित नहीं
 हुए । यह गदा दुष्टप्रयोग-रहित 'शुक्ला' के समान बड़े
 बेग से पण्ट पड़ी; उमने महावीर श्रुतायुध को आकर
 चूर-चूर कर दिया । इस प्रकार वीर श्रुतायुध को
 मारकर यह गदा पृथ्वी में गिर पड़ी ॥ ५२ ॥ ५५ ॥ गदा

यथोक्तं वरुणेनाऽऽजौ तथा स निधनं गतः ।
 व्यसुश्चाऽप्यपतद्भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥
 पतमानस्तु स वभौ पर्णाशयाः प्रियः सुतः ।
 स भग्न इव वातेन बहुशाखोः वनस्पतिः ॥ ५९ ॥
 ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः ।
 प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिन्दमम् ॥ ६० ॥
 ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः ।
 अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१ ॥
 तस्य पार्थः शरान्सस प्रपयामास भारत ।
 ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन्धरणीतलम् ॥ ६२ ॥
 सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेपितैर्मृधे ।
 अर्जुनं प्रति विव्याध दशभिः कङ्कपात्रिभिः ॥ ६३ ॥
 वासुदेवं त्रिभिर्विध्वा पुनः पार्थ च पञ्चभिः ।
 तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं विच्छेद मारिप ॥ ६४ ॥
 भङ्गाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः ।
 स तु पार्थ त्रिभिर्विध्वा सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ६५ ॥
 सर्वपारसवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
 स घण्टां प्राहिणोद्धोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६६ ॥
 सा उ्वलन्ती महोल्केव तमासाय महारथम् ।
 सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६७ ॥

को निकल होकर लौटते और श्रुतायुध को मरते देख
 कर कौरव सेना में हाहाकार मच गया । हे राजेन्द्र !
 महावीर श्रुतायुध ने युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्ण के
 ऊपर यह गदा चलाई थी इसी कारण से, वरुण के
 कथनानुसार, उस गदा ने लौटकर उन्हीं के प्राण ले
 लिये । श्रुतायुध सब योद्धाओं के सम्मुख ही आँधी से
 दृटे हुए कई शाखाओंवाले पुराने बड़े पेड़ की भाँति पृथ्वी
 पर गिर पड़े ॥ ५६।५९॥ शत्रुसूदन श्रुतायुध को मृत्यु
 देखकर सब सैनिक और प्रधान योद्धा भी भाग खड़े हुए।
 अत्र काम्बोज देश के राजा के पुत्र शूर-वीर सुदक्षिण,
 शीघ्र चलनेवाले घोड़ों में युक्त रथ पर बैठकर, शत्रुओं
 का नाश करनेवाले अर्जुन की ओर दौड़े । अर्जुन ने

उनको सात बाण मारे । वे बाण वीर सुदक्षिण के
 शरीर को भेदकर पृथ्वी में प्रवेश हो गये ॥ ६०।६२॥
 गाण्डीव धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण बाणों की गहरी
 चोट खाकर सुदक्षिण ने कङ्कपत्रयुक्त दस बाण अर्जुन
 को मारे । इसके पश्चात् ही फिर श्रीकृष्ण को तीन
 और अर्जुन को पाँच बाण मारे । अर्जुन ने उनका
 धनुष काट डाला, ध्वजा काट गिराई और अत्यन्त तीक्ष्ण
 दो भल्ल बाण सुदक्षिण को मारे । वे भी अर्जुन को
 तीन बाण मारकर सिंहनाद करने लगे ॥ ६३।६५॥ शूर
 सुदक्षिण ने क्रुद्ध होकर खोहे की बनी हुई, कई घण्टों
 से शोभित मयङ्कर शक्ति अर्जुन के ऊपर चलाई ।
 उल्का के समान जलती हुई उस शक्ति से चिनगारियाँ

शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्छयाऽभिपरिप्लुतः ।
 समाश्रयास्य महातेजाः सृक्किणी परिललिहन् ॥ ६८ ॥
 तं चतुर्दशभिः पार्थो नराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
 साश्रध्वजधनुःसूतां विव्याधाऽचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥
 रथं चाऽन्यैः सुवहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः ।
 सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसङ्कल्पविक्रमम् ॥ ७० ॥
 विभेदं हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः ।
 स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१ ॥
 पपाताऽभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः ।
 गिरेः शिखरजः श्रीमान्सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ७२ ॥
 निर्भग्न इव चातेन कर्णिकारो हिमात्यये ।
 शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥
 महाहर्षभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।
 सुदर्शनीयस्तान्नाक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥ ७४ ॥
 पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।
 धारयन्नक्षिसङ्काशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥ ७५ ॥
 अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।
 ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ।
 हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ७६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथनभपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणस्थे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

निकल रही थी । वह शक्ति आकर अर्जुन की छाती में लगी और घात करके पृथ्वी पर गिर पड़ी । शक्ति की गहरी चोट खाकर अर्जुन मूर्च्छित हो गये, किन्तु वे तुरन्त ही सँभल गये और क्रोध के मोरहोंट चबाने लगे । उन्होंने वक्त्रपत्रयुक्त चौदह नाराच बाण मोर जिनसे सुदक्षिण घायल हुए, उनका मारवा मरा, रथ के घोड़े नष्ट हुए तथा ध्वजा और धनुष कट गया । इसके पश्चात् बहुत से बाण मारकर उन्होंने सुदक्षिण के रथ के टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ६६ ॥ ७० ॥ निवार और निम्न जिनका निष्फल हो गया है, उन सुदक्षिण के हृदय में अर्जुन ने तीक्ष्ण धारवाला एक बाण बड़े जोर से मारा । उस बाण के लगने से सुदक्षिण का हृदय फट

गया, दृढ़ कच कटकर गिर पड़ा, प्राण निकल गये, सब अङ्ग ढाँले पड़ गये, मुकुट और अङ्गद आदि गिर पड़े और वे यन्त्रयुक्त इन्द्रभज की भाँति मुख के बल रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े । बड़ी बड़ी शाखाओंवाला कर्णिकार का सुदृढ़ वृक्ष जैसे गर्मियों में औंधी से टूटकर पर्वत के शिखर पर से नीचे गिर पड़े, जैसे ही थीर सुदक्षिण गिर पड़े ॥ ७० ॥ ७२ ॥ काम्बोज देश के बने बहुमूल्य विजौनों पर लेटने योग्य और बहुमूल्य आभूषण पहने हुए राजा सुदक्षिण मरकर रणशय्या पर शिखरयुक्त पर्वत के समान जान पड़ने लगे । सुन्दर रूप और आरक्त नेत्रोंवाले काम्बोजराज के पुत्र सुदक्षिण अर्जुन के कर्णी बाण से मरकर पृथ्वी पर गिर

पड़े। सिर पर अग्नि के समान दमकती हुई सुवर्ण
की माला पहने, पृथ्वी पर पड़े हुए, मृत महाबाहू सुद-
क्षिण बहुत ही शोभायमान हुए। राजेन्द्र ! तब श्रुतायुध

और काम्बोज-राजकुमार सुदक्षिण की मृत्यु देखकर
आपके पुत्र की सेना भाग खड़ी हुई। ७३।७६॥

— ० —

दोणपर्ब का वानेवर्षा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९२ ॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

सञ्जय उवाच—हते सुदक्षिणे राजन्वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाऽभ्यद्रवन्पार्थ कुपिताः सैनिकास्तव ॥ १ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनञ्जयम् ॥ २ ॥
तेषां पट्टिशतानन्यान्प्राप्तमथ्नात्पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात्क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥
ते निवृत्ताः पुनः पार्थ सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान्निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान्युधि ॥ ४ ॥
तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहुंश्चाऽपि धनञ्जयः ॥ ५ ॥
शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा ।
अभ्रच्छायेव चैवाऽऽसीद् ध्वांक्षुग्रवलेर्युधि ॥ ६ ॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च धनञ्जयमुद्युयताम् ॥ ७ ॥
वलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८ ॥

तिरानेवर्षा अध्याय ॥ ९३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! महावीर श्रुतायुध और सुदक्षिण को मार गये देखकर कौरवपक्ष के सब सैनिक क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने क्रोधपूर्वक अर्जुन का सामना किया। अभिषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति देशों के वीरों के अनेक दल अर्जुन पर एकत्रिं से असंख्य बाणों को वर्षा करने लगे। तब महावीर अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके साथ सौ पुरुषों को मथ डाला। जैसे मृग बाघ से भयभीत होकर भागते हैं वैसे ही वे अर्जुन के बाणों की चोट से विह्वल होकर भागने लगे। १।३। ये फिर धैर्यधारण-पूर्वक पलट पड़े; उन्होंने चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया।

रण में शत्रुओं को मारकर जय प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले अर्जुन, गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों के द्वारा, वीरघना के साथ अपनी ओर आक्रमण करने की आत्ना डूँ उन लोगों के सिर और हाथ काट-काट कर गिराने लगे। उनके इतने सिर काटकर गिरे कि रणभूमि में निरन्तर सिर ही सिर दिव्दि पड़ने लगे। सहस्रों वीरों और गिद्धों के दल उड़ने से ऐसा जान पड़ने लगा कि रणभूमि पर मेघ छाये हुए हैं। ४।६॥ इस प्रकार जब वीर अर्जुन उन लोगों का संहार करने लगे तब महावीर श्रुतायु और अच्युतायु दोनों भाई अर्जुन से युद्ध करने आये। वे बली, सार्थाशिल, वीर,

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद्यशः ।
 अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९ ॥
 तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
 पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटाकं जलदौ यथा ॥ १० ॥
 श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनञ्जयम् ।
 आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥
 सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
 जगाम परमं मोहं मोहयन्केशवं रणे ॥ १२ ॥
 एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
 शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥
 क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
 पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥
 ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
 सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनञ्जयम् ॥ १५ ॥
 कृष्णश्च भृशसन्तप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
 आश्वासयत्सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनञ्जयम् ॥ १६ ॥
 ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्षौ धनञ्जयम् ।
 वासुदेवं च वाष्णंयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥
 सचक्रकूवररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
 अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १८ ॥

कुलीन, महाबाहु और श्रेष्ठ योद्धा थे। दोनों वीर दाहिनी और बाई ओर से अर्जुन पर बाण बरसाने लगे। महान् यश प्राप्त करने की अभिलाषा से आपके पुत्र के लिए अर्जुन को मारने के लिए उद्योगी वे दोनों धनुर्धर स्फूर्ति के साथ अर्जुन पर प्रहार करने लगे। जैसे किसी वड़े सरोवर को दो मेघ जलधाराओं से भर दें, वैसे ही उन्होंने तीक्ष्ण सहस्रों बाणों से अर्जुन को ढक दिया॥७१॥ इसी अंश में कुपित होकर श्रुतायु ने अर्जुन को धारदार बहुत ही तीक्ष्ण तोमर मारा। बलवान् शत्रु ने बड़े वेग से प्रहार किया। उस प्रहार से अर्जुन की गहरी चोट आई। वे थोड़ी देर के लिए अचेत हो गये। यह देखकर श्रीकृष्ण-

चन्द्र की बड़ी चिन्ता हुई। इसी अंश में मौका पाकर महारथी अच्युतायु ने भी अर्जुन को तीक्ष्ण शूल मारा। जैसे कोई कटे हुए पर नमक छिड़के बैसते ही अच्युतायु ने एक प्रहार पर दूसरा प्रहार किया। बहुत गहरी चोट लगने से अर्जुन की बड़ी कष्ट हुआ। वे कुछ समय तक ध्वजा दण्ड के सहारे बटे रहे॥११॥ १४॥ महाराज। उस समय आपके सब सैनिक अर्जुन की मृत्यु को प्राप्त हुआ जानकर जोर से सिंहनाद करने लगे। उनकी अचेत देखकर कृष्णचन्द्र को बड़ा वेद हुआ। वे मधुर वचनों से अर्जुन की दाइस बँधाने लगे। अंतर पाकर वे दोनों श्रेष्ठ रथी अर्जुन और वासुदेव के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे।

प्रत्याश्वस्तस्तु वीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
 प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९ ॥
 सञ्छन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
 शत्रू चाऽभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवाऽनलौ ॥ २० ॥
 प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमन्त्रं महारथः ।
 तस्मादासन्सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥
 ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
 विचेरुराकाशगताः पार्थवाणविदारिताः ॥ २२ ॥
 प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
 प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन्त्रै महारथान् ॥ २३ ॥
 तौ च फाल्गुनवाणौ धैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
 वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥
 श्रुतायुपश्च निधनं वधश्चैवाऽच्युतायुपः ।
 लोकविस्मापनमभूत्समुद्रस्येव शोपणम् ॥ २५ ॥
 तयोः पदानुगान्दृत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
 प्रत्यगाद्भारतीं सेनां निघ्नन्पार्थो वरान्वरान् ॥ २६ ॥
 श्रुतायुपं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाऽच्युतायुपम् ।
 नियतायुश्च संकुञ्चो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥
 पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
 किरन्तौ विविधान्वाणान्पितृव्यसनकशितौ ॥ २८ ॥

उस समय यह अद्भुत दृश्य देखने में आया कि उन-
 के बाणों में अर्जुन का रथ पहिले-कूबर-वोड़-वज्रा-
 पनाका सहित अदृश्य हो गया ॥ १५१ ॥ महाराज !
 निश्चित देर के पश्चात् धीरे-धीरे अर्जुन सागरान्द्र हुए ।
 वे मानों यमराज के घर से लौटकर आये । श्रीकृष्ण
 सहित अपने रथ को बाणों में छिप गया देवकार
 अर्जुन को यज्ञ क्रोध हो आया । उन्होंने देवा कि
 दोनों शत्रु उनके सम्मुख अग्नि के ममान प्रज्वलित
 हो रहे हैं । तब महारथी अर्जुन इन्द्राक्ष का प्रयोग
 करके बाण बरसाने लगे । उस समय अज के प्रभाव
 में अर्जुन के धनुष में सहस्रों बाण प्रकट होने लगे ।
 गण्डीव धनुष में छूटे हुए वे बाण आकाश में विच-

रने लगे । उन बाणों ने श्रुतायु अच्युतायु के बाणों
 को व्यर्थ कर दिया ॥ १९, २० ॥ अर्जुन अपने बाणों के
 वेग से शत्रुओं के बाणों को विकल करके जड़ों-जड़ों
 महारथी योद्धा थे, वहाँ-वहाँ उनसे युद्ध करते हुए विचरने
 लगे । अर्जुन के असंख्य बाणों से उन दोनों के हाथ और
 सिर कट गये; वे आँधी ॥ उलझे हुए पेड़ों की तरह
 पृथ्वी पर गिर पड़े । समुद्र को सोफ लेने के ममान
 श्रुतायु और अच्युतायु की मृग्य देवकार लोगों को
 बड़ा आश्चर्य हुआ । अर्जुन ने उन दोनों शत्रुओं के
 माथी पाँच मी रथी योद्धाओं को भी मार डाला ।
 इसके पश्चात् शत्रुपक्ष के श्रेष्ठ वीरों को मारने हुए
 अर्जुन कौरवमेना के भीतर प्रवेश हो पड़े ॥ २१, २६ ॥

तावर्जुनो मुहूर्त्तेन शरैः सन्नतपर्वभिः ।
 प्रैषयत्परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥
 लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
 नाऽशक्नुवन्वारयितुं पार्थ क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥
 अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।
 क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्जिज्ञप्तिं हस्तिसादिनः ॥ ३१ ॥
 दुर्योधनसमादिष्टाः क्रुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
 प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२ ॥
 तेपामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेपितैः शरैः ।
 निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहून्पि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥
 तैः शिरोभिर्मही कीर्णां बाहुभिश्च सहाऽङ्गदैः ।
 बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥
 बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च ।
 पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥
 शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रसृतशोणिताः ।
 अदृश्यन्ताऽद्रयः काले गैरिक्काम्बुलवा इव ॥ ३६ ॥
 निहताः शेरते स्माऽन्ये बीभर्त्सोर्निशितैः शरैः ।
 गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥
 नानावेषधरा राजन्नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
 रुधिरैणाऽनुलिप्ताऽङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥

क्षुत्ताय और अच्युताय की मृत्यु देखकर उनके पुत्र निय-
 ताय और दीर्घाय, पितृशोक से व्यथित और कुपित
 होकर, विविध बाण बरसाते हुए अर्जुन के सम्मुख
 आये । कुपित अर्जुन ने क्षण भर में ताक्ष्य बाण
 मारकर उन दोनों को भी मार डाला । कमलवन को
 जैसे कोई गजराज रौंदे वैसे ही शत्रु सेना को मथते
 हुए वीर अर्जुन को कौरवपक्ष के वीर आगे बढ़ने से
 नहीं रोक सके। २७।३०। उस समय सहस्रों सुशि-
 क्षित कुपित गजरोही अङ्ग देश के योद्धाओं ने अर्जुन
 को चारों ओर से घेर लिया । दुर्योधन की आज्ञा से
 प्राच्य, दाक्षिणात्य, कलिङ्ग आदि देशों के राजा लोग
 पर्वताकार हाथियों के द्वारा अर्जुन पर आक्रमण करने

लगे । अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों
 से उनके भूपणयुक्त बाहु और सिर काटने लगे। ३१।
 ३३। उन वीरों के कटे हुए अङ्गद-युक्त हाथों और
 सिरों से परिपूर्ण रणभूमि सर्पों से घिरी हुई सुवर्ण-
 शिला के समान जान पड़ने लगी । बाणों से कटे
 हुए हाथ और सिर गिरते समय पेड़ों पर से गिरते
 हुए पक्षियों के समान दिखाई पड़ रहे थे । बाण
 लगने से हाथियों के शरीरों से रक्त बहने लगा और
 वे उन पर्वतों के समान जान पड़ने लगे जिनसे वर्षा-
 काल में गेरू के झरने बह रहे हों। ३४। ३६। हाथियों
 पर बैठे हुए, विकृताकार, विविध विचित्र वेषधारी
 शत्रुयुक्त म्लेच्छगण अर्जुन के विचित्र ताक्ष्य बाणों

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः ।
 सहस्रशशिलन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥
 चुक्रुशुश्च निपेतुश्च वभ्रमुश्चाऽपरे दिशः ।
 भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव समृदुर्गजाः ॥ ४० ॥
 सान्तरायुधिनश्चैव द्विपांस्तीक्ष्णविषोपमाः ।
 विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥ ४१ ॥
 यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह बाल्हिकैः ।
 काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥
 द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
 गोयोनिप्रभवाम्लेच्छाः कालकल्पाः प्रहारिणः ॥ ४३ ॥
 दार्वीतिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः ।
 ते न शक्याः स्म संख्यातुं व्राताः शतसहस्रशः ॥ ४४ ॥
 अभ्यवर्पन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः ।
 अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः ॥ ४५ ॥
 तेपामपि ससर्जाऽऽशु शरवृष्टिं धनञ्जयः ।
 सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवाऽऽयतिः ॥ ४६ ॥
 अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनञ्जयः ।
 मुण्डार्धमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान् ॥ ४७ ॥

से मरकर पृथी पर गिरे लगे । वे सिर से पाँव तक
 रक्त से नहाये हुए थे । जिनकी पीठ पर मशर और
 महायन्त्र बँटे हुए थे तथा समीप चरण रक्षक लड़े
 हुए थे, ऐसे महासौ हाथी अर्जुन के बाणों की चोट
 पाकर मुग में रक्त उगड़ने लगे । बहुत से हाथियों
 के अङ्ग फट-फट गये । कुछ चिट्ठाने, कुछ गिले
 और कुछ ऊपर-ऊपर भागने-फिरने लगे । बहुत से हाथी
 व्याकुल होकर अपने ही पक्ष के सैनिकों की कुचलने
 लगे । विभिन्न नागों के समान और विविध अस्त्र दागने
 लगे । गन्धर्व सहस्रों हाथियों की ऐसी दशा अर्जुन के बाणों ने
 पर दायी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ आसुरी मायाओं को जानने-
 गाने, मोहक, घोर नेत्रों से, वीर्य से मंत्रों व दंडों,
 दुराचारी, लज्जित, बलप्रिय यवन, पारद, शक,
 बर्हिक गल हाथी के पराक्रम से द्रविड़, नन्दिनी
 गऊ की ये निम्न उल्लेख का अनुभव अमोघ प्रहार करने

वाले म्लेच्छ, दार्वीतिसार, दरद और सहस्रों पुण्ड-
 रशीय बाल्य (पतिन) क्षत्रिय मित्रकार अर्जुन पर
 आक्रमण करने लगे । उन म्लेच्छों की सग्या बताना
 सम्भव नहीं । अनेक प्रकार के युद्धों में निपुण थे
 म्लेच्छ, अर्जुन के ऊपर, तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने
 लगे । तब उनका महार करने के निमित्त अर्जुन ने
 शीघ्रता के साथ बाण-वर्षा करना आरम्भ कर दिया ।
 अर्जुन के धनुष में टीढ़ीदल के समान बाण निकलने
 लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने अस्त्र के प्रभाव से इतने बाण
 बरसाये कि रणभूमि में उठने में लोगों की मी छाया
 दिखाई पड़ने लगी । पूर्ण मिर मुदाय, आधा मिर मुदाय,
 ब्रह्माधारी, अश्वि, दादो मूँट में भयानक मुगल-
 चोट उन म्लेच्छों को अर्जुन ने अनेक अस्त्र के प्रभाव
 से देगने ही देगने नष्ट कर दिया । गदाही और
 पर्वश की बन्दराओं में रहनेवाले म्लेच्छगल अर्जुन

म्लेच्छानशातयत्सर्वान्समेतानस्त्रतेजसा ।
 शरैश्च शतशो विद्धास्ते सङ्घा गिरिचारिणः ।
 प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥ ४८ ॥
 गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः ।
 वकाः कङ्का वृका भूमावपिवन्लुधिरं मुदा ।
 पत्न्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंकमाम् ॥ ४९ ॥
 शस्वर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
 प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ५० ॥
 छिन्नांगुलीक्षुद्रमस्यां युगान्ते कालसन्निभाम् ।
 प्राकरोद्गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ ५१ ॥
 देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ।
 यथा स्थलं च निम्नं च न स्याद्वर्पति वासवे ॥ ५२ ॥
 तथाऽऽसीत्पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता ।
 पट्टसहस्रान्हयान्वीरान्पुनर्दशशतान्वरान् ॥ ५३ ॥
 प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।
 शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः ॥ ५४ ॥
 शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ।
 स वाजिरथमातङ्गान्निम्नव्यचरदर्जुनः ॥ ५५ ॥
 प्रभिन्न इव मातङ्गो मृदन्नलवनं यथा ।
 भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥ ५६ ॥

के असंख्य बाणों से पीड़ित, नष्ट और भयविह्वल होकर
 इधर-उधर भागने लगे । अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से
 घायल होकर और मरकर पृथ्वी पर गिरे हुए हाथियों,
 घोड़ों और उनके सवारों के रक्त को बगल, कङ्का, वृक
 आदि पशु-पक्षी प्रसन्नतापूर्वक पीने लगे॥४७॥४९॥
 अर्जुन ने उस समय रणभूमि में रक्त के प्रवाह और
 तरङ्ग से युक्त भयङ्कर नदी बहा दी, जो कि प्रलय-
 समय की काल-तुल्य नदी जान पड़ती थी । वह नदी
 पैदल, घोड़े, रथ, हाथी आदि की सैदियों से युक्त
 थी; असंख्य राजपुत्रों, हाथियों, घोड़ों, रथियों और
 पैदलों के शरीरों से निकले हुए रक्त से उत्पन्न हुई
 थी । बाण-वर्षा ही उसमें डोंगी-नाम आदि के समान

थी । केश ही उसमें सेवार और घास के स्थान देख
 पड़ते थे । कटी हुई उँगलियों उसमें छोटी मछलियों
 के समान जान पड़ती थी । बड़े-बड़े हाथियों के शरीर
 उसकी तटभूमि प्रतीत होते थे । जब मृतलाधार जल
 बरसता है तब जैसे ऊँची-नीची सब भूमि एकरूप
 हो जाती है वैसे ही वह रणभूमि वीर-सेना के रक्त
 से एकरूप दिखाई पड़ने लगी॥४९॥५३॥ अर्जुन ने उस
 समय युद्धभूमि में छः सहस्र घोड़ों और एक सहस्र
 वीर क्षत्रियों को मार डाला । सुसज्जित हाथी अर्जुन के
 बाणों से छिन्न भिन्न होकर, वज्र के प्रहार से फटे हुए
 पर्वतों के समान, पृथ्वी पर गिरे लगे । मत्त गजराज
 जैसे नरकट के वन को रौंदता हुआ इधर-उधर निचरता

निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ।
 सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥ ५७ ॥
 शराचिरदहत्कुङ्कः पाण्डवाग्निर्धनञ्जयः ।
 शून्यान्कुर्वन्नथोपस्थान्मानवैः संस्तरन्महीम् ॥ ५८ ॥
 प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनञ्जयः ।
 वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥ ५९ ॥
 प्राविशद्भारतीं सेनां संकुञ्चो वै धनञ्जयः ।
 तं श्रुतायुस्तथाऽऽम्बष्ठो ब्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥
 तस्याऽर्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
 न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिप ॥ ६१ ॥
 धनुश्चाऽस्याऽपरेऽश्छित्वा शरैः पार्थो विचक्रमे ।
 अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेश्चक्षुः ॥ ६२ ॥
 आससाद् रणे पार्थं केशवं च महारथम् ।
 ततः सम्प्रहरन्वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥ ६३ ॥
 रथमाचार्यं गदया केशवं समताडयत् ।
 गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४ ॥
 अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत ।
 ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥
 छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ।
 अथाऽपरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥

हे वैसे ही अर्जुन भी असह्य हाथी, घोड़े, रथी आदि का सहार करने हुए रणभूमि में विचरने लगे। प्रचण्ड अग्नि जैसे वायु की सहायता से असह्य वृक्ष, लता, गुल्म, सूखी लकड़ी और घास घुस से परिपूर्ण जङ्गल को जलाती है वैसे ही महावीर अर्जुन, श्रीकृष्ण की सहायता से ज्वाल-तुल्य तीक्ष्ण बाणों के द्वारा असह्य कौरव-सेना को मृत्यु के मुख में भेजने लगे। उन्होंने सब रथों को योद्धाओं से रहित आर पृथ्वी को मनुष्य आदि के मृत शरीरों से परिपूर्ण कर दिया। महावीर अर्जुन हाथ में गाण्डीव धनुष लिए हुए समरभूमि में रक्षाति से परिभ्रमण कर रहे थे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों वे नृल से कर रहे हैं॥५३॥५८॥ इस प्रकार

वज्रतुल्य बाणों की मार से युद्धभूमि को रक्त में मग्न करके कुपित अर्जुन आगे बढ़ कर कौरव-सेना के भीतर प्रवेश हुए। अम्बष्ठाधिपति श्रुतायु ने शत्रु-सेना में आते हुए अर्जुन को अपने पराक्रम से रोका॥५८॥ ६०॥ उस समय महावीर अर्जुन ने कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों से श्रुतायु के घेड़ों को मार गिराया और साथ ही धनुष भी काट डाला। अर्जुन के इस कार्य से अचछप्राज श्रुतायु के क्रोध की सीमा न रही। ये एक मारी गदा लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुन के समीप पहुँचे। उन्होंने अर्जुन के रथ की गति रोककर श्री-कृष्ण पर गदा चलाई॥६१॥६४॥ श्रीकृष्ण को गदा लगने देवकर अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे। मेघ

अचूर्णयत्तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
 अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्याऽन्यां च महागदाम् ॥ ६७ ॥
 अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ।
 तस्याऽर्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदाबुधतौ भुजौ ॥ ६८ ॥
 चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चाऽन्येन पत्रिणा ।
 स पपात हतो राजन्वसुधामनुनादयन् ॥ ६९ ॥
 इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तवन्धनः ।
 रथानीकावगाढश्च वारणाश्चशतैर्वृतः ।
 अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवाऽऽवृतः ॥ ७० ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठग्रेथे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

जैसे उदय हो रहे सूर्य को छिपा लेते हैं, वैसे ही अर्जुन ने सुवर्णपङ्क्तयुक्त बाणों की वर्षा से गदापाणि श्रुतायु को छिपा दिया और अन्य बाणों से उस गदा के टुकड़े-टुकड़े कर डाले । अर्जुन ने यह बड़ा विस्मय-जनक काम किया ॥ ६४ ॥ महावीर अम्बष्ठराज ने अपनी गदा के टुकड़े हुए देखकर तुरन्त ही दूसरी गदा हाथ में ली । वे अत्यन्त ही क्रुपित होकर उस गदा से बारम्बार अर्जुन और श्रीकृष्ण को पीड़ित करने लगे । तब रणनिपुण अर्जुन ने दो क्षुरप्र बाणों

से श्रुतायु के गदायुक्त इन्द्रध्वज सदृश दोनों हाथ काट गिराये और वैसे ही अन्य एक बाण से उनका शिर भी काट डाला । महावीर अम्बष्ठराज इस प्रकार अर्जुन के बाण से मरकर पृथ्वी को शब्दपूर्ण करते हुए, यन्त्र से छूटकर गिरे हुए इन्द्रध्वज के समान, गिर पड़े । उस समय शत्रुनाशन वीर अर्जुन असंख्य रथ, हाथी, घोड़े आदि के मध्य में घिरे होने के कारण घन्तेघंटों से घिरे हुए सूर्य के समान दिखाई पड़ने लगे ॥ ६७ ॥ ७० ॥

द्रोणपर्व का तिरानेवेर्वा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९३ ॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच—ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिन्धुराजजिघांसया ।
 द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १ ॥
 काम्योजस्य च दायादे हते राजन्सुदक्षिणे ।
 श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥
 विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः ।
 प्रभग्नं खवलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥

चौरानेवेर्वा अध्याय ॥ ९४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजा जनमेजय ! जयद्रथ को मारने की आकांक्षा से महावीर अर्जुन इस प्रकार दुर्मेघ द्रोणाचार्य की सेना और भोजराज की सेना को छिन्न-भिन्न करते हुए गृह के भीतर प्रवेश हो

गये । काम्योज-राजकुमार सुदाक्षिण और पराक्रमी श्रुतायु मारे गये । यह देखकर आपके सब सैनिक प्राण ले-लेकर चारों ओर भागने लगे । रथ पर सवार आपके पुत्र दुर्योधन यह देख शीघ्र ही आचार्य के

त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् ।
 गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम् ॥ ४ ॥
 अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम् ।
 अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥ ५ ॥
 यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः ।
 तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥
 असौ धनञ्जयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
 सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥ ७ ॥
 अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परन्तप ।
 जयद्रथस्य गोसारः संशयं परमं गताः ॥ ८ ॥
 स्थिरा बुद्धिर्नेन्द्राणामासीद्ब्रह्मविदां वर ।
 नाऽतिक्रमिष्यति द्रोणं जालु जीवन्धनञ्चयः ॥ ९ ॥
 योऽसौ पाथो व्यतिक्रान्तो मिततस्ते महायुते ।
 सर्वं ह्यथाऽऽतुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥
 जानमि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
 तथा मुह्यामि च ब्रह्मन्कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥
 यथाशक्ति च ते ब्रह्मन्वर्त्तये वृत्तिमुत्तमाम् ।
 प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नाऽवबुध्यसे ॥ १२ ॥
 अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम ।
 पाण्डवान्सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥ १३ ॥

समीप जाकर कहने लगे—॥११॥१॥हे ब्रह्मन् ! वीर
 अर्जुन इस सेना को नष्ट-व्रष्ट करते हुए निकल गये ।
 इस दारुण जनसंहार के अन्तर पर आपको अर्जुन
 के मारने का उपाय करना चाहिए । हे भगवन् ! आप
 अपनी बुद्धि से आगे का कर्तव्य सोचिए । ऐसा कीजिए
 कि पुरुषसिंह जयद्रथ को आज अर्जुन किसी प्रकार
 न मार सके । आप ही हम लोगों के एकमात्र आश्रय
 स्थल हैं ॥१२॥१॥देखिए, यह अर्जुन रूप अग्नि क्रोध-रूप
 वायु की प्रेरणा से प्रचण्ड होकर हमारी सेनारूप
 सूची घाम के ढेर को बंसे ही भस्म कर रहा है, जैसे
 दावानल सूखे वन को जलाता है । सेना को चीरते
 हुए अर्जुन निकट गये, इस कारण जयद्रथ की रक्षा

करने माले श्रीर लोग बड़े सङ्कट में पड़े हैं; क्योंकि उन्हें
 निश्चय था कि अर्जुन जीते जी द्रोणाचार्य को लाँच-
 कर आगे नहीं बढ़ सकते ॥१३॥१॥हे ब्रह्मन् ! मो आप
 देखते रहे आर आपके आगे से अर्जुन निकल गये ।
 हे गहामन् ! मैं समझ रहा हूँ कि आज यह मेरी
 सब सेना किसी प्रकार जीती नहीं रह सकती । हे
 महाभाग ! मैं जानता हूँ कि आप पाण्डवों के हित-
 चिन्तक हैं । इसी कारण मैं इस समय व्याकुल हो
 रहा हूँ कि मेरा कार्य कैसे सिद्ध होगा । हे ब्रह्मन् !
 मैं आपकी सेवा करता आया हूँ और यथाशक्ति आपको
 प्रसन्न करता रहा हूँ; किन्तु आपको मेरा प्यार ही नहीं
 है ॥१०॥१२॥हे अमित्रिक्रमी ! हम सब लोग सदा

अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः ।
 न ह्यहं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥
 नाऽदास्यच्चेद्वरं मह्यं भवान्पाण्डवनिग्रहे ।
 नाऽवारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १५ ॥
 मया त्वाशंसमानेन त्वत्तन्त्राणमबुद्धिना ।
 आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद्वत्तश्च मृत्यवे ॥ १६ ॥
 यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येताऽपि हि मानवः ।
 नाऽर्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताऽऽजौ जयद्रथः ॥ १७ ॥
 स तथा कुरु शोणाश्च यथा मुच्येत सैन्धवः ।
 सम चाऽऽर्त्तप्रलापानां मा क्रुद्धः पाहि सैन्धवम् ॥ १८ ॥
 द्रोण उवाच— नाऽभ्यसूयामि ते वाक्यमश्नन्नास्ति मे समः ।
 सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुपस्व विशाम्पते ॥ १९ ॥
 साराथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चाऽस्य हयोत्तमाः ।
 अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनञ्जयः ॥ २० ॥
 किं न पश्यसि घाणौघान्क्रोशमात्रे किरीटिनः ।
 पश्चाद्रथस्य पतितान्क्षिप्ताऽऽशीघ्रं हि गच्छतः ॥ २१ ॥
 न चाऽहं शीघ्रयानेऽथ समर्थो वयसाऽन्वितः ।
 सेनामुखे च पार्थानामेतद्वलमुपस्थितम् ॥ २२ ॥

आपके भक्त रहे हैं, फिर भी आप हमारा कुछ भी खयाल नहीं करते, हमारे हित और अनुरोध पर ध्यान ही नहीं देते । इसके निपरीत मैं यह भी देखता हूँ कि हमारे अग्रिय और अनिष्ट में तत्पर पाण्डवों पर ही आपका अधिक स्नेह है और आप सब प्रकार उन्हीं का हित सोचते और करते हैं । हे भगवन् ! आप हमारे ही आश्रय में रहकर, हमारी दी हुई वृत्ति से निर्गह करके, हमारी ही जड़ काट रहे हैं । मैं न जानता था कि आप उस छुरे के समान हैं जिसमें ऊपर से शहद लगा हुआ हो । यदि पहले ही आप अर्जुन को रोकने की प्रतिज्ञा न करते, तो मैं अपने घर जाने के लिए उषत सिन्धुराज जयद्रथ को कभी न रोक रखता ॥ १३ ॥ १५ ॥ मैंने मूर्खतावश आपके द्वारा जयद्रथ की रक्षा की आशा की, जयद्रथ को सान्त्वना

दी और इस प्रकार उन्हें मृत्यु के मुख में डाल दिया । यह निश्चित है कि यमराज की दाढ़ी के मध्य न जाकर चाहे कोई मनुष्य छुटकारा पा भी जाय, निन्द्य युद्ध में अर्जुन के हाथ में पड़ जाने पर जयद्रथ के प्राण नहीं बच सकते । हे गुरुर ! क्रपा करके अब आप ऐसा कीजिए कि जिससे जयद्रथ अर्जुन के हाथों से जीते बच जायें । मैं इस समय आर्त और मूढ़ सा हो रहा हूँ । मेरे इस प्रलाप पर आप ध्यान न दीजिए । यदि मेरे मुख से कुछ कटु वचन निकल गये हों तो उनके लिए आप अनुचित न मानिएगा ॥ १६ ॥ १८ ॥ राजा दुर्योधन के ऐसे वचन सुनकर आचार्य ने कहा — हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हारी बातों का बुरा नहीं मानता, क्योंकि तुमने अपने पुत्र अश्वत्थामा के समान समझता हूँ । मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, सुनो ।

युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिपतां सर्वधन्विनाम् ।
 एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३ ॥
 धनञ्जयेन चोत्सृष्टो वर्तते प्रमुखे नृपः ।
 तस्माद्ब्रूहमुखं हित्वा नाऽहं योत्स्यामि फाल्गुनम् २४ ॥
 तुर्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान् ।
 गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५ ॥
 राजा शूरः कृती दक्षो नेतुं परपुरञ्जयः ।
 वीरः स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनञ्जयः ॥ २६ ॥
 कथं त्वामप्यतिक्रान्तं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
 धनञ्जयो मया शक्य आचार्य प्रतिवाधितुम् ॥ २७ ॥
 अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरन्दरः ।
 नाऽर्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरञ्जयः ॥ २८ ॥
 येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः ।
 अस्त्रप्रतापेन जिता श्रुतायुश्च निवर्हितः ॥ २९ ॥
 सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः ।
 श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च स्लेच्छाश्चाऽयुतशो हताः ॥ ३० ॥
 तं कथ पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम् ।
 प्रतियोत्स्यामि दुर्ध्वं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥

स्कन्तिशाली घोड़ों और श्रीकृष्ण जैसे सारथी की पावर
 अर्जुन दात की दात में आगे बढ़ चके जाते हैं । तुमने
 नहीं देखा कि अर्जुन जब मेरे आगे से जा रहे थे
 तब उनके घोड़े इतनी शान्ति से दाढ़ रहे थे कि मैंने
 जो बाण छोड़े थे वे अर्जुन के रथ से जोस भर पीछे
 रह गये थे ॥ १९, २० ॥ हे राजा ! अब मैं बृद्ध हो
 गया हूँ, इस कारण मुझे यह स्कन्ति नहीं है और
 मैं शीघ्रता से चलने में असमर्थ हूँ । विशेष कर इस
 समय पाण्डवपक्ष की सत्ता और अथ योद्धा हमारी
 सेना के सम्मुख प्रवेश द्वार पर पहुँच गये हैं । फिर
 मैं सब क्षत्रियों के रूप में यह प्रतिज्ञा कर चुका हूँ
 कि सब योद्धाओं के सम्मुख ही युधिष्ठिर को जावित
 पनड़ दूँगा । इस समय अर्जुन रहित युधिष्ठिर भी मेरे
 सम्मुख ही है । इन कारणों से मैं यह ब्रूहमुख छोड़
 कर इस समय अर्जुन की पीछे न जाऊँगा ॥ २१, २४ ॥

देखो, तुम इस पृथ्वा के राजा हो, तुम्हारे बहुत से
 सहायक हैं और तुम्हारा शत्रु इस समय तुम्हारे ही
 दल में अट्टहास है । तुम जाओ, आर जन्म-मर्म पद
 में अपने तुल्य अट्टहास शत्रु में युद्ध करो, भयभीत
 होओ नहीं । हे दुर्योधन ! तुम राजा, शूर, सुशिक्षित,
 निपुण आर वीर हो । तुमने स्वयं पाण्डवों से विरोध
 किया है । इसलिये तुम स्वयं वहाँ जाओ जहाँ अर्जुन
 हैं ॥ २५, २६ ॥ दुर्योधन ने कहा हे आचार्य ! जब
 मैं शस्त्रधारी योद्धाओं में अग्रगण्य आपसो भी लोभ
 कर अर्जुन आगे बढ़ गये तब मला मैं जिस प्रकार
 उन्हें रोम सफ़ाया युद्ध में पत्रपाणि इन्द्र को चाहे
 कोई जीत भी ले, किन्तु शत्रुदमन अर्जुन को जीतना
 सचिना असम्भव है ॥ २७, २८ ॥ जिन महारथी ने अस्त्र
 विद्या का वरु से भोजराज वृत्तर्मा और देवतुल्य
 आपसो जीत लिया आर सुदक्षिण, श्रुतायुध, श्रुतायु,

क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाऽय संयुगे ।

परवानस्मि भवति प्रेप्यवद्रक्ष मयशः ॥ ३२ ॥

क्षेपण उवाच—सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनञ्जयः ।

अहं तु तत्करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥

अद्भुतं चाऽय पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः ।

विपक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

एष ते कवचं राजस्तथा वधामि काञ्चनम् ।

यथा न वाणा नाऽस्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५ ॥

यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः ।

योधयन्ति त्रयो लोका सनरा नास्ति ते भयम् ॥ ३६ ॥

न कृष्णो न च कौन्तेयो च चाऽन्यः शस्त्रभृद्गणे ।

शरानर्पयितुं कश्चित्कवचे तव शक्यति ॥ ३७ ॥

स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम् ।

त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वाऽसौ विसहिष्यति ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा त्वरन्क्षेपणः स्पृष्ट्वाऽम्भो वर्म भास्वरम् ।

आवबन्धाऽद्भुततमं जपन्मन्त्रं यथाविधि ॥ ३९ ॥

रणे तस्मिन्सुमहति विजयस्य सुतस्य ते ।

विसिस्मापयिषुर्लोकान्विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥ ४० ॥

अच्युतायु, अम्बष्ठराज तथा लाखों म्लेच्छों को देखते ही देखते मार गिराया, उन जगत् को जला रहे अग्नि के समान प्रचण्ड पाण्डव के साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा ? अथवा यदि आप मुझे अर्जुन से भिड़ने में समर्थ नमझते हैं तो मैं उधत हूँ। मैं तो आपके अधीन हूँ। आप कृपा करके मेरी लाज बचाइए॥ २९।३२॥
क्षेपणार्च्य ने कहा—हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! तुम्हारा कहना सत्य है। अर्जुन अत्यन्त दुर्धर्ष और दुर्जय हैं; किन्तु मैं ऐसा उपाय किये देता हूँ कि तुम उनका सामना कर सकोगे, उनके प्रहारों को सह सकोगे। आज सब धनुर्धर योद्धा यह अद्भुत दृश्य देखेंगे कि श्री-कृष्ण के सम्मुख ही अर्जुन तुम्हें लौधकर आगे न जा सकेंगे। हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हें इस प्रकार से यह अद्भुत सुनहरा कवच पहनाय देता हूँ कि कोई भी वाण या अस्त्र तुम्हारे शरीर में न लग सकेगा॥ ३३।

३५॥ यदि देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, राक्षस और मनुष्य आदि त्रिलोकी के जीव मिलकर भी तुमसे युद्ध करेंगे तो भी तुम्हें कुछ भय नहीं है। श्रीकृष्ण, अर्जुन अथवा अन्य कोई शस्त्रधारी योद्धा, तुम्हारे इस कवच को तोड़ नहीं सकूँगा। अब तुम शीघ्र ही यह कवच पहन करके इस समय कुपित अर्जुन के सम्मुख जाओ और निर्भय होकर उनसे युद्ध करो। अर्जुन कभी तुम्हें रण से नहीं हटा सकेंगे॥ ३६।३८॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ क्षेपणार्च्य ने अब अपनी अद्भुत विद्या के प्रभाव से उस भयावह समरभूमि में स्थित तीरों को विस्मित करने और दुर्योधन को विजयी बनाने के लिए शीघ्र जल का स्पन्द करके, यथाविधि मन्त्र पढ़कर, दुर्योधन को एक अत्यन्त विचित्र तेजोमय कवच पहनाकर कहा—॥ ३९। ४०॥ हे राजेन्द्र ! ब्रह्म, ब्रह्मा और सब ब्राह्मण तुम्हारा

द्वेण उवाच

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः ।
 सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१ ॥
 ययातिर्नाहुपश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः ।
 तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥ ४२ ॥
 स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च ।
 स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३ ॥
 स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
 लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४ ॥
 असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाऽङ्गिराः ।
 वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५ ॥
 धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः ।
 स्वस्ति तेऽय प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च पण्मुखः ॥ ४६ ॥
 विवस्वान्भगवान्स्वस्ति करोतु तव सर्वशः ।
 दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७ ॥
 अधस्ताद्धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप ।
 शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥
 गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः ।
 पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९ ॥
 हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः ।
 ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राङ्गीता महासुरात् ॥ ५० ॥
 देवा ऊचुः - प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम
 गतिर्भव सुरश्रेष्ठ ब्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥

कन्याय करे । मन्त्र श्रेष्ठ सरीसृप, एकरण, बहुरण और चरण-हीन जीवों से तुम नित्य महायुद्ध में कन्याय प्राप्त करो ॥ ४१ ॥ ४३ ॥ स्वाहा, स्वधा, शची, लक्ष्मी, अरुन्धती, असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वसिष्ठ, कश्यप, लोकपाल, धाता, विधाता, मन्त्र दिशार्थ, दिक्पाल, कार्तिकेय, भगवान् आश्विन, चारों दिग्गज, पृथ्वी, आकाश, महर्गण, आदि तथा देवी, देवता, ऋषि, राजर्षि आदि सदा तुम्हारा कन्याय करे । जो पानाल में स्थित रहकर सदा धरा को धारण किये हुए हैं,

वे नागराज अनन्त सदा तुम्हारा कन्याय करे ॥ ४३ ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! पहले इन्द्र आदि देवता वृत्रासुर से युद्ध में हार गये थे, उनके अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये थे । तबसे मन्त्र बन्धीय-विहीन और भयानुर होकर ब्रह्माजी की शरणमें गये । उन्होंने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—हे लोकपाल ! वृत्रासुर के द्वारा पीड़ित हमारी गति आप ही है । हम महान् भय से आप हमारी रक्षा कीजिए ॥ ४९ ॥ ५० ॥ भगवान् ब्रह्मणे अग्ने निरुद्ध-स्थित पित्र्य और इन्द्र आदि देवताओं को व्याकुल देखकर कहा—

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
 प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान्सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥
 रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः द्विजातयः ।
 त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥ ५३ ॥
 त्वष्ट्रा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा ।
 वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्याऽनुज्ञां महेश्वरात् ॥ ५४ ॥
 स तस्यैव प्रसादाद्बो हन्यादेव रिपुर्वली ।
 नाऽगत्वा शङ्करस्थानं भगवान्दृश्यते हरः ॥ ५५ ॥
 दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् ।
 यत्राऽऽस्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ५६ ॥
 पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः ।
 ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम् ॥ ५७ ॥
 अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
 सोऽब्रवीत्स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम् ॥ ५८ ॥
 अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः ।
 एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ॥ ५९ ॥
 तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् ।
 मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः ।
 शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥ ६० ॥

हे देवताओ ! तुम लोगों सहित इन्द्र और ब्राह्मणों की रक्षा करना अवश्य मेरा कर्तव्य है; किन्तु मैं इस समय वृत्रासुर का नाश करने में असमर्थ हूँ । त्वष्टा के अत्यन्त दुर्द्धर्ष दुर्जय तेज से वृत्रासुर की उत्पत्ति हुई है । पूर्व समय में त्वष्टा ने दस लाख वर्ष तक तप करके, महादेव को प्रसन्न करके, उनकी आज्ञा के अनुसार ही वृत्रासुर को उत्पन्न किया है । शङ्कर की कृपा से देव-शत्रु बली वृत्रासुर तुम सबको नष्ट कर सकता है । शङ्कर के समीप गये बिना वृत्रासुर के वध का कोई उपाय नहीं हो सकता । मन्दरा-चल पर तपोयोगि, दक्षयज्ञ-विनाशन, पिनाकधारी, भग देवता के नेत्रों को निकालनेवाले, सब प्राणियों के ईश्वर रहते हैं । वहीं उनसे भेंट होगी । तुम लोग वहीं जाओ । हे राजेन्द्र ! तब सब देवता, इन्द्र और ब्रह्मा के साथ, मन्दर पर्वत पर गये । वहाँ उन्होंने देखा कि कोटि सूर्य के समान तेजोराशि महादेव विराजमान हैं । देवताओं को देखकर शङ्कर ने स्वागत-पूर्वक कहा—हे देवगण ! आओ । बनाओ, मैं तुम्हारी किस इच्छा को पूर्ण करूँ ? मेरा दर्शन निष्कल नहीं होता, इसलिए तुम्हें अवश्य ही मुझसे अपना अमीष्ट वर प्राप्त होगा । यह सुनकर देवताओं ने कहा—हे देव देव ! वृत्रासुर ने सब देवताओं का तेज हर लिया है । आप हम सबकी रक्षा का कोई उपाय कीजिए । हे देव ! हम लोगों के शरीर देखिए, उस दानव के दारुण प्रहारों से जर्जर हो रहे हैं । हे महेश्वर ! हम आपकी शरण में आये हैं । आप हमारी

श्री उवाच

विदितं वो यथा देवाः कृत्वेऽयं सुमहाबला ।
 त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याऽकृतात्मभिः ॥ ६१ ॥
 अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम् ।
 ममेदं गात्रज शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ॥ ६२ ॥
 वधानाऽनेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर ।
 वधायाऽसुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः ॥ ६३ ॥

द्रोण उवाच

—इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद्धर्मं तन्मन्त्रमेव च ।
 स तेन वर्मणा युतः प्रायाद्यत्र चमूं प्रति ॥ ६४ ॥
 नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पाल्यमानैर्महारणे ।
 न सन्धि शक्यते भेषुं वर्मवन्धस्य तस्य तु ॥ ६५ ॥
 ततो जघान समरे वृत्र देवपतिः स्वयम् ।
 तं च मन्त्रमयं वन्धं वर्म चाऽङ्गिरसे ददौ ॥ ६६ ॥
 अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पते ।
 बृहस्पतिरथोवाच अग्निवेश्याय धीमते ॥ ६७ ॥
 अग्निवेश्यो मम प्रादान्तेन वधामि वर्म ते ।
 तवाऽद्य देहक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६८ ॥

सञ्जय उवाच

—एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाश्रुतिम् ।
 पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६९ ॥

रथा राजिणः॥५२॥६०॥यह सुनकर महादमन रहा—
 ह देवगण । तुम लोग भी जानते ही हो नि-
 यथा ने अगिहार के अनुष्ठान मे हा अपन तन के
 द्वारा इस महापत्नी भयङ्कर असुर को उपन्न किया
 है । अजितेन्द्रिय साधारण प्राणी उससे नहीं जात
 सस्ते, किन्तु मुझ देवताओं की महापत्नी अर्द्धय हा
 करनी है । हे इन्द्र ! ले, यह मेरे शरार का तेजो
 मय कवच ग्रहण करो । असुर श्रेष्ठ सुर पैरी वृत्रासुर
 को मारन के लिए तुम मेरे जतनय द्रुप मानम का
 का पाठ करते हुए यह कवच अपने शरार में बाँध
 ने । द्रोणाचार्य कहते हैं वरदानों महद्विज न इनका
 कहकर इन्द्र का, यह कवच और राज के बाँधने
 का मन्त्र देकर, अत्रेय कर दिया । इस कवच के
 द्वारा रगित होकर इन्द्र वृत्रासुर की मत्ता में युद्ध
 करी चले । वृत्रासुर और उनकी सेना ने महारण

में अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र इन्द्र के ऊपर चलाये,
 किन्तु जिसा प्रकार उम कवच के बन्धन की सधि
 नहीं जाता जा मकी । उस कवच से रक्षित रहने
 के कारण इन्द्र निर्भय होकर दवशत्रु वृत्र से युद्ध
 करते रहे और उन्होंने अन्तर पात्रर उमे मार भी
 डाला॥६१॥६६॥यह मन्त्रमय बन्धन से युक्त कवच
 इन्द्र ने अङ्गिरा को दिया था । अङ्गिरा ने अपने पुत्र
 मन्त्रज्ञ बृहस्पति को वह कवच और मन्त्र दिया था ।
 बृहस्पति ने अपने बुद्धिमान् शिष्य अग्निवेश्य को वह
 कवच दिया । उन्हीं महा ना अग्निवेश्य ने वह कवच
 मुझ दिया था । इस समय तुम्हारे शरार की रक्षा के
 निमित्त मैं रहा श्रेष्ठ कवच मन्त्र के द्वारा तुम्हें पद
 नाता हूँ॥६६॥६८॥मन्त्रय कहते हैं कि हे महाराज !
 दुरोधन मे यों कहकर आचार्य ने निरभरे मे कहा—
 हे शनैन्द्र ! मैं प्रसा जी के वनचाले हुए मन्त्र को

ब्रह्मसूत्रेण वधामि कवचं तव भारत ।
 हिरण्यगर्भेण यथा वद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥ ७० ॥
 यथा च ब्रह्मणा वद्धं संप्रामे तारकामये ।
 शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा वधाम्यहं तव ॥ ७१ ॥
 वध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम् ।
 प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७२ ॥
 स सन्नद्धो महाबाहुराचार्येण महारत्मना ।
 रथानां च सहस्रेण त्रिगर्त्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७३ ॥
 तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम् ।
 अश्वानां नियुतेनैव तथाऽन्यैश्च महारथैः ॥ ७४ ॥
 वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति ।
 नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥
 ततः शब्दो महानासीत्सैन्यानां तव भारत ।
 अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचवन्धने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पद्मकर ब्रह्मसूत्र के द्वारा यह दिव्य कवच तुम्हारे शरीर में बाँधता हूँ । पूर्वसमय में युद्ध आरम्भ होने पर हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने जैसे विष्णु को और फिर तारकामय-संप्राम में इन्द्र को दिव्य कवच बाँधा था, वैसे ही मैं इस समय यह दिव्य कवच तुम्हें पहनाता हूँ । हे राजेन्द्र ! महारत्मा द्रोणाचार्य ने यह कहकर विधि से मन्त्रपाठ-पूर्वक दुर्योधन के शरीर में कवच बाँधकर उन्हें उस भयानक संप्राम के लिए भेज दिया ॥ ६९।७२॥ इस

प्रकार आचार्य के कवच बाँध देने पर महाबाहु दुर्योधन विगर्त देश के सहस्र रथ, महाबली सहस्र हाथी, दस लाख घोड़े और अन्य अनेक महारथी साथ लेकर महा-राज बलि के समान बड़े आडम्बर से अर्जुन के रथ की ओर चले । उनके साथ अनेक प्रकार के वाजे बज रहे थे । अगाध समुद्र के समान दुर्योधन के चलने पर आपकी सेना में बड़ा कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥ ७३।७६॥

द्रोणपर्व का चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९४ ॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच—प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवापर्ण्ययो रणे ।
 दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषपद्मे ॥ १ ॥
 जत्रेनाऽभ्यद्रवद् द्रोणं सहता निःस्वनेन च ।
 पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्त्तत ॥ २ ॥

पञ्चानवेवाँ अध्याय ॥ ९५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजा जनमेजय ! श्रीकृष्ण सहित अर्जुन जब रणभूमि के मध्य शत्रु-सेना के

भीतर प्रवेश हो गये और उनके पीछे पुरुषधेष्ट दुर्यो-धन वेग से गये तब चार मिहनाद और कोलाहल मारने

तद्युद्धमभवत्तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
 कुरुणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥ ३ ॥
 राजन्कदाचिन्नाऽस्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम् ।
 यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद्विशाम्पते ॥ ४ ॥
 धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
 द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शस्त्रैर्वैरवाकिरन् ॥ ५ ॥
 वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
 पार्षतप्रमुखान्पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥
 महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमालये ।
 सेनाप्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूपिते ॥ ७ ॥
 समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वैगमुत्तमम् ।
 जान्हवीयमुने नयौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ८ ॥
 नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः ।
 गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥
 भारद्वाजानिलोद्भूतः शरधारासहस्रवान् ।
 अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनांश्चिमुद्धतम् ॥ १० ॥
 समुद्रमिव घर्मान्ते विशन्धोरो महानिलः ।
 व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥
 तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन् ।
 विभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रवला इव ॥ १२ ॥

हुए सोमनों सहित पाण्डवगण द्रोणाचार्य पर आक्रमण करने को दौड़े । उस समय दारुण युद्ध होने लगा । व्यूह के द्वारदेश पर कौरवों और पाण्डवों का अद्भुत लोमहर्षण युद्ध होने लगा ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! उस समय जैसा घोर युद्ध हुआ वैसा युद्ध हमने कभी देना और सुना नहीं । उस समय ठीक मध्याह्नक काल था । अमन्य सेना साथ लिए हुए पाण्डवगण धृष्टद्युम्न को आगे करके द्रोणाचार्य पर बाणों की वर्षा करने लगे । हम लोग भी सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य को आगे करके धृष्टद्युम्न सहित पाण्डवों पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥ १४ ॥ शिशिर ऋतु में वायु प्रेरित महामेघों के समान उमड़ी हुई दोनों ओर की प्रधान सेनाएँ बहुत

ही शोभा को प्राप्त हुई । दोनों ओर सुन्दर बड़े-बड़े रथों पर योद्धा लोग शिराजमान थे । वे दोनों सेनाएँ परस्पर भिड़कर वर्षाकृत में बड़ी हुई महानदी गङ्गा और यमुना के समान बड़े वेग से आगे बढ़ने लगीं । पाण्डवों की सेना प्रचण्ड दारानल के समान आगे बढ़ रही थीं आर वह हाथी-घोड़े-रथ आदि से परिपूर्ण समग्रामरूप महामेघ बाण-रथारूप जलधारा से उसे बुझा रहा था । अनेक अस्त्र-शस्त्र ही उस मेघ के आगे चलने-वाली तेज वायु थे । गदारूप बिजलियों चमक-चमक कर उसे महारौद्र बना रही थीं । द्रोणाचार्यरूप पवन उसका मशालन कर रहा था ॥ ७१ ॥ प्रीति ऋतु के अन्त में घोर तूफान की वायु जैसे समुद्र में प्रवेश

वारयामास तान्द्रोणो जलौघमचलो यथा ।
 पाण्डवान्समरे क्रुद्धान्पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥
 अथाऽपरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः ।
 महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् ॥ १४ ॥
 ततो रणे नरव्याघ्र पार्षतः पाण्डवैः सह ।
 सञ्जघानाऽसकृद् द्रोणं विभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥
 यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते ।
 तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥
 स निखिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः ।
 ज्याविद्युच्चापसंहादो धृष्टद्युम्नबलाहकः ॥ १७ ॥
 शरधाराश्मवर्षाणि व्यस्तृजत्सर्वतो दिशम् ।
 निम्ननरथवराश्रौघान्प्लावयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥
 यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम् ।
 ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥
 तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत ।
 धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥
 भोजमेकेऽभ्यवर्त्तन्त जलसन्धं तथाऽपरे ।
 पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवाऽपरे ययुः ॥ २१ ॥

वरके उसे क्षोभित करती है, वैसे ही महावीर घोर-
 रूप द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना में प्रवेश होकर
 हलचल मचाने लगे । जैसे प्रबल जलराशि महासेतु
 को तोड़ने के लिए बारम्बार लहरों की थपेड़ें मारे,
 वैसे ही पाण्डवपक्ष के योद्धा भी व्यूह को तोड़ने के
 लिए सब ओर से सब प्रकार से द्रोणाचार्य के ऊपर
 ही आक्रमण करने लगे । किन्तु जैसे महापर्वत जल-
 राशि को रोकता है वैसे ही द्रोणाचार्य भी युद्धभूमि में
 कुपित पाण्डव, पाञ्चाल और कैकेय-सेना को रोकने लगे।
 अन्य महाबली राजा लोग भी चारों ओर से पाञ्चाल-
 सेना को घेरने और आक्रमण करने लगे॥११।१४॥
 उस समय नरश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न शत्रुसेना का व्यूह तोड़ने
 की अभिलाषा से, पाण्डवों की सहायता से, महा-
 वीर आचार्य पर प्रहार करने लगे । जैसे द्रोणाचार्य

जी धृष्टद्युम्न के ऊपर बाणों की वर्षा करते थे वैसे
 ही धृष्टद्युम्न भी आचार्य द्रोण के ऊपर बाण बरसा रहे
 थे । हे महाराज ! धृष्टद्युम्न उस समय युद्धभूमि में
 महामेघ के समान जान पड़ते थे । वे शक्ति, क्रुष्टि,
 प्रास आदि अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा
 कर रहे थे । उनका खड्ग मेघघटा के आगे चलने-
 वाली वायु के समान, धनुष की डोरी बिजली के
 समान और धनुष का शब्द गर्जन के समान जान
 पड़ता था । उन महावीर ने चारों ओर शिलाखण्ड-
 सदृश बाण बरसाना आरम्भ कर दिया । उनके बाणों
 में असंख्य रथों और हाथी-घोड़े मरने लगे॥१५।१८॥
 धृष्टद्युम्नरूप मेघ ने अपने पराक्रम के प्रवाह में बहुत
 सी शत्रुसेना को बहा दिया॥१५।१८॥द्रोणाचार्य
 जिस-जिस ओर जाकर पाण्डवों के रथियों पर बाणवर्षा

सङ्घटयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः ।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२ ॥
धार्तराष्ट्रास्तथाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥
कालः स्म असने योधान्धृष्टद्युम्नेन मोहितान् ।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेतिरे जनाः ॥ २४ ॥
कुन्तपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करोः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्त्व वाहिनी ॥ २५ ॥
अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूँषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥
त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान्यधमच्छरैः ॥ २७ ॥
मृद्वतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।
वभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८ ॥
रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशाम्पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्विभेद महारथः ॥ २९ ॥
पाण्डवानां तु सैन्येषु नाऽस्ति कश्चित्स भारत ।
दधार यो रणे बाणान्द्रोणचापच्युतान्प्रभो ॥ ३० ॥

करते थे, उसी-उसी ओर धृष्टद्युम्न भी पहुँचते आए
उन्हें उधर से हटने के लिए विवश करते थे । हे
भारत ! द्रोणाचार्य यद्यपि इस प्रकार अपनी सेना को
एकत्र रखने का महायत्न कर रहे थे तथापि भीरु धृष्ट-
द्युम्न ने बाणवर्षा के द्वारा उनकी सेना के तीन भाग
कर दिये । कौरव-सेना का एक अंश भोजश्रेष्ठ कृत्तवीर्य
का अनुगामी हुआ, एक अंश वीर जलमन्थ की शरण
में गया और एक अंश [धृष्टद्युम्न के प्रहारों को न
सह सकने के कारण] द्रोणाचार्य की शरण में आ
गया । श्रेष्ठ महारथी द्रोणाचार्य जब-जब अपनी सेना
को एकत्र करते थे तब-तब वीर श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न उसे
छिन्न-भिन्न कर देते थे ॥ १९, २०, २१ ॥ वन में रक्षकहीन
पशुओं का झुण्ड जैसे क्रूर सामाहारी जीवों का शिकार
चलता है, वैसेही पाण्डव-सूत्रयगण के हाथों से कौरव-
पक्ष के योद्धा मरने लगे । उस समय सभी लोगों को यह

जान पड़ने लगा कि इस भयानक संग्राम में साक्षात्
काल ही धृष्टद्युम्न के रूप से सबको मोहित और नष्ट
कर रहा है । द्रुपद राजा के देश को दुर्भिक्ष, रोग,
डाकू-चोर आदि जैसे उजाड़ देते हैं वैसे ही पाण्डवगण
बाण-वर्षा करके आपकी सेना को मारने और भगाने
लगे । शस्त्रों और कवचों के ऊपर मृत्यु की किरणें
पड़ने से जो क्षमता उत्पन्न होती थी, उससे नेत्रों
में चक्राचीं उभरने लगी थी । घूल भी इतनी
उड़ी कि किसी और कुल भी भरी मौति नहीं दीवता
था ॥ २३, २४ ॥ जब कौरव-सेना तीन भागों में बँट
गई और पाण्डव लोग उसका मंहार करने लगे तब
अत्यन्त कुपित होकर द्रोणाचार्य भी तीक्ष्ण बाणों से
पाञ्चालसेना का संहार करने लगे । पाञ्चालसेना को
रौंदने और बाणों में नष्ट करने समय द्रोणाचार्य का
रूप बहुत ही भयङ्कर देख पड़ने लगा । वे प्रचण्ड

तत्पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।
 वभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥
 तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं चलं तव ।
 अभवत्सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाऽग्निना ॥ ३२ ॥
 बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतमायकैः ।
 त्यक्त्वा प्राणान्परं शक्यत्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः ॥ ३३ ॥
 तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।
 नाऽऽसीत्कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत्संयुगं भयात् ३४ ॥
 भीमसेनं तु कौन्तेयं सौंदर्याः पर्यवारयन् ।
 विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
 त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवाऽनुयायिनः ॥ ३६ ॥
 बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
 सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥
 शैव्यो गोवासनो राजा योर्धेर्दशशतावरैः ।
 काश्यप्याऽभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥
 अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
 मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥ ३९ ॥

प्रज्वलित कालाग्नि के समान जान पड़ने लगे । महारथी द्रोणाचार्य एक एक बाण से रथ, हाथी, घोड़े और पैदल आदि को छिन भिन कर रहे थे ॥ २७ ॥ २९ ॥ उस समय पाण्डवों की सेना में ऐसा कोई योद्धा नहीं देख पड़ता था, जो द्रोण के धनुष से छूटे हुए बाणों के वेग को सह सकता हो । पाण्डवों की सेना एक साथ ही सूर्य की किरणों और आचार्य के बाणों से पीड़ित होकर इधर-उधर भागने लगी । इसी प्रकार कौरवों की सेना भी घृष्टबुद्ध के बाणों से पीड़ित होकर भागने लगी । सुगन्ध वन जैसे अग्नि लगने से जल उठता है वैसे ही कौरवों की सेना घृष्टबुद्ध के बाणों से भस्म होने लगी । इस प्रकार से द्रोणाचार्य और घृष्टबुद्ध के बाणों से पीड़ित होकर भी दोनों पक्ष के वीर योद्धा, स्वर्ग प्राप्त करने की अभिलाषा से प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

उस समय दोनों पक्ष की सेना में ऐसा कोई वीर योद्धा न था जो प्राणों के भय से सम्राट छोड़कर भाग खड़ा हुआ हो । हे राजेन्द्र ! उस समय आपके पुत्र विविंशति, चित्रमेन और महारथी विकर्ण, ये तीनों भीमसेन को घेरकर उनसे युद्ध करने लगे । उन तीनों की सहायता करने के लिए अवन्तिदेशीय विन्द, अनुविन्द और पराक्रमी क्षेमधूर्ति, ये तीन वीर आगे बढ़े । श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न महारथी तेजस्वी बाह्लीकराज ने अपनी सेना और मन्त्रियों के साथ द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को रोका । शत्रि के पुत्र राजा गोवासन, श्रेष्ठ सहस्र योद्धाओं के साथ, काशिराज अभिभू के पराक्रमी पुत्र से युद्ध करने लगे ॥ ३४ ॥ ३८ ॥ प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी महाराज युधिष्ठिर से मद्राज शल्य युद्ध करने लगे । असह्यशील क्रांभी शूर दुःशासन अपनी सेना को यथाम्बल स्थापित करके श्रेष्ठ रथी सल्य के से युद्ध

दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्पणः ।
 सात्यकिं प्रययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥
 स्वकेनाऽहमनीकेन सन्नद्धः कवचावृतः ।
 चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥ ४१ ॥
 शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् ।
 गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
 प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ ॥ ४३ ॥
 शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् ।
 बाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥
 धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः ।
 आवन्त्यः सह सौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥
 घटोत्कचं तथा शूर राक्षसं क्रूरकर्मिणम् ।
 अलायुधोऽद्रवत्तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥
 अलम्बुपं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः ।
 सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥
 सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत्सर्वसैन्यस्य भारत ।
 रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥
 तस्याऽऽस्तां चकरक्षौ द्रौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ ।
 द्रौणिर्दक्षिणतो राजन्सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥
 पृष्ठगोपास्तु तस्याऽऽसन्सौमदत्तिपुरोगमाः ।
 कृपश्च वृपसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥

करने के निमित्त आगे बढ़े । मैख्य कवच पहनकर, सुमज्जित होकर, अपनी मेना आर चार सौ महायुद्धर योद्धाओं को साथ लेकर चेकितान में युद्ध करने लगा ॥ ३९॥ ४१ ॥ धनुष, शक्ति, खड्ग, प्रास आदि शस्त्र हाथ में लिये मान सौ गान्धारदेश के योद्धाओं को साथ लिये मेना महित गान्धारराज शकुनि वक्रुड और सहदेव से युद्ध करने लगे । अजिन्देशीय विन्द और अनुविन्द नाम के दोनों भाई, प्राणों की ममता छोड़कर मित्र के लिए शस्त्र उठाकर, मत्स्यराज विराट से

युद्ध करने लगे । अपराजित वीर शिखण्डी पराक्रम-पूर्णक आगे बढ़ रहे थे, उन्हें रोकने के लिए महाराज बाह्लीक आगे बढ़े और उनमें घोर युद्ध करने लगे ॥ ४२॥ अजिन्देश के राजा, क्रूर प्रभद्रकगण और सांघीर देश की मेना साथ लेकर, धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे । महावीर अलायुध, आगे बढ़नेवाले क्रुद्ध क्रूरकर्मा राक्षम घटोत्कच के मगधुव आगे और उममे युद्ध करने लगे । महारथी कुन्तिभोज ने बड़ा मेना साथ लेकर क्रीष्ण अलम्बुप को रोक ॥ ४५॥ ४८ ॥ महा-

नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।

सैन्यवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सकल्युद्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

राज ! जयद्रथ उस समय कृपाचार्य आदि महाधनुर्द्वरों के द्वारा सुरक्षित होकर सब सेना के पीछे थे । जयद्रथ के रथ के दाहने पहिये की रक्षा अश्वत्थामा और बायें पहिये की रक्षा वीर कर्ण कर रहे थे । सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रमा आदि गीरगण जयद्रथ के पृष्ठभाग

की रक्षा कर रहे थे । हे महाराज ! समरनिपुण नीतिज्ञ महाधनुर्द्वर कृपाचार्य, वृषमेन, शल और शल्य आदि गीरगण इस प्रकार जयद्रथ की रक्षा का उपाय करके घोर युद्ध करने लगे ॥ ४० ॥ ५१ ॥

— ० —

द्रोणपर्व ५१ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९५ ॥

अथ पण्डितनिमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच — राजन्संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम ।

कुरुणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥ १ ॥

भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।

अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं विभित्सवः ॥ २ ॥

रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोऽपि सह सैनिकैः ।

अयोधयद्रणे पार्थान्प्रार्थयानो मह्यशः ॥ ३ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः ।

आजघ्नतुः सुसंकुञ्चौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥ ४ ॥

विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।

पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥

तेषां युद्धं समभवद्दारुणं शोणितोदकम् ।

सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥

वाल्मीकिं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः ।

आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥

छियान्वेगौ अध्यायः ॥ ९६ ॥

सञ्जय ने कहा — हे राजेन्द्र ! जीव और पाण्डवों का घोरतर युद्ध जिस प्रकार हुआ था, उसका वर्णन मैं विस्तारपूर्वक करता हूँ, सुनिश्चय महावीर पाण्डव गण व्यूह के मुख में द्रोणाचार्य पर आक्रमण करके उनके सेनाव्यूह को छिन्न भिन्न करने के लिए भयानक संग्राम करने लगे । आचार्य द्रोण भी महान् यश प्राप्त करने की अभिलाषा से, अपने व्यूह की रक्षा करते हुए, सैनिकों के साथ पाण्डवों से घोर युद्ध

करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र ! इसी समय आपने पुत्र के हितचिन्तक विन्द और अनुविन्द ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर विराट को दस बाण मारे । महाराज विराट भी पराक्रमपूर्वक अनुचरो सहित पराक्रमी उन दोनों भाइयों से घोर संग्राम करने लगे । जैसे वन में एक सिंह दो मत्त गजों से युद्ध करे वैसे ही उन दोनों भाइयों से राजा विराट का घोर युद्ध होने लगा, जिसमें जल की ओति रक्त बह चला ॥ ४ ॥ ५ ॥ महापराक्रमी राज-

बाल्हीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशिनैः ।
 आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नितपर्वभिः ॥ ८ ॥
 तश्चुद्धमभवद्धोरं शरशक्तिसमाकुलम् ।
 भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ९ ॥
 ताभ्यां तत्र शरैर्मूर्कैरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
 अभवत्संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १० ॥
 शैव्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् ।
 ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥
 बाल्हीकराजं संक्रुद्धो द्रौपदेयान्महारथान् ।
 मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन्रणे ॥ १२ ॥
 अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरैर्वै समन्ततः ।
 इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वदेहवनां वर ॥ १३ ॥
 बाष्पण्यं सात्यकि युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
 आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नितपर्वभिः ॥ १४ ॥
 सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
 ईपन्मूर्च्छां जगामाऽऽशु सात्यकिः सत्यविक्रमः १५ ॥
 समाश्वस्तस्तु बाष्पण्यस्तव पुत्रं महारथम् ।
 विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥
 तावन्त्योन्यं दृढं विद्धावन्त्योन्यशरपीडितौ ।
 रेजतुः समरे राजन्पुष्पिताश्रितं किशुकौ ॥ १७ ॥

कुमार शिवण्डा समवेदी ताक्षण त्राण छोरर महा
 राज बहादुर की पीड़ित करने लगे। उहान भी काधनि
 बल होकर सुगणपुङ्खयुक्त शिवाभा पर मान धरे हुए,
 सन्ततपर शांतिन मन त्राण शिवण्डा का मोर। उनका
 वह युद्ध डरपोर पुरुषों के लिए भयावह और तीव्र
 के लिए हर्षवर्धक हुआ। उनका बाणों म मन विनाश
 और आकाशमण्डल व्याप्त हो गया। बाणों में ऐसा
 अधरा हुआ गया कि कुछ भी नहीं दायता था॥३॥
 १०॥गजराज जैसे प्रतिद्वन्द्वा गजराज म युद्ध करता
 है वैसे ही महाराज शैव्य गोवामन अपन प्रतिपक्षी
 काश्य के महारथी पुत्र से युद्ध करने लगे। अतः करने
 जैसे पौंचा इन्द्रियों को उस म लगे वा यत्न करता

है उस ही वृत्ति महाराज बाह्य द्रौपदी के पौंचों
 पुत्रों म युद्ध करने लगे। हे नरश्रेष्ठ ! इन्द्रियों जैसे
 दह का चैन नहीं मन देती वैसे ही वे पौंचों धार
 तक्षिण त्राण महाराज महाराज बाह्य के साथ धार
 मग्राय करने लगे॥११॥१२॥हे राज द्रौपदी आपने परा
 क्रमा पुत्र दुःशामन ने युद्ध सात्यकि को बहुत ही
 तात्पण मन बाण मोर। अत्यन्त तीव्र दुःशासन के
 प्रत्यक्ष प्रहार में मल्लपराक्रमी सात्यकि कुछ विह्वल
 और मूर्च्छित हो गये। कुछ समयान्तर पर वीर सात्यकि
 न आपने पुत्र महारथी दुःशामन को स्पर्धित के साथ
 कङ्कपत्रयुक्त दम त्राण मोर। इस प्रकार एक दूसरे
 के प्रहार से थकते होने पर दोनों वीर दृष्टे हुए दान

अलम्बुपस्तु संकुद्धः कुन्तिभोजशरादितः ।
 अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥
 कुन्तिभोजं ततो रक्षो विध्वा बहुभिरायसैः ।
 अनदञ्जैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे-तव ॥ १९ ॥
 ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् ।
 ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २० ॥
 शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत ।
 माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैश्चाऽर्दयतां भृशम् ॥ २१ ॥
 तुमुलः स महान्राजन्प्रावर्त्तत जनक्षयः ।
 त्वया सञ्जनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धिनः ॥ २२ ॥
 रक्षितस्त्वव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः ।
 य इमां पृथिवीं राजन्दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥
 शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः ।
 न स्म जानाति कर्त्तव्यं युद्धे किञ्चित्पराक्रमम् ॥ २४ ॥
 विमुखं चैनमालोच्य माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
 वर्षपतुः पुनर्वर्णैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥
 स वध्यमानो बहुभिः शरैः सन्ननपर्वभिः ।
 संप्रायाज्वनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौवलः ॥ २६ ॥
 घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् ।
 अभ्ययाद्रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥

के पेड़ से शोभायमान हुए । राक्षस अलम्बुप ने महा-
 पराक्रमी कुन्तिभोज के बाणों में पीड़ित और कुपित
 होकर उन्हें अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित
 किया ॥ १४१७ ॥ फूले हुए ढाक के पेड़ के समान
 शोभायमान वह राक्षस सेना के अप्रमार्ग में भयानक
 शब्द करने लगा । पहले जम्मासुर और इन्द्र से जैसा
 घोर संग्राम हुआ था वैसा ही संग्राम अलम्बुप और
 कुन्तिभोज का हुआ । सब सैनिक वह घोर युद्ध देखने
 लगे ॥ १८१२ ॥ माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव अत्यन्त
 कुपित होकर पहले से ही वैर बढ़ानेवाले बल शकुनि
 के ऊपर बाण बरसाने लगे । हे महाराज ! इस प्रकार
 युद्धभूमि में घोर जनसंहार होने लगा । पाण्डवों के

क्रोध की अग्नि आपसी दुर्नीति के प्रभाव से ही उत्पन्न
 हुई थी । कर्ण के ही कारण वह बढ़ी और आपके
 पुत्रों ने अपने व्यवहार से उसे अब तक बना रक्खा था ।
 वह अग्नि अब इस समग्र पृथ्वीमण्डल को भस्म करने
 के लिए उद्यत है । अस्तु, जो होना था, सो हो ही
 गया । अब युद्ध का वृत्तान्त सुनिए ॥ २१२३ ॥
 नकुल और सहदेव के बाणों की मार से महागिरि शकुनि
 रण-विमुख हो गये । वे पराक्रम प्रकट करने में असमर्थ
 और किङ्कर्तव्य विमूढ़ हो गये । महारथी नकुल और
 सहदेव शकुनि को युद्ध से विमुख देखकर घड़े वेग
 से, पर्वत पर जलधारा के समान, उन पर तीक्ष्ण बाण
 बरसाने लगे । उन दोनों वीरों के बिकट बाणों से वि-

तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाऽभवत् ।
 यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥
 ततो युधिष्ठिरो राजा मदराजानमाहवे ।
 विध्वा पञ्चाज्ञाता वाणेः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥
 नतः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप ।
 यथापूर्वं महद्युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥
 विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ।
 अयोधयन्भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पण्यवर्तिनमोऽध्यायः ॥ ०६ ॥

हल होकर खीर शकुनि बेग मे छोड़े हैकवाकर द्रोणाचार्य की सेना के भीतर प्रवेश हं। गये॥२४२६॥महावीर घटोत्कच बड़े बेग से आते हुए अलायुध राक्षस की ओर दौड़ा। पहले राम और रावण ने जैमा भयानक संग्राम किया था पैसा ही बेग युद्ध वे दोनों राक्षस करते लगे॥२७२८॥गजा युधिष्ठिर ने मद्रराज शन्य

को पहले पचांस वाण और फिर तीक्ष्ण सात वाण मारे। शम्बरामर और इन्द्र के तुल्य शन्य और राजा युधिष्ठिर का अद्भुत संग्राम होने लगा। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण भी बहुत सी सेना साथ लेकर बोरतर संग्राम करने लगे॥२९।३१॥

— ० —

द्रोणपर्व का नित्यानेवर्षो अन्याय समाप्त हुआ ॥ ०६ ॥

अथ मत्स्यवर्तिनमोऽध्यायः ॥ ०७ ॥

मत्स्य उवाच — तथा तस्मिन्प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
 कौरवेयांस्त्रिधा भूतान्पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥
 जलसन्धं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्त्तत ।
 युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥
 किंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांऽशुमान् ।
 धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३ ॥
 ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
 कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥

सप्तानेत्र्योऽध्यायः ॥ ०७ ॥

मत्स्य कहते हैं — हे महाराज ! अब हम प्रकार महाघोर संग्राम के खीर एकदने पर पाण्डवगण तीन भागों में बँटी हुई उस कौरव-सेना पर प्राणपण से आक्रमण करने के निमित्त आगे बढ़ने लगे। महावीर भीमसेन ने महाबाहु राजा जलसन्ध पर, असह्य सेना सहित महाराज युधिष्ठिर ने प्रतापी कृतार्मा पर और सूर्यमदश नेत्रहीन खीर धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य

पर आक्रमण किया। ये लोग एक दूसरे के दल पर अमल्य वाणों की वर्षा करने लगे॥१।३॥संग्रामनन्तर, परम कुपित, धनुर्धर कौरव और पाण्डव लोग एक दूसरे से गड़गड़तुल्य युद्ध करने लगे। हे राजेन्द्र ! उस समय असह्य प्राणियों का संहार होने लगा। दोनों ओर के योद्धा लोग निर्भय होकर, प्राणों की ममता त्यागकर, मरने-मरने लगे। बलवीर्यशाली द्रोणा-

संक्षये तु तथा भूते वर्त्तमाने महाभये ।
 द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वर्भीतवत् ॥ ५ ॥
 द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण वली बलवता सह ।
 यदक्षिपत्पृथक्कोष्ठांस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६ ॥
 पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
 चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७ ॥
 विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
 वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥
 तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
 संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसङ्घाः सविद्युतः ॥ ९ ॥
 - कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः ।
 तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥
 असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च ।
 विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥
 उत्थितान्यगणेष्वपि कवन्धानि समन्ततः ।
 अदृश्यन्त महाराज तस्मिन्परमसंकुले ॥ १२ ॥
 गृध्राः कङ्का वकाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा ।
 बहुशः पिशिताशाश्च तत्राऽदृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥
 भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चाऽपि शोणितम् ।
 विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥
 आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
 नराश्वगजसङ्घानां शिरांसि च तनस्तनः ॥ १५ ॥

चार्य भी पराक्रमी पाञ्चाल-राजकुमार भृष्टयुध से युद्ध
 करते हुए बाण बरमान लगे। उनका पराक्रम और शक्ति
 देखकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥ ४६ ॥ द्रोणाचार्य
 और पराक्रमी भृष्टयुध, दोनों पक्ष के, अमन्य मैनों को
 के मन्त्रक फाट-फाटकर चारों ओर गिराने लगे। ऐसा
 जान पड़ने लगा कि मानों चारों ओर रणभूमि में
 गिरे हुए कमलों का मन लगा हुआ है। उस समय
 रणस्थल में चारों ओर देख के देख वीरों के बल, अभू-
 पण, दाय, दामा, कवच और हथियार आदि गिरे

हुए थे। वीरों के रक्त में भोगे हुए सूर्य के फल
 चित्रली में शोभित मेघों के समान जान पड़ने लगे
 ॥ ७० ॥ उस समय अन्यान्य वीर योद्धा भी तत्र प्रमाण
 बड़े बड़े भयुध लड़ाकर विरुद्ध बाणों की बार में
 हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों की मांस-मांस कर गिराने
 लगे। अमन्य वीरों के मिर, हाथ, दाँत, तन्पात्र,
 भयुध और कवच आदि जिस भिन्न प्रकार इधर उधर
 गिराने लगे। हे रामेन्द्र ! उस समय रणभूमि में वीरों
 के अवयव उड़ गये हुए ॥ १०१ ॥ गिरे, कट, पड़े,

कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
 रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥
 असिमार्गान्वहुविधान्विचेरुः सैनिका रणे ।
 ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्राप्तैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥ १७ ॥
 गदाभिः परिघैश्चाऽन्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
 अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥
 रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
 मातङ्गा वरमातङ्गैः पदानाश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥
 श्रीवा इवाऽन्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः ।
 उच्चुकुशुरथाऽन्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥
 वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
 धृष्टद्युम्नो हयानश्चैद्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥ २१ ॥
 ने हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
 पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥
 पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः ।
 हयाः शुशुभिरे राजन्मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥
 धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमामतम् ।
 अस्ति चर्माऽऽददे वीरो धनुस्तृज्य भारत ॥ २४ ॥
 चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्यतः परवीरहा ।
 ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २५ ॥

राज, कीण और गादइ आदि मामहारी जाय मृत
 और पायन हाथियो, घोड़े और मनुष्या का नाम
 और राजा व्यक्ति, रक्त रंग, उनका केश गोचने तथा
 शरीर और मस्तक व्यक्ति ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥
 रणनिपुण, अक्षरिणा म सुशिक्षित, ममर की टाप्पा
 जिये हुए योद्धा लोग विजय की अकाशा में अत्यन्त
 गौर युद्ध करने लगे । सैनिक पुरुष निमग्न होकर
 उत्तमोत्तम के पैरों दिगोल हुए कोपपूर्ण क्रुद्ध, शक्ति,
 प्राम, शूर, तोमर, गदा, पट्टिन और परिघ आदि
 अस्त्र शस्त्रों में तथा मल्लयुद्ध के दाग एक दूसरे की
 मारने और पटकने ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥
 य दापो के साथ, युद्धमय गैर युद्धमयों के साथ,

हाथियों का मगर हाथियों के मगलों के साथ और पैदल
 मिपाही पैदल के साथ भिड़ने । मदमत हाथी चिड़ो
 हुए एक दूसरे पर चोट करने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥
 राज । महाशाय धृष्टद्युम्न ने उस मयानक युद्ध के अन्त-
 म पर अपना रथ द्रोणाचार्य के रथ में बिठा दिया ।
 भूकालदायक गज रङ्ग के और रघुना के रङ्ग के
 दाना वीरों के उद्भव्य घोड़े एक स्थान मित्रर विजयी
 महान् मयानक के समान जोगा की प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥
 २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अतिष्ठद्युगमध्ये स युगसन्नहनेषु च ।
 जघानाऽधेषु चाऽश्वानां तत्सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ २६ ॥
 खड्गेन चरतस्तस्य शोणोश्वानधितिष्ठतः ।
 न ददर्शाऽन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २७ ॥
 यथा इयेनस्य पतनं वनेष्वामिपगृह्णिनः ।
 तथैवाऽऽसीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसनः ॥ २८ ॥
 ततः शरशतेनाऽस्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
 द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥
 ह्यांश्चैव चतुःपट्या शराणां जघ्निवन्वली ।
 ध्वजं छत्रं च भट्टाभ्यां तथा तौ पार्थिवसारथी ॥ ३० ॥
 अथाऽस्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
 आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥
 तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्वाणैश्चिच्छेद सात्यकिः ।
 ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥
 सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
 द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥
 सात्यकिं प्रेक्ष्य गोसारं पाञ्चाल्यं च महाहवे ।
 शराणां त्वरितो द्रोणः पङ्क्तिं शत्या समार्षयत् ॥ ३४ ॥

गये । वे कमी घोड़ों के ऊपर, कमी घोड़ों के पीछे
 और कमी रथ के 'युग' पर दिखाई पड़ने लगे ॥ २४ ॥
 २६ ॥ तत्काल ही हाथ में लिये महासाहसी धृष्टद्युम्न, आचार्य
 के लाल घोड़ों पर, इस प्रकार भ्रमण करते हुए युद्ध
 करने लगे; किन्तु रणनिपुण आचार्य को तनिक भी
 ऐसा अवकाश नहीं मिला, जिसमें वे धृष्टद्युम्न पर
 वार करते । धृष्टद्युम्न का यह अद्भुत साहस और दुष्कर
 कर्म देखकर सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे ।
 गोम की अभिलाषा रखनेवाला बाण जैसे शिकार के
 ऊपर झपटता है वैसे ही महावीर धृष्टद्युम्न आचार्य को
 मार डालने का असर देखते हुए उनके और अपने
 रथ पर विचरने लगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ क्षण भर के पश्चात्
 आचार्य ने कुपित होकर भी बाणों में धृष्टद्युम्न की
 दाढ़ और दम बाणों से तटवार काट डाली । इस-

के पश्चात् ही चौमट बाणों से उनके घोड़ों को मार
 डाला, दो भट्ट बाणों से रथ की ध्वजा काट डाली,
 छत्र काट गिराया और धृष्टरक्षक सहित सारथी का
 मिर काट डाला । फिर आचार्य ने पतन तरु धनुष
 की डोरी खींचकर एक वज्रमृग, प्राण हर देनेवाला,
 भयानक बाण धृष्टद्युम्न के ऊपर छोड़ा ॥ २९ ॥
 यह देखकर महावीर सात्यकि ने उभी समय भ्रंति
 के साथ चौदह बाणों में आचार्य के उस दाहण बाण
 को काट डाला और इस प्रकार, सिंह के मुँह में
 पहुँचे हुए मृग के समान, धृष्टद्युम्न को आचार्य ने
 प्रहार में बचा लिया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस भयानक समय
 में सात्यकि की धृष्टद्युम्न की रक्षा करते देखकर परा-
 कर्मी द्रोणाचार्य ने शीघ्रता के साथ उनकी दृष्टीग
 नीक्षण बाण मारे । फिर वे सृष्टयग्न या गंधार पर्वने

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो प्रसन्तमपि सृञ्जयान् ।

प्रत्यविध्यच्छितैर्वाणैः पद्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥

ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयशुद्धिनः ।

सात्वताभिस्तृते द्रोणे धृष्टशुभ्रमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथरथपर्वणि द्रोणधृष्टशुभ्रयुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

लगे। यह देखकर महावीर सात्विकी को भी बड़ा क्रोध चढ़ आया। उन्होंने आचार्य के वक्ष स्थल में छद्मीस बाण मारे। तब विजय की इच्छा रखनेवाले पाञ्चाल-

देश के योद्धा लोग, सात्विकी को आचार्य के सम्मुख देव्यकर, धृष्टशुभ्र को स्फूर्ति के साथ रणभूमि से हटा ले गये॥३५॥३६॥

द्रोणपर्व का सप्तनवतमो अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९७ ॥

अथ अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—वाणे तस्मिन्निहृते तु धृष्टशुभ्रे च मोक्षिते ।

तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन सञ्जय ॥ १ ॥

अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद्युधि ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—सम्प्रद्रुतः क्रोधविपो व्यादितास्पशरासनः ।

तीक्ष्णधारेपुदशनः सितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥

संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन् ।

नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥

उत्पतद्भिरिवाऽऽकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम् ।

रुमपुङ्खाशरानस्यन्युयुधानमुपादवत् ॥ ५ ॥

शरपातमहावर्षं रथघोषवलाहकम् ।

कार्मुकाकर्षचिक्षेपं नाराचवहुवियुतम् ॥ ६ ॥

शक्तिवद्भाशिभरं क्रोधवेगसमुत्थितम् ।

द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥

अष्टानवतमो अध्यायः ॥ ९८ ॥

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे मन्त्रय! महारथी सात्विकी ने जब आचार्य के छोड़े हुए बाण काटकर धृष्टशुभ्र की रक्षा की तब शस्त्रधारियों में अ्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने, सात्विकी के ऊपर बुधिन होकर, ऐसा मराम किया॥१॥ २॥मञ्जय कहने लगे—हे राजेन्द्र! उस समय महा-रथी आचार्य दुधिन होकर, धनुष लेकर, सुसज्ज-शोभित बाण और नाराच बाण यममाने लगे। वे

महानाग के समान लम्बे-लम्बे आस लेने हुए बड़े वेग के साथ सात्विकी की ओर झपटे। उनमें क्रोधपूर्ण भी भरा हुआ था, धनुषरूपी केशवा हुआ सुरा था, पूने बाण ही दाँत थे और नाराच बाण दाँद थी। द्रोणाचार्य के लान छोड़े पूरे वेग से जाने लगे कि जान पड़ता था मानों वे आकाशम में उड़े जा रहे हैं, या पर्वत के ऊपर चढ़ने जा रहे हैं॥३५॥३६॥३७॥३८॥३९॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥४६॥४७॥४८॥४९॥५०॥५१॥५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥५७॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥६३॥६४॥६५॥६६॥६७॥६८॥६९॥७०॥७१॥७२॥७३॥७४॥७५॥७६॥७७॥७८॥७९॥८०॥८१॥८२॥८३॥८४॥८५॥८६॥८७॥८८॥८९॥९०॥९१॥९२॥९३॥९४॥९५॥९६॥९७॥९८॥९९॥१००॥

दृष्ट्वाऽभिपतन्तं तं शूरः परपुरञ्जयः ।
 उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन्पुद्गदुर्मदः ॥ ८ ॥
 एनं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम् ।
 आश्रयं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥
 शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत् ।
 आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥
 ततो रजतसङ्काशा माधवस्य हयोत्तमाः ।
 द्रोणस्याऽभिमुखाः शीघ्रमगच्छन्वातरंहसः ॥ ११ ॥
 ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परन्तपौ ।
 शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥ १२ ॥
 इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुपर्पभौ ।
 पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३ ॥
 मेघाधिवाऽऽतपापाये धाराभिरितरेतरम् ।
 न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥ १४ ॥
 इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
 अनाधृष्यमिवाऽन्येषां शूराणामभवत्तदा ॥ १५ ॥
 अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।
 तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥
 नाऽन्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।
 इषूणां सन्निपातेन शब्दो धाराभिघानजः ॥ १७ ॥

समय गदागिर सालिकि ने द्रोणरूप मेघ को देखा जो
 बाणवर्षा वर्षा कर रहा था और रथ की चगिन्त्य
 गर्जना कर रहा था । धनुष का बीचघना हो मूल-
 धार वर्षा थी जिसमें नाराच बाण बिजली की भाँति
 चमक रहे थे । इस मेघ में शक्ति और रङ्ग ही वज्र थे ।
 यह मेघ क्रोध के बेग में उत्पन्न और घोड़े रथ आँधी
 के खोर से चट रहा था । तब सालिकि ने हैमकर
 अग्ने सारथी से कहा - हे सूत ! तुम शीघ्र ही इन
 स्वकर्म-प्युत, दूषोधन के लिए आश्रयभूत, राजपुत्रों
 के गुरु, धीराभिमानों ब्राह्मण द्रोण के गर्भाश्रय मेरा रथ
 में चले ॥ ८ ॥ १० ॥ माथी ने उसी समय सालिकि की
 आज्ञा के अनुसार, श्वेत् और शङ्ख के मगान बेग में

चलनेवाले, घोड़े को आचार्य के सम्मुख पहुँचा दिया ।
 हे महाराज ! अब द्रुपदलन आचार्य द्रोण और शिति
 के वंश में उत्पन्न माल्यकि दोनों ही अत्यन्त घोर युद्ध में
 प्रवृत्त होकर परस्पर जलधारा के समान असंख्य बाण
 धरमने लगे । उन दोनों वीरों के बाण आकाशमण्डल
 भर में और सब दिशाओं में व्याप्त हो गये ॥ ११ ॥ १४ ॥
 उन्होंने मृग के प्रकाश की छिपा छिपा और पवन
 की गति भी शक नहीं । इस प्रकार दोनों की बाणवर्षा
 में समरभूमि आच्छन्न होने पर अचानक धीरगता, युद्ध
 न दीप्त पड़ने के कारण, युद्ध न कर सका । शीघ्र
 ही अब चरन्ति में निपुण द्रोणाचार्य और माल्यकि ने
 इनके बाण वारमों के निच भर भी गुरु-प्युत गद्दी

शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।
 नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमावभौ ॥ १८ ॥
 आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।
 नयोज्यनिलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धग्रौण्डयोः ॥ १९ ॥
 अजम्बं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाऽऽहन्यतामिव ।
 उभयोस्तौ रथौ राजस्ने चाऽश्वास्तौ च सारथी ॥ २० ॥
 रुक्मपुङ्खैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा वभुस्तदा ।
 निर्मलानामजिह्वानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥
 निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत्सुदारुणः ।
 उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥
 उभौ रुधिरसिक्ताङ्गवुभौ च विजयैपिणौ ।
 स्ववह्निः शोणितं गात्रैः प्रभ्रुताविव वारणौ ॥ २३ ॥
 अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीविनान्तकरैः शरैः ।
 गर्जितोत्कुप्टसन्नादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥
 उपारमन्महाराज व्याजहार न कश्चन ।
 तूष्णींभूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ॥ २५ ॥
 ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।
 रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥ २६ ॥
 अवैक्षन्ताऽचलैर्नैत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।
 हस्त्यनीकान्यनिष्ठन्त तथाऽनीकानि वाजिनाम् ॥ २७ ॥
 तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।
 मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूपिनेः ॥ २८ ॥

देव पड़ता था । उन दोनों भीम के शरीरों के निरन्तर
 गिने का शब्द इन्द्र के जेड़े वज्रों के गिने की भाँसा
 गक कड़क के समान सुनाई पड़ने लगा ॥ १८ ॥
 नाराच बाणों में फटे और बिछे हुए बाण खिंचे नाग
 के डेरे हुए गधों के समान दिनाई पड़ने में । उन
 युद्धनिपुण भीमों की प्रत्यक्षा और हस्ती की शब्द
 देगा मान पड़ता था अर्धमर्ष के शिखरों पर निरन्तर
 वज्र गिर रहा हो । दोनों भीमों के रथ, घोड़े और
 सारथी सुगुणगुणवत् बाणों में अट्टम होने के

कारण शिखर प्रतीत होने लगा ॥ १८ ॥
 और भीमों नाराच बाण के कुछ जेड़े हुए नाग के समान
 चांग और गिर रहे थे । दोनों के रथ कट गये और
 स्वार्थ कटकर गिर पड़े । दोनों की भीम विजय की
 अभिनया में मुद्र कर रहे थे । दोनों के शरीरों में
 रक्त बह रहा था, जिसमें के कन पड़े गजराजों के समान
 देव पड़ने थे । प्रायमानक बाणों में दोनों एक दूसरे
 की प्राय कट रहे थे ॥ २१ ॥
 गौतम समग्र युद्धभूमि
 में गर्जन, मिहनाद, चिदाष्ट और शङ्ख दुन्दुभि आदि

ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ।
 वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥ २९ ॥
 विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ।
 जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्द्धसु ॥ ३० ॥
 गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
 सवलाकाः सखद्योताः सैरावतशतहृदाः ॥ ३१ ॥
 अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वायुराः ।
 अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ॥ ३२ ॥
 तद्युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
 विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥
 सिद्धचारणसङ्घाश्च विद्याधरमहोरगाः ।
 गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविधातिभिः ॥ ३४ ॥
 विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुपसिंहयोः ।
 हस्तलाघवमत्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥
 अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ।
 ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥
 पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाशुनेः ।
 निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ॥ ३७ ॥
 सज्यं चकार तदपि विच्छेदाऽस्य च सात्यकिः ।
 ततस्त्वरन्पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥

के शब्द बन्द हो गये; कोई चूँ तक नहीं करता था ।
 सैनिक लोग युद्ध करना छोड़कर कौतुहल के साथ
 उन दोनों का अद्भुत साम्राज्य देखने लगे॥२१२७॥
 उन दोनों योद्धाओं के आसपास गँडे हुए रथी, हाथियों
 के समार, घुड़मार और पैदल योद्धा एकटके उस युद्ध
 को देखने लगे । हाथियों, घोड़ों और रथों की सेनाएँ
 व्यूहरचनापूर्वक यथामान सज्जी थीं । मोती-मृगे आदि
 से चित्र-विचित्र, सुवर्ण-मणिभूषित ध्वजएँ, विचित्र
 आभूषण, रत्नन कम्बु, मृदम कम्बु, सुनहरे कवच,
 चण्ड तीक्ष्ण शस्त्र, घोड़ों के मिर की कलंगी, हाथियों
 के मस्तकों पर पहनी हुई सुवर्ण और चाँदी की मागएँ,
 पुष्प मालाएँ, दन्तवेष्टन आदि की शोभा में वे सेनाएँ

एसी जान पड़ती थी कि जैसे वर्षाकाल आने पर बगों
 की कनार, जुगनू, इन्द्रधनुष और बिजली में युक्त
 भारी घन-घटाएँ उमड़ी हुई हों॥२८१॥ हे महा-
 राज ! हमारे और युधिष्ठिर के सभी सैनिक महाना
 द्रोणाचार्य और सात्यकि का दारुण युद्ध देखने लगे ।
 विमानों पर बैठे हुए ब्रह्मा चन्द्रमा इन्द्र आदि देवता,
 मित्र, चारण, विद्याधर, नाग आदि के झुण्ड के झुण्ड
 आज्ञाशर्मा में यह युद्ध देख रहे थे । उन दोनों
 योद्धाओं के आगे बढ़ने, पीछे हटने और विचित्र अस्त्रों
 के द्वारा दिव्य अस्त्रों को निपलट करने का पौराणिक
 और रक्षित देवदत्त सचकाँ बड़ा ही आश्चर्य हुआ॥३२॥
 ३५॥अथप्रयोग में हाथों की रक्षित दिग्गो हुए महा-

सज्यं सज्यं धनुश्चाऽस्य चिच्छेद निशितैः शरैः ।
 एवमेकगतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९ ॥
 न चाऽन्तरं नयोर्दृष्टं सन्धाने छेदनेऽपि च ।
 ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्माऽतिमानुषम् ॥ ४० ॥
 युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।
 एतदस्त्रवलं रामे कार्तवीर्ये धनञ्जये ॥ ४१ ॥
 भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।
 तं चाऽस्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥ ४२ ॥
 लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।
 तुतोपाऽस्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥
 न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।
 देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
 सिद्धचारणसङ्घाश्च त्रिदुद्रोणस्य कर्म तत् ।
 ततोऽन्यच्चनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
 अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत ।
 तस्याऽस्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्वकिः ॥ ४६ ॥
 जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
 तस्याऽतिमानुषं कर्म दृष्ट्वाऽन्यैरसमं रणे ॥ ४७ ॥

यत्र द्रोण आर मा यत्र ण द्रुमो पर प्रहार कर रह
 थे । रभी मध्य म मा यत्र न सुदृढ़ बाणा मे बाणा
 चार्य ने बाण निष्कृत कर धनुष काट डाल । शत्रु
 रमा बाण न भण भर में द्रुम धनुष रपर उम पर
 डाली चढ़ाई किंतु मा यत्र न स्फुटि न माय रह धनुष
 भी काट डाला कि बाणा काय न और अ य धनुष रपर
 उम पर डाली चढ़ाई सात्वकि ने स्फुटि निगल हण रह
 धनुष भी काट डाल । इस प्रकार जय जय आचार्य
 धनुष जे भ तव जय उम मालकि काट काटन थ ।
 ल महागज । दृढधनुर्दारी मालकि न बाणा काट क
 पर मा धनुष काट डाल । इस कार्य म मालकि ने
 इतनी स्फुटि निगल नि यह सिमी वा रिजित न हो
 मया कि उठो कय जय धनुष र वण चढ़ाया
 और कय द्रुमपाय वा धनुष उममे काट डाल
 ॥ ३५१० ॥ मालकि ने उम अश्व कार्य को देख

कर द्रोणाचार्य जी मोचन जे कि परशुराम, कात
 जाय महस्रगह अर्जुन, अर्जुन और भीष्मरितामह की
 मा स्फुटि अर अश्वर मात्वकि म दाय पड़ रहा
 है । रट रतु इमा यत्र न पगक्रम, अश्वर और
 स्फुटि देमर द्विजशत्रु द्रोणाचार्य मा ही मन म
 उतरी प्रगमा करे रम । अश्वर पुरयो में श्रेष्ठ द्रोणा-
 नाय मा यत्र के इस कर्म मे म तुष्ट हुआ ॥ ४० ॥ ४१ ॥
 इट आनिष्टता, गंधर्वा, मिद, चारण सभी द्रोणाचार्य
 क अश्वर और स्फुटि को तो जानते ही थे, परन्तु
 मा यत्र क अश्वर और हस्तपाय को नहीं जानते
 थे । इस समय उनका अमाधारण कर्म को देखकर
 उठे मा मनोर और आश्चर्य हुआ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मने
 पथत जय रिता नि गज गजुमन द्रुम काय और
 धनुष रट दिव्य अश्व क बाण मुद कर्म जे ।
 मात्व कि भी चहुन निष्ट भजन अश्व के बाण उनक

युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् ।
 यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवाऽस्यति सात्यकिः ॥ ४८ ॥
 तमाचार्योऽथ सम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः ।
 ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥
 वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।
 तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥ ५० ॥
 दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ।
 हाहाकारो महानासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥ ५१ ॥
 न विचेरुस्तदाऽऽकाशे भूतान्याकाशगान्यपि ।
 अस्त्रं ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥ ५२ ॥
 न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्त्तदथ भास्करः ।
 ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥
 नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।
 धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥ ५४ ॥
 मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुर्जज्ञसा ।
 दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥
 द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।
 ततो युद्धमभूद्राजस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥

अर्जुन को निष्फल करके उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । यह देवकर सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ । रणवीरशाल के ज्ञाना कौरवदल के वीरगण, सात्यकि के अत्यधिक युद्धवीरशाल और अखण्ड की देवकर, उनकी प्रशंसा करने लगे । द्रोणाचार्य ने जो जो अस्त्र छोड़े, उनका और उन्हे व्यर्थ करनेवाले अर्जुन का प्रयोग महावीर सात्यकि ने भी किया॥४५॥४८॥ शत्रुतापन आचार्य धर्म के माप उनमें युद्ध करने लगे; किन्तु सात्यकि के अत्यवीरशाल से ये व्याकुल हो गये । तब धनुर्वेद के पारंगामी आचार्य ने कुपित हो कर, सात्यकि को मारने के निमित्त, महाघोर शत्रुनाशन दिव्य अग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया । यह देवकर सात्यकि ने अमापारण गरणाय का प्रयोग दिया । दोनों वीरों को दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते देवकर चारों ओर हाहाकार होने लगा॥४९॥५१॥उम समय

आकाश से आकाशचारी जीव भी हट गये । दोनों वीरों ने बाणों का जिम समय दिव्य अस्त्रों से अभि-
 मन्त्रित किया उम समय मूर्ख मध्य आकाश में पश्चिम की ओर हट चुके थे, दोपहरी दल चुकी थी । दोनों अस्त्र एक दूसरे के प्रभाव से व्यर्थ हो गये । उम समय राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव सात्यकि की महारथना और रक्षा करने लगे । धृष्ट-
 द्युम्न आदि योद्धा, विराट, सकेकय, मत्स्य और मत्स्य देव की सेनाएं द्रोणाचार्य के ऊपर वेग से आक्रमण करने लगी । और आचार्य को शत्रुओं से घिरे देगए दुःशासन को अग्नेय अस्त्र हट मरणा राजपुमार आचार्य की रक्षा के निमित्त उनके समीप आया॥५२॥५५॥ दे गेजट ! उम समय उन योद्धाओं के माप आर्षक दल का घोर संग्राम होने लगा । बाणों और अस्त्रों का बरसात हो गया । कुछ म दिग्ग

रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।
 सर्वमाविममभवन्न प्राज्ञायत किञ्चन ।
 सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ ५७ ॥

इति श्री महाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणमात्यकियुद्धे अष्टमवर्त्तिनोऽध्याय ॥ ९.८ ॥

पड़ने के कारण सब लोग व्याकुल हो उठे । इस मर्यादाहीन सपना होने लगा ॥ ५६, ५७ ॥
 प्रसार धूल के मोरे सब मेना के बिहल होने पर

द्रोणपर्व का अष्टमवर्त्त अन्धाय ममाप्त हुआ ॥ ९.८ ॥

अथ एकोनशततमोऽध्याय ॥ ९.९ ॥

मन्त्रय उवाच

विवर्त्तमाने त्वादित्ये तत्राऽस्तशिखरं प्रति ।
 रजसाऽऽकीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥
 तिष्ठतां युद्धग्रमानानां पुनरावर्त्ततामपि ।
 भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥ २ ॥
 तथा तेषु विपक्तेषु सैन्येषु जयग्रह्णिषु ।
 अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥
 रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
 चकार तत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥
 यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
 तत्र तत्रैव दीर्यन्ते मेनास्तत्र विग्राम्पते ॥ ५ ॥
 रथशिक्षां तु दाशाहो दर्शयामास वीर्यवान् ।
 उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥
 ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसन्निभाः ।
 क्षायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथक्च दीर्घगामिनः ॥ ७ ॥

निर्नामवर्त्त अन्धाय ॥ ९.९ ॥

मन्त्रय उवाच — हे राजेन्द्र ! सूर्यदेव अन्नावृत्त की ओर बढ़ेकिरणों की तेजी घट चट्टी और धूल का अंधग अधिकारिक बढ़ने लगा। और मेना के बाढ़ा कला मधुम इतर युद्ध करने थे, कभी भागने और कभी लड़कर फिर गामना करते थे । इस प्रकार विजय प्राप्त करने का यत्न करते-करते धीरे-धीरे वह दिन व्यतित हो चला । इस प्रकार जय की आकांक्षा में सब मैत्रिक मित्रकर युद्ध करने लगे । जयद्रथ के समीप जाने के निमित्त अर्जुन और श्री कृष्ण बगवत अंग ही बढ़ने जा रहे थे ॥ १ ॥

॥ अर्जुन अपने तंक्षण बाणा के द्वारा रथ के जाने पर की रक्त करने जाने थे और श्रीकृष्ण उमी राह में रथ चले जा रहे थे । अर्जुन का रथ जहो-जहो जाता था वहीं-वही अपने पक्ष को मेना इधर-उधर होती चली जाता था । उस समय दगाकरी के शत्रु उत्तम, मय्यम और अधम, विविध मण्डलों का दिग्गाने हुए, अपनी रथ होकर कीरन का परिचय दे रहे थे ॥ २ ॥ अर्जुन के नाम में अर्जुन, बाण और अग्नि के तुल्य, जोन में भी हुए, सुन्दर गहरो में शोभित, मोटे, मोटे,

वैणवाश्चाऽऽस्यसाश्चोग्रा असन्तो विविधानरीन् ।
 रुधिरं पतंगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥
 रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यत्यर्जुनः शरान् ।
 रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ॥ ९ ॥
 तार्क्ष्यमासुतरंहोभिर्वाजिभिः साधु वाजिभिः ।
 तदाऽगच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत् ॥ १० ॥
 न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशाम्पते ।
 नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ॥ ११ ॥
 नाऽन्यस्य समरे राजन्गतपूर्वस्तथा रथः ।
 यथा ययावर्जुनस्य मनोभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥
 प्रविश्य तु रणे राजन्केशवः परवीरहा ।
 सेनामध्ये ह्यांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥ १३ ॥
 ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य ह्योत्तमाः ।
 कृच्छ्रेण रथमुहुस्तं क्षुरिपपासासमन्विताः ॥ १४ ॥
 क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
 मण्डलानि विचित्राणि त्रिचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥
 हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
 उपरिष्ठादविक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥
 एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
 सहसेनौ समाद्येतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥

दूर तक जानेवाले, बाँस और छोड़े के वन अत्यन्त उग्र
 बाण विविध शत्रुओं के प्राण हरने और मांमाहारी पक्षियों
 के साथ उनका रक्त पीने लगे । कृष्णचन्द्र इस वेग से
 रथ हँक रहे थे कि रथ पर बैठे हुए अर्जुन कोम भर
 आगे जिन बाणों को छोड़ते थे, वे बाण कोम भर आगे
 रथ निकल जाने पर शत्रुओं के प्राण हरते थे ॥ ७ ॥
 गरुड़ और बाघ के समान वेगवानी सुशिक्षित घोड़ों
 को हॉकर कृष्णचन्द्र इस कौशल और क्षीप्रता से रथ
 को लिये जा रहे थे कि सब लोगों को देगकर बड़ा
 आश्चर्य हो रहा था । जितने वेग में अर्जुन का रथ
 जा रहा था उतने वेग में कभी पहले इन्द्र, रुद्र और
 कुबेर का भी रथ नहीं चला ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

कि मनु और मनोग्रह के समान शीघ्र जानेवाला अर्जुन
 का रथ जिस प्रकार जा रहा था उस प्रकार कभी
 किसी का रथ नहीं गया । हे राजेन्द्र ! शत्रुदलदलन
 केशव इस प्रकार रणभूमि में प्रवेश करके स्फूर्ति के
 साथ घोड़ों को शत्रुसेना के मध्य चलाने लगे । अर्जुन
 के घोड़े शत्रुसेना के रथों के मध्य में भूच-प्याम और
 यवन के मार धीरे-धीरे चलने लगे । योद्धाओं के अनेक
 अस्त्र-शस्त्र लगन में उनके अश्वों में घटने से घाय हो
 चुके थे । उस वृथा और यवन के मारे वे घोड़े भीभी
 चाट में विचित्र मण्डलान्तर गनियों में चलने लगे । वे
 घोड़े मृत परानागर घोड़ों, हाथियों, मनुष्यों और
 दूरे दूरे रथों के ऊपर से रथ की गीचने पड़े जा रहे

तावर्जुनं चतुःपृष्ठ्या सप्तत्या च जनार्दनम् ।
 शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥
 तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ।
 आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥
 ततस्तौ तु शरौघेण वीभत्सुं सहकेशवम् ।
 आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥ २० ॥
 तयोस्तु धनुषी चित्रे भट्टाभ्यां श्वेतवाहनः ।
 चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥
 अथाऽन्ये धनुषी राजन्प्रगृह्य समरे तदा ।
 पाण्डवं भृशसंकुछावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥
 तयोस्तु भृशसंकुछः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः ।
 धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय पत्र धनञ्जयः ॥ २३ ॥
 तथाऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
 जघानाऽश्वांस्तथा सूतौ पाण्णीं च सपदानुगौ ॥ २४ ॥
 ज्येष्ठस्य च शिरः कायारक्षुरप्रेण न्यकृन्तत ।
 स पपात हतः पृष्ठ्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ २५ ॥
 विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान् ।
 हताश्वं रथमुत्तृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥
 अभ्यवर्त्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ।
 गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥

भा॥ १३।१६॥ ते राजन् ! तव अग्निदेश के बिन्द
 और अनुविन्द ने अर्जुन के घोड़ों की भया हुआ देशकर
 अपनी मना के साथ उनका सामना किया । उन्होंने
 अर्जुन को बाण, शीशुण को मत्त और घोड़ों को
 भी बाणों से पीड़ित किया । तब महावीर अर्जुन ने
 अत्यन्त ही पुनित होकर उनको मने में बाण मारे
 ॥ १७॥ १९॥ महावीर अर्जुन ने बिन्द और अनुविन्द ने
 अर्जुन के बाणों से अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथ में बिन्दनाद
 किया और अर्जुन तथा शीशुण को बाणों से दक
 दिया । महावीर अर्जुन ने दो भद्र बाणों से रुक्म
 के साथ उनका विधिवत् प्रहार किया और इव परदे
 कट कायी । महावीर बिन्द और अनुविन्द नृत्यन्निव

और अन्य धनुष लेकर मोक्षपूर्वक अर्जुन के ऊपर बाण
 बरसाने लगा ॥ २०॥ २१॥ पद देकर अर्जुन ने मोक्ष
 करके फिर दो बाणों में उनको धनुष काट दो । फिर
 उनके माथों, घुट्ठानों, महापत्र पद मिताही और
 पेटों की पर काट और एक रिक्त स्थान बाण में
 बिन्द का निशान पड़ा । अर्जुन के बाण से प्राण-
 मत्त होकर बिन्द, अर्जुन ने दूरे बड़े पद की मीन,
 धनुषी पर पड़ा ॥ २३॥ २४॥ पद मारे की मृगु देकर
 महावीर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध करके, यह बिना
 में दो का रथ में दकर, गदा हाथ में लिये अर्जुन की
 ओर दौड़े । मर्दा उक्त अर्जुन ने शीशुण के
 मन्त्र ने बड़े पद में गदा मारी । अनुविन्द के गदा-

अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम् ।
 स्पृष्ट्वा नाऽकम्पयत्कुक्षो मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥
 तस्याऽर्जुनः शरैः षड्भिर्भीवां पादौ भुजौ शिरः ।
 निचकर्त स सञ्छिन्नः पपाताऽद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥
 ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजज्यपदानुगाः ।
 अभ्यद्रवन्त संकुक्षाः किरन्तः शतशः शरान् ॥ ३० ॥
 तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ ।
 व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥
 तयोः सेनामतिक्राम्य कृच्छ्रादिव धनञ्जयः ।
 विवभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥
 तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाऽभवन्पुनः ।
 अभ्यवर्तेन्त पार्थ च समन्तान्नरतर्षभ ॥ ३३ ॥
 श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम् ।
 सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥
 तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्समयन्पुरुषर्षभः ।
 शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥
 शरादिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः ।
 किमिहाऽनन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥
 ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा ।
 भवन्नैत्रा रणे शत्रून्विजेज्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥

प्रहार से श्रीकृष्ण तनिक भी विचलित न हुए । वे मैनाक पर्वत की भाँति अचल-अटल खड़े ही रहे ॥ २८ ॥ तब अर्जुन ने कुपित होकर छः बाणों से अनुविन्द के दोनों हाथ, दोनों पाँव, गर्दन और मस्तक वगैरे डाला । इससे वे पर्वत की भाँति भरभराकर गिर पड़े । इस प्रकार महाबली विन्द और अनुविन्द के मारे जाने पर उनके सैकड़ों साथी योद्धा क्रोधपूर्वक बाण बरमाते हुए अर्जुन की ओर दौड़ पड़े । अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ तीक्ष्ण बाणों से उन्हें भी मार डाला ॥ २९ ॥ ३१ ॥ उस समय विन्द और अनुविन्द की सेना का कठिनाई में मारकर, उनके मध्य से निकलकर, वे गर्मियों में जल को जलानेवाले दावानल और मेघमुक्त सूर्यदेव के समान

शोभायमान हुए । उन्हें देखकर कौरवदल के लोग पहले भयभीत हुए; परन्तु फिर जयद्रथ को दूर पर स्थित और अर्जुन को थका हुआ देखकर प्रसन्न हो उठे । सबने चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया । वे सिंहनाद करके अर्जुन पर घोर आक्रमण करने लगे ॥ ३२ ॥ ३४ ॥ उन्हें क्रोध के मारे बाण बरसाने आते देख सुसंकरते हुए अर्जुन ने धीरे में कहा—हे बाणुदेव ! बाणों के प्रहार से मेरे घोड़े जर्जर हो रहे हैं, धनु भी गये हैं और जयद्रथ भी अभी दूर है । आप मर्षम अधिक बुद्धिमान हैं और हमारे नेता हैं । वनाइए, इस समय क्या करना उचित है ॥ ३५ ॥ ३७ ॥ पाण्डव लोग आपसी ही चतुर्धा में शत्रुओं को मार सकेंगे ।

मम त्वनन्तरं कृत्यं यद्वै तत्त्वं निबोध मे ।
 हयान्विमुच्य हि सुखं विशल्यान्कुरु माधव ॥ ३८ ॥
 एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
 समाऽप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥

अर्जुन उवाच—अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
 त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ ४० ॥

सञ्जय उवाच—सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनञ्जयः ।
 गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिवि ऽचलः ॥ ४१ ॥
 तमभ्यधावन्क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकांक्षिणः ।
 इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥
 तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
 विकर्पन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥
 शस्त्राणि च विचित्राणि कुञ्चास्तत्र व्यदर्शयन् ।
 छादयन्तः शरैः पार्थ मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥
 अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
 नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥
 तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्वलमदृश्यत ।
 यत्कुण्डो बहुलाः सेनाः सर्वतः समचारयत् ॥ ४६ ॥
 अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विपातां सर्वतो विभुः ।
 इषुभिर्गद्गुभिस्तूर्णं सर्वानिव समावृणोत् ॥ ४७ ॥

मेरी सम्मति तो यह है कि आप यहाँ घोड़े का रथ
 में खोलकर उनके अर्धों के मध्य शरूप दूर करीजिए
 और वे कुछ सुस्ता भी लें । अर्जुन के वचन सुनकर
 श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ! तुझका कहना सही उचित
 ही है । अब अर्जुन ने कहा—हे मित्र ! आप यहीं पर
 टहरकर अपना कार्य कर लीजिए । मैं पैदल ही सब
 शत्रुओं को रोके रहूँगा ॥ ३९ ॥ अब महावीर अर्जुन
 निःशङ्क भाव में अपनी अस्त्रविद्या दिखाने लगे । वे
 रथ में उतरकर, गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर, पार्थ
 के समान अटल भाव में खड़े हो गये । उस समय
 विजय की अभिलाषा रखनेवाले क्षत्रियगण अर्जुन को
 घूरी पर खड़े हुए देमकर, आक्रमण के योग्य यही

अमर जानकर, धनुष बढ़ाकर विचित्र अस्त्र-शस्त्र
 छोड़ते हुए, मिह के समुद्र हाथियों के झुण्ड के
 समान अर्जुन की ओर झपट पड़े । अमर्य रथों के
 मध्य में अर्जुन चिर गये । क्षत्रियों के बाणजाट के
 मध्य में अर्जुन मेघों में छिपे हुए सूर्य के समान जान
 पड़ने लगे । उस समय युद्धभूमि में शत्रुनाशन अर्जुन
 अपना अद्भुत वाह्यत्र दिखाने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने
 अपने अस्त्र के प्रभाव में शत्रुपक्ष के मर अर्धों को
 निष्कल कर दिया । अर्जुन के बाणों में विद्रुत होकर
 शत्रुपक्ष के मर घोड़ा आगे बढ़ने में असमर्थ हो गये ।
 बाणों के पारपर रणद स्थान में आकाश में अग्नि भी
 जल उठी । अमर्य योग्यता विजय की अभिलाषा

तत्राऽन्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते ।
 सङ्घर्षेण महार्चिष्मान्पावकः समजायत ॥ ४८ ॥
 तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
 हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चाऽरिर्कर्षणैः ॥ ४९ ॥
 संरब्धैश्चाऽरिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
 एकस्थैर्वहुभिः कुक्षैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥
 शरोर्मिणं ध्वजावर्त्तं नागनक्रं दुरत्ययम् ।
 पदातिमस्त्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥
 असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च ।
 उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥ ५२ ॥
 रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम् ।
 बेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥
 शृतराष्ट्र उवाच — अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे ।
 एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥ ५४ ॥
 सञ्जय उवाच — सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः ।
 रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा ॥ ५५ ॥
 स पार्थः पार्थिवान्सर्वान्भूमिस्थोऽपि रथस्थितान् ।
 एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥
 ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम् ।
 असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

से क्रोधपूर्णक बहुत से रुधिरचर्चित मस्त हाथियों और घोड़ों को साथ लेकर अकेले अर्जुन को हराने और मारने का पूर्ण उद्योग करने लगा ॥ ४५ ॥ ५० ॥ उनके रथों की कनार देवने से जान पड़ता था कि मानों अपार महासागर भरा पड़ा है । उम समुद्र में बाण तरङ्गों के समान, पञ्जरों और के समान, हाथी मगरों के समान, पैदल मण्डलियों के समान, पगड़ियों कछुओं के समान तथा छत्र और पताकाएँ फेले के समान दमक पड़ती थीं । महावीर अर्जुन तटभूमि के समान उस अक्षोभ्य और हाथीमय चटानों में घिरे रथ-सागर को बाणों से रोके हुए था ॥ ५१ ॥ ५३ ॥ शृतराष्ट्र ने पूछा — अर्जुन जब रथ में उतर पड़े और श्रीकृष्ण ने

घोड़ों को संभाला तब, यह असुर पाकर, अर्जुन को क्यों न मार डाला ॥ ५४ ॥ सञ्जय ने कहा — घृष्टी पर खड़े रहने पर भी अकेले अर्जुन ने रथों पर सवार राजाओं को वात की बात में इस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार वेद-विरुद्ध वाक्य मनुष्य की प्रवृत्ति को रोक देता है या व्योम सब गुणों को राद कर देता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उम समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा — हे पार्थ ! तुम्हारे मोक्ष के पाम के बारे व्याकुल हो रहे हैं । इस समय इन्हें जल विजय की आवश्यकता है । यहाँ पर घोड़ों को जल विजय के निमित्त कुश्रों आदि कोई जवानाय भी नहीं है । इन्हें स्नान कराने की उतनी आवश्यकता नहीं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ अर्जुन ने निश्चित

उदपानमिहाऽश्वानां नाऽलमस्ति रणेऽर्जुन ।
 परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥
 इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम् ।
 अभिहृत्याऽर्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥
 हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
 सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥
 कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृपिसेवितम् ।
 आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥ ६१ ॥
 शरवंशशरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम् ।
 शरवेश्माऽकरोत्पार्थस्त्वष्ट्रेवाऽद्भुतकर्मकृत् ॥ ६२ ॥
 ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाऽब्रवीत् ।
 शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन्महात्मना ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रौणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दाशुविन्दार्थे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

भाव मे " यह जलाशय है " कहकर उमी समय अश्व के द्वारा पृथ्वी तल को फोड़ दिया । अश्व के प्रभाव से ही वहाँ पर एक ऐसा विस्तृत सरोवर बन गया जिसके तट पर हंस, कारण्डव, चक्रवे आदि पक्षी बैठे थे, जल स्वच्छ था और उसके भीतर मछली-कछुए आदि अनेक जीव-जन्तु कलोलें कर रहे थे । उस क्रपि-मेदिनि, निर्मल जलयुक्त, प्रफुल्लित कमल दलशोभित, तमाल

निर्मित सरोवर को देखने के लिए देवर्षि नारद आ गये ॥ ५८ ॥ ६१ ॥ विश्वकर्मा के समान विचित्र कार्य करने-वाले अर्जुन ने यहाँ पर बाणों का ही एक विचित्र घर बना दिया, जिसके बाँस (ठाल), लकड़ी, छपर आदि सब बाणों के ही थे । महात्मा कृष्णचन्द्र अर्जुन का यह अद्भुत कार्य देखकर हैराने हुए उन्हें बारम्बार साधुवाद देने लगे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

द्रौणपर्व का निरानवेरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ १०० ॥

अथ शतशोऽध्यायः ॥ १०० ॥

गन्धर्व उवाच—सलिले जनिते तस्मिन्कौन्तेयेन महारमना ।
 निस्तारिते द्विपत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥
 ब्रासुदेवो रथात्तूर्णमवतीर्य महाशुनिः ।
 मोचयामास तुरगान्विनुन्नान्कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥
 अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् ।
 सिद्धचारणसङ्घानां सैनिकानां च सर्वशः ॥ ३ ॥

सां अध्याय ॥ १०० ॥

मन्त्रप कहने हैं—हे महाराज ! इस प्रकार वीर अर्जुन के प्रभाव से रणरमल में जल निराल आया, बाणों का घर बन गया और शत्रुपक्ष भी जहाँ के तहाँ

रुक गये । तब महात्मा के शत्रु ने रूप में उनका कह-पर शोभित बाणों में घायत मोहों को रथ में खोद दिया । उस समय मित्र-चारणपक्ष और मन्त्रपैनिप

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः ।
 नाऽशक्नुवन्वारयितुं तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४ ॥
 आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
 नाऽसम्भ्रमत्तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥
 व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
 न चाऽव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥
 शतानि शरजालानि गदाप्रासांश्च वीर्यवान् ।
 आगतानग्रसत्पार्थः सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥
 अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
 सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत्ताडशरोत्तमान् ॥ ८ ॥
 तत्तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
 अपूजयन्महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥ ९ ॥
 किमद्भुततमं लोके भविताऽप्यथ वा ह्यभूत् ।
 यदश्वान्पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥
 भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
 तेजो विदधतुश्चोद्यं वित्तवधौ रणमूर्धनि ॥ ११ ॥
 अथ स्मयन्हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
 अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगहे तथा ॥ १२ ॥
 उपावर्त्तयदव्यग्रस्तानश्वान्पुष्करेक्षणः ।
 मिपतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥

पुरुष अर्जुन के उस अभूतपूर्व कार्य को देखकर बारम्बार
 उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥ और वपुष् के योद्धा
 लोग किसी प्रकार अर्जुन को परास्त नहीं कर पाते थे,
 यह देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हो रहा था । महारथी
 योद्धा और राजा लोग निरन्तर अर्जुन के ऊपर बाण
 बरसाने लगे, परन्तु वीर अर्जुन उनके प्रहार में तनिक
 भी विचलित नहीं हुए ॥ १४ ॥ उन अमंगल्य हाथियों,
 घोड़ों और रथों का आक्रमण में महावीर अर्जुन व्याकुल
 हुए नहीं; वे सबको परास्त करके, मरण दकर, अद्भुत
 कीदाल के माग संग्राम करने लगे । जैसे महामागर
 सब नदियों के घेग का सहज ही रोक लेता है, वैसे
 ही वीर अर्जुन भी वीरों के चरणों पर अमंगल्य बाण,

गदा, प्रास आदि शस्त्रों के बार को झेलते रहे ॥ १५ ॥
 कौरवगण उस समय अर्जुन और श्रीकृष्ण के अद्भुत
 पराक्रम की वृत्त प्रशंसा करने लगे कि अर्जुन और
 श्रीकृष्ण ने जो युद्ध के मैदान में शत्रुदल के मरण
 के भेदि मोट दिये, और उन्हें जड़ विलाकर विधाम
 करा दिया, यह उनके लिए कुछ बड़ी बात नहीं थी ।
 दोनों वीरों ने अपना उग्र और अद्भुत तेज दिखाने
 हम लोगों को बहुत ही मयापुल कर दिया ॥ १६ ॥
 हे महाराज ! उस समय अचरित में निपुण कृष्णभट्ट
 ने मारी शस्त्रेणा के सम्मुख ही उस अर्जुन-नभिन बर्षों
 के घर में वे दोनों को एक जाकर उनकी यक्ष्म मिटाने
 करने हाथों में उनके शरीर के शय्य निगल और

तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं वणान् ।
 सर्वं व्यपानुदत्कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥
 शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान्हयान् ।
 उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥ १५ ॥
 स ताल्लब्धोदकान्नाताञ्जग्धान्नान्विगतकृमान् ।
 योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥
 स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
 समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ हृतम् ॥ १७ ॥
 रथं रथवरस्याऽऽजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
 दृष्ट्वा कुरुवलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥
 विनिःश्वसन्तस्ते राजन्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
 धिग्गहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यवुवन्पृथक् ॥ १९ ॥
 तत्सैन्यं सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
 त्वरध्वमिति चाऽऽक्रन्दन्नैतदस्तीति चाऽब्रुवन् ॥ २० ॥
 सर्वशस्त्रस्य मिपतो रथेनैकेन दंशिनौ ।
 बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥
 क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परन्तपौ ।
 दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २२ ॥
 तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदाऽन्ये सैनिकाऽब्रुवन् ।
 त्वरध्वं कुरुवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥

माचिश् की, नहत्याया, दहत्याया और दाना-पानी पिलाया-
 पिलाया ॥ १२ ॥ १०॥ जय घोड़े नहाकर और गायीकर
 श्राम कर चुके तब श्रीकृष्ण ने दृष्टे कि उमी बहुमन्य
 रथ में जोत दिया । अर्जुन सहित श्रीकृष्ण उस रथ
 पर बैठकर दीपना के साथ अगे बढ़े । कौरवपक्ष के
 गीसे ने जब देखा कि महावीर अर्जुन के घोड़े जल
 पीकर, पवन मिठाकर, फिर रथ को ले चले तब ने
 बहुत ही व्याकुल हो गये । तबसे कहने लगे दो नोद
 दिने गये हो उस मर्के के मनन लब्ध मर्मे ले रहे
 कौरवपक्ष के घोड़ा लेग पान्ना कहने लगे—हाय !
 श्रीकृष्ण और अर्जुन हमारे मन में निरुप गये और
 उनका बुद्धि गयी मर्मा होने लगे ॥ १३ ॥

१०॥ एक ही रथ पर बैठे हुए, करवायी, शत्रुनाशन
 अर्जुन और श्रीकृष्ण की द्वा मी करने हुए अनापाम,
 शत्रुमेता का नाश करने चले जा रहे हैं । जैसे कोई
 बाण्डू बिगने में गये ऐसे ही अनापाम अर्जुन पराक्रम
 दिवाकर और हमारे वर को दुष्ट पराक्रम चले जा रहे
 हैं हम सब निद्रा रहे हैं । हम सब राजाओं ने त्याग दिया
 की, पर उन्हें शक नहीं मरे ॥ २० ॥ २१ ॥ दुर्गुल-
 निरुप । श्रीकृष्ण और अर्जुन को निरुप गया देवदत्त
 अनापाम मर्मा निद्राकर कहने लगे—हे कौरव ! वह
 देखा, कृष्णपक्ष सब से दाओं के मधुपुत्र ही रथ को
 जपदम के मनने जा रहे हैं । उनमें तुम से ग श्रीकृष्ण
 और अर्जुन को काने का दीपयत करे । हे मद्राज !

रथयुक्तो हि दाशार्हो मिपतां सर्वधन्विनाम् ।
 जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥
 तत्र केचिन्मिथो राजन्समभापन्त भूमिपाः ।
 अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥
 सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
 दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्वा च मेदिनी ॥ २६ ॥
 विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।
 इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥
 सिन्धुराजस्य यत्कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
 तत्करोतु वृथादृष्टिर्धात्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥ २८ ॥
 ततः शीघ्रतरं प्रायात्पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
 विवर्त्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥
 तं प्रधानं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
 नाऽशक्नुवन्वारयितुं योधाः कुङ्कमित्राऽन्तकम् ॥ ३० ॥
 विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
 यथा मृगगणान्सिंहः सैन्धवार्ये व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥
 गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
 बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३२ ॥
 कौन्तेयेनाऽग्रतः सृष्ट्वा न्यपतन्पृष्ठतः शराः ।
 तूर्णान्तूर्णतरं ह्यश्वः प्रावहन्वातरंहसः ॥ ३३ ॥

उस समय कोई कोई राजा यह अद्भुत दृश्य देखकर कहने
 लगे—हाय ! दुर्योधन के दोष से ही आज महाराज
 धृतराष्ट्र, उनका वध, सारी सेना और सब क्षत्रिय नष्ट-
 भ्रष्ट हो रहे हैं तथा हम प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी उन्नड़ी
 जा रही है, किन्तु राजा दुर्योधन यह नहीं समझते ॥ २३ ।
 २७। मिमी किसी ने कहा—सिन्धुराज जयद्रथ अब
 किसी प्रकार नहीं बच सकते। अदृष्टदर्शी दुर्योधन को
 उनके निमित्त जो कुछ अन्तिम कर्तव्य हो सो कर लेना
 चाहिए ॥ २७ । २८। हमी समय महारी अर्जुन बिना
 भके घोड़ों से युक्त रथ पर नगर होकर बड़े तेज
 नयद्रथ की ओर जाने लगे। उन शस्त्रधारियों ने शत्रु और
 वराह पात्र के समान महावीर अर्जुन को घेरकर

गीरगण किसी प्रकार न रोक सके ॥ २९ । ३०। शत्रुदमन
 अर्जुन जयद्रथ के समीप पहुँचने के लिए, मृगों पर
 दूटकर उनका महार कर्मे शत्रु मिह की भौति, कीर-
 सेना को भगने लगे। सैन्यमागर में प्रवेश होकर
 यद्युदेव स्वर्ग के माय घोड़ों को हौकने और पाञ्च-
 जन्य शस्त्र की घनि करने लगे। अर्जुन के रथ के
 घोड़े उस समय इतनी शीघ्रता से चले जा रहे थे
 कि अर्जुन जिन वाणों को छोड़ते थे वे निशाने पर
 गिरते पहुँचते थे और रथ आगे बहुत दूर निकल जाता
 था ॥ ३१ । ३२। हमी समय फिर अनेक राताओं और
 महाशयियों ने, जयद्रथ को घेर के लिए उद्युत, अर्जुन
 को घातों और मे घेर लिया। इस प्रकार सब दैतियों

महाभारत भाषा-टीका का दशम अङ्क समाप्त हुआ ।